हिन्दी समिति ग्रन्थमाला—१४

जीव-जगत

लेखक

सुरेश सिंह

प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग

उत्तर प्रदेश

प्रकाशकीय

भारत की राजभापा के रूप मे हिन्दी की प्रतिप्ठा के पश्चात् यद्यपि इम देश के प्रत्येक जन पर उसकी समृद्धि का दायित्व है, किन्तु इससे हिन्दी भापा-भापी क्षेत्रो के विशेप उत्तरदायित्व में किसी प्रकार की कमी नही आती। हमे सविधान 'मे निर्धारित अवधि के भीतर हिन्दी को न केवल सभी राजकार्यो मे व्यवहृत करना है, वल्कि उसे उच्चतम शिक्षा के माध्यम के लिए भी परिपुप्ट बनाना है। इमके लिए अपेक्षा है कि हिन्दी मे वाङमय के मभी अवयवो पर प्रामाणिक ग्रन्थ हो और यदि कोई व्यक्ति केवल हिन्दी के माध्यम से ज्ञानार्जन करना चाहे तो उसका मार्ग अवरुद्ध न रह जाय।

इमी भावना से प्रेरित होकर उत्तर प्रदेश शासन ने अपने शिक्षा विभाग के अन्तर्गत साहित्य को प्रोत्साहन देने और हिन्दी के ग्रन्थो के प्रणयन की एक योजना परिचालित की है। शिक्षा विभाग की अवधानता मे एक हिन्दी परामर्श समिति की स्थापना की गयी है। यह समिति विगत वर्पो मे हिन्दी के ग्रन्थो को पुरस्कृत करके साहित्यकारो का उत्साह वढाती रही है और अव इसने पुस्तक-प्रणयन का कार्य आरम्भ किया है।

समिति ने वाङमय के सभी अगो के सम्वन्ध मे पुस्तको का लेखन और प्रकाशन कार्य अपने हाथ मे लिया है। इमके लिए एक पच-वर्पीय योजना वनायी गयी है, जिसके अनुसार ५ वर्पो मे २०० पुस्तको का प्रकाशन होगा। इम योजना के अन्तर्गत प्राय वे मव विपय ले लिये गये हैं जिन पर ससार के किसी भी उन्नतिशील साहित्य मे ग्रन्थ प्राप्त हैं। इस वात का प्रयत्न किया जा रहा है कि इनमे से प्राथमिकता उन्ही विपय अथवा उन विपयो को दी जाय जिनकी हिन्दी मे नितान्त कमी है।

प्रदेशीय सरकार द्वारा प्रकाशन का कार्य आरम्भ करने का यह आशय नही है कि व्यवमाय के रूप मे यह कार्य हाथ मे लिया गया है। हम केवल ऐसे ही ग्रन्थ प्रकाशित करना चाहते है जिनका प्रकाशन कतिपय कारणो से अन्य स्थानो से नही हो पाता। हमारा विश्वास है कि इम प्रयाम को मभी क्षेत्रो से सहायता प्राप्त होगी और भारती के भडार को परिपूर्ण करने मे उत्तर प्रदेश का शासन भी किंचित् योगदान देने में समर्थ होगा।

भगवती शरण सिह

सचिव, हिन्दी समिति

भूमिका

हमारी पृथ्वी को सूर्य से अपना सम्बन्ध विच्छेद किये हुए यद्यपि दो अरब वर्षो से भी अधिक हो चुका है लेकिन उससे अलग होकर एक स्वतन्त्र ग्रह बन जाने पर भी अभी तक वह उसके स्नेहपाश से मुक्त नही हो सकी है और आज भी वह निरन्तर उसी की परिक्रमा करती चली जा रही है।

इस लम्बे समय के आदि काल मे पृथ्वी पर कही जीवन का कोई चिह्न तक नही था और लगभग एक अरब वर्षो तक इस पर प्राणहीन पदार्थो का ही सर्जन-भजन चलता रहा लेकिन इसके बाद न जाने कहाँ से इस पर जीवन की एक सूक्ष्म कणिका का प्रादुर्भाव हुआ जो ससार की सबसे आश्चर्यमयी घटना थी।

जीवन के उस प्राणबिन्दु का अद्भुत सृष्टिकार्य तब से प्रत्येक जीव में तथा नयी नयी परीक्षाओं में निरन्तर विकसित होता चला आ रहा है और उसमे योजना करने की, सचालन करने की और परिस्थितियो के अनुकूल अपने मे शोधन करने की जो एक अद्भुत शक्ति प्रच्छन्न भाव से छिपी है उसके विषय मे बहुत सोचने पर भी कुछ ओर-छोर नही मिलता।

हमारी इस पृथ्वी का उद्भव किस प्रकार हुआ, इसके बारे मे ससार मे अनेक मत-मतान्तर है लेकिन यदि हम इस विषय की पौराणिक कथाओ को छोडकर केवल वैज्ञानिको के ही मतो को देखते है तो हमे ज्ञात होता है कि वे लोग भी अभी तक किसी एक निश्चित निष्कर्ष पर नही पहुँच सके है। फिर भी उनके अन्तिम निर्णय का साराश यहाँ दिया जा रहा है।

सबसे पहले फ्रास के वैज्ञानिक बफ्टन (Bufton) ने १७४९ ई० मे यह बताया कि एक बहुत बडा ज्योति पिण्ड एक दिन सूर्य से टकरा गया, जिसके फलस्वरूप बडे-बडे छींटे उछलकर सूर्य से बाहर हो गये, जो धीरे-धीरे समय बीतने

पर ठढे होकर हमारे ग्रह-उपग्रह बन गये। इसके कुछ समय बाद एक दूसरा सिद्धान्त ससार के सामने आया जिसमे कहा गया था कि यह पिण्ड या नक्षत्र सूर्य से भिडा तो नही किन्तु उसके बहुत पास होकर गुजरा और उसके आकर्षण से सूर्य के वाष्पपुज में बहुत जोर की लहरे उठी जो उसकी परिधि से बाहर निकल गयी। यही बाहर निकला हुआ भाग कई हिस्सो मे विभक्त हो गया और धीरे-धीरे ये टुकडे ही ठढे होकर हमारी पृथ्वी और अन्य ग्रह-उपग्रह बने।

उसके बाद सन् १७५५ ई० मे जर्मनी के प्रसिद्ध विद्वान् काट और सन् १७९६ मे प्रसिद्ध गणितज्ञ लापलास ने एक नये सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जिसमे कहा गया था कि सूर्य के चारो ओर आकाशगगा की तरह एक वाष्पीय घेरा फैला हुआ था जो सम्भवत सूर्य मे होनेवाले भीषण विस्फोट के कारण था। इसी वाष्पीय पिड से कुछ भाग घूमते-घूमते सूर्य से बाहर निकल पडे जो सूर्य के आकर्षण के कारण उसके चारो ओर परिक्रमा लगाने लगे। ये ही कुछ समय बाद ठढे होकर हमारी पृथ्वी तथा अन्य ग्रह-उपग्रह बने।

इधर १९५१ ई० मे प्रसिद्ध विद्वान् जेरार्ड पी० कूपर ने एक नया सिद्धान्त ससार के सम्मुख रखा है जिसे प्राय सभी विद्वानो ने स्वीकार कर लिया है। इस सिद्धान्त के अनुसार शून्य मे फैले हुए सब तारे धूल और गैस से भरे हुए है। ये गुरुत्वाकर्षण की शक्ति के कारण घनत्व प्राप्त करके अन्तरिक्ष मे चक्कर लगा रहे हैं। इतनी तेज गति से चक्कर काटने के कारण इनमे इतनी उष्णता बढ गयी है कि ये चमकते हुए तारो की स्थिति मे पहुँच गये है।

हमारा सूर्य भी इसी स्थिति मे था और वह भी आकाश मे बडी तेजी से चक्कर लगा रहा था। उसके चारो ओर वाष्पीय बादल और धूल का एक घेरा पडा हुआ था। यह घेरा जब धीरे-धीरे घनत्व प्राप्त करने लगा तो उसमे से अनेक समूह बाहर निकलकर उसके चारो ओर परिक्रमा करने लगे। ये ही हमारे ग्रह और उपग्रह है और इन्ही मे से एक हमारी पृथ्वी भी है जो आकार मे सूर्य से बहुत छोटी होने के कारण उससे पहले ही ठढी होने लगी है।

सूर्य से अलग होने पर पहले हमारी पृथ्वी भी उसी की तरह एक ज्वलित वाष्प-पुज के रूप मे थी किन्तु धीरे-धीरे लाखो करोडो वर्षो के बीत जाने पर इसका धरातल ठढा हुआ और इसकी ऊपरी सतह पर एक कडी पपडी-सी पड गयी। ऊपर से ठढी

हो जाने पर भी पृथ्वी का भीतरी भाग ज्वाला से धधकता ही रहा जो कभी-कभी लावा के रूप मे इस पपडी को फोडकर बाहर निकल पडता था। ऊपर आकर जहाँ-जहाँ यह गला हुआ पदार्थ जमकर ठढा हो गया वह स्थान हमारी पृथ्वी का स्थल भाग बना और जहाँ वह धरातल को फोडकर फिर पृथ्वी मे समा गया वहाँ का भाग नीचा और गहरा हो गया। आगे चलकर इसी भाग मे जल भर गया और ये ही हमारे समुद्र बने।

पृथ्वी का भीतरी भाग ज्यो-ज्यो ठढा होकर सिकुडता गया त्यो-त्यो उसकी ऊपरी सतह मे भी सिकुडन पडती गयी, जिन्हे आज भी हम अपने पहाडो और घाटियो के रूप मे देख सकते है।

इधर पृथ्वी धीरे-धीरे ठढी हो रही थी और उधर उससे निकलकर वाष्प के बादलो ने उसके वायुमडल को इस तरह आच्छादित कर लिया था कि उसको भेद कर सूर्य की किरणो का पृथ्वी तक पहुँचना असम्भव हो गया था। ऊपर से बादल जो जल बरसाते थे वह पृथ्वी पर पहुँचने से पहले ही भाप बनकर फिर ऊपर की ओर लौट जाता था और पृथ्वी तक जल की एक बूद भी न पहुँचती थी। उस समय पृथ्वी का धरातल प्रज्वलित तथा अन्धकारपूर्ण था जिसे रह-रहकर ज्वालामुखी और भूकम्प कँपाते रहते थे।

लेकिन करोडो वर्षो के बाद पृथ्वी इतनी ठढी हो गयी कि वहाँ तक वर्षा के जल का पहुँचना सभव हो गया और फिर काफी समय तक पृथ्वी पर छाये हुए बादलो ने घनघोर वर्षा करके धरातल को और भी ठढा कर दिया। वर्षा के जल ने एकत्र होकर समुद्रो का रूप धारण कर लिया जिन्होने हमारी पृथ्वी का तीन चौथाई भाग घेर लिया।

इस अनवरत मूसलाधार वर्षा से पृथ्वी के चारो ओर छाये हुए बादल छँट गये और पृथ्वी पर सूर्य की पहली किरण पहुँची। सूर्य के प्रकाश से जहाँ सारी पृथ्वी आलोकित हो उठी वही उस पर जीवो के उत्पन्न होने की सम्भावना भी हो गयी, क्योकि बिना सूर्य के प्रकाश के किसी भी प्रकार के जीवन की कल्पना हो ही नहीं सकती।

जीवन के उस प्रारम्भिक काल मे पृथ्वी का स्थल-भाग एकदम नगा, गरम और ज्वालामुखियो से भरा रहा होगा। इसीलिए जीवन की पहली किरण समुद्रो में ही फूटी। पृथ्वी पर जीवन का प्रादुर्भाव किस प्रकार हुआ उसका तो कुछ ठीक पता

नही चलता पर इतना तो सभी विद्वान् मानते है कि जीवन के अकुर सर्वप्रथम प्रोटोप्लाज्म (Protoplasm) अथवा जीवपक मे ही दृष्टिगोचर हुए, जो एक प्रकार के चिपचिपे पारभासी (Translucent) पदार्थ में पाये जाते थे और जिनका देखना केवल अणुवीक्षण यत्र द्वारा ही सभव था। इसी जीवपक अथवा उसके पुजीभृत सूक्ष्म जीवकोशो से चीटी से लेकर हाथी तक के शरीर का निर्माण हुआ है, जिन्हे हम जीवन तथा प्राण की नीहारिका कह सकते है।

ससार के सब जीव इन्ही सूक्ष्म जीवकोशो के मिलने से बने है जो वास्तव मे प्रोटोप्लाज्म अथवा जीवपक के छोटे-छोटे पुज कहे जा सकते है। ये जीवकोश बहुत ही छोटे गोल या अडाकार होते है, जिनके भीतर एक जीवविन्दु (Nuchus) रहता है। इस जीवविन्दु के भीतर भी अनेक सूक्ष्म परमाणु रहते है जिनके चारो ओर बहुत छोटे छोटे अणु तेजी से चक्कर लगाते रहते है। ऐसी विलक्षण है प्रत्येक जीवकोश की रचना, जिसके भीतर से मृत्यु से होती हुई, प्राण की धारा निरन्तर प्रवाहित हो रही है।

यहाँ तक तो जीव-जन्तु और वनस्पति की अलग-अलग शाखा नही फूटी थी और दोनो ही एक प्रकार के एककोश-प्राणी थे लेकिन उन्ही मे से कुछ ने अपने चारो ओर सैलीलोस (Cellulose) का आवरण चढा लिया और अपने भीतर पर्ण-हरित या क्लोरोफिल (Chlorophyll) नामक हरा पदार्थ पैदा किया। इस हरे पदार्थ मे यह गुण था कि वह जिस प्राणी के भीतर रहता था उसके लिए सूर्य के प्रकाश की शक्ति का उपयोग करके कार्बन डायाक्साइड (Carbon Di oxide) को हवा और पानी की खूराक मे परिवर्तित कर देता था और ये ही दोनो वस्तुएँ प्रत्येक जीवित प्राणी के लिए आवश्यक होती है।

ये पर्णहरित (Chlorophyll) वाले हरे रग के एककोश प्राणी जो आगे विकसित होकर पेड-पौधे वने, हमारे वृक्षो के पूर्वज है। इस प्रकार जिन जीवकोशो ने अपने मे पर्ण-हरित उत्पन्न करके हरा रग धारण किया उनसे तो हमारी वनस्पति का विकास हुआ लेकिन जिन जीव-कोशो ने अपने शरीर के चारो ओर सैलीलोस का आवरण धारण करके अपने भीतर पर्णहरित नही उत्पन्न किया उनका शरीर विकसित होकर इधर-उधर चलने-फिरने के योग्य तो वन गया लेकिन शरीर के भीतर पर्णहरित न होने के कारण, वे वृक्षो की तरह गैस और पानी को अपने लिए हवा

और पानी मे परिवर्तित न कर सके और जीवन धारण करने के लिए उन्होने अपने पडोसी हरे जीवकोशो को ही खाना शुरू किया। इन्ही जीवकोशो से सारे ससार के जीव-जन्तुओ का विकास हुआ और इन्ही को हम पृथ्वी के समस्त प्राणियो का पूर्वज कह सकते है।

जीवो का यह प्रारम्भिक रूप एक कोश मे ही सीमित था और ये एककोशीय जीव ही पशुओ और वनस्पतियो के पूर्वज थे। ये जीव वढकर दो भागो मे विभाजित हो जाते थे और प्रत्येक भाग एक स्वतन्त्र जीव वन जाता था। कुछ समय वाद उनके भी दो भाग होकर दो स्वतन्त्र जीवो में परिणत हो जाते थे। इस प्रकार इन जीवो का परिवर्धन काफी समय तक चलता रहा लेकिन उसके वाद ये एककोशीय जीव आपस में मिलकर एक सयुक्त-कोशीय जीव का रूप ग्रहण करने लगे जिनमे दो भागो मे विभक्त होकर स्वतन्त्र जीव वन जाने की क्षमता न रह गयी।

इन सयुक्त-कोशीय जीवो मे भी धीरे-धीरे परिवर्तन होने लगा और उनके शरीर के भिन्न-भिन्न कोशो को शरीर का अलग-अलग कार्य मिला। उनकी शरीर-रचना में भी धीरे-धीरे काफी परिवर्तन हुआ और वह एक नली के समान वन गया। इन नली के समान शरीरवाले प्रारम्भिक जीवो के एक ओर इनका मुखछिद्र रहता था जिसमे होकर इनके शरीर के भीतर भोजन पहुँचता था, जो इनके शरीर के सभी कोशो का पोपण करता था। इनके शरीर मे धीरे-धीरे स्नायुमडल का भी विकास हुआ जो उनके शरीर के एक भाग से दूसरे भाग तक सदेश पहुँचाने लगा और फिर जब इन जीवो के आकार में वृद्धि हुई तो इनके शरीर मे रक्तवाहिनी नलियो का जाल फैल गया जिनसे उनके शरीर के समस्त कोशो का पोपण होने लगा।

यह निश्चय रूप से नही कहा जा सकता कि ये प्रारम्भिक जीव समुद्रो मे कितनी शताब्दियो तक अपना विकास करते रहे, क्योकि इन कोमल शरीरवाले जीवो ने अपने पथराए चिह्न (Fossil) नही छोडे है जिनसे हम उनके समय का ठीक-ठीक पता लगा सके। हमें जो सबसे पुराना फासिल मिला है वह ५० करोड वर्ष पुराना है। उससे ज्ञात होता है कि उस समय तक प्राय सभी अमेरुदडीय जीवो का विकास हो चुका था लेकिन मेरुदडीय जीवो का प्रादुर्भाव अभी भविष्य के गर्भ मे ही था।

उस आदि काल मे पृथ्वी एकदम सुनसान थी। उस समय उसके स्थल भाग पर जीवो की कौन कहे, किसी प्रकार की वनस्पति भी नही थी। सारा भूमडल नंगे

पहाडो और चट्टानो से भरा था जिसे रह-रहकर भूकम्प कँपाया करते थे। लेकिन समुद्रो की ऐसी दशा नही थी। वहाँ असख्य जीव भर गये थे जो जीवन के सघर्ष और विकास की ओर अग्रसर हो रहे थे। समुद्रो मे छोटे-छोटे पौधो का भी उद्भव हो गया था जो इन जीवो की जीवन-रक्षा के मुख्य साधन थे।

समुद्र के ये सब जीव एक ही आकार-प्रकार के नही थे वरन् उनके स्वरूप में वहुत भेद था। इन सब जीवो में ट्रिलोवाइट (Trilobite) सबसे अधिक विकसित थे जिनका उस समय समुद्रो मे आधिपत्य कायम था। ये उस समय के समस्त जीवो मे इसलिए विकसित कहे जाते है कि उनका शरीर पानी मे रहने के लिए औरो से अधिक उपयुक्त था और वे काफी सख्या में सन्तानो की उत्पत्ति करते थे जिनमें से आगे चल कर नयी नयी जातियो का जन्म होना सम्भव हुआ। इस प्रकार इन ट्रिलोवाइटो ने समुद्रो में लगभग वीस करोड वर्षो तक अपना राज्य कायम रखा।
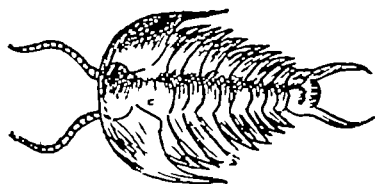
ट्रिलोबाइट

लेकिन इसके वाद इन जीवो का सदा के लिए नाश हो गया और उन्ही मे से एक अन्य जीव ने अपना विकास करके समुद्री पनविछिया (Water Scorpion) का स्वरूप ग्रहण किया। वे ट्रिलोवाइटो के स्थान पर समुद्रो के अधिकारी वन वैठे। ये मासाहारी जीव थे जो वढकर आठ-नौ फुट तक के होने लगे और अन्य जीवो के अधिक विकसित होने के कारण इनका राज्यकाल भी लगभग वीस करोड वर्षो तक चला। लेकिन समय के परिवर्तन के साथ इसके आगे ये भी न चल सके और इनको भी एक दिन ससार से सदा के लिए विदा होना पडा।
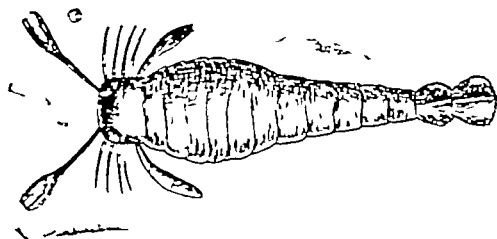
समुद्री पनविछिया

ट्रिलोवाइट तथा पनविछिया तो सदा के लिए ससार से चले गये लेकिन जीवो के विकास का क्रम उसी प्रकार अवाध गति से चलता रहा। मीठे पानी के जलाशयो

के कीचड से भरी हुई तह पर एक प्रकार के जीव अपना स्वतन्त्र विकास कर रहे थे जिन पर जीव-जगत का भविष्य वहुत कुछ निर्भर करता था। ये जीव छोटे, चपटे और भद्दे आकार के थे और उनके मुख-छिद्र की जगह नीचे की ओर एक गिगाफ जैसा कटा था। वे इमी के द्वारा कीचड से अपनी खूराक चूस लेते थे। लेकिन प्रकृति की ओर से उनको दो ऐसी अद्भुत वस्तुएँ मिली थी जिनके कारण भविष्य मे मसार के राज्य का सेहरा उन्ही के सिर बँधना था। पहली वस्तु जो उन्हे मिली थी वह उनके गरीर का कडा खोल थी और दूमरी वस्तु जो उमसे भी अविक उपयोगी थी वह उनका मस्तिप्क था। इन दोनो की सहायता से वे पनविछिया आदि मामभक्षी जीवो मे अपनी रक्षा करने मे समर्थ हो गये। इन जीवो को आस्ट्राकोडर्म (Astra-coderm) कहा जाता है जिमका अर्थ होता है कवचधारी-मत्स्य (Shell Skinned Fish)। इनके अगले भाग में कवच की तरह प्लेट होते थे लेकिन उनके पीछे का हिस्सा गल्को से भरा रहता था।

साढे मात करोड वर्ष तक इन कवचधारी मछलियो ने भी ममुद्रो पर अपना आधिपत्य कायम रखा लेकिन इसके पश्चात् इन्ही की एक शाखा से हमारी मछलियो का विकाम हुआ जो आस्ट्राकोडर्म या कवचधारी मत्स्यो से कही ज्यादा विकसित थी।
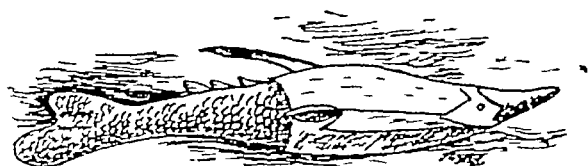
आस्ट्राकोडर्म या कवचधारी मत्स्य

इन विकसित मछलियो के गरीर मे मेरुदड का विकाम हुआ जो जीव-जगत मे एक वहुत वडा परिवर्तन था। इमी मेरुदड के विकाम मे जीव-जगत का दूमरा अध्याय प्रारम्भ होता है क्योकि इमके विकाम के कारण जीवो की गरीर-रचना मे आमूल परिवर्तन हो गया था।

मेरुदड के अतिरिक्त इन मछलियो के गरीर के भीतर हड्डियो के ककाल का विकाम हुआ जो इनके गरीर के ऊपर की मामपेगियो के लिए एक महारा वन गया। उनके गरीर पर मुफनो या पक्षो (Fins) का भी विकाम हुआ और उनका गरीर और अधिक मूच्याकार हो गया जिमसे उन्हे पानी मे इधर-उधर तैरने मे वहुत मुविधा हो गयी। इम महूलियत मे उन्हे अपनी रक्षा करने मे वडी महायता मिली। अव इन

जीवो को कीचड से भरी हुई तलहटी में रहने की जरूरत न रह गयी और वे अपने भोजन के लिए पानी में स्वतन्त्रता से इधर-उधर आने-जाने लगे। उनके सुफने जहाँ उनके शरीर का सतुलन कायम रखते थे वही वे उन्हे पानी मे तेजी से तैरने मे भी सहायता पहुँचाते थे। धीरे-धीरे उनके शरीर का भारी कवच भी गायब हो गया क्योकि उसकी अब उन्हे विशेष आवश्यकता नही रह गयी थी।

इन मछलियो की सख्या दिन-दूनी रात-चौगुनी बढने लगी और शीघ्र ही उनसे मीठे पानी के जलाशय भर गये। अन्त मे स्थानाभाव के कारण इन्हे समुद्रो की शरण लेनी पडी जहाँ इनको रहने के लिए काफी स्थान मिल गया। वहाँ इनकी अनेको जातियाँ विकसित हुई। इस प्रकार लगभग ५ करोड वर्षो तक समुद्रो मे इन्ही का एकछत्र राज्य रहा।

इन प्रारम्भिक मछलियो के दो मुख्य भेद थे—एक कोमल-हड्डीवाली मछलियाँ, जैसी आजकल हमारी हागर (Shark) आदि है और दूसरी कडी-हड्डीवाली मछलियाँ जैसी आजकल की अन्य साधारण मछलियाँ है।

कडी-हड्डीवाली मछलियाँ, कोमल-हड्डीवाली मछलियो से सख्या मे बहुत अधिक फैली और उनमे से कुछ ने अपने भीतर फेफडे का विकास भी किया। मछलियो के शरीर में फेफडे का होना कुछ अजीब-सा लगता है क्योकि फेफडे से हम खुली हवा मे ही साँस ले सकते है और मछलियो को अपने गलफडो के कारण पानी मे घुली हुई हवा में साँस लेना पडता है। लेकिन अगर इन प्रारम्भिक मछलियो ने फेफडो का विकास न कर लिया होता तो वे सदा के लिए ससार से लोप हो जाती क्योकि पृथ्वी पर इसी समय फिर एक बडा परिवर्तन हुआ, जिससे मौसम इतना खुश्क हो गया कि सारे जलाशय मरे हुए जीवो की लाशो से पट गये और पानी मे प्राणवायु (Oxygen) की बेहद कमी हो गयी। ऐसी सकटापन्न अवस्था मे केवल वे ही मछलियाँ जीवित रह सकी जिन्होने अपने भीतर फेफडे का विकास कर लिया था और जो, पानी के भीतर प्राणवायु की कमी के कारण, अपने फेफडो द्वारा पानी की सतह पर आकर उसी तरह साँस ले लिया करती थी जैसा इस समय पानी मे रहनेवाले तिमि (ह्वेल) और सूस आदि स्तनप्राणी करते है।

कुछ समय बीतने पर मौसम मे फिर एक महान परिवर्तन हुआ और सारी पृथ्वी घनघोर वर्षा से ओतप्रोत हो गयी। पृथ्वी के सारे सूखे जलाशय भर गये और पानी मे प्राणवायु की कमी न रह गयी। इन मछलियो ने फिर अपने गलफडो से पानी मे घुली हुई हवा मे साँस लेना शुरू कर दिया और उनके फेफडे हवा की थैली मे बदल

गये जिसमे हवा भरकर या निकालकर वे आज भी पानी मे ऊपर-नीचे आती-जाती है। इन्ही मछलियो से हमारी आजकल की कडी-हड्डीवाली या दृढास्थि-मछलियाँ विकसित हुई है जिनकी लगभग बीस हजार जातियाँ हमारे मीठे पानी के जलाशयो और समुद्रो मे फैली हुई है।

मछलियो का काल, जैसा ऊपर बता आया हूँ, लगभग पाँच करोड वर्षो का माना जाता है। इसके प्रथम चरण में ही खुश्की पर वनस्पति का विकास होना प्रारम्भ हो गया था। स्थल पर के ये प्रारम्भिक पौधे बिना पत्तियो और जडो के थे और वे धीरे-धीरे पृथ्वी पर फैल रहे थे। कुछ समय बाद इनमे भी विकास के चिह्न दिखाई पडने लगे और मछलियो का युग समाप्त होते-होते इनकी ऊँचाई ४०-५० फुट तक पहुँच गयी जिन्होने धीरे-धीरे फैलकर पृथ्वी का काफी भाग घेर लिया।

खुश्की पर वानस्पतिक भोजन की इतनी प्रचुरता देखकर पानी के जीव धीरे-धीरे सूखे की ओर बढने लगे। उनमे से जिन्होने पहले-पहल स्थल पर आने का साहस किया उन्हे हम उभयचर (Amphibious) के नाम से पुकारते है। उभयचर, जैसा उनके नाम से स्पष्ट है, जल और स्थल दोनो स्थानो पर रहने योग्य जीव थे। उनका प्रारम्भिक जीवन तो पानी मे बीतता था लेकिन अपने शरीर मे फेफडे का विकास करने के कारण वे खुली हवा मे साँस लेनेवाले जीव थे। ये जीव पानी में भी काफी देर तक रह लेते थे और तैरने मे तो बहुत उस्ताद थे। इन्होने अपने पैरो का बहुत अधिक विकास किया जिससे ये खुश्की पर भी आसानी से चलने-फिरने लगे और इन्ही पैरो की मदद से इन्हे सकटकाल आने पर एक जलाशय के सूखने पर दूसरे जलाशय मे जाने की सहूलियत हो गयी। इन उभयचरो ने अपने कान का भी अद्भुत विकास किया जिससे उन्हे दूर से ही शत्रुओ की आहट मिल जाती थी और उनसे वे अपनी रक्षा करने में समर्थ हो जाते थे।

भोजन की अधिकता और शत्रुओ की कमी के कारण इन उभयचरो ने अपना अधिक समय स्थल पर ही बिताना उचित समझा लेकिन उन्हे अण्डे देने के लिए पानी की ही शरण लेनी पडती थी, क्योकि उनके नरम अण्डो की नमी कायम रखने के लिए जल का सहारा आवश्यक था। वे साँस लेने मे बहुत कुशल नही थे और हवा को अपने मुख के निचले हिस्से से उसी तरह भीतर की ओर ठेल देते थे जैसे मछलियाँ पानी को गलफडो के ऊपर ठेल देती है। इनकी रक्तवाहिनी शिराएँ भी इतनी विकसित नही

हो पायी थी, फिर भी उन्हे उस समय के अन्य जीवो की अपेक्षा अधिक सहूलियत तो प्राप्त थी ही। ये उभयचर पानी के निकट वाले जगलो मे काफी सख्या मे बढने लगे और लगभग दस करोड वर्षो तक पृथ्वी पर इन्ही का बाहुल्य रहा। लेकिन उसके पश्चात् ये भी परिवर्तनशील ससार के साथ न चल सके और इनका भी ससार से लोप हो गया। आज हम इनके वशजो मे से मेढक आदि कुछ जीवो को ही देख सकते है।

इसी बीच जीवो की एक और शाखा अपने अस्तित्व के लिए सघर्ष कर रही थी जिसने धीरे-धीरे अपने को समय के परिवर्तन के अनुकूल बना लिया और सारी पृथ्वी पर देखते-देखते उन्ही का राज्य कायम हो गया। ये थे हमारे सरीसृप, जिन्होने सबसे पहले स्थल पर अपना राज्य स्थापित किया। उभयचरो की भाति इन सरीसृपो को अण्डे देने के लिए पानी के भीतर नही जाना पडता था क्योकि इन्होने उभयचरो के नरम खोलवाले अडो की जगह कडे खोलवाले अण्डे देने का विकास कर लिया था जो जमीन पर ही फूटते थे। इस सहूलियत के बाद इनका पानी से और भी कम सम्बन्ध रह गया और कुछ भीमकाय सरीसृपो को छोडकर, जो अपने भारी शरीर को सँभालने के लिए मजबूरन पानी की शरण लेते थे, ज्यादा सख्या उन्ही की हो गयी जो खुश्की अथवा कीचड मे अपना समय बिताते थे। ये अपने अण्डे खुश्की पर देने लगे जहाँ शत्रुओ की कमी थी और अपना पेट भरने के लिए भी खुश्की का सहारा लेने लगे जहाँ वानस्पतिक भोजन भरा पडा था। इन दोनो सुविधाओ के कारण इन जीवो की सख्या तो दिन-दूनी रात-चौगुनी बढती ही गयी, साथ ही साथ उनका आकार-प्रकार और उनकी भिन्न-भिन्न जातियो की भी उत्तरोत्तर वृद्धि होती गयी। इसका फल यह हुआ कि देखते ही देखते जल, थल और आकाश पर इन सरीसृपो का निष्कटक राज्य स्थापित हो गया।

इन जीवो को केवल खुश्की पर अण्डे देने की सुविधा ही प्रकृति से नही मिली बल्कि उनके विकास के लिए अन्य साधन भी उन्हे प्राप्त हुए। इनके पैर उभयचरो की तरह बाहर की ओर फैले न रहकर इनके शरीर से सटे होने लगे जो इनके भारी शरीर के बोझ को सँभालने के लिए बहुत उपयुक्त साबित हुए। इतना ही नही, ये गले के बजाय अपनी पसलियो की सहायता से साँस लेने मे सफल हो गये और इनके शरीर मे रक्त-सचार की व्यवस्था भी और पूर्ण हो गयी।

इस प्रकार खुश्की का विशाल निरापद स्थान, प्रचुर मात्रा मे भोजन तथा शत्रुओ का अभाव इन सरीसृपो की सख्या बढाने मे विशेष रूप से सहायक हुआ और धीरे-धीरे

उन्होंने सारे भूमडल को घेर लिया। उनसे होड लेनेवाला कोई भी जीव पृथ्वी पर न रह गया और वे सारे ससार के स्वामी बन गये। अपना अधिक समय स्थल पर बिताने के कारण इन प्राणियो के पैर सुदृढ और खुश्की पर चलने के योग्य हो गये लेकिन इनमे से कुछ ने अपने पैर साँपो की तरह खो दिये तो कुछ के पैर पानी मे तैरने के लिए पतवारनुमा हो गये और कुछ ने अपने शरीर पर एक प्रकार की झिल्ली का ऐसा विकास किया जिसकी सहायता से वे पक्षियो की तरह आकाश मे उडने लगे।

लेकिन आकाश मे उडनेवाले ये सरीसृप, जिनकी जाँघ से लेकर हाथ की उँग-लियो तक एक मजबूत झिल्ली का विकास हुआ था, हमारी चिडियो के पूर्वज नही थे। चिडियो के पूर्वज तो दूसरे ही सरीसृप थे जिनको प्रत्नपुखीय या आर्कियोप्टेरिक्स (Archaeopteryx) कहा जाता है। ये यद्यपि अपना जीवन अन्य सरीसृपो के समान ही बिताते थे लेकिन इनकी विशेषता यह थी कि इनके शरीर पर पर थे।

उस समय के भीमकाय सरीसृपो मे डाइनासोर (Dinosourus) सबमे प्रसिद्ध थे जिनकी एक नही अनेक जातियाँ थी। इनमे डिप्लोडोकस (Diplo-docus) नाम के डाइनासोर की लबाई लगभग ९० फुट तक पहुँच गयी थी। यह शाकाहारी जीव था जिसकी दुम और गरदन तो बहुत लम्बी और पतली थी लेकिन जिसका मस्तिष्क मुरगी के अण्डे से बडा नही था।

दूसरा प्रसिद्ध डाइनासोर ब्राकियोसोरस (Brachiosaurus) था जो वजन मे सबमे भारी था। इसका वजन लगभग ५० टन होता था। यदि वह आज जीवित होता तो सडक पर खडे होकर हमारे घर की दूसरी मजिल तक पहुँ-चने मे उसे जरा भी कठिनाई न होती। ये दोनो जीव पानी या कीचड मे रहते थे जहाँ उन्हे अपने भारी शरीर को इधर-उधर ले जाने मे ज्यादा कठिनाई नही पडती थी।
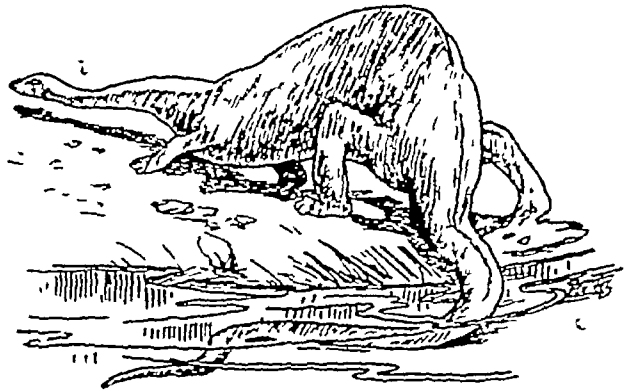
डाइनासोर

तीसरा प्रसिद्ध डाइनासोर टाइरनासरस (Tyrannosaurus) कहलाता था। यह लगभग २० फुट ऊँचा भयकर मासाहारी सरीसृप था जिसके मुख में ६ इच लम्बे नोकीले दाँत थे। इनमें से कुछ डाइनासोर ऐसे भी थे जिनके माथे पर नोकीले सीग थे तो कुछ की गरदन पर कडे प्लेटो का कवच था। कुछ की दुम पर सीगनुमा तेज़ अस्त्र होते थे तो कुछ का सारा शरीर बडे बडे कडे शल्को से ढका रहता था।

इस प्रकार ये भारी डीलडौल वाले सरीसृप हमारी पृथ्वी पर लगभग १० करोड वर्षो तक राज्य करते रहे लेकिन धीरे-धीरे फिर ऐसा समय आया जब सारे ससार की जलवायु में वडे-वडे परिवर्तन होने लगे। पृथ्वी के दलदलोवाले भाग धीरे धीरे सूख गये और अतल से पहाडो की ऊँची-ऊँची चोटियाँ उठ कर आकाश को छूने लगी। उत्तर की ओर से फिर बर्फीली हवाएँ चलने लगी और उनके प्रकोप से सारे पेड-पौधे नष्ट हो गये।

मौसम का यह महान परिवर्तन सरीसृपो के वहुत ही प्रतिकूल सिद्ध हुआ। गरम और नम जगहो में रहनेवाले ये भीमकाय जीव, जो अपना अधिक समय कीचडो में ही विताते थे, सूखे तथा पथरीले पहाडी स्थानो पर रहने में किसी प्रकार समर्थ न हो सके। इस मौसमी परिवर्तन के साथ वे अपने में परिवर्तन न कर सके अत उन्हे ससार के रग-मच से सदा के लिए इस प्रकार उठ जाना पडा कि उनका कोई नामलेवा न रह गया।

आर्किआप्टेरिक्स

सरीसृपो के उस युग में जहाँ एक ओर डाइनासोर जैसे जीव अपने शरीर को भारी भरकम करने का विकास कर रहे थे, वही दूसरी ओर प्रत्नपुखीय (आर्कियोप्टैरिक्स) नाम का एक प्रारम्भिक सरीसृप अपने शरीर को हलका करके और परो का विकास करके आकाश मे उडने की तैयारी कर रहा था। परिस्थितियो के अनुकूल होने के कारण उसे सफलता मिल गयी और उसकी एक नयी शाखा से आगे चलकर हमारी चिडियो का विकास हुआ जिनकी विशेपता उनके शरीर पर के पर थे। इन्ही मुलायम परो के कारण चिडियो के शरीर का तापमान एक-जैसा कायम रहने लगा और उन्हे सरीसृपो

की भाँति अपने शरीर के तापमान को ऊँचा रखने के लिए सूरज की गर्मी पर अवलम्बित रहने की आवश्यकता न रह गयी। वे इन्ही परो की सहायता से हवा मे उडने लगी और उन्हे अपनी रक्षा और भोजन के लिए आकाश-जैसा एक विशाल सुरक्षित क्षेत्र प्राप्त हो गया।

जिस प्रकार एक प्रारम्भिक सरीसृप से पक्षियो की एक शाखा निकली, उसी प्रकार एक दूसरे प्रारम्भिक सरीसृप से कुछ छोटे जीव दूसरी ही दिशा मे अपना विकास करने लगे। ये जीव चूहे के बराबर छोटे और चार पैरो वाले प्रारम्भिक जीव थे जिनका मुख्य भोजन मास था। ये जीव गर्म खूनवाले प्राणी (Hot Blood Animal) कहलाते थे क्योकि इनके शरीर का तापमान अन्य मेरुदडी जीवो की तरह अपने आस-पास के पानी और हवा के तापमान के साथ-साथ न घट बढ कर सब अवस्था में एक-जैसा ही कायम रहता था। यही इन जीवो की एक खास विशेषता थी। इतना ही नही, इन जीवो के शरीर पर बालो का भी विकास हो गया था जो उन्हें सर्दी से बचाने में बहुत सहायक होते थे।

इन जीवो की बनावट कीचड मे रहने योग्य नही थी, इसी लिए दलदल के युग मे तो इनकी वद्धि नही हुई लेकिन जैसे ही दलदल सूखे और ससार को हिम-युग ने घेर लिया वैसे ही इन छोटे जीवो के लिए भी विकास करने का स्वर्णयुग आ गया। अभी तक ससार में कही भोजन की कमी न थी और काहिल से काहिल जीवो को भी प्रचुर मात्रा में भोजन मिल जाता था लेकिन हिम-युग मे आवृत हो जाने पर जब बर्फीली आँधियो मे गरम प्रान्तो तक की वनस्पति नष्ट हो गयी और बडे-बडे काहिल सरीसृप भूख से तडप-तडपकर मर गये तो इन नये जीवो ने अनुकूल अवसर पाकर बहुत तेजी से अपना विकास किया। आगे चलकर इन्ही जीवो का पृथ्वी पर राज्य स्थापित हुआ और ये ही जीव स्तनप्राणियो के नाम से प्रसिद्ध हुए।
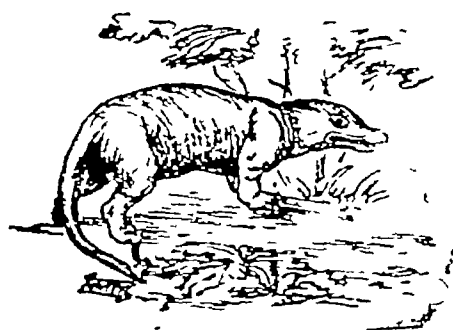
प्रारंभिक स्तनपायी जीव

ये प्रारभिक स्तनपायी जीव कई बातो मे अन्य जीवो से अधिक विकसित थे।

ये गर्म खूनवाले जीव थे जिनके शरीर पर बाल घने थे और जिनका मस्तिष्क भी अन्य जीवों मे अधिक विकसित था। इन सब गुणो के अलावा इन जीवों ने अपने मे एक विकास यह भी किया कि ये अपने भ्रूण को अपने शरीर के भीतर ही रखन लगे और अण्डे के स्थान पर बच्चे जनने लगे। डक-बिल्ड प्लैटिपस तथा एकिडना को छोडकर बाकी सब स्तनप्राणी अण्डे की जगह बच्चे जनते है। ये जीव अपने स्तनो मे अपने शिशुओ को दूध पिलाते थे जिससे इनका स्तनपायी जीव कहा जाने लगा। यह एक ऐसी सुविधा थी जिसके कारण इनको इधर-उधर आने-जाने मे बहुत आसानी हो गयी और इन्हे चिडियो की तरह अपने बच्चोंके भोजन की तलाश मे इधर उधर दौड-धूप करने से छुट्टी मिल गयी।

एकिडना तथा डकबिल्ड प्लैटिपस

सरीसृपो का शासनकाल समाप्त हो जाने पर पृथ्वी पर स्तनप्राणियो का राज्य आरम्भ हुआ। ससार की आबोहवा मे बदलाव हो जाने के कारण मैदानो और पहाडो पर नये-नये किस्म के पेड-पौधे उगने लगे थे जो गरम जलवायु के अनुकूल थे। चारो ओर की भूमि भी घास से ढक गयी थी और सब तरफ फिर वानस्पतिक भोजन की प्रचुरता हो गयी थी लेकिन यह शाकाहारी भोजन इन प्रारम्भिक स्तनप्राणियो के लिए बेकार ही था क्योकि वे सब मासाहारी जीव थे। प्रारम्भ में तो ये अपना पेट कीडे-मकोडो आदि से भर लेने लगे जो उस समय चारो ओर काफी सख्या में फैले हुए थे। लेकिन यह क्रम अधिक दिन तक तो चलनेवाला था नही, इससे कुछ ही समय में इनमे से कुछ ने विवश होकर शाक-पात मे अपना पेट भरना आरम्भ कर दिया और इस प्रकार ये शाकाहारी तथा मासाहारी इन दो श्रेणियो मे विभक्त हो गये। मासाहारी श्रेणी के जीव शाकाहार से अपना पेट भरने मे असमर्थ थे अत वे शाकाहारियो के मास मे उस कमी को पूरा करने लगे और इस प्रकार एक के विनाश मे दूसरे की रक्षा का क्रम चलने लगा जो प्रकृति के सतुलन मे बहुत सहायक हुआ।

स्तनपायी जीव, जिनकी एक शाखा मे मनुष्य भी है, आज भी सारे भूमडल पर अपना राज्य कायम किये हुए है। इनको विद्वानो ने दस वर्गो मे विभाजित किया है जिनमे अधिक सख्या उन्ही की है जो स्थल पर रहते है। इनमे कुछ ऐसे भी

है जो अपना सारा समय जल मे बिताते हैं और कुछ ने आकाश मे चिडियो की तरह उडने का अभ्यास कर लिया है लेकिन इनमे सबसे विकसित तो मनुष्य ही है जिसने अपने मस्तिष्क का अद्भुत विकास करके जल-थल-आकाश तीनो को अपने अधीन कर लिया है।

अन्य स्तनप्राणियो के बारे मे हम इस पुस्तक मे आगे पढेगे ही लेकिन मानव के विकास की कथा यहाँ सक्षेप मे देना अनुचित न होगा, क्योकि यह केवल अपने मस्तिष्क के विकसित हो जाने के कारण ही आज भूमडल का स्वामी नही बन बैठा है वरन् उसे इस पद पर पहुँचने के लिए घोर सघर्ष भी करना पडा है।

पृथ्वी पर स्तनप्राणियो का आधिपत्य कायम हो जाने के बाद भी कुछ समय तक यह अनिश्चित ही रहा कि उसकी कौन-सी शाखा के हाथ मे ससार का शासन-सूत्र रहेगा। जिस प्रकार भोजन की सहूलियत के कारण भीमकाय सरीसृपो का विकास हुआ था उसी प्रकार स्तनप्राणियो मे भी मम्मथ (Mammoth) आदि कुछ विशाल शरीरवाले जीव जरूर विकसित हुए लेकिन स्तनप्राणियो की जिस शाखा से मनुष्यो का विकास हुआ वे बहुत छोटे कद के जीव थे। इन जीवो का शरीर छोटा और लम्बा था और उनके पैर भी छोटे ही छोटे थे। ये छोटे कद के जीव तेज भागने और पेडो पर चलने मे बहुत उस्ताद थे। धीरे-धीरे इन्ही जीवो से विकसित होकर लेमूर (Lemur), बन्दर, वनमानुष तथा मनुष्यो की शाखाएँ निकली जिनके विकास और अनवरत सघर्ष मे लगभग पाँच करोड वर्ष लग गये।

हमारे ये पूर्वज अकारण ही पृथ्वी के स्वामी नही बन गये बल्कि उनमे अन्य जीवो की अपेक्षा कुछ ऐसी विशेषताएँ थी जो उनकी उन्नति मे बहुत सहायक हुई। पहले तो उनके चारो पैरो मे से अगले दोनो पैर धीरे-धीरे हाथो मे बदले गये जिनके सहारे वे पेडो की डालियो को पकडकर उन पर आसानी से चढने उतरने लगे। उनके हाथ, और विशेषकर उनकी उँगलियाँ, उनके सबसे आवश्यक अग बने जिनकी सहायता से वे इतनी शीघ्रता से अपनी उन्नति करने में समर्थ हो सके।

पेडो पर अधिक समय बिताने के कारण इन जीवो की दृष्टि भी बहुत विकसित हुई क्योकि एक डाल पर से दूसरी डाल पर कूदकर जाते समय यदि इनकी निगाह जरा भी चूकती तो ये पेड के नीचे हो दिखाई देते। लेकिन इन सबके अलावा इनको इस पद पर पहुँचाने मे जिसने सबसे अधिक इनकी सहायता की वह था इनका

अद्भूत मस्तिष्क, जिसके द्वारा ये धीरे-धीरे सब पशुओ से अधिक बुद्धिमान होकर उनके स्वामी बन गये।

जिस समय ये जीव अपने विकास के लिए घोर सघर्ष कर रहे थे उसी समय उत्तर की ओर से बर्फ पिघलकर दक्षिण की ओर बढने लगी और एक बार फिर सारी पृथ्वी को हिम-युग ने घेर लिया। बडे-बडे जगल बर्फीली हवाओ के कारण सूख गये और सारे जीवधारियो के सम्मुख बडा सकट उपस्थित हो गया। पेडो पर रहनेवाले जीवो के सामने तो और भी कठिन समस्या उत्पन्न हो गयी क्योकि सर्दी के कारण सारे पेड सूखते जा रहे थे। ऐसे आपत्काल मे जो जीव पेडो पर से उतरकर जमीन पर चलने मे समर्थ हुआ वही अपने को उस हिमयुग मे बचा पाया और वह प्राणी था "मनुष्य" जो भविष्य मे सारी पृथ्वी का स्वामी होने जा रहा था। उसने पृथ्वी पर सीधे खडे होकर अपनी जान ही नही बचायी बल्कि सारी वसुन्धरा को अपने अधीन भी कर लिया।

मनुष्य अन्य जीवो से अधिक बलवान क्यो हो गया इसका उत्तर देना कठिन नही है। उसने अपने मस्तिष्क से सारे जीव-जन्तुओ को ही नही, प्रकृति को भी अपनी दासी बना लिया है। उसके न तो शेर की तरह पजे है और न साँपो की तरह विष-दत ही लेकिन आज वह किसी जीव से नही डरता। वह पख न रहते हुए भी आकाश मे चिडियो की तरह उडता है और बिना सुफनो के ही मछलियो की तरह पानी के भीतर आ-जा सकता है। वह अपने बुद्धि-बल से नित्य नये-नये आविष्कार करता है जिसके कारण आज उसे प्रकृति के ऊपर निर्भर रहने की आवश्यकता नही रह गयी है। अब उसमे अपनी नयी दुनिया अपने हाथो बनाने की क्षमता आगयी है और वह शीघ्र ही चद्रलोक मे अपना उपनिवेश बनाने जा रहा है।

पेडो मे उतरकर पृथ्वी पर आने के समय से लेकर लगभग ७ करोड वर्ष पूर्व तक मनुष्य को अपना अस्तित्व कायम रखने के लिए बहुत सघर्ष करना पडा। इस लम्बे काल मे पृथ्वी पर चार बार हिमयुग आया और लगभग सारी पृथ्वी हिम मे आच्छादित हो गयी। लेकिन मनुष्य ने किसी न किसी प्रकार हर बार शीत के इन आक्रमणो मे अपनी रक्षा कर ली। उसने हिमयुग मे फल-फूल के अभाव मे मास खाना प्रारम्भ किया और अन्य जीवो का शिकार करने के लिए लाठी और पत्थरो का सहारा लिया।

इस नये भोजन से उसे जगलो पर निर्भर रहने की आवश्यकता न रह गयी और वह जगलो को छोडकर मैदानो में चला आया, जहाँ उसे गाय-बैल, घोडे, सुअर आदि जानवर काफी सख्या मे मिल जाते थे। उसने अपनी लाठी मे नोकीले पत्थर लगाकर वरछे का स्वरूप दिया जिससे उसे शिकार करने में और भी ज्यादा सहूलियत हो गयी। इसी समय उसने एक साहसपूर्ण कार्य यह किया कि आग को अपने वश में कर लिया जो उसकी उन्नति मे विशेष रूप से सहायक सिद्ध हुई और जिससे उसे अपनी रक्षा का एक वडा साधन मिल गया। इस काल को हम मानव का पूर्वप्रस्तर-काल (Old Stone Age) कहते हैं और इसका समय २५,००० ईसवी पूर्व से १५,००० ईसवी पूर्व तक मानते हैं।

इस पूर्व-प्रस्तर-काल मे मनुष्य अपनी जगली अवस्था मे ही था और वह गरोह बाँध कर जगलो में इधर-उधर शिकार करता फिरता था। उसने अपने कार्यो का आपस मे बँटवारा कर लिया था जिससे कुछ के जिम्मे शिकार करने का भार पड गया था, तो कुछ मारे हुए शिकार की खाल वगैरह साफ किया करते थे। उनमे कुछ ऐसे भी थे जिन्होंने अपने रहने के लिए झोपडियाँ आदि वनाने का काम पसन्द किया था और कुछ अपने गरोह की रक्षा के लिये सदैव युद्ध के लिए तत्पर रहते थे। इस प्रकार कार्य-विभाजन हो जाने से प्रत्येक गरोह मे भिन्न-भिन्न कार्यो के लिए अलग-अलग लोग नियुक्त हो गये जिससे आगे चल कर उनमे जात-पात की शुरूआत होने लगी। फिर भी इस काल में हम "मानव" को एक शिकारी के रूप मे ही देखते हैं।

इसके पश्चात् नवीन-प्रस्तर-काल (New Stone Age) प्रारम्भ होता है। मनुष्य ने इस काल मे अपनी और अधिक उन्नति कर ली थी और उसने बीज वोकर खेती करना सीख लिया था। इसीलिए इस काल का मानव हमे कृषक के रूप मे दिखाई पडता है। खेती के कारण उसे इधर-उधर घूमना छोडकर एक स्थान पर वस जाना पडा और इस प्रकार ग्रामो के निर्माण का श्रीगणेश हुआ।

इस नवीन प्रस्तर काल मे मनुष्य ने अपना शिकारी वाना उतारकर किसान का रूप धारण किया और जानवरो का शिकार करने की जगह वह उनको पालतू करने लगा। ये पालतू पशु उसकी रक्षा, भोजन तथा सवारी के काम आने लगे और उनसे उसे वहुत सहूलियत हो गयी। इस अवस्था पर पहुँचकर उसने आराम की साँस ली क्योंकि अव उसे न तो शत्रुओं का उतना डर सताता था और न भूखे मरने की ही आशंका रह गयी थी। अव वह अपने अवकाश का समय वर्तन, ऊनी कपडे

तथा चित्रादि बनाने मे विताने लगा। उसने आग की मदद से खाना पकाना भी सीख लिया और धीरे-धीरे अपनी वृद्धि के सहारे और भी अनेक आविष्कार किये जो उसकी उन्नति ये सहायक हुए। यह काल १५,००० ई पू से ३,००० ई पू तक का माना जाता है।

मनुष्य मे अपनी रक्षा के लिए गरोह बाँधकर रहने की भावना पहले से ही थी और वह प्रारम्भ से ही हमे एक सामाजिक प्राणी के रूप मे मिलता है। समाज मे रहने की भावना ने ही आज उसको इस उच्च पद पर पहुँचा दिया है और इसमे तनिक भी सन्देह नही है कि यदि वह समाज न बनाता तो उसकी रक्षा कदापि न हो पाती। इसी से यह कथन निर्मूल नही है कि समाज ने मानव को बनाया है, मानव ने समाज को नही।

नवीन-प्रस्तर-काल के वाद कास-काल (Bronze Age) प्रारम्भ हुआ, जिसमे मनुष्य ने और भी अधिक उन्नति की। उसने पत्थर के स्थान पर काँसे के हथियार बनाने का मार्ग ढूंढ निकाला और अब वह पक्के मकान और पुल आदि बनाकर वडे-वडे गाँवो को नगरो मे परिवर्तित करने लगा। उसने अपनी उन्नति के लिए अनेक नये-नये आविष्कार किये जिनमे पहिये का आविष्कार सबसे महत्त्वपूर्ण था। इस आविष्कार ने उसकी उन्नति मे चार चाँद लगा दिये क्योकि उसकी मदद से वह गाडी आदि बनाने लगा जिससे उसे यातायात की सुविधा हो गयी।

इसी समय मनुष्य ने उन्नति की ओर एक और वडा कदम वढाया। उसने लिपि और वर्णमाला का निर्माण किया जिससे उसका ज्ञान आनेवाली पीढी के लिए सुरक्षित रहने लगा। इसके कुछ समय वाद अर्थात् आज से लगभग तीन, सवा तीन हजार वर्ष पहले उसने लोहे का पता लगाया जो उसके हथियारो के लिए काँसे से अधिक कठोर और उपयुक्त था और जिसके मिलने मे भी उतनी कठिनाई नही होती थी। इस आविष्कार के वाद से ही वर्तमान-लौहकाल प्रारम्भ होता है जो अभी तक चला जा रहा है। इस प्रकार जीवधारियो का यह लम्वा मार्ग समाप्त होता है जिसके एक छोर पर जीवपक (अमीवा) तथा दूसरे छोर पर मनुष्य खडा है।

उस एक-कोशीय-जीव के उद्भव तथा क्रमिक विकास द्वारा किस प्रकार वडे-वडे नगर वस गये इसका सक्षिप्त वर्णन ऊपर दिया जा चुका है। जीवो का यह लम्वा इतिहास वैसे तो क्रमवद्ध-सा जान पडता है लेकिन इस शृखला की कडियाँ वीच-वीच मे ऐसी टूटी है कि उनके जुडने मे लाखो वर्ष लग गये है। लेकिन

यह विशृखलता हमे इसलिए नही खटकती कि हम लोग इतने लम्बे समय की सहसा कल्पना ही नही कर पाते । हमको एक लाख और दस लाख वर्षों मे कोई विशेष अन्तर नही जान पडता। लेकिन यदि हम इस प्रकार के समय-विभाजन के लिए घडी के डायल की मदद ले तो हमे इसे समझने मे बहुत आसानी हो जावेगी।

थोडी देर के लिए मान लीजिए कि वह समय जब से पृथ्वी पर जीवो का प्रादुर्भाव हुआ हमारी घडी के डायल के रूप मे हमारे सामने है जो बारह घटो की तरह बारह हिस्सो मे विभाजित कर दिया गया है। अब हम जीवधारियो के विकास का समय निर्धारित करने चल रहे है। घडी मे बारह से छ बजे तक के समय मे अर्थात् आधे समय मे जीवो का कैसे विकास हुआ इसका कुछ हाल अभी तक जाना नही जा सका है। उस समय जीवो का क्या स्वरूप था और उनके विकास की क्या अवस्था थी, यह सब एकदम अन्धकार के गर्भ मे है। इस काल को जीव का प्रारम्भिक काल (Proterozoic Age) कहा जाता है।

इसके बाद ६ से ७ बजे तक का समय जीव का पूर्व-आदि-काल (Early Palaeozoic Age) कहलाता है, जो जीव-जन्तुओ के प्रादुर्भाव का प्रथम अध्याय कहा जा सकता है। इस समय तक पशुओ का पृथ्वी पर कही नाम निशान भी नही था।

फिर ७ बजे से ९ बजे तक का समय अन्तिम-आदि-काल (Later Palaeozoic Age) के नाम से पुकारा जाता है। इस काल मे कुछ प्राणियो मे रीढ की हड्डी का विकास हो गया था। मछलियाँ समुद्रो मे घूमने-फिरने लगी थी और धीरे-धीरे भूमि पर भी जीवो का आक्रमण शुरु हो गया था। उभयचरो के लिए यह समय बहुत अनुकूल था। इस काल के समाप्त होते-होते कुछ सरीसृप भी पृथ्वी पर दिखाई पडने लगे थे। लेकिन उस समय पृथ्वी की क्या अवस्था रही होगी जरा इसकी तो कल्पना कीजिए। सारा समुद्री-तट दलदलो से भरा रहा होगा और स्थान-स्थान पर ज्वालामुखी के उद्गारो से सारा वायुमडल भाप से आच्छादित हो गया होगा। रह रहकर तूफान और भूकम्प पृथ्वी को कँपाते रहे होगे और अनवरत मूसलाधार वर्षा से पृथ्वी ओत-प्रोत हो गयी होगी। ऐसे समय मे कुछ जीवधारी पानी से निकलकर सूखे पर जरूर आने लगे होगे लेकिन पानी से ज्यादा दूर जाने का साहस उनमे न रहा होगा। वे किनारे ही घूम-फिरकर फिर पानी मे लौट जाते रहे होगे और उन्होने अपना सम्बन्ध पानी से न छोडा होगा।

इसके वाद मध्य-जीव-काल (Mesozoic Age) आता है जिसका समय ९ से ११ बजे तक का माना गया है। इस काल को हम सरीसृपों का स्वर्णकाल कह सकते है क्योकि इस काल में सरीसृपो ने सारी पृथ्वी पर अपना आधिपत्य कायम कर लिया था। वडे-वडे भीमकाय डाइनासोर (Dinosourus) सारी पृथ्वी पर स्वच्छन्द घूमा करते थे और चमगादड की तरह पखवाले टेरोडेक्टल या पत्रागुष्ठ (Pterodactyls) आकाश मे इधर-उधर उडा करते थे। यही नही, इस काल की समाप्ति तक कुछ पशुओ के अनुरूप सरीसृप भी कही-कही दिखाई पडने लगे थे जिनसे विकसित होकर हमारे आजकल के सरीसृपो का वश चला है। इस काल के समाप्त होते-होते हमारी पृथ्वी पर से उन स्थूलकाय सरीसृपो का भी नाश हो गया जिनके चलने से भूमि काँपती थी।
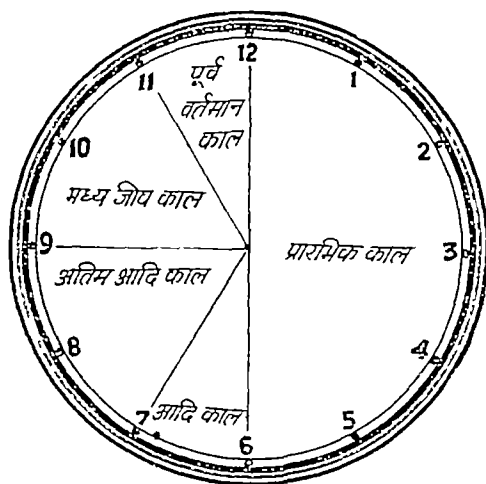
इसके वाद ११ वजे मे १२ वजे का जो अन्तिम समय रह गया है वही हमारा वर्तमान-काल (Cainozoic Age) है। इस काल में पृथ्वी पर पशु-पक्षियो का जन्म हो गया था और इसी समय मे अर्थात सुई के वारह तक पहुँचने से पहले मनुष्यों का भी जन्म और विकास हो गया जिसने अपने वुद्धिवल से सारी पृथ्वी को अपने अधीन कर लिया है।

यह तो हम पहले ही बता आये हैं कि जब हमारी पृथ्वी ने सूर्य से अलग होकर अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित की तो वह गैसीय अवस्था मे थी। लेकिन धीरे-धीरे उसका शरीर ठोस होने लगा और उस पर इतिहास के अनेक चिह्न अंकित होने लगे।

आदिकाल मे पृथ्वी पर जीवन का कोई चिह्न नही था। कही ज्वालामुखी तप्त वाष्प का फुफकार छोड रहा था तो कही भूकम्प उसे रह रह कर कँपा रहे थे। लगभग एक अरब वर्षो तक प्राणहीन पदार्थो की यह उथल-पुथल चलती रही लेकिन जब अशान्त आदिकाल की यह उलट पलट कुछ कम हुई तो उस विराट् जीवहीनता के बीच प्राण और मन का प्रादुर्भाव हुआ।

प्राणलोक मे यह प्रारम्भिक जीवाणु, एककोशीय जीव के रूप मे दिखाई पडा। इसके बाद सघबद्ध होकर ये अनेक कोशीय जीवो के रूप में विकसित हुए। वैसे तो इन जीवो का प्रत्येक कोश सम्पूर्ण और स्वतन्त्र है और उनमे से प्रत्येक की अपनी एक अलग सत्ता और शक्ति है, फिर भी जब तक ये सयुक्त होकर किसी की देह का निर्माण करते है तब तक उससे पृथक न होकर उसी के सरक्षण मे लगे रहते है।

यहाँ हम सक्षेप मे जड और जीव का भेद समझ लें तो हमे आगे बहुत आसानी हो जायगी। जीवो का शरीर, कोश तथा कोश-समूह का एक सकलन है जिनकी एक निश्चित आकृति होती है। अमीबा (Amoeba) आदि कुछ जीव इसके अपवाद अवश्य है लेकिन ये प्रारम्भिक जीव है और इनकी सख्या थोडी ही है।

जीव अपनी वृद्धि के लिए भोजन करते है और मल को त्याग देते है। वे साँस लेते है और खाद्य पदार्थ तथा प्राण-वायु की हलकी आँच मे जलने से शक्ति प्राप्त करते है जिससे उनमें गति होती है।

जीव सन्तानोत्पत्ति कर सकते है और उनकी वृद्धावस्था हो जाने पर मृत्यु होती है।

सजीवो के जो लक्षण ऊपर दिये गये है उनमे युक्त होने पर भी हम उन्हे दो मुख्य भागो मे विभक्त कर सकते है। १ जीव-जन्तु (Animals) तथा २ पेड-पौधे (Plants)।

इन दोनो अर्थात् जीव-जन्तुओ तथा पेड-पौधो की आकृति मे तो भिन्नता है ही, इनकी आन्तरिक रचना मे भी बहुत अन्तर रहता है। पेड-पौधो मे जीव-जन्तुओ की तरह मस्तिष्क तथा हृदय आदि अग नही होते और उनकी गति भी बहुत सीमित

रहती है। वे जीवजतुओ की तरह एक स्थान से दूसरे स्थान तक नही आ-जा सकते और एक ही स्थान पर रहकर बढते रहते हैं।

जीव-जन्तु ठोस और द्रव पदार्थ को भोजन के रूप में ग्रहण करते है किन्तु पेड-पौधे ठोस भोजन नही ग्रहण कर सकते ।

जीव-जन्तु और पेड-पौधो के कोशो में बहुत भेद रहता है। जीव-जन्तुओ के कोशो मे भित्ति का अभाव रहता है और उनमे पर्णहरित (Chlorophyll) नही होता लेकिन पेड-पौधो के कोशो मे सेल्यूलोस (Cellulose) नामक पदार्थ से निर्मित एक कोश-भित्ति होती है और उनमे पर्णहरित रहता है जो उनके हरे रग के लिए उत्तरदायी है।

अणुवीक्षण-यत्र की सहायता से हम इन आश्चयजनक जीव-कोशो को देख सकते है जिनकी समष्टि से एक एक देह निर्मित हुई है। ये कोश, देहरूपी गृह की एक-एक ईटें है जो एक-दूसरे से चारो ओर से जुटी रहती है। प्रत्येक कोश के चारो ओर कोश-भित्ति रहती है जो कोश के भीतर की वस्तुओ की रक्षा करती हुई एक कोश को दूसरे से अलग रखती है। प्रत्येक कोश के भीतर जीवन-रस भरा रहता है।

प्रत्येक कोश वास्तव में जीवधारियो के शरीर की इकाई है जो एक दूसरे के सहयोग से काम करते है। इनमे भिन्न-भिन्न कार्यो के लिए भिन्न-भिन्न कोश तो होते ही है, साथ ही साथ भिन्न-भिन्न वर्गो या वर्गो के कोश-समूह भी विशेष ढग के होते है।

जीवन-मूल या जीवन-रस जो प्रत्येक कोश मे भरा रहता है एक प्रकार का गाढा और चिपचिपा-सा पदार्थ है जिसमे ९० प्रतिशत पानी और शेष भाग में प्रोटीन, गधक तथा फास्फोरस आदि पदार्थ रहते है। यदि कोश का पानी का भाग निकाल दिया जाता है तो उसकी जीवन क्रियाएँ समाप्त हो जाती है। इससे यह स्पष्ट है कि पानी प्रत्येक प्रकार के जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक वस्तु है।

कोशो के विभाजन का ढग भी कम आश्चर्यजनक नही होता। जब इन कोशो की वृद्धि हो जाती है तो वे दो कोशो मे विभाजित हो जाते है और अपनी अलग-अलग स्वतन्त्र सत्ता कायम कर लेते है। इस प्रकार इनकी सख्या बढती रहती है। यह कोश-विभाजन दो प्रकार का होता है। एक परोक्ष कोश-विभाजन कहलाता है और दूसरा प्रत्यक्ष कोश-विभाजन।

परोक्ष कोश-विभाजन में अमीवा की तरह जीव का शरीर बढकर दो हिस्सों मे बँट जाता है और दोनो सम भाग दो स्वतन्त्र जीव हो जाते हैं लेकिन प्रत्यक्ष कोश-विभाजन मे किसी जीव का कोई विशिष्ट कोश जो सतानोत्पादक-कोश कहलाता है उसके शरीर मे निकल पडता है और धीरे-धीरे बढकर नये जीव की सृष्टि करता है। यह अलैंगिक-सन्तानोत्पत्ति भी कहलाती है।

लेकिन जब नर और मादा के शरीर से दो प्रकार के सन्तानोत्पादक-कोश निकलकर अथवा मादा के शरीर के भीतर मिलकर एक सयुक्त-कोश बनाते हैं और यह सयुक्त-कोश जब वृद्धि के उपरान्त एक नये जीव के रूप मे परिवर्तित हो जाता है तो हम उसे लैंगिक-सतानोत्पत्ति कहते हैं। प्राय सभी स्तनप्राणियो की सतानोत्पत्ति इसी प्रकार की होती है।

यह तो हुआ कोश-विभाजन तथा जीवो की सतानोत्पत्ति का सक्षिप्त विवरण। अब उनके वर्गीकरण के बारे मे भी कुछ जान लेना आवश्यक है। जीवो के अध्ययन में सुगमता लाने के लिए वैज्ञानिको ने बडे परिश्रम से उनका वर्गीकरण किया है। जीवो का वर्गीकरण करते समय उनकी शरीर-रचना, उनका व्यवहार तथा उनके विशेष गुणो को ध्यान मे रखकर ही उन्होने इस जीव-जगत को अनेक विभागो Phylums मे बाँटा है। ये विभाग फिर श्रेणियो Classes में विभक्त किये गये हैं, और श्रेणियाँ भी वर्गो Orders मे बाँटी गयी हैं। वर्ग फिर परिवारो Families में और परिवार वशो Genuses में विभक्त किये गये हैं। वशो को भी सुविधा के लिए जातियो Species मे बाँटा गया है और कही-कही वर्गों और परिवारो की अधिकता देखकर उन्हे समुदायो Divisions और समूहो Groups के अन्तर्गत रखना पडा है अत जीव-विज्ञान के अध्ययन के समय हमे विभाग, श्रेणी, वर्ग, परिवार, वश तथा जाति के वही अर्थ समझने चाहिए जो क्रम मे ऊपर समझाये गये हैं।

इस प्रकार के वर्गीकरण मे दो लाभ हैं। इससे पहले तो हमे जीवो के अध्ययन मे आसानी हो जाती है, दूसरे प्रत्येक जीव का एक निश्चित वैज्ञानिक नाम तै हो जाता है जो सब देशो और सब भाषाओ के लिए एक समान रहता है। ससार के सब वैज्ञानिक उसी नाम को प्रयोग मे लाते हैं। हम बिल्ली को बिल्ली कहते हैं। अग्रेजी मे उसे (Cat) कैट कहा जाता है। सस्कृत मे वह मार्जारी, फारसी मे शा

और जर्मन भाषा में कात्शे कहलाती है लेकिन जीव-जगत के वर्गीकरण में उसका नाम फेलिस डोमेस्टिकस (Felis domısticus) ही रहेगा और इसी वैज्ञानिक या लैटिन नाम को हम सब भाषाओं मे घरेलू बिल्ली के लिए इस्तेमाल करेंगे। नीचे इसका वश-वृक्ष दिया जा रहा है जिससे हम उसके बारे मे सब बातें एक नजर मे जान सकते है—

जीव-जगत

(ANIMAL KINGDOM)

उप-जगत Sub Kingdom	मेरुदडीय Vertebrata
विभाग Phylum	मेरुपृष्ठीय Chordeta
श्रेणी Class	स्तनप्राणी Mammalia
वर्ग Order	मासभक्षी Carnivora
परिवार Family	बिल्ली Felidae
वश Genus	बिल्ली Felis
जाति Species	घरेलू-बिल्ली Felis domesticus

इस प्रकार हमारी घरेलू बिल्ली, इस विशाल जीव-जगत के, मेरुदडीय-उपजगत के, मेरुपृष्ठीय-विभाग के, स्तनप्राणी-श्रेणी के, मासभक्षी-वर्ग के, बिल्ली परिवार के, बिल्ली-वश की घरेलू-जाति की बिल्ली हुई। और उसका नाम हुआ घरेलू बिल्ली अर्थात् **फेलिस डोमेस्टिकस।**

इसी प्रकार सारे जीव-जगत के प्रत्येक प्राणी का अलग-अलग वैज्ञानिक नाम है और प्रत्येक का इसी प्रकार वश-वृक्ष बन सकता है लेकिन स्थानाभाव से उसका देना यहाँ सभव नही है, फिर भी हमारा जीव-जगत मोटे तौर पर किस प्रकार विभागो और श्रेणियो मे विभाजित किया गया है वह नीचे दिया जा रहा है।

सारे जीव-जगत को विद्वानो ने दो उप-जगतो में विभक्त किया है—

१ अमेरुदडीय उप-जगत।

२ मेरुदडीय उप-जगत

पहले अमेरुदडीय उप-जगत लिया गया है, उसके बाद मेरुदडीय उप-जगत।

१. अमेरुदंडीय उप-जगत

(SUB KINGDOM INVERTEBRATA)

१ प्रजीव विभाग

इस विभाग मे कामरूपी या अमीवा आदि उन एक-कोशीय जीवो को रखा गया है, जो पानी में अथवा अन्य जीवो के शरीर मे परोपजीवी होकर रहते है। इनकी लगभग १०,००० जातियाँ ससार मे पायी जाती है।

२. छिद्रिष्ठ जीव विभाग

इस विभाग में सब प्रकार के स्पज एकत्र किये गये है, जिनके शरीर मे पानी के आयात-निर्यात के लिए अनेक छिद्र रहते है। इनकी लगभग २५,००० जातियाँ समुद्रो में पायी जाती है।

३. सुषिरान्त्रीय जीव विभाग

इस विभाग में हाइड्रा, प्रवाल, अनिलपुष्प आदि वे बहुकोशीय समुद्री जीव है जिनके अनेक कोश मिलकर उनके एक-एक अग का निर्माण करते है। इनकी लगभग ७,००० जातियाँ समुद्रो में पायी जाती है।

कृमि-समूह (Group Vermes) यह समूह तीन विभागो मे बाँटा गया है।

४ गडूपदजीव विभाग

इस विभाग मे जोक (जलौका) आदि जीव है जिनकी लगभग ४,००० जातियाँ सारी पृथ्वी पर पायी जाती है।

५ चिपिट-कृमि विभाग

इस विभाग मे कद्दूदाना आदि जीव है, जिनकी लगभग ४,५०० जातियाँ ससारभर में पायी जाती है।

६ सूत्र-कृमि विभाग

इस विभाग में सब प्रकार के सूत्र-कृमि इकट्ठा किये गये है जिनकी पृथ्वी पर लगभग १,६०० जातियाँ पायी जाती है।

७ कंटकित-त्वचजीव विभाग

इस विभाग मे तारामछली, जल्माही आदि जीव रखे गये है जिनके शरीर की

काँटेदार खाल होती है और जो प्राय समुद्र के ही निवासी है। इनकी लगभग १०,००० जातियाँ समुद्रो मे पायी जाती है।

८ कोशस्थजीव विभाग

इस विभाग में सीपी, घोघे और शख आदि जीव है जिनका कोमल शरीर कडे खोल के अन्दर सुरक्षित रहता है। इनकी लगभग ६१,००० जातियाँ सारे ससार मे पायी जाती हैं।

९ सधिपादजीव विभाग

इस वडे विभाग मे सब प्रकार के कीट-पतग और शतपदी, सहस्रपदी, बिच्छू तथा मकडियाँ एकत्र की गयी है। इनकी ससारभर मे लगभग ५,७५,००० जातियो का अभी तक पता चल सका है।

२ मेरुदडीय उप-जगत

(SUB KINGDOM VERTEBRATA)

१ मेरुपृष्ठीय-जीव विभाग

इस विभाग मे ऐसे जीव इकट्ठे किये गये है जिनके शरीर मे मेरुदड (रीढ की हड्डी) या नोटोकार्ड रहता है। यह विभाग निम्न लिखित पाँच श्रेणियो मे विभाजित किया गया है।

(क) मत्स्य-श्रेणी (कोमलास्थि तथा दृढास्थिमत्स्य श्रेणियाँ)

इन दोनो श्रेणियो मे क्रमश कोमलास्थि तथा दृढास्थि मछलियाँ एकत्र की गयी है जिनसे हम सभी परिचित है। इनकी लगभग २०,००० हजार जातियाँ सारे ससार मे पायी जाती है।

(ख) उभयचर-श्रेणी

इस श्रेणी मे मेढक आदि उभयचर है, जो जल और थल दोनो मे रह लेते है। इनकी लगभग १,८०० जातियाँ ससारभर मे पायी जाती है।

(ग) सरीसृप-श्रेणी

इस श्रेणी मे साँप, कछुए, मगर, छिपकली आदि रेगनेवाले जीव रखे गये है जिनकी लगभग ५,००० जातियाँ पृथ्वी पर पायी जाती है।

(घ) **पक्षि-श्रेणी**

इस श्रेणी में सब प्रकार के पक्षी रखे गये हैं, जो आकाश मे उडनें के कारण अन्य सब जीवो से भिन्न हैं। इनकी लगभग २०,००० जातियाँ सारे ससार मे फैली हुई हैं।

(ङ) **स्तनप्राणी-श्रेणी**

यह अतिम श्रेणी स्तनपायी जीवो की है, जिसमें सब तरह के जानवरो को इकट्ठा किया गया है। इनकी लगभग ७,००० जातियाँ हमारी पृथ्वी पर पायी जाती हैं।

इस प्रकार हमारा यह जीव-जगत असख्य जीवो से परिपूर्ण है जिनके सवेदनशील जीवकोशो के समूह, उनकी देह-क्रिया का ऐसा आश्चर्यजनक कर्तव्य विभाग कर रहे है कि सहसा उस पर विश्वास नही होता। शरीर के पाकयत्र के जीवकोश एक तरह का काम करते है, तो मस्तिष्क के जीवकोश दूसरी तरह का। लेकिन फिर भी सव जीवकोश एक ही जाति के हैं। किसकी आज्ञा से इनके कार्य का विभाजन किया गया है और किस अज्ञात शक्ति की प्रेरणा से देहरूपी यत्र को सुचारु रूप से चलाने के लिए इनका ऐसा अद्भुत सामजस्य सम्भव हुआ है, वहुत सोचने पर भी इसका कुछ कूल-किनारा नही मिलता। फिर भी इस जड जगत मे क्षुद्रतम जीवकोश को वाहन वनाकर चैतन्य का जो सूक्ष्म प्रकाश आलोकित हुआ है वह उस महाज्योति के अश के सिवा और कुछ नही है, जो सृष्टि के आदि मे भी वर्तमान था। उसी महा चैतन्य के रहस्योद्-घाटन के प्रयत्न मे आज का वैज्ञानिक लगा हुआ है। देखे उसे कव सफलता मिलती है।

कालाकाकर, उत्तर प्रदेश

सुरेशसिंह

सूची

जीव-जगत

(ANIMAL KINGDOM)

सूरज भगत परिवार	Family Petauristidae	६४०
सूरज भगत	Brown Flying Squirrel	६४०
मूस समूह	*Section Myomorpha*	६८२
मूस परिवार	Family Muridae	६४२
मूस उपपरिवार	Sub-family Murinae	६४२
काला चूहा	Black Rat	६४२
भूरा चूहा	Brown Rat	६४३
चुहिया	House Mouse	६४४
मूस	Field Mouse	६४५
घूंस	Bandicoot Rat	६४६
हिरनामूसा उपपरिवार	Sub-family Gerbillinae	६४७
हिरनामूसा	Indian Gerbille	६४७
साही समूह	*Section Hystricomorpha*	६४८
साही परिवार	Family Hystricidae	६४८
साही	Porcupine	६४८
द्विदन्त उपवर्ग	*Sub-order Duplicidentata*	६५०
खरगोश परिवार	Family Leporidae	६५०
खरगोश	Hare	६५०
रगदुनी परिवार	Family Ochotanidae	६५१
रगदुनी	Pika or Mouse Hare	६५२
मांसभक्षी वर्ग	*Order Carnivora*	६५३
बिल्ली उपवर्ग	*Sub-order Vera*	६५४
बिल्ली समूह	*Section Aeluroidea*	६५४
बिल्ली परिवार	Family Felidae	६५४
सिंह	Lion	६५५
बाघ	Tiger	६५६
तेंदुआ	Leopard	६५९
साह	Snow Leopard	६६०
लमचित्ता	Clouded Leopard	६६१
सिकमार	Marbled Cat	६६२

रंगीन चित्रों की सूची

वर्गीकरण

जीव-जगत मे वर्णित जीवो का वर्गीकरण करते ममय जो शब्द प्रयुक्त हुए है, वे पाठको की मुविधा के लिए क्रमानुमार नीचे दिये जा रहे हैं

जगत—Kingdom
उप-जगत—Sūb Kingdom
विभाग—Phylum
श्रेणी—Class
वर्ग—Order
परिवार—Family
वश—Genus
जाति—Species

ये श्रेणी, वर्ग, परिवार, वश तथा जाति भी कभी-कभी जीवो की अधिक मख्या हो जाने पर आसानी के लिए उप-श्रेणी, उप-वर्ग, उप-परिवार, उप-वश तथा उप-जातियो मे बाँट दिये जाते हैं जिममे पाठको को उनका वश-वृक्ष ममझने मे कठिनाई न हो। यही नही कही-कही उप-वर्गो के बडे हो जाने पर सुविधा के लिए उन्हे पहले समूहो (Sections) मे विभक्त करके तब परिवारो (Families) मे बाँटा गया है।

आशा है, पाठक इस पुस्तक को पढते ममय ऊपर के शब्दो का वही अर्थ लगायेंगे जो उनके वर्गीकरण के क्रम मे एक विशेष अर्थ के लिए प्रयुक्त हुए हैं।

जीव-जगत

भाग १

अमेरुदंडीय उपजगत

SUB KINGDOM INVERTEBRATA

खंड १

प्रजीव विभाग

(PHYLUM PROTOZOA)

जीव क्या है, उसके जीवन का आधार क्या है, और उसकी रचना किन पदार्थों से हुई है, इन जटिल प्रश्नो का पूर्णरूप से समाधान यद्यपि अभी नही हो सका है, फिर भी विश्व ने इस ओर काफी प्रगति कर ली है और धीरे-धीरे इस सबध मे हम काफी बातें जानने लगे है।

हमे विज्ञान की सहायता से यह ज्ञात हुआ है कि जीवन केवल प्रथमावलम्ब (Protoplasm) में रहता है जो एक गाढा-गाढा-सा, वर्णरहित पारभासी (Translucent) पदार्थ है और जो केवल नमी ही मे रह सकता है।

हमें विज्ञान से यह भी मालूम हुआ है कि ससार के समस्त प्राणी एक या असख्य जीवकोशो (Cells) के समूह है जो अपने कतिपय गुणो के कारण जीव कहलाते है और जड पदार्थो से पृथक माने जाते है।

इसलिए जीवो के बारे मे कुछ जानने से पहले हमे जड और जीव के भेद को भली भाँति समझ लेना चाहिए।

जीवो में कुछ ऐसे विशिष्ट गुण होते है जो जड या निर्जीव पदार्थों मे नही होते और इन्ही गुणो के कारण हम उनको जीव या चेतन प्राणी कहते है। ये निम्न प्रकार है—

१ प्रचलन २ उद्दीप्यता ३ श्वसन ४ पोषण ५ वृद्धि ६ उत्सर्जन ७. प्रजनन।

प्रत्येक जीव पर बाह्य प्रभाव का असर होता है और उसके कारण उसमे थोडा या बहुत परिवर्तन दिखाई पडता है जो उसमे उद्दीप्यता (Irritability) का गुण स्पष्ट करता है। ये प्रभाव गर्मी, सर्दी, प्रकाश तथा अन्य उद्दीपनो के द्वारा हो सकते है।

सभी जीव गतिशील होते है अर्थात् चलने-फिरने मे समर्थ होते है, लेकिन जड पदार्थ इससे सर्वथा वञ्चित रहते है। जीवो के इस प्रचलन (Locomotion) के गुण को हम भली भाँति जानते है।

सब जीवित प्राणी साँस लेते है। वे प्राणवायु (Oxygen) को अपने मे खीचते है और कार्बन डाई आक्साइड को वाहर निकाल देते है। उनकी यह श्वसन-क्रिया (respiration) उनका एक प्रसिद्ध गुण है।

सभी चेतन प्राणियो को अपना जीवन वनाये रखने के लिए आहार की आवश्यकता पडती है और वे भिन्न-भिन्न प्रकार के भोजनो से अपना पेट भरते है जिससे उनके शरीर का पोपण होता है। इस पोपण (Nutrition) के वारे मे हम सब भली भाँति जानते है जो जीवधारियो का एक मुख्य गुण है।

सभी सजीव प्राणियो मे अपनी वृद्धि की क्षमता होती है और उनका शरीर प्रौढावस्था प्राप्त होने तक वढता है। उनकी इस वृद्धि (growth) को हम सब स्पष्ट रूप से देख सकते है।

सभी जीव जिस प्रकार प्राणवायु (Oxygen) को अपने मे खीचकर गदी वायु को वाहर निकाल देते है, उसी प्रकार वे भोजन खाकर और पानी पीकर मल-मूत्र भी त्यागते है। उनके इस गुण को हम उत्सर्जन (excretion) कहते है।

अन्त मे जीवो का प्रजनन (reproduction) गुण आता है जो उनका महत्त्वपूर्ण गुण है। इस गुण के फलस्वरूप प्रत्येक प्राणी अपनी आकृति की सन्तान उत्पन्न करके अपनी वशवृद्धि कर सकता है, लेकिन जड पदार्थ ऐसा नही कर सकते।

ससार मे सबसे निम्नतर जीव प्रजीव (Protozoa) या एककोशीय प्राणी है जिनके शरीर की वनावट ससार के सभी प्राणियो से सरल और निम्नकोटि की कही जा सकती है।

इन निम्न जीवो को हम जीवधारियो का प्रारभिक स्वरूप कह सकते है। विकासवाद की सीढी पर जहाँ मनुष्य सबसे ऊँचे सिरे पर है वहाँ इन प्राणियो को हम सबसे निचली सीढी पर रख सकते है।

ये एककोशीय प्राणी पानी मे रहनेवाले वहुत ही सूक्ष्म जीव है जिन्हे विना किसी अणुवीक्षण यन्त्र के नही देखा जा सकता। हाँ, जब ये करोडो की सख्या मे एक साथ रहते है तो हमे पानी के रग मे कुछ तब्दीली जरूर दिखाई पडती है। यदि

इनका रग हरा हुआ तो पानी हरछोह-सा दिखता है और यदि ये रगीन न हुए तो ऐसा जान पडता है जैसे किसी ने पानी मे थोडा दूध मिला दिया हो ।

यदि हम किसी गढे के एक बूंद पानी को खुर्दबीन के नीचे रखकर देखे तो हमे दूसरी ही दुनिया दिखाई पडने लगती है। उसी एक बूंद जल मे असख्य जीव निर्भय इधर-उधर तैरते दिखाई पडते है जिन्हे हम बिना अणुवीक्षण यत्र के नही देख सकते ।

ये प्रजीव इतने निम्नतर होते हुए भी किसी जीवधारी से हीन नही कहे जा सकते। यद्यपि इनके भोजन करने, साँस लेने, चलने-फिरने तथा जीवन की अन्य क्रियाओ के लिए अलग-अलग अग नही होते, फिर भी प्रकृति ने इनको खाना खाने, मल त्याग करने और सतान-वृद्धि करने की सहूलियत दे रखी है। यही नही, ये दुश्मनो से अपनी रक्षा करने की भी क्षमता रखते है ।

जैसा ऊपर बता आया हूँ, ये एककोशीय प्राणी पानी या नम जगह मे ही रह सकते है। नमी सूखते ही इनका अन्त हो जाता है, लेकिन ससार से इनका अन्त होना सभव नही क्योकि ये सभी जलाशयो, नम जगहो और यहाँ तक कि अन्य विकसित प्राणियो के शरीर मे भी पाये जाते है।

इनकी कितनी जातियाँ पृथ्वी पर है, इसका ठीक-ठीक पता अभी तक नही चल सका है। तो भी इनकी २५,००० से अधिक जातियो का अभी तक पता चला है। ये जीव वैसे तो विद्वानो द्वारा चार मुख्य श्रेणियो मे बाँटे गये है, लेकिन यहाँ इनमे से केवल एक कूटपाद श्रेणी (Class Rhizopoda) का वर्णन दिया जा रहा है जिसमे के प्रसिद्ध प्रजीव अमीबा के वर्णन से हम इस विभाग के सब जीवो के बारे मे जान सकेंगे क्योकि उनकी आदते एक दूसरे से बहुत कुछ मिलती जुलती होती है।

कूटपाद श्रेणी

(CLASS RHIZOPODA)

प्रजीवो की इस श्रेणी मे वे सब प्रजीव एकत्र किये गये है जिनकी यह विशेषता है कि वे कूटपादो के द्वारा अपने जीवन के महत्त्वपूर्ण कार्य करते है। भोजन के पचाने और चलने-फिरने मे तो इनके कूटपाद प्रमुख भाग लेते है ।

चलने के समय ये प्रजीव अपने अग से एक या एक से अधिक उँगली के आकार के हिस्से को, जो कूटपाद कहलाता है, आगे की ओर बढाते रहते है और उसमे

प्रथमावलास के सतत प्रवाह के कारण ये कूटपाद (Pesudopodia) उभरते चले आते है और उन्ही के सहारे ये जीव आगे की ओर खिसकते जाते है।

इस श्रेणी के प्रसिद्ध जीव कामरूपी अमीवा (Amoeba) या जीव-पक से हम भली-भाँति परिचित है। यहाँ इसी का वर्णन दिया जा रहा है।

कामरूपी अमीवा

(AMOEBA)

अमीवा या कामरूपी जीवधारियो में सवसे छोटा जीव है। यह एक इच के सौवें हिस्से के वरावर का सूक्ष्म प्राणी है। यह तालावो की कीचड और तह में डूवी हुई सडी-गली वनस्पति में पाया जाता है। कुछ विद्वान इसका स्थान खुले हुए साफ पानी में भी वताते है। यह इतना छोटा जीव है जिसे हम विना खुर्दवीन के नही देख सकते।

अमीवा

यह प्रथमावलास (Protoplasm) का एक छोटा-सा रूप है जो वनावट और शकल में अण्डे की सफेदी की तरह होता है। इसके वारे मे आश्चर्यजनक वात यह है कि उसकी शकल सदा वदलती रहती है, जिसकी वजह से यह अपनी जगह से खिसकता रहता है और इसी से इसे कामरूपी भी कहा जाता है। कामरूपी वैसे तो शुरू मे गोल रहता है लेकिन कुछ समय वाद इसमें से भद्दी उँगली की शकल के हिस्से जिसे कूटपाद (Pesudopodia) कहते हैं, इसके हाशिए से निकलने लगते है जो धीरे-धीरे वढते और फैलते जाते है। इसका नतीजा

यह होता है कि इसका शरीर छोटा होता जाता है। फिर कुछ देर बाद इसका शरीर भी बढने लगता है और वह बढकर कूटपादो के बढाव तक पहुँच जाता है जिससे इसकी शकल फिर गोल हो जाती है। इसके बाद फिर नये कूटपाद इसके शरीर से निकलते हैं और यही क्रम फिर चलता है जिससे अमीबा अपने स्थान से खूराक की तलाश मे आगे खिसकने मे समर्थ हो जाता है।

अमीबा की बनावट इतनी सरल नही होती जितनी हम लोग ख्याल करते हैं। इसके शरीर के बीच मे एक पारभासी हिस्सा रहता है जो इसके जीवित रहने पर स्पष्ट दिखाई पडता है। यही इसका जीवन-केन्द्र है, जिसमे इसके जीवन तथा इसके शरीर की सारी शक्ति सचित रहती है। इसके नाश से अमीबा की मृत्यु हो जाती है। इसी जीवन-केन्द्र से इसके प्रत्येक कार्य का सचालन होता रहता है । इस जीवन-केन्द्र के चारो ओर के भाग को भोजन और मलत्याग करने का काम मिला है।

अमीबा मुख्यतया भोजन की तलाश मे ही इधर-उधर खिसकता रहता है। वह वनस्पतियो के सडे-गले कणो को, जो बहुत ही सूक्ष्म कणो की शकल मे पानी मे फैले रहते हैं, अपने कूटपादो से चारो ओर से इस तरह घेर लेता है कि वे इसके शरीर मे सोख लिये जाते हैं। शरीर मे दाखिल होने के बाद भोजन का फुजला इसके शरीर की ऊपरी सतह तक पहुँच जाता है जो अन्त में इसके आगे खिसक जाने पर इसके शरीर से अलग होकर वही रह जाता है। भोजन और मलत्याग का सबसे पुराना तरीका यही है ।

अमीबा में भोजन के चुनाव की एक अद्‌भुत शक्ति होती है जिससे वह वैसा ही पदार्थ अपने मे दाखिल होने देता है जो उसके लिए लाभदायक है। इससे हम इसके स्वाद के ज्ञान का आभास पाते हैं।

इसकी वृद्धि का ढग रोचक होने पर भी सरल ही है। यह अन्य विकसित प्राणियो की तरह अण्डे बच्चे देकर अपनी सतान-वृद्धि नही करता, बल्कि एक अमीबा जब बढकर एक आम कद का हो जाता है तो वह बीच मे पतला होने लगता है और धीरे-धीरे बीच का हिस्सा इतना पतला हो जाता है कि वही से इसका शरीर टूटकर दो हिस्सो में बँट जाता है। इस प्रकार एक अमीबा ही दो हिस्सो मे बँटकर दो अलग अमीबा बन जाते है। ये नये अमीबा समय पाकर बढ कर पुराने हो जाते हैं और उनमे भी समय आने पर इसी तरह विभाजन होता है। इस तरह इनकी वृद्धि का क्रम बराबर चलता रहता है।

खड २

छिद्रिष्ठ जीव विभाग

(PHYLUM PORIFERA)

छिद्रिष्ठ या स्पज पानी में रहनेवाले जीव है जिनके शरीर की ऊपरी सतह छोटे-बडे छिद्रो से भरी रहती है। इसी से इन्हें छिद्रभर या छिद्रिष्ठ जीव कहा जाता है।

स्पज प्राय समुद्रो मे ही रहते है, लेकिन कुछ थोडे ऐसे भी है जो नदियो और झीलो मे पाये जाते है।

मीठे पानी में रहनेवाले स्पज थोडे ही है, लेकिन समुद्री स्पजो की ढाई हजार से भी ऊपर जातियाँ है। ये ससार भर के समुद्रो में फैली हुई है। मीठे पानी के स्पज पीले, भूरे या हरे रग के होते है जो साफ पानी मे किसी पत्थर, लकडी या किसी पानी के पौधे से चिपके रहते है। समुद्री स्पज भी, अन्य जीवो की तरह, इधर-उधर फिरा नही करते बल्कि पानी के भीतर की चट्टानो या समुद्र की तह पर चिपके रहते है। इनकी शकल तरह-तरह की होती है। कुछ प्याले से होते है तो कुछ बिखरे से रहते है। इनका नाप भी भिन्न-भिन्न होता है। ये आलपीन के सिरे से लेकर तीन फुट तक के पाये जाते है। इनकी एक-दो नही बल्कि ढाई हजार किस्मो का अभी तक पता चल सका है जिसमे हमारे नहानेवाला स्पज भी शामिल है।

स्पजो मे रग के मामले में भी काफी भेद रहता है। इनमे अधिक सख्या तो उन्ही की है जो सफेद या राखी होते है, लेकिन कुछ ऐसे भी है जिन्हें पीली, नारगी, बैगनी, हरी, भूरी, नीली और काली पोशाक मिली है।

स्पज की ऊपरी सतह पर थोडी-थोडी दूर पर गोल छेद रहते है। इसके अलावा इनकी सारी ऊपरी सतह बहुत बारीक छिद्रो से भरी होती है जो हजारो की सख्या में रहते

है और जिन्हे विना खुर्दवीन के देखना सम्भव नही होता। इन छिद्रो से भीतर की ओर पतली-पतली नालियाँ जाती है जो भीतर जाल की तरह फैली रहती है। आगे चलकर ये गोलाकार कोष्ठो में खत्म हो जाती है, जो सतह से कुछ और भीतर रहते है। इन कोष्ठो मे भीतर की ओर एक हिस्सा कुप्पी की तरह वढा रहता है जिसमे होकर स्पज अपने भीतर पानी खीच लेता है और उसमे से अपनी खूराक खीच कर उसे सतह पर के सूराखो से वाहर निकाल देता है। इन वडे सूराखो मे होकर जाने के लिए भीतर की ओर से उसी तरह पतली-पतली नालियो का जाल फैला रहता है जो आपस मे मिल कर पतली होती जाती है और अन्त मे सतह के पास पहुँच कर ऊपर के वडे सूराखो में मिल जाती है। इस तरह ये स्पज भी वरावर अपने भीतर पानी खीचते और वाहर की ओर फेकते है, जिससे इन्हे केवल अपनी खूराक ही नही मिलती वल्कि आक्सीजन भी मिलता है। यह आक्सीजन या प्राणवायु इनको जिन्दा रखने के लिए भोजन से भी ज्यादा आवश्यक है।

स्पज की सतान-वृद्धि का तरीका भी सरल ही है। साल मे एक खास समय आने पर इनमे कीट और डिम्वकोश पैदा हो जाते है। फिर एक स्पज का वीजकीट लहरो द्वारा किसी दूसरे स्पज के पास पहुँच जाता है और पानी के साथ भीतर चला जाता है। वहाँ यदि वह डिवकोश मे मिल गया तो डिम्व मे एक प्रकार का परिवर्तन होने लगता है और वह पहले दो, फिर चार और फिर आठ और इसी तरह अनेको भागो में विभाजित होता रहता है। यहाँ तक कि वह एक गोल शकल मे वदल जाता है।

इस नवजात गोलाकार पदार्थ मे चार किल्लिया निकल आते है और उनके हरकत करने मे यह गोलाई मे घूमने लगते है। कुछ समय वाद यह स्पज के वडे सूराख मे होकर वाहर निकल आता है और कुछ घटे तक पानी में तैरने के वाद पानी की तह मे वैठ जाता है और धीरे-धीरे वढकर नया स्पंज वन जाता है।

कुछ स्पजो की वृद्धि दूसरे तरीके मे भी होती है। समय आने पर इनके शरीर में एक हिस्सा वढने लगता है और वढते-वढते वह स्पज मे टूट कर अपना अलग अस्तित्व कायम कर लेता है और वहकर किसी दूसरी जगह पर वैठ जाता है, जहाँ वढकर वह एक नया स्पज वन जाता है।

स्पजो के वहुत कम दुश्मन होते है क्योकि इनके रवड जैसे शरीर को दूसरे

जीव पहले तो खाना पसन्द ही नही करते, फिर ये खतरा देखकर अपने शरीर से एक प्रकार की तेज़ गध भी छोडते है जो इन्हें दुश्मनो से वचाती है।

छिद्रिष्ठ जीव विभाग को वैसे तो तीन वर्गो मे वाँटा गया है, लेकिन यहाँ केवल एक वर्ग (Order Euceratosa) का वर्णन दिया जा रहा है जिसमें हमारे नहाने वाले स्पज आते है।

स्पज वर्ग

(ORDER EUCERATOSA)

इस वर्ग में वे स्पज रखे गये है जो नहाने के अलावा मनुष्यो के अन्य कामो मे भी इस्तेमाल होते है।

इन स्पजो के शरीर के भीतर कडे रेशो का एक जाल सा रहता है। ये सव हमारे काम के होते है और इनका नहाने, चित्रकारी, सफाई तथा दूसरी तरह के सैकडो कामो मे प्रयोग होता रहता है।

इनके दुश्मनो की सख्या वहुत कम होती है क्योकि इनके अस्वादिष्ठ शरीर को कोई खाना नही पसन्द करता। फिर भी कुछ समुद्री जीव इनके शरीर को अपने छिपने का स्थान वनाने में नही चूकते। कुछ केकडे तो अपने शरीर पर स्पजो को चिपकने का अवसर इसलिए देते है कि उनके कारण उन्हे कोई देख न सके और वे अपने दुश्मनो से तो वच ही जायॅ, साथ ही साथ अपना शिकार भी आसानी से पकड लिया करें।

स्पज

(SPONGE)

पहले स्पज के विपय में लोगो की तरह-तरह की धारणा थी। कुछ लोग इन्हे पौधे समझते थे तो कुछ इन्हें पौधो और जानवरो के बीच की चीज वताते थे। कुछ का ख्याल था कि ये सव पथराये हुए समुद्री फेन है और कुछ ने इनके छिद्रो में कीडो को देखकर यह अनुमान लगाया था कि ये इन कीडो के रहने के घर है, जिन्हें कीडो ने

वडे परिश्रम से वनाया है, पर उन्नीसवी सदी के शुरू मे डा० रार्वट ग्राण्ट ने इन स्पजो का असली पता लगाया और तव से हम सव यह जानने लगे कि ये भी हमारे जीवधारियो मे से एक हैं।

स्पज वैसे देखने में वहुत शान्त और काहिल से जानवर जान पडते हैं, लेकिन इनके शरीर की भीतरी मशीन दिनरात काम मे लगी रहती है। इनके शरीर की ऊपरी सतह पर वहुत से छिद्र रहते हैं जिनके द्वारा इनके शरीर के भीतर वरावर पानी
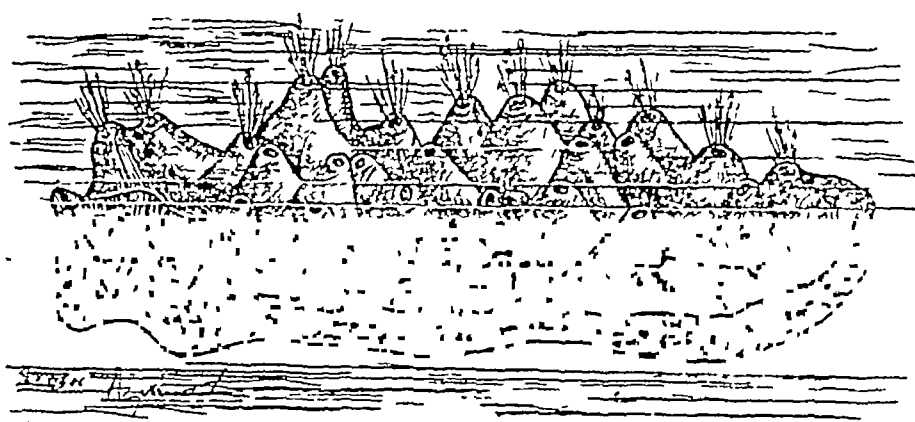
स्पज

आता जाता रहता है। पानी मे से ये अपनी खूराक और प्राणवायु सोखकर उसे वाहर फेंका करते हैं। इस प्रकार एक औसत दर्जे का स्पज प्रतिदिन ४० गैलन पानी अपने भीतर खीचकर वाहर निकालता है (१ गेलन=लगभग ५ सेर)।

नहाने के स्पज अधिकतर भूमध्यसागर और भारत के पश्चिमी समुद्रो मे पाये जाते हैं। ये केवल नहाने के ही नही वल्कि चित्रकारी, डाक्टरी तथा अनेक वस्तुओ की सफाई आदि के लिए वहुत उपयोगी होते हैं। इनके वारे में अन्य वाते पहले ही दी जा चुकी हैं। अत इनको फिर दुहराने की आवश्यकता नही रह जाती।

नहाने के जीवित स्पज देखने मे पशुओ की कच्ची कलेजी के टुकडे से लगते हैं। ये रातीमायल पीले या कलछौंह भूरे रग के होते है और इनके भीतर सींग जैसे कडे रेशो का जाल-सा फैला रहता है जिसे हम उनकी ठठरी या ककाल कह सकते हैं।

जैसा वताया जा चुका है, स्पज बहुत निरीह जन्तु है और वे समुद्र के भीतर चट्टानो या तहो पर चिपके रहते है। अत उनको पकडने में ज्यादा दिक्कत नही उठानी पडती। इन्हें या तो कटिया से फँसाया जाता है या पनडुब्वे तह तक जाकर इनको चाकुओ से काट लेते है और फिर इन्हे पानी से वाहर फैला या टाँग दिया जाता है। पानी से वाहर निकलने पर ये मर जाते है और इनके भीतर का जीव-पक तथा रेशो का कड़ा भीतरी ककाल सूख जाता है जो पीट कर निकाल दिया जाता है। फिर इन स्पजो को, जो वास्तव मे स्पज की वाहरी ठठरियाँ है, खूब अच्छी तरह धोकर साफ कर लिया जाता है और वे वाजार में विकने के लिए भेज दिये जाते है।

खंड ३

सुपिरान्त्रीय जीव विभाग

(PHYLUM COLENTERATA)

इस विभाग के अन्तर्गत हाइड्रा, रावणछत्र, प्रवाल तथा अनिलपुष्प आदि जीव एकत्र किये गये है, जिनमे से कुछ तो मीठे पानी के तथा अधिकाश समुद्र के निवासी हैं। इन जीवो के बाह्य स्वरूप मे बहुत भेद रहते हुए भी इनकी भीतरी बनावट मे एक प्रकार की समता रहती है। इसी कारण इन सबको एक ही विभाग मे रखा गया है।

हाइड्रा (Hydra) मीठे पानी के तथा प्रवाल (Corals) समुद्र के निवासी है। लेकिन अनिलपुष्पो (Sea Anemones) को समुद्री तट तथा उसी के आस-पास के जलाशय ही पसन्द आते है जहाँ वे पानी के भीतर सुन्दर पुष्पवाटिका की तरह फैले रहते हैं। रावणछत्र छत्रिक (Jelly Fish) का हाल सबसे निराला है। उसे एक जगह जमकर रहना पसन्द नही आता इसलिए वह पानी के साथ-साथ इधर-उधर बहा करता है।

इन प्राणियो मे दो बाते समान रूप से पायी जाती है। एक तो इनके शरीर की बनावट थैली की शकल की होती है जिसमे एक ही ओर मुँह खुला रहता है। दूसरे इनके शरीर की खाल दो तहो की होती है जैसे दुहरे कपडे की थैली हो। बाहर की तह बहिस्तर (Epidermis) और भीतर की तह अन्तस्तर (Endoderm) कहलाती है। इन दोनो तहो के बीच मे एक प्रकार का पारदर्शी लसलसा पदार्थ रहता है जिसे मध्यश्लेप (Mesoglosa) कहते है।

उपर्युक्त दोनो विशेषताओ के अलावा इनमें से थोडे से जीवो को छोड कर प्राय सभी जीवो के दशकोश (Sting Cell) होते है जो सूच्यग (Nemotocysts) कहलाते हैं।

इन्ही के द्वारा वे शत्रुओ के तथा अपने शिकार के शरीर मे अपना विषैला डक गडा कर विप भर देते है। इन कोशो की वनावट अडाकार होती है और ये वाहरी तह के पास ही रहते है। इनमें तरल विप भरा रहता है और उसी मे इनका लम्वा डक भी लिपटा हुआ छिपा रहता है, लेकिन उसको छूते ही वह कुछ मिकुड जाता है और भीतर का लिपटा हुआ डक तीर की तरह वाहर निकल कर छूनेवाले के शरीर में गड जाता है। यह डक पोला रहता है और जैसे ही वह किसी के शरीर में घुसता है उसमें से होकर भीतर का जहर उसके शरीर मे पहुँच जाता है। डक मारा जाने वाला अगर वडा हुआ तो उसके उस स्थान पर थोडी ही तकलीफ होती है, लेकिन यदि वह काफी छोटा हुआ तो उसकी मृत्यु ही हो जाती है। ये छोटे-छोटे जीवो को इन्ही डको से मारकर अपना पेट भरते है और अपने ऊपर आक्रमण होने पर इन्ही डको से अपनी रक्षा करते है।

इन जीवो के प्रजनन का ढग भी अनोखा होता है। कभी इनके शरीर में एक प्रकार का उभार-सा हो जाता है जो वढते-वढते नया जीव वन कर अलग हो जाता है और कभी इनके शरीर से शुक्रकोश निकल कर पानी मे फैल जाते है जो इनके शरीर के अडकोशो में प्रवेश करके फलित हो जाते है। फिर धीरे-धीरे ये फलित कोश वढकर नये जीव वन जाते है। इसके अलावा इन जीवो के यदि दो खड कर दिये जाते हैं तो वे दोनो खड भी अलग-अलग स्वतत्र जीव हो जाते है।

यह विभाग निम्नलिखित तीन वर्गो में विभाजित किया गया है—

१ जलीयक श्रेणी— Class Hydrozoa

२ छत्रिक श्रेणी-- Class Scyphozoa

३ पुष्पजीव श्रेणी—Class Anthozoa

जलीयक श्रेणी

(CLASS HYDROZOA)

इस श्रेणी के प्राणी वहुत छोटे होते है जो सामान्यत पोखर तथा अन्य जलाशयो के निवासी है। ये प्राय पानी के पौधो से चिपके हुए रहते है और जल की सतह के पास ही रहते है। इनमें हाइड्रा सवसे प्रसिद्ध है।

हाइड्रा (Hydra) की भी अनेक जातियाँ है, जिनमे से कुछ हमारे देश मे तथा कुछ अन्य देशो मे पायी जाती है। हमारे देश मे पाये जाने वाले हाइड्रा को हाइड्रा-वल्गैरिस (Hydra vulgaris) कहते है, जो भूरे या बादामी रग का होता है। यहाँ उसी का वर्णन दिया जा रहा है।

हाइड्रा

(FRESH WATER HYDRA)

हाइड्रा ताल-तलैयो, झीलो तथा अन्य जलाशयो का निवासी है, जहाँ वह पानी के पौधो या खर-पतवार मे चिपका हुआ मिलता है।
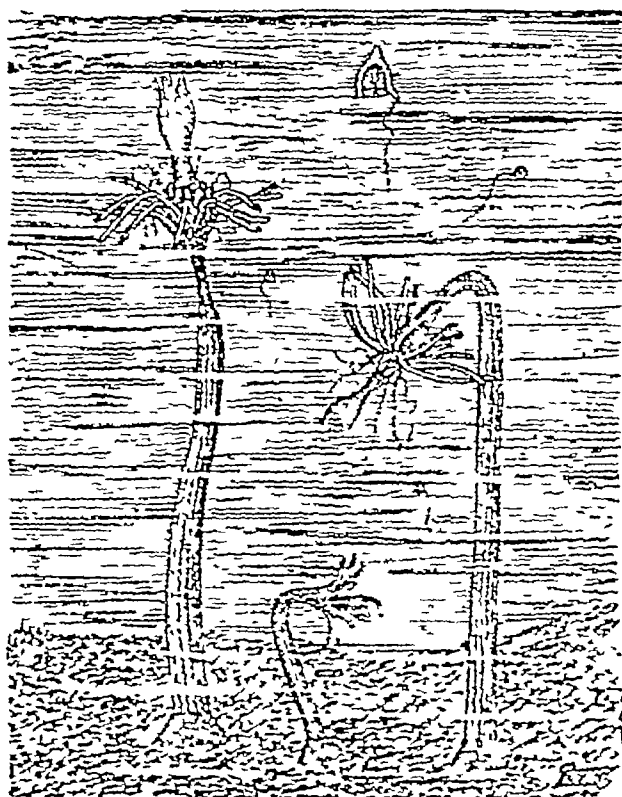
हाइड्रा

इसका शरीर एक पतली नली के समान होता है जो एक सिरे पर बन्द और दूसरे

सिरे पर खुली रहती है। बद भाग इसका पाद कहलाता है जिसके सहारे यह किसी पौधे से चिपका रहता है। इसके दूसरे सिरे पर कुछ उभार-सा रहता है जिसके बीच इसका मुखछिद्र रहता है। मुखछिद्र के चारो ओर ६ से १० तक मूंछनुमा पतले अगक (Tenticles) रहते हैं जो इसकी स्पर्शेन्द्रियाँ हैं।

हाइड्रा की लम्बाई अधिक से अधिक एक इच की रहती है जिसमें इसके अगक शामिल नही हैं क्योकि वे आवश्यकतानुसार घटते-बढते रहते हैं। इन्ही अगको मे हाइड्रा के सूच्यग (Nemotocysts) रहते हैं जिनके द्वारा यह अपने शिकार के शरीर मे विप भरकर उसे अचेत कर देता है।

हाइड्रा ज्यादातर पानी की सतह के पास ही रहता है क्योकि वहाँ उसे प्रचुर मात्रा में प्राणवायु तथा प्रकाश मिलता है। जल के पेंदे पर तो हाइड्रा सीधा खडा रह सकता है, लेकिन सतह पर उसे उलटा टँगा रहना पडता है।

वैसे तो हाइड्रा अपने निचले भाग की सहायता से किसी वस्तु से चिपका रहता है, लेकिन कभी-कभी तो इसे भोजन या उपयुक्त स्थान के लिए चलने-फिरने का कष्ट करना ही पडता है। इसके लिए पहले वह एक ओर इतना झुक जाता है कि उसके अगक तल को छूने लगते हैं। तल को छूकर ये वही चिपक जाते हैं और तब हाइड्रा का चिपका हुआ भाग तल को छोडकर चिपके हुए अगको के निकट जाकर चिपक जाता है। अब अगक तल को छोड देते हैं जिससे हाइड्रा फिर सीधा हो जाता है। वह फिर उसी ओर झुकता है और इसी प्रकार करते-करते वह धीरे-धीरे एक ओर खिसकता जाता है।

हाइड्रा मासभक्षी जीव है जिसका मुख्य भोजन जल के छोटे कीडे और कीडो तथा मछलियो के अण्डे-बच्चे हैं। शिकार करते समय हाइड्रा अपने निचले भाग को किसी जल-पौधे में चिपका कर उलटा लटक जाता है और अपने अगको (Tentacles) को फैला कर पानी मे बहने देता है। फिर जैसे ही कोई कीडा उसके अगक के निकट आता है वैसे ही उसके शरीर में सूच्यग द्वारा विप भर कर उसे अचेत कर दिया जाता है। चेतना खो देने पर वह असहाय हो जाता है और अगको द्वारा हाइड्रा के मुख में पहुँचा दिया जाता है।

हाइड्रा की सतान-वृद्धि के कई तरीके हैं। कभी-कभी तो भोजन प्रचुर मात्रा में मिलने पर और ताप के उपयुक्त होने पर, उसके शरीर पर एक प्रकार का

द्विग (नैनीतिन)

उभार-सा हो जाता है, जो बढ कर एक शाखा का रूप ग्रहण कर लेता है। धीरे-धीरे यह शाखा बढकर हाइड्रा के अनुरूप हो जाती है और उसके सिरे पर अगक भी निकल आते है। कुछ समय और बीतने पर यह हाइड्रा के शरीर से अलग होकर एक स्वतन्त्र हाइड्रा बन जाती है, और कभी ऐसा होता है कि हाइड्रा का शरीर बीच से टूटकर दो खडो में विभक्त हो जाता है। फिर प्रत्येक भाग में आवश्यक अगो की पूर्ति हो जाती है और दोनो स्वतन्त्र हाइड्रा बन जाते है।

इनके अलावा हाइड्रा की वशवृद्धि कभी-कभी मैथुन द्वारा भी होती है। जैसा पहले बताया जा चुका है, हाइड्रा उभयलिंगी जीव है जिसके शरीर मे शुक्र तथा अड-कोशाएँ दोनो ही रहती है। समय आने पर इनके वृषण (testes) का शिखर फूट जाता है और शुक्र कोशाएँ जल मे फैल जाती है। इन शुक्रकोशाओ को हाइड्रा की अडकोशाएँ अपनी ओर आकर्षित करती है और दोनो के सम्पर्क मे आने से नये हाइड्रा का जन्म होता है।

छत्रिक श्रेणी

(CLASS SCYPHOZOA)

छत्रिक श्रेणी मे सब प्रकार के छत्रिको को एकत्र किया गया है जो एक इञ्च से कई फुट तक के होते है। ये वैसे तो समुद्र के किनारे छिछले जल मे चट्टानो आदि से चिपके हुए पाये जाते है, लेकिन कभी-कभी इनकी कुछ जातियाँ सौ दो सौ फुट गहरे समुद्रो मे भी पायी जाती है। ये छत्ते के आकार के होते है और इनका कोमल अग सफेद या हलके भूरे रग का रहता है।

इनकी वैसे तो अनेक जातियाँ है, लेकिन यहाँ अपने देश मे पाये जानेवाले प्रसिद्ध छत्रिक का वर्णन दिया जा रहा है।

छत्रिक

(JELLY FISH)

छत्रिक को यह नाम उसके छाते जैसे शरीर के कारण मिला है जो सर्वथा उपयुक्त ही है।

छत्रिक समुद्र का निवासी है जिसका शरीर बहुत नरम और चिपचिपा-सा रहता है। इसके शरीर में ९९ प्रतिशत पानी का अश रहता है। इसी कारण पानी से बाहर निकाल देने से थोडी देर मे पानी का अश सूख जाता है और इसका थोडा-सा
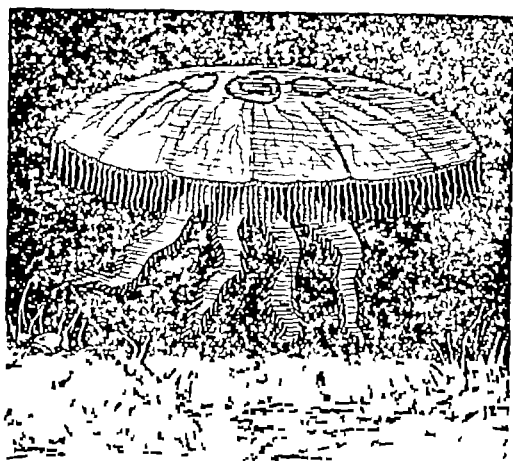
छत्रिक

हिस्सा ही बच रहता है। यही कारण है कि छत्रिक के पथराये ककाल (Fossils) नही मिलते क्योकि इसके कोमल शरीर का कोई चिह्न ही पत्थरो पर नही बन सकता।

छत्रिक का शरीर सफेद पारदर्शी रहता है जिस पर ऊपर की तह के किनारे पर महीन बाल जैसे रहते है। ये छत्रिक के अगक या स्पर्शेन्द्रियाँ है। इसके अलावा छत्रिक के नीचे की ओर, शरीर के बीच में, चार अर्द्ध चद्राकार अवयव होते है जो इसके पारदर्शी शरीर के कारण ऊपर से ही दिखाई पडते है। ये ही इनके बीज कोश या अडकोश है जो इनके आमाशय की थैली के बीच मे रहते है।

छत्रिक के आमाशय का मुख उसके शरीर की निचली सतह पर उभरा-उभरा-सा रहता है और वही से शरीर के किनारे तक भोजन की नलियाँ फैली रहती है। छत्रिक के शरीर के किनारे के पास इसकी ज्ञानेन्द्रियो के स्थल रहते है जिनका कुछ हिस्सा रगीन होता है।

इसके मुख के पास चार झालरें-सी रहती है, जो बहुत से डको और सूच्यगो से पूर्ण होती है। इन्ही की सहायता से छत्रिक अपने शिकार को अपने वश में कर लेते है।

छत्रिक अपने शरीर को सिकोड कर और फिर फैला कर आगे की ओर खिसकते है और इसी समय अपनी खूराक भी जमा करते जाते है क्योकि उनके खिसकने समय बहुत से पानी के निम्नतर जीव उनके चिपचिपे शरीर मे चिपक जाते है जो धीरे-धीरे इनके मुंह तक पहुँचा दिये जाते है।

छत्रिक की सतान-वृद्धि का ढग भी कम रोचक नही है। इसके वृषण भी हाइड्रा की तरह प्रौढ हो जाने पर फूट जाते है और उसी पानी मे शुक्रकोशाएँ तैरने लगती है जहाँ अडकोशाएँ तैरती रहती है। दोनो के मिल जाने पर नये छत्रिक का बनना आरम्भ हो जाता है। पहले यह डिम्बकीट (Larva) का रूप ग्रहण करके पानी मे तैरता रहता है और फिर कुछ समय बाद पानी की तह पर बैठ जाता है। वहाँ धीरे-धीरे इसमे परिवर्तन होने लगता है और थोडे ही दिनो बाद उसके नीचे का हिस्सा पतला हो जाने से ऊपर का मुख स्पष्ट दिखाई पडने लगता है। थोडा समय और बीतने पर, जब यह जीव आध इच का हो जाता है तो, इसके शरीर मे कई दरारे पड जाते है जो समय पाकर टूट-टूट कर नये छत्रिक बन जाते और अपना स्वतन्त्र जीवन बिताने के लिए समुद्र मे फैल जाते है।

पुष्पजीव श्रेणी

(CLASS ANTHOZOA)

पुष्पजीव श्रेणी के अन्तर्गत सब प्रकार के अनिलपुष्प (Sea Anemones) तथा प्रवाल (Corals) आते है जो समुद्र के निवासी है।

अनिलपुष्पो को हमने भले ही न देखा हो, लेकिन ऐसा कौन है जो मूंगे या प्रवाल से अपरिचित हो। ये जीव वृक्षो के अनुरूप होते है जो देखने मे बहुत सुहावने लगते है। प्रवाल के शरीर मे पेडो की सी डालियाँ रहती है जो पत्थर-सी कडी और कठोर होती है। इनके आरपार एक छेद रहता है। जब डालियो को काटकर मूंगे की गुरियाँ बनायी जाती है तो बीच के इस छेद मे ही तागा पिरो कर इन्हे मालाकार गूह लिया जाता है।

अनिलपुष्प रगीन फूलो की तरह छिछले समुद्रो में फैले रहते हैं। इन जीवो मे प्रवाल आदि कुडमित होकर अनेक जीवो का एक समूह वना देते हैं जो वढकर प्रवाल चट्टानो (Coral Reef) का रूप ग्रहण कर लेते हैं।

यहाँ प्रवाल तथा अनिलपुष्प दोनो का वर्णन दिया जा रहा है।

प्रवाल

(CORAL)

मूंगो की वैसे तो अनेक जातियाँ है और उनकी शकल-सूरत भी भिन्न-भिन्न रहती है, लेकिन उनके शरीर की वनावट मे ज्यादा भेद नही रहता। मूंगे के वर्तुलाकार शरीर के ऊपरी हिस्से पर शिगाफ की तरह मुख-छिद्र होता है जिसके चारो ओर पतले-पतले उँगलियो की शकल के अगक (Tentacles) रहते है जो इसकी स्पर्शेन्द्रियाँ या हाथ हैं। मुखछिद्र के नीचे एक नली रहती है जो आमाशय तक चली जाती है।

प्रवाल

मूंगा समुद्र का निवासी है जो मीठे पानी में कभी नही दिखाई पडता। इसका आमाशय छत्रिक के आमाशय से वडा होता है और उसकी दीवार में परदो की तरह झिल्लियाँ लटकी रहती हैं जिससे इसका आमाशय कई कोष्ठको में वॅट जाता है।

मूंगे की सतान-वृद्धि का तरीका भी सरल ही है। उभयलिगी जीव होने के कारण इसके वीजकोश इन्ही झिल्लियो पर उग आते है, जो प्रौढ होने पर समुद्र में गिरकर फैल जाते हैं। वहाँ

इसी प्रकार शुक्रकीट भी मूँगो के शरीर से गिरकर तैरते रहते हैं। दोनो के मिलकर एकाकार हो जाने पर नये मूँगे का जन्म हो जाता है।

पहले तो यह नया जीव डिम्बकीट (Larva) की शकल धारण करता है, जो रोयेदार रहता है लेकिन कुछ देर तैरने के पश्चात् यह पानी की सतह पर बैठ जाता है जहाँ कुछ दिनो मे ही बढकर यह मूँगे की शकल-सूरत का हो जाता है।

कभी-कभी इसके शरीर के भीतर ही रज और शुक्रकीटो का मिलन होता है और वही डिम्बकीट का जन्म होता है। फिर बाहर कई परिवर्तनो के बाद यह नवजात शिशुकीट मूँगे का आकार-प्रकार ग्रहण कर लेता है।

लेकिन चट्टान बनानेवाले मूँगे की वृद्धि का ढग इन दोनो मे भिन्न रहता है। इसके शरीर मे वृद्धि का समय आने पर कई जगह उभार से दिखाई पडने लगते है जो कुछ समय बीतने पर बढकर नये मूँगे का आकार-प्रकार तो ग्रहण कर लेते है, लेकिन इसके शरीर से अलग नही होते। इस प्रकार ये नये कुड्म मूँगे के शरीर मे लगे रहकर भी अपना अलग अस्तित्व बनाये रखते हैं। कुछ समय बीत जाने पर ये नये कुड्म भी पुराने हो जाते है और इनके शरीर मे भी इसी प्रकार उभार होकर नय कुड्म निकल आते है। यह क्रम इसी प्रकार चलता रहता है और एक जीव मे असख्य जीव पैदा होकर आपस मे मिले रहने के कारण दिन प्रति दिन बढते ही जाते है। कुछ काल बीत जाने पर ये बडी-बडी चट्टानो और द्वीपो की शकल ग्रहण कर लेते है और उन्हे हम प्रवाल द्वीप (Coral Island) के नाम से पुकारने लगते है।

मूँगे की ये चट्टानें बहुत सुन्दर और रग-बिरगी होती है और इनके आस-पास रहनेवाली मछलियाँ भी तितलियो की तरह रगीन रहती हैं। समुद्र के भीतर जहाँ मूँगे की चट्टानें पायी जाती हैं वहाँ का दृश्य किसी परीलोक से कम सुन्दर नही लगता।

अन्त में हमे अपने लाल मूँगो के बारे मे भी कुछ जान लेना चाहिए जिन्हे हमने मोती की तरह अपने रत्नो मे सम्मिलित कर लिया है। ये लाल मूँगे समुद्र की तह में पेड की शकल में फैले रहते है और ससार मे केवल आड्रियाटिक तथा भूमध्य-सागर मे ही पाये जाते हैं। इनकी डालियो के टुकडे काट काटकर सुडौल बना लिया जाता है और फिर उन्हे तागे मे पिरोकर माला बना ली जाती है।

अनिलपुष्प

(SEA ANEMONES)

अनिलपुष्प को प्रवाल का भाई-बन्धु कह सकते हैं। यह भी समुद्र का निवासी है और अक्सर ऐसे उजाड समुद्री तटो के आस-पास छिछले जलो में पाया जाता है जो पहाडियो या चट्टानो से भरे रहते हैं। ये काफी सख्या में एक स्थान पर रहते हैं और अपने रगीन और सुन्दर शरीर के कारण ही ये समुद्री-फूल या अनिलपुष्प कहलाते
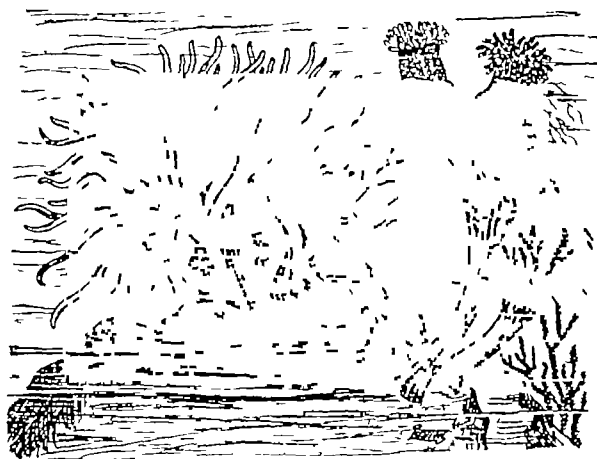
अनिल पुष्प

हैं। ये जिस स्थान पर छिछले पानी मे रहते हैं, वहाँ पानी के भीतर सुन्दर फुलवारी-सी लगी जान पडती है।

अनिलपुष्प के शरीर की रचना बहुत कुछ प्रवाल से मिलती-जुलती रहती है। इसका भी शरीर लम्बा और बेलनाकार रहता है जिसके एक सिरे पर इसका मुख-छिद्र रहता है। मुखछिद्र के चारो ओर पतले भगक (Tentacles) रहते हैं जो इसकी स्पर्शेन्द्रियाँ तथा हाथ हैं। इन्ही के सहारे ये जल के कीडे-मकोडो को पकड कर अपने मुख-छिद्र तक पहुँचा देते हैं। इसके भी मुख-छिद्र से आमाशय तक एक नली चली जाती है।

अनिलपुष्प वैसे तो बहुत भोले-भाले और निरीह से जान पड़ते है लेकिन निकट जाने पर ये छत्रिक की तरह डक मारने मे नही चूकते। अक्सर देखा गया है कि एक प्रकार का केकडा (Hermit Crab) जो किसी मुरदा शख को अपनी खोल बना लेता है, शख के ऊपर अनिलपुष्प को बैठने की जगह दे देता है। इससे केकडे को यह लाभ होता है कि अनिलपुष्प के डक के डर से दुश्मन उसके निकट नही आते और अनिलपुष्प भी बिना हाथ-पॉव डुलाये समुद्र का चक्कर लगाया करता है।

अनिलपुष्प की सतान-वृद्धि का ढग भी प्रवाल ही जैसा सरल है। अनुकूल समय आ जाने पर इसके आमाशय की झिल्लियो पर बीजकोश उभर आते है जो परिपक्व होकर समुद्र मे गिरकर फैल जाते है। इसी तरह शुक्रकीट भी परिपक्व होने पर अनिलपुष्पो के शरीर से स्खलित होकर समुद्र मे फैले रहते है जो बीजकोशो से मिलकर उर्वरित हो जाते है और नये अनिलपुष्प का जन्म हो जाता है। ये शीघ्र ही प्रवाल की भॉति डिम्बकीट का स्वरूप ग्रहण कर लेते है। फिर दो एक परिवर्तनो के बाद ये अनिलपुष्प बन जाते है।

खड ४

कृमि समूह

(GROUP VERMES)

प्राय सभी छोटे साँप के शरीर जैसे लम्बे और रेंगनेवाले जीवो को कृमि के नाम से पुकारा जाता है, लेकिन ससार मे सभी कृमि पतले और लम्बे शरीरवाले जीव नही है और न सभी रेंगनेवाले कृमि ही है।

कृमि की २०,००० से भी अधिक जातियाँ है, जिनमें से केचुआ आदि कुछ ऐसे है जो जमीन पोली करके मनुष्यो के वाग-बगीचो को वहुत फायदा पहुँचाते है। साथ ही साथ मलसर्प (Round Worm) और कद्दूदाना (Tape Worm) की तरह कुछ ऐसे भी है जो हज़ारो मनुष्यो की जान प्रतिवर्ष ले लिया करते है ।

कृमि का शरीर लम्बाई लिये जरूर होता है, लेकिन इन सवकी शकल-सूरत में आपस मे वहुत भेद रहता है। कुछ केंचुए की तरह पतले, गोल और लम्बे होते है, तो कुछ जोक की तरह चपटे, और कुछ की शकल एकदम फीते की तरह रहती है, लेकिन इनमें से शायद ही कोई ऐसा हो जिसे छूने में घिन न लगती हो।

ये वैसे तो ६ विभागो में विभक्त किये गये है, लेकिन यहाँ केवल तीन विभागो का ही वर्णन दिया जा रहा है जिनके प्राणी हमारे बहुत परिचित है। वे तीनो विभाग इस प्रकार है—

१ गडूपद विभाग—Phylum Annelida

२ चिपिट-कृमि विभाग—Phylum Platyhelmenthes

३ सूत्र-कृमि विभाग—Phylum Nemathelminthes

१ **गडूपद विभाग** मे हमारा प्रसिद्ध केंचुआ (Earth Worm) तथा सब प्रकार की जोकें ((Leeches) आ जाती है।

२ चिपिट कृमि विभाग मे हमारा प्रसिद्ध कद्दूदाना (Tape Worm) नाम का कृमि रखा गया है।

३ सूत्र कृमि विभाग में हमारा चिरपरिचित मलसर्प (Round Worm) रखा गया है जो हमारी अँतडियो को अपना निवास बनाकर हमारे स्वास्थ्य को नष्ट कर डालता है।

गडूपद विभाग

(PHYLUM ANNELIDA)

इस विभाग के जीवो का आकार लम्बा होता है और उनकी शरीर-रचना मे कुछ ऐसी समानताएँ होती है कि उन्हे एक ही स्थान पर एकत्र करना आवश्यक हो गया है।

ये सब प्राणी सुपिरान्त्रीय जीवो की तरह द्विस्तरीय अर्थात् दो तहोवाले न होकर त्रिस्तरीय होते है। इनके शरीर मे एक बाहरी स्तर (Ectoderm) और एक भीतरी स्तर तो होता ही है, लेकिन इन दोनो के बीच मे एक और स्तर भी रहता है जो मध्यस्तर (Mesoderm) कहलाता है।

ये जीव भी सुपिरान्त्रीय जीवो की तरह दो खड कर दिये जाने पर दो स्वतन्त्र जीव बन जाते हैं। लेकिन इन जीवो के शरीर मे केवल एक ही ऐसा स्थान होता है जहाँ से काटे जाने पर ये दो स्वतन्त्र जीव बन सकते है।

यह विभाग वैसे तो चार श्रेणियो मे विभाजित किया गया है लेकिन यहाँ निम्नलिखित दो श्रेणियो का ही वर्णन किया जा रहा है —

१ जलौका श्रेणी—Class Hirudinea

२ भूमि-कृमि श्रेणी—Class Oligochaeta

जलौका श्रेणी मे सब प्रकार की जोके एकत्र की गयी है और भूमि-कृमि श्रेणी मे सब प्रकार के केचुए रखे गये है।

जलौका श्रेणी

(CLASS HIRUDINEA)

इस श्रेणी के जीव जल तथा स्थल के निवासी है। इनका शरीर छोटा लम्बा और चपटा होता है। इनके शरीर में ३४ खड रहते है और प्रत्येक खड पर २ से ५ तक धरारे मे दिखाई पडते है। शरीर के अगले भाग पर के कुछ खड मिलकर इसके चूपक (Sucker) का निर्माण करते है, जिसके भीतर इनका मुख रहता है। शरीर के पिछले भाग पर भी एक चूपक होता है जो मुख-चूपक से वडा होता है। यह सात खडो के मिलने से वनता है। इन्ही चूपको से ये जीव चलते-फिरते है और इन्ही से ये किसी वस्तु से चिपकते है। ये उभयलिंगी होते है।

इन जीवो को जोक या जलौका कहा जाता है। ये मीठे और खारे पानी में सामान्य रूप मे रह लेती है और इनकी कुछ जातियाँ नम भूमि पर भी रहने योग्य हो गयी है। ये अपने चूपको से रक्त चूसने के लिए प्रसिद्ध है।

यहाँ अपने देश की प्रसिद्ध जोक (Hirudinari granulosa) का वर्णन किया जा रहा है।

जोक

(LEECH)

जोको से हम सभी परिचित है क्योकि ये समुद्रो के अलावा हमारे यहाँ के ताल, पोखरो तथा नम जगहो में पायी जाती है।

जोंक

हमारे यहाँ पायी जानेवाली प्रसिद्ध जोक ताल और पोखरो मे काफी सख्या में पायी जाती है। यह अक्सर आदमियो और पशुओ को चिपक जाती है और धीरे-धीरे

शरीर का खून चूसने लगती है। वैसे तो यह ३-४ इंच लम्बी होती है, लेकिन खून पी लेने पर मोटी और बडी हो जाती है। इसका शरीर लम्बा और चपटा होता है जिसके दोनो सिरो पर चूपक रहते है। इसके वदन का रंग गाढा हरा, या जैतूनी रहता है जिस पर वहुत महीन विंदियाँ और चिह्न पडे रहते है।

जोक का सारा शरीर धरारो से भरा रहता है, जैसे बहुत से छल्लो को जोड कर इसका वदन गढा गया हो। शरीर के दोनो सिरो पर कटोरीनुमा खून चूसने के चूपक रहते है और सिर की ओर के चूपक के पीछे कई जोडे आँखो की रहती है। इनका मुख्य भोजन दूसरे जीवो का रक्त है। वैसे ये पानी के छोटे-छोटे कीडे-मकोडो से भी अपना पेट भरती है और भूखी रहने पर या भोजन न मिलने पर एक दूसरे को निगलने मे भी नही चूकती।

जोक पानी मे मछली या साँप की तरह खूब अच्छी तरह तैर लेती है, लेकिन सूखे पर चलने में इसे कुछ दिक्कत होती है। इसे जब खुश्की पर चलना होता है तो यह अपने दोनो चूपको से पृथ्वी को पकड कर आगे की ओर सरक जाती है।

जोक से हमारे यहाँ शरीर का खराब खून चूसने का काम वहुत दिनो से लिया जा रहा है। शरीर मे जहाँ का खून निकलवाना होता है वहाँ कई जोको को लगा दिया जाता है जो धीरे-धीरे खून पीकर मोटी हो जाती है और पेट भर जाने पर अपने आप शरीर को छोड देती हैं।

जोक उभयलिंगी होती है जिसके शरीर मे समय आने पर शुक्र और बीजकीट परिपक्व होकर कोशो में भर जाते है। इसके पश्चात् एक जोक दूसरी जोक के शरीर पर अपना शुक्रकीट गिराती है जो उसके बीजकोशो के बीजकीटो से मिलकर उर्वरित हो जाते हैं। इस प्रकार दोनो जोके एक साथ ही अण्डो से भर जाती है और समय आने पर अण्डे देती है।

जोक के अडे फूटकर बच्चे निकलने मे ४-५ हफ्ते लग जाते है। अडे से पतले तागे जैसे वच्चे बाहर निकलते है जो छोटे होने पर भी शक्ल-सूरत में जोक ही से दीख पडते है। ये बच्चे ४-५ वर्ष मे कहीं जाकर पूरी तरह से जोक वन पाते है। इसके बाद भी जोके १०-१२ वर्ष तक जीती देखी गयी है।

बाद दोनो दूसरे के डिम्बकोश मे अपने शुक्रकीट डाल देते है और दोनो साथ ही गर्भ धारण कर लेते है। केंचुए के शरीर के दो-तीन वृत खडो पर एक प्रकार की पतली झिल्ली चढ जाती है, जो एक प्रकार का रस निकलने पर इसके अडो के लिए एक खोल का रूप धारण कर लेती है। इस खोल या कोष के तैयार हो जाने पर केंचुआ इसमें अडे देकर अपना शरीर पीछे की ओर खिसका खिसका कर बाहर निकाल लेता है और तब उस खोल के दोनो सिरे बन्द हो जाते है और अडो की वृद्धि शुरू हो जाती है।

चिपिट-कृमि विभाग

(PHYLUM PLATYHELMINTHES)

इस विभाग के प्राणियो का शरीर लम्बा और फीते जैसा चपटा होता है। इसी कारण इन्हे चिपिट-कृमि कहा गया है। इनके शरीर की रचना गड्डूपद विभाग के जीवो की तरह त्रिस्तरीय होती है अर्थात् उनके शरीर की भित्ति तीन स्तरो की रहती है जो बहिस्तर, मध्यस्तर तथा अन्त स्तर कहलाते हैं।

ये जीव अन्य प्राणियो के शरीर मे परजीवी बनकर रहते है और उनके स्वास्थ्य को बहुत हानि पहुँचाते है।

इस विभाग को तीन श्रेणियो में विभक्त किया गया है, लेकिन यहाँ केवल एक ही श्रेणी का वर्णन किया जा रहा है जो चिपिट-कृमि श्रेणी (Class Cestoda) कहलाती है।

चिपिट-कृमि श्रेणी

(CLASS CESTODA)

इस श्रेणी के जीवो की आकृति पतले फीते के समान होती है। इनके शरीर में आँतो का अभाव रहता है, इसलिए ये जिस जीव के शरीर में रहते है उसकी आँत के पचे हुए भोजन को चूस लेते हैं।

यहाँ हम इनमें से एक प्रसिद्ध चिपिट-कृमि का वर्णन कर रहे है जो प्राय सुअरो की आँतो मे रहता है और उसका मास खाने से अक्सर मनुष्यो के शरीर में पहुँच जाता है। इसे शूकरचूपशिर (Temia solium) कहते है।

कद्दूदाना

(TAPE WORM)

कद्दूदाना भी एक पराश्रयी जीव है जो मनुष्यो की अँतडियो मे रहकर उनके स्वास्थ्य को वहुत हानि पहुँचाता है। यह ६ से १० फुट लम्बा और चपटा-सा जीव है जो हमारे शरीर मे सुअरो के द्वारा पहुँचता है। कद्दूदाना चपटा फीते-जैसा होता है जिसका रग सफेदी मायल रहता है। इसे देखने मे सहसा एक लम्बे गदे फीते का धोखा हो जाता है। इसका शरीर पतली नालियो से भरा रहता है जो सख्या मे ६००
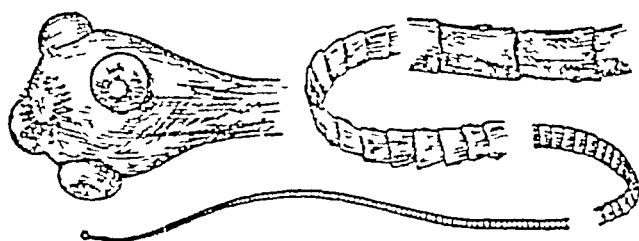
कद्दूदाना

मे २,५०० सौ तक हो जाती है। सिर की चौडाई $\frac{१}{२५}$ इच की होती है जिसके सिरे पर वहुत से हुक से रहते है। सिर के दोनो वगल के हिस्से पर चार चूषक रहते है जिनसे वह अँतडियो की दीवाल को पकडे रहता है। इसके शरीर के प्रत्येक खड मे अडे भरे रहते है।

कद्दूदाना को प्रकृति ने न तो चलने-फिरने के अग दिये है और न मुह ही, क्योकि न तो इन्हे चलना-फिरना रहता है और न इन्हे खाने के लिए ही ज्यादा झझट उठानी पडती है। ये जिसके शरीर मे रहते है उसके खाये हुए पदार्थ के रस को अपने शरीर की खाल से सोखा करते है।

कद्दूदाना के अडे मनुष्य के मल के साथ वाहर निकल जाते है और यदि उन्हे किसी सुअर ने खा लिया तो वे उसकी अँतडियो मे पहुँच जाते है और वही इन अडो से वच्चे निकलते है। कद्दूदाने के ये छोटे-छोटे वच्चे अँतडियो को छेदकर रक्त शिराओ मे प्रवेश कर जाते है और फिर खून के द्वारा सारे शरीर मे फैल जाते है। रक्तशिराओ से ये मासपेशियो मे घुस जाते है जहा पहुँच कर ये अडाकार

होकर पडे रहते है। फिर यदि किसी ने ऐसे मास को अधपका ही खा लिया तो उसके शरीर में जाकर ये कीडे फिर लम्बाकार निकल आते है और उसकी अँतडियो की दीवाल से चिपक जाते है। इस प्रकार ये उस आदमी के खाये हुए भोजन का अधिकाश रस स्वय चूस लेते है और खूराक का काफी हिस्सा इन कीडो के पेट में चले जाने से वह सूखकर ककाल मात्र रह जाता है।

सूत्र-कृमि विभाग

(PHYLUM NEMATHELMINTHES)

इस विभाग के प्राणियो का शरीर लम्बा, गोल तथा सूत्रवत् रहता है जिसके कारण ये सूत्रकृमि कहलाते हैं। ये कृमि प्राय सभी स्थानो में पाये जाते है और इनकी सख्या भी कम नही होती।

ये मिट्टी में, मीठे और खारे पानी में तथा अन्य जीवो के शरीर में परजीवी के रूप में रहते हैं। परजीवी होकर भी ये उनके स्वास्थ्य को हानि भले ही पहुँचाते हो लेकिन उनके लिए घातक नही सिद्ध होते। ये $\frac{१}{२०}$ इच से लेकर चार फुट तक लम्बे होते हैं और इनकी शरीर-रचना भी चिपिट कृमि की तरह तीन तहोवाली होती है।

इस विभाग के जीवो में हमारे यहाँ का मलसर्प नाम का सूत्रकृमि (Ascaris lumbriesides) बहुत प्रसिद्ध है। यहाँ उसी का वर्णन किया जा रहा है।

केंचुला (मलसर्प)

(HUMAN ROUND WORM)

केंचुला मनुष्यो की अँतडियो के भीतर रहनेवाला डोरे जैसा पतला कृमि है जो बहुत छोटा होने पर भी हमारा स्वास्थ्य बिगाड देता है। यह अक्सर मनुष्यो की अँतडियो मे अपना घर बना लेता है जहाँ इसकी ज्यादा सख्या बढ जाने पर कभी-कभी हमारी जान पर आ बीतती है। छोटे बच्चो के शरीर मे तो ये अक्सर रहते हैं क्योकि वे अपने बदन की सफाई का उतना ध्यान नही रख पाते, लेकिन कभी-कभी ज्यादा उम्रवाले मनुष्य भी ऐसे मिल जाते है जिनकी अँतडियाँ केंचुलो से भरी रहती हैं।

केंचुला १०-१२ इच तक लम्बा होता है, लेकिन इसकी मोटाई चौथाई इच ही रहती है। इसका रग या तो दूध-सा सफेद होता है या ललछौंह पीला।

केंचुला अपने शरीर में एक प्रकार का जहरीला पदार्थ निकालता है जो हमारे स्नायु-मडल के लिए बहुत हानिकारक होता है। हमारे शरीर में इसके घुमने का अजीब-सा तरीका है। केंचुलेवाले मनुष्य के पाखाने के साथ केंचुले के अडे बाहर निकल कर फैल जाते हैं और मक्खियो आदि के सहारे यदि वे हमारे खाने की चीजो में पहुँच गये तो फिर वे हमारे पेट मे जाकर अँतडियो के भीतर फूटते है और छोटे-छोटे केंचुले अँतडियो की दीवाल को छेद कर हमारी खून की नसो मे चले जाते है। खून के साथ बहते हुए ये हमारे फेफडे तक चले जाते है। जहां से वे फिर श्वासनली से गले तक आ जाते हैं और फिर हम उनके बारे मे बिना कुछ जाने हुए उनको निगल कर अँतडियो में पहुँचा देते है। इस बार वे अँतडियो मे अडो की शकल मे नही बल्कि काफी बडे हुए केंचुलो की शकल मे पहुँचते है जहाँ रह-रहकर ये पूरे कद के हो जाते है। इनका यही क्रम शरीर के अन्दर चलता रहता है। ज्यादा तादाद बढ जाने पर छोटे केंचुलो की ज्यादा सख्या फेफडे मे छेद करके घुमती है जिसका नतीजा यह होता आदमियो को बडी आसानी से निमोनिया (सन्निपात) का शिकार होना पडता है।

केंचुला (मलसर्प)

केंचुले किसी-किसी स्थान पर तो बहुत होते है, लेकिन कही ये बिलकुल नही मिलते। ये जहाँ एक बार फैल जाते है उस जगह को बहुत मुश्किल से इनसे छुट्टी मिलती है।

ये मोटे डोरे-जैसे जीव है जिनके शरीर पर न तो कोई अग होता है, और न इनकी ऊपरी सतह ही छल्लो मे बँटी रहती है।

खड ५
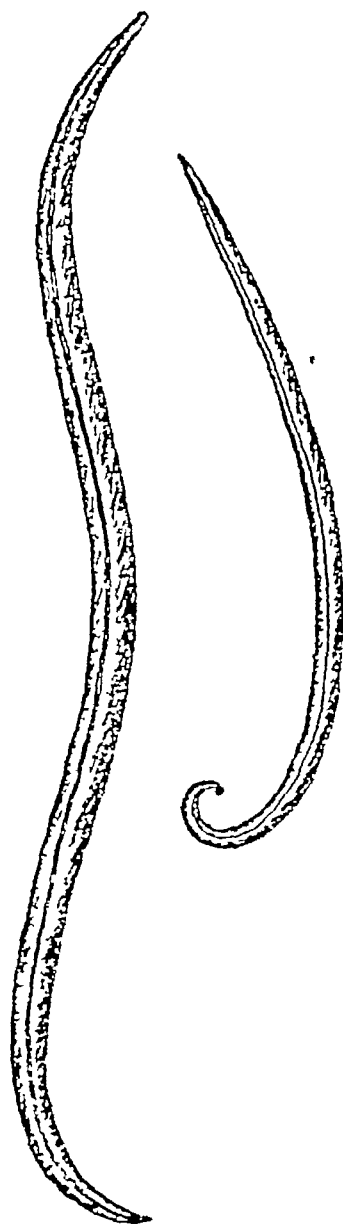
कटकितत्वचजीव विभाग

(PHYLUM ECHINODERMA)

इस विभाग मे सब कटकचर्मी जीवो को एकत्र किया गया है जिनके शरीर के वाह्य आवरण पर कॉटे जैसे उभार रहते है। ये सब समुद्र के निवासी है जिनमे से कुछ गहरे समुद्रो मे और कुछ छिछले समुद्रो मे अपना समय बिताते है। इनमे से अधिकाश प्राणियो के शरीर मे एक प्रकार का अतर ककाल (Endo Skeleton) होता है जो कैलशियम कार्बोनेट के प्लेटो का बना होता है। इनकी कितनी ही जातियॉ ससार मे फैली हुई है जिनमे तारा मछली (Star Fish) और जलसाही (Sea Urchin) बहुत प्रसिद्ध है।

इस विभाग को वैसे तो विद्वानो ने ५ श्रेणियो मे विभक्त किया हे, लेकिन इनमे से नीचे लिखे केवल दो का वर्णन यहाँ दिया जा रहा है—

१ तारामछली श्रेणी—Class Asteroidea

२ समुद्रीसाही श्रेणी—Class Echinoidea

तारामछली श्रेणी

(CLASS ASTEROIDEA)

इस श्रेणी में सब प्रकार की तारा मछलियाँ रखी गयी है जिनका शरीर पाँच कोणवाले सितारे की तरह रहता है। ये सब समुद्र मे रहनेवाले जीव है जो मरी हुई मछलियो आदि को खाकर समुद्र की सफाई करते रहते है। सूखे पर फेक दिये जाने पर तारा मछलियाँ बेबस हो जाती है और कुछ देर तक एक ही जगह पडी रहकर मर जाती है। यहाँ एक प्रसिद्ध तारामछली का वर्णन दिया जा रहा है।

तारामछली

(STAR FISH)

तारामछली का मछलियो से कोई सवन्ध नही है, फिर भी मछलियो के साथ रहने के कारण इसको भी लोग मछली कहने लगे है।

ये समुद्र मे रहनेवाले सितारे की शकल के जीव है जो पचकोण की शकल के होते है या इनके गोल शरीर से पाँच ओर नोकीली भुजाएँ सी निकली रहती है।

तारामछली समुद्र मे रहनेवाले जीवो में है जो दिन मे तो चुपचाप पानी के भीतर डूबी हुई चट्टानो में आराम करती रहती है लेकिन रात होते ही वहुत तेज हो जाती है और इधर-उधर अपनी खूराक की तलाश मे धीरे-धीरे चलने-फिरने लगती है। उलटी कर देने पर इसको सीधा होने मे कुछ दिक्कत जरूर पहुँचती है, लेकिन जिस तरह कछुआ उलट जाने पर अपनी लम्बी गर्दन को जमीन मे टेककर सीधा हो जाता है उसी प्रकार तारामछली भी अपनी एक भुजा को सिकोड कर सीधी हो जाती है।
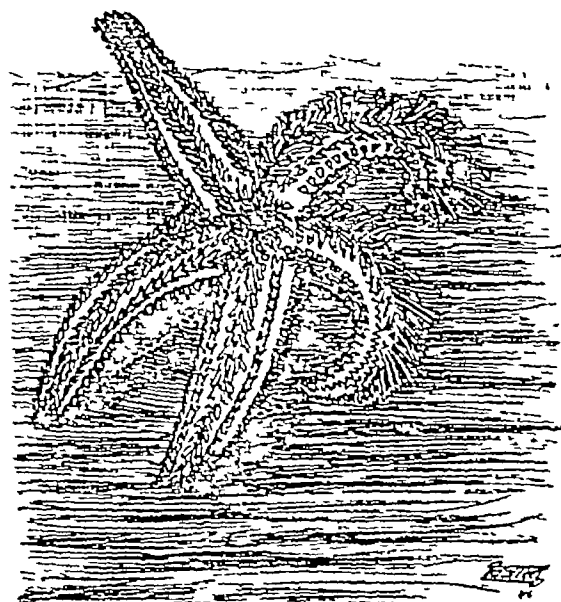
तारा मछली

तारामछलियो को प्रकृति ने वहुत सुन्दर पोशाक दी है। ये लाल, पीली और वैंगनी रग की होती है और देखने मे पाँच पखडी वाले खिले फूल के समान जान पडती है। ये पखडियाँ ही इनकी भुजाएँ है। इनका मुह नीचे की ओर रहता है जिसके चारो ओर वहुत से छोटे काटे रहते है। मुँह से भुजाओ की जड तक एक नली जैसी रहती है जिसके दोनो ओर छोटे-छोटे छिद्र होते है जो जोडे में सजे रहते है। इन छिद्रो के मुँह पर चूपिकाएँ रहती है जिनसे तारामछलियाँ किसी भी कडी चीज को वडी मजवूती

से पकड सकती हैं। ये चुसनियाँ इनको किसी स्थान पर चिपके रहने मे तो मदद देती ही हैं, साथ ही साथ इनके चलने-फिरने मे भी ये इनकी बाहुओ का काम बहुत कुछ हलका कर देती हैं क्योकि चुसनियो के नीचे की नली को तारामछलियाँ बडी आसानी से थोडा भीतर बाहर कर सकती हैं।

तारामछलियाँ केवल मासभक्षी जीव नही हैं। इन्हे तो सर्वभक्षी कहना ज्यादा ठीक होगा। इनसे खाने की कोई भी चीज नही बचती। सीप के लिए तो ये बस काल ही हैं। किसी सीप को इन्होने देखा नही कि ये उसके ऊपर सवार हो जाती हैं और फिर अपनी दो भुजाओ को उसके दराज मे डालकर उन्हे खोल लेती हैं। सीप का ढक्कन खुल जाने पर ये अपने पेट को उस पर रखकर उसका नरम शरीर खा लेती हैं।

अगर हम तारामछली की ऊपरी सतह को छुएँ तो हम देखेंगे कि उसकी खाल बहुत खुरदुरी-सी है और जिस पर बहुत से छोटे-छोटे मस्से से उभरे हैं। उसके नीचे के हिस्से को हम यदि उलट कर देखे तो हमको उसका मुँह दिखाई पडेगा जिसके चारो ओर छोटे-छोटे किन्तु कडे काँटे से फैले हैं।

तारामछली जब पानी के बाहर रहती है तो उसकी आँखे, पैर और मुँह किसी काम के नही रहते और वह बेबस रहती है। पानी मे डालने पर पहले तो वह अपने पैरो को खाल के भीतर समेटे रहती है लेकिन थोडी ही देर मे छिद्रो से सैकडो पैर बाहर निकल आते हैं और तब तारामछली अपनी पखडियो को पानी पर चलाकर और पैरो को हिलाकर आगे की ओर बढती है।

तारामछली दिन भर खाने की ही फिक्र मे रहती है और सीपी तथा कटुओ का बहुत नुकसान करती है। इसी कारण मछुए जब इसे पकड पाते थे तो बीच से फाड कर समुद्र मे फेंक देते थे, लेकिन उनको शायद इसका परिणाम नही मालूम था कि दो टुकडे किये जाने पर तारामछलियाँ मरती नही, बल्कि उसके दोनो टुकडे अलग अलग दो स्वतन्त्र तारामछलियाँ बन जाते हैं।

जलसाही श्रेणी

(CLASS ECHINOIDEA)

इस श्रेणी मे सब प्रकार की जलसाहियाँ एकत्र की गयी है जो समुद्र की निवासिनी हैं। इनका शरीर नारगी-सा गोल और ऊपर तथा नीचे चपटा रहता है। इनके

सारे शरीर पर छोटे-छोटे काँटे रहते हैं जिससे इन्हे जलसाही या समुद्री-साही कहा जाता है।

यहाँ एक प्रसिद्ध जलसाही का वर्णन दिया जा रहा है।

जलसाही

(SEA URCHIN)

जलसाहियो को यह विचित्र नाम इसलिए मिला है कि उनके सारे शरीर पर उसी प्रकार काँटे भरे रहते हैं जैसे हमारी जगल की साहियो के।

ये समुद्र मे रहने वाले ५–६ इच के जीव हैं जो ज्यादातर चट्टानो के आसपास के समुद्री तटो पर रहते हैं। ऐसे स्थानो पर जहाँ जलसाहियो की अधिकता है बहुधा
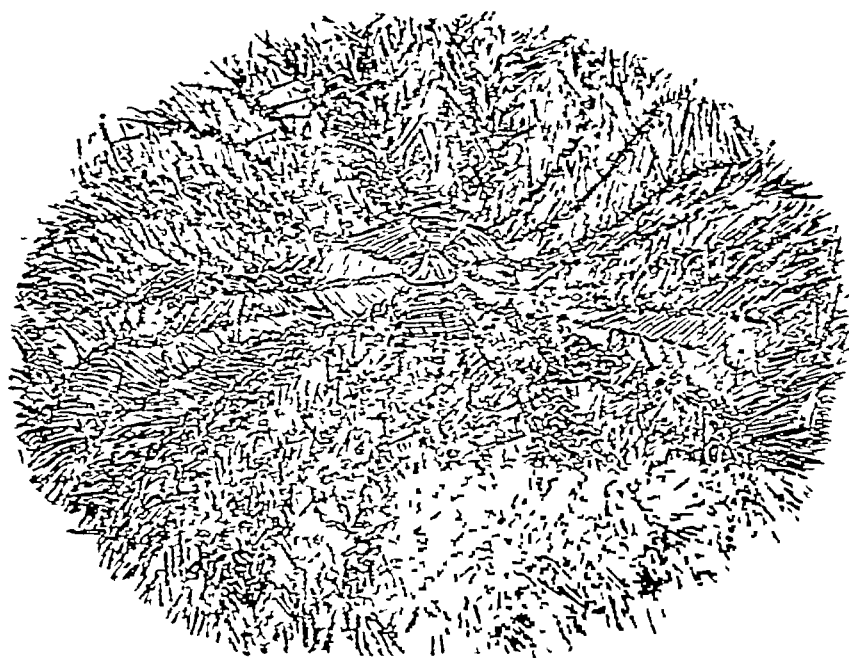
जलसाही

लोग कम नहाते हैं क्योकि जलसाहियो के काँटे नुकीले तो होते ही है, साथ ही साथ उनमें से कुछ जहरीले भी होते हैं।

ये काँटे हमारे लिए भले ही भयानक हो, लेकिन जलसाहियो के लिए तो ये ही उनके वचाव के साधन है। अन्य समुद्री जीव जव इन पर हमला करते है तो समुद्री साही ठीक उसी तरह अपने काँटे फैला देती है जैसे दवाव पडने पर हमारी जगल की साहियाँ करती है।

जलसाहियाँ समुद्र के किनारे रहती है, जहाँ वे अक्सर चट्टानो मे अपने छिपने के लिए सूराख वना लेती है जिसमे घुसकर वे दुश्मनो और तेज लहरो से वच जाती है।

इनका शरीर प्राय गोल होता है जो ऊपर और नीचे की ओर नारगी-सा चपटा रहता है। सारा शरीर शल्को से ढका रहता है जो आपस मे जुटकर उसको एक प्रकार की कडी खोल से ढके रहता है। दोनो चपटे सिरो मे से एक मे एक सूराख रहता है जिसमे से पाँच चमकीले दाँत-से निकले रहते है। इसी ओर से समुद्री साही अपने शरीर के भीतर वालू भर लेती है, जिसमे के छोटे-छोटे कीडे वगैरह तथा अन्य खाद्य पदार्थ तो इसके शरीर के भीतर रह जाते है और वालू खूव पिसकर वाहर निकल जाती है।

जलसाही की शकल साही-सी होती हो, सो वात नही है। इसके न तो पैर होते है, और न सिर ही। यह गोल काँटेदार गेंद-सी होती हे जिसके काँटे काफी तेज होते है। तारा मछली की तरह इसके सारे शरीर पर पतली-पतली नलियाँ रहती है जिन्हे यह भीतर वाहर कर सकती हे और इन्ही नलियो की हरकत से यह चलने-फिरने मे समर्थ होती है।

जलसाही के गोल शरीर के ऊपरी हिस्से पर छोटे-छोटे नेत्र होते है जो दो लाल विन्दुओ-से जान पडते है। इसका मुँह नीचे की ओर शिगाफ-सा होता हे। जलसाही के खाने, चलने और अपने शरीर को साफ रखने के आश्चर्यजनक तरीके है। इसके मुँह मे भी तारा मछली की तरह पाँच दाँत होते हे, जो ऊपर-नीचे कैंची की तरह चलकर सभी तरह की चीजो को काट देते है। इसका मुख्य भोजन समुद्र के घास-पात, मरी हुई मछलियाँ ओर जानवरो की लाश है। ये कभी-कभी अपनी सैकडो भुजाओ से छोटे-छोटे जानवरो को पकडकर अपने जवडो से काट डालती है। इन का पेट कभी नही भरता और ये हमेशा खाने ही की तलाश मे परेशान रहती है। यही कारण हे कि इनके दाँत जल्द घिसते जाते है, लेकिन प्रकृति ने इनकी जरूरत को देखकर इन्हे यह सहूलियत दी है कि इनके दाँत जैसे-जैसे घिसते है वैसे-वैसे नीचे से वढते भी जाते है।

जलसाहियो के वदन पर करीव ३,००० छोटे-छोटे, नोकीले काँटे रहते हैं जो उनको शत्रुओ से तो वचाते ही हैं, साथ ही साथ उन्हे लुढकने मे भी मदद देते हैं। इन्ही काँटो से ये वालू मे गढे वना लेती हैं जो दुश्मनो के आक्रमण के समय इनके छिपने के काम आते हैं।

जलसाहियाँ अक्सर समुद्र के किनारो पर ही पायी जाती हैं। ये प्राय दो इच चौडी होती हैं। इनके शरीर के काँटे आध इच लम्बे होते हैं। ये काँटे सफेद या धूमिल हरे रग के होते हैं जिनके सिरे वैगनी रहते हैं।

खड ६

कोषस्थजीव विभाग

(PHYLUM MOLLUSCA)

इस विभाग के प्राणियो का शरीर बहुत कोमल ओर अखडित होता हे जो एक कडी खोल या ढकने के भीतर सुरक्षित रहता है। इनका शरीर तीन मुख्य भागो मे बाँटा जा सकता है—१ सिर (Head) २ अधरपाद (Ventral Foot) ३ धड (Visceral Mass)। इन जीवो का अधरपाद तो इनके कडे कवच के बाहर निकल कर इनके चलने-फिरने मे सहायता भी देता हे, लेकिन इनका बाकी शरीर कडी खोल के भीतर ही रहता है।

इस विभाग मे सब तरह के घोघे, कटुए, शख, सीपी, सूती और अष्टबाहु आदि प्राणी रखे गये हैं जो बहुत छोटे-छोटे से लेकर ५-७ मन तक के होते हैं। इनकी सैकडो जातियाँ सारे ससार मे फैली हुई हैं जिनमे कुछ मीठे पानी मे और अधिकाश समुद्रो मे निवास करती हैं।

इस विभाग के प्राणी विभिन्न शकल-सूरत के होते हैं। फिर भी उन सबका शरीर कोमल होता है और वे अपने अधरपाद की सहायता से धीरे-धीरे चलते हैं। वैसे तो इसमे छोटे-बडे सभी प्रकार के जीव सम्मिलित हैं, लेकिन कुछ बडी जाति के स्क्विड (Giant Squid) तो इतने भीमकाय होते हैं कि उनकी लम्बाई ५० फुट तक पहुँच जाती है।

इस विभाग के सभी प्राणियो के कोमल शरीर को एक झिल्ली-सा आवरण ढके रहता है जो उनकी कडी खोल से जुटा रहता है। इन्ही दोनो के बीच इन प्राणियो की साँस लेने की इन्द्रिय रहती है। नीचे इन जीवो के निचले हिस्से से ही इनके कोमल शरीर का कुछ हिस्सा निकला रहता है जिसके सहारे ये इधर-उधर चलते-फिरते हैं। यही उनके पैर हैं।

एक बात और जो इनके बारे मे जानना जरूरी है, वह है इनके शरीर के ढाँचे का परिवर्तन। इनमें मे कुछ प्राणी ऐसे भी हैं जिनको अपनी असली शकल-सूरत तक आने मे कई परिवर्तनो का सामना करना पडता है।

इनमे से कुछ को छोडकर प्राय सभी जीव अडज होते हैं। ताल के कुछ कटुए ऐसे जरूर हैं जो अपने पेट के भीतर ही अडा सेकर बच्चा पैदा करते हैं। खुश्की मे रहनेवालो के अडे अक्सर चिडियो की तरह कडी खोल के भीतर रहते है, लेकिन पानी मे रहनेवालो के अडे मेढक-मछलियो की तरह लसलसे पदार्थ के समान होते हैं।

इन जीवो का मुख्य भोजन वैसे तो पानी की काई और छोटे-छोटे पौधे एव कीडे है, लेकिन इनमें से कुछ ऐसे भी है जो केकडो आदि को भी पकड लेते हैं।

इस विभाग को निम्नलिखित तीन श्रेणियो मे इस प्रकार बाँटा गया है—

१ उदरपादी-जीव श्रेणी—Class Gastropoda

२ परशुपादी-जीव श्रेणी—Class Pelicypoda

३ शीर्षपादी-जीव श्रेणी—Class Cephalopoda

उदरपादी-जीव श्रेणी में सब प्रकार के शख, कटुए और कौडी आदि प्राणी हैं जो मीठे और खारे पानी के निवासी हैं।

परशुपादी-जीव श्रेणी मे सीप और सूतियाँ एकत्र की गयी है जिनमे से कुछ तो मीठे पानी मे और कुछ खारे पानी मे रहती हैं।

शीर्षपादी-जीव श्रेणी मे मसि और अष्टबाहु आदि समुद्री जीव है जो अपने लबे और विशाल शरीर के लिए प्रसिद्ध हैं।

यहाँ इन तीनो श्रेणियो के कुछ प्रसिद्ध जीवो का वर्णन किया जा रहा है।

उदरपादी-जीव श्रेणी

(CLASS GASTROPODA)

उदरपादी-जीव श्रेणी कोषस्यजीव विभाग की सबसे बडी श्रेणी है। इस श्रेणी के जीव मीठे तथा खारे पानी के अलावा मिट्टी मे भी पाये जाते हैं। इनकी ऊपरी खोल ऐठी या घुमावदार होती है। इनके शरीर के सामनेवाले भाग मे इनका सिर रहता है जो शरीर से कुछ अलग रहता है। सिर के ऊपर दो आँखें रहती हैं और उन्ही

के आसपास इनके अगक (Tentacle) भी रहते है। इनके मुंह में फीते-सी ज़बान और वहुत से दाँत होते हैं। छेडे जाने पर ये अपने शरीर को सिकोडकर अपनी कडी खोल के भीतर कर लेते है और अपने मुखपाद के निचले चौडे भाग से खोल के द्वार को भी वद कर लेते है।

यहाँ कुछ प्रसिद्ध जीवो का वर्णन किया जा रहा है।

शख
(WHELK)

शख की एक नही अनेक जातियाँ है। ये सव समुद्री जीव है जो पिलछौह, भूरे, सफेद, राखी तथा और कई रग के होते हैं। किसी-किसी के तो धारी भी पडी रहती है और कुछ का शरीर चिकना और कुछ का खुरदुरा रहता है।
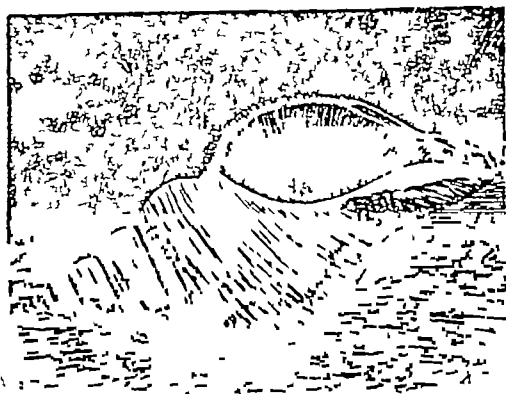
शख

शख अपने शरीर के निचले भाग से उसी तरह जमीन को पकडकर चलता है जैसे हमारे कटुए चलते है और खतरे को निकट देखकर यह भी तुरन्त अपने पूरे शरीर को समेटकर अपनी कडी खोल के भीतर कर लेता है।

शख को एकदम शाकाहारी जीव नही कहा जा सकता, क्योकि घासपात के अलावा यह घोघे और कटुओ को भी वडे स्वाद से खाता है। कटुए और सूती इत्यादि जब इसकी पकड मे आ जाते है तो यह अपने तेज़ रेतीनुमा दाँतो को उनकी कडी खोल मे घुसेड देता है और फिर उसी सूराख से उनके कोमल शरीर को चूस लेता है।

अपघे शरीर के कडे कवच के होते हुए भी शख दुश्मनो के हाथ न पडता हो, सो बात नही है। इसको तारा मछली वडी आसानी से मार लेती है। कई शखो को एक

माथ देखकर तारा मछली चुपचाप वहाँ पहुँच जाती है और घात पाते ही अपने वाहुओ मे एक साथ कई शखो को कस लेती है। इसके वाद वह धीरे-धीरे उन्हें अपने पेट के पास ले जाकर उनको अपने पेट की दीवाल से ढक लेती है। उसके पेट की इस दीवाल मे एक प्रकार का तेज रस निकलता है जो इनके कोमल शरीर को घुला-घुलाकर इनकी कडी खोल से अलग कर देता है।

शखिनी एक वार मे एक दो नही वल्कि हज़ारो की सख्या मे अडे देती है जो एक प्रकार के वर्र के छत्तो जैसी कडी खोल मे वद रहते है, लेकिन इन अडो मे से शुरू मे जो वच्चे निकलते है वे अडो को खा जाते है और इस प्रकार अन्त मे थोडे ही शख वन पाते है।

कौडी

(COWRIE SHELL)

कौडियो की एक दो नही करीव दो सौ किस्मे है जो ज्यादातर गरम समुद्रो मे पायी जाती है। हम लोग तो प्राय दो किस्म की कौडियाँ जानते है। एक सादी कौडी,

कौड़ी

जो कुछ दिन पहले सिक्को की तरह इस्तेमाल होती थी और दूसरी टुइयाँ कौडी जो चपटी और मजवूत होती है और जिससे अक्सर लोग दीवाली पर जुआ खेलते है। इनके अलावा एक प्रकार की वडी कौडी भी अक्सर उन लोगो के पाम दिखाई पडती है जो समुद्र के किनारे हो आये है। यह समुद्री कौडी कहलाती है और इसका कद लगभग ३–४ इच का होता है। इसका रग वैसे तो सफेद रहता है, लेकिन इसकी पीठ पर घनी भूरी चित्तियाँ पडी रहती है।

यह वताने की तो अव जरूरत नही रह जाती कि कौडी भी शख की तरह का एक

समुद्री जीव है जो अपने निचले भाग या पैर को खोल से वाहर निकालकर धीरे-धीरे कटुए की तरह खिसकती है और खतरा निकट देखकर अपने कोमल शरीर को कडी खोल के भीतर कर लेती है। इसकी खोल की दोनो ओर काफी चौडी खाल रहती है जो गोट-सी लगती है। इसकी ऊपरी कडी खोल ऐसी चिकनी होती है कि जान पडता है कि जैसे अभी किसी ने पालिश की हो। कौडियाँ विविध रगो की होती है जिनमें से कुछ का रग तो वहुत सुहावना रहता है।

इनकी और आदतें शखो से मिलती-जुलती होती है। इससे उन्हे फिर दुहराने की आवश्यकता नही जान पडती।

घोघा

(LAND SNAIL)

घोघे और कटुए भाई-भाई है, लेकिन घोघे ने अपने रहने का स्थान खुश्की को चुना है तो कटुओ ने पानी को। वैसे दोनो की आदतो मे ज्यादा फर्क नही रहता।

घोघो की एक नही अनेक जातियाँ है, लेकिन यहाँ जिस घोघे का वर्णन किया जा रहा है उसे हम अक्पर अपने वाग-वगीचो मे देखते है।

घोंघा
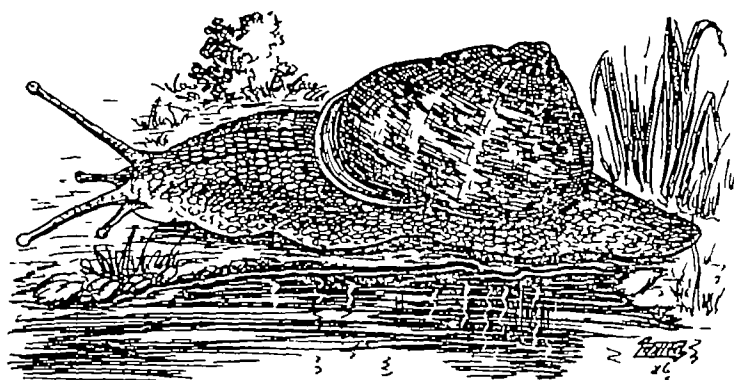
घोघे का शरीर वहुत कोमल होता है जिस पर एक तरह की पतली खाल चढी रहती है। इस खाल के ऊपर इसकी कडी खोल रहती है। यह पहली खोल इसकी

खोल के लिए अस्तर का काम देती है। घोघे का जो हिस्सा हम उसकी खोल के वाहर निकलता देखते है, वह उसका पैर है जिसके सहारे वह अपनी कडी खोल के साथ धीरे-धीरे आगे की ओर खसकता रहता है। इसका पैर आसानी से आगे की ओर फिसल सके, इसके लिए प्रकृति ने वहुत अच्छा प्रवध किया है। इसके पैर के आगे एक रसकी थैली रहती है जिसमे से इसके आगे वढते समय एक प्रकार का रस निकलकर गिरता है और उसी पर घोघा फिसलता जाता है। इसके गोलाई लिये हुए सिर पर मास के दो जोड लोथडे से वढे रहते है जो सीग से दिखाई पडते है। इन्ही सीगो के सिरे पर इसकी आँखे रहती है जिनको घोघा जव चाहता है भीतर की ओर कर लेता है, क्योकि ये सीग पोले होने के कारण उसी तरह भीतर को उलट जाते है जैसे हम मोजे को उतारते समय उलट लेते है।

घोघे की जवान भी अद्‌भुत होती है। उसके वीच मे एक लवा कडा फीता-सा रहता है, जिसमे डेढ हजार के लगभग महीन दाँते से कटे रहते है जो वास्तव मे घोघे के दाँत है। जव घोघा किसी पत्ती पर सरकता हुआ चलता है तो वह अपनी फीते जैसी जवान को उसकी सतह पर रगडकर उसका रस चूस लेता है।

घोघा रात्रिचारी जीव है जो दिन मे किसी पत्थर या पत्तियो के नीचे नम जगह मे छिपा रहता है और रात को वाहर निकलता है। यह खुश्क हवा और तेज रोशनी नही सह सकता। इसका कारण यह है कि यह अपनी खाल के छिद्रो से साँस लेता है और जैसे ही खाल की नमी समाप्त हो जाती है इसका जीना असभव हो जाता है। इसी कारण यह रात मे वाहर निकलता है जव सूर्य की तेज रोशनी मे इसकी खाल के सूखने का डर नही रह जाता।

पतझड के मौसम मे जव प्राय रसदार हरे पेड सूख जाते है तो घोघो को खाना वहुत कम मिलता है। इसीलिए जाडो मे ये अपनी खोल मे घुस जाते है और किसी निरापद स्थान में शीतशायी होकर पूरा जाडा सोकर विता देते है। सोने से पहले घोघे अपनी रस की थैली से काफी रस निकालकर किसी जड, दीवार या पत्थर से चिपक जाते है। जहाँ यही रस कडा होकर उन्हें जाडे भर उसी जगह पर जमाये रखता है। जाडे भर ये चुपचाप विना खाये-पिये और साँस लिये एक ही जगह पर पडे रहते है और गरमी का मौसम आने पर इनका चलना-फिरना फिर शुरू हो जाता है।

जून-जुलाई मे घोघे जमीन में ढेर के ढेर अडे देते है। ये अडे छोटी मटर के बराबर होते है जो देखने मे मोती-से चमकीले लगते है। अडो के फूटने पर उनमे से बहुत छोटे घोघे निकलते है जो कई परिवर्तनो के बाद बढकर पूरे घोघे बन जाते है।

कटुआ

(POND SNAIL)

कटुए मीठे पानी में रहनेवाले जीव है जो अपना सारा समय पानी में ही बिताते है। पानी मे मछलियो की तरह रहने पर भी ये मछलियो की तरह पानी के भीतर साँस नही ले पाते और इन्हें साँस लेने के लिए बार-बार पानी से बाहर आना पडता है।

कटुआ

कटुओ की बहुत-सी जातियाँ है, लेकिन शकल सूरत में भिन्न-भिन्न होने पर भी इनकी आदतें एक जैसी ही होती है। इनकी खोल घोघे की तरह पतली और हलकी होती है और भीतर का भाग बहुत कोमल होता है। कटुए के नीचे जो नरम हिस्सा बाहर निकलता और भीतर जाता है वह कटुए के पैर है और इसी से कटुआ पानी में घासपात या डठल और तनो को पकडकर चिपक जाता है। पानी के भीतर की सतह पर भी वह इसी नरम हिस्से की मदद से सरकता है और खतरे की घडी निकट आने पर इसको कडी खोल के भीतर समेट लेता है।

कटुए शाकाहारी जीव है जो छिछले पानी मे ही रहना पसन्द करते है। ये झुड में रहते है। इनकी मादा अपने अडे पानी में उगनेवाली घास या नरकुल की पत्तियो और डालियो पर देती है, जिस पर वे चिपक जाते है और वही फूटने तक लगे रहते है। ये अडे अर्धपारदर्शक और चिपचिपे होते है जो एक प्रकार की खोल में बद रहते है।

परशुपादी-जीव श्रेणी

(PHYLUM LAMELLIBRANCHIA)

इस श्रेणी में सब प्रकार की सीप और सूतियाँ रखी गयी हैं।

इस श्रेणी में सीप और सूतियाँ आती हैं जो अपने डिबिया की तरह बीच से खुल जानेवाले शरीर के कारण औरो से नही छिपती। इनका कोमल शरीर कडे ढक्कनो के भीतर रहता है। ये बहुत ही काहिल जीव हैं जिनमे से कुछ तो स्थायी रूप से किसी कडी वस्तु पर चिपके रहते है। इनमे कुछ जीव ऐसे भी हैं जो बालू या कीचड में अपने को गाड लेते हैं। इनका सिर कटुओ जैसा बडा नही होता। ये पानी मे रहने-वाले प्राणी हैं जिनमे से ज्यादा समुद्र के निवासी हैं। परन्तु कुछ ऐसे भी हैं जो मीठे पानी मे ही रहते हैं।

मनुष्यो के लिए इस श्रेणी के जीव बहुत काम के हैं। समुद्रो मे पायी जानेवाली मुक्ता-सीप जहाँ हमे बहुमूल्य मोती देती है, वही मीठे पानी की सूतियो के ढक्कनो से हम बटन चाकू आदि के बेंट तथा अन्य शोभा की वस्तुएँ बनाते हैं। इन सूतियो में भी हमे कभी-कभी मोती मिल जाते हैं, लेकिन वे छोटे और घटिया होते हैं।

यहाँ सूती (Fresh Water Mussel) तथा मुक्ता सीप (Pearl Oyster) का वर्णन किया जा रहा है।

सूती

(FRESH WATER MUSSEL)

सूती हमारे देश मे प्राय सभी बडे जलाशयो, नदियो तथा झीलो मे पायी जाती है, जहाँ इसे बालू मे आधी गडी हुई अवस्था मे देखना कुछ कठिन नही होता।

सूती दोनो ओर से चपटी होती है जो देखने मे अडाकार डिबिया-सी जान पडती है। इसके शरीर की कडी खोल, जो दो ढक्कनो जैसी होती है, एक बगल में आपस मे जुटी-सी रहती है। यह जुटा हुआ भाग ऊपर रहता है और खुलनेवाला बगली हिस्से पर या नीचे की ओर रहता है। इसी से सूती अपना कोमल पैर बाहर निकालकर धीरे-धीरे आगे की ओर सरका करती है। सूती के अगले भाग में उसका मुख-छिद्र रहता है और पिछले भाग मे भी दो छिद्र रहते हैं। इन छिद्रो मे से एक मे होकर जलधार इसके शरीर के भीतर जाती और दूसरे से बाहर निकलती रहती है।

सूती के चलने-फिरने का वही तरीका है जो घोघे और कछुए आदि कडी खोल के जीवो का होता है। ये भी अपने निचले भाग को खोलकर अपने गद्देदार पाद को बाहर निकाल लेती है और उसको बालू मे गडा देती है। फिर इसी पाद के सकोचन से उसका शरीर भी थोडा आगे की ओर खिसक जाता है और इस प्रकार बार-बार सकोचन करने से सूती धीरे-धीरे आगे की ओर खिसकती है।

सूती को अपने भोजन के लिए ज्यादा दौड-धूप नही करनी पडती। अन्य कडी खोलवाले प्राणियो की तरह यह पानी को अपने भीतर खीच लेती है और उसमें से खाद्य
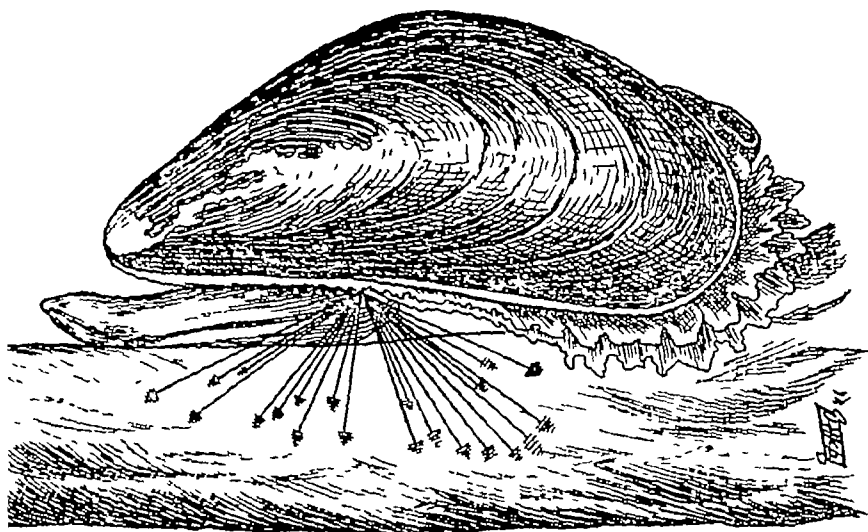
सूती

पदार्थ को ग्रहण करके अपना भरण-पोपण करती है। इमी जलधार से यह प्राणवायु को भी सोखती है।

सूतियाँ उभयलिंगी न होकर एकलिंगी होती है। नर के मासल पैर के ऊपरी भाग में एक वृषण होता है। मादा के ठीक इसी स्थान पर अडाशय रहता है। परिपक्व होने पर वृषण से शुक्रकीट पानी में फैल जाते है और मादा सूती के अडाशय में प्रवेश करके फलित हो जाते हैं। इसके उपरान्त यह फलित डिम्ब सूती के शरीर से बाहर निकलकर पानी में फैल जाते हैं और किसी मछली के सम्पर्क में आने पर

उसके गलफड से चिपक जाते हैं। वहाँ लगभग एक सप्ताह रहकर ये फूट जाते हैं और इनमें से मूतियो के छोटे बच्चे निकलकर पानी मे अपना जीवन बिताते है।

मुक्ता सीप

(PEARL OYSTER)

मुक्ता सीप गरम समुद्रो मे पायी जानेवाली सीपो मे से है जिनसे मोती प्राप्त होते है। इनकी बनावट और रहन-सहन सीपियो से मिलती-जुलती होती है, लेकिन ये उनसे कुछ बडी और अधिक चमकीली होती है। इनका ऊपरी खोल भी काफी मोटा होता है और भीतर भी एक स्तर रहता है जो मुक्तास्तर कहलाता है।
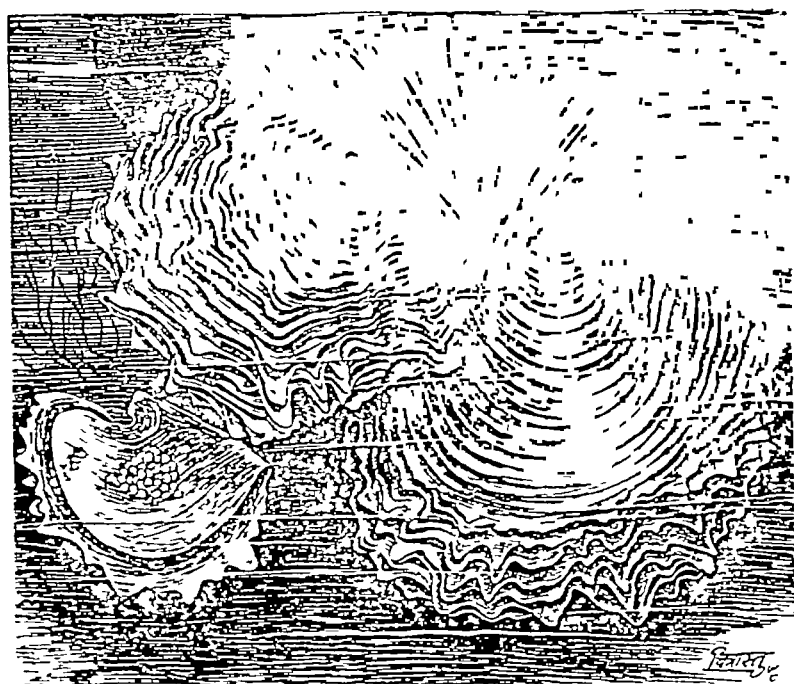
मुक्ता सीप

जब किसी प्रकार का परजीवी प्राणी या बालू आदि का कण मुक्ता सीप के कवच मे घुस जाता है तो मुक्ता-स्तर से एक प्रकार का रस द्रवित होकर उस वस्तु के चारो ओर लिपट जाता है जिसमे वह सीप के कोमल शरीर मे न गडे। यही चमकीला

गाढा रस जब सूख जाता है तो मोती का रूप ग्रहण कर लेता है और उसमे छेद करके मालाएँ तथा अन्य आभूषण बनाये जाते है।

इस प्रकार सीपियो से मोती एकत्र करने मे बहुत कठिनाई देखकर जापानवालो ने मोती प्राप्त करने का एक सरल उपाय ढूँढ निकाला। वे लोग मुक्ता सीपो को पालते है और उनके कवच के ढक्कन को फैलाकर उसके भीतर छोटे-छोटे ककड डाल देते है, जिसके चारो ओर मुक्ता-द्रव लिपटने लगता है और धीरे-धीरे वह सुन्दर गोल मोती बन जाता है। इस प्रकार के मोतियो को 'कल्चर' मोती कहते है। ये सुडौल जरूर होते है, लेकिन इनका दाम असल मोतियो से कम होता है।

मुक्ता-सीप हमारे समुद्रो के अलावा जापानी समुद्रो मे भी काफी सख्या मे पाये जाते है। इनकी और आदतें सूतियो से मिलती-जुलती होती है, इससे उन्हे दुहराने की आवश्यकता नही जान पडती।

शीर्षपादी-जीव श्रेणी

(CLASS CEPHALOPODA)

इस श्रेणी मे मसि तथा अष्टबाहु आदि वे समुद्री जीव रखे गये है, जो इस विभाग के सबसे विकसित प्राणी है। इन प्राणियो का शरीर कडे कवच से ढका नही रहता और इनका धड और सिर अलग-अलग जाहिर होते रहते है। इनकी आँखे मेरुपृष्ठी जीवो की आँखो की तरह होती है। इनके सिर और पैर एक ही में मिले रहते है और पाद के मध्य भाग मे इनका मुख-द्वार रहता है जो चारो ओर से अनेक बाहुओ से घिरा रहता है। प्रत्येक बाहु मे कई चूपक रहते है जिनकी सहायता से ये अपने शिकार आसानी से पकड लेते है। ये सब समुद्र के निवासी है जो तैरने मे बहुत उस्ताद होते है। तैरते समय ये आगे को न जाकर पीछे की ओर खिसकते है और इनके धड के दोनो ओर झालरनुमा फैले हुए सुफनो (Fins) से इनको तैरने में बहुत आसानी हो जाती है। यहाँ दो प्रसिद्ध जीव मसि (Cuttle Fish) और अष्टबाहु (Octopus) का वर्णन दिया जा रहा है।

मसि

(CUTTLE FISH)

मसि को यह नाम इसलिए दिया गया है कि इसके शरीर के भीतर मसिकोष्ठ होते है जिनके भीतर एक प्रकार की मसि या स्याही भरी रहती है। इन

मसिकोष्ठो या स्याही की थैलियो से ये एक प्रकार का काला पदार्थ निकालती है जिससे आक्रमणकारियो के सामने एक काला परदा-सा खडा हो जाता है और वे पानी मे सामने की वस्तु नही देख पाते। इस प्रकार इन्हे भागने का अच्छा मौका मिल जाता है और ये दुश्मनो की आँख मे धूल झोककर नौ दो ग्यारह हो जाती है।

मसि की एक नही अनेक जातियाँ है जो ससार के प्राय सभी समुद्रो में फैली हुई है। इनकी ज्यादा सख्या उथले समुद्रो में किनारे से थोडी दूर पर पायी जाती है।

मसि को देखकर यह नही कहा जा सकता कि ये भी उसी विभाग के जीव है जिसमे सीप और घोघे है क्योकि सीप घोघो की तरह इनके शरीर के ऊपर कडी हड्डी का कवच या खोल नही रहता और इनका शरीर मछलियो की तरह ऊपर से मुलायम रहता है। इनके शरीर के भीतर चौडी हड्डी जरूर रहती है जो अक्सर बाजारो में समुद्रफेन के नाम से बिकती है।
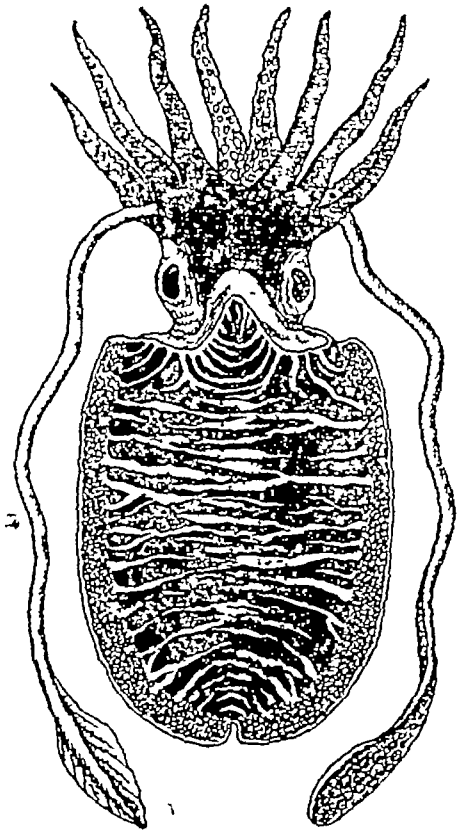
मसि

मसि बहुत ही प्रसिद्ध समुद्री जीव है जिसके शरीर की बनावट बहुत कुछ रबर के गरम पानी की बोतल की तरह होती है। इसके शरीर के किनारे की खाल इस तरह सिकुडी रहती है जैसे तकिए मे झालरदार गोट लगा दी गयी हो। इसके मुँह को चारो ओर से बाहुओ के पाँच जोडे घेरे रहते है जिनमें से चार जोडो पर कई मजबूत चूषक रहते है। शेष दोनो बाहुएँ औरो सी लम्बी होती है जिनके सिरे पर ही चूपक रहते है। मसि पहले अपने इन्ही दोनो लम्बी बाहुओ से शिकार पकडकर छोटी बाहुओ तक ले जाती है, जहाँ वह तमाम छोटी बाहुओ से जकडकर मुँह में पहुँचा दिया जाता है।

मसि की लम्बी बाहुएँ ही उसके हाथ हैं जो उसके लिए बहुत उपयोगी हैं। प्रकृति ने इसीलिए उनकी बचत का ऐसा प्रबन्ध किया है कि मसि जब चाहती है तब इन्हे समेट कर थैलियो मे कर लेती है।

मसि को जब तैरना होता है तो यह अपने शरीर के किनारे के झालरनुमा सुफनो से, जो इसके शरीर के दोनो ओर ऊपर से नीचे तक फैले रहते हैं, पानी काटकर लहराती हुई तैरती है। लेकिन किसी प्रकार का खतरा आने पर यह बडी तेजी से पीछे की ओर पिछडती है और पिछडते समय अपने शरीर से पानी मे एक प्रकार की गहरी स्याही छोडती जाती है, जिसका वर्णन प्रारम्भ मे हो चुका है।

मसि का मुख्य भोजन झीगे और केकडे है, जिन्हे यह बडी सावधानी से पकडती है। अपने शिकार को देखकर यह धीरे-धीरे उसकी ओर बढती है और निकट पहुँचने पर अपनी सिकुडी हुई लम्बी बाहुओ को उनकी ओर फेककर उन्हे पकड लेती है।

मसि अडा देने के समय बहुत किनारे तक आ जाती है। जहाँ वह समुद्री पेडो के तनो और शाखो पर ढेर के ढेर अडे दे देती है। ये अडे अगूर के गुच्छे की शकल के होते हैं।

अष्टबाहु

(OCTOPUS)

अष्टबाहु भी समद्रु के जीव है जिन्हे मसि के भाई-बन्धु कहना अनुचित न होगा। मसि का शरीर जहाँ बडा और बाहुएँ छोटी होती है वही मसि के शरीर का भाग छोटा और बाहुएँ काफी बडी रहती है। लम्बाई-चौडाई मे ये अष्टबाहु से कही बडी होती है।

अष्टबाहु, जैसा कि उनके नाम से जाहिर है, आठ बाहुवाले जीव है जो अपनी इन्ही बडी-बडी बाहुओ से अपना शिकार पकडते है। ये वैसे तो प्राय ८-१० फुट के होते है, लेकिन इनमे से कुछ की लम्बाई ४०-५० फुट तक की पायी गयी है।

कुछ को छोडकर प्राय सभी अष्टबाहु समुद्र के तल के निकट रहते हैं। ये उथले और गहरे दोनो प्रकार के समुद्रो मे रहते है लेकिन ये जहाँ भी रहते है प्राय समुद्र की
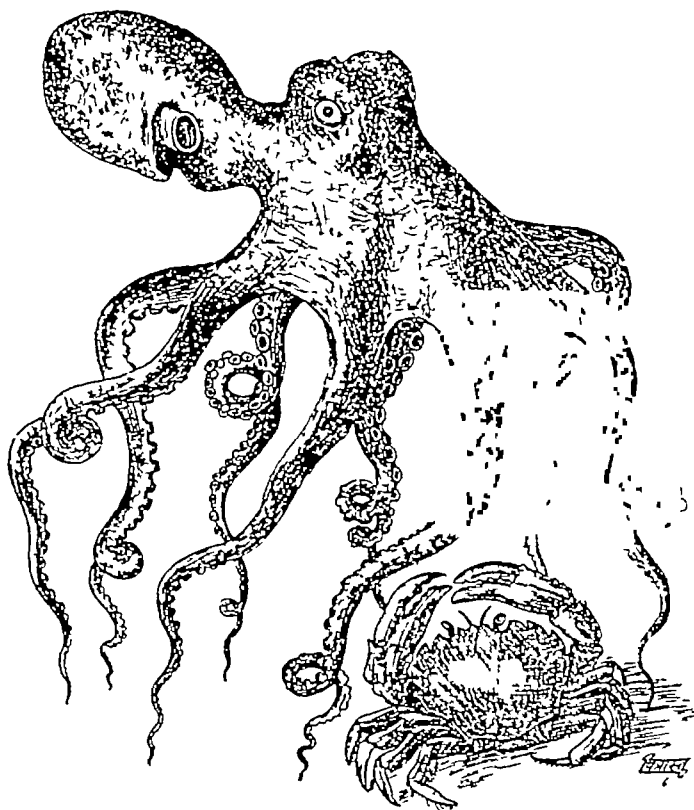
अष्टबाहु

तह पर ही रहते हैं। ये बहुत ही फुर्तीले और बलवान जीव है, जिनका मुख्य भोजन केकडे है। ये अपने शिकार को पकडते ही उसके शरीर मे एक प्रकार का विष भर देते है, जिससे शिकार का सारा शरीर सुन्न हो जाता है।

इनके शरीर मे मसि की तरह स्याही की थैली नही रहती, लेकिन इनका रहन-सहन, स्वभाव तथा अन्य बातें मसि से मिलती-जुलती होती है।

खड ७

सधिपादजीव विभाग

(PHYLUM ARTHROPODA)

सधिपादजीव विभाग जीव-जगत का सबसे बडा विभाग है। इसके अन्तर्गत लगभग सात लाख जातियो के प्राणी आते है, जो सारे ससार के जल-थल, आकाश, पाताल के अलावा पेड-पौधो तथा अन्य जीवो के शरीर मे परजीवी के रूप मे रहते है। पहाडो पर बीस हजार फुट की ऊँचाई पर और समुद्रो में भी लगभग इतनी ही गहराई में इन जीवो को देखा जा सकता है।

इनमें के अधिकाश जीव हमारे लिए हानिकर है, लेकिन केकडा, झीगा आदि कुछ ऐसे भी जीव है जो हमारी खाद्य-समस्या के सुलझाने में बहुत महत्त्व रखते है। यही नही, जहाँ एक ओर टिड्डियो आदि समुदाय में रहनेवाले जीव हमारी हजारो एकड तैयार फसल को देखते ही देखते साफ कर देते है वही रेशम के कीडो से हमे वस्त्र, मधुमक्खी से मीठा शहद और तितलियो की रगीन पोशाक से नेत्रो को सुख जरूर मिलता है। लेकिन ये थोडे से जीव उस हानि के शताश की भी पूर्ति नही कर सकते जो टिड्डियो, दीमको, चीटो तथा मक्खी-मच्छरो और पिस्सुओ के द्वारा होती रहती है।

हमें इन जीवो से भली-भाँति परिचित होने के लिए इनकी विशेपताओ को जान लेना चाहिए।

ये सब जीव सधिपाद जीव कहलाते है जिनका शरीर खडयुत (Segmented) होता है और उनमें अनेक सधियाँ या जोड रहते है। इनके शरीर के भीतर कठोर हड्डियो का ककाल नही रहता वरन् वह एक कडे जीवन-रहित खोल से ढका रहता है, जो इनके कोमल शरीर के लिए एक प्रकार के कवच का काम करता है। चूँकि इस खोल में जीवन नही रहता, इसमे उसकी वृद्धि इन जीवो की वृद्धि के साथ नही

होती और इमी कारण इन जीवो को थोडे-थोडे समय पर अपनी इस खोल को गिराकर नयी-नयी खोल धारण करनी पडती है।

इन जीवो की मासपेशी मे सकोचन की अद्भुत क्षमता रहती है। इमी काग्ण ये वडी द्रुतगति से चल-फिर और उड सकते है। इनके गरीर-खडो पर इनके पतले पतले पैर जोड़े मे रहते है जिनकी सख्या कभी-कभी काफी रहती है। ये इन्ही मे चलते, तैरते और अपनी रक्षा करते है। मुख के पास के इनके ये अवयव मुख के भीतर की ओर मुडकर इनके जवडे वन गये है जिन्हें ये अन्य जीवो की तरह ऊपर-नीचे न चलाकर दोनो वगल चलाकर कडी चीजो को भी वडी आसानी से कुतर डालते है।

इनके मिर के आगे एक या दो जोड लम्बे अगक (Tentacles) रहते है। यही इनकी स्पर्शेन्द्रियाँ है। इन जीवो को हवा मे साँस लेने की मुविधा ने इनके जीवन-क्रम को और भी गतिमान वना दिया है और इनमे से कुछ ने अपने समाज का मनुष्यो जैसा विकास किया है। इनकी आँखे, स्पर्शेन्द्रियाँ और चेतना-शक्ति वहुत ही विकसित होती है। चीटी, दीमक, मधुमक्खी और वर्र आदि जीवो ने अपने समाज का ऐमा सुन्दर सघठन किया है और उनके यहाँ ऐसा कडा अनुशामन है, जैसा मनुष्यो को किसी काल में भी न नसीव हुआ होगा।

इस विभाग के सभी प्राणी एकलिगी (Uni Sexual) होते है और उनके नर और मादा को सहज मे ही पहचाना जा सकता है। इनके अडो के फूटने पर इल्लियाँ या शिशुकीट निकलते है जो एकदम असहाय अवस्था मे रहते है और दिन भर अपने पेट भरने के अलावा जैसे उन्हें दूसरा कोई काम ही नही रहता। इल्ली कुछ दिनो तक पेड-पौधो की नरम पत्तियाँ खाती रहती है। फिर उमके वाद उमका गरीर एक कडे खोल के अन्दर वद हो जाता है और तव हम उसे मूककीट (Pupa) कहने लगते है। इस अवस्था मे वह किसी छोटे पेड की टहनी मे लटक जाती है और वही कुछ समय इमी अवस्था में विता देती है।

उसके वाद एक दिन सहसा यह कडा खोल फट जाता है और उसमे मे कोई सधिपाद जीव निकल आता है।

इस विभाग का वर्गीकरण करना वहुत कठिन था, फिर भी विद्वानो ने इसे चार श्रेणियो मे विभक्त किया है जो इस प्रकार है —

१ कठिनवल्किन श्रेणी—Class Crustacia

२ शतपादी श्रेणी—Class Myriapoda

३ कीट-पतग श्रेणी—Class Insecta

४ लूता श्रेणी—Class Arachnida

कठिनवल्किन श्रेणी मे सब प्रकार के केकडे और झीगे आदि जीव है जो पानी मे रहनेवाले प्राणी है और जिनमे से अधिकाश का समय समुद्रो मे ही बीतता है। इनका सिर (Head), धड या वक्ष (Thorax) अलग नही जाहिर होता और उनके दो जोड अगक (Feelers) स्पष्ट दिखाई पडते रहते है।

शतपदी श्रेणी मे सब प्रकार के गोजर और रामघोडी या गिजाई रखी गयी है। इनका सिर इनके वक्ष से अलग स्पष्ट जान पडता है और इनके अगक या स्पर्शेन्द्रियो का एक ही जोडा होता हे। इनका लम्बा शरीर छोटे-छोटे खड वृत्तो मे बॅटा रहता हे जिनमे प्रत्येक मे छोटे-छोटे पैर रहते है। गोजर के प्रत्येक खड मे एक जोड पैर होते है और रामघोडी के प्रत्येक खड मे दो जोड।

कीट-पतग श्रेणी इन दोनो श्रेणियो से बडी है। इसके अन्तर्गत हमारे सभी कीट-पतग आ जाते है। इन सबका शरीर तीन हिस्सो मे बॅटा रहता है।

१ सिर—Head

२ वक्ष—Thorax

३ उदर—Abdomen

सिर के भाग मे एक जोड स्पर्शेन्द्रिय होती है और इसी मे इसके दो जोड चिमटे, जबडे और ऑखे रहती है। वक्ष भाग मे इसकी तीन जोड टॉगे, दो जोड पख रहते है और उदर के भाग मे इसके पैर रहते है। उदर का भाग दस खडो मे विभक्त रहता है जिसे इसके पख ढके रहते है। इन्ही के भीतर कीडे का कोमल शरीर रहता है जिसमे उसके शरीर की पाचन-क्रिया होती है। कीडे के इसी भाग मे दो छिद्र रहते है जिसमे से होकर एक नली जाती है, जिससे कीडा सॉस लेता हे। इन सबके छ पैर होते है।

लूता श्रेणी मे सब प्रकार की मकडियॉ और बिच्छू रखे गये है जिनका सिर उनके वक्ष से मिला रहता है, लेकिन वह उदर वक्ष से अलग जाहिर होता रहता है। इनके अगक

या स्पर्शेन्द्रियाँ नही रहती और वक्ष भाग पर एक जोड चिमटे और चार जोड पैर रहते है।

आगे प्रत्येक श्रेणी का तथा उनमे से प्रसिद्ध जीवो का वर्णन किया जा रहा है।

कठिन-वल्किन श्रेणी

(CLASS CRUSTACIA)

इस श्रेणी के जीव समुद्री-कीट कहलाते है। ये सब समुद्र के निवासी तो नही है लेकिन इन सबका जीवन पानी मे जरूर बीतता है। ससार का कोई भी जलाशय न होगा, जहाँ इनकी कोई न कोई जाति न पायी जाती हो। इनमें बडे जीव तो केकडे अथवा झीगे के बराबर होते है लेकिन सबसे छोटे जीवो को देखने के लिए अणुवीक्षण यत्र का सहारा लेना पडता है। इनकी भिन्न-भिन्न जातियो की शकल-सूरत मे बहुत भेद रहता है और इनकी आदते भी एक-जैसी नही होती।

यद्यपि ये सब पानी मे रहनेवाले जीव है लेकिन इनमें से कुछ ऐसे भी है जो सूखे पर रहने और हवा मे साँस लेने लगे है।

ये सब जीव अडज है। अडा फूटने पर जब इनके बच्चे निकलते है तो उनकी और माँ-बाप की शकल मे बहुत भेद रहता है और कई परिवर्तनो के बाद कही जाकर वे अपने बडो के अनुरूप हो पाते है।

कर्कट श्रेणी काफी बडी है। इसमे इसे पाँच उपश्रेणियो मे विभाजित कर दिया गया है, जो कई वर्गों में बँटी है। लेकिन यहाँ इनमे से प्रसिद्ध कर्कट उपश्रेणी (Sub Class Malacostraca) का ही वर्णन किया जा रहा है जिनमे के जीव हमारे यहाँ काफी सख्या मे पाये जाते है।

कर्कट उपश्रेणी

(SUB CLASS MALACOSTRACA)

इस उपश्रेणी मे जो जीव एकत्र किये गये है उनमे यह समानता रहती है कि सिर के अलावा उनका शरीर दो हिस्सो मे बँटा रहता है जिन्हे हम धड और पेट कहते है। धड का हिस्सा आठ खडो मे विभक्त रहता है जिनमें से कुछ या सबमे

एक-एक जोड टाँगो का रहता है। पेट का या पिछला हिस्सा छ खडो में बँटा रहता है जिनमें से प्रत्येक मे एक जोड टाँगो का रहता है। कभी-कभी एक सातवाँ खड भी रहता है लेकिन उसमे टाँगे नही रहती।

इस उपश्रेणी को ११ वर्गो मे विभाजित किया गया है जिनमे से केवल एक कर्कट वर्ग का वर्णन यहाँ किया जा रहा है, क्योकि वह इस श्रेणी का सबसे बडा वर्ग है और उसमे प्राय हमारे यहाँ के सभी परिचित और प्रसिद्ध जीव आ जाते है।

कर्कट वर्ग

(ORDER DECAPODA)

यह वर्ग इस श्रेणी का सबसे बडा वर्ग है जिसमे यहाँ के सभी परिचित जीव एकत्र किये गये है।

इन जीवो की बनावट मे और अन्य वर्गो के जीवो की बनावट मे यह भेद रहता है कि इनके अगले हिस्से या धड मे के आठ खडो मे से अगले तीन हिस्सो के पैर इनके जबडे बन गये है और बाकी पाँच खडो के दस पैर, पैर का काम देते है। इन्ही पैरो मे से कुछ से ये चीजो को पकडने का काम लेते है। अगले हिस्से के इन पैरो की जड के पास इनके गलफड रहते है जिनसे ये साँस लेते है।

पिछले हिस्से के छ खडो की बारह टाँगे इनके तैरने के अवयव है जिन्हे तेजी से चलाकर ये पानी में इधर-उधर आते जाते है।

इनमें केकडे आदि कुछ जीवो का पिछला हिस्सा छोटा होता है और वह अगले हिस्से या धड के नीचे जुडा-सा रहता है जिसमे के पैरो से ये पानी की तह पर रेंगते है।

इस वर्ग के जीवो की मादा अपने पिछले हिस्से के पैरो पर अडे देती है जो उन्ही मे तब तक चिपके रहते है जब तक फूट नही जाते।

इन जीवो को पूर्णरूप से प्रौढ होते-होते अपने मे कई परिवर्तन करने पडते है और कुछ के शिशु अपने बडे और प्रौढ जीवो से शकल-सूरत मे एकदम भिन्न रहते है।

चूँकि यह वर्ग बहुत बडा है अत इसको ठीक से समझने के लिए इसके जीवो को तीन उप-परिवारों में बाँटना पडा है जो इस प्रकार है—

१ झीगा उपवर्ग--Sub order Macrura

२ हरमिट-केकडा उपवर्ग--Sub order Anonura

३ कर्कट उपवर्ग—Sub order Brachyura

यहाँ इनमे से पहले दो उपवर्गो का वर्णन दिया जा रहा है।

झीगा उपवर्ग

(SUB ORDER MACRURA)

इस उपवर्ग मे मुख्यतया दो प्रकार के जीव है—एक तो झीगे आदि जो पानी मे तेजी से तैर लेते है और दूसरे समुद्री झीगे आदि जो समुद्र के तल पर रेगते है। इसमे कुछ तो मीठे पानी के निवासी है और हमारे ताल-तलैयो तथा नदियो में पाये जाते है और कुछ ऐसे है जो अपना सारा समय समुद्रो मे ही विताते है।

इनका मास वहुत स्वादिष्ठ होता है। इनमे से यहाँ दो जीवो का वर्णन किया जा रहा है जिनमें से एक मीठे जल का वडा झीगा है जिससे हम भलीभाँति परिचित है।

समुद्री झीगा

(LOBSTER)

समुद्री झीगा समुद्र मे रहनेवाला जीव है जो अपने शरीर की कडी पोशाक मे ऐसा लगता है जैसे पुराने जमाने का सैनिक अपना जिरहवख्तर (कवच) पहने हो। निल्छौंह काले रग का यह जीव समुद्र के तल पर अपने शिकार के फिराक मे इधर-उधर घूमता रहता है और एक वार इसके मजवूत पजे की पकड मे जो भी आ गया, फिर उसका छूटना सभव नही।

समुद्री झीगे के शरीर की खोल कडी होकर भी सीप या कछुए की तरह कडी नही होती और न वह उसके लिए सीप कछुओ की तरह उसके खोल का काम ही करती है। उसके शरीर पर का कडा आवरण तो अलग-अलग टुकडो मे रहता है जिससे झीगो को इधर-उधर चलने या अपना वदन मोडने मे दिक्कत नही होती।

एक वडे टुकडे मे झीगे का सारा सिर ढका रहता है और उसके वाद ही इसका लम्वा शरीर रहता है जो छ उतार-चढाव के छल्लेनुमा टुकडो के आपस मे जुडने मे

वनता है। इसके वाद झीगे की दुम पखी-जैसी रहती हे जिसको इधर-उधर चलाकर झीगा पानी मे वडी आसानी से आगे वढता है। झीगे के सिर के आगे कुछ नोकदार हिस्सा वढा रहता हे जिसमे आरी-जैसा कटाव रहता हे और उसी के दोनो वगल उसकी वाहर निकली हुई आँखे ओर लम्बी मूछे रहती है जो उसकी स्पर्शेन्द्रियाँ है।

समुद्री झीगा
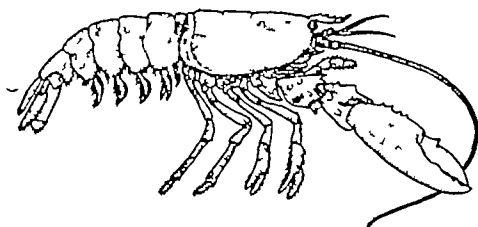
इस प्रकार झीगे का सारा शरीर कडी खोल से ढका रहने पर भी अलग-अलग टुकडो मे बँटा रहता हे जिससे उसे आगे पीछे चलने और तैरने मे बहुत आसानी हो जाती हे। यही नही, वह १५-२० फुट तक वडी आसानी से एक ही उछाल मे जा सकता हे।

समुद्री झीगे के नीचे की ओर पॉच जोड टॉगो के रहते है जिसमे से अगले दोनो पैर उसके हाथ या पजे हे। ये दोनो एक नाप के नही होते और इनमे से वायॉ वडा, चोडा और मजबूत होता है और दायॉ पतला और नोकीला रहता है। दाहिने पजे मे झीगा काटने ओर वाये से किसी कडी चीज को तोडने का काम लेता हे।

झीगे के शरीर के पिछले चारो छल्लो के नीचे एक-एक जोड पैरो का रहता है, जिसको चलाकर झीगा पानी मे तैरता हे। दुम भी तैरने मे सहायक होती है लेकिन वह पतवार की तरह झीगे के शरीर को इधर-उधर मोडती भी हे।

झीगे की दो मूछे तो छोटी होती है लेकिन दो लगभग झीगे के शरीर के वरावर लम्वी होती है। ये झीगे की स्पर्शेन्द्रियाँ है और झीगे के सोते समय भी ये इधर-उधर हरकत करती हुई खतरे की टोह लेती रहती है।

इसकी आँख भी कम विचित्र नही होती। दोनो आँखे एक डडी मे जडी-सी रहती है जिन्हे झीगा आगे-पीछे ओर इधर-उधर घुमा फिरा सकता है।

समुद्री झीगा की मादा, समय आने पर, एक वार मे लगभग तीस हजार अडे देती हे, जिन्हे वह अपनी तैरनेवाली टागो मे दवाये फिरती हे। समय आने पर ये अडे फूटते है और वच्चे माँ के पजे से छूटकर समुद्र की तह मे चले जाते है। वहाँ वे कुछ समय तक पडे रहते है ओर फिर पानी की सतह के ऊपर आकर तैरने लगते

है। ये आध इच के होते हैं और वडे चचल और झगडालू होते है। कभी-कभी ये आपस मे ही लडते हैं और एक दूसरे को खा जाते है। कुछ और वढने पर वे समुद्र के नीचे जाकर रहना शुरू कर देते हैं और दिन प्रतिदिन वढते जाते है। ज्यो-ज्यो इनकी वढती होनी है इनकी कडी पोशाक इनके लिए तग हो जाती है और इनको अपनी पोशाक वदलनी पडती है। इनके नीचे नयी पोशाक तैयार हो जाती है और ऊपर की पुरानी खोल केंचुए की खोल की तरह उतर जाती है। पहले यह पोशाक साल मे कई वार वदलती है, लेकिन वडे हो जाने पर झीगा साल मे एक वार ही पोशाक वदलता है।

झीगे वचपन मे ही इतने वडे नही हो जाते, फिर भी वे अपनी झगडने की आदत से वाज नही आते। जव ये लडते है, तो इनकी लडाई ऐसी भयकर होती है कि इनमें प्राय एक मर जाता है और नही तो इनका अग-भग हो जाता है। इनके जो अग टूट जाते या कट जाते है वे फिर नये सिरे से निकल आते हैं।

समुद्री झीगे का मुख्य भोजन पानी के कीडे-मकोडे और मछलियाँ आदि है। यह स्वय भी खाने के लिए काफी सख्या मे पकडे जाते है और इन्हे लोग वडे स्वाद से खाते हैं। उवालने पर इनका सिलछौंह रग वदल कर लाल हो जाता है।

झीगा

(PRAWN)

झीगा भी समुद्र का निवासी है, लेकिन इसकी कुछ जातियाँ हमारी नदियो मे भी पायी जाती है। यह शकल-सूरत मे समुद्री झीगे की तरह होकर भी कद मे उससे छोटा होता है। इसका कद डेढ दो इच से ज्यादा वडा नही होता और वदन का रग पिलछौंह वादामी रहता है। इसके भी दस जोड पैरो के रहते है और इसके सिर पर का कवच आगे की ओर वढकर लम्बे तेगे की तरह दिखाई पडने लगता है।
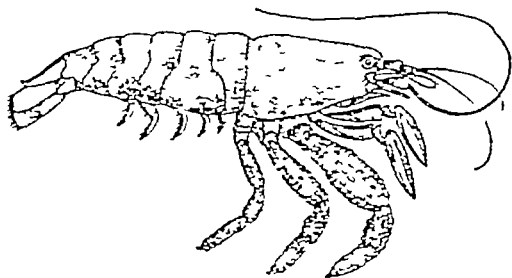
झींगा

इसके सिर के पास तीन जोड लम्बे स्पर्शेन्द्रियो के होते है और शरीर के प्रत्येक

खड के नीचे एक जोड पैरो का रहता है जिसके सहारे झींगा बडी खूबी से पानी में तैरता रहता है। इनकी दुम पखी के समान शकल की होती है, जिसको तैरते समय ये इधर-उधर चलाते रहते हैं।

झींगे उथले समुद्र मे न रहकर गहरे पानी मे रहना ज्यादा पसन्द करते हैं, लेकिन इनका शैशव काल पानी के किनारे ही बीतता है। इनकी और सब आदतें समुद्री झींगे की तरह होती हैं। इससे उन्हे दुहराने की आवश्यकता नही जान पडती। झींगियो को पानी के नीचे का तल पसन्द है तो झींगे पानी के ऊपर ही तैरते रहते हैं। इन दोनो का मास बहुत स्वादिष्ठ होता है। झींगे का मास पकाने पर गुलाबी रग का हो जाता है, लेकिन झींगी का हमेशा भूरा ही रहता है।

ये झींगे अडज जीव हैं, जिनके अडो से निकलने पर बच्चे कई परिवर्तनो के बाद झींगे के असली स्वरूप को पाते हैं।

झींगी

(SHRIMP)

झींगी वैसे तो समुद्र की निवासिनी है लेकिन इसकी कुछ जातियाँ मीठे पानी मे भी पायी जाती हैं। समुद्र के उथले पानी मे इन्हे तैरते देखना कठिन नही, लेकिन ये इतनी तेज और फुर्तीली होती हैं कि इन्हे पकडना आसान काम नही है। इनका शरीर
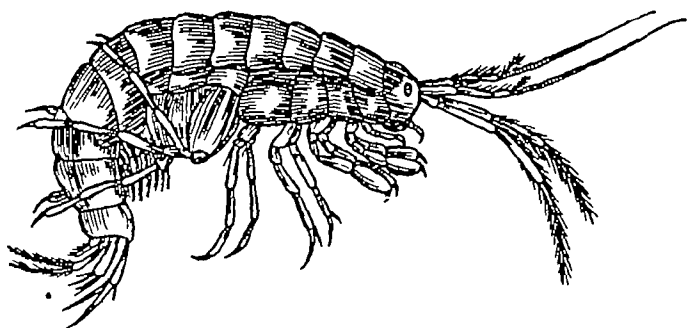
झींगी

पारदर्शी होने के कारण इन्हे जल्द नही देखा जा सकता, लेकिन जब ये अपने पैर चलाकर तेजी से इधर उधर जाती हैं तो ये हमारी निगाह के तले पड ही जाती हैं। छिछले

पानी मे ये नीचे के तल पर वालू में बैठकर आराम करती हैं और इस समय वालू के रग मे ऐसा छिप जाती है कि उन्हे देखना आसान नही होता ।

झीगी की शकल-सूरत वहुत कुछ झीगे से मिलती-जुलती होती है, लेकिन इनका शरीर झीगे से चपटा होता है और इनके पैर भी उससे छोटे रहते हैं। इनके सिर के आगे झीगे की तरह तलवारनुमा भाग भी नही रहता और न इनकी दुम ही झीगे की तरह पखीनुमा होती है ।

झीगी अडज जीव है जिसका मास वहुत स्वादिष्ठ होता है । अडो के फूटने पर छोटे-छोटे वच्चे निकलते हैं जिन्हें अपने माँ-वाप के अनुरूप होने मे कई परिवर्तन करने पडते हैं।

कर्कट उपवर्ग

(SUB ORDER BRACHYURA)

इस उपवर्ग में सव प्रकार के केकडे रखे गये है जिनमे से कुछ जमीन पर रहनेवाले हैं तो कुछ पानी के निवासी। इन सवका निचला भाग झीगा उपवर्ग के जीवो के समान लम्वा न होकर चौडा रहता है और इनका पिछला हिस्सा या पेट धड़ के पीछे न होकर उसके नीचे जुटा रहता है जिसमे इनके रेगने के लिए पैर रहते हैं। मादा के ये पैर कुछ वडे होते हैं क्योकि वह इन्ही पैरो के समूह में अपने अडे देती है जो फूटने तक उसी में चिपके रहते हैं।

इनके वैसे तो अनेक परिवार हैं लेकिन उनमे से यहाँ केवल एक प्रसिद्ध केकडे का वर्णन दिया जा रहा है ।

केकडे

(CRABS)

केकडे समुद्र-तट के वहुत परिचित और अद्भुत जीव हैं जिनकी अनेक जातियाँ सारे ससार मे फैली हुई हैं। इनकी कुछ जातियाँ मीठे पानी और सूखे मे भी रहती हैं लेकिन ज्यादा सख्या उन्ही की है जो समुद्र के निवासी हैं।

केकडे समुद्र के किनारे घास-फूस के वीच मे अथवा पानी मे डूवी हुई चट्टानो के आस-पास रहना ज्यादा पसन्द करते हैं, जहाँ पानी ज्यादा गहरा नही होता। ये

अक्सर सूखे पर भी टहलते हुए दिखाई पडते है और देखे जाने पर अपने चिमटे और टाँगे सिकोडकर ऐसी चुप्पी साध कर पड जाते है कि जैसे मर गये हो। कुछ देर बाद ये धीरे से अपने पैरो को बाहर निकाल कर ऐसी सफाई से अपने को बालू मे गाड लेते है कि सिवा उनकी स्पर्शेन्द्रियो (Antennae) के और कोई भी अग बाहर नही रह जाता।

केकडा

छेडे जाने पर केकडे बहुत क्रुद्ध हो उठते है और बडी कर्कश आवाज करते है जो उनके क्रोध को स्पष्ट जाहिर करती है। निकट जाने पर वे अपने चिमटो से वार करने मे भी नही चूकते।
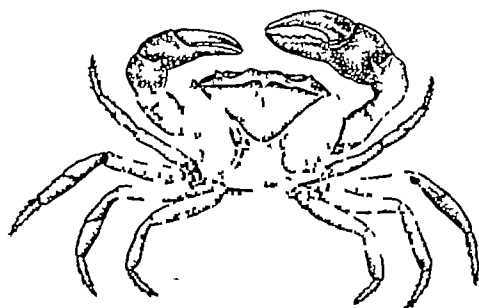
केकडे का शरीर गोल डिब्बे की तरह होता है जो बहुत मजबूत और कडा रहता है। इनके भी झीगे की तरह १० पैर और एक जोड चिमटे का रहता है। चिमटा बहुत मजबूत होता है और इससे केकडा कडी चीजो को बडी आसानी से तोड डालता है। इसकी आँख भी झीगे की तरह एक पतली नली पर स्थित रहती है, जिसे यह अपनी इच्छानुसार आगे-पीछे कर सकता है। यह अपने एक चिमटे से शिकार को पकडता है और दूसरे से उसे काटकर टुकडे-टुकडे करके मुँह तक पहुँचा देता है।

भोजन के मामले में केकडो को सर्वभक्षी कहना ठीक होगा क्योकि ये सब कुछ खा लेते है। कटुए, घोघे और सूतियो की कडी खोल को तो वे बडी आसानी से तोड डालते है और उनका नरम मास नोच-नोच कर खा लेते है। ये अपने को बालू मे गाडकर शिकार के लिए बैठे रहते है और किनारे पर किसी मछली को देखते ही उसे पकड लेते है। इसके अलावा ये मरी हुई मछलियो से भी अपना पेट भरते रहते है। किनारे पडी हुई मछली की लाश को केकडे गिद्धो की तरह घेर लेते है और उसके लिए आपस मे बहुत झगडा करते है। खाने के मामले के अलावा भी केकडे कभी-कभी आपस मे लड बैठते है और उस समय ये इतने खूँखार हो जाते है कि हारे हुए केकडे को जीतनेवाला केकडा मारकर खा जाता है। बडे केकडे, वैसे भी, भूख

लगने पर छोटे केकडो से अपना पेट भरते है और केकडी तो इतनी गुस्सैल होती है कि ज़रा-सी बात पर ही दूसरे केकडो की टाँग या चिमटे को काटकर खा जाती है।

केकडे का शरीर, जैसा ऊपर वताया गया है, एक कडी डिविया जैसे खोल मे वन्द रहता है जिसके किनारे कटावदार रहते है। यह खोल कई टुकडो के जुटने से वनता है और इसी के ऊपरी अगले हिस्से से इसकी स्पर्शेन्द्रियाँ निकली रहती है और इन्ही के पास इसकी आँखो के गढे रहते है। केकडे की दुम छोटी और चौडी होती है, जो भीतर की ओर मुडी रहती है और ऊपर से दिखाई नही पडती।

केकडे चलने-फिरने के लिए अपने चार जोड पैरो को ही इस्तेमाल मे लाते है, पाँचवें और पहले जोड को हम पैर न कहकर हाथ ही कहे तो ज्यादा ठीक होगा, क्योकि इसी से केकडे अपना शिकार पकडते है और हाथो की तरह इस्तेमाल करके उसे इन्ही से नोच-नोच कर खाते है। जमीन पर चलते समय केकडे इन्हे ऊपर की ओर उठाये रहते है, क्योकि हाथी की सूँड की तरह ये भी उनके वहुत उपयोगी अग है। इसीलिए प्रकृति ने भी इन्हें यह सुविधा दी है कि एक वार इनके चिमटे या टाँगें कट जाने पर फिर उसी स्थान पर दूसरी टाँगें या चिमटे निकल आते है।

केकडे अडज जीव है जो अपने अडो को तव तक अपने पैरो के वीच में दावे रहते है जव तक वे फूट नही जाते। अडो के फूटने पर उनसे अजीव शकल के वच्चे निकलते हैं और उनकी शकल केकडो से एकदम भिन्न रहती है।

सव केकडे खाने के काम मे आते हो, सो वात नही है। खाये जानेवाले केकडो (Edible Crabs) की कुछ खास जातियाँ होती है। इनका ऊपरी हिस्सा हलके कत्थई रग का और नीचे का एकदम सफेद रहता है। इनके पैर लाल रहते है जिनका सिरा काला रहता है। ये लगभग एक फुट के हो जाते है। इनका मास वहुत स्वादिष्ठ होता है। इनकी मादा किनारे पर आकर अण्डे देती है जो अपने आप फूटते है और जिनमे से वच्चे निकलकर पानी मे चले जाते है।

हरमिट केकड़ा

(HERMIT CRAB)

हरमिट केकडा अन्य केकडो से इसलिए भिन्न होता है कि उसके शरीर का खोल कडे आवरण से ढँका नही रहता और उसे अपनी रक्षा के लिए मरे हुए शख, घोंघे या

कटुए के खाली खोल के भीतर घुसकर उसी को अपना खोल बनाकर रहना पडता है। यह केकडा अपने शरीर के कोमल भाग को निर्जीव खोल के भीतर कर लेता है और अपना दाहिना चिमटा, जो बाये से काफी बडा रहता है, बाहर रखता है। उसके चार पैर भी बाहर निकले रहते हैं, जिनके सहारे वह दूसरे के निर्जीव खोल को अपनी पीठ पर लादकर इधर-उधर चलता-फिरता रहता है। खतरे के समय अपने बडे चिमटे से वह खोल के मुख को बन्द कर लेता है और एकदम उसी खोल मे समा जाता है। छोटा रहने पर वह कटुए और घोघे आदि का खोल इस्तेमाल करता है, लेकिन प्रौढ
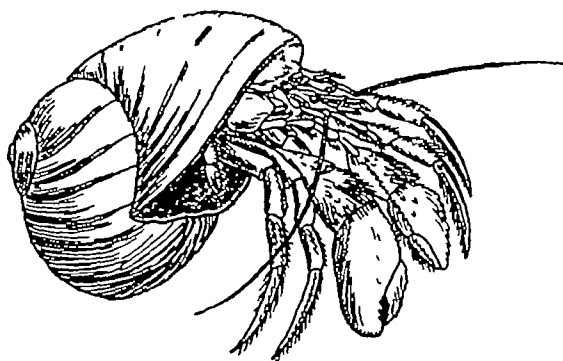
हरमिट केकडा

हो जाने पर, जब उसका कद लगभग ३ इच का हो जाता है, वह किसी शख के खोल को पसन्द करके उसी मे घुस जाता है। उसकी पीठ कुछ झुकी हुई रहती है, जिससे वह शख के भीतर ठीक तरह से बैठ जाय। यही नही, उसके शरीर के पिछले हिस्से पर दो हुक भी रहते है, जो शख के खोल को बडी मजबूती से पकडे रहते है।

हरमिट केकडा हमारे समुद्रो में काफी सख्या मे पाया जाता है जिसका अधिक समय इधर-उधर चलने-फिरने मे ही बीतता है। अण्डे से बाहर निकलने पर इसके भी बच्चे छोटे-छोटे तथा अजीब शकल-सूरत के होते है जो थोडे ही दिनो मे बढ जाते है। चौथाई इच के होते ही वे अपने लिए खोल ढूंढने लगते है और किसी के छोटे खोल पर कब्जा करके उसी मे रहने लगते है। कुछ और बढने पर वे बडा खोल तलाशते है और इसी प्रकार उनकी खोलो की अदला-बदली चलती रहती है। अन्त में शख का खोल उनको आजीवन शरण देता है।

कभी-कभी ये केकडे एक दूसरे का खोल देखकर उसके लिए लडने लगते है और जो मजबूत होता है वह कमजोर को उसके खोल से निकालकर उस पर अपना अधिकार जमा लेता है।

इनकी और सब बाते अन्य केकडो की ही तरह होती है, अत उन्हे पुन दुहराने से कोई लाभ नही है।

शतपदी श्रेणी

(CLASS MYRIAPODA)

शतपदी श्रेणी मे सब प्रकार के गोजर और रामघोडियाँ एकत्र की गयी है। इन सबकी एक नही हजारो जातियाँ है जो सारे ससार में फैली हुई है।

इनमे से प्राय सभी खुश्की पर रहती हैं और गरम तथा ठडे सभी देशो मे इनको देखा जा सकता है।

ये सब लम्बे आकार की होती हैं जिनका शरीर गोल छल्लो के आपस में जुडने से बना रहता है। हर एक छल्ले के नीचे एक जोड टाँगें रहती है, जो महीन बाल जैसे इनके शरीर के नीचे लटकती रहती हैं।

इनका धड सिर के आगे साफ जाहिर रहता है जैसे इनके शरीर के कई छल्ले आपस मे जुटकर एक हो गये हो।

इस श्रेणी को दो मुख्य वर्गो मे इस प्रकार बाँटा गया है—

१ शतपदी वर्ग—Order Chilopoda

२ सहस्रपदी वर्ग—Order Diplopoda

आगे इन दोनो वर्गो का और उनमे के प्रसिद्ध जीवो का वर्णन दिया जा रहा है।

शतपदी वर्ग

(ORDER CHILOPODA)

इस वर्ग में सब प्रकार के गोजर है जो हमारे परिचित जीव है। ये प्राय भूरे रग के होते हैं और अक्सर बाग-बगीचो में या पुराने घरो मे कूडा-कर्कट के नीचे पाये जाते है। जाडे में ये अपने को मिट्टी के नीचे गाड लेते है।

इनका शरीर चपटा होता है और इनके विपदत रहते हैं लेकिन इनका विप घातक नही होता। इनके शरीर के प्रत्येक खड मे एक जोड टाँगे रहती है।

गोजर मासाहारी होते है जो छोटे-मोटे कीडे-मकोडो से अपना पेट भरते है। यहाँ अपने यहाँ के प्रसिद्ध गोजर का वर्णन किया जा रहा है।

गोजर

(CENTIPEDE)

गोजर भी हमारा वहुत परिचित जीव है। विच्छू की तरह विपैला न होने पर भी हम उससे डरते है क्योकि उसके काटने से उस स्थान पर खुजली होने लगती है और सूजन भी हो जाती है।

गोजरो को ठडी जगह बहुत पसन्द है, इसी लिए ये अक्सर खर-पतवार या कूडे के ढेर के नीचे छिपे रहते है। मिट्टी खोदे जाने पर भी ये हमे अक्सर दिखाई पडते है। जाडो मे ये अपने को मिट्टी मे गाड लेते है और वही रहकर पूरा जाडा काट डालते
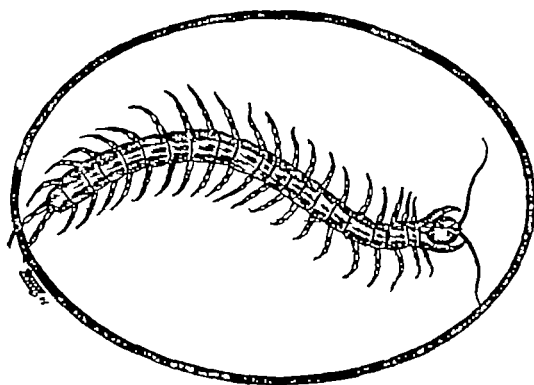
गोजर

है। इनकी एक नही अनेक जातियाँ है जो ससार के सब स्थानो मे फैली हुई है। ये छोटे-वडे सभी आकार के होते ह। दक्षिणी अमेरिका मे पाया जानेवाला गोजर एक फुट से कम लम्बा नही होता। हमारे यहाँ तो ये ४-५ इच के ही देखे जाते है जिनका चपटा शरीर बहुत से छल्लो के जुडने से वना रहता है। शरीर के इन छल्लो में

प्रत्येक में एक-एक जोड टाँगें होती हैं। सम्पूर्ण टाँगे कभी-कभी सख्या मे तीन सौ से ऊपर तक चली जाती हैं।

गोजर का शरीर भूरे रग का रहता है, लेकिन इसका सिर लाल होता है। यह मासाहारी जीव है जो अपना पेट छोटे कीडे-मकोडो से भरता है। गोजरो को कनखजूरा भी कहा जाता है। ये रामघोडियो की तरह सुस्त न होकर वहुत तेज होते हैं। इनके अण्डा देने का समय जून से अगस्त तक रहता है। मादा को वहुत सतर्क रहना पडता है क्योकि इनका अण्डा निकलने पर नीचे तक दो हुकनुमा अग उसे कुछ समय तक रोके रहते हैं। यदि नर ने अण्डे को देख लिया तो वह मादा को पकडकर अण्डे को खा डालता है। मादा अण्डे के वाहर निकलते ही उसे नर से वचाने के लिए उससे अलग हट जाती है और अण्डे को नीचे के हुको और पैरो से पकडकर धूल मे खूव लोटती है। अण्डे के ऊपर लसलसा पदार्थ लगा रहता है जिस पर मिट्टी चिपक जाने से फिर उस पर जल्द नर की निगाह नही पडती। मादा अण्डे को जमीन पर छोड देती है जहाँ से वह अपने आप ही फूटता है और उसमें से शिशु गोजर निकलता है। शुरु में इसके छं जोड पैर और जहर का डक मौजूद रहता है। फिर धीरे-धीरे सव पैर निकल आते हैं और तव वह पूर्णरूप से गोजर वन जाता है।

सहस्रपदी वर्ग

(ORDER DIPLOPODA)

इस वर्ग मे सव प्रकार की रामघोडियाँ रखी गयी हैं, जो हमारे यहाँ वर्पा काल मे काफी सख्या मे दिखाई पडती हैं।

इनका शरीर गोलाई लिये रहता है और इनके शरीर के खडो मे से हर एक के नीचे एक-एक जोड टाँगें तो रहती ही हैं, लेकिन हर पाँच खडो के नीचे टाँगो की सख्या दुहरी रहती है।

ये शाकाहारी जीव हैं और वहुत से पैरो के कारण इनकी चाल वहुत धीमी होती है।

इनकी मादा मई से जुलाई के वीच में अण्डे देती है, जो जमीन मे गाड दिये जाते हैं और वहाँ पडे-पडे फूटते हैं।

रामघोडी
(MILLIPEDE)

रामघोडियो को वर्षाकाल में हम अक्सर खेतो और मैदानो में इधर-उधर फिरते देखते है। इनको सहस्रपदी भी कहा जाता है, लेकिन इसका यह अर्थ नही है कि इनके एक हजार पैर होते है। हाँ, गोजरो से तो इनके पैरो की सख्या जरूर ज्यादा रहती है, लेकिन ये गोजरो की तरह तेज नही चल पाती।

रामघोडी

रामघोडी का दूसरा नाम गिजाई भी है। इनकी वैसे तो कई जातियाँ है, लेकिन हमारे यहाँ छोटी और बडी दो तरह की रामघोडियाँ अक्सर दिखाई पडती है। बडी को लोग ग्वालिन भी कहते है।

रामघोडी शाकाहारी जीव है जिसका मुख्य भोजन नरम पौधो के डठल और जडो का रस है। गोजर की तरह इनके तनिक भी विप नही होता, लेकिन छेडे जाने पर ये अपने शरीर से एक प्रकार का दुर्गन्धित रस निकालती है जिससे इन्हें छूने को जी नही करता।

गिजाइयो का शरीर गोजर की तरह चपटा न होकर गोल रभाकार रहता है। इनका सारा शरीर अनेक खडो में बँटा रहता है। प्रत्येक खड में टाँगो के दो जोडे रहते है जो बहुत पतले और महीन होते है। ये पैर उसके बगल से नही बल्कि नीचे से निकलते है।

गिजाइयाँ कत्थई भूरे रग की होती है और वरसात में कही-कही इनके ढेर के ढेर वच्चे दिखाई पडते है। इनके अण्डा देने का समय मई से जुलाई तक रहता है। मादा समय निकट देखकर अपने थूक और मिट्टी से जमीन के भीतर एक सुरग-सी वनाती है जिसमें एक ओर एक छोटा छेद रहता है। इसी छेद में मादा ६० से १०० तक अण्डे देती है जो एक प्रकार के लसीले पदार्थ से आपस में जटे रहते है। अण्डे

देने के वाद मादा छेद को वद कर देती है और अण्डो को अपने आप फूटने के लिए छोडकर चली जाती है। लगभग १२ दिनो वाद अण्डे फूट जाते हैं और छोटे-छोटे वच्चे निकलते हैं जिनके केवल तीन जोड पैरो के रहते है। ये जैसे-जैसे वढते है इनके दस-दस करके पैर भी निकलते आते है और थोडे ही दिनो मे ये प्रौढ गिजाई का रूप धारण कर लेते है।

कीट-पतग श्रेणी

(CLASS INSECTA)

कीट-पतग श्रेणी मे उन जीवो को एकत्र किया गया है जो कीडे-मकोडे कहलाते है। इनकी लगभग सवा छः लाख जातियाँ सारे ससार में फैली हुई है।

ये ऐसे सधिपादजीव है जिनका शरीर सदा तीन भागो मे विभाजित रहता है —

१ सिर—Head

२ वक्ष—Thorax

३ उदर—Abdomen

कीड़े का शरीर

पहले या सिर के भाग में दो स्पर्शसूत्र (Antennae), दो जोडे चिमटे, जिनसे यह हाथ का काम लेता है, दो सयुक्तनेत्र (Compound eyes) तथा मुख भाग (Mouth parts) रहते है। यह छ खडो के एकीकरण से वनता है।
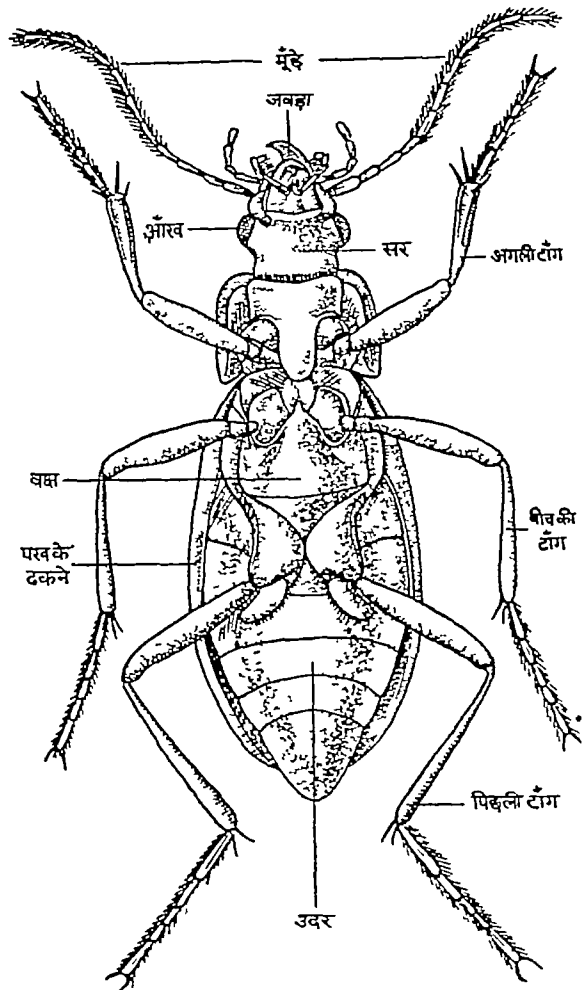
दूसरे भाग मे, जो वक्ष-भाग कहलाता है और जो सदैव तीन खडो के एकीकरण से बनता है, तीन जोडी टॉगे और दो जोडे पक्ष (Wings) रहते है। टॉगो मे तीन हिस्से रहते है जिनमे ऊपर का हिस्सा जॉघ, बीच का फिल्ली और नीचे का पैर कहलाता है।

तीसरा भाग, जो उदर-भाग कहलाता है, दस या ग्यारह खडो का होता है। इन्हे इनके पख ढके रहते है। इसी भाग के भीतर कीडे के कोमल अवयव रहते है और यही कीडे का भोजन पचता है। जनन-छिद्र (Genital aperture) के समीप उदर के पिछले सिरे पर गुदद्वार (Anus) स्थित रहता है। सॉस लेने के लिए कीडे के इसी हिस्से मे दो छिद्र रहते है जिनमे से लेकर पेट तक एक-एक नली जाती है जिससे कीडा सॉस लेता है।

कीडे-मकोडो की इतनी जातियॉ हमारी पृथ्वी पर फैली है कि उनका गिनना हमारे लिए एक कठिन समस्या है। इसीलिए यदि उनके बारे मे हम अन्य जीवो से कम जानकारी रखते है तो कोई आश्चर्य की बात नही है।

यह सब होते हुए भी हम उनके बारे मे मोटी-मोटी बाते तो जान ही सकते है। उनकी बनावट, उनकी खूराक, उनकी आदते और उनका रहन-सहन ही इतना रोचक है कि उसका थोडा-बहुत परिचय ही हमे आश्चर्य मे डाल देने के लिए पर्याप्त है।

पशु-पक्षियो का शरीर हड्डी के ढॉचे पर खडा रहता है अर्थात् उनके शरीर के भीतर हड्डी की ठठरी रहती है जिसके ऊपर मास, चरबी, नसे और खाल जडी रहती है, लेकिन कीडो मे यह बात नही रहती। उनके शरीर का ढॉचा भीतर न होकर कडे खोल की शकल मे ऊपर रहता है जिसके भीतर उनका कोमल अग छिपा रहता है। इस ऊपरी खोल से जहॉ कीडो के अग सुरक्षित रहते है वही यह दिक्कत भी रहती है कि वे पशु-पक्षियो की तरह बढ नही सकते।

नतीजा यह होता है कि वे ज्यो-ज्यो बढते है त्यो-त्यो अपना पुराना कडा खोल केचुल की तरह उतार फेकते है और उनके कोमल शरीर को नया खोल ढक लेता है।

कीडो के बच्चो और बडो मे शकल-सूरत मे नही, बल्कि कद मे फर्क रहता है। अण्डा फूटने पर टिड्डे का बच्चा जब बाहर निकलता है तो वह कद मे छोटा होने पर भी बडे टिड्डे के अनुरूप ही रहता है।

इस प्रकार कीडो को असली हालत तक पहुँचने में तीन सीढी पार करना पडता

है। वे पहले अण्डे की, फिर विना पर के बच्चो की और अन्त मे कीडे की असली शकल के हो पाते है।

लेकिन कुछ कीडे ऐसे भी है जिनका दूसरी तरह परिवर्तन होता है और उनके अण्डे पहले इल्ली या जोराई वनते है, फिर एक प्रकार के कडे खोल मे वन्द हो जाते है और अन्त मे एक दिन कीडा पूरी तौर पर वढकर अपना कडा ढक्कन फाड-कर हवा में उड जाता है। इस प्रकार के कीडो में हमारी तितली वहुत प्रसिद्ध है।

रगीन तितलियो की जीवन-कथा भी कम रगीन नही होती। मादा तितली पत्तियो की निचली सतह पर गुच्छे के गुच्छे अण्डे देती है, जो समय पाकर फूट जाते है और उनमें से अनेक जोराइयाँ निकलती है। ये जोराइयाँ पहले अण्डो के छिलके खाती है। फिर धीरे-धीरे उनका धावा पत्तियो पर शुरू होता है। पत्तियाँ खा-खाकर ये खूव मोटी-ताजी हो जाती है, लेकिन उनकी खाल ज्यादा नही वढती। वह जल्द ही कस जाती है। ऐसी हालत पहुँच जाने पर जोराई अपने सिर पर की खाल टोपी की तरह उतार देती है और आगे सरककर अपनी कमी हुई खाल को साँप की केंचुल की तरह निकाल देती है। इस केंचुल के निकल जाने पर जोराई के वदन पर नयी और मुलायम खाल रह जाती है जो उसकी वाढ को नही रोकती और हम लोगो की खाल की तरह फैल जाती है। जिस समय यह खाल कडी हो जाती है जोराई को इसे भी केंचुल की तरह उतार फेकना पडता है। कई वार ऐसा करने के वाद एक समय ऐसा आता है जव जोराई को कडे खोल मे वन्द होना पडता है।

ऐसा समय आने पर जोराई किसी सुरक्षित स्थान पर जाकर उल्टी होकर दीवाल या और किसी चीज के सहारे लटक जाती है। तव उसकी खाल फटकर गिर जाती है जो उसके चारो ओर फैलकर कडा खोल वन जाती है।

इस खोल की दीवार के भीतर कई हफ्ते रहने के वाद एक दिन उसे तोडकर उसमें से एक रगीन तितली वाहर निकलती है। पहले वह थोडी देर तक अपने गीले पख सुखाती है, फिर एकाएक पख फैलाकर अपना थोडे समय का जीवन विताने के लिए हवा में उड जाती है।

कीडे-मकोडे की इन्द्रियो में और हमारी इन्द्रियो मे वहुत भेद है। तेज उडनेवाले कीडो की आँख की वनावट वर्र के छत्ते की तरह होती है जिसमे एक के वजाय छोटी-छोटी सैकडो पुतलियाँ नगो की तरह जडी रहती है। कीडे-मकोडे के सुनने के लिए कान तो होते हैं, लेकिन ये कभी उनके धड में, कभी पेट में, और कभी टाँगो मे रहते

है। वे अपनी मूंछो से सूंघते है क्योकि ये ही उनकी स्पर्शेन्द्रियाँ है। कुछ कीडे ऐसे भी है जो अपनी जवान के अलावा शरीर के अन्य अवयवो से सूंघते और स्वाद लेते है। वाज-वाज तितलियो को उनके पैर की नोक में स्वाद लेने की शक्ति हमारी जवान की शक्ति से कई सौ गुना तेज होती है। इसी प्रकार वहुत से कीडे ऐसे होते है जो अपने शरीर के भिन्न-भिन्न अवयवो से मादा को रिझाने के लिए सुगन्ध निकालते है।

जुगनू और पटबीजना कीडो को तो लोगो ने देखा ही होगा, जो रात में एक प्रकार की नीली रोशनी फैलाते चलते है।

दुनिया में शायद ही ऐसी कोई चीज होगी जो कीडो के खाने से बची हो। घुन आदि कुछ ऐसे कीडे है जो लकडी खाकर रहते है तो खटमलो और पिस्सुओ को खून चूसना पसन्द है। मधुमक्खी और तितलियाँ एक ओर फूलो का रस पीकर रहती है तो दूसरी ओर गुबरीलो को अपने गोवर के गोले लुढकाने से भला कव फुर्सत मिलती है। दीमक तो सैलीलोस जैसे अक्षय पदार्थ को, जिससे पौधो का ढाँचा बनता है, वडे मजे में खाती है। वह अपने पेट मे एक प्रकार के वहुत ही छोटे-छोटे कीडे पाले रहती है जो उसके खाये हुए खाने को हजम करते है। कुछ कीडे दूसरे कीडो को खा जाते है, कुछ मुरदो से अपना पेट भरते है, कुछ गोवर और विष्ठा भी नही छोडते और कुछ ऐसे भी है जिनसे हमारे घर मे कपडा, अनाज, तरकारी और लकडी का सामान तक नही वचने पाता।

आत्म-रक्षा के मामले मे भी कीडो के साथ प्रकृति ने वेइन्साफी नही की। जहाँ खटमल, मच्छर, पिस्सू आदि को हमला करन के लिए मजवूत जवडे मिले है, वही मधुमक्खी और वर्र को आत्म-रक्षा के लिए तेज डक दिये गये है। कुछ जोराइयाँ ऐसी भी है जिनको प्रकृति ने ऐसा भयानक रूप दे दिया है कि जल्द उन पर हमला करने का साहस किसी दुश्मन को नही होता। यहाँ कुछ जोराइयाँ ऐसी पायी जाती है जिनके माथे पर दो वडे-वडे इस प्रकार के चिह्न वने रहते है जो देखने पर वडी भयानक आँखो से लगते है। इस डरावनी शकलवाली जोराई के पिछले हिस्से पर कोडे की शकल की लाल रग की दुहरी दुम रहती है जिसको यह जोराई जव हिलाने लगती है तो चिडियो की हिम्मत छूट जाती है।

चिडियो की तरह, कीडे-मकोडे हमारे लिए ज्यादा उपयोगी नही है। वे हमारा फायदा तो कम करते है, लेकिन नुकसान ज्यादा करते है। तितलियो की सुन्दरता देखकर थोडी देर खुशी भले ही हो और शहद की मक्खी का शहद खाकर हम उनका

उपकार भले ही मानें लेकिन दीमक, खटमल, पिस्सू और तरह-तरह के पत्ती खानेवाले और फसल को नुकसान पहुँचानेवाले कीडे हमारा जितना नुकसान करते है उसके आगे तितलियो की खूबसूरती और शहद की मिठास ज्यादा देर नही ठहरती।

यह श्रेणी इतनी विस्तृत है कि इसे विद्वानो ने निम्न लिखित उपश्रेणियो (Sub-Classes) तथा वर्गो (Orders) मे बाँटा है—

१ अपक्ष उपश्रेणी—(Sub Class Apterygota)
२ पक्षवर्मी उपश्रेणी—(Sub Class Exopterygota)
३ सपक्ष उपश्रेणी—(Sub Class Endopterygota)

१. अपक्ष उपश्रेणी—के अन्तर्गत वैसे तो तीन वर्ग है, लेकिन यहाँ केवल एक अपक्ष वर्ग का ही वर्णन किया जा रहा है।

अपक्ष वर्ग—इस वर्ग मे उन कीडो को रखा गया है जो मछलियाँ कहलाते है और हमे अक्सर अपनी किताबो के बीच मिलते है।

२. पक्षवर्मी उपश्रेणी—काफी बडी उपश्रेणी है। इसमे वैसे तो कई वर्ग सम्मिलित हैं, लेकिन यहाँ केवल ८ वर्गो को ही लिया गया है जिनमें के जीव हमारे बहुत परिचित है।

पक्षवर्मी वर्ग— इस वर्ग में छेउकी, तिलचट्टे, कठकीडे, टिड्डे तथा झीगुर आदि जीव रखे गये है जिनसे हम सभी थोडा-बहुत परिचित है।

वल्लगण वर्ग— इस वर्ग में दीमक है जो इतने प्रसिद्ध और हमारे इतने परिचित है कि उनका अधिक वर्णन करना बेकार है।

पुस्तक-कीट वर्ग— यह वर्ग जैसा इसके नाम से प्रकट है पुस्तक-कीट या किताबी कीडो का है, जो अक्सर हमारी किताबो मे दिखाई पड जाते है।

यूका वर्ग— इस वर्ग में सब प्रकार के जुँए, छगोडिया और चीलर आदि रखे गये हैं जिनके ज्यादा परिचय की जरूरत नही जान पडती।

पाँखी वर्ग— इस वर्ग मे हमारी प्रसिद्ध पाँखी आती है, जिसे हम बरसात मे अक्सर लैम्पो के चारो ओर मँडराते देखते है।

चिउरा वर्ग— इस वर्ग में हमारा प्रसिद्ध चिउरा (Dragon Fly) रखा गया है जिसे हम अक्सर पानी की सतह के पास रुक-रुककर उडते देख सकते हैं।

मत्कुण वर्ग— यह वर्ग भी काफी बडा है जिसमे सब तरह के खटमल और झिल्ली एकत्र किये गये है।

३ **सपक्ष उपश्रेणी**— भी काफी वर्गो मे विभक्त है लेकिन यहाँ उनमे से केवल पाँच वर्गो का वर्णन किया जा रहा है।

सयुक्त-पक्ष वर्ग— इस वर्ग में वैसे तो कई परिचित जीव है लेकिन यहाँ केवल चीटीचोर का वर्णन दिया जा रहा है जिसे हम अक्सर धूल में गढा बनाकर चीटियो को फँसाने के लिए तैयार बैठा देखते है।

शल्किपक्ष वर्ग— इस वर्ग मे तितली और पतग (Moths) आते है, जो अपनी सुन्दर पोशाक के कारण अन्य कीडे-मकोडो से अलग ही रहते है।

कचनपक्ष वर्ग— यह वर्ग औरो से बडा है क्योकि इसमे सब प्रकार के गुबरीले, घुन, धनकुट्टियाँ तथा जुगनू आदि शामिल है जिनकी एक नही अनेक जातियाँ है।

कलापक्ष वर्ग— इस वर्ग मे सब तरह की वर्रें, चीटे तथा मधुमक्खियाँ रखी गयी है जो अपने डक मारने की आदत से बहुत प्रसिद्धि पा चुकी है।

द्विपक्ष वर्ग— इस वर्ग मे सब प्रकार की मक्खियाँ तथा मच्छर रखे गये है जिनसे हम सब इतने परिचित है कि इनके बारे में यहाँ ज्यादा लिखना व्यर्थ है।

आगे प्रत्येक वर्ग का और उनमे के प्रसिद्ध कीडे-मकोडो का वर्णन किया जा रहा है।

अपक्ष उपश्रेणी

(SUB CLASS APTERYGOTA)

इस उपश्रेणी मे वे पुरातन कीट रखे गये है जिनको देखकर कीडे-मकोडो के प्रारभिक विकास का बहुत कुछ पता चलता है। ये सब छोटे-छोटे जीव है जो कूडा-कर्कट और पत्थर तथा पत्तो आदि के नीचे छिपे रहते है और जिनके छोटे कद के कारण अक्सर हमारा ध्यान उनकी ओर नही जाता। इनके पर नही होते और न अन्य कीट-पतगो की तरह ये कई परिवर्तनो के बाद जाकर प्रौढ होते है, बल्कि अण्डे से निकलने पर इनके शिशुकीट कद मे छोटे हो कर भी शकल-सूरत मे प्रौढ कीटो के समान ही होते है।

ये जीव ससार के प्राय सभी स्थानो में पाये जाते है और इनके पथराये ककाल इतनी पुरानी चट्टानो के नीचे पाये गये है कि जिन्हे देखकर यह जाना गया है कि कीट-पतग श्रेणी के प्रारभिक जीव ये ही है।

इसमें के तीन वर्गो में से यहाँ सिर्फ एक अपक्ष-वर्ग का वर्णन किया जा रहा है।

अपक्ष वर्ग

(ORDER THYSANURA)

अपक्ष वर्ग मे अपक्ष कीट की उन सब जातियो को एकत्र किया गया है जिनके पर नही होते। इन्हे हम अक्सर कितावो के बीच मे देखते है जो किताव खुलते ही वडी तेजी से भागते है।

इनका शरीर गोल छल्लो से जुड कर बना रहता है और अपनी चाँदी जैसी चमक और मछली जैसी शकल के कारण ही इनका नाम मछली पडा है।

इनके आँखे नही होती लेकिन ये अपनी लवी मूंछो के सहारे, जो इनकी स्पर्शेन्द्रियाँ है, अपना काम चला लेते है।

यहाँ इनमें से एक प्रसिद्ध मछली का वर्णन दिया जा रहा है।

मछली

(SILVER FISH)

मछली को यह सुन्दर नाम इसके रुपहले रग और मछली जैसे आकार के कारण मिला है। यह हमारा वहुत परिचित कीडा है जो कितावो के वीच मे से अक्सर इधर-उधर तेजी से भागता है। यह कितावो मे ही रहता हो, सो वात नही है। इसके रहने का मुख्य स्थान तो घर के कूडा-कर्कट के ढेर और छप्पर और खपरैलो के धूल भरे छेद और सूराख है।

मछली छोटा-सा आध इच लम्वा कीडा है जिसका लम्वा शरीर १२ खडो में विभक्त रहता है। इसके आगे का हिस्सा चौडा रहता है, जो पीछे पतला होता चला आता है। इसके तीन पतली दुमें और दो लम्वे स्पर्शसूत्र (Antennae) रहते है। इसका शरीर चाँदी जैसा चमकीला रहता है। इसके आँखे नही होती, लेकिन यह अपना सव काम इन्ही स्पर्शसूत्रो से चला लेती है।

मछली का शरीर वहुत कोमल होता है। इसके मुँह की वनावट इस प्रकार की

होती है कि यह चीजो कुतर सके। इसका शरीर बहुत पतले और चिकने शल्को से ढका रहता है और तितलियो के समान कुछ प्राणियो की तरह इसके शरीर मे परिवर्तन नही होता। पैदा होने के बाद से इसका शरीर बढता जरूर है, लेकिन शकल-सूरत पहले जैसी ही रहती है। इसे छिपे रहना बहुत पसन्द है। इसीलिए जब हम इसे अपनी किताबो के बीच में पाते है तो यह भाग कर जिल्द के बीच की खाली जगह में छिप जाती है।
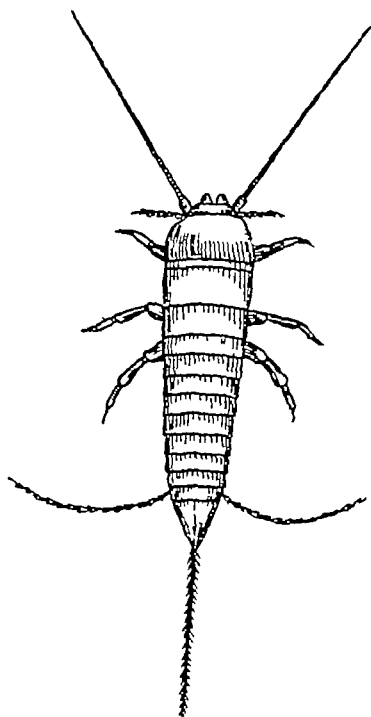
मछली

मछली का मुख्य भोजन सूखी पत्तियाँ वगैरह है। कागज के बारे मे तो हम सब जानते ही हैं कि यह हमारी पुस्तको को किस बुरी तरह से चाट डालती है, लेकिन इसे सब कागजों का दुश्मन कहना ठीक नही है क्योकि यह सब कागजोको नही खाती। इसे तो मीठी और ऐसी चीजे पसन्द हैं जिनमें स्टार्च हो। यह वैसे ही कागज खाती है जिसमें लेई या गोद वगैरह लगा रहता है।

पक्षवर्मी उपश्रेणी
(SUB CLASS EXOPTERYGOTA)

इस उपश्रेणी में वे कीट है जिनके अगले पर सीधे और कडे होते है। इन्हें पक्षवर्म (Elytra) कहते है। इनके नीचे पखीनुमा पिछले पख होने है। उडते समय इनके अगले पख वायुयान के दोनो पखो की भाँति अचल रूप से फैले रहते है और पिछले पख तेजी से चल कर कीडो को उडने में सहायता देते है।

ये अपने मुह से कुतर सकते है और इनकी टाँगें कूदने तथा दौडने में इनकी सहायक होती है। इन कीटो में अधूरा रचनान्तरण (Hemi Metamorphosis) होता है और अण्डो से निकलनेवाले शिशुकीट माँ-बाप के अनुरूप ही रहते है।

इसके अन्तर्गत कई वर्ग है, लेकिन यहाँ केवल सात वर्गो का ही वर्णन किया जा रहा है। इस उपश्रेणी मे टिड्डे, टिड्डियाँ, तिलचट्टे, झीगुर, कठकीडा, छेउकी आदि कीडे है।

पक्षवर्मी वर्ग

(ORDER ORTHOPTERA)

इस वर्ग में छेउकी, तिलचट्टे, कठकीडे, टिड्डे तथा झीगुर आदि ऐसे जीव है जिनको देखकर सहसा यह विश्वास ही नही होता कि इन सवका आपस में इतना निकट सवध है।

ये शकल-सूरत मे ही नही, अपनी आदतो मे भी एक दूसरे से वहुत भिन्नता रखते है। इससे इन्हे एक वर्ग का जीव मानने मे सदेह उठता है। ये सव सीधे पखवाले जीव कहलाते है क्योकि इनके अगले पख सीधे और कडे होते है और पिछले पख पखी की शकल के मुडे हुए रहते है। उडते समय इनके पिछले पख तेजी से चलते है और अगले पख अचलरूप से फैले रहते है। ये अपने मुखभाग से कुतरने और चवाने का काम लेते है।

इन जीवो का रचना-परिवर्तन अधूरा रहता है क्योकि अण्डो से निकलनेवाले शिशु-कीट (Nymph) वहुत कुछ प्रौढ कीटो के अनुरूप ही रहते है। ये भली भाँति कूद और दौड सकते है और इनमे टिड्डी आदि तो उडने मे उस्ताद होती है।

यहाँ छेंउकी, तिलचट्टा, वोडर, रीवाँ, पातालगौर, कठकीडा, झीगुर, टिड्डी और टिड्डो का वर्णन किया जा रहा है जिनसे हम सव भली भाँति परिचित है और जो इस वर्ग के वहुत प्रसिद्ध कीडे है।

छेउकी

(EARWIG)

छेउकियो की एक दो नही अनेक किस्मे हमारे देश में पायी जाती है और हममें से वहुत लोग ऐसे होगे जिन्हे वरसात में कपडे में घुसकर इन्होने काटा भी होगा।

छेउकी लगभग आधी इच लवी होती है जो दुम की ओर की चिमटी जैसी वनावट के कारण वहुत जल्द पहचान ली जाती है। यह कत्थई रग की होती है और इसका

सिर और सारे बदन का हिस्सा चपटा-सा रहता है। इसके पैर औसत लबाई के होते है, जिनसे यह जमीन की सतह पर बडी तेजी से चलती है।
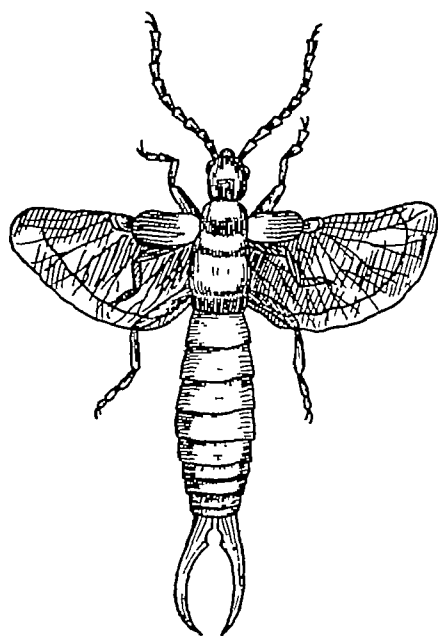
छेंउकी

इसकी मूंछें या स्पर्शसूत्र (Antennac) लगभग इससे चौथाई इच लबे रहते है। इसकी आंखे बडी होती है जिनकी बनावट तितलियो की तरह सयुक्त रहती है। इसका वक्ष न छोटा ही होता है और न बडा ही। इसके पखो की बनावट बहुत सुन्दर रहती है जो पखी की तरह खुलते और बद होते है।

छेउकी के भोजन के बारे में यद्यपि अभी तक ठीक-ठीक पता नही चल सका है, फिर भी यह सडी-गली पत्तियाँ आदि खाती है, इतना तो मालूम ही है। छेउकी पख होने पर भी उनका इस्तेमाल बहुत कम करती है और जहाँ तक हो सकता है भाग कर ही अपना काम चलाती है। कभी-कभी यह रात को रोशनी के पास जाने के लिए पख फैलाकर उडती है। यह ज्यादातर पेड की छाल के नीचे सडी पत्तियो, कूडा-करकट या जडो और पत्थरो के नीचे अपना समय बिताती है।

छेउकी की दुम के पास की चिमटी इसके किस काम आती है, इसका अभी तक पता नही चल सका। कुछ लोग इसको आत्मरक्षा का साधन जरूर समझते है, लेकिन सब छेंउकियाँ काटती भी तो नही।

छेउकी बरसात में बहुत तेज रहती है क्योकि जब जमीन नम और मुलायम हो जाती है तो इसे बहुत आराम हो जाता है, लेकिन जाडा आने पर यह किसी सुरक्षित स्थान मे मिट्टी या ईट-पत्थरो के नीचे शीतशायी हो जाती है और फिर जाडो बाद कही इसकी निद्रा टूटती है।
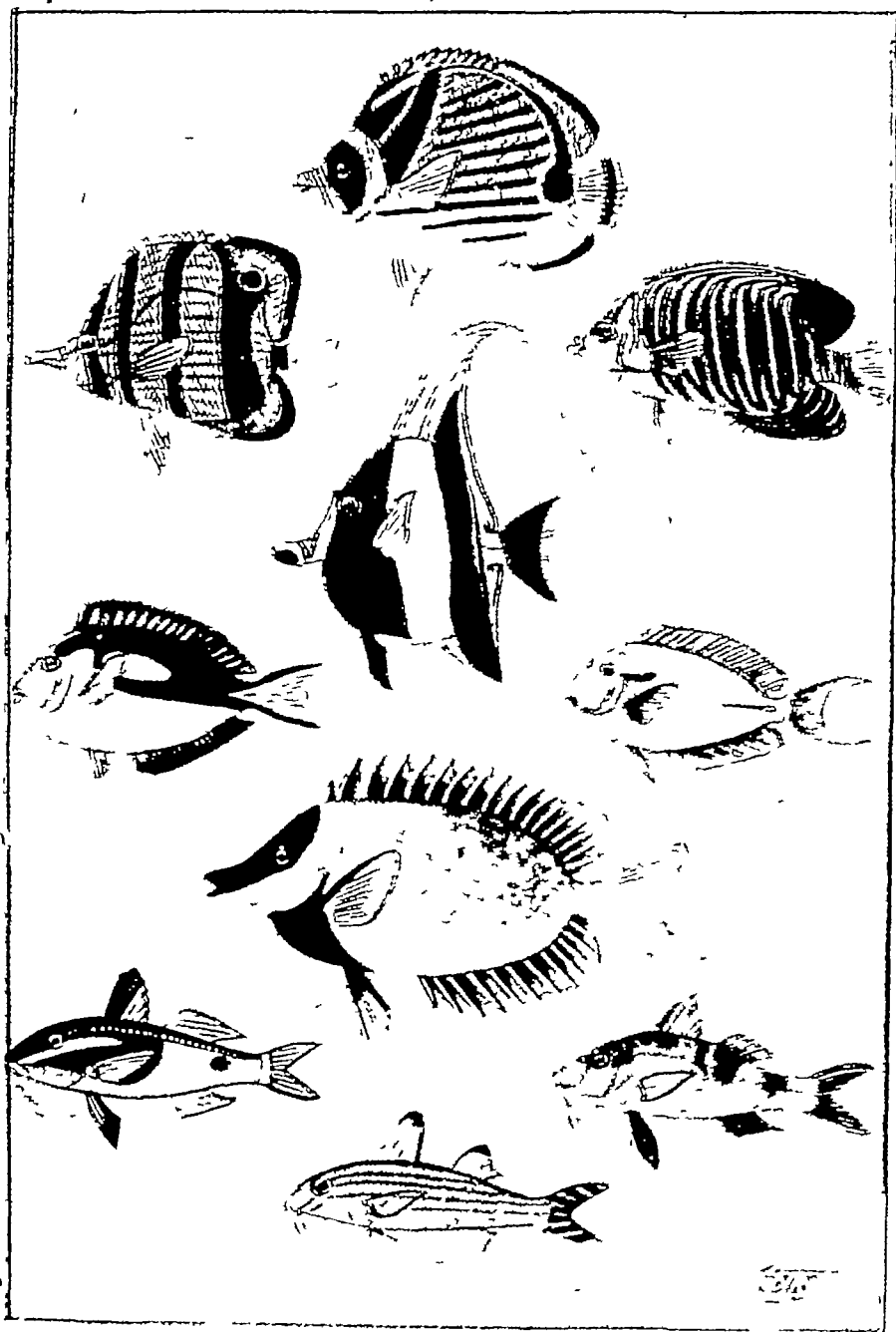
प्रवाल द्वीप की मछलियाँ

तिलचट्टा

(COCKROACH)

तिलचट्टो की भी कम किस्मे नही है। चौथाई इच से लेकर दो इच तक लबे तिलचट्टे हमारे देश में पाये जाते हैं। छोटे तो जरूर निगाह तले नही पडते, लेकिन वडो को हमने न देखा हो, यह सभव नही। सीलन की जगहो मे तथा घर की नालियो के आसपास ये कत्थई रग के कीडे अपनी कागजी वनावट के कारण वरवस हमारी निगाह अपनी ओर खीच लेते हैं। इनके शरीर की ऊपरी सतह चपटी और चिकनी होती है और ये काफी तेज भाग सकते है।

इनमें से कुछ के तो पर होते है और कुछ वेपर के होते है, लेकिन अडे से वाहर निकलने पर परवाली किस्मो के भी वच्चो के पर नही रहते। हाँ, छोटे कद के रहने पर भी उनकी शकल-सूरत जरूर वडो से मिलती-जुलती रहती है।
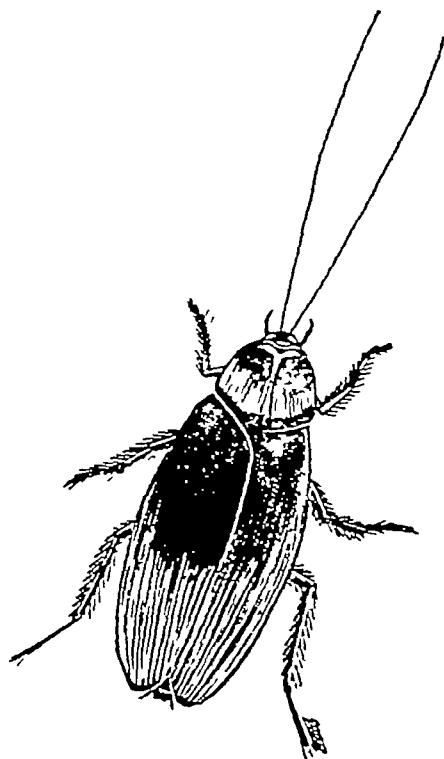
तिलचट्टा

तिलचट्टे कूडा-करकट में, पत्तियो और ईट-पत्थरो के नीचे, जहाँ भी उन्हे नमी मिली, रह लेते हैं। कुछ हमारे घर की मोरियो और गुमुलखानो में अपना घर वना लेते है। ये मुरदाखोर कीडे हैं जिनके खाने मे सभी तरह की सडी-गली चीजें शामिल रहती हैं।

तिलचट्टे यद्यपि हमारा नुकसान नही करते, लेकिन सफाई के ख्याल से इनको घर से नष्ट कर देना ही पडता है।

चिड्डा या वोडर

(PREYING INSECT)

चिड्डे या वोडर टिड्डियो के भाई-विरादरी है। यद्यपि इनकी शकल टिड्डियो से भिन्न होती है, फिर भी दोनो की आदते वहुत-कुछ एक जैसी होती है।

वोडर देखने में कम सुन्दर नही होता, फिर भी उसका रग पास पडोस की वस्तुओ से मिलता-जुलता रहता है। वनावट में कभी तो यह टहनी-सा लगता है और कभी सूखी पत्तियो जैसा।

इसकी आँखें सयुक्त और वडी होती है और यह अपने सिर को भी इधर-उधर घुमा लेता है। इसके अगले दोनो पर पतले, लवे और रगीन होते है जो पिछले परो को ढके रहते है।
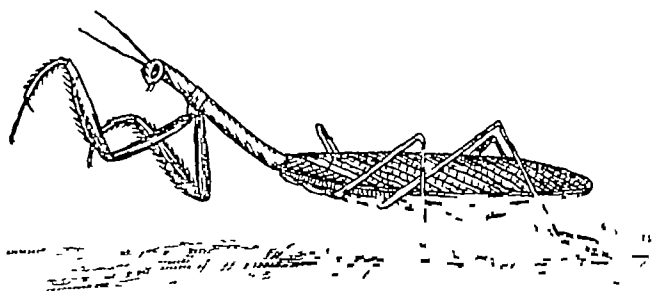
चिड्डा या वोडर

वोडर का मुँह टिड्डियो की तरह छोटा होता है। इसके पैर इसके वडे काम के होते है, जिनसे यह छोटे कीडो-मकोडो को वडी मजबूती से पकडकर अपने मुँह तक लाकर उन्हें खा जाता है। इन्ही लवी टाँगो से वोडर वडी आसानी से जमीन पर दौड भी लेता है।

इसकी मादा एक प्रकार के चिपचिपे खोल मे अडे देती है जो किसी पेड के तने से चिपके रहते है। अडो के फूटने पर चिड्डो के छोटे-छोटे चीटे की शकल के वच्चे निकलते है।

वोडर का मुख्य भोजन कीडे-मकोडे है, जिन्हें यह घास-फूस के वीच वडी आसानी से पकड लेता है।

पातालगौरा

(HETRODES)

पातालगौरा टिड्डी की जाति का जीव है, लेकिन इसको जैसे प्रकृति ने आकाश मे उडने के बजाय पाताल मे ही रहने के लिए बनाया है। यह टिड्डी से बडा होता है, लेकिन इसके एक ही जोडा पर का रहता है, जिसका पिछला सिरा घूमकर ऐंठा सा रहता है। इसीलिए यह बलुई जमीन मे बिल खोदकर उसी मे छिपा रहता है।

हमारे देश मे वैसे तो प्राय सभी रेतीली जमीनो पर पातालगौरे दिखाई पडते है, लेकिन इनकी ज्यादा सख्या पजाब के कुछ हिस्सो मे या उत्तरी भारत के रेतीले भागो मे पायी जाती है। पातालगौरे की शकल बहुत भयानक और अजीब-सी होती है। इसके बडे-बडे जबडे और मूँछे, जिसे यह घडी की स्प्रिग की तरह लपेटे रहता है, इसके चेहरे को और भी भयानक बना देते हैं। इसका मुख्य भोजन कीडे-मकोडे है जिन्हे यह अपने मजबूत जबडो से बडी आसानी से कुचल डालता है।
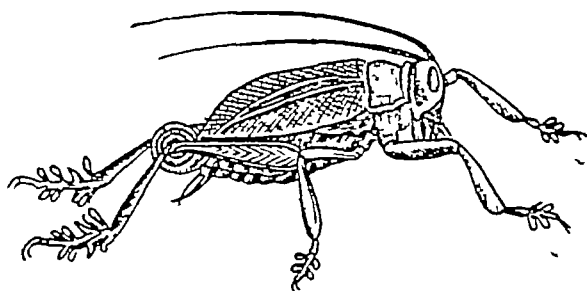
पातालगौरा

पातालगौरे का बिल बहुत गहरा होता है जिसमे पानी भरने से यह बाहर निकल आता है। दो पतालगौरो की कमर मे रस्सी बाँधकर लडके उनको लडाते है और अक्सर इसको चिडिया पकडनेवाली चौगडिया के बीच मे बाँधकर इससे चिडिया फँसाने का काम भी लिया जाता है। इसको देखकर जैसे ही चिडिया लासा लगी हुई चौगडिया के ऊपर बैठती है उसके पख चौगडिया की तीलियो मे लिपट जाते है और वह उसी में फँस जाती है।

इसकी मादा बिलो मे ही अण्डे देती है।

रीवाँ

(MOLE CRICKET)

रीवाँ भी पातालगौरे का भाई-बंधु है जिसको पातालगौरे की तरह जमीन म बिल खोदकर रहना ज्यादा पसन्द आता है।

इसका सिर और वक्ष बडा होता है और अगली टाँगे काफी मजबूत होती हैं, जिनके सहारे यह जमीन मे गहरा बिल खोद लेता है।

रीवाँ डेढ दो इंच लंबा भद्दा-सा जीव है, जिसके सिर और वक्ष का अगला हिस्सा कडा होता है। इसके पर इसके मुलायम पेट से बिलकुल चिपके हुए रहते हैं। इसके पिछले पर नोकीले होकर पीछे की ओर काँटें जैसे निकले रहते है। और इसके पेट के पिछले हिस्से पर दुम की जगह दो नोकीली सलाखें ऊपर की ओर उठी रहती हैं।

रीवाँ
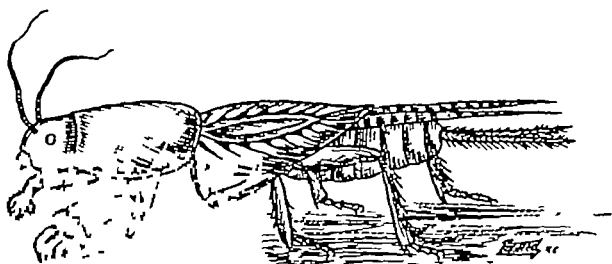
रीवाँ रात्रिचर जीव है जो रात में ही बाहर निकलता है। इसे रोशनी बहुत पसन्द है और इसी से यह अक्सर लैम्प के निकट आकर्षित होकर चला आता है। इसके बिल मे भी पानी डालकर इसे बाहर निकाला जा सकता है और इससे भी पातालगौरे की तरह चिडिया फँसाने का काम लिया जाता है।

मादा रीवाँ बिलो में अडे देती है जो काफी गहरे होते हैं। बिल के निचले हिस्से मे एक गोल कोठरी-सी रहती है जहाँ मादा काफी संख्या मे छोटे-छोटे सफेद बैंजावी अडे देती है। ये अण्डे आपस में जुटे न रहकर अलग-अलग रहते हैं। इन अण्डो

के फूटने पर जव वच्चे निकलते हैं तो वे अपने अलग-अलग विल वनाते है और प्रौढ रीवो की तरह कीडे-मकोडो से अपना पेट भरते है।

रीवाँ जान-वूझकर हमारी फसल को नुकसान नही पहुँचाते लेकिन इनके विल जव काफी सख्या मे एक जगह हो जाते है तो उनसे अक्सर पौधो की जडे कट जाती है जिससे पौधे सूख जाते है।

कठकीडा

(STICK INSECT)

कठकीडे को हम लोगो ने वहुत कम देखा होगा। इसका कारण यह नही है कि यह हमारे यहाँ वहुत कम होता है या इसका कद वहुत छोटा होता है, वल्कि यह अपनी वनावट के कारण पेड की टहनियो पर ऐसा छिप जाता है कि उसे देखकर भी हम तव तक उसे नही पहचान पाते जव तक यह हिलता डुलता नही।

कठकीडा वैसे तो चिड्डा का भाई-विरादर है, लेकिन यह अपनी टाँगे शिकार
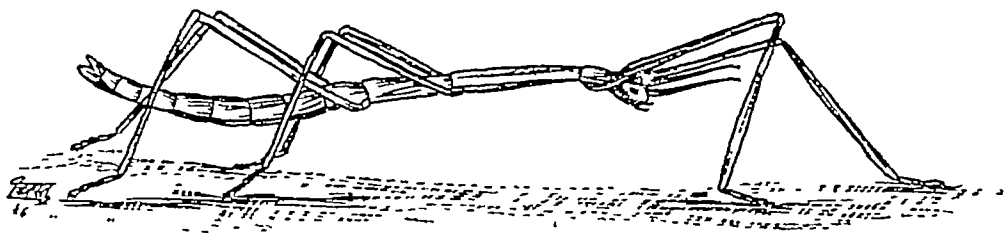
कठकीड़ा

पकडने के काम मे नही लाता और न पिछली टाँगो से टिड्डो या सुग्गो की तरह कूदता ही है।

कठकीडा चार से छ इच तक लवा होता है जिसकी वनावट एकदम सूखी टहनी जैसी होती है। इसे किसी डाल पर वैठे देखकर सहसा यही ख्याल होता है कि कोई पतली-सी सूखी टहनी है। इसके वदन का रग भी पास-पडोस के रग मे ऐसा मिल जाता है कि जल्द इस पर निगाह नही पडती।

कठकीडे का मुख्य भोजन पेड की पत्तियाँ है लेकिन यह हमारी फसल को नुकसान नही पहुँचाता क्योकि इसके रहने का मुख्य स्थान गरम प्रदेशो के जगल है।

रीवाँ

(MOLE CRICKET)

रीवाँ भी पातालगौरे का भाई-बंधु है जिसको पातालगौरे की तरह जमीन म बिल खोदकर रहना ज्यादा पसन्द आता है।

इसका सिर और वक्ष बडा होता है और अगली टाँगे काफी मजबूत होती है, जिनके सहारे यह जमीन मे गहरा बिल खोद लेता है।

रीवाँ डेढ दो इच लबा भद्दा-सा जीव है, जिसके सिर और वक्ष का अगला हिस्सा कडा होता है। इसके पर इसके मुलायम पेट से बिलकुल चिपके हुए रहते है। इसके पिछले पर नोकीले होकर पीछे की ओर काँटें जैसे निकले रहते है। और इसके पेट के पिछले हिस्से पर दुम की जगह दो नोकीली सलाखे ऊपर की ओर उठी रहती है।

रीवाँ

रीवाँ रात्रिचर जीव है जो रात में ही बाहर निकलता है। इसे रोशनी बहुत पसन्द है और इसी से यह अक्सर लैम्प के निकट आकर्पित होकर चला आता है। इसके बिल में भी पानी डालकर इसे बाहर निकाला जा सकता है और इससे भी पातालगौरे की तरह चिडिया फँसाने का काम लिया जाता है।

मादा रीवाँ बिलो में अडे देती है जो काफो गहरे होते है। बिल के निचले हिस्से मे एक गोल कोठरी-सी रहती है जहाँ मादा काफी सख्या में छोटे-छोटे सफेद बैंजावी अडे देती है। ये अण्डे आपस मे जुटे न रहकर अलग-अलग रहते है। इन अण्डो

के फूटने पर जब बच्चे निकलते हैं तो वे अपने अलग-अलग बिल बनाते हैं और प्रौढ रीवों की तरह कीडे-मकोडो से अपना पेट भरते हैं।

रीवाँ जान-बूझकर हमारी फसल को नुकसान नही पहुँचाते लेकिन इनके बिल जब काफी सख्या मे एक जगह हो जाते हैं तो उनसे अक्सर पौधो की जडे कट जाती हैं जिससे पौधे सूख जाते हैं।

कठकीडा

(STICK INSECT)

कठकीडे को हम लोगो ने बहुत कम देखा होगा। इसका कारण यह नही है कि यह हमारे यहाँ बहुत कम होता है या इसका कद बहुत छोटा होता है, बल्कि यह अपनी बनावट के कारण पेड की टहनियो पर ऐसा छिप जाता है कि उसे देखकर भी हम तब तक उसे नही पहचान पाते जब तक यह हिलता डुलता नही।

कठकीडा वैसे तो चिट्टा का भाई-बिरादर है, लेकिन यह अपनी टाँगे शिकार

कठकीड़ा

पकडने के काम मे नही लाता और न पिछली टाँगो से टिड्डो या भुग्गो की तरह कूदता ही है।

कठकीडा चार से छ इच तक लबा होता है जिसकी बनावट एकदम सूखी टहनी जैसी होती है। इसे किसी डाल पर बैठे देखकर सहसा यही ख्याल होता है कि कोई पतली-सी सूखी टहनी है। इसके बदन का रग भी पास-पडोस के रग मे ऐसा मिल जाता है कि जल्द इस पर निगाह नही पडती।

कठकीडे का मुख्य भोजन पेड की पत्तियाँ हैं लेकिन यह हमारी फसल को नुकसान नही पहुँचाता क्योंकि इसके रहने का मुख्य स्थान गरम प्रदेशो के जगल हैं।

इसका नर मादा से कुछ मोटा होता है और उसके पर भी रहते हैं। मादा एक-एक करके अडे देती है जो जमीन पर बीज की तरह बो दिये जाते हैं। इन अडो पर बीज की तरह एक कडी खोल भी रहती है। अडो के फूटने पर जब बच्चे निकलते है तो उनका कद छोटा रहने पर भी उनकी शकल बडो की ही तरह रहती है। इसी का निकट सबधी एक और कीडा हमारे यहाँ होता है जिसे पतकीडा (Leaf Insect) या पतकिरवा कहते हैं।

पतकीडा
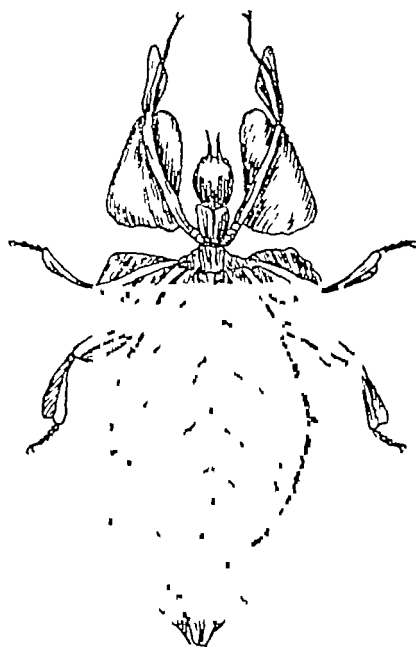
कठकीडे की तरह यह भी बहुत प्रसिद्ध कीडा है, जो देखने में एकदम पत्ती-सा जान पडता है। यह अपने हरे रग और पत्ती जैसी शकल के कारण पेडो पर इस खूबी से छिप जाता है कि पत्तियो के बीच बैठे रहने पर जल्द इस पर हमारी निगाह नही पडती। इसकी और सब आदते कठकीडे जैसी रहती हैं।

झीगुर

(CRICKET)

झीगुर सारी दुनिया में फैले हुए हैं। हमारे देश मे भी ये प्राय सभी जगह पाये जाते है। इन्हे तलाशने के लिए घरमे ज्यादा दूर जाने की जरूरत नही पडती। तस्वीर या आलमारियो के नीचे, सदूक और अन्य सामानो के पीछे,जहाँ गदगी रहती है,झीगुरो की भरमार हो जाती है। बरसात में तो इनकी तेज आवाज से कान के परदे फटने लगते है।

हमारे यहाँ अक्सर झीगुरो की दो जातियाँ दिखाई पडती है। काला झीगुर (Field Cricket) और भूरा झीगुर (House Cricket)। जैसा कि नाम से

जाहिर है दोनो के रग मे फर्क जरूर रहता है, लेकिन दोनो की आदतें एक-जैसी ही होती हैं।

झीगुर टिड्डी की तरह लबे नही होते और न इनका शरीर ही दोनो वगल से दवा रहता है वल्कि ये टुइया कौडी की शकल के चपटे से जानवर है, जिनकी पिछली टाँगे औरो से लवी होती है जिससे ये मेढक की तरह कूद-कूद कर चलते हैं।

झीगुर घास-पात खानेवाला छोटा-सा चपटा जीव है, जो हमारी फसल को काफी नुकसान पहुँचाता है। इसकी लवाई आधे इच से डेढ इच तक पहुँच जाती है। काला झीगुर भूरे से कुछ छोटा होता है और उसके पेट के चारो ओर नारगी विंदियाँ रहती है। यह अपने अगले पैरो को एक दूसरे से रगडकर एक प्रकार की तेज आवाज करता है जो वरसात मे अक्सर सुनाई पडती है।

झींगुर
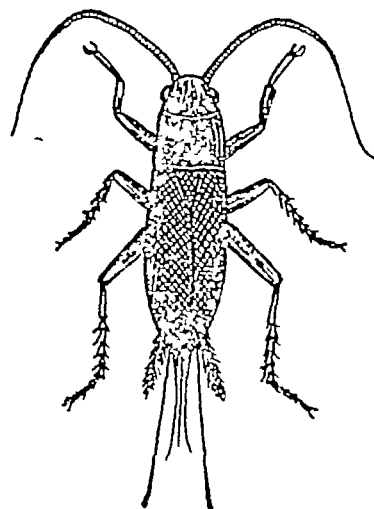
झीगुर का सिर तो वडा होता ही है, उसकी मूँछें भी काफी लवी होती हैं। इसके शरीर का रग मटमैला भूरा या कलछौंह रहता है। इसके अगले पैरो का कुछ हिस्सा तो पीठ पर फैला रहता है और कुछ पेट में चिपका रहता है। इसके पिछले पख वद रहने पर पीछे की ओर डक की तरह निकले रहते हैं। पीठ के पिछले हिस्से मे दुम की तरह दो नोकें निकली रहती है और इसकी अगली टाँगो के ऊपरी भाग पर टिड्डियो की तरह सुनने की इन्द्रिय रहती है।

झीगुरो के रहने का कोई निश्चित स्थान नही रहता। कुछ गहरा विल खोदकर रहते है तो कुछ सडी-गली पत्तियो के नीचे थोडा ही गहरा विल वनाते है। कुछ ने एकदम घरो मे रहने की आदत डाल ली है तो कुछ ने अपना निवास पेड और झाडियो के वीच चुना है। विल वनानेवाले झीगुर शाकाहारी होते है और ज्यादातर रात को ही वाहर निकलना पसन्द करते है, लेकिन झाडी के वीच रहनेवाले झीगुरो का मुख्य भोजन छोटे-मोटे कीडे है।

झींगुरो के अडे-बच्चो के बारे मे अभी ज्यादा पता नही चला है, लेकिन इतना तो ज्ञात ही हे कि ये अडे देते है जिनके फूटने पर इन्ही की शकल-सूरत के बहुत छोटे कद के बच्चे निकलते है।

टिड्डी

(LOCUST)

टिड्डी की एक नही अनेक जातियाँ है जो छोटी-बडी सभी तरह की होती है। ये ससार के सभी स्थानो मे पायी जाती है और इनके हमलो से कोई भी देश नही बच पाया है।

हमारे देश मे टिड्डियो की वैसे तो कई जातियाँ है, लेकिन इनमे से दो प्रमुख है— एक का निवास तो सीमाप्रान्त से राजपूताना तक है और दूसरी ने अपने रहने का स्थान बबई प्रान्त चुना है।

टिड्डी झुड मे रहनेवाली जीव है। ये लाखो करोडो के झुण्ड मे रहती है। टिड्डीदल तो मशहूर ही है। जब इनका यह दल उडता है तो आसमान काला हो जाता है। दूर से देखने से यह बादल-सा जान पडता है और कभी-कभी तो यह मीलो लबा होता हे ।

टिड्डियाँ इस प्रकार स्थान परिवर्तन क्यो करती है, इसका अभी ठीक-ठीक पता नही चला है। लेकिन इनसे फसल का कितना नुकसान होता है यह तो हम लोग भली भाँति जानते है। मीलो लबे टिड्डियो के दल के सामने जो खेत पडते है वे तो साफ ही हो जाते है, साथ ही साथ पेड की पत्तियो की भी सफाई हो जाती है। इनके झुड को रोकना सभव नही होता। लोगो ने बडी-बडी खाइयाँ खोदी, आग जलाकर मार्ग अवरोध किया, लेकिन किसी बात मे पूर्ण सफलता नही मिली।

हमारे देश मे तो इनके हमले का उतना जोर नही होता, लेकिन कभी-कभी इनकी बाढ आ ही जाती हे। उस समय का दृश्य बडा डरावना-सा लगता है। चारो ओर भय का वातावरण हो जाता है और ऊपर आसमान मे इनके उडने से एक तरह की आवाज होती रहती है। चिडियो के लिए तो यह बडे आनन्द का समय रहता है। वे आपस के वैर-भाव भुलाकर इनके झुण्ड के पीछे लग जाती है और ऊपर उडते ही उडते इनको पकडकर अपना पेट भरती है।

टिड्डी को हम सबने देखा होगा। इसकी बनावट लबी और चपटी होती है। इनकी पिछली दोनो टाँगे अगली टाँगो से लबी रहती है। इनकी मूंछे पतली और लबी
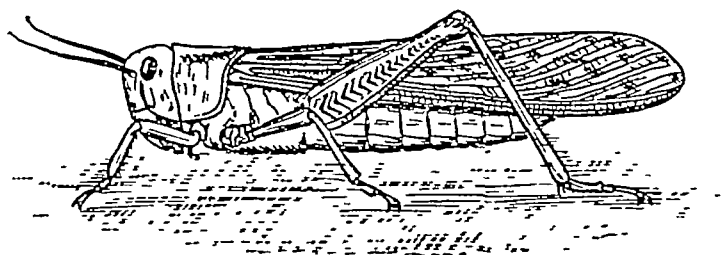
टिड्डी

होती है। ये ही इनके स्पर्शसूत्र (Antennae) है। इनके मुँह की बनावट से ही जाना जा सकता है कि इनका भोजन घास-पात है। इनके धड का अगला भाग बडा और साफ दिखनेवाला होता है।

टिड्डियो के अगले छोटे पर, मोटे और रगीन होते है जो पेट को ढके रहते है। इनके परो मे एक ऐसी अद्भुत शक्ति होती है जिसके सहारे ये सैकडो मील का सफर तय कर लेती है। उडते समय इन परो से एक प्रकार की आवाज़ निकलती रहती है।

यह आवाज इनके अगले परो के आपस में रगडने से निकलती है। इन परो का कुछ हिस्सा चपटा रहता है जो नीचे एक दूसरे पर चढा रहता है और जिसकी परस्पर रगड से ही यह कर्कश आवाज होती है।

टिड्डियो का रग प्राय हरा रहता है जिससे वे पत्तियो के बीच आसानी मे छिप जाती है। वैसे ये विभिन्न रगो की होती है, और उनका रग पास-पडोस के अनुरूप ही बदलता रहता है। घास और पत्तियो के बीच ये इस तरह छिप जाती है कि जब तक हिलती नही इन्हे देखना बहुत कठिन हो जाता है। इनके पेट का हिस्सा काफी नरम रहता है।

मादा टिड्डी बरसात के शुरू मे किसी पत्ती के किनारे घास के तने मे और पेड की छाल में छेद करके अडे देती है। कभी-कभी वह जमीन मे बिल बनाकर अडे देती है। ये सूराख बडे नही होते और जब वे अडो से भर जाते है तो टिड्डी एक प्रकार के चिप-चिपे पदार्थ से बिल को भर देती है। इस तरल पदार्थ से अडे एक दूसरे मे चिपक जाते

हैं और उसके सूखने से सूराख का मुँह भी वद हो जाता और वह आस-पास की जमीन जैसा दिखाई पडने लगता है।

ये अडे करीब तीन सप्ताह बाद फूटते हैं और उनमेसे छोटे-छोटे हरे रग के कीडे निकलते हैं। कुछ ही घटो मे उनकी हरी खाल उतर जाती है और वे कलछौंह दीख पडते हैं। धीरे-धीरे उनकी बाढ होने लगती हे और उनके शरीर का खोल तग होकर कस जाता है। कसने के वाद वह साँप के केचुल की तरह निकल जाता है। कई मरतवा इस तरह का खोल वदलकर ये बच्चे वडे हो जाते हैं और करीव एक महीने वाद उनके पर भी निकल आते हैं।

टिड्डियाँ ज्यादातर रात मे निकलना पसन्द करती हैं लेकिन कुछ ऐसी भी हैं जो दिन को भी दिखाई पडती हैं। इनका मुख्य भोजन वैसे तो घास-पात है लेकिन खाने की कमी होने पर ये कीडे-मकोडे भी खा लेती हैं। इन्हे भी पतिगे की तरह रोशनी पसन्द है और इनकी कुछ जातियाँ तो लैम्प के पास तक पहुँच जाती हैं।

टिड्डा

(GRASS HOPPER)

टिड्डो को हम उडनेवाली टिड्डियो (Locusts) का छोटा भाई कहे तो कुछ बेजा न होगा। ये हैं भी असल मे उसी खान्दान के। लेकिन अपनी अकेले रहने की आदत और बनावट के कारण इन्हे टिड्डियो से अलग कर दिया गया है।

टिड्डे की बहुत-सी जातियाँ हमारे यहाँ फैली हुई हैं जिनमे टिड्डा, सुग्गा, पतेगा और फनगा आदि मुख्य हैं।

टिड्डो को हम सब पहचानते हैं। ये घास मे रहनेवाले दो इच के जीव हैं जो पिछली टाँगो के वडी होने के कारण उछल-उछलकर चलते हैं। इनका रग आसपास के घास-पात के इतना अनुरूप हो जाता है कि इन्हे जल्द देखना सभव नही। इनका यह रग हमेशा एक जैसा न रह कर मौसम के साथ-साथ बदलता रहता है। वरसात मे जब घास हरी हो जाती है तो इनका शरीर भी हरे रग का हो जाता है, लेकिन वरसात के बाद घास के सूख जाने पर टिड्डे भी सूखी घास की तरह भूरे हो जाते हैं। इसी कारण बैठे रहने पर इनको देख लेना आसान नही होता।

हाँ, उडते समय टिड्डो को पहचानना ज्यादा कठिन नही होता क्योंकि इनके दुहरे या दो जोडे परो मे से ऊपरवाले पर तो इनके वदन के रग के होते है लेकिन नीचेवाले परो का रग चटक होता है। उडते समय ये दोनो पर साफ दिखाई पडते है।

टिड्डो का सिर औसत कद का होता है जो वक्ष से विलकुल अलग दिखाई पडता है। इनके स्पर्शसूत्र छोटे और आँखे वडी होती है। इनके मुँह को देखने से जान पडता है कि जैसे ये घास ही खाने के लिए वनाये गये है।

टिड्डो के नर-मादा छोटे-वडे कद के होते है और उनके रग में भी थोडा-वहुत फर्क रहता है। मादा जमीन मे विल वनाकर अडे देती है, जिनकी सख्या काफी रहती है। ये अडे एक दूसरे से एक प्रकार के लसदार पदार्थ से जुटे रहते है। अडे फूटने पर उनमे से छोटे-छोटे वच्चे निकलते हैं जो कद में वहुत छोटे होने पर भी शकल-सूरत मे टिड्डे जैसे ही होते हैं। थोडे दिनो वाद वढने के लिए इनके खोल फट जाते है और उनमें से नये खोल पहने निकल आते है। प्रौढ टिड्डे के वरावर होने तक इनको पाँच-सात वार अपना तग खोल वदलकर नये खोल मे वाहर आना पडता है।

टिड्डा
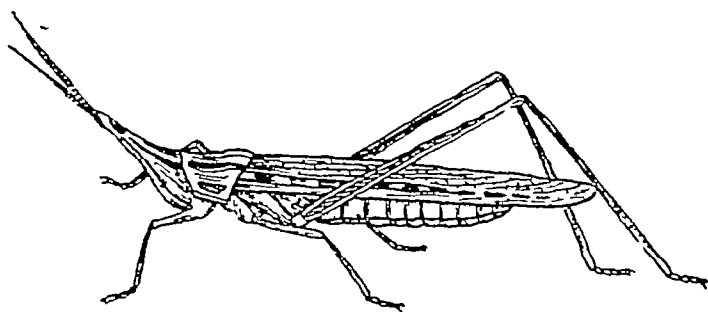
टिड्डे की ही जाति का एक और कीडा हमारे यहाँ काफी सख्या में मिलता है जो सुग्गा कहलाता है। यह टिड्डे से कुछ छोटा होता है और इसका शरीर भी उससे कोमल रहता है।

वरसात के मौसम में सुग्गो की सख्या इतनी वढ जाती है कि इनको किसी भी खेत या घास के मैदान में देखा जा सकता है।

सुग्गे को यह प्यारा नाम इसके हरे रग के कारण ही मिला है, लेकिन घास सूख जाने पर इसका भी हरा रग वदलकर भूरा हो जाता है जिससे उसका भूरा लिवास

उसे सूखी घास मे छिपने में मदद दे सके। इनमे से कुछ के ऊपर चमकीली धारियाँ भी रहती है। सुग्गे का कद एक से डेढ इच तक होता है और इसके नर से मादा बडी होती है। सुग्गे की मूंछें ऊपर की ओर उभरी रहती है, जिससे इसको पहचानना कठिन नहीं होता। इसकी और आदतें टिड्डे से मिलती-जुलती होती हैं। सुग्गे से भी छोटा इसी जाति का एक और कीडा हमारे यहाँ पाया जाता है, जो पतेगा (Small Grass-hopper) कहलाता है। यह सारे देश मे काफी सख्या मे फैला हुआ है।

पतेगे उगती हुई फसल को बहुत नुकसान पहुँचाते है और उस समय इनको खेतो मे काफी तादाद मे देखा जा सकता है। इसके अलावा इन्हे रात में रोशनी के निकट देखना भी ज्यादा मुश्किल नही। इन्हे रोशनी उसी तरह पसन्द है जैसे पतिगो को और यही वजह है कि ये लैम्प के नजदीक फौरन पहुँच जाते है।

मादा पतेंगा बरसात मे दो बार अडे देती है, जिनमें से इन्ही की शकल के किन्तु बहुत छोटे कद के बच्चे निकलते है।

फनगा

(COMMON SURFACE GRASS HOPPER)

फनगा भी पतेगा की तरह छोटे कद का जीव है जिसे सारे देश मे देखा जा सकता है। उगती फसल को पतेगे की तरह ये भी काफी नुकसान पहुँचाते हैं। तबाकू की फसल को तो इनसे बहुत ही ज्यादा नुकसान पहुँचता है क्योकि उसकी पत्तियाँ ये बडे स्वाद से खाते हैं।

नर फनगा मादा से कुछ छोटा होता है और उसका रग भी भूरा रहता है। मादा जरूर हरे रग की होती है जो पतेगे की तरह बिल मे अडे देती है।

इनकी और आदते पतेगे या सुग्गे से मिलती जुलती रहती हैं।

वल्मगण वर्ग

(ORDER ISOPTERA)

इस वर्ग मे अपने प्रसिद्ध सामाजिक-कीट दीमक को रखा गया है, जिसकी लगभग १,६०० जातियाँ सारे ससार मे फैली है। चीटियो की भाँति इनका भी सामाजिक सगठन बहुत व्यवस्थित रहता है और इनके कुटुम्ब में चार प्रकार के प्राणी पाये जाते हैं, जो राजा, रानी, सिपाही तथा मजदूर कहलाते हैं।

मजदूर दीमकें प्रजनन-शक्ति से विहीन और नेत्रो तथा परो से रहित होती हैं। इनको दिमौर की मरम्मत और अडे-बच्चो की देख-रेख करनी पडती है। सैनिको का सिर मजदूरो से बडा होता है। ये भी जनन-शक्ति से शून्य, अबे और पखविहीन होते हैं। इनका काम दिमौर की रक्षा करना है। ये बहुत ही निर्भीक होते हैं और दिमौर मे क्षति होते ही तुरत वहाँ पहुँच कर दुश्मनो का साहसपूर्ण सामना करते हैं। ये मजदूरो से दिमौर की मरम्मत कराते हैं और स्वय उनकी रक्षा के लिए खड़े रहते हैं।

राजा और रानी लैगिक दृष्टि से पूर्ण होते हैं और वे नेत्र और पख से युक्त होते हैं। उनकी आयु साधारणतया १० वर्ष की होती है। रानी की लबाई प्रजनन के समय ५–६ इच की हो जाती है और उसका पेट चर्बी और अडो से भरा रहता है। वह एक ही स्थान पर पडी रहती है और वहाँ से हिल-डुल नही सकती। साधारणतया रानी एक दिन मे ६० से ८० हजार तक अडे देती है।

दीमको का मुख्य भोजन लकडी, कपडा और चमडा आदि है जिसके लिए वे काफी दूर तक चले जाते हैं। ये हमारे पेड-पौधो की जडो को काट डालते हैं। इन्हे रोशनी मे बहुत नफरत है। इसी कारण इन्हें जहाँ जाना होता है ये वहाँ तक मिट्टी की पतली सुरग बनाते हैं और उसी के भीतर इनकी पलटन चलती है। यहाँ अपने यहाँ के प्रसिद्ध दीमक का वर्णन दिया जा रहा है।

दीमक
(TERMITES)

दीमक उन कीडो मे से हैं जो हमारा बहुत नुकसान करते हैं। ये लकडी का तो नुकसान करते ही हैं, साथ ही साथ हमारे छोटे पेड-पौधो को भी काट डालते हैं।

दीमक के चीटी की तरह सामाजिक-कीट हैं जो जमीन के भीतर अपना बडा नगर बसाते हैं जिसमे उनके राजा, रानी, मजदूर और सिपाही दीमक रहते हैं।

दीमक भी बिलो के ऊपर दीमको के ऊँचे घर होते है, जो दिमौर कहलाते हैं। ये बहुत मजबूत मिट्टी के होते हैं और इनकी ऊँचाई कही-कही २०-२५ फुट तक हो जाती है।

रानी दीमक का काम अडा देना होता है। जब इन अडो से बच्चे निकलते है तो उनमें कुछ मजदूर और कुछ सिपाही हो जाते है। मजदूर दीमको के न तो पर होते हैं और न आँखें। उनको जीवन भर केवल घर बनाना और बच्चो की देख-रेख करना पडता है।

दीमक
(मजदूर, रानी, सैनिक)

दीमको को रोशनी से नफरत है इसी लिए जब उन्हें किसी पक्की जमीन से दूसरी जगह जाना होता है तो वे मिट्टी की पतली सुरग बना कर वहाँ पहुँच जाती है। इन सुरगो मे होकर दीमकें सूखी लकडी तक पहुँच जाती है और उसे पेट भर खाकर अपने पेट मे जमा करती जाती है। उसके बाद खाई हुई लकडी को वे बिल में आकर उगल देती हैं।

तीसरी किस्म की दीमके परदार होती है जो बरसात आने पर लाखो की तादाद में बाहर निकलती है। इनमें से बहुत-सी रोशनी में जलकर मर जाती है और बहुत-सी चिडियो, मेढको और छिपकलियो की शिकार हो जाती हैं।

पुस्तककीट वर्ग

(ORDER PSOCOPTERA)

इस वर्ग में किताबीकीडे रखे गये है जिनका शरीर बहुत छोटा और कोमल होता है। इनकी लगभग ३०० जातियाँ सारे ससार में फैली हुई है जिनमे से कुछ के पर होते है और कुछ परो से रहित रहते है। ये कूडा-करकट या दीवालो के दराजो या पेड की छालो के नीचे रहते है और कुछ हमारी पुस्तको और चटाइयो आदि में घुसे रहते है। इनका मुख रुखानीनुमा जबडो से युक्त रहता है जिससे ये सब चीजो को आसानी से कुतर डालते हैं। ये कागज, खर-पतवार, काई और फफूद आदि से अपना पेट भरते है और इनका कद एक मिलीमीटर से भी छोटा ही होता है। इतने छोटे कद के होने पर

भी ये इतनी तेज आवाज़ करते है कि सहसा यह विश्वास ही नही होता कि यह आवाज इन्ही की है। यहाँ अपने यहाँ के प्रसिद्ध पुस्तककीट का वर्णन किया जा रहा है।

किताबीकीड़ा

(BOOK LICE)

किताबीकीडा दीमक की शकल-सूरत का छोटा-सा कीडा है जो अक्सर किताबों के बीच दिखाई पडता है। यह न भी दिखाई पडे, तो भी इसके किये हुए छेद तो हमारी किताबो मे हमेशा के लिए रह ही जाते है। इनका सिर बडा और आगे की ओर फूला-फूला रहता है। इनकी आँखे बडी, मूँछे लबी और जबडे का सिरा कडा होता है जिससे ये बडी आसानी से चीजो को कुतर सकते है। इनके मुँह के और हिस्से कोमल और झिल्लीदार होते है और ओठ दो हिस्सो मे बँटा रहता है। इनके वक्ष के बीच का खड बडा और लबा तथा अगला हिस्सा पतला और छोटा होता है। इनके पख चमकीले और पारदर्शी होते है जो बैठे रहने पर नीचे की ओर झुक कर इनके पेट को ढक लेते है।

किताबीकीड़ा

किताबीकीडे के नर-मादा एक ही शकल-सूरत के होते है। मादा समय आने पर अडे देती है जिसे ये कीडे अपने मुँह से रेशम-जैसे तार निकालकर लपेट देते है। अडो के फूटने पर जो छोटे-छोटे बच्चे निकलते है उनकी शकल-सूरत माँ-बाप जैसी ही रहती है। ये झुड के झुड काफी समय तक माँ-बाप के ही साथ रहते है। कुछ किताबीकीडे पत्तियो के नीचे जाला बनाकर उसी के भीतर और कुछ पेड की छाल या पत्तियो के ऊपर अडे देते है।

किताबीकीडो की अनेक जातियाँ हमारे यहाँ पायी जाती हैं, लेकिन इनमें से ज्यादा सख्या उन्ही की है जो हमारे घरो की नम जगहो में रहते है। ये हमारी किताबो को बहुत नुकसान पहुँचाते है। इनका मुख्य भोजन घास-पात, फफूद, कागज, छाल और छोटे मोटे कीडे-मकोडे है।

रानी दीमक का काम अडा देना होता है। जब इन अडो से बच्चे निकलते है तो उनमें कुछ मजदूर और कुछ सिपाही हो जाते है। मजदूर दीमको के न तो पर होते है और न आँखे। उनको जीवन भर केवल घर बनाना और बच्चो की देख-रेख करना पडता है।

दीमक
(मजदूर, रानी, सैनिक)

दीमको को रोशनी से नफरत है इसी लिए जब उन्हें किसी पक्की जमीन से दूसरी जगह जाना होता है तो वे मिट्टी की पतली सुरग बना कर वहाँ पहुँच जाती है। इन सुरगो मे होकर दीमकें सूखी लकडी तक पहुँच जाती है और उसे पेट भर खाकर अपने पेट मे जमा करती जाती है। उसके बाद खाई हुई लकडी को वे बिल में आकर उगल देती है।

तीसरी किस्म की दीमके परदार होती है जो बरसात आने पर लाखो की तादाद में बाहर निकलती है। इनमें से बहुत-सी रोशनी में जलकर मर जाती है और बहुत-सी चिडियो, मेढको और छिपकलियो की शिकार हो जाती है।

पुस्तककीट वर्ग

(ORDER PSOCOPTERA)

इस वर्ग में किताबीकीडे रखे गये है जिनका शरीर बहुत छोटा और कोमल होता है। इनकी लगभग ३०० जातियाँ सारे ससार में फैली हुई है जिनमे से कुछ के पर होते है और कुछ परो से रहित रहते है। ये कूडा-करकट या दीवालो के दराजो या पेड की छालो के नीचे रहते है और कुछ हमारी पुस्तको और चटाइयो आदि में घुसे रहते है। इनका मुख रुखानीनुमा जबडो से युक्त रहता है जिससे ये सब चीजो को आसानी से कुतर डालते है। ये कागज, खर-पतवार, काई और फफूद आदि से अपना पेट भरते है और इनका कद एक मिलीमीटर से भी छोटा ही होता है। इतने छोटे कद के होने पर

कुटकियाँ सभी जानवरो या चिडियो के शरीर मे पायी जाती हो, सो वात नही है। ये किसी-किसी चिडियो के ही वदन मे रहती है और फिर उनके बच्चो के वदन में फैलकर पुश्त-दर-पुश्त उस जानवर का पीछा नही छोडती।

कुटकी वहुत ही छोटी होती है जिससे इसे जल्द पहचानना कठिन हो जाता है। इसकी करीव १४ जातियाँ हमारे यहाँ पायी जाती है जो हमारे पालतू पशु-पक्षियो के शरीर मे अक्सर मिलती है। इनको निकालने के लिए सवसे आसान तरीका यह है कि परो या वालो की जड के पास तेल मल दिया जाय। तेल से इनका साँस लेना रुक जाता है और ये मर जाती है।

मादा कुटकी अडे देती है जिनमे से वडी कुटकी की शकल के लेकिन उससे कुछ छोटे वच्चे निकलते है।

जुआँ

(HEAD LOUSE)

जुएँ को भला कौन नही जानता ? भले ही हममे से वहुतो ने इसे देखा न हो। यह दूसरो का खून चूसकर जीनेवाले जीवो मे से एक है जो प्राय मनुष्यो के वालो मे पाया जाता है। हम लोगो के सिरो में गदगी की वजह से अक्सर जुएँ पड जाते है और फिर उनको निकालना वहुत कठिन हो जाता है।

जुंओ का शरीर वहुत छोटा होता है और इनका रग कलछौह रहता है। इसीसे ये वालो में जल्द नही दिखाई पडते। इनका शरीर और सिर चपटा होता है, इनकी मूँछें छोटी और गोलाई लिये रहती है और इनकी आँखें छोटी होती हैं। इनके मुँह के अगले भाग की वनावट सूँड-जैसी होती है जिसको खाल मे गडाकर ये खून पीते है। इनका उदर, वक्ष की अपेक्षा लवा होता है, जिसकी वनावट अडाकार रहती है। यह सात-आठ खडो मे वँटा रहता है।

जुंए के नर-मादा एक-जैसे होते है लेकिन नर मादा से कुछ छोटे रहते है। ये पराश्रयी जीव हैं, जिनकी वृद्धि वहुत तेज होती है। मादा नाशपाती की शकल के वहुत से अडे देती है जो वालो की जड के पास चिपके रहते है। इन्हे लीख कहते है। ये अडे आठ दस दिनो वाद फूटते है और उनमे से छोटे-छोटे वच्चे निकलते है। ये वच्चे १८-२० दिनो मे वढकर प्रौढ जुएँ हो जाते हैं।

यूका वर्ग

(ORDER ANOPTURA)

इस वर्ग मे सब प्रकार के जुंए, कुटकियाँ, चीलर और छगोडिया आदि कीट रखे गये है, जिनको कुछ लोग स्वेदज कहकर पुकारा करते है। ये सब कीडे खून चूसनेवाले होते है और इनके मुख मे इसीलिए एक नली लगी रहती है। इन कीडो को दो भागो मे बाँटा गया है—एक तो काटनेवाले होते है और दूसरे खून चूसनेवाले। कुटकी आदि काटनेवालो मे और जुंआ आदि खून चूसनेवाली श्रेणी मे रखे गये हैं।

इनके रहने का स्थान चिडियो, जानवरो, तथा मनुष्यो का शरीर है, जहाँ घने बालो में ये पुश्त-दर-पुश्त पडे रहते है।

यहाँ अपने यहाँ पायी जानेवाली कुटकी, जुंआ, चीलर तथा छगोडिया का सक्षिप्त वर्णन दिया जा रहा है।

कुटकी

(BITING LOUSE)

कुटकियो को अक्सर लोग नही पहचानते और इन्हे जुंआ या चीलर कह देते है, लेकिन यदि इनके मुंह को गौर से देखा जाय तो इनको पहचानना कठिन नही होगा।
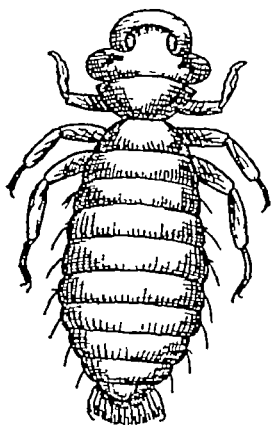
कुटकी

कुटकी, चीलर और जुंए की तरह परजीवी-कीट अवश्य है और उन्ही की तरह यह जिसका खून चूसती है, उसी के शरीर में रहकर अपना सारा जीवन भी बिता देती है, लेकिन यह जुए और चीलर की तरह खून न चूसकर दूसरे जीवो की खाल को काटती है। यह जानवरो के वाल या चिडियो के परो में रहती है और भूख लगने पर जिन्दा खाल के पास आकर उसे काट लेती है। जानवरो या चिडियो के वदन से अलग कर देने पर यह कुछ समय में ही मर जाती है। यही नही, जब वह जानवर या चिडिया मर जाती है जिममें यह चिपकी रहती है, तो यह भी उसके खून के ठडा होने पर मर जाती है।

कुटकियाँ सभी जानवरो या चिडियो के शरीर मे पायी जाती हो, सो वात नही है। ये किसी-किसी चिडियो के ही वदन मे रहती है और फिर उनके वच्चो के वदन मे फैलकर पुश्त-दर-पुश्त उस जानवर का पीछा नही छोडती।

कुटकी वहुत ही छोटी होती है जिससे इसे जल्द पहचानना कठिन हो जाता है। इसकी करीव १४ जातियाँ हमारे यहाँ पायी जाती है जो हमारे पालतू पशु-पक्षियो के शरीर में अक्सर मिलती है। इनको निकालने के लिए सवसे आसान तरीका यह है कि परो या वालो की जड के पास तेल मल दिया जाय। तेल से इनका साँस लेना रुक जाता है और ये मर जाती है।

मादा कुटकी अडे देती है जिनमें से वडी कुटकी की शकल के लेकिन उससे कुछ छोटे वच्चे निकलते है।

जुआँ

(HEAD LOUSE)

जुएँ को भला कौन नही जानता ? भले ही हममें से वहुतो ने इसे देखा न हो। यह दूसरो का खून चूसकर जीनेवाले जीवो में से एक है जो प्राय मनुष्यो के वालो मे पाया जाता है। हम लोगो के सिरो में गदगी की वजह से अक्सर जुएँ पड जाते है और फिर उनको निकालना वहुत कठिन हो जाता है।

जुंओ का शरीर वहुत छोटा होता है और इनका रग कलछौंह रहता है। इसीसे ये वालो मे जल्द नही दिखाई पडते। इनका शरीर और सिर चपटा होता है, इनकी मूंछें छोटी और गोलाई लिये रहती है और इनकी आँखे छोटी होती है। इनके मुंह के अगले भाग की वनावट सूंड-जैसी होती है जिसको खाल मे गडाकर ये खून पीते है। इनका उदर, वक्ष की अपेक्षा लवा होता है, जिसकी वनावट अडाकार रहती है। यह सात-आठ खडो मे वँटा रहता है।

जुंए के नर-मादा एक-जैसे होते है लेकिन नर मादा से कुछ छोटे रहते हैं। ये पराश्रयी जीव है, जिनकी वृद्धि वहुत तेज होती है। मादा नासपाती की शकल के वहुत से अडे देती है जो वालो की जड़ के पास चिपके रहते हैं। इन्हें लीख कहते हैं। ये अडे आठ दस दिनो वाद फूटते है और उनमें से छोटे-छोटे वच्चे निकलते है। ये वच्चे १८-२० दिनो में वढकर प्रौढ जुएँ हो जाते है।

जुंए के दो भाई और है जिनके वर्णन के विना इनका वयान अधूरा ही रह जायगा। इनमें एक तो चीलर (Body Louse) और दूसरा छगोडिया (Crab Louse) है। ये दोनो जीव जुंए की तरह दूसरो का खून चूसकर अपना जीवन बिताते है और दोनो ही गदगी के कारण फैलते हैं।

जुंआ, चीलर और छ गोडिया

चीलर (Body Louse) वालो के वजाय कपडो की तह में रहते है और सारे बदन में वुरी तरह काटते हैं। एक वार कपडे में पड जाने पर उसे विना गरम पानी में उवाले इन्हे उसमें से निकाला नही जा सकता। इनका रग सफेद होता है। इससे ये कपडो में जल्द दिखाई नही पडते। इनकी और आदतें जुंए जैसी होती है।
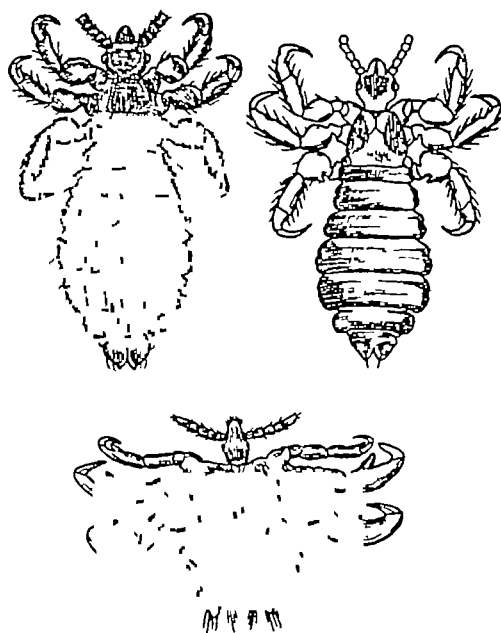
छगोडिया (Crab Louse) की बनावट गोल होती है और इसका रग काला या कलछौंह होता है। यह आदमियो के वदन में इस वुरी तरह चिपक जाती है कि इसको निकालना मुश्किल हो जाता है। वदन में चिपक जाने पर यह देखने मे छोटे तिल-जैसी जान पडती है और नाखून गडाकर निकालने से ही बदन को छोडती है। कुछ देर तक तो यह चुपचाप अपने पैरो को समेटे हुए पडी रहती है। फिर एकाएक पैरो को फैलाकर भागती है। यह भी गदगी की निशानी है। गाँव के लोग इसका शरीर पर पाया जाना वहुत अपशकुन मानते है। कुछ लोगो का तो यह विश्वास है कि यह दरिद्रता आने की सूचना मनुष्य को देती है।

छगोडिया धीरे-धीरे मनुष्य का खून चूसती रहती है जो उसे ज्ञात नही होता। इसकी और सव आदतें जुंए की तरह ही होती हैं।

पाँखी वर्ग

(ORDER EPHEMEROPTERA)

इस वर्ग मे हमारी प्रसिद्ध पाँखियाँ है जो अपने अद्भुत जीवन के कारण कीट-जगत के विलक्षण जीव है। इनके बहुत छोटे स्पर्शसूत्र (Antennae) और पतला-सा लबा शरीर होता है जिसके पिछले सिरे पर तीन लबी और पतली दुमे रहती है। इसके अगले पर बडे और चौडे होते है लेकिन पीछे के पर बहुत ही छोटे रहते है।

पाँखियाँ सारे ससार में फैली हुई है और इनकी अनेक जातियाँ पायी जाती है। ये पानी के निकट रहनेवाले जीव है जिन्हे रोशनी से खास प्रेम है। इनके शरीर का रग भूरा या राख-जैसा रहता है।

पाँखी का रूपान्तरण बहुत अद्भुत होता है। अडे से निकलने के बाद ये शिशुकीट (Nymph) के रूप में लगभग तीन वर्षो तक रहती है जिसके उपरान्त कही ये पूर्ण रूप से पाँखी बन पाती है। अपने असली स्वरूप मे आते ही ये मैथुन के उपरान्त अण्डे देकर जल्द ही मर जाती है। इनका यह छोटा-सा जीवन ३–४ घटो से लेकर दो तीन दिन तक रहता है। इस छोटे जीवन का कारण यही है कि इनके मुख और भोजन की नली से कोई सबध नही रहता और दोनो एक दूसरे के लिए बेकार ही रहते है। यहाँ अपने यहाँ की प्रसिद्ध पाँखी का वर्णन किया जा रहा है।

पाँखी

(MAY FLY)

पाँखियो को हम सबने लैम्प से टकरा-टकराकर या दीपक मे जल-जलकर प्राण देते देखा होगा। बरसात मे इनके मारे लैम्प के पास बैठना मुश्किल हो जाता है।

ये पानी के निकट रहनेवाले जीव है जिनके जीवन का ज्यादा हिस्सा पानी ही मे बीतता है। यही कारण है कि ये नदी और दूसरे जलाशयो के आसपास ही रहती है और रात मे रोशनी के पास झुड-की-झुड पहुँच जाती है। दिन को भी इन्हे हम पानी की सतह पर उडते देखते हैं।

पाँखी का जीवन बहुत छोटा होता है। अपनी असली पखदार सूरत मे आने के बाद ये दो-तीन घटे या एक-दो दिन ही जिन्दा रहती है और फिर अडे देकर मर जाती

है। इस छोटे जीवन का एक यह भी कारण है कि इनके मुंह और भोजन की नली में कोई सबध नही रहता। और इनके ये दोनो अग इनके लिए बेकार ही रहते हैं।

पाँखी का शरीर बहुत ही कोमल होता है जिसकी लबाई करीब चौथाई इच से ज्यादा नही होती। इनके दो जोडे पख होते हैं जिनमें अगले बडे और पिछले छोटे होते हैं। जब यह बैठी रहती है तो अगले पख एक दूसरे से जुटकर ऊपर की ओर उठे रहते हैं। इनके मूँछे नही होती लेकिन दुम लबी और पतली होती है जिससे पहचानना आसान हो जाता है। नर की आँखें मादा से लबी होती है, रग मे नर-मादा दोनो भूरे धुमैले रग के होते है।
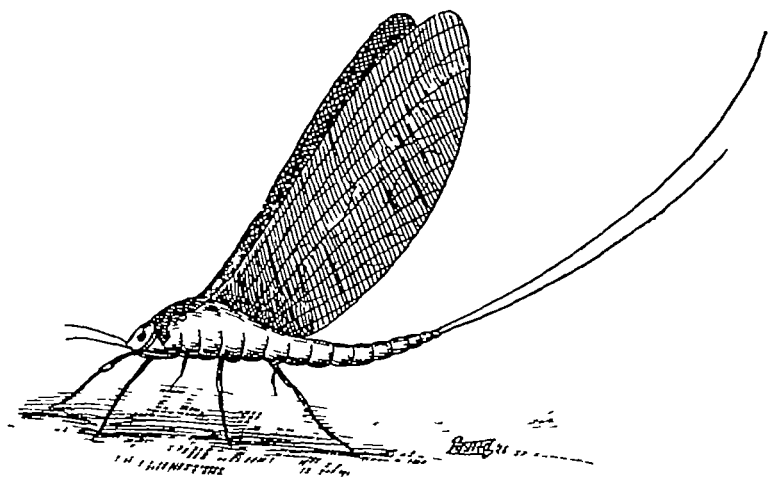
पाँखी

मादा पाँखी अपने अडे पानी मे देती है जहाँ वे फूटकर शिशुकीट की शकल में बदल जाते हैं। ये पहले पानी के भीतर रहते हैं और अपनी खाल से प्राणवायु को सोख कर जिन्दा रहते हैं लेकिन कुछ समय बाद ये पानी की सतह पर आ जाते हैं। ऊपर आकर ये या तो पानी में तैरते रहते हैं या किसी पत्थर या घासफूस के तने पर चढ जाते हैं। इस समय इनके मुंह की बनावट काटनेवाले कीडो की तरह होती है जिसके सहारे ये सडी-गली घासपात या पानी या कीचड मे के बहुत छोटे-छोटे कीडे खाते हैं। इस अवस्था में पानी के भीतर साँस लेने के लिए इनके पेट पर गलफड भी बन जाते हैं।

इस अवस्था मे काफी समय विताने के बाद एक दिन उनकी झिल्ली फट जाती है और झिल्ली के भीतर से सुन्दर पखवाली पाँखी निकल पडती है। पाँखी को अपनी इस असली सूरत मे आने मे लगभग तीन वर्ष लग जाते हैं और इन तीन वर्षो के वाद वह अपना छोटा-सा जीवन विताने के लिए हवा में उड पाती है। उडते समय वह कुछ आगे वढकर उडती है और ऐसा जान पडता है कि जैसे वह हवा में नाच रही है।

चिउरा वर्ग

(ORDER ODONATA)

इस वर्ग मे प्रसिद्ध चिउरा या टीडियो को एकत्र किया गया है जो हवा में अपने अगले पखो को फैलाये हुए हवाई जहाज की तरह उडा करते है। ये ज्यादातर पानी के ऊपर दिखाई पडते है, जहाँ ये थोडी-थोडी देर तक किसी पौधे आदि के पास रुक कर आगे वढ जाते है।

चिउरा की करीव ढाई हजार जातियाँ सारे ससार मे फैली हुई है लेकिन इनकी अधिक सख्या गरम देशो में ही देखी जा सकती है। ये अपने सुडौल शरीर, रगीन पर तथा कुशल उडान से वरवस हमारी निगाह अपनी ओर खीच लेते है। इनका सिर वक्ष से अलग रहता है और आँखे सयुक्त और वडी होती है। इनका मुख-छिद्र नीचे की ओर रहता है, जिसमे वहुत मजवूत जवडे रहते है और मुँह के आगे दो छोटे स्पर्शसूत्र रहते है। इनके पैर इनके चलने-फिरने मे तो सहायक नही होते लेकिन कीडे-मकोडो को पकडने मे इन्हे उनसे वहुत मदद मिलती है। वडे कीडो को ये अपनी टाँगो से पकडे रहते है और उडते-उडते ही उन्हे चट कर डालते है। इनका रूपान्तरण पूर्ण होता है और ये पूर्ण रूप से चिउरा वनकर ही खोल से निकलते है। इनके खाली खोल अक्सर पानी के किनारे के पेडो, चट्टानो तथा हौज की दीवारो पर चिपके मिलते है।

चिउरा मासाहारी जीव है जो कीडे-मकोडो के अलावा अन्य कीडे-मकोडो के शिशुकीटो को वडे स्वाद से खाता है।

यहाँ इनमें से एक का वर्णन दिया जा रहा है।

चिउरा

(DRAGON FLY)

चिउरा को कही कही जोलाहा भी कहते है और इसका टीडी नाम भी कम प्रसिद्ध नही है। पानी की सतह के ऊपर अपने चारो परो को तानकर इन्हें जिसने एक वार भी उडने देखा है वह इन्हें कभी भुला नही सकता। ये उडते-उडते एक ही जगह पर इस तरह रुक जाते है जैसे कौडिल्ला पक्षी मछलियो की ताक मे पानी के ऊपर रुका रहता है।

चिउरा
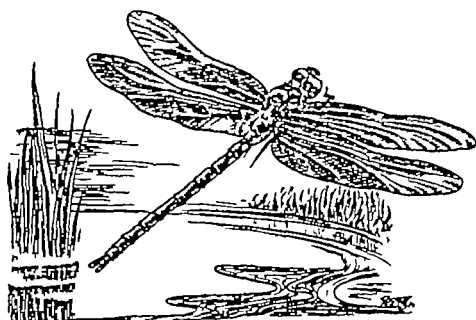
चिउरा का सिर तो वडा होता है, लेकिन उसके वक्ष के वाद का उदर का हिस्सा लवी नली के आकार का पतला ही रहता है। इन्हें या तो हम उडते ही देखते है या किसी डाली पर बैठे हुए। जमीन पर ये नही बैठते क्योकि वैठने पर इनके पर हवाई जहाज के पख की तरह फैले ही रहते हैं जिससे इन्हे एकाएक हवा मे उठने मे दिक्कत पडती है।

चिउरा वहुत फुर्तीले होते है और वे इस फुर्ती से इधर-उधर उडते है कि देखकर आश्चर्य होता है। उडते समय ये अपने पैरो को आगे वढा कर सिर के नीचे कर लेते है और इन्ही से उडते हुए शिकार को पकड लेते हैं। इनका मुंह नीचे की ओर रहता है जिसकी वनावट काटनेवाले कीडो के मुख जैसी होती है। चिउरा की आँखें वडी वडी और जवडे कडे होते हैं। इनका धड मोटा और पेट पतला तथा कोमल होता है। इनके पर लवे, पारदर्शी और जालीदार होते हैं। टाँगे पतली और दाँतेदार रहती हैं।

चिडरा की मादा, समय आने पर, अक्सर पानी मे किसी घास-फूस के ऊपर या पानी के भीतर तनो मे छेद वनाकर वहुत से अडे देती है। ये अडे एक प्रकार के चिपचिपे पदार्थ से आपस में जुटे रहते है। अडे कुछ दिनो वाद फूटते है और उनमें से छोटे-छोटे शिशुकीट निकलते है जो छोटे-मोटे कीडे-मकोडो को वडे मजे मे खाते हैं। इन शिशु-

कीटो का साँस लेने का ढग विचित्र होता है। इनमे से कुछ के दुम के निकट साँस लेने के गलफड रहते है तो कुछ के गलफड अँतडियो के पिछले भाग के ऊपर होते हैं। ये इन्हीसे पानी को भीतर खीचकर उसमे की प्राणवायु को सोख लेते हैं।

ये शिशुकीट बहुत फुर्तीले होते हैं और बडी तेजी से पानी के ऊपर नीचे आते-जाते रहते हैं। इनका निचला ओठ सूँड जैसा होता है जिसको वे मुंह के ऊपर लपेट सकते हैं। इस सूँड के सिरे पर काँटे रहते हैं जिनकी मदद से ये अपने शिकार को पकडकर अपना पेट भरते है।

इन शिशुकीटो का जीवन १०–१२ महीने का ही होता है। ये इसी बीच कई बार अपनी खोल बदलते है। अन्त मे जब इनके पर निकलने का समय आता है तो ये पानी की सतह पर आ जाते हैं। इस समय इनकी धुँधली आँखे बहुत तेज हो उठती हैं और इनकी खाल सूखने लगती है। खाल के सूख जाने पर उसमे धड के पास दराज फूट जाती है, जिसमे होकर चिउरा बाहर निकल आता है।

चिउरा अपने कागज जैसे कडे खोल से बाहर निकलते समय पहले अपना सिर बाहर निकालता है और फिर टाँगें। सिर की मदद से ऐठकर वह इस होशियारी से अपने शरीर को इस कालकोठरी से बाहर निकालता है कि देखकर आश्चर्य होता है। पेट के अतिम हिस्से को वह अपनी टाँगे चलाकर अलग कर देता है और फिर हवा मे उड जाता है। इसके सूखे कडे खोल पानी के पौधो के तनो या हौज की दीवारो मे अक्सर चिपके मिल जाते हैं, जिन्हे देखकर कभी इसका ख्याल भी नही होता कि इतना बडा कीडा अभी घटे दो घटे पहले सिमटकर इसी छोटे खोल मे छिपा था।

मत्कुण-गण वर्ग

(ORDER HEMIPTERA)

यह वर्ग अन्य वर्गो से काफी बडा है। इसमे सब प्रकार की झिल्लियाँ तथा खटमल एकत्र किये गये है जिनके मुख की जगह चूसने की एक सूँड-सी रहती है। ये रग-बिरगे और चपटे आकार के होते हैं और अपने शरीर का पोषण रस या रक्त चूसकर करते है।

इनमें से कुछ खुश्की मे रहते है तो कुछ दरख्तो पर और कुछ ऐसे भी है जो पानी में ही अपना समय बिता देते हैं। इनमे कुछ पखवाले होते हैं तो कुछ के छोटे

से प्रारभिक पर रहते है और ऐसो की भी सख्या कम नही है जिनके शरीर पर परो का अभाव रहता है। इन कीडो के स्पर्शसूत्र छोटे होते है और आँखे बडी और सयुक्त रहती है। इनके वक्ष का पहला खड बडा रहता है जिसमें इनका सिर घुसा-सा जान पडता है। इनका उदर चपटा और अडाकार रहता है और पैर बहुत पतले होते है। इनमें से अधिकाश के शरीर से एक प्रकार की दुर्गन्ध आती है जो इनकी गध-ग्रन्थियो से निकलती है। ये ग्रन्थियाँ इनके उदर भाग में नीचे रहती है।

इन जीवो का रूपान्तरण पूर्ण नही होता। कद में छोटे होकर भी शकल-सूरत में इनके शिशुकीट प्रौढ कीटो के अनुरूप ही रहते हैं। इनकी तीस हजार से अधिक जातियाँ सारे ससार मे फैली हुई है।

विद्वानो ने सुविधा के लिए इस वर्ग को दो उपवर्गो में इस प्रकार विभाजित किया है—

१ खटमल उपवर्ग—Sub Order Heteroptera
२ रइयाँ उपवर्ग—Sub Order Homoptera

खटमल उपवर्ग

(SUB ORDER HETEROPTERA)

इस उपवर्ग में सब प्रकार के जल, थल और पेडो पर रहनेवाले खटमलो, तथा पनबिछियो आदि को एकत्र किया गया है जो हमारे पेड-पौधो को बहुत नुकसान पहुँचाते है। इनकी आदत, रहन-सहन तथा भोजन आदि के बारे में बताया ही जा चुका है। यहाँ इनमे से केवल चारपाइयो में रहनेवाले प्रसिद्ध खटमल तथा पनबिछिया का वर्णन दिया जा रहा है।

खटमल

(BED BUG)

खटमल का कुटुम्ब बहुत बडा है और इसकी अनेक जातियाँ ससार मे फैली हुई है। इनमें से कुछ खुश्की पर रहनेवाले हैं तो कुछ पानी में। कुछ ने पेडो पर अपना निवास बना लिया है तो कुछ ऐसे है जिन्होने हमारे घरो में ही आकर डेरा डाला है।

यहाँ जिस खटमल का वर्णन दिया जा रहा है वह हमारा चिरपरिचित खटमल है जो हमारी चारपाइयो, कुर्सियो और दीवार के दराजो मे रहता है। जिन लोगो को जेल जाने का मौका मिला है या जो गर्मियो में पहाडो पर जाते हैं उन्हे खटमलो के बारे मे ज्यादा बताना फिजूल है। वहाँ कई महीने के भूखे खटमल इस बुरी तरह हमारा खून चूसने के लिए पिल पडते है कि सारा शरीर चकत्तो से भर जाता है।

खटमल को देहात मे खटकीरा या खटकिरवा भी कहते हैं। इनका शरीर चपटा और सुर्खीमायल कत्थई रग का होता है। इनकी पीठ इतनी कडी और चिकनी होती है कि भागते समय इनको पकडना मुश्किल हो जाता है। इनके पर नही होते। इनके मुँह के अगले हिस्से मे एक नोकीली सूँड होती है जिसे खाल में चुभाकर ये खून चूस लेते हैं।

खटमल

खटमल जब काटना चाहता है तो पहले अपने मुँह से एक प्रकार का तरल पदार्थ खाल के भीतर भर देता है। इससे उस जगह बडी खुजलाहट और जलन-सी होने लगती है और उस स्थान पर रक्त का सचार बढ जाता है। इसी समय वह अपनी सूँड गडाकर रक्त पी लेता है और फौरन ही हटकर दूसरी जगह खिसक जाता है। इसके काटने पर बहुत खुजली होती है और उस स्थान पर ददोरे उभर आते हैं। इसको हाथ से मसल कर मारना कठिन होता है लेकिन किसी कडी चीज पर रगड कर मारने मे इसके शरीर से एक प्रकार की बदबू निकलती है।

खटमल ज्यादातर रात मे ही घूमने निकलते हैं लेकिन कभी-कभी ये दिन मे भी कपडो पर दिखाई पड जाते है। इनमे एक खास बात यह होती है कि ये साल-साल भर तक बिना खाये पिये रह सकते हैं।

मादा खटमल दीवार की या कुर्सी, मेज और चारपाइयो की दराजो में काफी अण्डे देती है। ये अण्डे ८-१० दिन मे फूट जाते हैं और उनमे से छोटे-छोटे बच्चे निकलते हैं जो छोटे होने पर भी शकल-सूरत मे बडो जैसे ही होते है। इनका रग जरूर हलका रहता है। लेकिन दो महीने के भीतर ही ये अपना खोल बदलकर पूरे तौर पर खटमल बन जाते हैं।

से प्रारभिक पर रहते है और ऐसो की भी सख्या कम नही है जिनके शरीर पर प
अभाव रहता है। इन कीडो के स्पर्शसूत्र छोटे होते है और आँखे बडी और सयुक्त
है। इनके वक्ष का पहला खड बडा रहता है जिसमे इनका सिर घुसा-सा जान
है। इनका उदर चपटा और अडाकार रहता है और पैर बहुत पतले होते है।
से अधिकाश के शरीर से एक प्रकार की दुर्गन्ध आती है जो इनकी गध-ग्रन्थि
निकलती है। ये ग्रन्थियाँ इनके उदर भाग में नीचे रहती है।

इन जीवो का रूपान्तरण पूर्ण नही होता। कद में छोटे होकर भी शकल
में इनके शिशुकीट प्रौढ कीटो के अनुरूप ही रहते है। इनकी तीस हजार से अ
जातियाँ सारे ससार मे फैली हुई है।

विद्वानो ने सुविधा के लिए इस वर्ग को दो उपवर्गो में इस प्रकार विभ
किया है—

१ खटमल उपवर्ग—Sub Order Heteroptera
२ रइयाँ उपवर्ग—Sub Order Homoptera

खटमल उपवर्ग

(SUB ORDER HETEROPTERA)

इस उपवर्ग में सब प्रकार के जल, थल और पेडो पर रहनेवाले खटमलो, तथा प
छियो आदि को एकत्र किया गया है जो हमारे पेड-पौधो को बहुत नुकसान पहुँचाते
इनकी आदत, रहन-सहन तथा भोजन आदि के बारे में बताया ही जा चुका है।
इनमें से केवल चारपाइयो में रहनेवाले प्रसिद्ध खटमल तथा पनबिछिया का व
दिया जा रहा है।

खटमल

(BED BUG)

खटमल का कुटुम्ब बहुत बडा है और इसकी अनेक जातियाँ ससार मे फैली
है। इनमें से कुछ खुश्की पर रहनेवाले हैं तो कुछ पानी में। कुछ ने पेडो पर अ
निवास बना लिया है तो कुछ ऐसे है जिन्होने हमारे घरो मे ही आकर डेरा डाला ह

यहाँ जिस खटमल का वर्णन दिया जा रहा है वह हमारा चिरपरिचित खटमल है जो हमारी चारपाइयो, कुर्सियो और दीवार के दराजो मे रहता है। जिन लोगो को जेल जाने का मौका मिला है या जो गर्मियो मे पहाडो पर जाते हैं उन्हे खटमलो के बारे में ज्यादा बताना फिजूल है। वहाँ कई महीने के भूखे खटमल इस बुरी तरह हमारा खून चूसने के लिए पिल पडते हैं कि सारा शरीर चकत्तो से भर जाता है।

खटमल को देहात मे खटकीरा या खटकिरवा भी कहते है। इनका शरीर चपटा और सुर्खीमायल कत्थई रग का होता है। इनकी पीठ इतनी कडी और चिकनी होती है कि भागते समय इनको पकडना मुश्किल हो जाता है। इनके पर नही होते। इनके मुँह के अगले हिस्से मे एक नोकीली सूँड होती है जिसे खाल में चुभाकर ये खून चूस लेते है।

खटमल

खटमल जब काटना चाहता है तो पहले अपने मुँह से एक प्रकार का तरल पदार्थ खाल के भीतर भर देता है। इससे उस जगह बडी खुजलाहट और जलन-सी होने लगती है और उस स्थान पर रक्त का सचार बढ जाता है। इसी समय वह अपनी सूँड गडाकर रक्त पी लेता है और फौरन ही हटकर दूसरी जगह खिसक जाता है। इसके काटने पर बहुत खुजली होती है और उस स्थान पर ददोरे उभर आते है। इसको हाथ से मसल कर मारना कठिन होता है लेकिन किसी कडी चीज पर रगड कर मारने मे इसके शरीर से एक प्रकार की बदबू निकलती है।

खटमल ज्यादातर रात मे ही घूमने निकलते है लेकिन कभी-कभी ये दिन मे भी कपडो पर दिखाई पड जाते है। इनमें एक खास बात यह होती है कि ये साल-साल भर तक बिना खाये पिये रह सकते है।

मादा खटमल दीवार की या कुर्सी, मेज और चारपाइयो की दराजो मे काफी अण्डे देती है। ये अण्डे ८-१० दिन में फूट जाते हैं और उनमे से छोटे-छोटे बच्चे निकलते है जो छोटे होने पर भी शकल-सूरत मे बडो जैसे ही होते है। इनका रग जरूर हलका रहता है। लेकिन दो महीने के भीतर ही ये अपना खोल बदलकर पूरे तौर पर खटमल बन जाते है।

पनबिछिया

(WATER SCORPION)

पनबिछिया विच्छू की बिरादरी का जीव नही है। यह तो पानी मे रहनेवाला एक कीडा है जिसकी शकल सूरत और काटने की आदत से इसको यह नाम दे दिया गया है।
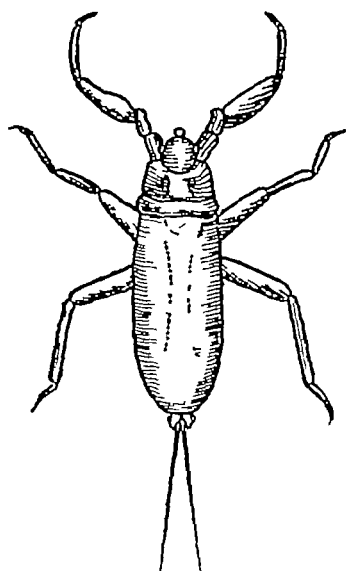
पनबिछिया

पनबिछिया उथले पानी मे ही रहना ज्यादा पसन्द करती है, जहाँ नहाते समय इसके काटने से इसकी मौजूदगी का पता बडी आसानी से चल जाता है। इसका शरीर करीब १ इच लम्बा और चपटा होता है जिसकी चौडाई ऊपर से नीचे तक एक जैसी रहती है। इसका रग कलछौह या धुमैला होता है। इसकी अगली टॉगो मे नाखून होते है जिनसे यह शिकार पकडती है। इसकी पीठ पर कडे पख रहते है जो बन्द होने पर एक खोल की तरह इसके सारे शरीर को ढँक लेते है। इसके शरीर के पीछे दो नलियाँ निकली रहती है जो देखने मे दुम-सी जान पडती है। पनबिछिया का मुख्य भोजन पानी मे रहनेवाले छोटे-छोटे कीडे-मकोडे है।

इसकी मादा पानी मे पडी हुई टहनियो या घासपात पर बहुत से अण्डे देती है जो समय पाकर फूटते है और जिनमे से बच्चे निकलते ही पानी मे चले जाते है।

रइयाँ उपवर्ग

(SUB ORDER HOMOPTERA)

इस उपवर्ग मे रइयाँ (Cicada) माहूँ (Aphids) आदि बहुत से कीट है जिनसे हमारी फसल को बहुत नुकसान पहुँचता है। इनमे और खटमलो मे मुख्य भेद यह रहता है कि इनका सिर आगे की ओर इतना झुका रहता है कि वह अगले

पैरो के सिरे को छूता रहता है। ये सब जीव भी रस चूसकर अपना पेट भरते है। माहूँ हरे, काले, लाल, पीले तथा नारगी रग के होते है। ये पौधो की पत्तियो तथा मुलायम तनो पर काफी वडी सख्या में चिपके रहते है और उनका रस चूसा करते है। इनकी मादा एक दिन में असख्य अण्डे देती है जिनमे से वच्चे निकलते ही रस चूसने का काम शुरू कर देते है। ये शिशुकीट तीन-चार दिन में ही प्रौढ होकर सतान-वृद्धि करने लगते है।

यहाँ इनमें से प्रसिद्ध रइयाँ का वर्णन दिया जा रहा है।

रइयाँ

(CICADA)

बरसात में रइयाँ की तीखी आवाज को ऐसा कौन है जिसने न सुना हो? झीगुर के साथ ही साथ इनकी कडी आवाज से जी ऊव जाता है। ये हमारे यहाँ के सवसे तेज़ आवाज़ करनेवाले कीडे है जो नम और गरम प्रदेशो मे ज्यादा पाये जाते है।

रइयाँ को अपने रहने के लिए मैदान से ज्यादा पहाड और जगल पसन्द आते है क्योकि इन्हे पेडो से ही अपनी खूराक का ज्यादा हिस्सा मिलता है। ये उनकी छाल का रस पीते है और अपना ज्यादा समय उन्ही पर रहकर काट देते है।

रइयाँ

रइयाँ वहुत सुडौल कीडा है जिसका सिर छोटा और चौडा होता है। इसकी वडी आँखें ऊपर न होकर दोनो वगल दवी रहती है। इसके धड का अगला हिस्सा छोटा रहता है और वीच का चौडा हिस्सा पीछे की ओर फैलकर दाल की शकल का हो जाता है। इसके अगले पर पिछले परो से वडे होते है जो चमकीले और पारदर्शी
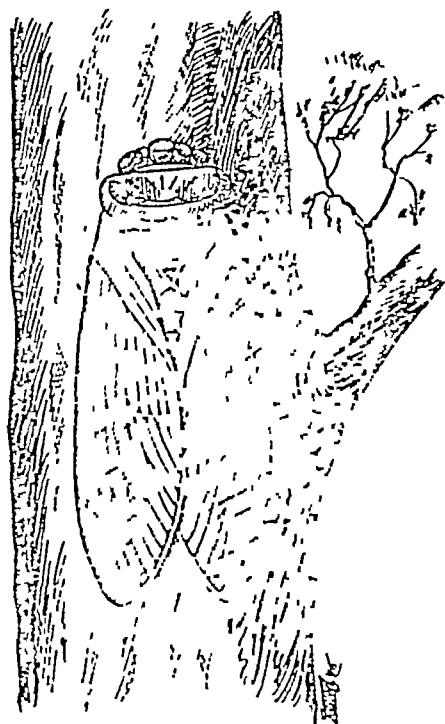
रहते हैं। रइयाँ के बैठे रहने पर ये उसकी पीठ को ढँके रहते हैं। इसका पेट बहुत छोटा होता है और इसके मुख की बनावट चोच-जैसी होनी है।

रइयाँ की तेज आवाज के वारे में कुछ लिखे विना इसका वर्णन अधूरा ही रह जायगा। ऐसी तेज आवाज करने के लिए इसके पेट के नीचे दो कडे शल्क से रहते हैं जो इसके आवाज करनेवाले यत्र को ढँके रहते हैं। इनको हटा देने पर हमे एक शिगाफ सा नजर आयेगा जो दो हिस्सो मे बँटा रहता है। इसका भीतरी हिस्सा, चौडा और बेतरतीब होता है और इसकी दीवारो पर एक कडी और चमकीली झिल्ली चढी रहती है। बाहरी हिस्सा पतला होता है जिसमे बाहर की ओर एक मुँह-सा खुला रहता है। इसकी दीवार के नीचे एक झिल्ली छिपी रहती है, जिससे यह तेज आवाज निकालता है। रइयाँ जब अपने पेट के पास की मजबूत मासपेशियो को हरकत देता है तो भीतर की झिल्ली से यह तेज ध्वनि उत्पन्न होती है। प्रकृति ने रइयो को ही यह यत्र दिया है इसी से मादाएँ इस प्रकार की तेज आवाज करने से वचित रह जाती हैं।

सपक्ष उपश्रेणी

(SUB-CLASS ENDOPTERYGOTA)

सपक्ष उपश्रेणी, जैसा उसके नाम से स्पष्ट है, उन कीट-पतिगो की उपश्रेणी है जो अपने सुन्दर तथा उपयोगी पखो के लिए प्रसिद्ध हैं। इन कीट-पतिगों को वैसे तो विद्वानो ने कई वर्गो मे विभाजित किया है, लेकिन यहाँ निम्न लिखित पाँच वर्गो के ही जीव लिये जा रहे हैं जिनसे हम सब बहुत कुछ परिचित हैं —

१ सयुक्तपक्ष वर्ग—Order Neuroptera

२ शल्किपक्ष वर्ग—Order Lepidoptera

३ कचनपक्ष वर्ग—Order Coleoptera

४ कलापक्ष वर्ग—Order Hymenoptera

५ द्विपक्ष वर्ग—Order Diptera

सयुक्तपक्ष वर्ग में सब प्रकार के चींटीचोर रखे गये हैं।

शल्किपक्ष वर्ग में तितलियो और पतिगो को एकत्र किया गया है।

कचनपक्ष वर्ग में सब प्रकार के गुबरीले इकट्ठे किये गये है ।

कलापक्ष वर्ग मे चीटे, बर्र और मधुमक्खियो आदि को जमा किया गया है। द्विपक्ष वर्ग मे हमारी चिरपरिचित मक्खियाँ और मच्छर आ जाते हैं। आगे इन्ही सब का अलग-अलग वर्णन दिया जा रहा है ।

सयुक्तपक्ष वर्ग

(ORDER NEUROPTERA)

इस वर्ग के कीटो के दो जोड सुन्दर पख होते हैं जो करीब-करीब बराबर ही रहते है। इनका रूपान्तरण (Metamorphosis) पूर्ण होता है लेकिन शिशुकीट प्रौढ कीट से शकल-सूरत मे एकदम भिन्न रहता है। इन कीटो के मुखभाग काटने के लिए बहुत उपयुक्त होते है और अपने मजबूत जबडो से इन्हें छोटे कीडे-मकोडो के पकडने मे दिक्कत नही होती।

यहाँ इनमे से अपने देश के प्रसिद्ध चीटीचोर (Ant Lion) नाम के कीडे का वर्णन दिया जा रहा है।

चीटीचोर

(ANT LION)

चीटीचोर को यह नाम उसके चीटी-चीटो तथा अन्य छोटे कीडो के शिकार करने के कारण मिला है और यह नाम है भी बहुत सार्थक।

चीटीचोर वास्तव मे उडनेवाला परदार कीडा है, जो अक्सर रात के समय इधर-उधर उडता फिरता है लेकिन हम लोग इसकी उस अवस्था को न जानकर इसे चीटीचोर कहते है। इसीलिए यहाँ इसके दोनो स्वरूपो का वर्णन करना जरूरी हो गया है।

चीटीचोर के नर-मादा एक-जैसे होते हैं। इसके दो जोड पर होते है जो नाप में बराबर रहते है। ये जालीदार होते है और उन पर पत्तियो-जैसी नसें दिखाई

पडती है। इनका रंग भूरा और कलछौंह रहता है जिन पर ललछौंह विन्दियाँ पड़ी रहती हैं। इनका सिर और आँखे वडी होती है लेकिन मूँछे छोटी और मोटी रहती है। इनके शरीर का रग भूरा होता है जिस पर रोये से रहते हैं।
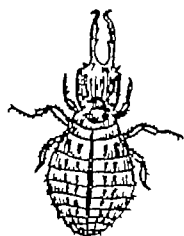
चींटीचोर

चीटीचोर का धड वहुत मजवूत होता है और मुँह की वनावट कटावदार है। इसका पेट लम्वा, पतला और कोमल होता है लेकिन शरीर को देखते हुए टाँगे छोटी ही रहती हैं। इसकी टाँगो पर काँटे मे रहते है जिनसे यह पेड को आसानी से पकड सकता है। इसके वदन से एक प्रकार की वू निकलती रहती है।

मादा चीटीचोर समय पाकर वालू या मिट्टी मे अण्डे देती है। ये अण्डे कुछ दिनो वाद फूटते है और उनमे से चपटी वनावट का शिशुकीट (Larva) वाहर निकलता है। यही हमारा परिचित चीटी-चोर है। इसका सिर वडा और चपटा होता है जो धड से इस प्रकार जुटा रहता है कि यह उसे सुविधानुसार आगे-पीछे कर सकता है। इसके सिर से आगे की ओर दो मजवूत जवडे निकले रहते है जो लम्वे और टेढे होते है। ये ही चीटीचोर के शस्त्र हैं, जिनके वीच यह अपने शिकार को दवा कर उनका खून चूस लेता है। खून चूसने के लिए इसके मुँह मे एक प्रकार की नली रहती हे जिसके जरिए यह अपना पेट भरता है।

चीटीचोर इस अवस्था मे वालू मे गढा वनाकर रहता है और जहाँ इसको गढे वनाना होता है वहाँ यह पहले जमीन पर गोलाकार निशान वनाता है, फिर उसी निशान पर यह पीछे की ओर चलता हुआ निशान को गहरा करता जाता है और अपने चौडे सिर से मिट्टी वाहर की ओर फेकता जाता है। इस पर वरावर घूम-घूमकर यह गोले के भीतर की सारी मिट्टी वाहर फेक देता है और तव उसका यह घर तेल भरने की कुप्पी की तरह वनकर तैयार हो जाता है। इस गढे की गहराई प्राय दो इच और इसका व्यास करीव तीन इच होता है।

यह गढे के वीचोवीच अपने को जमीन मे गाडकर चोर की भाँति शिकार की तलाश मे वैठा रहता है। उस समय इसकी सिर्फ मूँछे ही, जो उसकी स्पर्शेन्द्रियाँ है, मिट्टी से वाहर निकली रहती है। पढे मे जैसे ही कोई चीटी या दूसरा छोटा

कीडा गिरता है यह अपने मजबूत जबडे से उसे पकडकर उसका खून यों चूस लेता है कि उसकी सूखी ठठरी भर रह जाती है। इस ठठरी को गढे के बाहर फेंककर, फिर यह अपनी जगह पर उसी मुस्तैदी से जा छिपता है। जब कभी कीडे उसके वार से बचकर गढे की दीवार पर चढने लगते हैं तो यह उन पर बालू फेंककर उन्हे आगे नही बढने देता और इस प्रकार बालू मे अन्धा करके उन्हे फौरन ही पकड लेता है। बडे कीडे जरूर उसकी पकड म नही आते लेकिन इसे ज्यादा तकलीफ नही होती क्योंकि एक चींटी इसके लिए काफी होती है।

कुछ दिनो बाद इसकी इस दशा मे फिर परिवर्तन होता है और यह अपने चारो ओर रेशम के तार का खोल बनाता है और कुछ दिनो के लिए उसी के भीतर बन्द हो जाता है। कुछ दिनो बाद फिर परिवर्तन होता है और यह अपने रेशमी खोल को फाडकर हवा मे उड जाता है। यही इसकी अन्तिम अवस्था है जिसको देख कभी अनुमान नही होता कि कभी यह बालू मे घुसा हुआ चींटी चुराता रहा होगा।

शल्किपक्ष वर्ग

(ORDER LEPIDOPTERA)

इस वर्ग मे सब प्रकार की तितलियाँ और पतिंग आते हैं जो अपनी सुन्दरता के लिए बहुत प्रसिद्ध हैं। इनके दो जोड पंख होते है जिन पर रंगीन धूल से तरह-तरह की डिजाइने बनी रहती हैं। इनके मुख भाग के आगे एक लंबी सूँड-सी रहती है जिससे ये फूलो का रस चूसते हैं। इस सूँड की बनावट बहुत कुछ घडी की कमानी की तरह होती है जो लिपटकर इनके मुख-भाग के नीचे छिपी रहती है।

तितलियों को पूर्णावस्था तक आने के लिए कई रूपान्तर करने होते हैं। वे डिम्बावस्था (Egg), शिशुकीटावस्था (Larval Stage) और मूक कीटावस्था (Pupa) को पार करने के बाद ही अपने वास्तविक स्वरूप को पहुँचती है।

तितलियो और पतिंगो में थोडा ही भेद रहता है और कुछ लोग इन दोनो को तितली ही समझते हैं, इसलिए यह आवश्यक है कि हम इन दोनो के भेद को जान ले, क्योंकि तितलियो और पतिंगो मे अक्सर हमको धोखा हो जाता है। पतिंगे तितलियो से शकल-सूरत मे ही नही बल्कि और भी कई बातो मे मिलते हैं लेकिन वे वास्तव मे उनसे भिन्न प्राणी हैं। इसे हम निम्नांकित बातो से आसानी से

जान सकते है—१ तितलियाँ जहाँ दिन में उडती है, पतिगे प्राय रात मे निकलते है। २ तितलियाँ बैठने पर अक्सर अपने दोनो पखो के ऊपरी हिस्से को एक दूसरे से चिपकाकर ऊपर की ओर उठाये रहती है, लेकिन पतिगे बैठने पर अपने पख फैलाये रहते है । ३ तितलियो की मूँछे, जो वास्तव मे उनकी स्पर्शेन्द्रियाँ है, पतली होती है और उनके सिरे पर अक्सर घुण्डी-सी रहती है लेकिन पतिगो की मूँछे नीचे जड के पास मोटी होती है जो नोक तक पहुँचते-पहुँचते पतली हो जाती है, जैसे तेज़ बनी हुई पेन्सिल का सिरा लेकिन इस पहचान को हम एक नियम नही बना सकते क्योकि इसके अलावा दोनो मे अपवाद भी देखा जा सकता है।

तितलियाँ

(BUTTER FLIES)

तितलियो को किसी कवि ने उडते हुए फूल कहा है लेकिन सच पूछा जाय तो तितलियाँ इस उपमा से कही आगे है। रगो के लिहाज से बाज़-बाज़ तितलियो को फूल पा ही नही सकते। जैसा सुन्दर चित्रण और रगो का जैसा विभाजन कुछ तितलियो के पखो में दिखाई पडता है वैसा किसी जीवधारी मे नही मिल सकता।

तितली
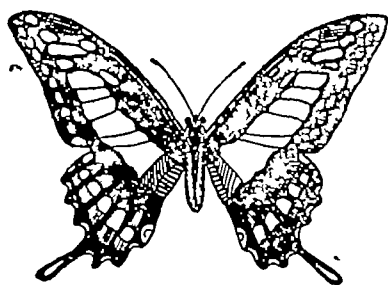
हमारे देश की तितलियाँ ९ श्रेणियो मे विभक्त है। पहली श्रेणी में वे बडी तितलियाँ आती है जिनमे से अधिकाश के पिछले पर के नीचे का कुछ हिस्सा बाहर की ओर बढा रहता है। इनके पैर बडे होते है, जिनके सहारे ये चल लेती है। इनमें से कुछ का शरीर लाल होता है, और कुछ का काला। इनके पैर सुन्दर और रगीन रहते है जिसमें पीला, काला, सफेद, लाल और हरा रग प्रमुख रहता है। अँगरेजी मे इस श्रेणी की तितलियाँ (Papilionids) अबाबीलपुछी-तितलियाँ (Swallow Tails) कहलाती है। इनमे कैसर-हिन्द (Kaiser Hind) नाम की तितली बहुत प्रसिद्ध है जिसके परो पर पीले और हरे रग की बहुत सुन्दर मिलावट रहती है।

दूसरी श्रेणी की तितलियाँ प्राय सफेद रग की होती है। इन्हे बौरी तितलियाँ (Picrids या Whites) कहते है। लेकिन इस श्रेणी मे पीली तितलियाँ भी काफी है और कुछ ऐसी भी है जिन्हे लाल या नीला रग मिला है। इनमे धानी (Grass yellow) और केसरिया (Orange Tips) प्रसिद्ध है। धानी, पीले रग की तितली है जिसके पर का ऊपरी किनारा काले रग का रहता है। केसरिया, वैसे तो सफेद तितली है, पर उसके अगले पर का ऊपरी हिस्सा केसरिया या नारगी रग का रहता है।

तीसरी श्रेणी उन तितलियो की है जिन्हें चीतल तितलियाँ (Danaids) कहा जाता है। इनके पैर छोटे होते है। ये पहली दोनो श्रेणियो की तितलियो की तरह खूब अच्छी तरह उड तो लेती है लेकिन उनकी तरह पैरो के बल चल नही पाती। ये बडी तितलियाँ है जिनके पर चितकबरे रहते है। परो की काली जमीन पर कभी सफेद और कभी सफेद जमीन पर काली धारियाँ या चित्तियाँ रहती है। इनमे शेर तितली (Tigers) और कौआ तितली (Crows) प्रसिद्ध है।

चौथी श्रेणी की तितलियाँ छोटे पैरोवाली होती है जो टाँगो के बल चलने मे असमर्थ रहती है। यही नही, आगे आनेवाली और तीन श्रेणियो की तितलियाँ भी छोटे पैरो की होती है। ये भूरी तितलियाँ (Browns या Satyrids) कहलाती है। इनमे से अधिकाश के पखो का रग धुमैला भूरा होता है और उन पर प्राय आँख जैसा एक गोल निशान बना रहता है। कद के लिहाज़ मे ये बडी और छोटी दोनो तरह की होती है जो साये मे ही रहना पसन्द करती है। इनमे चाँद तितली (Ring) आदि कुछ बहुत प्रसिद्ध है।

पाँचवी श्रेणी की तितलियाँ बडी और रगीन तो होती है पर वे अक्सर घने जगलो मे ही रहना पसन्द करती है। ये जगली तितलियाँ (Amathusuds) कहलाती है।

छठी श्रेणी की तितलियाँ रग-रूप में बहुत सुन्दर और भडकीली होती है और उनको परी तितलियाँ (Nymphalids) कहते है। इन्हे धूप बहुत पसन्द है। इसी कारण इन्हे हम प्राय बाग-बगीचो मे देख सकते है। इनमे भिन्न-भिन्न रगो की तितलियाँ है जिनमे राजा (Raja), नवाब (Nawab) आदि प्रसिद्ध है।

सातवी श्रेणी की तितलियाँ छठी श्रेणी की तितलियो से वैसे वहुत कुछ मिलती-जुलती होती है लेकिन इनका कद उनसे छोटा होता है। इनकी मादाएँ ही पैरो के वल चल-फिर लेती है। ये छोटी परियाँ (Erycinids) कहलाती है।

आठवी श्रेणी की तितलियाँ नीलमी तितलियाँ (Blues या Lycainids) कहलाती है। ये छोटे कद की तितलियाँ है। वैसे इनमे प्राय सभी रगो की तितलियाँ पायी जाती है लेकिन इनके रग मे नीलेपन का ही प्राधान्य रहता है।

नवी और अन्तिम श्रेणी की तितलियाँ ऊपर की सभी श्रेणियो की तितलियो से रगरूप मे ही नही, वरन् शकल-सूरत मे भी थोडी-वहुत जुदा होती है। ये फुदकी तितलियाँ (Hesperiids या Skippers) कहलाती है। देखने मे ये तितलियाँ छोटे पतिग जैसी जान पडती है। इनका रग वहुत धुमैला होता है और इनकी उडान अन्य तितलियो की तरह अलसाई-सी न होकर सीधी और तेज होती है।

श्रेणी-विभाजन के रूखे वर्णन के वाद तितलियो के रूपान्तर (Transformation) का रोचक वर्णन आता है। जैसा ऊपर वताया गया है तितलियो को अपने वास्तविक स्वरूप तक आने मे तीन परिवर्तनो को पार करना पडता है। पहले इनकी डिम्वावस्था रहती है, फिर अण्डो के फूटने पर उसमे से शिशुकीट (Caterpiller) निकलता है जो अपना सारा समय खाने मे ही विता देता है। खूव खाकर वढ जाने पर यह शिशुकीट मूककीट वन जाता है और फिर वह एक कडी खोल के भीतर कैद होकर सुप्तावस्था मे कुछ दिनो तक पडा रहता है। समय पाकर जब उसका यह खोल टूटता है तो उसमे से हमारी तितली अपने पूर्ण रूप मे वाहर निकल आती है। कुछ दिनो वाद यह तितली अण्डे देती है जिनसे शिशुकीट तथा मूककीट के परिवर्तनो के वाद तितलियाँ वन जाती है और इसी प्रकार तितलियो का जीवन-चक्र चलता रहता है।

शिशुकीट का लम्वा शरीर १४ वृत्त खण्डो मे वॅटा रहता है जिनमे से पहला खण्ड सिर और अन्तिम खण्ड मलद्वार का रहता है। दूसरे, तीसरे और चौथे मे से इनकी ६ टॉगे निकली रहती है और सातवें आठवे नवे और दसवे खण्डो मे से पैर की शकल के कुछ रेशे से निकले रहते है जो वास्तव मे इसकी चूसने की इन्द्रियाँ है। अन्तिम खड की शकल वहुत कुछ चिमटी-सी होती है जिससे शिशुकीट किसी

वस्तु के पकडने का काम लेता है। इसके शरीर मे दोनो ओर दूसर खण्ड मे और पाँचवें तथा बारहवे खडो मे थोडी जगह सीग-सी चिकनी होती है जहाँ से शिशुकीट साँस लेता है। उसके सिर के दोनो ओर ६-६ आँखो जैसे निशान रहते है जो प्रारभिक अवस्था की आँखे कही जा सकती है। शिशुकीट के थूथन के पास दो मूँछे-सी रहती है जो उसकी स्पर्शेन्द्रियाँ है। उसके मुँह के भीतर कडे जबडे रहते है जिन्हे वह ऊपर नीचे न चलाकर आडा-आडा चलाता है। निचले जबडे से कुछ ऊपर एक छोटा छिद्र रहता है जिसमे से शिशुकीट रेशम के तार निकालता है । दो एक को छोडकर प्राय सभी तितलियो के शिशुकीट शाकाहारी होते है और कुछ तो ऐसे होते है जिन्हे मदार के पत्ते ही सबसे अधिक पसन्द है। इस अवस्था मे शिशुकीट जैसे-जैसे बढता है, वैसे-वैसे वह अपनी खाल को पाँच बार केचुल की तरह निकाल फेकता है। प्रत्येक परिवर्तन से पहले वह कुछ समय तक पत्तो पर अपने बिने हुए रेशमी बिछौने पर चुपचाप स्थिर होकर पडा रहता है। फिर जब उसकी केचुल बीच से फट जाती है तो वह उसमे से बाहर निकल आता है और पुरानी फटी केचुल खा जाता है। हर मरतबा इस तरह केचुल बदलने के बाद उसके रग मे कुछ-न-कुछ नवीनता आ जाती है।

शिशुकीट की इस अवस्था का भी एक दिन अन्त हो जाता है और तब वह खूब खा-पीकर बढ जाने के बाद किसी निरापद स्थान की खोज मे निकलता है जहाँ वह मूक कीटावस्था को प्राप्त हो सके। ऐसा स्थान पाने पर वह अपने मुँह मे रेशम के तार निकालने लगता है। इस प्रकार रेशम के तार उगलते-उगलते वह अपने सारे शरीर को एक मोटी रेशमी खोल मे ढँक लेता है। कुछ समय तक उसकी यही अवस्था रहती है जिसके बाद एक दिन यह खोल भी फट जाती है और उसके भीतर से मोटी खाल मे कैद मूककीट निकल आता है।

मूककीट शिशुकीट के बराबर नही रहता बल्कि वह सिकुड कर छोटा हो जाता है और उसके ऊपर का खोल काफी कडा और चिकना हो जाता है। उसका रग प्राय भूरा रहता है। पर वैसे वे हरे और सुनहले रग के भी होते है। यह अवस्था भी थोडे दिनो तक रहती है। इसके बाद यह कडा खोल भी फट जाता है और उसमे से हमारी सुदर तितली बाहर निकल आती है, जो थोडी देर तक अपने पख सुखाने के बाद अपना छोटा जीवन बिताने के लिए हवा मे उड जाती है ।

सातवी श्रेणी की तितलियाँ छटी श्रेणी की तितलियो से वैसे बहुत कुछ मिलती-जुलती होती है लेकिन इनका कद उनसे छोटा होता है। इनकी मादाएँ ही पैरो के बल चल-फिर लेती है। ये छोटी परियाँ (Erycinids) कहलाती है।

आठवी श्रेणी की तितलियाँ नीलमी तितलियाँ (Blues या Lycainids) कहलाती है। ये छोटे कद की तितलियाँ है। वैसे इनमे प्राय सभी रगो की तितलियाँ पायी जाती है लेकिन इनके रग मे नीलेपन का ही प्राधान्य रहता है।

नवी और अन्तिम श्रेणी की तितलियाँ ऊपर की सभी श्रेणियो की तितलियो से रगरूप मे ही नही, वरन् शकल-सूरत मे भी थोडी-बहुत जुदा होती है। ये फुदकी तितलियाँ (Hesperiids या Skippers) कहलाती है। देखने मे ये तितलियाँ छोटे पतिग जैसी जान पडती है। इनका रग बहुत धुमैला होता है और इनकी उडान अन्य तितलियो की तरह अलसाई-सी न होकर सीधी और तेज होती है।

श्रेणी-विभाजन के रूखे वर्णन के बाद तितलियो के रूपान्तर (Transformation) का रोचक वर्णन आता है। जैसा ऊपर बताया गया है तितलियो को अपने वास्तविक स्वरूप तक आने मे तीन परिवर्तनो को पार करना पडता है। पहले इनकी डिम्बावस्था रहती है, फिर अण्डो के फूटने पर उसमे से शिशुकीट (Caterpiller) निकलता है जो अपना सारा समय खाने मे ही बिता देता है। खूब खाकर बढ जाने पर यह शिशुकीट मूककीट बन जाता है और फिर वह एक कडी खोल के भीतर कैद होकर सुप्तावस्था मे कुछ दिनो तक पडा रहता है। समय पाकर जब उसका यह खोल टूटता है तो उसमे से हमारी तितली अपने पूर्ण रूप मे बाहर निकल आती है। कुछ दिनो बाद यह तितली अण्डे देती है जिनसे शिशुकीट तथा मूककीट के परिवर्तनो के बाद तितलियाँ बन जाती है और इसी प्रकार तितलियो का जीवन-चक्र चलता रहता है।

शिशुकीट का लम्बा शरीर १४ वृत्त खण्डो मे बँटा रहता है जिनमे से पहला खण्ड सिर और अन्तिम खण्ड मलद्वार का रहता है। दूसरे, तीसरे और चौथे मे से इनकी ६ टाँगे निकली रहती है और सातवे आठवे नवे और दसवे खण्डो मे से पैर की शकल के कुछ रेशे से निकले रहते है जो वास्तव मे इसकी चूसने की इन्द्रियाँ है। अन्तिम खड की शकल बहुत कुछ चिमटी-सी होती है जिससे शिशुकीट किसी

वस्तु के पकडने का काम लेता है। इसके शरीर मे दोनो ओर दूसर खण्ड मे और पाँचवें तथा वारहवे खडो मे थोडी जगह सीग-सी चिकनी होती है जहाँ से शिशुकीट साँस लेता है। उसके शिर के दोनो ओर ६-६ आँखो जैसे निशान रहते हैं जो प्रारभिक अवस्था की आँखे कही जा सकती हैं। शिशुकीट के थूथन के पास दो मूँछे-सी रहती है जो उसकी स्पर्शेन्द्रियाँ हैं। उसके मुँह के भीतर कडे जवडे रहते है जिन्हें वह ऊपर नीचे न चलाकर आडा-आडा चलाता है। निचले जवडे से कुछ ऊपर एक छोटा छिद्र रहता है जिसमे से शिशुकीट रेशम के तार निकालता है। दो एक को छोडकर प्राय सभी तितलियो के शिशुकीट शाकाहारी होते है और कुछ तो ऐसे होते है जिन्हे मदार के पत्ते ही मवमे अधिक पसन्द है। इस अवस्था मे शिशुकीट जैसे-जैसे वढता है, वैसे-वैसे वह अपनी खाल को पाँच वार केचुल की तरह निकाल फेंकता है। प्रत्येक परिवर्तन से पहले वह कुछ समय तक पत्तो पर अपने विने हुए रेशमी विछौने पर चुपचाप स्थिर होकर पडा रहता है। फिर जव उसकी केचुल वीच से फट जाती है तो वह उसमे से वाहर निकल आता है और पुरानी फटी केचुल खा जाता है। हर मरतवा इस तरह केचुल वदलने के वाद उसके रग मे कुछ-न-कुछ नवीनता आ जाती है।

शिशुकीट की इस अवस्था का भी एक दिन अन्त हो जाता है और तव वह खूव खा-पीकर वढ जाने के वाद किसी निरापद स्थान की खोज मे निकलता है जहाँ वह मूक कीटावस्था को प्राप्त हो सके। ऐसा स्थान पाने पर वह अपने मुँह से रेशम के तार निकालने लगता है। इस प्रकार रेशम के तार उगलते-उगलते वह अपने सारे शरीर को एक मोटी रेशमी खोल मे ढँक लेता है। कुछ समय तक उसकी यही अवस्था रहती है जिसके वाद एक दिन यह खोल भी फट जाती है और उसके भीतर से मोटी खाल मे कैद मूककीट निकल आता है।

मूककीट शिशुकीट के वरावर नही रहता वल्कि वह सिकुड कर छोटा हो जाता है और उसके ऊपर का खोल काफी कडा और चिकना हो जाता है। उसका रग प्राय भूरा रहता है। पर वैसे वे हरे और सुनहले रग के भी होते हैं। यह अवस्था भी थोडे दिनो तक रहती है। इसके वाद यह कडा खोल भी फट जाता है और उसमे से हमारी सुदर तितली वाहर निकल आती है, जो थोडी देर तक अपने पंख सुखाने के वाद अपना छोटा जीवन विताने के लिए हवा मे उड जाती है।

तितलियो के जीवन को छोटा इसलिए कहना पडा कि उसके बारे में अभी कुछ निश्चयपूर्वक नही जाना जा सका है। कोई इनका जीवन दो चार दिन का और कोई दो चार महीने का बताता है लेकिन इतना तो प्राय सभी विद्वान मानते है कि वे एक साल से ज्यादा नही जीती।

तितलियो के शरीर को हम तीन मुख्य हिस्सो मे बाँट सकते है —१ सिर का हिस्सा जिसमे आँखे, रस चूसने की सूंड और मूंछे या स्पर्शेन्द्रियाँ शामिल है। २ वक्ष या बीच का हिस्सा जिसमे तितलियो के पैर और पख की जडे जुटी रहती है और ३ उदर जिसमे तितलियो के पैर और मलद्वार रहता है। तितलियो की आँखे बडी होती है। वे स्थिर रहती है और उन्हे हम छोटे-छोटे अनेक नेत्रो का समूह कह सकते है, जैसे किसी अँगूठी मे बहुत छोटे-छोटे नग जडे हो। उनकी मूंछें या स्पर्शेन्द्रियाँ लम्बी और सीधी होती है जिनके सिरो पर छोटी-छोटी घुण्डियाँ रहती है। ये लम्बाई मे चौथाई इच से आध इच तक की होती है और तितलियो के माथे पर से निकलकर आगे की ओर बढी रहती है।

तितलियो की सूंड, जिससे ये फूलो मे से रस खीचती है, बहुत लम्बी होती है। यह गोलाई मे लिपटकर आगे की ओर बढी रहती है और देखने मे घडी की बालकमानी सी लगती है। इसका इस्तेमाल और जीवो की जबान की तरह नही होता क्योकि तितलियाँ दरअसल कुछ खाती नही। वे शिशुकीटावस्था मे जो कुछ खाकर अपने शरीर मे जमा किये रहती है उसी को गीला रखने के लिए वे इस स्प्रिग-जैसी जबान या सूंड से फूलो का रस चूसा करती है।

तितलियो का वक्ष तीन हिस्सो मे बाँटा जा सकता है। पहले हिस्से मे दोनो अगले पैर और दूसरे मे बीच के दोनो पैर निकलते है और इसी मे अगले परो की जड जुटी रहती है। तीसरे या निचले हिस्से मे से पिछले पैर निकलते है और उसी मे पिछले परो की जडे जुटी रहती है। तितलियो के पैरो के नीचे का हिस्सा ब्रश जैसा रहता है जिससे ये सफाई का काम लेती है।

तितलियो के रगीन पर, जिन्होने इनको इतना महत्त्व दे रखा है, दोनो ओर बहुत महीन झिल्लियो से मढे रहते है और उनके बीच मे बारीक नसो का जाल-सा फैला रहता है। तितलियो की दोनो बगल दो पर रहते है, जिनकी

वनावट भिन्न-भिन्न तरह की होती है। जव तितलियाँ अपने छाती के पास के हिस्मे को जल्द-जल्द सिकोडती और फैलाती है, ये पर हरकत करते है और वे उडने लगती है। उनके परो पर वहुत वारीक धूलकण जमे रहते है जो अलग-अलग रग के होते है। इन्ही धूलकणो के एकत्र होने से तितलियो के परो का रग और उनकी तरह-तरह की किस्में हमें देखने को मिलती है। उनके पख को छूने पर ये धूल के कण हमारे हाथ मे लग जाते है और वह जगह खाली हो जाती है।

तितलियो की आँख की वनावट सैंकडो हिस्मो मे वँटी रहने पर भी उतनी मुकम्मिल नही होती जितनी हम लोगो की। वे केवल दो तीन इच तक की चीजे साफ तौर पर देख सकती है लेकिन चूँकि उनकी आँख अनेक हिस्सो में विभक्त रहती है इससे उन्हें एक ही वस्तु उतनी ही सख्या मे दिखाई पडती है जितनी मख्या मे आँख वँटी रहती है। उन्हें एक गज की चीज तो एकदम धुंधली और लिपी-पुती-सी जान पडती है।

तितलियाँ किसी प्रकार की आवाज नही कर सकती और न उनके सुनने की इन्द्रियाँ ही होती है लेकिन प्रकृति ने उन्हे घ्राणेन्द्रिय से हीन नही वनाया क्योकि कीडो को अपनी ओर आकर्पित करने के लिए जव प्रकृति ने फूलो को सुगन्धि दी है तो इन तितलियो को उनके सूंघने की इन्द्रिय भला क्यो न मिलती। इसके अलावा कुछ नर तितलियाँ मादा को अपनी ओर आकर्पित करने के लिए भी एक प्रकार की खुशवू छोडती है, इससे तितलियो के घ्राणेन्द्रिय का होना जरुरी हो जाता है।

स्वाद के लिए भी, ऐसा अनुमान किया जाता है कि, तितलियो की मूंछ के पास का हिस्सा वास्तव मे उनके स्वाद लेने की इन्द्रियाँ है और स्पर्श अथवा अनुभव के लिए उनके शरीर मे स्नायु का जाल फैला हुआ है। इतना होते हुए भी उनको प्रकृति ने मूंछो की शकल की जो स्पर्शेन्द्रियाँ दी है वे उनके वहुत काम की है। घने जगलो में इ[illegible]ी मूंछो के सहारे वे विना किमी पत्ती को छुए वडी तेजी से उड लेती है लेकिन इन मूंछो के कट जाने पर उनका उडना कठिन हो जाता है और उनकी वही हालत हो जाती है जो किसी आदमी की अँधेरे में हो जाती है।

तितलियाँ मौसमी चिडियो की तरह स्थान-परिवर्तन के लिए दूर का मफर तो नही करती पर कुछ ऐमी जरुर है जो हमारे देश ही मे थोडा वहुत स्थान-परिवर्तन

तितलियो के जीवन को छोटा इसलिए कहना पडा कि उसके बारे मे अभी कुछ निश्चयपूर्वक नही जाना जा सका है। कोई इनका जीवन दो चार दिन का और कोई दो चार महीने का बताता हैं लेकिन इतना तो प्राय सभी विद्वान मानते हैं कि वे एक साल से ज्यादा नही जीती।

तितलियो के शरीर को हम तीन मुख्य हिस्सो मे बॉट सकते हैं —१ सिर का हिस्सा जिसमे ऑखे, रस चूसने की सूँड और मूँछे या स्पर्शेन्द्रियाँ शामिल हैं। २ वक्ष या बीच का हिस्सा जिसमे तितलियो के पैर और पख की जडे जुटी रहती हैं और ३ उदर जिसमे तितलियो के पैर और मलद्वार रहता है। तितलियो की ऑखे बडी होती हैं। वे स्थिर रहती हैं और उन्हे हम छोटे-छोटे अनेक नेत्रो का समूह कह सकते हैं, जैसे किसी अँगूठी मे बहुत छोटे-छोटे नग जडे हो। उनकी मूँछे या स्पर्शेन्द्रियाँ लम्बी और सीधी होती हैं जिनके सिरो पर छोटी-छोटी घुण्डियाँ रहती हैं। ये लम्बाई मे चौथाई इच से आध इच तक की होती हैं और तितलियो के माथे पर से निकलकर आगे की ओर बढी रहती हैं।

तितलियो की सूँड, जिससे ये फूलो मे से रस खीचती हैं, बहुत लम्बी होती है। यह गोलाई मे लिपटकर आगे की ओर बढी रहती है और देखने मे घडी की बालकमानी सी लगती है। इसका इस्तेमाल और जीवो की जबान की तरह नही होता क्योकि तितलियाँ दरअसल कुछ खाती नही। वे शिशुकीटावस्था मे जो कुछ खाकर अपने शरीर मे जमा किये रहती हैं उसी को गीला रखने के लिए वे इस स्प्रिग-जैसी जबान या सूँड से फूलो का रस चूसा करती हैं।

तितलियो का वक्ष तीन हिस्सो मे बॉटा जा सकता है। पहले हिस्से मे दोनो अगले पैर और दूसरे मे बीच के दोनो पैर निकलते हैं और इसी मे अगले परो की जड जुटी रहती है। तीसरे या निचले हिस्से मे से पिछले पैर निकलते हैं और उसी मे पिछले परो की जडे जुटी रहती हैं। तितलियो के पैरो के नीचे का हिस्सा ब्रश जैसा रहता है जिससे ये सफाई का काम लेती हैं।

तितलियो के रगीन पर, जिन्होने इनको इतना महत्त्व दे रखा है, दोनो ओर बहुत महीन झिल्लियो से मढे रहते हैं और उनके बीच मे बारीक नसो का जाल-सा फैला रहता है। तितलियो की दोनो बगल दो पर रहते हैं, जिनकी

बनावट भिन्न-भिन्न तरह की होती है। जब तितलियाँ अपने छाती के पास के हिस्से को जल्द-जल्द सिकोडती और फैलाती है, ये पर हरकत करते हैं और वे उडने लगती है। उनके परो पर बहुत बारीक धूलकण जमे रहते हैं जो अलग-अलग रग के होते हैं। इन्ही धूलकणो के एकत्र होने से तितलियो के परो का रग और उनकी तरह-तरह की किस्मे हमे देखने को मिलती है। उनके पंख को छूने पर ये धूल के कण हमारे हाथ में लग जाते हैं और वह जगह खाली हो जाती है।

तितलियो की आँख की बनावट सैकडो हिस्सो मे बँटी रहने पर भी उतनी मुकम्मिल नही होती जितनी हम लोगो की। वे केवल दो तीन इच तक की चीजे साफ तौर पर देख सकती है लेकिन चूँकि उनकी आँख अनेक हिस्सो मे विभक्त रहती है इससे उन्हें एक ही वस्तु उतनी ही सख्या में दिखाई पडती है जितनी सख्या मे आँख बँटी रहती है। उन्हें एक गज की चीज तो एकदम धुँधली और लिपी-पुती-सी जान पडती है।

तितलियाँ किसी प्रकार की आवाज नही कर सकती और न उनके सुनने की इन्द्रियाँ ही होती हैं लेकिन प्रकृति ने उन्हें घ्राणेन्द्रिय से हीन नही बनाया क्योकि कीडो को अपनी ओर आकर्पित करने के लिए जब प्रकृति ने फूलो को सुगन्धि दी है तो इन तितलियो को उनके सूँघने की इन्द्रिय भला क्यो न मिलती। इसके अलावा कुछ नर तितलियाँ मादा को अपनी ओर आकर्पित करने के लिए भी एक प्रकार की खुशबू छोडती हैं, इससे तितलियो के घ्राणेन्द्रिय का होना जरूरी हो जाता है।

स्वाद के लिए भी, ऐसा अनुमान किया जाता है कि, तितलियो की मूँछ के पास का हिस्सा वास्तव मे उनके स्वाद लेने की इन्द्रियाँ है और स्पर्श अथवा अनुभव के लिए उनके शरीर मे स्नायु का जाल फैला हुआ है। इतना होते हुए भी उनको प्रकृति ने मूँछो की शकल की जो स्पर्शेन्द्रियाँ दी है वे उनके बहुत काम की है। घने जगलो मे इन्ही मूँछो के सहारे वे बिना किसी पत्ती को छुए बडी तेजी से उड लेती है लेकिन इन मूँछो के कट जाने पर उनका उडना कठिन हो जाता है और उनकी वही हालत हो जाती है जो किसी आदमी की अँधेरे में हो जाती है।

तितलियाँ मौसमी चिडियो की तरह स्थान-परिवर्तन के लिए दूर का सफर तो नही करती पर कुछ ऐसी जरूर हैं जो हमारे देश ही मे थोडा बहुत स्थान-परिवर्तन

कर लेती है। शत्रुओ से अपनी रक्षा का प्रश्न सभी जीवधारियो के लिए वडे महत्त्व का है। सारे विश्व मे वलवानो और चालाको का निर्वलो और सीधे-सादो के प्रति निरन्तर एक युद्ध चलता रहता है क्योकि इस प्रकार का सहार और विनाश प्रकृति का सन्तुलन कायम रखने के लिए बहुत जरूरी है। और चूंकि तितलियाँ निर्बलो और सीधो की श्रेणी मे आती हैं, इससे उन्होने शत्रुओ से वचने के लिए कुछ न कुछ उपाय कर ही लिये है।

डिम्बावस्था मे तिलचट्टे आदि इनके परम शत्रु होते है। उनसे वचने के लिए जहाँ तक होता है तितलिया पत्ती आदि की आड मे ही अण्डे देने का उद्योग करती है। लेकिन शिशुकीटावस्था मे इनके शत्रुओ की तादाद बढ जाती है और उस समय इनको सवसे अधिक डर चिडियो से रहता है। इसीलिए इनके शिशुकीट पत्तियो के निचले हिस्से की ओर अपने को छिपाये रहते है और अक्सर रात को ही बाहर निकलते है। कुछ के शरीर का रग पास-पडोस की चीजो से मिलता होता है जिससे दुश्मनो की निगाह उन पर न पडे तो कुछ के शरीर पर ईसीलिए रोएँ रहते है कि शत्रु उन्हे खाने मे हिचके और कुछ ऐसे भी होते है जो शत्रु पर एक प्रकार का जहरीला रस फेकते है। इसके अलावा कुछ ने यह तरीका भी अख्तियार किया है कि वे आक्रमणकारी को निकट देखकर गोलाकार लिपटकर जमीन पर गिर पडते है जिससे वे शत्रुओ के पजे से वच जायें।

ये कुछ उपाय तो बहुत से शिशुकीट शत्रुओ से वचने के लिए करते ही है, लेकिन इन सवमे अधिक रोचक ढग उन शिशुकीटो का है जो अपने को चीटियो के हवाले कर देते है। ये चीटियाँ शत्रुओ से इनकी रक्षा करती है और उसके वदले मे ये उनको एक प्रकार का मीठा रस देते है जो इनके शरीर की ग्रन्थियो से निकलता है। मूक कीटावस्था मे शरीर के ऊपर कडा खोल चढ जाने के कारण मूककीट को शत्रुओ से ज्यादा डर नही रहता, लेकिन तितली बन जाने पर इनके शत्रुओ की सख्या फिर वढ जाती है। छिपकलियाँ और चिडियाँ आदि फिर इनकी जान की गाहक हो जाती है। इसीलिए उन्हे अपने रगीन परो का ऐसा विकास करना पडा है कि उनका रग आस-पास के रगो के अनुरूप ही रहता है। कुछ तितलियाँ बिलकुल पत्ती के रग की होती है, तो कुछ के परो पर आँख-जैसा चिह्न वना रहता है जिससे हमला करनेवाला शत्रु डर जाय। कुछ तितलियो के

शरीर से एक प्रकार का ऐसा रस निकलता है जिसे इनके शत्रु इतना नापसन्द करते हैं कि इन पर हमला नही करते । यह देखकर कुछ तितलियो ने इन्ही के अनुरूप वनने के लिए अपना ऐसा विकास किया है कि ये वहुत कुछ उन्ही की शकल-सूरत की हो भी गयी हैं और इस प्रकार अपने शत्रुओ को धोखे मे डालकर उन्होने अपनी रक्षा का एक अनोखा उपाय ढूंढ निकाला है ।

पतिंग

(MOTH)

तितली और पतिग मे क्या भेद रहता है, यह शल्किवर्ग के वर्णन के साथ वताया जा चुका है। उसे और तितली का विस्तृत वर्णन पढने के वाद इस वारे मे कुछ कहना शेष नही रह जाता।

हमारे यहाँ पतिग की अनेक जातियाँ है जिन्हे हम नित्य ही रोशनी के आस-पास देखते रहते है । इनमे कुछ छोटे होते है और कुछ वडे लेकिन इन सवका रहन-सहन प्राय एक ही जैसा होता है । वडे पतिग (Hawk Moth) को हमारे यहाँ जमुहाँ या जमुआँ भी कहते है और देहातो मे ऐसा अधविश्वास है कि जव यह छोटे वच्चो के ऊपर से उड जाता है तो वच्चा वीमार हो जाता है।

इनमे कुछ पतिग हमारे लिए वहुत उपयोगी भी है जैसे रेशम का कीडा (Silk worm moth) जिसमे हमे वहुत सुन्दर रेशम मिलता है। यहाँ उसी का वर्णन दिया जा रहा है, क्योकि इस प्रसिद्ध पतिग का

पतिंग

रहन-सहन तथा अन्य वाते दूसरे पतिगो के ही समान रहती है।
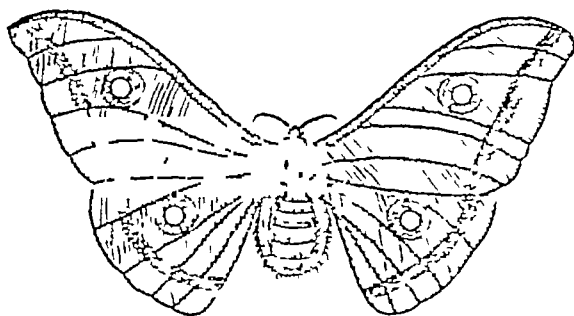
रेशम का कीडा (Silk Moth), जिसे रेशम के लिए वडी मेहनत से पाला जाता है, रेंड या शहतूत की पत्तियाँ खाता है इसलिए इसके पाले जानेवाले स्थानो पर शहतूत के पेडो का रहना आवश्यक है।

यह लगभग एक इच लम्बा और भूरे रग का कीडा है जिस पर हलकी भूरी धारियाँ पडी रहती है। इसका शरीर अन्य कीडो की भाँति सिर, वक्ष तथा उदर इन तीन भागो मे बँटा रहता है। इसके नेत्र सयुक्त होते है और मुख के पास दो स्पर्शसूत्र रहते है।

इसकी मादा समय आने पर किसी पत्ते पर डेढ सौ तक अण्डे देती है जिनको गिरने से बचाने के लिए वह उन्हे एक प्रकार के चिपचिपे रस से ढँक देती है। कुछ समय बाद अण्डे फूटते है और उनमे से छोटे-छोटे शिशुकीट निकलकर शहतूत की पत्तियाँ खाने लगते है । इस समय ये भूरे रग के लगभग चौथाई इच लम्बे रहते है जिनके शरीर मे टाँगो के आठ जोडे रहते है।

चार दिनो बाद ये अपनी केचुल बदलते है और तब इनकी लम्बाई भी बढ जाती है । फिर इसी प्रकार कई बार केचुल बदलकर ये लगभग ३ इच के हो जाते है। इसके बाद इन शिशुकीटो के शरीर के दोनो ओर कौशेय ग्रन्थियाँ (Silk glands) निकल आती है, जो थोडे ही दिनो मे एक प्रकार के लसलसे पदार्थ से भर जाती है। इसके बाद वे खाना-पीना छोड देते है और उनके ओठ के पास के छेद से एक प्रकार का पीला लसलसा पदार्थ डोरे की शकल मे बाहर निकलने लगता है। बाहर निकलते ही वह हवा मे सूखकर कडा हो जाता है और रेशम के डोरे का रूप ग्रहण कर लेता है। इस प्रकार यह तरल पदार्थ कीडो के शरीर से तीन-चार दिनो तक बहता रहता हे और इतने ही समय मे वह लगभग हजार बारह सौ गज रेशमी डोरा बना डालता है।

शिशुकीट अपना सिर चारो ओर घुमाकर इस रेशमी डोरे को अपने चारो ओर इस खूबसूरती से लपेट लेता है कि जैसे किसी ने मशीन द्वारा रेशमी डोरे की लम्बी पिडी लपेट दी हो। शिशुकीट इसी रेशमी महल के भीतर कुछ दिनो के लिए कैद होकर मूककीट का रूप धारण कर लेता है। उसके ऊपर लिपटी हुई इस पिडी को हम कृमिकोष या कुसुआरी (Cocoon) कहते है।

१५ दिन के भीतर कृमिकोष के भीतर बडा परिवर्तन हो जाता है और भीतर का कीट जो मूकावस्था मे था पखदार पतिग बनकर बाहर निकलने का उद्योग करने लगता है। वह कृमिकोष के एक भाग को गीला करके उसे काट डालता है और उसी द्वार से बाहर निकलकर हवा मे उड जाता है। इस प्रकार पतिग के

बाहर निकलने से कुसुआरी कट जाती है और उसका रेशमी धागा किसी काम नही आता। इसीलिए रेशम पालनेवाले लोग इनको तैयार जानकर पतिंग के निकलने से पहले ही ककून को उबलते हुए पानी मे डाल देते हैं, जिससे पतिंग भीतर ही मर जाता है और तब वे रेशम के धागे को किसी दूसरी चीज पर लपेट लेते हैं।

कचनपक्ष वर्ग

(ORDER COLEOPTERA)

यह वर्ग कीट पतग श्रेणी का सबसे बडा वर्ग माना जाता है जिसमे दो लाख से अधिक जातियो के कीडो का तो वर्गीकरण हो चुका है। लेकिन ऐसा अनुमान किया जाता है कि इनकी दस लाख से भी अधिक जातियाँ सारे ससार मे फैली हुई है। ये कीडे वैसे तो गुबरीला जाति के है, लेकिन इनकी शकल-सूरत तथा रग-रूप मे काफी भेद रहता है। जो हो, यहाँ इन सबको हम गुबरीले (Beetles) के ही नाम से पुकारेगे।

गुबरीले ससार के प्राय सभी स्थानो मे पाये जाते हैं। इनके दो जोड़ पख होते है जिनमे से अगला जोडा तो दृढ और कडा होता है जो इनके उड़ने में सहायक नही होता। यह पक्षवर्म कहलाता है और कभी-कभी बडे सुन्दर बेलबूटो से चित्रित रहता है। इनका मुखभाग काटने तथा चबाने के योग्य होता है।

ये कीडे ज्यादातर रात्रिचारी होते है, जो सारे दिन भूमि के अन्दर या छेद और दराजो के भीतर घुसे रहकर रात को भोजन की तलाश मे बाहर निकलते है। इनका रूपान्तरण (Mata morphosis) पूर्ण होता है और ये पहले अण्डे मे शिशुकीट और फिर क्रमश मूककीट का रूप धारण करके कुछ दिनो मे प्रौढ कीट बन जाते है। इनमें से कुछ की मादा भूमि के भीतर अण्डे देती है, जहाँ उनके फूटने पर शिशुकीट निकलते है, जो मिट्टी के नीचे ही रहकर पेड-पौधो की जडो से रस चूसा करते है। ये वही मूककीट बन जाते है और कुछ दिनो तक उसी अवस्था में पड़े रहकर प्रौढ कीट बनकर बाहर निकल आते है। कुछ अपने अण्डे गोबर मे देते है और उसको लुढका-लुढकाकर किसी सुरक्षित स्थान में गाड देते हैं जिनमें से समय पाकर शिशुकीट निकलते है।

यह लगभग एक इच लम्बा और भूरे रग का कीडा है जिस पर हलकी भूरी धारियाँ पडी रहती है। इसका शरीर अन्य कीडो की भाँति सिर, वक्ष तथा उदर इन तीन भागो मे बँटा रहता है। इसके नेत्र सयुक्त होते है और मुख के पास दो स्पर्शसूत्र रहते है।

इसकी मादा समय आने पर किसी पत्ते पर डेढ सौ तक अण्डे देती है जिनको गिरने से बचाने के लिए वह उन्हे एक प्रकार के चिपचिपे रस से ढँक देती है। कुछ समय बाद अण्डे फूटते है और उनमे से छोटे-छोटे शिशुकीट निकलकर शहतूत की पत्तियाँ खाने लगते है। इस समय ये भूरे रग के लगभग चौथाई इच लम्बे रहते है जिनके शरीर मे टाँगो के आठ जोडे रहते है।

चार दिनो बाद ये अपनी केचुल बदलते है और तब इनकी लम्बाई भी बढ जाती है। फिर इमी प्रकार कई बार केचुल बदलकर ये लगभग ३ इच के हो जाते है। इसके बाद इन शिशुकीटो के शरीर के दोनो ओर कौशेय ग्रन्थियाँ (Silk glands) निकल आती है, जो थोडे ही दिनो मे एक प्रकार के लसलसे पदार्थ से भर जाती है। इसके बाद वे खाना-पीना छोड देते है और उनके ओठ के पास के छेद से एक प्रकार का पीला लसलसा पदार्थ डोरे की शकल मे बाहर निकलने लगता है। बाहर निकलते ही वह हवा मे सूखकर कडा हो जाता है और रेशम के डोरे का रूप ग्रहण कर लेता है। इस प्रकार यह तरल पदार्थ कीडो के शरीर से तीन-चार दिनो तक बहता रहता है और इतने ही समय मे वह लगभग हजार बारह सौ गज रेशमी डोरा बना डालता है।

शिशुकीट अपना सिर चारो ओर घुमाकर इस रेशमी डोरे को अपने चारो ओर इस खूबसूरती से लपेट लेता है कि जैसे किमी ने मशीन द्वारा रेशमी डोरे की लम्बी पिडी लपेट दी हो। शिशुकीट इसी रेशमी महल के भीतर कुछ दिनो के लिए कैद होकर मूककीट का रूप धारण कर लेता है। उसके ऊपर लिपटी हुई इस पिडी को हम कृमिकोप या कुसुआरी (Cocoon) कहते है।

१५ दिन के भीतर कृमिकोप के भीतर बडा परिवर्तन हो जाता है और भीतर का कीट जो मूकावस्था मे था पखदार पतिग बनकर बाहर निकलने का उद्योग करने लगता है। वह कृमिकोप के एक भाग को गीला करके उसे काट डालता है और उसी द्वार से बाहर निकलकर हवा मे उड जाता है। इस प्रकार पतिग के

वाहर निकलने से कुसुआरी कट जाती है और उसका रेशमी धागा किसी काम नही आता। इसीलिए रेशम पालनेवाले लोग इनको तैयार जानकर पतिंग के निकलने से पहले ही ककून को उवलते हुए पानी मे डाल देते है, जिससे पतिंग भीतर ही मर जाता है और तव वे रेशम के धागे को किसी दूसरी चीज पर लपेट लेते है।

कचनपक्ष वर्ग

(ORDER COLEOPTERA)

यह वर्ग कीट पतग श्रेणी का सवसे वडा वर्ग माना जाता है जिसमे दो लाख से अविक जातियो के कीडो का तो वर्गीकरण हो चुका है। लेकिन ऐसा अनुमान किया जाता है कि इनकी दस लाख से भी अविक जातियाँ सारे ससार मे फैली हुई है। ये कीडे वैसे तो गुवरीला जाति के है, लेकिन इनकी शकल-सूरत तथा रग-रूप मे काफी भेद रहता है। जो हो, यहाँ इन सवको हम गुवरीले (Beetles) के ही नाम से पुकारेगे।

गुवरीले संसार के प्राय सभी स्थानो मे पाये जाते है। इनके दो जोड पख होते है जिनमें से अगला जोडा तो दृढ और कडा होता है जो इनके उडने में सहायक नही होता। यह पक्षवर्म कहलाता है और कभी-कभी वडे सुन्दर वेलवूटो से चित्रित रहता है। इनका मुखभाग काटने तथा चवाने के योग्य होता है।

ये कीडे ज्यादातर रात्रिचारी होते है, जो सारे दिन भूमि के अन्दर या छेद और दराजो के भीतर घुसे रहकर रात को भोजन की तलाश मे वाहर निकलते है। इनका रूपान्तरण (Mata morphosis) पूर्ण होता है और ये पहले अण्डे मे शिशुकीट और फिर क्रमश मूककीट का रूप धारण करके कुछ दिनो मे प्रौढ कीट वन जाते है। इनमे से कुछ की मादा भूमि के भीतर अण्डे देती है, जहाँ उनके फूटने पर शिशुकीट निकलते है, जो मिट्टी के नीचे ही रहकर पेड-पौवो की जडो से रस चूसा करते है। ये वही मूककीट वन जाते है और कुछ दिनो तक उसी अवस्था में पडे रहकर प्रौढ कीट वनकर वाहर निकल आते है। कुछ अपने अण्डे गोवर मे देते है और उसको लुढका-लुढकाकर किसी सुरक्षित स्थान मे गाड़ देते है जिनमे से समय पाकर शिशुकीट निकलते है।

ये कीडे अपने पिछले पखो के सहारे उडते है जो बहुत तेजी से चलते है। इनके अगले पख, जो कडे और सख्त होते है, इन पखो की रक्षा के लिए ढँकने का काम करते है। इनके स्पर्शसूत्र (Antennae) इनके बहुत काम के होते हैं जिनमे स्पर्शज्ञान के अलावा दूर से भोजन आदि का पता लगाने की अद्भुत शक्ति रहती है। इन्ही स्पर्शसूत्रो से ये अपने साथियो को पहचानते है और एक-दूसरे के स्पर्श-सूत्रो को इस प्रकार मिलाते है जैसे आपस में कुछ बाते कर रहे है।

इनके नेत्र सरल भी रहते है और सयुक्त भी और उनकी सख्या भी कभी-कभी दो से ज्यादा रहती है। इनमे से कुछ बडी कर्कश आवाज उत्पन्न करते है जो इनके मुख से नही, वरन् इनके शरीर पर के कडे भागो के रगडने से उत्पन्न होती है।

इनमें मे कुछ ऐसे भी है जो बराबर पानी में रहते है और पानी मे ही अण्डे देते है। लेकिन ज्यादा सख्या उन्ही की है जो खुश्की पर रहते है। ये सर्वभक्षी जीव है जो वनस्पति के अलावा सब तरह का मास और खाद्य-अखाद्य से अपना पेट भरते है। इनमे से कुछ मुर्दाखोर भी होते है जो मुर्दो को खाकर सफाई का काम करते है, लेकिन इस थोडे से लाभ के समक्ष जब हम इनके द्वारा किये गये नुकसान को देखते है तो हम इसी निर्णय पर पहुँचते है कि मनुष्यो के लिए ये हानिकारक ही है। इनमे से कुछ सडे हुए पेड पौधो तथा मल-मूत्र और मुर्दो को खाकर सफाई मे भले ही हमारी मदद करते हो और जुगनू आदि रात मे इधर-उधर प्रकाश फैलाकर हमारे बाग-बगीचो की शोभा भले ही बढाते हो, लेकिन घुन तथा जडो को चूसनेवाले गुबरीलो से हमारा बहुत नुकसान होता है।

ये वैसे तो लगभग १०० परिवारो में बाँट दिये गये है, लेकिन यहाँ इनमे से कुछ प्रसिद्ध और परिचित कीडो का वर्णन किया जा रहा है, जो शकल-सूरत मे भिन्न होते हुए भी स्वभाव मे करीब-करीब एक जैसे ही होते है।

छ बुदवा

(TIGER BEETLE)

छ बुदवा हमारे यहाँ का प्रसिद्ध कीडा है जिसे उसकी पीठ पर की छ सफेद बिन्दियो के कारण यह नाम मिला है। ये बहुत तेज और दूसरे कीडो को खाने में बडे उस्ताद होते है। ये ज्यादातर रेतीले स्थानो में रहना पसन्द करते है ।

ये कद मे एक इच से कुछ छोटे होते है और इनके शरीर की बनावट पतली रहती है। ये गाढे नीले रग के होते है और इनकी पीठ पर छ सफेद बिदियाँ रहती है। इनके पैर लम्बे और पतले होते है जिनसे ये बडी तेजी से भाग सकते है। कुछ लोग इन्हे बहुत जहरीला समझते है लेकिन ये जहरीले नही होते। इनके शिशुकीट प्राय जमीन की दराज और गढो मे रहते है और जैसे ही कोई छोटा कीडा-मकोडा उसमे गिरता है ये उसे चट कर जाते है।
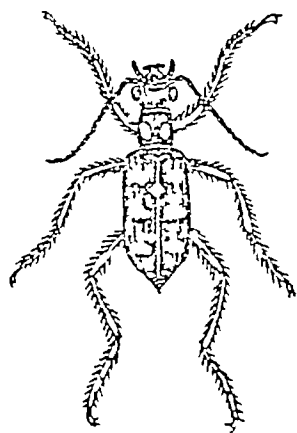
छ बुदवा

ये हमारा नुकसान नही करते बल्कि इनसे यह फायदा होता है कि ये दूसरे कीडो को काफी सख्या मे खाते रहते है।

भँवरी

(WHIRLIGIG BEETLE)

भँवरी पानी मे रहनेवाला कीडा है जिसे हम अक्सर पानी मे ऊपर से नीचे आते-जाते देखते है। यह लगभग आध इच की होती है। इसके शरीर का रग कलछौह रहता है, जिस पर बहुत चमक रहती है। इसका सारा समय पानी मे ही बीतता है जहाँ इसका झुड का झुड एक साथ दिखाई पडता है।
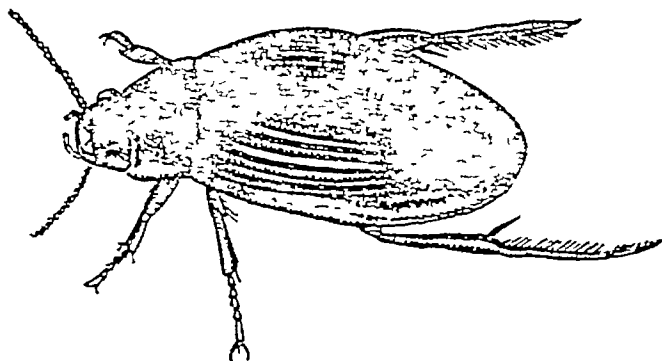
भँवरी

भँवरी पानी पर इतनी तेजी से तैरती है कि इसे पकडना आसान नही होता।

यह थोडी-थोडी देर पर पानी के भीतर चली जाती है और फिर बाहर निकलकर पानी की सतह पर तेजी से तैरने लगती है।

भँवरी की आँखें बडी और स्पर्शसूत्र बहुत छोटे होते है। इसके अगले दोनो पैर काफी लम्बे रहते है, लेकिन पिछले चारो पैर छोटे और चौडे होते है जिनसे यह डाँड की तरह तैरने का काम लेती है।

पनकीरा

(WATER BEETLE)
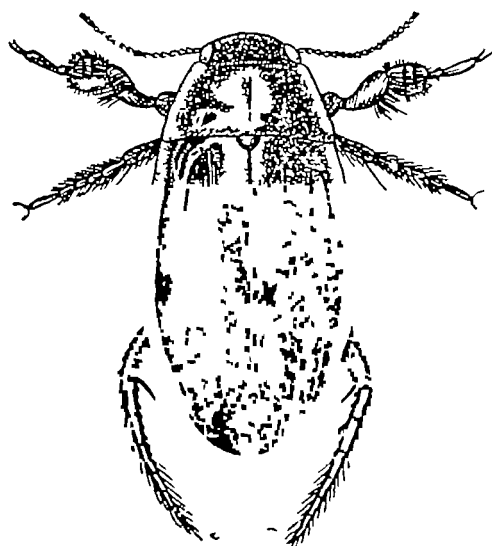
पनकीरा, जैसा इसके नाम से स्पष्ट है, पानी में रहनेवाला कीडा है। इसका शरीर चिकना और चमकीला होता है जिसकी बनावट अण्डाकार रहती है। यह काले रग का लगभग डेढ इच लबा कीडा है जो तैरने में तेज नही होता। इसे ज्यादातर जलीय पौधो की पत्तियो पर चिपके देखा जा सकता है। इसके स्पर्शसूत्र बहुत छोटे होते है जिनके सिरे पर घुण्डियाँ-सी रहती हैं। यह मासाहारी कीडा है जो पानी के कीडे-मकोडो से अपना पेट भरता है।

पनकीरा

पनकीरे की मादा अपने अण्डो को एक प्रकार की थैली मे रख देती है और उसे अपने पैरो में तब तक दबाये रखती है जब तक उनमें से शिशुकीट नही निकल आते।

जुगनू

(FIRE FLY)

जुगनू हमारे बहुत परिचित कीडे हैं। बरसात की रात मे नम जगहो मे इनकी शोभा देखते ही बनती है। ये अँधेरे मे रह-रहकर ऐसा चमक उठते है जैसे आकाश के तारे पृथ्वी पर आ गये हो।

जुगनू

जुगनुओ की अनेक जातियाँ ससार भर मे फैली हुई है। हमारे यहाँ पाया जानेवाला जुगनू लगभग आध इच का होता है। यह पतला और चपटा-सा सिलेटी भूरे रग का कीडा है जिसकी शकल धनकुट्टी से मिलती-जुलती होती है।

जुगनू की आँखे बडी, स्पर्शसूत्र लम्बे और पैर छोटे होते है। इसके शरीर के कुछ निचले खण्डो से रोशनी निकलती है जो पारभासी (Opaque) या सफेद रहते है। मादा का यह प्रकाश-खण्ड नर से ज्यादा विकसित रहता है।

ये पृथ्वी के भीतर या पेड की छालो के नीचे रहते है जहाँ मादा अण्डे देती है। शिशुकीट के बाद मूककीट भी मिट्टी में ही रहते है जो दस दिन बाद प्रौढ हो जाते है। इनका मुख्य भोजन वनस्पतियाँ तथा कीडे-मकोडे है। जुगनुओ के शरीर से निकलनेवाली पीली रोशनी हमे सुन्दर भले ही लगती हो लेकिन ये कीडे हमारे लिए लाभदायक नही है।
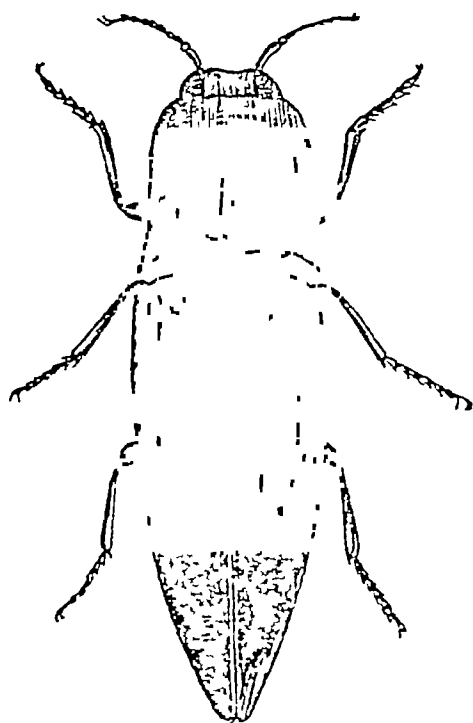
सुरखी

(LADY BIRD)

सुरखी उन कीडो की श्रेणी मे रखी जा सकती है जो हमारे लिए बहुत लाभदायक है। यह नारगी रग का छोटा-सा कीडा है जिसका आकार गोल और कद

चौथाई इच का रहता है। इसकी पीठ पर दो या चार काले बिन्दु रहते हैं जिससे दूर से यह नारगी रग के बटन-सी जान पडती है।

सुरखी
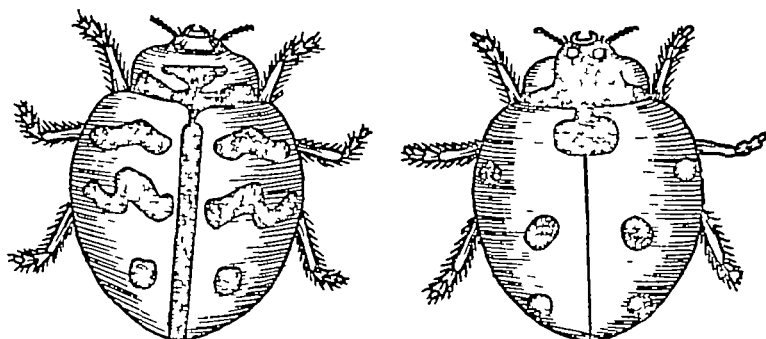
सुरखी हमारे वाग-वगीचो को वहुत फायदा पहुँचाती है। यह माहू (Green Flies) को खा-खाकर उनकी सख्या घटाती रहती है जो हमारे फल-फूल में रोग की तरह लग जाते हैं।

सुरखी अपने अण्डे माहू के झुण्ड के वीच मे देती है, जहाँ अण्डो के फूटने से इसके शिशुकीट निकलते हैं। ये शिशुकीट वाहर निकलते ही माहुओ को खाने लगते हैं और थोडे दिनो वाद ये मूककीट वन जाते हैं। उसके थोडे ही समय वाद इनकी यह अवस्था भी समाप्त हो जाती है और ये अपने खोल को फाडकर सुरखी के रूप मे हवा मे उड जाते हैं। सुरखी माहू तथा अन्य कीडो के अण्डे आदि से अपना पेट भरती है।

धनकुट्टी

(CLICK BEETLE)

धनकुट्टी को यह अजीव नाम इसलिए मिला है कि यह एक प्रकार की टिक-टिक की आवाज करती रहती है। इसकी यह आवाज हमे इसलिए सुनाई पडती है कि यह अक्सर उलटी हो जाया करती है और सीधे होने के लिए टिक-टिक करके जोर लगाती है।

धनकुट्टी ललछौंह भूरे रंग का कीडा है जो जुगनू की तरह लम्बा और चपटा होता है। इसके स्पर्शसूत्र पतले होते हैं जो दोनो ओर फैले रहते हैं। यह खतरा निकट देखकर अपने पतले पैरो को समेटकर भीतर कर लेता है और कुछ देर उसी तरह पडा रहता है।

धनकुट्टी

धनकुट्टी हमारे लिए हानिकारक कीट है जो हमारे गल्ले तथा नरम पौधो की जडो को काफी नुकसान पहुँचाता है।
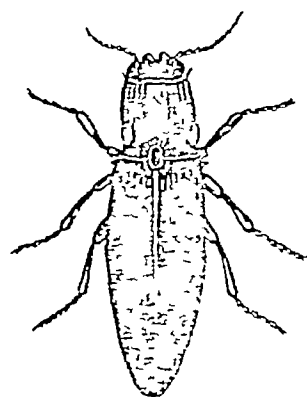
मादा अप्रैल-मई मे जोडा बाँधकर जमीन के नीचे अपने अण्डे देती है, जहाँ उनके रूपान्तरण मे लगभग तीन वर्ष लग जाते हैं। तीन वर्षो के बाद वे शिशुकीट और मूककीट की अवस्था को पार करके प्रौढ धनकुट्टी बन पाते हैं। इसके शिशुकीट की अवस्था हमारे लिए सबसे अधिक हानिकारक होती है क्योकि ये शिशुकीट हमारे पेड की जडो को चूसकर उन्हे सुखा देते हैं।

धनकुट्टी को रोशनी बहुत पसन्द है और वह रोशनी को देखकर पतिंगो की तरह उसके पास पहुँच जाते हैं। ये आलू, गेहूँ, गाजर, ककडी, सेम आदि को तो नुकसान पहुँचाते ही हैं, साथ ही साथ हमारे घास के मैदानो को भी नष्ट कर डालते हैं।

गुबरीला

(DUNG BEETLE)

गुबरीले से हम सभी परिचित हैं। हम इसे अक्सर खुले मैदानो मे गोबर का गोला लुढकाते हुए देखते हैं। गोबर के इस गोले को अक्सर नर और मादा दोनो लुढकाते रहते हैं और ऐसा करने मे वे जरा भी नही हिचकिचाते। इनकी वैसे तो लगभग २० हजार जातियाँ हैं, लेकिन यहाँ अपने देश के प्रसिद्ध गुबरीले का ही वर्णन दिया जा रहा है।

गुबरीला कद में एक इंच से कुछ बडा ही होता है। इसका रंग काला रहता है।

इसके नर-मादा एक ही शकल-सूरत के होते हैं, जो बैठे रहने पर अक्सर पैर सिकोड़े रहते हैं लेकिन वैसे ये इधर-उधर चलते-फिरते ही रहते हैं।

गुबरीला

गुबरीले गोबर या लीद की छोटी-छोटी गोलियों को लुढ़काकर किसी स्थान पर ले जाकर छिपा देते हैं, जिसके ऊपर एक सूराख करके वे अपने अण्डे देते हैं। इस गोले को भीतर ही भीतर खाकर वे पोला कर देते हैं जिससे अण्डे फूटने पर शिशुकीटों के लिए यथेष्ट स्थान रहे। अण्डों से शिशुकीट निकलकर गोबर खाने लगते हैं और वही मूककीट बन जाते हैं। फिर कुछ दिनों बाद वे प्रौढ़ गुबरीले बनकर गोले से बाहर निकल आते हैं।

घुन

(WEEVIL)
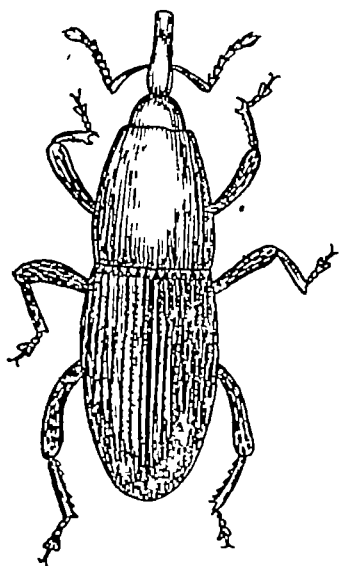
घुन उन हानिकारक कीड़ों में बहुत प्रसिद्ध है जो प्रतिवर्ष हमारे अन्न तथा लकड़ी की वस्तुओं का बहुत नुकसान करते हैं।

घुन अपने सूंडनुमा बढ़े हुए सिर के कारण बड़ी आसानी से पहचाने जा सकते हैं। इनकी यह सूंड काफी लम्बी होती है जिसके सिरे पर इनका मुख-छिद्र रहता है।

घुन के शरीर का रंग पिलछौंह रहता है। इनकी अनेक जातियाँ ... नाज, फल और ... के भीतर ... देती हैं। इन ... में जब ... हैं तो वे ... की ... खाकर उनका ... नालियों की

शकल में चाल डालते हैं और वह भीतर ही भीतर पोली होकर नष्ट हो जाती है। बाँस में अक्सर घुन लग जाते हैं तो उसे भीतर ही भीतर खा डालते हैं।

अण्डा देने का समय आने पर लकडी-घुन की मादा किसी लकडी के भीतर नाली-सी काटकर उसी में अपने अण्डे देती है, जहाँ ये अण्डे फूटते हैं और उनमें से शिशुकीट निकलते हैं जो वही मूककीट बनकर कुछ दिनो पडे रहते हैं। उसके बाद ये प्रौढ घुन बनकर लकडी की दीवार को काटकर बाहर निकल आते हैं।

कलापक्ष वर्ग

(ORDER HYMENOPTERA)

कीट-पतिगो का यह वर्ग भी काफी बडा और विस्तृत है। इसमें सब प्रकार की मधु-मक्खी (Honey Bees), बर्र (Wasps) तथा चीटे और चीटियाँ एकत्र की गयी है। इस वर्ग के अधिकाश जीवो के दो जोडी पख होते है, लेकिन कुछ ऐसे भी जीव है जिनके या तो पख निकलते ही नही या थोडे समय बाद गिर जाते है। इनके मुखभाग काटने और चूसने दोनो के काम आते है।

इन जीवो का पूर्ण रूपान्तरण होता है और इनकी मादाओ के उदर के पिछले सिरे पर डक की तरह का एक अग रहता है। ये सब सामाजिक कीट है जिनकी समाज-व्यवस्था और सघटन बहुत ही व्यवस्थित रहता है। यहाँ इनमे से चीटा, माटा, हाडा, बर्र, बिलनी, भँवरी तथा मधु-मक्खी का वर्णन किया जा रहा है।

चीटियाँ

(ANTS)

मनुष्यो के बाद हमारी पृथ्वी पर अगर कोई जीव अक्लमद कहा जा सकता है तो वे हमारी चीटियाँ है। इनकी तो ऐसी-ऐसी अद्भुत बाते है कि सुनकर दाँतो-तले उँगली दबानी पडती है। इनके घर ही इतने सुन्दर होते है कि देखकर ताज्जुब होता है। जमीन के नीचे इनकी पूरी बस्ती-सी बनी रहती है। वहाँ छोटे बडे कमरे, छते, गैलरियाँ और दालान होते है। इसके अलावा ये अपने बिलो के ऊपर

इसके नर-मादा एक ही शकल-सूरत के होते है, जो बैठे रहने पर अक्सर पैर सिकोडे रहते है लेकिन वैसे ये इधर-उधर चलते-फिरते ही रहते है।

गुबरीला

गुवरीले गोबर या लीद की छोटी-छोटी गोलियो को लुढकाकर किसी स्थान पर ले जाकर छिपा देते है, जिसके ऊपर एक सूराख करके वे अपने अण्डे देते है। इस गोले को भीतर ही भीतर खाकर वे पोला कर देते है जिससे अण्डे फूटने पर शिशुकीटो के लिए यथेष्ट स्थान रहे। अण्डो से शिशुकीट निकलकर गोवर खाने लगते है और वही मूककीट वन जाते है। फिर कुछ दिनो वाद वे प्रौढ गुवरीले वनकर गोले से वाहर निकल आते है।

घुन

(WEEVIL)

घुन

घुन उन हानिकारक कीडो मे वहुत प्रसिद्ध है जो प्रतिवर्ष हमारे अन्न तथा लकडी की वस्तुओ का वहुत नुकसान करते है।

घुन अपने सूंडनुमा वढे हुए सिर के कारण वडी आसानी से पहचाने जा सकते है। इनकी यह सूंड काफी लम्वी होती है जिसके सिरे पर इनका मुख-छिद्र रहता है।

घुन के शरीर का रग पिलछौह रहता है। इनकी अनेक जातियाँ है, जो अनाज, फल और लकडी के भीतर अपने अण्डे देती है। इन अण्डो से जव शिशुकीट निकलते है तो वे आसपास की वस्तुओ को खा-खाकर उनका सत्यानाश कर डालते है। लकडी आदि को घुन भीतर ही भीतर नालियो की

शकल में चाल डालते हैं और वह भीतर ही भीतर पोली होकर नष्ट हो जाती है। बाँस मे अक्सर घुन लग जाते हैं तो उसे भीतर ही भीतर खा डालते हैं।

अण्डा देने का समय आने पर लकडी-घुन की मादा किसी लकडी के भीतर नाली-सी काटकर उसी मे अपने अण्डे देती है, जहाँ ये अण्डे फूटते हैं और उनमे से शिशुकीट निकलते हैं जो वही मूककीट बनकर कुछ दिनो पडे रहते हैं। उसके बाद ये प्रौढ घुन बनकर लकडी की दीवार को काटकर बाहर निकल आते हैं।

कलापक्ष वर्ग

(ORDER HYMENOPTERA)

कीट-पतिगो का यह वर्ग भी काफी बडा और विस्तृत है। इसमे सब प्रकार की मधु-मक्खी (Honey Bees), बर्र (Wasps) तथा चीटे और चीटियाँ एकत्र की गयी हैं। इस वर्ग के अधिकाश जीवो के दो जोडी पख होते हैं, लेकिन कुछ ऐसे भी जीव हैं जिनके या तो पख निकलते ही नही या थोडे समय बाद गिर जाते हैं। इनके मुखभाग काटने और चूसने दोनो के काम आते हैं।

इन जीवो का पूर्ण रूपान्तरण होता है और इनकी मादाओ के उदर के पिछले सिरे पर डक की तरह का एक अग रहता है। ये सब सामाजिक कीट हैं जिनकी समाज-व्यवस्था और सघटन बहुत ही व्यवस्थित रहता है। यहाँ इनमे से चीटा, माटा, हाडा, बर्र, बिलनी, भँवरी तथा मधु-मक्खी का वर्णन किया जा रहा है।

चीटियाँ

(ANTS)

मनुष्यो के बाद हमारी पृथ्वी पर अगर कोई जीव अक्लमद कहा जा सकता है तो वे हमारी चीटियाँ हैं। इनकी तो ऐसी-ऐसी अद्भुत बातें हैं कि सुनकर दाँतो-तले उँगली दबानी पडती है। इनके घर ही इतने सुन्दर होते है कि देखकर ताज्जुब होता है। जमीन के नीचे इनकी पूरी बस्ती-सी बसी रहती है। वहाँ छोटे बडे कमरे, छतें, गैलरियाँ और दालान होते हैं। इसके अलावा ये अपने बिलो के ऊपर

ऊँचे टीले की दिमौर या बिमौर बनाती है जो दो मजिली होती है । इससे चीटियो के बिल ज्यादा गर्म और ठडे नही हो पाते।

इन दिमौरो में हजार दो हजार नही बल्कि लाखो की तादाद में चीटियाँ रहती है जो एक दूसरे को अच्छी तरह पहचानती है। अगर इत्तफाक से कोई चीटी कही दूसरी जगह चली जाती है तो लौटने पर सब चीटियाँ उसे पहचान लेती है और उसका आदर-सत्कार होता है, पर यदि उनके यहाँ किसी दूसरे बिल की चीटी घुस आती है तो सब मिलकर यदि उसे मार नही डालती तो अधमरी तो जरूर कर देती है ।

रानी-मधुमक्खी की तरह हर एक बिल में एक रानी-चीटी भी होती है जिसका काम बिल में रहकर केवल अण्डे देना रहता है । इसके बच्चो को रोज़ दाई-चीटियाँ दिमौर के ऊपरी खण्ड पर ले जाती है और अगर दिन सुहावना होता है तो उन्हें खुली छत पर लिटा दिया जाता है । दाई-चीटियाँ बच्चो का बहुत ख्याल रखती है और जब तक बच्चे अपना रेशमी लिबास छोडकर काम करनेवाली चीटियाँ नही हो जाते तब तक वे उन्हें इधर-उधर लिये फिरा करती है।

चूँकि चीटियाँ अच्छे दिनो में खूब मेहनत करके अपने लिए खाना इकट्ठा कर रखती है इससे जाडो में उन्हें किसी बात का डर नही रहता। उनके पास सुन्दर घर और खाने का काफी सामान रहता है । इसी से वे जाडो में अपने घर के दरवाजे बन्द करके और दीन-दुनिया की फिक्र छोडकर उसी में पडी रहती है।

छोटी भूरी चीटियाँ भी बडे काले चीटो के समान मेहनती और चालाक होती है। इनमें एक और खास बात यह होती है कि ये अपने बच्चो के दूध के लिए एक प्रकार की मक्खियो को पालती है। ये मक्खियाँ हरे रग की होती है और इनका दूध दुहकर चीटियाँ अपने बच्चो को पिलाती है। ये मक्खियाँ फूलो का रस पी-पीकर फूलकर कुप्पे की तरह हो जाती है। चीटियाँ इनको पकडकर अपने यहाँ कैद कर लेती है और जरूरत पडने पर उन्हें अपने तेज़ मुँह से काटकर रस देने को मजबूर कर देती है।

लडाई की कला जितनी चीटियो की फौज जानती है उतनी मनुष्य की सेना नही जानती। चीटियो की फौजें आपस मे अनोखे ढग से लडती है। एक विद्वान ने लिखा है कि मनुष्य लडाई मे जितने उपायो से काम लेता है वे सब चीटियाँ जानती

है। कोलम्बिया, दक्षिण अमेरिका में एक अंग्रेज अपने बँगले के पास ही लाल और काली चींटियो की दो सेनाओ की लडाई दो घंटे तक देखता रहा। लाल चीटियाँ एक पेड पर थी, काली चीटियो की फौज ने नीचे से उन पर आक्रमण किया और उन्हे मारकर पेड पर दखल जमा लिया।

चीटियाँ किसी से नही डरती। घडियाल, और वडे-वडे साँपो के सामने आने पर वे आक्रमण कर देती हैं। ईराक मे एक हवाई जहाज के चालक ने देखा कि काली चीटियो की फौज ने एकाएक एक काले विच्छू पर आक्रमण कर दिया। विच्छू ने भी खासी लडाई की और वहुतसी चीटियाँ मर गयी, पर अन्त मे विजय चीटियो की ही हुई।

चीटियाँ वडी खाऊ वीर होती हैं। इनके रास्ते मे जो चीज आ जाती है ये उसे खा जाती है। एक जाति की चीटी तो चूहे भी खा जाती है। अफ्रीका में अँगरेजो के दल के साथ के एक जिन्दे कुत्ते को ये चीटियाँ सफाचट कर गयी और उसके शरीर मे जितना मास था वह सव उन्होने नोंच लिया।

छोटी होने पर भी चीटी एक भयानक जीव है। प्रोफेसर जूलियन हक्सले का तो कथन है कि चीटी अगर लोमडी जितनी वडी होती तो इस दुनिया पर मनुष्य और अन्य मेरुदंडी जीवो का अस्तित्व ही न रहता।

चीटियाँ वहुत दिन तक जीती हैं। रानी चीटी तो पचास वर्ष तक जीती है। वैसे भी चीटियाँ जल्द नही मरती। पानी मे ये ७-८ दिन तक पडी रह कर भी वच जाती हैं। चीटियाँ अपने शरीर को मजवूत करने के लिए आपस मे कुश्ती लडती हैं और कभी-कभी नकली युद्ध भी करती हैं।

चीटियो मे गुलामी की प्रथा वड़े जोरो से है। एक मजवूत जाति कमजोर जाति की चीटियों को गुलाम वनाकर रखती है और उनसे अपना काम लेती है। एक चीटी के पास दस गुलाम चीटियाँ तक देखी गयी हैं।

इस समय तक हमको ५-६ हजार तरह की चीटियो का पता है जिनमें रानी, सैनिक, किसान, गाय, ग्वाला, कारीगर और अनेक प्रकार की चीटियाँ हैं। चीटियाँ वुद्धि मे आदमियो के वरावर भले ही न हो पर इसमे जरा भी सन्देह नही

कि खेती करने, आटा बनाकर रोटी पकाने, बाजा बजाने, नाचने और मुर्दो को कबर मे गाडने मे मनुष्यो के बाद फिर इन्ही का नम्बर है।

बडे चीटे (Field Ant) के नर बडे और बर्र की शकल-सूरत के होते है। इनके मजदूर अधे होते है, जो ज्यादातर दीमक की तरह जमीनके भीतर ही रहते है। मादा अधी और दीमक की मादा की तरह होती है। मजदूरो के डक होते है।
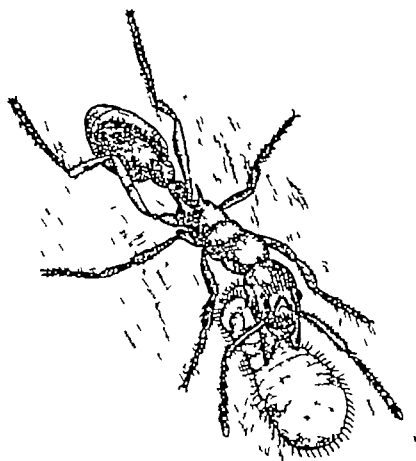
चींटा

बडे चीटे दीमक की तरह जमीन के भीतर अपना घर बनाते है और इनका रहन-सहन भी बहुत कुछ उन्ही की तरह रहता है। ये चीटे पौधो का बहुत नुकसान करते है। ये उनकी जड के पास उनका रस चूसकर उन्हे सुखा डालते है। इनके मजदूर दूसरी जाति के चीटो को पकड कर अपने बिलो मे ले जाते है, जहाँ वे उनके टुकडे कर डालते है। इनके नर जाडे के अन्त मे अक्सर बाहर दिखाई पडते है।

माटा

(RED ANT)

माटे की भी कई जातियाँ है। पेड पर पत्तो की झोझ बनाकर रहनेवाले माटे हमारे सबसे परिचित माटे है जिन्हे बदरमाटा कहते है। ये लाल रग के होते है जो कई पत्तो को जाले से जोडकर थैलीनुमा झोझ बनाते है जिसमे खटमल की जाति के कीडो को बन्द रखते है। इनकी हरे रग की मादाएँ जून से अपना नया घोसला बनाती है। मजदूर माटे बहुत ही फुर्तीले और भयकर होते है। ये मरे हुए कीडो और जिन्दा जोराइयो को पकड ले जाते है और उनके टुकडे-टुकडे कर डालते है, फिर उन्हे ये अपने घोसले मे उठा ले जाते है। एक पेड पर माटो के

वहुत से घोसले होते हैं जिनको वीच से तोडकर देखने से उनमें वहुत से मरे हुए कीडे मिलते हैं। घोसले के टूट जाने पर मजदूर माटे वडी तेजी से उसको मरम्मत कर देते हैं। इनके मुँह से एक प्रकार का रेशमी तार-सा निकलता है जिसमे जालो की मरम्मत की जाती है।

माटा

इनकी एक जाति तुरुक-माटा कहलाती है जो पेड की जड के पास जमीन मे या घर की दीवालो में अपना विल वनाते है और मरे हुए कीडो आदि को उसमें जमा करते है।
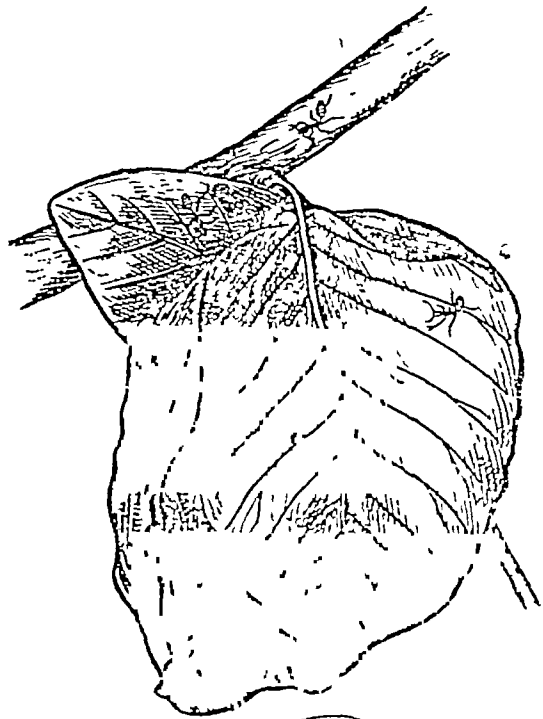
तीसरी जाति के माटे गुड-माटा कहलाते है। ये हमारे देश मे काफी सख्या मे मिलते है। ये पेड की गिरी हुई पत्तियो तथा सूखे हुए पेड के नीचे अपना घर वनाते है।
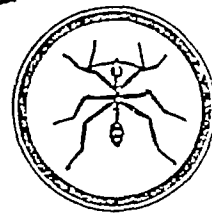
चौथी जाति के माटे अपना घर किसी पेड, वाँस तथा गन्ने के तने से चिपकी पत्ती या छाल के नीचे वनाते है। इन चारो माटो की आदत, रहन-सहन, स्वभाव इतना मिलता-जुलता होता है कि उसे फिर से दुहराना ठीक नही जान पडता।

वर्र

WASP

वर्र से भला कौन परिचित न होगा। इन्हे ततैया भी कहा जाता है। हममें से वहुतो को तो इसके तेज डक का भी अनुभव होगा। जून-जुलाई से नवम्बर तक

हम इस पीली वर्र को अपने घरो में इधर-उधर उडते देख सकते है। उस ससय ये अपना छत्ता वनाने की फिक्र में इधर-उधर उडती रहती हैं। फिर अपना झुमके की शकल का सुन्दर छत्ता वना लेती हैं, जो दीवार के किसी कोने में लटकता रहता है।

वर्र
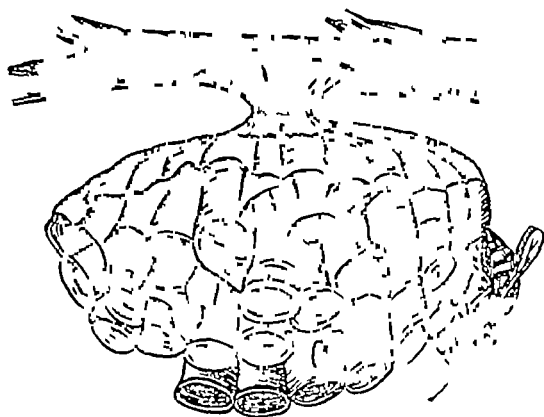
ये छत्ते मिट्टी के नही वल्कि किसी कागज जैसे हलके पदार्थ के होते हैं जिनकी वनावट वहुत साफ और सुन्दर होती है। इस सुन्दर छत्ते को मादा ततैया वनाती है। पहले वह दो-तीन कोठरियाँ वनाती है, फिर धीरे-धीरे उसकी १०-१२ सुरगनुमा कोठरियाँ वन जाती हैं जिनमे वह एक-एक अण्डा रख देती है। कुछ ही दिनो में अण्डे फूटकर उसमें से मक्षिजातक निकलते हैं जिनके लिए ततैया विलनियो की तरह न तो पहले से मकडियो को ही जमा कर रखती है और न भँवरियो की तरह कोठरियो में पराग ही भर रखती है। इससे उसे खुद ही इन नवजात मक्षिजातको (Grubs) को फूलो से रस और पराग ला-लाकर खिलाना पडता है। ८-१० दिनो में ये कीट वडे होकर शिशुकीट (Nymph) हो जाते है और फिर वे धीरे-धीरे प्रौढ होकर वर्र वन जाते हैं।

वर्र वन जाने पर ये अपने छत्ते को वढाने लगते ह और उसमें नयी कोठरी या सुरग वनाकर इनकी मादा एक-एक अण्डा देती जाती है, जो धीरे-धीरे अपना परिवर्तन करके वर्र वनते रहते हैं।

इस प्रकार यह क्रम नवम्बर तक चलता है। फिर जाडा आने पर छत्ते की सारी मजदूर बर्रें मर जाती हैं और उनमें सिर्फ थोडी-सी मादाएँ ही बचती हैं। ये जाड़े भर किसी सूराख में छिपी रहती हैं और फिर अगले साल बरसात मे उसी प्रकार अपना नया छत्ता बनाना शुरू कर देती हैं।

हाड़ा

(HORNET)

बर्र की वैसे तो कई जातियाँ हमारे यहाँ पायी जाती हैं लेकिन इनमे से हमारे यहाँ दो बहुत प्रसिद्ध हैं। इनमे बडा हाडा और छोटी बर्र (Yellow wasp) कहलाती है। हाडे को हम अक्सर मिठाइयो की दूकानो पर देख सकते हैं। इसका रग कत्थई होता है जिस पर पीली-पीली धारियाँ पडी रहती है, लेकिन बर्र पीले रग की होती है जो अक्सर हमारे घरो के कोने में छोटा-सा झुमके जैसा लटकनेवाला छत्ता लगाती है। इसे भी ततैया कहते हैं।

इन दोनो के छत्ते कागजी बनावट के होते हैं जिन्हे ये बडी खूबसूरती से बनाती हैं। ये पहले घास-पात या पेड की छाल वगैरह खूब चबा लेती हैं। फिर उसी चबाये हुए पदार्थ मे इनका सुन्दर छत्ता बनता है।

हाड़ा

हाडे के छत्ते बहुत बडे-बडे होते है जिनका ऊपरी हिस्सा एक प्रकार की खोल से ढका रहता है। इन खोल और छत्ते के बीच मे खाली जगह रहती है जिसमे होकर हाडे हर एक कोठरी मे आ-जा सकते हैं। ये छत्ते पेड पर या पुरानी दीवारो मे या जमीन के भीतर रहते हैं जहाँ हाडो के जाने के लिए ऊपर से एक रास्ता रहता है।

हाडे का मुख्य भोजन वैसे तो जोराई, टिड्डे, खटमल, गुबरीले और दूसरे छोटे कीड़े-मकोडे है, लेकिन इनको मीठी चीज बहुत पसन्द है। फूल के रसो के लिए ये मधु-

मक्खियो की तरह मँडराते रहते है और मिठाई की दूकानो पर तो हमें इनके झुड-के-झुड देखने को मिल जाते हैं।

हाडे की मादा जाडो मे दो-तीन महीने दीवार के सूराखो में छिप कर बिता देती है। इस प्रकार शीतशायी अवस्था को विताकर वह फिर छत्ता बनाने की फिक्र में इधर-उधर चक्कर लगाने लगती है। जाडे के प्रारभ में हम अक्सर हाडे को अपने घरो में देखते है क्योकि यही समय सूराखो में घुसकर इनके शीतशायी होने का है।

हाडे का डक वहुत तेज और जहरीला होता है और इसके डक मारने पर उस स्थान पर वहुत सूजन हो जाती है।

इसके रहन-सहन और अडे-वच्चे देने का ढग बहुत कुछ ततैया या बर्र से मिलता-जुलता रहता है ।

बिलनी

(MUD WASP)

विलनी की कई जातियाँ हमारे यहाँ पायी जाती हैं। यह हाडा और वर्र की भाई-विरादर है जो अपना मिट्टी का घर बनाती है ।

बिलनी
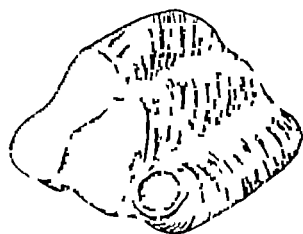
विलनी की शकल-सूरत ततैया से मिलती-जुलती रहती है, लेकिन उसकी कमर लवी और वहुत ही पतली रहती है। इसकी मादा मिट्टी का घर वनाती है जिसमें एक दूसरे से मिली हुई २ से ७ तक लवी सुरगनुमा कोठरियाँ रहती हैं। कोठरियो के तैयार हो जाने पर विलनी उनके मुँह गीली मिट्टी से वद कर देती है। ये मिट्टी के घर, विलनी अपने लिए नही वल्कि अपने अडे-वच्चो के लिए वनाती है जो दीवार, खिडकी, दरवाजो, पेड के तनो और मेज-कुर्सियो पर वनाये जाते है जो सूख जाने पर वहुत मजवूती से चिपके रहते है। घर वन जाने पर विलनी हर एक सुरग में

एक मकडा रख देती है, फिर उसमे एक अडा देती है। अडा देने के वाद विलनी उसमे और मकडो को, जो उसके डक मारने से वेहोश रहते है, लाकर जमा करती है। उसके वाद वह उसका मुंह वद करके दूसरी सुरग में ऐसा ही प्रवध करने लगती है।

अडा फूटने पर जो शिशुकीट निकलता है वह पहले मकडे का नरम पेट खाता है, फिर धीरे-धीरे वह सव वेहोश मकडो को चट कर जाता है। ६ दिन मे वह पूरा वढ जाता है और उसका सफेद रग वदलकर सिलेटी हो जाता है। एक सप्ताह और वीतने पर वह अपने ऊपर रेशम के कीडे की तरह वहुत वारीक पीले रग की कुसुआरी (Cocoon) वनाता है जिसका रग सूखने पर भूरा हो जाता है। तीन दिन से छः दिन तक आराम करने के वाद यह कुसुआरी या कृमिकोष के भीतर मूककीट (Pupa) की शकल का हो जाता है। ऐसी हालत में इसे १२-१३ दिन रहना पडता है, जिसके वाद वह पूरी तौर से विलनी की शकल का वन जाता है। विलनी वन जाने पर वह कुसुआरी को काटकर वाहर आता है और सुरग द्वार की मिट्टी को ठेल-कर हवा मे उड जाता है। इस प्रकार अडे से पूरी तौर पर विलनी वनने में उसे २८ से ३० दिन तक लग जाते है।

नयी विलनी जल्द ही अपना नया घर वनाने की फिक्र मे लग जाती है और साल मे चार-पाँच वार अडे देती है। विलनी वैसे वहुत कम दिखाई पडती है लेकिन जव यह हमारे सामने पड जाती है तो इसके नीले रग के कारण हमें इसे पहचानने मे देर नही लगती।

मधुमक्खी

(HONEY BEE)

हमारे सामाजिक कीटो मे मधुमक्खी का नाम सर्वोपरि माना जाता है। इनका सघटन इतना पूर्ण और इनकी सामाजिक व्यवस्था इतनी सुन्दर होती है कि उसे देख-कर आश्चर्य से चकित रह जाना पडता है। दीमक आदि कीडे जहाँ हमारी वहुत हानि करते है वही मधुमक्खी हमको केवल मधु ही नही देती वरन् वह पुष्पगर्भाधान मे सहा-यता देकर हमारे वाग-वगीचो तथा फसल आदि का वहुत उपकार भी करती है।

इस सामाजिक कीट के प्रत्येक गिरोह मे चार प्रकार की मधुमक्खियाँ होती है—

१ रानी मधुमक्खी—Queen

२ मजदूर—Worker

३ कर्मशील नर—Drone

४ सैनिक—Soldier

मधुमक्खी के प्रत्येक गिरोह में लगभग ६० हजार मधुमक्खियाँ रहती हैं। इसमें एक रानी, लगभग २०० नर तथा शेष मजदूर और सैनिक होते हैं। इन चारो प्रकार
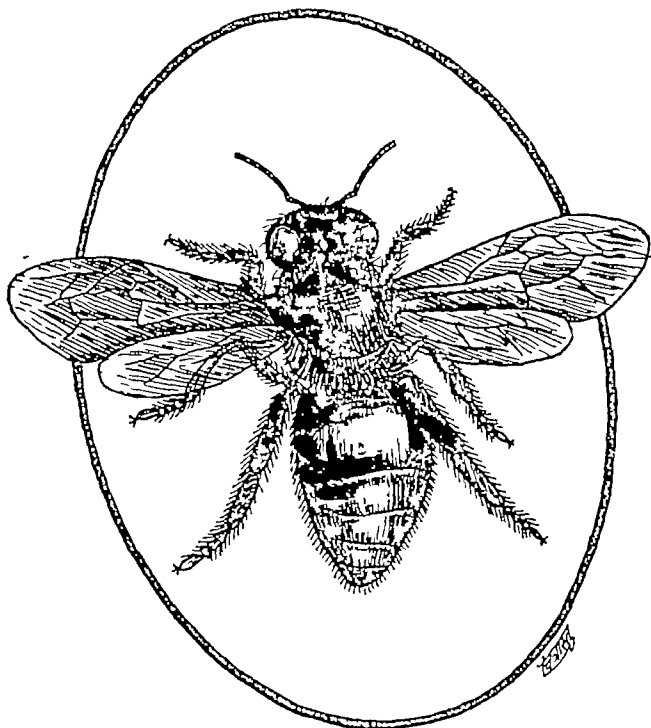
मधुमक्खी

के प्राणियो के कार्य अलग-अलग होते हैं और इन्ही कार्यो के अनुसार इनके शरीर की बनावट रहती है। मजदूर मधुमक्खियाँ कद में सबसे छोटी होती हैं और इनमें अन्य सब

मधुमक्खियो से ज्यादा तेजी भी रहती है। ये बाँझ होती है लेकिन छत्ते मे ये ही सबसे ज्यादा काम करती है।

नर, मजदूर से बडे होते हैं और उनका उदर अधिक चौडा रहता है। रानी का उदर लवा और सँकरा रहता है और उसके उदर के अन्तिम भाग मे एक पैनी और खोखली नली रहती है। रानी इसी नली की सहायता से अडे देती है। मजदूर और सैनिको मे इसी स्थान पर एक छोटी और नुकीली नली रहती है जिसे डक (Sting) कहते है। डक के नीचे एक विष-ग्रन्थि (Poison Gland) रहती है जिसमे से विष निकलकर डक मारे हुए स्थान मे प्रवेश कर जाता है।

मजदूर मधुमक्खियाँ केवल छत्ता ही नही बनाती बल्कि फूलो से मकरद (Nectar) तथा पराग (Pollen) भी जमा करती है। इनके उदर के दूसरे से पाँचवे खड के नीचे के भाग पर ग्रन्थियाँ रहती हैं, जिनसे ये मोम निकालकर अपने जबडो तक लाती हैं और छत्तो की छ कोणवाली कोठरियाँ बनाती है।

इन मक्खियो की टाँग पर महीन बाल होते है और पिछली टाँगो पर बालो की कूँचियाँ (Pollen Brushes) रहती है जिनसे ये पराग-कण इकट्ठा करती है जो जाँघ के पास की पराग-टोकरी (Pollen Basket) मे जमा कर दी जाती हैं और जिन्हें ये ला-लाकर छत्ते मे गिरा देती हैं।

फूलो का रस चूसने के लिए मधुमक्खियो के मुख के अग्रभाग मे एक सूँड-सी रहती है जिसका सिरा फैलकर चम्मच की शकल का हो जाता है। उडते समय यह शुड लिपटकर सिर के ठीक नीचे सिमटा रहता है। मधुमक्खी जब फूलो का रस चूसती है तो वह पहले उसके शरीर के मधुकोष (Honey Sac) मे जाता है, जहाँ उसमे कुछ रासायनिक परिवर्तन होते है और वह मधु का रूप धारण कर लेता है। मधुमक्खियाँ इनको पुन उगलकर छत्तो में भर देती है। यही हमारा शहद है।

मधुमक्खी का छत्ता दो भागो मे विभक्त रहता है। एक को मधुकोष्ठ (Honey Comb) कहते हैं और दूसरे को प्रसूतिकोष्ठ (Brood Comb)। मधुकोष्ठ के प्रत्येक खाने में मधु भरा रहता है और प्रसूतिकोष्ठ मे रानी तथा नर मधुमक्खियो का लालन-पालन होता रहता है।

छत्तो के भीतर मजदूरो को तरह-तरह के काम करने पडते है। ये अडो की देख-

भाल करते हैं, छत्तो की मरम्मत करते हैं, बाहर से पराग और मकरद लाते हैं तथा छत्ते की सफाई करते रहते हैं। ये अपने ओठ से चाट-चाटकर रानी के शरीर को साफ किया करते हैं और अपने पख को डुला-डुलाकर उसको हवा करते हैं।

रानी माखी का काम केवल अडा देने भर का रहता है। वह अपने जीवन-काल में असख्य अडे देती है। अडे देने से तीन दिन बाद उनमे से शिशुकीट निकलते हैं। इन शिशुकीटो को आगे जो कुछ भी बनाना होता है उन्हे उसी प्रकार का भोजन दिया जाता है । मजदूर बननेवालो को शहद, नर बननेवालो को पराग और रानी बननेवाले शिशुकीट को केवल मकरद का भोजन दिया जाता है। ये शिशुकीट जब पॉच दिन के हो जाते हैं तो छत्ते के खानो में थोडा-थोडा पराग अथवा शहद रखकर इन्हें उनमे बद कर दिया जाता है और खानो का मुख मोम से बद कर दिया जाता है। इस प्रकार मृककीटावस्था मे लगभग दो सप्ताह रहकर ये मधुमक्खी का स्वरूप धारण कर बाहर निकल आते हैं और अपना-अपना काम करने लगते हैं।

नयी रानी के निकलने पर पुरानी रानी छत्ता छोडकर चली जाती है और नयी रानी अन्य रानी बननेवाले मूककीटो की जीवन-लीला समाप्त कर देती है और उस छत्ते की एकमात्र अधिकारिणी बन जाती है।

एक सप्ताह बाद यह नयी रानी अपने प्रणय-विहार के लिए नरो को लेकर बाहर निकलकर उडती है । प्रणय-लीला के उपरान्त नर तो मर जाता है, लेकिन रानी अपने छत्ते मे लौटकर अडा देने का कार्य आरभ कर देती है और फिर बराबर पॉच वर्षो तक अडे देती रहती है। शरद् ऋतु के आते ही रानी की आज्ञा से शेप नर भी छत्ते से बाहर निकाल दिये जाते हैं, जो शीघ्र मर जाते हैं और मजदूर सैनिक तथा रानी छत्ते के भीतर आराम से बैठ कर सचित मधु खाकर अपना समय बिताती रहती हैं।

भौरा

(LARGE CARPENTER BEE)

भौरा मधुमक्खियो का भाई-बन्धु है जो अपने बडे शरीर के कारण कही भी नही छिपता और इसका गुञ्जन सुनकर हमे इसकी उपस्थिति का पता दूर ही से लग जाता है।

हमारे कवि और लेखको ने जितना भौंरे के बारे मे लिखा है उतना शायद ही किसी जीव के बारे मे लिखा हो। बाग का कोई वर्णन बिना भौंरे के गुजन के पूरा ही नही उतरता। अक्सर इसके काले शरीर पर पीली पट्टी के कारण कवि लोग इसकी उपमा श्री कृष्ण से देते हैं, लेकिन वे यह भूल जाते हैं कि नर भौंरे का शरीर तो प्रौढ होने पर पीले रग का हो जाता है, काले रग की तो मादा रहती है जिसका धड पीले रग का रहता है। इसी को हम अपने बाग-बगीचो में भन-भन करते हुए उडते देखते है।

भौंरा

भौंरा छत्ता नही बनाता। यह अपने रहने के लिए किसी लकडी की बल्ली या शहतीर को काटकर उसी मे अपने लिए गहरी सुरग बना लेता है।
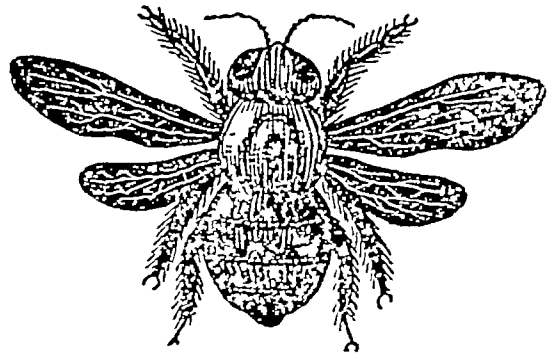
भौंरा, जैसा ऊपर बताया गया है, मधुमक्खी के परिवार का प्राणी है। इसका सिर सुडौल और शरीर की बनावट गठी हुई होती है। फूलो का रस चूसने के लिए इसकी जबान तो लबी होती ही है, साथ ही साथ इसके पिछले हिस्से की सतह पर बहुत महीन-महीन रोएँ रहते है। जब भौंरे फूलो का रस पीने के लिए फूलो मे घुसते है तो इन्ही रोओ के कारण उनके शरीर पर काफी पराग लग जाता है। इनके छोटे पैर भी रोएँदार होते है जिनमें चिपककर पराग एक फूल से दूसरे फूल तक पहुँचा करता है।

भौंरे मधुमक्खियो की तरह बडे झुडो मे नही रहते, लेकिन कई भौंरे एक ही स्थान पर रहना पसद करते हैं। मादाएँ ज्यादातर फूलो के चारो ओर मँडराती रहती हैं। यही अपने लिए और अपने बच्चो के लिए फूलो का रस और पराग इकट्ठा करती है।

भौंरे एक ही जगह पर लकडी काटकर कई सुरगे बनाते है जिनमे मादा पराग जमा करके एक-एक अडा देती है। इन सुरगो का मुँह बद कर दिया जाता है और अडा फूटने पर नवजात कीट (Grub) पराग खा-खाकर बढते हैं। फिर कई परिवर्तन के बाद वे भौंरे बन जाते हैं।

जाडा आने पर भौंरे की रानी को छोडकर करीव-करीव सव भौरे मर जाते है। रानी जाडो के महीने किसी बिल में घुसकर बिताती है और जाडा समाप्त होने पर उसका नया वश-क्रम फिर चलने लगता है।

भौंरी

(MASON BEE)

भौंरी को कुछ लोग छोटी बिलनी भी कहते है। यह नाम बहुत कुछ सही भी है क्योकि यह भी बिलनियो की तरह मिट्टी का बिलोवाला घर बनाती है।

वैसे भौंरी की शकल-सूरत शहद की मक्खियो से मिलती-जुलती होती है लेकिन यह उनकी शहद का छत्ता न लगाकर मिट्टी का ही घर बनाती है। इसको घर बनाने के लिए जगहें भी खूब सूझती हैं। दीवाल या लकडी का कोई सूराख, साइकिल के हैंडिल का छेद, बदूक की नाल, यहाँ तक कि मोटी किताबो के पीछेवाले हिस्से तक में ये चटपट अपना छोटा-सा मिट्टी का घर बना डालती है।

इन घरो के बनाने का काम मादा भौंरी के मत्थे रहता है। एक सुरग बनाकर भौरी उसके आधे हिस्से को फूलो के पराग से भर देती है और फिर उसमे एक-एक अडा देकर उसका मुँह मिट्टी से वद कर देती है। वस, उसका काम यही खतम हो जाता है।

अडा फूटने पर मक्षिजातक (Grub) पराग को खाता रहता है और उसके खतम होते-होते वह बढकर शिशुकीट (Nymph) की शकल का हो जाता है। शिशुकीट के भीतर भौंरी की शकल बनती रहती है जहाँ पूरी तौर पर प्रौढ हो जाने पर वह मिट्टी की दीवाल को काटकर उड जाती है।

दूसरी भौंरी, जो पतकटनी (Leaf cutting Bee) कहलाती है, वरसात मे काफी सख्या में दिखाई पडती है। वरसात मे हमें अक्सर गुलाव आदि के पत्ते कटे हुए मिलते है और ऐसा लगता है जैसे किसी ने मशीन से पत्तो का कुछ हिस्सा गोलाई से काट लिया हो। उस समय कभी ख्याल भी नही होता कि यह काम इसी पतकटनी भौंरी का है।

पतकटनी भौंरी पत्तो को अपने खाने के लिए नही काटती और न इसकी मशा हमे बेकार नुकसान पहुँचाने की ही रहती है। इन पत्तो को गोलाई से काटकर यह अपने बिल मे अस्तर लगाती है जिससे उसमें भरा हुआ पराग उसके बच्चो के लिए सुरक्षित रहे।

पतकटनी भौरी अपने घर के लिए एक लबा सूराख करती है जिसके भीतरी हिस्से मे वह पत्तियोको काट-काटकर बहुत सुन्दर ढग से अस्तर लगाती है। पहले थोडी दूर अस्तर लगाकर यह उसमे थोडा पराग भरती है और एक अडा देकर उसको एक पत्ती के गोल ढक्कन से बद कर देती है। फिर थोडा हिस्सा बनता है और उसमे पराग भरकर और एक अडा देकर उसको भी ढक दिया जाता है। इस प्रकार जब पूरा सूराख भर जाता है तो पतकटनी उसका मुँह मिट्टी से बद कर उड जाती है। उसका काम बस यही खत्म हो जाता है। उसके बाद भौंरी की तरह अपना रूपान्तरण करके इसके शिशु भी भौंरी बनते हैं और बिल का मुँह काटकर हवा मे उड जाते हैं।
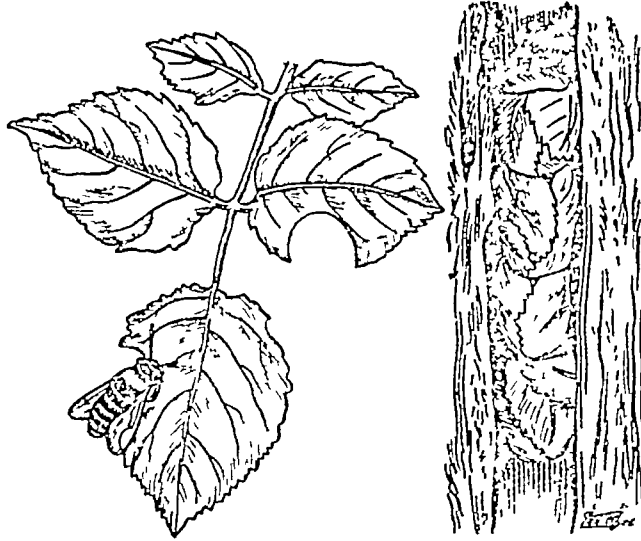
भौंरी

द्विपक्ष वर्ग

(ORDER DEPTERA)

इस वर्ग मे वे कीट रखे गये है जो द्विपक्षकीट कहलाते है। इन कीटो के पखो का केवल एक ही जोडा रहता है और पिछले पखों का अभाव रहता है। इनके मुख विशेष रूप मे चूमने के लिए बने है, लेकिन ये किसी-किसी कीट के भेदन का भी कार्य करते है। इन कीटो मे पूर्ण रूपान्तरण होता है।

इस वर्ग के कीट मनुष्यो के लिए बहुत घातक सिद्ध हुए है और गरम देशो में इनसे बहुत सावधानी रखनी पडती है। मच्छर और मक्खियो जैसे रोग फैलानेवाले कीडो के कारण यह वर्ग हमारे लिए विशेष महत्त्व का है। यहाँ इन्ही दोनो का वर्णन किया जा रहा है।

मच्छर

(MOSQUITO)

मच्छर हमारे बहुत ही परिचित कीट है जिनसे शायद ही ऐसा कोई होगा जो परेशान न हो गया हो। रात को सोते समय इनसे बचने के लिए हमको मसहरी में बद हो जाना पडता है, तब भी इनसे छुट्टी नही मिलती। ये हमारा रक्त चूस कर ही सतुष्ट हो जाते तो भी कोई बात नही थी, लेकिन इनसे मलेरिया-जैसे भयकर रोग फैलकर हमारे स्वास्थ्य की जडें हिला देते है।

मच्छर द्विपक्ष वर्ग के प्रसिद्ध कीट है जिनके शरीर मे केवल दो पख होते है। इनका मुख चूषण और भेदन कार्य के लिए उपयुक्त रहता है। इनकी लगभग १६०० जातियो का अभी तक पता चल सका है। ये पहाडो पर भी लगभग १००० फुट की ऊँचाई तक पाये जाते है और गरम देशो मे तो ये इतनी अधिक सख्या मे फैले रहते है कि इनके द्वारा सैकडो मनुष्यो को प्रतिवर्ष अपनी जान से हाथ धोना पडता है।
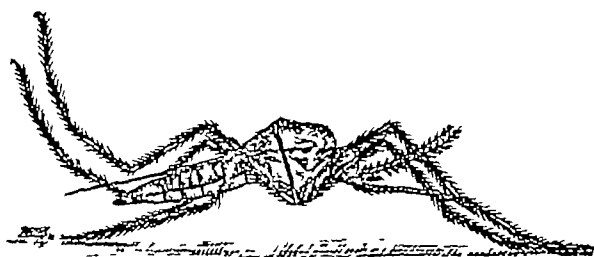
मच्छर

मच्छर का शरीर भी अन्य कीडो की भाँति तीन भागो में बँटा रहता है—सिर, वक्ष और उदर। इसकी आँखें सयुक्त (Compound) होती है और मुँह के दोनो ओर एक-एक स्पर्श सूत्र (Feelers) रहते है। इनके मुँह के आगे एक सूँड (Pro-

शंखों के कुछ सुन्दर नमूने

bosces) रहती है जिसका विकास केवल मादाओ मे होता है। इसमे छ वल्लम-जैसे तेज धारवाले अग रहते हैं जिन्हें ये दूसरे जीवो के शरीर में गडाकर उनका रक्त चूसते रहते हैं। इनकी जीभ पतली और नोकीली तलवार जैसी रहती है। चूंकि रक्त चूसने की सूंड प्रकृति ने मादा मच्छरो को ही दी है अत वे ही हमारा रक्त चूसकर अपना पेट भरती है और नर को रक्त चूसने मे असमर्थ होने के कारण फूल और फलो के रसो पर ही निर्वाह करना पडता है।

मच्छरो के एक ही जोडा पखो का रहता है जो एक मिनट में सैकडो वार खुलता वद होता है और जिसके कारण एक प्रकार की तेज आवाज निकलती है। इनका उदर सँकरा और लवा होता है जो ९ खडो मे वँटा रहता हैं।

मच्छरो की मादा खून चूसने के पूर्व अपनी नोकीली सूँड को त्वचा मे गडाती है और धीरे-धीरे खून चूसने लगती है। उसके मुख से एक प्रकार की लार-सी निकलकर रक्त मे मिल जाती है जो उसे गाढा होकर जमने नही देती। यो तो मादा भी नर की तरह फल-फूल के रस से अपना पेट भरती है, लेकिन गर्भ धारण करने पर अडो के पोपण करने के लिए इसके लिए रुधिर पीना आवश्यक हो जाता है। अडा देने के लिए यह किसी ताल, पोखर, नाली या अन्य किसी स्थान के वद पानी को चुनती है जहाँ यह प्रात काल दो सौ से तीन सौ तक अडे देती है। अडा देने के वाद वह अपनी पिछली टाँगो से उन्हें एक वेडे (Raft) की शकल में सजाती है। अडे शुरू मे सफेद रहते हैं और एक प्रकार के लसलसे पदार्थ मे आपस मे जुडे रहते हैं। लेकिन कुछ दिनो वाद इनका रग गहरा भूरा हो जाता है।

कुछ समय वीतने पर अडे फूटते हैं और प्रत्येक अडे में से एक शिशुकीट (Larva) निकलता है। यह लगभग एक मिलीमीटर लवा होता है और इसका शरीर भी सिर, वक्ष तथा उदर इन तीन भागो मे वँटा रहता है। शिशुकीट का सिर वडा होता है जिसके अगले सिरे पर दो स्पर्श सूत्र (Antennae) रहते है। मुखद्वार के दोनो ओर एक-एक वालो की कूँची (Brush) होती है जिसको पानी मे तेजी से चलाकर यह पानी में वहते हुए खाद्यपदार्थ के छोटे-छोटे टुकडो को अपने मुख तक पहुँचा देता है। आरभ मे शिशुकीट वहुत छोटा रहता है, लेकिन ६–७ दिन में ही यह वढकर लगभग आधा इच का हो जाता है। इसके वाद यह मूककीट (Pupa) मे परिवर्तित हो जाता है। मूककीट के उदर मे नौ खड होते हैं जिसमे से आठवे खड मे सुफने (Fins) का

एक जोडा रहता है जो उसके पानी में तैरने में सहायक होता है। इसको साँस लेने के लिए बार-बार पानी से ऊपर आना पडता है। इस प्रकार दो-तीन दिन के अन्दर मूककीट अपने खोल के भीतर प्रौढ मच्छर वन जाता है और खोल फाडकर उसके बाहर निकल आता है। बाहर निकलने पर वह १०-१५ मिनट तक उसी खोल पर पडा रहता है, फिर टाँगो और पखो के सूख जाने पर हवा में उड जाता है।

मक्खी

(HOUSE FLY)

जिस प्रकार चिडियो में गिद्ध और जानवरो म गीदड मेहतर कहलाते हैं, उसी प्रकार कीडो में भी कुछ ऐसे हैं जिनका मुख्य भोजन गदी चीजें है। हमारे घरो में रहनेवाली मक्खी इन गदे कीडो मे सबसे आगे है।

अन्य मेहतर जीवो से इतना फायदा तो जरूर होता है कि गदी चीजो को खाकर वे हमे तरह-तरह की बीमारियो से बचा लेते हैं, लेकिन मक्खी जहाँ इतना फायदा करती है वही उससे हमारा चौगुना नुकसान भी होता है क्योकि इसके द्वारा गदी चीजें हमारे खाने तक पहुँच जाती हैं और हम तरह-तरह के रोगो के शिकार हो जाते हैं। मक्खी को हम सब रोज ही देखते हैं, इससे इसकी शकल-सूरत के बारे में ज्यादा बताने की जरूरत नही है।

अन्य कीडो की तरह मक्खी के भी छ पैर होते हैं और उसका शरीर सिर, वक्ष और उदर इन तीन हिस्सो में वॅटा रहता है। इसका सिर कत्थई, वक्ष हलका भूरा और उदर सिलेटी रग का रहता है जिस पर काली धारियाँ पडी रहती हैं। इसके मुँह के आगे एक सूँड-सी रहती है जिसके द्वारा मक्खी अपनी खूराक खीच लेती है। जब मक्खी रोटी के टुकडे पर या मिठाई पर बैठती है तो वह अपनी सूँड को उस पर लगाकर अपना थूक उस पर गिराती है जिससे वह नम हो जावे और मक्खी उसे चाट सके क्योकि मक्खी कोई चीज काट या कुतर नही सकती, न वह कोई कडी चीज खा ही सकती है। उसकी सूँड से तो घुली हुई तरल चीज ही सोखी जा सकती है।

मक्खी के सिर के ऊपरी भाग में दो सयुक्त नेत्र होते हैं जिनके अलावा सिर के ऊपरी भाग में तीन सरल नेत्र भी रहते हैं जिससे उसकी देखने की शक्ति बहुत विस्तृत

रहती है। इसके सिर के अगले भाग मे दो छोटे-छोटे स्पर्शसूत्र (Antennae) होते हैं।

मक्खी का वक्ष अडाकार होता है। इसके तीन जोड टाँगें होती है, जिनके सिरे गद्दीदार रहते है। इस गद्दी पर बहुत से सूक्ष्म और खोखले बाल रहते हैं जिनसे एक प्रकार का लसलसा पदार्थ निकलता रहता है। मक्खी इसी लसलसे पदार्थ की सहायता से छतो पर उल्टी चल सकती है। इसके वक्ष से जुडे हुए दो चौडे पारदर्शी तथा त्रिकोणाकार पख रहते है जो इसके बैठने पर सिकुडकर पीठ तथा उदर को ढक लेते हैं। उड़ते समय इसके पख फैलकर एक सेकेण्ड में ४०० बार चलते है जिससे एक प्रकार की भनभनाहट-सी सुनाई पडती है।
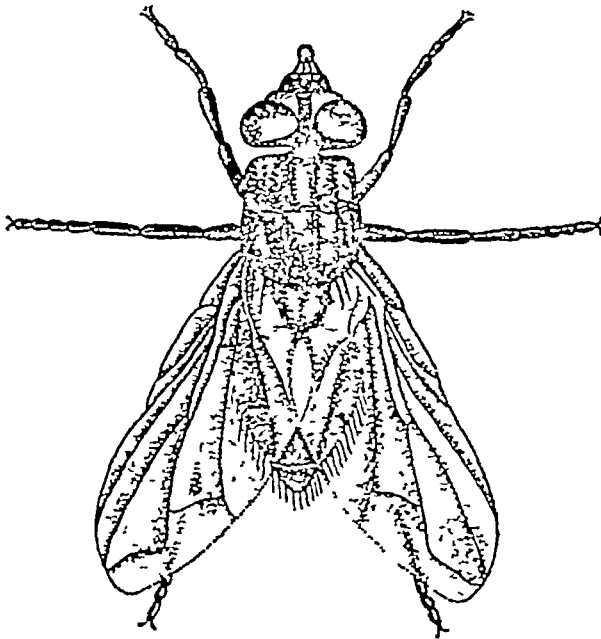
मक्खी

मक्खी का उदर भी अडाकार रहता है। नर का उदर आठ खडो का और मादा का नौ खडो का होता है। यह ठोस पदार्थ नहीं खा सकती, इसी से शक्कर आदि पर बैठकर यह पहले अपने थूक से उसे गीला कर लेती है, फिर अपनी सूंड से चूस लेती है। मक्खी के नर मादा की शकल-सूरत में बहुत कम अंतर रहता है लेकिन मादा नर से कुछ बडी होती है। मादा के जननाग के अन्तर्गत अडाशय और नर के जननाग के

दो वृपण (Testes) होते है। मक्खियाँ उडते समय मैथुन नही करती बल्कि इसके लिए इन्हे भूमि पर आना पडता है, जहाँ नर मादा पर चढ कर मैथुन-कार्य सम्पन्न करता है। इसमे एक-दो मिनट लग जाता है।

मैथुन के कुछ दिनो बाद मादा किसी कूडा-करकट मे अडे देती है जो सतह से लगभग आध इच नीचे फैला दिये जाते है। दिन भर मे यह डेढ सौ तक अडे देती है। मक्खी का जीवन बहुत थोडे समय का होता है। यह ५ से १० सप्ताह तक जीती है किन्तु इतने ही थोडे समय मे यह १०-१२ बार अडे दे डालती है जो सख्या मे डेढ दो हजार तक हो जाते है।

ये अडे चमकीले सफेद और नाप मे लगभग एक मिलीमीटर के होते है, जो ८ से २४ घटे बाद फूटते है। इन अडो से शिशुकीट (Larva) निकलते है जो दो बार अपने शरीर को खाल त्यागने पर बढकर दो मिलीमीटर से भी ज्यादा बडे हो जाते है। इनका प्रत्येक त्वचा-मोचन एक या दो दिनो बाद होता है और उसके बाद ये शिशुकीट लगभग आध इच के हो जाते है। इस दशा मे आने मे उन्हे चार-पाँच दिन से अधिक नही लगता और इस दशा को पहुँचकर वे कुछ समय तक विश्राम करके मूककीट (Pupa) का रूप धारण कर लेते है। मूककीट बनने पर उनका शरीर सिकुडने लगता है और उनके अगले और पिछले सिरे गोल हो जाते है। इनका रग गहरा भूरा हो जाता है और इनके शरीर की मुलायम त्वचा एक कठोर जलरोधी खोल मे परिवर्तित हो जाती है।

इस अवस्था मे मूककीट को गरमी मे ४-५ दिन तथा जाडो मे कई सप्ताह लग जाते है, जिसके उपरान्त वे ऊपरी खोल को फाडकर मक्खी के रूप मे बाहर निकल आते है। बाहर निकलने पर मक्खी पहले सफेद रग की रहती है और उसके पख छोटे होते है, लेकिन शीघ्र ही उसके पख फैलकर बडे हो जाते है और वह भूरे रग की हो जाती है और तब उसे हवा मे उडने मे कुछ देर नही लगती।

पिस्सू वर्ग

(ORDER SIPHONAPTERA)

इस छोटे से वर्ग मे सब प्रकार के पिस्सू आदि रखे गये है जो एक प्रकार से द्विपक्षी जीव है, किन्तु जिनके पख गायब हो जाने से उनको एक अलग वर्ग मे रखना

पड़ा है। इनका शरीर बहुत कुछ पिचका सा रहता है जिनकी टाँगे कूदने और फुदकने के उपयुक्त रहती हैं।

इनकी वैसे तो कई जातियाँ हैं, लेकिन यहाँ केवल एक प्रसिद्ध पिस्सू का ही वर्णन दिया जा रहा है।

पिस्सू

(FLEA)

पिस्सू छोटे पखहीन चपटे कीड़े हैं जिनकी लगभग ५०० जातियाँ सारे संसार में फैली हुई हैं। ये परजीवी-कीट हैं जो मनुष्यो, पशुओ तथा चिड़ियों के चिपके रहते हैं और उनका खून चूसते रहते हैं। ये प्राय १/२० इंच के होते हैं और एक स्थान से दूसरे स्थान पर फुदक-फुदककर जाते हैं।

पिस्सू की मादा बहुत से अंडे देती है जिनके फूटने पर बिना टाँगवाले छोटे शिशु-कीट निकलते हैं। ये शिशुकीट कुछ दिनों में खा-पीकर मोटे हो जाते हैं और अपने चारों ओर रेशमी धागे की कुसुआरी-सी बना लेते हैं जिसके भीतर वे मूककीट बनकर कुछ समय तक पड़े रहते हैं। इसके उपरान्त वे प्रौढ़ पिस्सू बनकर बाहर निकल आते हैं। इनका मुख्य भोजन दूसरे जीवों का रक्त है।

चिड़ियों के पिस्सू पशुओं के पिस्सुओं से भिन्न होते हैं और हम कभी न तो किसी पक्षी के शरीर पर पशु के पिस्सुओं को देख सकते हैं और न पशुओं के शरीर पर चिड़ियों के पिस्सुओं को। इन पिस्सुओं का यह स्वभाव होता है कि जैसे ही वह पशु या पक्षी, जिनके शरीर में ये रहते हैं मरता है, वैसे ही ये उनके शरीर को छोड़कर किसी दूसरे के शरीर में अपने रहने का स्थान बना लेते हैं।
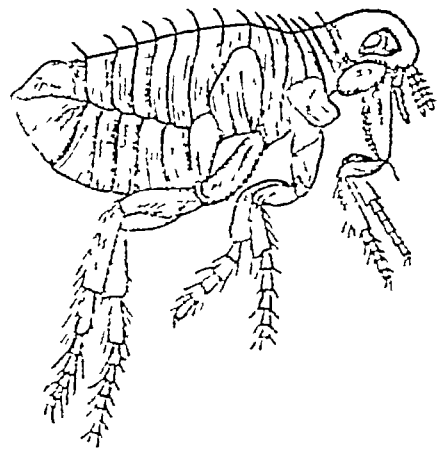
पिस्सू

चूहो के शरीर पर रहनेवाले पिस्सुओ में जब प्लेग फैलता है तो चूहा मर जाता है और उसके पिस्सू किसी दूसरे चूहे के शरीर पर चढ जाते हैं। इसी प्रकार जब सब चूहे मर जाते हैं तो ये प्लेग के कीटाणुओ से भरे हुए पिस्सू आदमियो के शरीर पर चढ जाते हैं और उसे काटकर उसके रक्त में प्लेग के कीटाणुओ को पहुँचा देते हैं। इस प्रकार इन छोटे-छोटे कीडो के द्वारा हजारो मनुष्यो की जान चली जाती है।

लूता श्रेणी

(CLASS ARACHNIDA)

लूता श्रेणी मे सब प्रकार की मकडियाँ, किलनियाँ और विच्छू आदि जीव एकत्र किये गये हैं। इनमें और कीट-पतगो में यह भेद रहता है कि जहाँ कीट-पतग के छ पैर रहते हैं वही ये आठ पैरोवाले होते हैं।

इनका शरीर दो मुख्य हिस्सो में बँटा रहता है—अगला हिस्सा और पिछला हिस्सा। अगले हिस्से मे सिर और घड एक ही में मिला-सा रहता है और पिछले हिस्से में, जिसे पेट का हिस्सा भी कहते हैं, इनका बाकी शरीर रहता है। ये सब कीट-पतग की तरह साँस लेने की नली से साँस नही लेते बल्कि इनके साँस लेने का तरीका भिन्न है। इनमे से थोडे ही ऐसे हैं जो पानी में रहते हैं। ज्यादा सख्या तो उन्ही की है जिन्होने खुश्की को अपना घर बना लिया है।

इनमें से अधिकाश मासभक्षी और रात्रिचारी हैं जो प्राय अकेले ही घूमना-फिरना पसन्द करते हैं। इनके नर-मादा में यह भेद रहता है कि नर मादा से छोटा होता है।

ये सब अडज जीव हैं जिनके बच्चे अडो के फूटने पर निकलते हैं। ये बच्चे १५वें दिन अपना खोल उतारकर कुछ दिनो पर अपने माँ-बाप के अनुरूप हो जाते हैं।

इस श्रेणी को इस प्रकार दो उपश्रेणियो में बाँटा गया है —

१ किग-क्रैब उपश्रेणी—Sub Class Delobranchiata

२ लूता उपश्रेणी—Sub Class Embolobranchiata

किग-क्रैब अपनी उपश्रेणी में अकेला ही है, लेकिन लूता उपश्रेणी के जीव कई वर्गों में विभाजित किये गये हैं जिनमें से कुछ के नाम ये हैं —

१ लूता वर्ग—Order Araneae

२ वृश्चिक वर्ग—Order Scorpionidae

३ वरुथी वर्ग—Order Acarina

यहाँ इन्ही वर्गो के प्रसिद्ध जीवो का वर्णन दिया जा रहा है।

किग-क्रैब उपश्रेणी

(SUB CLASS DELOBRANCHIATA)

इस उपश्रेणी मे केवल एक ही वर्ग है जो किग-क्रैब वर्ग कहलाता है। नीचे उसका वर्णन किया जा रहा है।

किग-क्रैब वर्ग

(ORDER XIPHOSURA)

यह वर्ग बहुत बडा नही है। इसमें सभी प्रकार के किग-क्रैब (King crab) रखे गये है जो अपनी बनावट और शकल-सूरत में अन्य जीवो से एकदम भिन्न है।

हमारे देश के छिछले समुद्रतटो पर ये काफी संख्या में पाये जाते है। वैसे अन्य देशो में भी इनकी ५-६ जातियाँ फैली हुई है।

यहाँ अपने यहाँ पाये जानेवाले प्रसिद्ध किग-क्रैब का वर्णन किया जा रहा है।

किग-क्रैब

(KING CRAB)]

किगक्रैब समुद्र के जीव है जो हमारे देश मे काफी संख्या में पाये जाते है।

इन जीवो का ऊपरी भाग गोल हड्डी का अर्धचन्द्राकार रहता है। बीच का या उदर का भाग इस अर्धचन्द्राकार हड्डी के नीचे जुडा रहता है। ऊपरी हिस्से का रग गाढा हरा या कलछौंह रहता है जिसमे एक प्रकार की चमक रहती है। इसी मे इसकी चार आँखें रहती है।

किंग-क्रैब अपना ज्यादा समय गहरे पानी में नीचे अपने को वालू में गाडकर बिताता है, जहाँ उसके दुश्मनो की सख्या कम रहती है। यह बालू में काफी तेजी से चल लेता है और पानी में भी अपनी दुम चलाकर तेजी से तैर लेता है। इसका मुख्य भोजन पानी के कीडे आदि है।

किंग क्रैब

इसकी मादा गरमियो में समुद्र-तट के पास आकर अडे देती है। ये अडे कई जगहो पर दिये जाते है जो लगभग एक-एक हजार की सख्या तक एक साथ रहते है। इन अडो के ऊपर एक चमडे जैसा मुलायम खोल चढा रहता है। अडे फूटने पर उनमें से जो बच्चे निकलते है वे बहुत चचल होते है और वे भी अपने को किंग-क्रैब की तरह बालू के भीतर गाडने मे उस्ताद होते हैं। ये पानी में भी बडी खूबी से तैरते हैं। इस अवस्था में इनके शरीर पर भाले-जैसी दुम का अभाव रहता है।
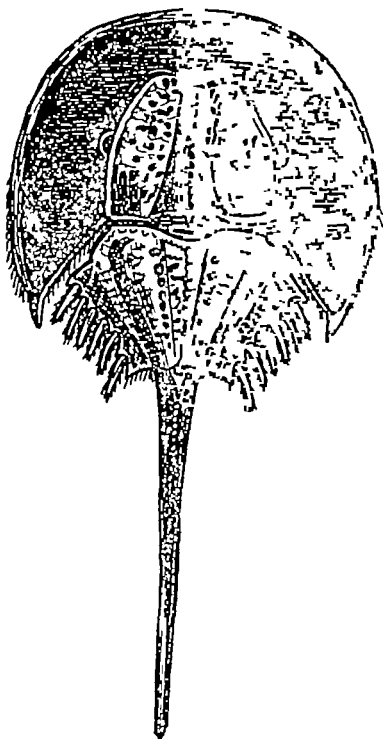
कुछ समय के उपरान्त इनके तेज और नोकीली दुम निकल आती है और धीरे-धीरे इनकी शकल बदलकर प्रौढ किंग-क्रैब जैसी होने लगती है। लगभग आठ वर्षो में ये प्रौढ हो जाते है और इनका ऊपरी भाग ९-१० इच लबा हो जाता है।

लूता उपश्रेणी

(SUB CLASS EMBOLOBRANCHIATA)

इस उपश्रेणी को कई वर्गो में विभाजित किया गया है जिसमें लूता-वर्ग, वृश्चिक-वर्ग तथा वरुथी-वर्ग प्रमुख हैं। ये सब आठ पैरवाले मासाहारी जीव है, जिन्हें हम अक्सर देखते रहते हैं। आगे इन वर्गों का सक्षिप्त वर्णन दिया जा रहा है।

लूता वर्ग

(ORDER ARANEAE)

लूता वर्ग काफी वडा है जिसमें ससार की हर तरह की मकडियाँ रखी गयी है। इन जीवो से हम सभी परिचित है और इन्हें हम जगल, वाग, वस्ती तथा खेतो और मैदानो मे भी देख सकते हैं।

मकडियाँ ससार के प्रत्येक भाग में पायी जाती है और इनकी लगभग १४,००० जातियो का अभी तक पता चल सका है।

यहाँ अपने यहाँ की एक मकडी का वर्णन किया जा रहा है क्योकि इन सब की आदतें प्राय एक-जैसी ही होती हैं।

मकडी

(GARDEN SPIDER)

मकडियाँ हमारे वहुत परिचित जीव है जिनकी लगभग १४ हजार जातियाँ सारे ससार में फैली हुई है।

इनका शरीर दो मुख्य भागो में विभक्त रहता है। पहले अर्थात् सिर के भाग मे इनकी आठ आँखे और दूसरे अर्थात् धड के भाग मे इनकी आठ टाँगे रहती हे। इनके शरीर के पिछले सिरे पर छ छोटी-छोटी घुडियो की शकल के कर्तनाग (Spinnerets) रहते है, जिनके द्वारा ये महीन रेशमी धागा निकालकर अपना जाला बुनती है। ये घुडियाँ पोली होती है और उनके नीचे तरल पदार्थ भरा रहता है। घुडियो मे छेद रहता है जिससे यह तरल पदार्थ वाहर निकलता है और हवा मे सूखकर रेशमी धागा वन जाता है। मकडियाँ अपने इच्छानुसार छेद को छोटा-वडा वनाकर धागे को भी मोटा-महीन वना लेती है।

मकडियो के पख नही होते। उनकी टाँगो के सिरे पर पजे रहते है जो इनके वहुत काम के होते है। इन्ही पजो से वे अपने शिकार को पकडती है और इन्ही से वे जाला वुनते समय रेशमी धागो को अलग-अलग रखती है। इतना ही नही, इन्ही पजो से वे अपने वदन को कघी करके उसे साफ-सुथरा भी रखती है।

मकडी के जवडे वहुत तेज और मजबूत होते हैं। इनके दाँत विपैले सर्पो की तरह पोले होते है जिनके नीचे विप की थैली रहती है। मकडी अपने शिकार के शरीर में इन्ही दाँतो को गडाकर विप भर देती है और उसे मार डालती है। मकडियाँ आपस में भी वहुत लडती है और एक दूसरे को मारकर खा जाती है।

मकडियो के स्पर्शसूत्र (Antennae) नही होते, लेकिन उनके मुख के पास टाँगो-जैसे दो हुक रहते हैं जिनसे वे अपने शिकार को पकडती है और जो उनके हाथो की तरह इस्तेमाल होते हैं।
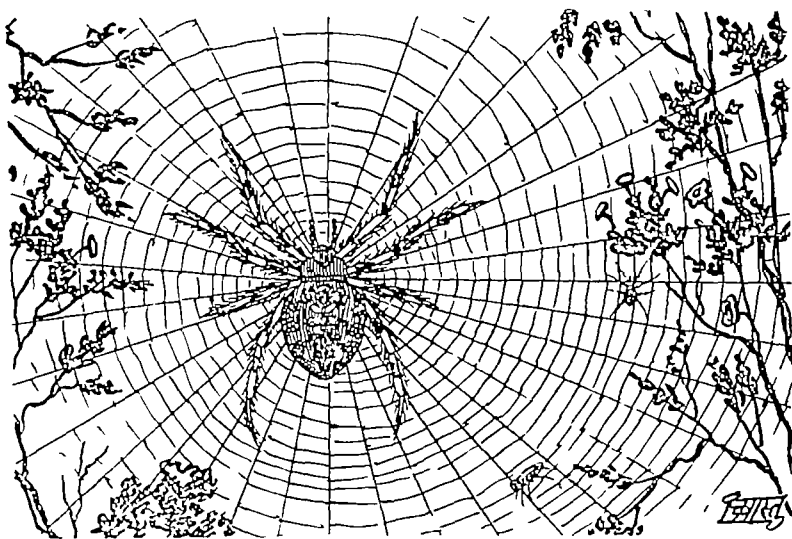
मकडी

मकडियो का अन्य कीडो की तरह शिशुकीट और मूककीटो में रूपान्तरण नही होता वल्कि अडा फूटने पर उसमें से जो वच्चा निकलता है वह कद में छोटा रहने पर भी मकडी की ही तरह रहता है। अडे फूटने पर वच्चे एक-दो दिन रेशमी धागो में लिपटे रहते हैं। उसके वाद वे इस रेशमी पोशाक को फाडकर वाहर निकल आते हैं।

मकडियो के जाले के वारे में कुछ कहे विना इनका वर्णन अधूरा ही रह जायगा।

हमारे बाग में रहनेवाली प्रसिद्ध मकडी, जिसका यहाँ वर्णन किया जा रहा है, हमारी हथेली से कुछ बडा जाला बुनती है। यह जाला उसके रहने का घर नही है बल्कि यह तो उसका शिकार फँसाने का जाल है जिसमे वह कीडे-मकोडो को फँसा-कर अपना पेट भरती है। वह अपने रहने के लिए तो थैलीनुमा घर बनाती है, जहाँ रात भर रहकर वह अपना सारा दिन जाले के आस-पास ही बिताती है।

जाला बुनने से पहले मकडी दो-चार मोटे धागो से जाले की बुनियाद बना लेती है जिसके सहारे जाल का ताना-बाना बुना जाता है। ये बुनियादी धागे एक डाल से दूसरी डाल तक मजबूती से कस दिये जाते है। उसके बाद वह जाले का बीच का हिस्सा बनाती है जहाँ से चारो ओर उसी प्रकार महीन धागे फैलाये जाते है जिस प्रकार गाडी के पहिये के बीच से चारो ओर पतली-पतली आरागज की लकडियाँ लगायी जाती है।

इतना कर लेने पर वह बीच से शुरू करके हर खाने को महीन धागे मे भरकर जाले को पूरा कर देती है। जाले के बीच में कुछ ऐसे धागे लगे रहते है जिन पर लस-लसा पदार्थ लगा रहता है। इन धागो को छूते ही कीडे के पख उसमे चिपक जाते है और वह जाले से बाहर नही जा सकता। जाले मे कीडे को फँसा देखकर मकडी वहाँ पहुँच जाती है और उसका खून चूस लेती है।

मकडी का जाला काफी दिनो तक रहता है क्योकि मकडी उसकी बराबर देख-भाल और मरम्मत करती रहती है।

वृश्चिक वर्ग

(ORDER SCORPIONIDEAE)

वृश्चिक वर्ग बहुत छोटा है जिसमे सब प्रकार के बिच्छू रखे गये है जो अपने विषैले डक के कारण बहुत प्रसिद्ध है। ये सब मासाहारी जीव है जिनके नर मादाओ से कद मे छोटे होते है।

हमारे यहाँ काले और भूरे रग के बिच्छू पाये जाते है लेकिन दोनो का स्वभाव एक-जैसा ही रहता है। भूरे बिच्छू २-३ इच के और काले ८-९ इच तक के पाये जाते है।

बिच्छू

(SCORPION)

बिच्छू का नाम किसने न सुना होगा ? साँप-बिच्छू और बर्र इन तीनो जहरीले जीवो का नाम सुनते ही हमे डर लगता है। साँप घर में कम ही दिखाई पडते है और बर्र का छत्ता भी हम दूर ही से देख लेते है लेकिन बिच्छू हमारे घरो के कोनो में इस तरह छिपा रहता है कि हम उसे जल्द देख नही पाते और कही यदि भूल से भी हमारा पैर उसे छू गया तो वह अपना जहरीला आँडा या दुम के सिरे का नोकीला हिस्सा हमारे बदन मे घुसेड ही देता है।

बिच्छू

बिच्छू के आँडे (डक) में बडा तेज जहर होता है जो हमारे शरीर में प्रवेश करते ही इतनी जलन और पीडा उत्पन्न करता है कि हम मारे दर्द के तडपने लगते है। फिर कई घटो बाद दवा-दारू करने पर यह दर्द कम होता है, लेकिन उसकी झनझनाहट कई दिनो तक बनी रहती है।

बिच्छू को हमने जरूर देखा होगा। हमारे यहाँ इनकी दो जातियाँ पायी जाती है—एक काले रग का होता है, दूसरा भूरे रग का। भूरे बिच्छू २-३ इच के और काले ८-९ इच तक के पाये जाते हैं। यह आठ पैरोवाला चपटा-सा जीव है जिसके अगले दोनो सँडसीनुमा पजे झीगे की तरह मजबूत और सिरे की ओर चपटे रहते है। इसके धड का पिछला हिस्सा पतला होकर इसकी दुम तक चला जाता है जहाँ सिरे पर इसका गोल आँडा रहता है, जो पीछे की ओर सुई की तरह नोकीला होता है। बिच्छू इसी नोक से दुश्मन के शरीर में उसी प्रकार विष प्रवेश करा देता है, जैसे साँप के पोले विषदतो से दूसरे के शरीर मे विष पहुँचा दिया जाता है।

बिच्छू का डक मारना हमारे लिए कष्टकर जरूर होता है, लेकिन यह बात हमें अच्छी तरह जान लेना चाहिये कि वे बिना दबाव में पडे अकारण ही डक नही

मारते। ये वैसे तो वहुत डरपोक और छिपकर रहनेवाले जीव है जिन्हे दिन की तेज रोशनी जरा भी नही भाती। इसी कारण ये प्राय घरो में, विलो मे, जूतो मे और ईट-पत्थर या मिट्टी के ढेरो मे रहकर अपना समय विताया करते है और हम इन्हे निकट रहने पर भी वहुत कम देख पाते है।

पहाडी प्रान्तो मे तो विच्छू प्राय पत्थर के टुकडो के नीचे ही छिपे रहते है लेकिन रेतीली या भुरभुरी मिट्टी मे ये अपने मजवूत पैरो से काफी गहरे विल खोद डालते है। इन्ही विलो मे सारा दिन विताकर ये सूर्यास्त होने पर अपने भोजन की तलाश मे वाहर निकलते है। इनकी निगाह वहुत तेज नही होती इसीलिए ये जल्दी-जल्दी इधर-उधर आ-जाकर अपने मजवूत सँडसीनुमा पजे से अपना शिकार पकडते है।

इनके मुख्य भोजन में कीडे-मकोडे और मकडियाँ आती है लेकिन इनको पकडने के लिए विच्छुओ को अपना डक नही इस्तेमाल करना पडता। इन सवको तो वे अपने पजो से ही पकडकर चट कर डालते है, लेकिन यदि उन्हें कोई वडा शिकार पकडना हुआ जो उनसे लडाई ठानने को तैयार हो गया तो उसके लिए वे अपना डक इस्तेमाल करते है और तव एक ही वार के डक प्रहार मे शिकार अशक्त हो जाता है।

वैसे तो विच्छू सीधे जीव है, लेकिन कभी-कभी दो नर विच्छू मादा के लिए वहुत विकट लडाई लडते है। जीतनेवाला विच्छू मादा के पास जाता है और तव दोनो आमने-सामने मुँह करके अपनी दुम उठाकर खडे होते है। नर वडे प्यार से अपने पजो से मादा के पजो को पकडकर पीछे की ओर खिसकता है और मादा उसका सहारा लेकर आगे की ओर वढती है। इसी प्रकार दोनो एक घटे तक आगे-पीछे खिसकते रहते है, उसके वाद दोनो जोडा वाँधकर अपना नया विल या नया घर वनाने मे लग जाते है।

लेकिन इतने प्रेम और स्नेह से प्रारभ होनेवाला जीवन वहुत स्थायी नही रहता और उनका अन्त दु खद ही होता है। इसका कारण यह है कि विच्छू की मादा कद मे नर से वडी होती है और नर पर क्रुद्ध होते ही वह उसे मारकर खा जाती है, लेकिन उसकी यह क्रूरता अपने नर ही तक सीमित रहती है। अपने वच्चो को वह वहुत प्यार करती है और उन्हें अपनी पीठ पर विठाकर घुमाया-फिराया करती है।

बिच्छू

(SCORPION)

बिच्छू का नाम किसने न सुना होगा ? साँप-बिच्छू और बर्रं इन तीनो जहरीले जीवो का नाम सुनते ही हमें डर लगता है। साँप घर में कम ही दिखाई पड़ते हैं और बर्रं का छत्ता भी हम दूर ही से देख लेते हैं लेकिन बिच्छू हमारे घरो के कोनो मे इस तरह छिपा रहता है कि हम उसे जल्द देख नही पाते और कही यदि भूल से भी हमारा पैर उसे छू गया तो वह अपना जहरीला आँडा या दुम के सिरे का नोकीला हिस्सा हमारे बदन में घुसेड ही देता है।

बिच्छू

बिच्छू के आँडे (डक) में बडा तेज जहर होता है जो हमारे शरीर में प्रवेश करते ही इतनी जलन और पीडा उत्पन्न करता है कि हम मारे दर्द के तडपने लगते हैं। फिर कई घटो बाद दवा-दारू करने पर यह दर्द कम होता है, लेकिन उसकी झनझनाहट कई दिनो तक बनी रहती है।

बिच्छू को हमने जरूर देखा होगा। हमारे यहाँ इनकी दो जातियाँ पायी जाती हैं—एक काले रग का होता है, दूसरा भूरे रग का। भूरे बिच्छू २-३ इच के और काले ८-९ इच तक के पाये जाते हैं। यह आठ पैरोवाला चपटा-सा जीव है जिसके अगले दोनो सँडसीनुमा पजे झीगे की तरह मजबूत और सिरे की ओर चपटे रहते हैं। इसके धड का पिछला हिस्सा पतला होकर इसकी दुम तक चला जाता है जहाँ सिरे पर इसका गोल आँडा रहता है, जो पीछे की ओर सुई की तरह नोकीला होता है। बिच्छू इसी नोक से दुश्मन के शरीर मे उसी प्रकार विप प्रवेश करा देता है, जैसे साँप के पोले विपदतो से दूसरे के शरीर में विप पहुँचा दिया जाता है।

बिच्छू का डक मारना हमारे लिए कष्टकर जरूर होता है, लेकिन यह बात हमें अच्छी तरह जान लेना चाहिये कि वे बिना दवाव मे पड़े अकारण ही डक नही

मारते। ये वैसे तो वहुत डरपोक और छिपकर रहनेवाले जीव है जिन्हें दिन की तेज रोशनी जरा भी नही भाती। इसी कारण ये प्राय घरो मे, विलो मे, जूतो मे और ईंट-पत्थर या मिट्टी के ढेरो में रहकर अपना समय विताया करते है और हम इन्हे निकट रहने पर भी वहुत कम देख पाते है।

पहाडी प्रान्तो में तो विच्छू प्राय पत्थर के टुकडो के नीचे ही छिपे रहते है लेकिन रेतीली या भुरभुरी मिट्टी में ये अपने मजवूत पैरो से काफी गहरे विल खोद डालते है। इन्ही विलो में सारा दिन विताकर ये सूर्यास्त होने पर अपने भोजन की तलाश मे वाहर निकलते है। इनकी निगाह वहुत तेज नही होती इमीलिए ये जल्दी-जल्दी इधर-उधर आ-जाकर अपने मजवूत सँडसीनुमा पजे से अपना शिकार पकडते है।

इनके मुख्य भोजन मे कीडे-मकोडे और मकडियाँ आती है लेकिन इनको पकडने के लिए विच्छुओ को अपना डक नही इस्तेमाल करना पडता। इन सवको तो वे अपने पजो से ही पकडकर चट कर डालते है, लेकिन यदि उन्हें कोई वडा शिकार पकडना हुआ जो उनसे लडाई ठानने को तैयार हो गया तो उसके लिए वे अपना डक इस्तेमाल करते है और तव एक ही वार के डक प्रहार से शिकार अशक्त हो जाता है।

वैसे तो विच्छू सीधे जीव है, लेकिन कभी-कभी दो नर विच्छू मादा के लिए वहुत विकट लडाई लडते है। जीतनेवाला विच्छू मादा के पास जाता है और तब दोनो आमने-सामने मुंह करके अपनी दुम उठाकर खडे होते है। नर वडे प्यार मे अपने पजो से मादा के पजो को पकडकर पीछे की ओर खिसकता है और मादा उसका सहारा लेकर आगे की ओर वढती है। इसी प्रकार दोनो एक घटे तक आगे-पीछे खिसकते रहते है, उसके वाद दोनो जोडा वाँधकर अपना नया विल या नया घर वनाने मे लग जाते है।

लेकिन इतने प्रेम और स्नेह से प्रारभ होनेवाला जीवन वहुत स्थायी नही रहता और उसका अन्त दु खद ही होता है। इसका कारण यह है कि विच्छू की मादा कद में नर से वडी होती है और नर पर क्रुद्ध होते ही वह उसे मारकर खा जाती है, लेकिन उनकी यह क्रूरता अपने नर ही तक सीमित रहती है। अपने वच्चो को वह वहुत प्यार करती है और उन्हे अपनी पीठ पर विठाकर घुमाया-फिराया करती है।

वरुथी वर्ग

(ORDER ACARINA)

ससार का शायद ही कोई ऐसा स्थान हो जहाँ कुटकियाँ न पायी जाती हो। इनकी हजारो जातियाँ सारी पृथ्वी मे फैली हुई है जिनमे से कुछ पानी में भी रहती है।

ये बहुत छोटे कद की होती है और इनके शरीर की बनावट बहुत कुछ इनके रहन-सहन के अनुसार ही होती है। ये सब अडज जीव है जो अडो से पैदा होते है।

यहाँ एक कुटकी तथा किलनी का वर्णन किया जा रहा है।

कुटकी

(ITCH MITE)

कुटकी को वरुथी भी कहा जाता है। ये आकार मे एक मिलीमीटर से कम और किलनियो से छोटी होती है और मनुष्यो की त्वचा को छेदकर उनके शरीर में खुजली का रोग फैला देती है। ये सारे ससार मे फैली हुई है।

कुटकियाँ अडो से पैदा होती है। ये परजीवी कीट है जो दूसरे प्राणियो के शरीर मे रहते है और उसी के शरीर मे सैकडो की सख्या मे अडे देते हैं। अडे देने के बाद मादा कुटकी मर जाती है। ये अडे लगभग एक सप्ताह बाद फूटते है जिनसे शिशुकीट (Nymph) निकलते है जो कई बार त्वचामोचन (Moulding) करके प्रौढ कुटकी का रूप धारण करते है। इसमे लगभग एक महीने का समय लग जाता है। पहले शिशुकीटावस्था मे इनके छ टाँगे रहती है,लेकिन प्रौढ हो जाने पर ये आठ पैरो की हो जाती है। इनकी टाँगो के सिरे चूपको का काम करते है जिनसे ये दूसरे जीवो के शरीर पर बडी मजबूती से चिपकी रहती है। इनका मुख कुतरनेवाले कीडो की तरह होता है जिसको त्वचा मे गडाकर ये रक्त चूसा करती है और उसके शरीर मे खुजली पहुंचा देती है।

किलनी

(TICK)

किलनियाँ परजीवी कीट है जो दूसरे जानवरो के शरीर पर रहकर अपना जीवन बिता देती है। ये प्राय कुत्तो, बैलो और भेड आदि जानवरो की त्वचा पर पायी जाती

हैं और कई जातियो की होती हैं। इनकी मादा नर की अपेक्षा वडी होती है। स्पर्श-सूत्रो के अभाव के कारण इनकी टाँगो की पहली जोडी के सिरे इनके स्पर्श-सूत्र (Antennae) का काम देते हैं।

किलनियाँ चपटे शरीर की होती हैं जिनका जवडा कुतरनेवाले जीवो की तरह रहता है। इसीको दूसरे जीवो के शरीर में गडाकर वे उनका रक्त पान करती हैं।

गर्भाधान के बाद नर किलनी (किलना) मर जाती है और मादा अडे देने से पहले रक्त चूसकर फूलने लगती है। वह काफी फूलने पर त्वचा छोडकर अलग गिर पडती है और किसी सुरक्षित स्थान पर
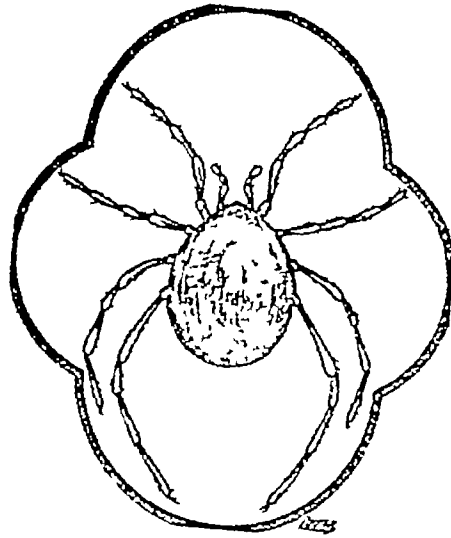
किलनी
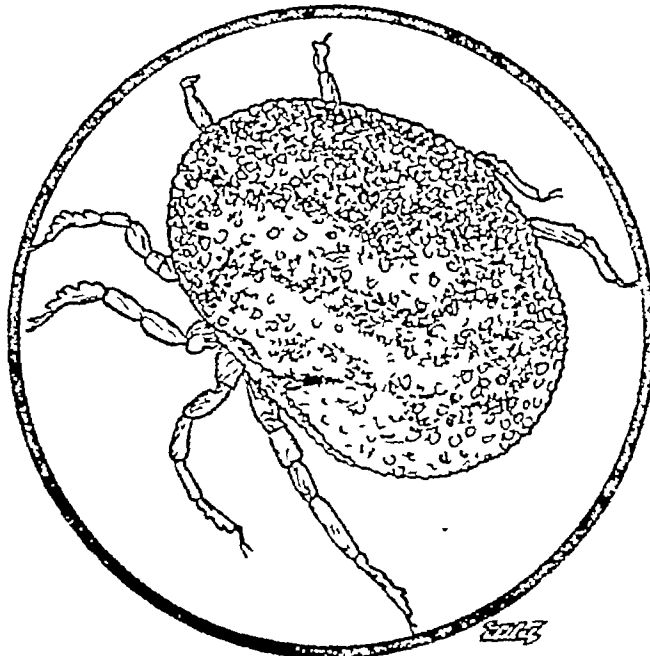
जाकर छिप जाती है। इसके आठ-दस दिन बाद वह अडा देना प्रारभ कर देती है। जो कई दिनो तक बराबर चलता रहता है। दो-तीन सप्ताह के बाद प्रत्येक अडे से एक-एक शिशुकीट (Nymph) निकलता है जिसके केवल तीन जोड टाँगें रहती है। ये शिशुकीट किसी जानवर की त्वचा से चिपक जाते है जहाँ कुछ समय बाद उनका त्वचा-मोचन (Moulding) होता है। इसके बाद उनके चार जोड टाँगें हो जाती है और फिर एक और त्वचामोचन के बाद ये प्रौढ होकर किलनी बन जाती है।

भाग २

मेरुदंडीय उपजगत

SUB KINGDOM VERTEBRATA

खंड ८

मेरुपृष्ठीयजीव विभाग

(PHYLUM CHARDATA)

ससार के सारे जीवो को विद्वानो ने दो मुख्य भागो मे विभक्त किया है —

१ अमेरुपृष्ठीय प्राणी

२ मेरुपृष्ठीय प्राणी

अमेरुपृष्ठीय प्राणी वे है जिनके शरीर मे रीढ की हड्डी या मेरुदड नही होता और मेरुपृष्ठीय प्राणियो का विशेष गुण यह होता है कि उनका शरीर रीढ की हड्डी से युक्त रहता है।

लेकिन इन दोनो प्रकार के जीवो के बीच के कुछ ऐसे जीव भी है जो न तो मेरुदडीय जीवो की श्रेणी मे आते है और न उन्हे अमेरुदडीय जीव ही कहा जा सकता है। इन प्राणियो को दोनो प्रकार के जीवो को जोडनेवाली कडी अवश्य कहा जा सकता है, क्योकि उनके शरीर मे जो एक कठोर शलाका-सा नोटोकार्ड (Notocard) रहता है, वह मेरुदड का प्रारम्भिक रूप कहा जा सकता है । इनको देखकर हमे यह स्पष्ट हो जाता है कि किस प्रकार बिना रीढवाले जीवो मे पहले नोटोकार्ड का विकास हुआ और फिर किस प्रकार ये नोटोकार्डवाले जीव विकसित होकर मेरुदडीय जीव बन गये।

वास्तविक मेरुदडीय-जीवो के उपविभाग (Phylum Chardata) के वर्णन मे पहले हमे सक्षेप मे इन नोटोकार्डवाले जीवो के बारे मे कुछ जान लेना चाहिये जो तीन उपविभागो मे इस प्रकार बाँटे गये है—

१ हेमीकार्डेटा उपविभाग—Sub Phylum Hemichardata

२ यूरोकार्डेटा उपविभाग—Sub Phylum Urochardata

३ केफलोकार्डेटा उपविभाग—Sub Phylum Cephlochardata

हेमीकार्डेटा उपविभाग
(SUB PHYLUM HEMICHARDATA)
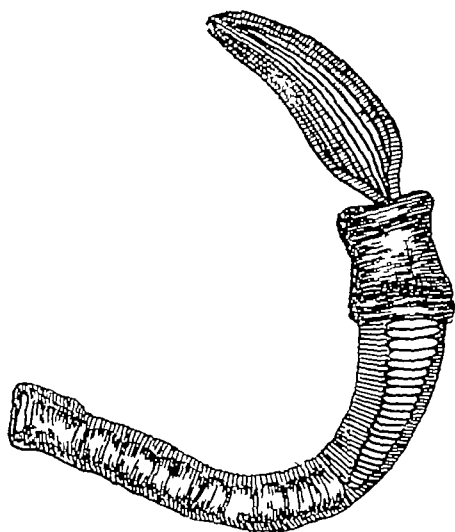
बैलानोग्लोसेस

इस उपविभाग के अन्तर्गत वे जीव आते हैं जिनका शरीर कोमल और कृमि के आकार का लबा होता है। इन जीवो के नोटोकार्ड प्रारम्भिक अवस्था मे कीचड मे ही गडे रहते है।

इनमें वैलानोग्लोसस (Balanoglossess) नाम का जीव वहुत प्रसिद्ध है।

यूरोकार्डेटा उपविभाग
(SUB PHYLUM UROCHARDATA)
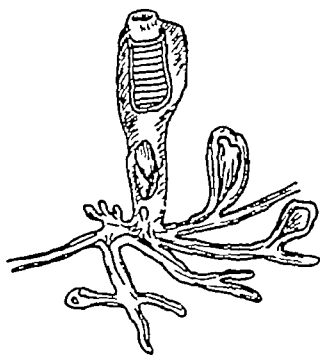
एसीडियन

इस उपविभाग के जीवो का आकार थैली-जैसा होता है जिनके ऊपरी भाग पर दो छिद्र रहते है। इनमें से अधिकाश जीव पत्थर की चट्टानो पर चिपके रहते हैं।

इनमें एसीडियन (Ascidian) नाम का जीव सबसे प्रसिद्ध है। इसे ट्यूनीकेट (Tunicate) भी कहा जाता है। इसका शैशवकाल मेंढको की तरह टैडपोल (Tadpole) अवस्था में वीतता है।

उस समय इनके लवी पूँछ रहती है जिसमे नोटोकार्ड मौजूद रहता है, लेकिन उस अवस्था को पार करने पर इनकी पूँछ और नोटोकार्ड सभी लुप्त हो जाते है और ये जीव थैली का आकार ग्रहण करके किसी चट्टान मे चिपक जाते हैं।

कैफिलोकार्डेटा उपविभाग

(SUB PHYLUM CAPHLOCHORDATA)

इस समुदाय के प्राणी पिछले दोनो समुदाय के प्राणियो से अधिक विकसित होते हैं। उनकी शक्ल मछली की तरह मूच्याकार होती हे और उनके शरीर मे नोटोकार्ड सदैव उपस्थित रहता है।

इस उपविभाग का सबसे विख्यात प्राणी ऐम्फीआक्सस (Amphioxus) है जो समुद्र के छिछले पानी मे पाया जाता है। यह आकार में मछली-जैसा होता और इसके शरीर की लवाई डेढ-दो इच से ज्यादा नही होती। इसका शरीर चपटा और पारदर्शी रहता है।
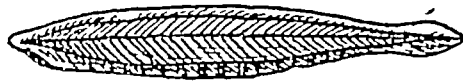
ऐम्फीआक्सस

ये जीव ज्यादातर अपने शरीर के पिछले हिस्से को बालू मे गाड लेते है और पानी मे मुँह खोले पडे रहते हैं। पानी के साथ भोजन के जो छोटे-छोटे कण इनके मुँह मे चले जाते है उन्ही से इनका पोषण होता है।

इन तीनो उपविभागो के पश्चात् हमारे वास्तविक मेरुपृष्ठीय-जीव आते है जिनके शरीर मे पूर्ण विकसित मेरुदड होता है। इन सब जीवो को मेरुपृष्ठीय-उपविभाग के अन्तर्गत रखा गया है, जिनकी कुछ विशेषताये नीचे दी जाती है —

१ इन जीवो में नोटोकार्ड का स्थान मेरुदड ले लेता है जो अनेक टुकडो के मिलने से बनता है।

२ इन जीवो के शरीर के भीतर कडी हड्डियो का ककाल रहता है।

३ इन जीवो का हृदय शरीर के अधोभाग (Ventral Side) मे स्थित रहता है।

४ इनके उपागो में केवल दो जोडे रहते है जो मछलियो मे वक्ष पक्ष (Pectoral Fin) तथा अध पक्ष (Ventral Fin) के रूप में देखे जा सकते है।

५ इन जीवो के पृष्ठभाग मे एक चेतना रज्जु (Nerve cord) रहती है जिसका अगला सिरा फैलकर इनके मस्तिष्क का निर्माण करता है।

६ इन सबका सिर स्पष्ट रहता है और उसमे के अवयव भी साफ जाहिर होते रहते है।

७ इनके दोनो जबडो के बीच मे एक कोर सधि (Hinge joint) रहती है जिससे ये प्राणी अपना मुख खोल और बद कर सकते है।

८ इनमें हीमोग्लोबिन (Haemoglobin) सदैव रुधिर कोशाओ में मिलता है।

मेरुपृष्ठीय उपविभाग

(SUB PHYLUM VERTEBRETA)

मेरुपृष्ठीय जीवो के इस उपविभाग मे ससार के सभी मेरुदडीय जीव आ जाते है, जिनके खास-खास गुणो का उल्लेख ऊपर हो चुका है। इसमे सब प्रकार की मछलियाँ, उभयचर, सरीसृप, चिडियाँ तथा स्तनपायी जीव है जो एक दूसरे से इतने भिन्न है कि इनको अलग-अलग सात श्रेणियो मे इस प्रकार बाँटा गया है —

१ चूषमुखी मत्स्य श्रेणी— Class Marsipobranchii

२ कोमलास्थि मत्स्य श्रेणी—Class Selachii

३ दृढास्थि मत्स्य श्रेणी— Class Pisces

४ उभयचर श्रेणी— Class Amphibia

५ सरीसृप श्रेणी— Class Reptilia

६ पक्षि श्रेणी— Class Aves

७ स्तनपायी श्रेणी— Class Mammilia

चूपमुखी मत्स्य श्रेणी

(CLASS MARSIPOBRANCHII)

इस श्रेणी में सर्प के आकार की उन थोडी-सी मछलियो को रखा गया है जो दूसरी सब मछलियो से कई बातो मे भिन्न है।

ये मछलियाँ बाम (Eel) की तरह सर्पाकार होती है जिनके दोनो बगल गलफडो की जगह दो शिगाफ से कटे रहते है। इनकी दुम के पास एक पृष्ठ-पक्ष (Dorsal Fin) या पीठ का सुफना भर रहता है जिसमें काँटे नही होते। इस सुफने के अलावा इनके शरीर पर और कही किसी प्रकार के सुफने (Fins) नही रहते। इनका शरीर चिकना और बिना सेहर के रहता है।

इन प्राणियो का मुख गोल छत्ते-जैसा होता है जिसमे बहुत-से दाँत रहते है। इनकी जबान भी मोटी, दलदार और गोल होती है जिस पर बहुत कडे शल्क रहते हैं। अपनी इस मुग्दर के आकार की जबान को आगे-पीछे चलाकर ये जीव दूसरी मछलियो का मास नोचकर अपना पेट भरते है।

इनके शरीर की अन्तर्रचना भी साधारण मछलियो से भिन्न रहती है। इनकी रीढ पूर्ण रूप से विकसित नही होती। उसे नोटोकार्ड और मेरुदड के बीच की अवस्था कहा जा सकता है और उसे देखते हुए यदि इन जीवो को एक प्रकार का अविकसित मत्स्य कहा जाय तो अनुचित न होगा। इनमें लैम्प्रे नाम का जीव बहुत प्रसिद्ध है जो समुद्रो मे और कही-कही नदियो मे भी पाया जाता है।

इसके बाद हमारी साधारण मछलिया आती है जो नीचे दी हुई दो श्रेणियो मे विभक्त की गयी है—

१ कोमलास्थि-मत्स्य श्रेणी—Class Selachii

२ दृढास्थि-मत्स्य श्रेणी—Class Pisces

मछलियो का काँटा कहलाता हे, इसका पृष्ठ-पक्ष (Dorsal Fin) ओर नीचे का सुफना गुह्य-पक्ष (Anal Fin) कहलाता है। ये दोनो वैसे तो मछलियो को अपना सतुलन कायम रखने मे मदद देते है, लेकिन कुछ मछलियाँ इनको इधर-उधर चला कर पानी मे थोडा आगे भी वढ लेती है। दुम का सुफना जो पुच्छपक्ष (Caudal Fin) कहलाता हे वास्तव मे मछलियो को पानी मे आगे वढाता हे। मछलियाँ आगे वढने के लिए अपनी दुम को इधर-उधर वडी तेजी से चलाती है जिससे उनका शरीर पानी मे आगे की ओर वढता चला जाता है। पेट पर के दोनो वगल के सुफने ऊपर और नीचे के सुफनो से कही अधिक मछलियो का सतुलन कायम रखते है, नही तो मछलियाँ पानी मे उलटी हो जायँ। यही कारण हे कि मर जाने पर जव मछलियो के सुफने की हरकत वद हो जाती हे तो हम उनको पानी मे उलटी वहते देखते है। पेट पर के इन सुफनो को हम अध पक्ष (Ventral Fin) कहते है। आगे के सुफने, जो गलफड के पास दोनो ओर रहते है, वक्षपक्ष (Pectoral Fin) कहलाते है। ये मछलियो के सन्तुलन मे थोडी मदद जरूर करते है, लेकिन इनका मुख्य काम मछली का रुख वदलना ओर उसकी चाल को रोकना होता है। कुछ मछलियाँ इन सुफनो से अध पक्ष की तरह तैरने का काम लेती है और इन्हे डाँड की तरह चलाकर तैरती है।

मछलियो का शरीर कभी-कभी तो एक प्रकार की खाल से ढका रहता ह ओर कभी-कभी उस पर एक तरह के कडे छिलके या शल्क रहते है जो सेहर या सेल्हर (Scales) कहलाते है। ये सेहर एक दूसरे पर इस तरह चढे रहते है जैसे घर की छतो पर खपडे छाये रहते है। इनसे मछलियो के शरीर की रक्षा तो होती ही हे, साथ ही साथ पानी मे चलते समय भी ये उनके सहायक होते है क्योकि सेहरो पर एक प्रकार का राल-सा तरल पदार्थ निकलता हे जिससे मछलियो के शरीर की ऊपरी सतह वहुत चिकनी ओर फिसलनेवाली हो जाती हे। शत्रुओ से बचने के लिए ही प्रकृति ने यह सहूलियत इन निरीह जीवो को दी ह। यह चिपचिपा पदार्थ सिफ सेहरवाली मछलियो को ही मिला हो सो वात नही हे, विना सेहरवाली मछलियाँ भी इससे वचित नही रहती।

यह तो प्रसिद्ध वात ह कि मछलियाँ पलक नही भाँज मकती। इसका कारण यह है कि उनकी आँखो पर पलके ही नही होती। उनकी आँखो मे हमेशा पानी भरा रहता ह जो उन्हे गदगी से मुक्त रखता ह। उनकी आँखो की पुतलिया वडी होती हे क्योकि उन्हे पानी के भीतर धूमिल रोशनी मे देखना पडता ह। वे पानी

से बाहर होते ही कुछ नही देख पाती और पानी मे भी उनको एक दो फुट से ज्यादा दूर की चीज नही दिखाई पडती।

मछलियो के कान का बाहरी भाग नही रहता क्योकि हम लोगो की तरह उनके कान मे सीधे आवाज नही जाती। होता यह है कि ध्वनि की लहरे पानी के जरिये उनके कान के भीतरी हिस्से मे पहुँचकर उन्हे आवाज की खबर दे देती है। मछलियो के नाक के छिद्र साफ जाहिर होते है, लेकिन वे उनके साँस लेने के लिए नही बल्कि सूँघने के काम आते है, हालाँकि मछलियो की सूँघने की शक्ति बहुत क्षीण होती है।

वैसे तो मछलियो के सारे शरीर की त्वचा मे स्पर्श-ज्ञान रहता है, लेकिन उनके ओठो के अलावा कीचड मे रहनेवाली कुछ मछलियो के बडी-बडी मूँछे होती है। कीचड मे जहाँ उनकी आँखे काम नही करती वहाँ उनकी ये मूँछे ही उनकी स्पर्शेन्द्रिय का काम देती है। इन्ही के सहारे वे कीचड मे बिना किसी दिक्कत के इधर-उधर घूमती-फिरती रहती है। सेहरवाली मछलियो के शरीर मे शल्क-हीन मछलियो के शरीर से कम स्पर्श-ज्ञान रहता है। लेकिन उनके दोनो बगल जो एक या दो धारियाँ पडी रहती है वे ही उनकी स्पर्शेन्द्रियाँ है। इन धारियो को हमारे यहाँ सिलाई की पट्टी या बगल की लकीर (Lateral Line) कहा जाता है।

कुछ मछलियो के पेट मे लबे बैलून की तरह हवा की थैली रहती है जो पटका (Bladder) कहलाती है। इसके सहारे मछलियो को पानी की सतह के पास टँगी रहने मे कोई दिक्कत नही पडती। होता यह है कि मछलियो के खून मे एक प्रकार की भाप निकलकर इस पटके मे भर जाती है जिससे इनका शरीर हल्का होकर ऊपर की ओर उठने लगता है। यही नही, वे उसी के सहारे पानी मे ऊपर-नीचे आती जाती है। हवा की यह थैली अक्सर सेहरवाली मछलियो के ही शरीर मे रहती है।

मछलियो की अनेक किस्मे होती है। इस कारण उनका आहार भी भिन्न-भिन्न रहता है। कुछ शाकाहारी होती है तो कुछ मासाहारी। रंगीन मछलियाँ अधिकतर शाकाहारी होती है जिनका मुख्य भोजन शाक-पात और काई वगैरह है। दातवाली मछलियाँ केवल मासाहार करती है, लेकिन अधिक सख्या उन्ही की है जो शाक और मास दोनो पर गुजर करती है।

मछलियाँ अडज प्राणी है जिनकी सतान-वृद्धि अडो द्वारा होती है। कुछ ऐसी भी है जो अडो को पेट मे ही रखकर बच्चे जनती है, लेकिन ऐसी मछलियो की सख्या

बहुत कम है। इनके अडे काफी सख्या मे नष्ट हो जाते है, नही तो हमारी पृथ्वी के जलाशय इनसे जल्द ही भर जाते। इनके बच्चे बहुत कुछ मेढक के बच्चो की तरह होते है जिनकी छाती के नीचे एक थैली-सी लटकती रहती है। इस थैली मे एक प्रकार का पीला पदार्थ रहता है जिससे इन बच्चो का पोषण होता रहता है। अडो की सख्या के बारे मे सहसा विश्वास नही होता, लेकिन कुछ मछलियाँ आठ से दस लाख तक अडे देती है। रोहू आदि हमारी परिचित मछलियाँ भी लगभग छ लाख तक अडे देती है। ये अड पानी की सतह पर तैरते रहते है जो तेज धूप मे दो सप्ताह मे और धूप न पाने पर एक महीने मे फूटते है।

मछलियो के रग के बारे में भी कुछ कहना जरूरी है क्योकि बिना उसका वर्णन किये मछलियो का बयान अधूरा ही रह जायगा। वैसे तो हम जिन मछलियो को अक्सर देखते है वे प्राय सिलेटी, कलछौंह या रुपहली रहती है जिससे वे पानी मे आसानी से छिप जायें और शत्रुओ से उनकी रक्षा होती रहे, लेकिन गहरे समुद्र की कुछ मछलियाँ ऐसी भी है जो अपनी रगीन पोशाक में किसी का सानी नही रखती। ये मछलियाँ प्राय प्रवालद्वीप की चट्टानो के आसपास के गहरे समुद्रो मे रहती है और इनको मीठे पानी मे देखना सम्भव नही है। चिडियो और तितलियो से इन्हे इसलिए अधिक सुन्दर कहा गया है कि एक तो ये पानी मे बहुत सुन्दर लगती है, दूसरे इनको अपना रग बदलने की जो सहूलियत प्रकृति की ओर से मिली है वह कम रोचक नही है। इन रगीन मछलियो की त्वचा मे बहुत ही छोटी-छोटी थैलियाँ रहती है जिनमे भिन्न-भिन्न रगो के सूक्ष्म कण भरे रहते है। इन थैलियो से सबधित छोटी-छोटी मासपेशियो के सिकुडने से इन थैलियो की तरह-तरह की शक्ले बदलती रहती है। इन मासपेशियो का सबन्ध मछलियो के मस्तिष्क से रहता है। जब मछलियाँ क्रुद्ध होती है, डरती या सतर्क होती है तो ये मासपेशियाँ उसी के अनुसार हरकत करती है, जिसके फलस्वरूप इन रग की थैलियो मे बदलाव होता है और मछलियो का रग बदल कर पास-पडोस की वस्तुओ के अनुरूप हो जाता है।

मछलियो की इतनी अधिक किस्में है कि उनके श्रेणी-विभाजन मे बडी कठिनाई पडती है। स्तनप्राणियो और सरीसृपो की सख्या तो ऐसी है जिसे आसानी से भिन्न-भिन्न भागो मे बॉटा जा सकता है लेकिन मछलियाँ, जिनकी सौ दो सौ नही बल्कि हजारो किस्मे है, कभी-कभी प्राणिशास्त्र के विद्वानो को उलझन मे डाल देती है। लेकिन फिर भी इनको इस प्रकार दो श्रेणियो मे बॉटा गया है —

१ कोमलास्थि-मत्स्य श्रेणी—Class Silachii

२ दृढास्थि-मत्स्य श्रेणी—Class Pisces

ये दोनो श्रेणियाँ कई वर्गो मे विभाजित की गयी है। यहाँ उनमे मे केवल उन्ही वर्गो को लिया गया है जिनमे की मछलियाँ हमारे यहाँ के समुद्रो और मीठे पानी के जलाशयो में पायी जाती है।

कोमलास्थि-मत्स्य श्रेणी

(CLASS SILACHII)

इस श्रेणी में वे मछलियाँ रखी गयी है जिनके शरीर के काँटे या हड्डियाँ अन्य मछलियो की तरह कडी न होकर कोमल और लचीली होती है। इसीलिए इन्हें कोमलास्थि या नरम हड्डीवाली मछलियाँ कहा जाता है। इनमे से अधिकाश समुद्र मे रहनेवाली मछलियाँ है जिनमे सब प्रकार की हागर (Shark) और सकुची मछलियाँ आती है।

ये सब साधारण मछलियो के बराबर विकसित नही हुई है। इसीलिए इनके गलफड अन्य मछलियो की तरह पर्तदार न होकर केवल एक शिगाफ की तरह रह गये है। इनका मुंह भी मछलियो की तरह ऊपर न होकर नीचे की ओर एक कटे हुए चीरे-सा जान पडता है।

इन्ही विभिन्नताओ के कारण इन मछलियो को, जिनमे सब प्रकार की हागर, सकुची और आरा-मछलियाँ शामिल है, एक अलग श्रेणी मे रखा गया है जो कई वर्गों, उपवर्गो तथा परिवारो मे विभक्त है।

यहाँ इनमे से केवल दो वर्गो का वर्णन किया जा रहा है, जिनमे अपने यहा की सब प्रसिद्ध मछलियाँ आ जाती है। ये दोनो वर्ग इस प्रकार है—

१ हागर वर्ग—(Order Pleurotremata) जिसमे सब प्रकार की हागरे रखी गयी है।

२. सकुची वर्ग—(Order Hypotremu) जिसमे सब प्रकार की सकुची और आरा-मछलियाँ रखी गयी है।

हागर वर्ग

(ORDER PLEUROTREMATA)

हागर वर्ग मे सब प्रकार की हागर Shark रखी गयी है जो समुद्र की निवासिनी है। ये कोमलास्थि या नरम हड्डीवाले जीव है जिनको अपनी मछलियो से, जिनके शरीर के कॉटे कडे होते है, अलग कर दिया गया है।

हागर के शरीर के कॉटे या हड्डियाँ उसी तरह कोमल होती है जैसी हम मछलियो के सुफनो मे देखते है । इन हागरो के, मछलियो की तरह हड्डियो के गलफड भी नही होते बल्कि उस जगह पर ५-७ लबे-लबे शिगाफ से कटे रहते है। इनके शरीर के भीतर मछलियो की तरह हवा की थैली भी नही होती, जिसमे हवा भरकर मछलियाँ पानी की सतह पर तैरती रहती है।

हागर के शरीर पर सेहर नही होते वल्कि उनका शरीर एक प्रकार की कडी खाल से ढका रहता है जिस पर दाने-दाने से उभरे रहते है। इनकी यह दानेदार खाल लकडी पर पालिश करने के काम आती है।

इनका मुख छिद्र सामने की ओर न होकर नीचे की ओर रहता है। इससे जब ये किसी शिकार को पकडती है तो उन्हे उलट जाना पडता है।

हागरे छोटी-बडी सभी तरह की होती है। इनमे कुछ तो ४०-५० फुट तक लम्बी हो जाती है। इनका मुख्य भोजन मास-मछली तथा समुद्रो के अन्य जीव है, लेकिन इनमे से कुछ ऐसी भी है जो आदमियो को भी पकडकर निगल जाती है।

हागर के शरीर का ऊपरी हिस्सा निलछोह या कलछौह रहता है, लेकिन इनका नीचे का हिस्सा मछलियो की तरह हमेशा सफेद या हलके रग का ही रहता है।

इनकी वैसे तो अनेक जातियाँ ससार मे फैली हुई है, लेकिन यहाँ केवल एक परिवार का वर्णन किया जाता है।

हागर परिवार

(FAMILY CARCHARIIDAE)

हागर परिवार काफी वडा परिवार है जिसमे सब तरह की छोटी बडी हागरे है। ये सब मासभक्षी जीव है जो सब तरह की मछलियो तथा अन्य समुद्री जीव-जतुओ से अपना पेट भरती है। इनमे से कुछ मनुष्यभक्षी हागरे भी है।

ये सब समुद्रो मे रहनेवाले प्राणी है, लेकिन कुछ हागरे ऐसी भी है जो बडी नदियो मे भी कुछ दूर चली आती है। इस परिवार मे बहुत-सी हागरे है जिनमे मे केवल दो प्रसिद्ध हागरो का वर्णन यहाँ किया जाता है जो हमारे यहाँ के समुद्रो मे पायी जाती है।

ददानी हागर

(BLUE SHARK)

ददानी हागर हमारे देश मे हिन्द महासागर में काफी सख्या मे पायी जाती है। यह छोटी जाति की हागर है जो लबाई मे दो ढाई फुट की होती है।

ददानी हागर

इसका ऊपरी रग गाढा सिलेटी और नीचे का सफेद रहता है। इसकी पीठ पर दो मुफने रहते है और एक मुफना नीचे रहता है।

यह हागर आदमियो पर हमला नही करती और इसका मुख्य भोजन मछलियाँ तथा अन्य समुद्री जीव है।

हथौडीसिरी हागर

(HAMMER HEADED SHARK)

इस हागर को हथौडी सिरी हागर इसी लिए कहते है कि इसका सिर हथौडे की तरह रहता है जिसके सिरे पर इसकी आँखे रहती है और अन्य हागरो की तरह इसका मुख छिद्र नीचे की ओर रहता है।

ये हागरें वैसे तो हिन्द महासागर में प्राय सभी जगह पायी जाती हैं, लेकिन इनकी अधिक सख्या मालावार समुद्री तट पर दिखाई पडती है। इनका ऊपरी रग

हथौडीसिरी हागर

सिलेटी या भूरापन लिये सिलेटी रहता है जो नीचे पहुँचते-पहुँचते हलका हो जाता है। इनके सुफनो का रग गहरा और चटक रहता है। इन हागरो की लम्बाई वैसे तो चार-पाँच फुट की होती है, लेकिन कही-कही ये १०–१२ फुट तक की भी पायी गयी हैं। इनका मुख्य भोजन मास-मछली है।

सकुची वर्ग

(ORDER HYPOTREMI)

इस वर्ग में सब प्रकार की सकुची और आरा-मछलियाँ रखी गयी है जिनका आकार लबा और गोल दोनो तरह का रहता है। ये ज्यादातर समुद्रो में पायी जाती हैं, लेकिन इनकी कुछ जातियाँ हमारे यहाँ की बडी नदियो में भी मिल जाती हैं।

टिड्डों का समूह

इनमें अविकतर गोल शरीरवाली मछलियाँ हैं जिनको प्रकृति ने उनकी आतमरक्षा के लिए लवी और मजवूत दुम दी है। इन मछलियो का मुख-छिद्र भी हागरों की तरह नीचे की ओर रहता है जिममे तेज दाँत रहते हैं। इन मछलियो के वगल के मुफने इनके सिर के पास जुडकर हाथी के कान मे जान पडते हैं।

इन मछलियो का अविक ममय पानी के नीचे की तह पर वीतता है, जहाँ ये कीचड मे इधर-उधर कछुओ की तरह चलकर अपना भोजन तलाशती हैं। इनके शरीर का ऊपरी हिस्सा कलछाँह और निचला एकदम मफेद रहता है।

इन मछलियो का मुख्य भोजन सीप, कटुए और अन्य ममुद्री जीव है क्योकि इनमे से कुछ लवी थूथन वाली जातियो को छोड अन्य मव पानी मे तेज तैरनेवाली मछलियो को नही पकड पाती।

इम वर्ग मे वैसे तो कई परिवार हैं लेकिन यहाँ केवल दो परिवारो का ही वर्णन दिया जा रहा है, जो इस प्रकार है—

१ सकुची परिवार—Family Trygonidac

२ आरा मछली परिवार—Family Pristidac

सकुची परिवार

(FAMILI TRYGONIDAE)

सकुची परिवार के जीव देखने मे कछुए की शकल-सूरत आकार के होते है जिनके लवी और कडी दुम रहती है। ये ज्यादातर ममुद्रो के निवामी हैं, लेकिन इनमे से कुछ ऐसे भी हैं जिन्हे वडी नदियो मे भी देखा जा मकता है।

इनका मुख्य भोजन कछुए, घोंघे, मीप और अन्य ममुद्री-जीव हैं। यहाँ अपने यहा की नदियो में पायी जानेवाली प्रसिद्ध मकुची मछली का वर्णन किया जा रहा है।

सकुची मछली

(STING RAY)

सकुची की शक्ल-सूरत को देखकर जल्द कोई इसे मछली नही कह मकता। इसके थाल-जैसे गोल और चपटे शरीर मे कोडे-जैसी दुम रहती है।

ये मछलियाँ हमारे यहाँ की बडी नदियो मे पायी जाती है और अक्सर बँधे पानी मे ही रहती है ।

सकुची का मुख-छिद्र नीचे की ओर एक शिगाफ-सा फटा रहता है जिसमें तेज दाँतो की कई पक्तियाँ रहती है । इनकी लबी दुम के बीच मे दो तेज काँटे रहते है ।
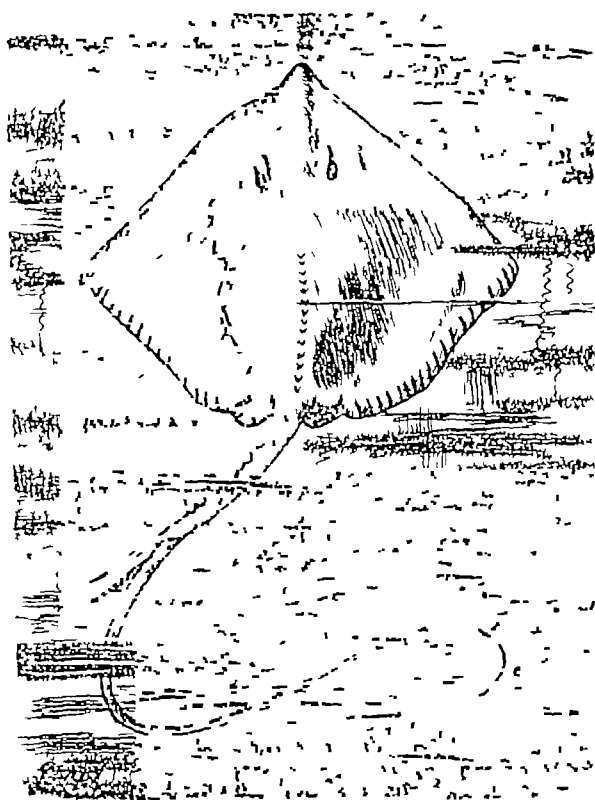
सकुची मछली

सकुची का ऊपरी हिस्सा गाढा सिलेटी रग का और नीचे का सफेद रहता है । इसकी पीठ की खाल पर कुछ दाने से उभरे रहते है ।

इसका मुख्य भोजन छोटी मछलियाँ, घोघे और कटुए आदि है । इसकी मादा

अंडे न देकर बच्चे जनती है जो कद मे छोटे होने पर भी शकल-सूरत मे प्रौढो से मिलते-जुलते होते है।

आरा-मछली परिवार

(FAMILY PRISTIDAE)

इस परिवार की मछलियो का थूथन बढकर इतना लंबा हो गया है कि वह आरे जैसा जान पडता है जिसके बीच मे पडकर किसी जीव का फिर निकल जाना संभव नहीं। यहाँ, इस परिवार की प्रसिद्ध आरा मछली का वर्णन किया जा रहा है।

आरा-मछली

(SAW FISH)

आरा-मछली को यह नाम उसके आरा जैसे लंबे थूथन के कारण मिला है। यह हमारे यहाँ की प्रसिद्ध समुद्री मछली है जो कभी-कभी नदियो मे भी कुछ दूर चली आती है।
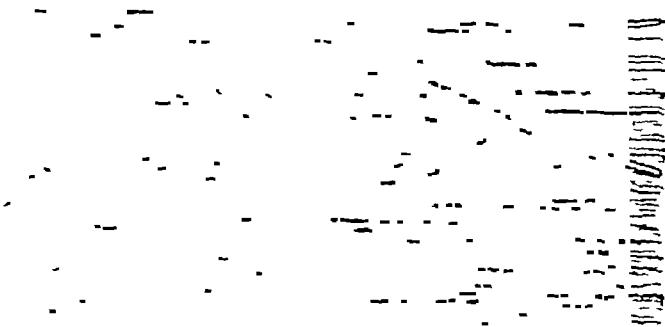
आरा-मछली

यह लगभग २० फुट लंबी होती है। इसके शरीर के ऊपर का रंग पीलापन लिये सिलेटी और नीचे का सफेदी मायल रहता है। इसके आरे-जैसे लंबे थूथन मे २३ से ३३ जोडी दाँत रहते है। इसी से यह बहुत भयंकर आक्रमण करती है।

इसका मुख्य भोजन मांस, मछली और कीडे-मकोडे आदि है।

खंड १०

दृढास्थिमत्स्य श्रेणी

(CLASS PISCES)

मछलियो की इस वडी श्रेणी मे हमारे यहाँ मीठे तथा खारे पानी मे पायी जानेवाली अन्य सब मछलियाँ रखी गयी है जिन्होने अपने को हागर से अलग करके अपने शरीर के भीतर कडे कॉटो या हड्डियो के ककाल का विकास कर लिया है। इसीलिए इन्हे दृढास्थिमत्स्य या कडी हड्डीवाली मछलियाँ कहा जाता है।

इन मछलियो ने अपने गलफडो का भी ऐसा विकास कर लिया है कि वे हागर की तरह शिगाफ न रहकर पर्तदार गलफड बन गये है जिनके सहारे ये पानी मे घुली हुई हवा द्वारा सॉस ले सकती है। इसके लिए मछलियाँ पानी को अपने मुँह मे भरकर उसे दोनो ओर के गलफडो से वाहर निकाल देती है और जव यह निकाला हुआ पानी इनके पर्तदार गलफडो से होकर वाहर निकलता है तो उसमे की रुधिर-शिराएँ पानी मे घुली हुई प्राणवायु (Oxygen) को सोख लेती है और इस प्रकार मछलियो के सॉस लेने की क्रिया चलती रहती हे।

इन मछलियो के जवडे तो काफी कडे हो ही गये है। कुछ के मुख मे तेज दॉत भी रहते है। इनमे से कुछ का शरीर चिकना रहता है तो कुछ के वदन पर कडे सेहर या शल्क रहते है जो एक-दूसरे पर खपरैल की तरह चढे रहते है।

मछलियो की यह श्रेणी वैसे तो तीन उपश्रेणियो मे वॉटी गयी है, लेकिन इनमे से दो उपश्रेणियो मे थोडी ही मछलियाँ है। तीसरी उपश्रेणी वहुत वडी हे जिसमे लगभग १५ हजार मछलियाँ आती है। इस उपश्रेणी को विद्वानो ने अनेक वर्गो मे विभाजित किया हे, लेकिन यहाँ केवल दस वर्गो का वर्णन किया जा रहा हे जिनमे हमारे यहाँ की प्राय सभी प्रसिद्ध मछलियाँ आ जाती है। इन दस वर्गो के नाम इस प्रकार है—

१ इल्लिश वर्ग —Order Isospondyti
२ रोहिप वर्ग —Order Ostariophysi
३ दड-मत्स्य वर्ग —Order Apodes
४ सपक्ष-मत्स्य वर्ग —Order Synentognathi
५ चन्द्र-मत्स्य वर्ग —Order Allotriognathi
६ अश्व-मत्स्य वर्ग —Order Solenichthes
७ शौल-मत्स्य वर्ग —Order Percomorphi
८ चूपिका-मत्स्य वर्ग—Order Discocephali
९ चिपिट-मत्स्य वर्ग —Order Haterosomata
१० सूर्य-मत्स्य वर्ग —Order Plectoglathi

अब आगे इन परिवारो का अलग-अलग वर्णन किया जा रहा है।

इल्लिश वर्ग

(ORDER ISOSPONDYTI)

इस वर्ग मे हमारी प्रसिद्व मछली हिलसा तथा उसके अन्य भाई-बन्धु रखे गये हैं जो बहुत-सी बातो मे एक-दूसरे से मिलते-जुलते है।

ये मछलियाँ नरम सुफनेवाली मछलियाँ कहलाती है और इनके शरीर के भीतर हवा की एक लबी-सी थैली रहती है। इनके पक्ष पेट के नीचे रहते है। इन मछलियो के शरीर पर छोटे-छोटे शल्क रहते हैं।

यह वर्ग वैसे तो कई परिवारो मे बाँटा गया है लेकिन यहाँ केवल इल्लिश परिवार (Family Chepeidae) और मोह परिवार (Family Nosopteridae) का वर्णन किया जा रहा है जिनमे की कुछ प्रसिद्व मछलियो को हम भली भाँति जानते हैं।

इल्लिश परिवार

(FAMILY CHEPEIDAE)

इस परिवार की मछलियो की लगभग २०० जातियाँ है जिनमें हिल्सा सबसे प्रसिद्व है। इसे विदेशो में "हेरिंग" (Herring) कहते हैं जहाँ यह लाखो टन के तौल मे प्रतिवर्ष बाहर भेजी जाती है।

यहाँ इसीलिए केवल हिलसा का ही वर्णन किया जा रहा है।

इस परिवार की मछलियाँ वैसे तो समुद्र की रहनेवाली है लेकिन इनमें से कुछ हमारी बडी नदियो में भी चढ आती है। इन मछलियो के शरीर पर बगल की धारी नही रहती और इनका पृष्ठ पक्ष काफी मोटा रहता है। इनमे से कुछ के पेट का हिस्सा कटावदार रहता है। इनके शरीर पर के सेहर छोटे-छोटे होते है।

हिलसा

(HERRING)

हिलसा हमारे यहाँ की बहुत प्रसिद्ध मछली है, जो समुद्र की निवासिनी होकर भी हमारे यहाँ की बडी नदियो में काफी दूर तक चली आती है ।
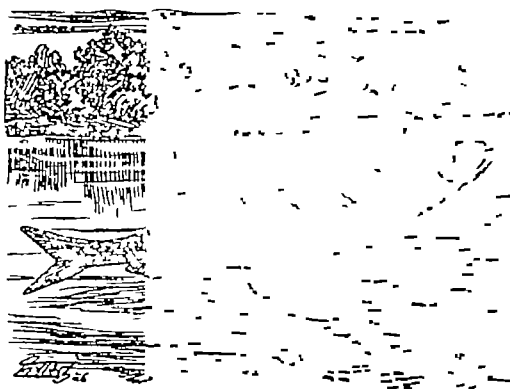
हिलसा

हिलसा का शरीर चपटा और पेट का हिस्सा पतला रहता है। इसके निचले हिस्से में दाँतो-से कटे रहते है जो सीने तक जाते-जाते समाप्त हो जाते है।

इसका रग सुनहला होता है जिसमें सुनहली और बैगनी झलक रहती है। ये लगभग १ फुट लबी होती है और इनका मास बहुत स्वादिष्ट होता है।

मोह परिवार

(FAMILY NOSOPTERIDAE)

इस परिवार में मोह आदि मछलियाँ है जो अपने चपटे शरीर और छोटे सेहर के कारण अन्य मछलियो से शकल-सूरत में भिन्न होती है।

इनकी वैसे तो कई जातियाँ है, लेकिन हमारे देश की बडी नदियो मे इनकी दो जातियाँ, पतरा और चीतल, काफी सख्या मे पायी जाती है। यहाँ पतरा का वर्णन किया जा रहा है।

मोह

(FEATHER BACK)

मोह को कही-कही इसके पतले शरीर के कारण पतरा भी कहा जाता है। यह हमारे यहाँ की नदियो की मछली है जो समुद्र-तट के खारे जलाशयो मे भी पायी जाती है।

मोह

इसके शरीर की बनावट बहुत चपटी होती है जो देखने मे तरबूज के फाँक-सी जान पडती है। इसके सारे शरीर पर छोटे-छोटे सेहर होते है जो सिर के ऊपर तक फैले रहते है। इसके पेट का अगला हिस्सा दानेदार रहता है।

इन मछलियो का रग रुपहला रहता है लेकिन उनकी पीठ गाढे रग की होती है। इनके सिर पर पीली झलक रहती है और सारा शरीर छोटी-छोटी सिलेटी चित्तियो से भरा रहता है। इन मछलियो की लबाई दो-ढाई फुट होती है जिसमे का ऊपरी हिस्सा बहुत काँटेदार होता है और निचले हिस्से या पेटी मे बहुत कम काँटे रहते है।

रोहित वर्ग

(ORDER OSTARIOPHYSI)

रोहित वर्ग काफी बडा है अत इसे दो उपवर्गों मे इस प्रकार बाँटा गया है —

१ रोहिप उपवर्ग—Sub-order Cyprinoidae

२ पटिन उपवर्ग—Sub-order Siluroidae

इस वर्ग में ससार की अधिकाश मीठे पानी की मछलियाँ एकत्र की गयी हैं। इनमें से कुछ का सिर चिकना रहता है और सारे शरीर पर कडे सेहर रहते हैं और कुछ ऐसी हैं जिनका सारा शरीर चिकनी खाल से ढका रहता है। इन मछलियो के शरीर के भीतर हवा की थैली रहती है और इस थैली से इनके कान के भीतरी हिस्से तक एक पतली हड्डियो की जजीर-सी लगी रहती है जिसके सहारे इनको सुनने में बहुत सहायता मिलती है। पहले हम रोहिप उपवर्ग को लेते हैं।

रोहिष उपवर्ग

(SUB ORDER CYPRINOIDAE)

इस उपवर्ग में वे मछलियाँ आती हैं जिनके शरीर पर कडे सेहर रहते हैं। ये अपने स्वादिष्ठ मास के लिए प्रसिद्ध हैं।

इस उपवर्ग मे वैसे तो कई परिवार हैं लेकिन यहाँ केवल एक रोहिप परिवार का ही वर्णन दिया जा रहा है।

रोहिष परिवार

(FAMILY CYPRINIDAE)

रोहिप परिवार मछलियो का सबसे वडा परिवार माना जाता है क्योकि इस परिवार में ही लगभग १५०० जाति की मछलियो को रखा गया है। इस जाति की मछलियो का जन्म-स्थान हमारा देश ही माना जाता है, जहाँ से वे एशिया के सब भागो में तथा अफ्रीका और यूरोप तक फैल गयी हैं। इन मछलियो में खास भेद यह रहता है कि इनके दाँत इनके मुँह में न होकर इनके गले में होते हैं।

ये मछलियाँ वैसे तो कद में ज्यादा वडी नही होती लेकिन इनमें से कुछ ऐसी भी हैं जो ५-६ फुट लवी हो जाती हैं। इनका मुख्य भोजन जलाशयो की छोटी मछलियाँ हैं।

इनकी सख्या वैसे तो बहुत है लेकिन यहाँ अपने देश में पायी जानेवाली छ प्रसिद्ध मछलियो का वर्णन किया जा रहा है। उनके नाम इस प्रकार है—१ रोहू २ मृगेल ३ भाकुर ४ महासेर ५ कलबोम ६ चेल्हवा।

रोहू

(ROHU)

रोहू अपने परिवार की ही नही हमारे देश की भी सबसे प्रसिद्ध मछली है जो हमारे देश में दक्षिण भारत को छोडकर प्राय: सभी झीलो, नदियो और तालाबो मे पायी जाती है। यह साफ पानी मे रहनेवाली मछली है जिसके सिर के ऊपरी हिस्से को छोडकर सारे शरीर पर सेहर रहते है।
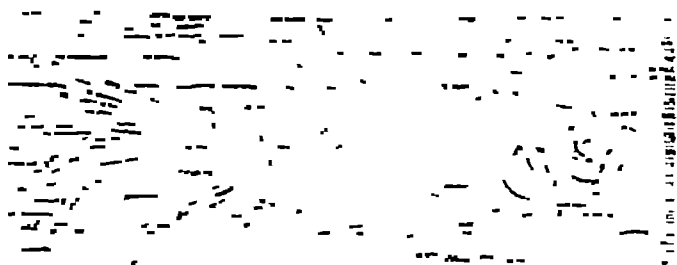
रोहू

इसके ऊपर का रग निलछौंह या हलका भूरा रहता है जो बगल और नीचे की ओर जाते-जाते चाँदी-सा हो जाता है। सेहरो पर के लाल चिह्नो के कारण इसके बदन पर एक प्रकार की ललछौंह झलक-सी रहती है। इसी कारण इसे रोहिष या रोहू का नाम मिला है। इसके सुफने भी अक्सर ललछौंह रहते है।

रोहू प्राय ढाई-तीन फुट लबी होती है। इसका मास बहुत स्वादिष्ठ होता है इसीलिए इसे तालो मे पाला जाता है।

नयन या मृगेल

(MIRGAL)

नयन भी हमारे यहाँ की बहुत प्रसिद्ध मछली है जो हमारे देश मे प्राय सभी नदियो और जलाशयो मे पायी जाती है। यह भी साफ पानी मे रहनेवाली मछली है जिसके बदन पर छोटे और घने सेहर रहते है।

ये मछलियाँ भी ५-६ फुट लबी हो जाती हैं और इनका भी मास बहुत स्वादिष्ठ होता है।

कलबोस

(KALBASU)

कलबोस को करौंछी भी कहते हैं। इसे यह नाम शायद इसलिए मिला है कि इसके शरीर का रग अन्य मछलियो से अधिक कलछौह होता है।

कलबोस

यह सेहरदार मछली है जो साफ पानी में रहती है। यह थोडी और अधिक सख्या में सारे देश को नदियो और तालाबो में पायी जाती है।

इसके शरीर का रग गाढा सिलेटी या कलछौह होता है और इसके वगल के दोनो हिस्सो में वहुत काँटे रहते हैं।

पढिन उपवर्ग

(SUB ORDER SILUROIDAE)

जिस प्रकार रोहिप उपवर्ग में सेहरदार मछलियो को एकत्र किया गया था उसी प्रकार इस पढिन उपवर्ग में चिकनी खालवाली मछलियो को इकट्ठा किया गया है।

ये मछलियाँ प्राय जलाशयो की तलेटी मे अथवा गदे और कीचडदार पानी मे रहती है। गदे पानी मे इनकी आँखे बहुत कम काम देती है इसीलिए प्रकृति ने इनके मुख के चारो ओर बडी-बडी मूंछे दी है जो इनकी स्पर्शेन्द्रियाँ है। ये इन्ही मूंछो के सहारे गदे कीचडवाले पानी में इधर-उधर फिरा करती हैं।

इनकी पीठ और वक्ष पर के मुफनो पर आगे की ओर एक तेज कडा काँटा रहता है, जो कभी-कभी दाँतेदार भी होता है। इस काँटे के लगने मे कभी-कभी बहुत दर्द और झनझनाहट-सी होने लगती है।

इनकी लगभग डेढ हजार जातियो का पता लग चुका है जो कई परिवारो मे विभक्त की गयी है। यहाँ उनमे से केवल एक, पढिन परिवार, का वर्णन किया जा रहा है।

पढिन परिवार

(FAMILY SILURIDAE)

इस परिवार मे चिकनी खालवाली मछलियाँ है जो विदेशो मे बिल्ली-मछली (Cat-Fish) कहलाती है। इनको यह नाम शायद इसलिए मिला है कि ये पकडी जाने पर बडे कर्कश स्वर मे बोलती है।

ये मछलियाँ छोटे-बडे सभी कद की होती है और किसी-किसी का वजन तो पाँच मन तक पहुँच जाता है। इनकी पीठ पर के मुफने का अगला काँटा बहुत बडा और नोकीला होता है और वक्ष-सुफने के अगले काँटे भी औरो मे बडे और तेज रहते है।

इन मछलियो का ज्यादा समय जलाशयो की तलेटी मे और कीचड मे भरे हुए ताल-तलैयो में बीतता है। कभी-कभी ये अपने चुसनी जैसे मुख मे किसी पत्थर या चट्टान को पकडकर उसी मे चिपक जाती है और तब साँस लेने के लिए ये मुंह के बजाय अपने गलफडो मे पानी भीतर खीचने लगती है।

इनका मुख्य भोजन पानी मे रहनेवाले कीडे-मकोडे तथा सडा-गला मास आदि है। ये छोटी-छोटी मछलियो को भी खाती है। इसीलिए प्रकृति ने इनके मुंह मे महीन और घने दाँतो की पक्ति दी है।

हमारे यहा इनकी अनेक जातियाँ है जिनमे से यहाँ केवल पाँच मछलियो का वर्णन किया जा रहा है। उनके नाम ये है—

१ सीगी २ मुंगरी ३ पढिन ४ सिलद ५ टेंगरा

पढिन या पहिना

(FRESH WATER SHARK)

पढिन हमारे यहाँ की बहुत प्रसिद्ध मछली है जो हमारे यहाँ की प्राय सभी नदियो और ताल-तलैयो में पायी जाती है। यह अपने चौडे मुख और पतले शरीर के कारण अन्य सब मछलियो से अलग ही रहती है और इसे पहचानने मे जरा भी दिक्कत नही होती।

पढ़िन

इसके शरीर मे काँटे भी कम होते है और इसका मास भी स्वादिष्ठ होता है, लेकिन इसका आहार छोटी मछलियो के अलावा सडा-गला मास होने के कारण कुछ लोग इसे खाना पसद नही करते।

पढिन ५-६ फुट तक लवी होती है जो अपने भारी शरीर के कारण अपने साथ रहनेवाली छोटी मछलियो का बहुत नुकसान करती है। इसी कारण इसे अग्रेजी मे मीठे पानी की हागर कहते है।

पढिन के शरीर पर सेहर नही होते और इसके नीचे का सुफना सीने के पास से शुरू होकर दुम के पास तक चला जाता है। इसका सारा शरीर सिलेटी रग का रहता है।

मुँगरी

(MAGUR)

मुँगरी हमारे यहाँ की प्रसिद्ध मछली है जो पानी के बाहर भी काफी देर तक रह लेती है। हमारे यहाँ यह सारे देश के जलाशयो मे पायी जाती है और बगाल की ओर, जहाँ इसे माँगुर कहा जाता है, इसका मास बडे स्वाद से खाया जाता है।

मुँगरी
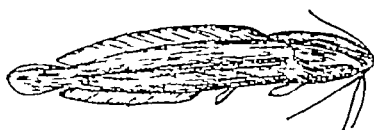
ये ६ इच से १ फुट तक लवी होती है और इनके शरीर का रग गहरा हरा या

भूरा रहता है जो नीचे पहुँचते-पहुँचते हलका हो जाता है। इनके मुह में छोटे और महीन दांत होते हैं और इनकी मूंछों की संख्या काफी रहती है।

सींगी

(SINGI)

सींगी भी हमारे यहां की प्रसिद्ध मछली है जिसे हम नदियों की अपेक्षा तालों की मछली कह सकते हैं। यह जब अपना कांटा किसी के बदन में गड़ा देती है तो उसको बिच्छू की-सी जलन होती है।

सींगी का कद मुंगरी के ही बराबर होता है और ये दोनों प्रायः एक ही स्थान में पायी भी जाती हैं। इनके शरीर का रंग गाढ़ा सिलेटी होता है जिस पर कभी-कभी दो खड़ी सिलछोंह धारियाँ पड़ी रहती हैं।
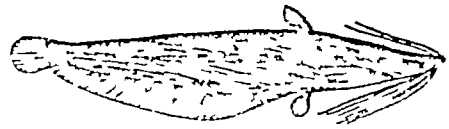
सींगी

इनका मांस खाने में बहुत स्वादिष्ट होता है और लोग इन्हें खाने के लिए हौजों में पाल रखते हैं।

सिलंद

(SILAND)

सिलंद भी हमारे यहाँ की कम प्रसिद्ध मछली नहीं है। अपने लंबे कद के कारण यह अन्य मछलियों के बीच आसानी से पहचान ली जाती है। हमारे देश में यह प्रायः सभी बड़ी नदियों में पायी जाती है।

सिलंद काफी लंबी मछली है जिसका कद कभी-कभी ६ फुट से ज्यादा लंबा हो जाता है। इसका नीचे का जबड़ा ऊपरी जबड़े से कुछ आगे की ओर बढ़ा रहता है जो बगल से पहुंचते-पहुंचते चांदी-सा चमकीला हो जाता है।

सिलंद

टेंगरा

(TENGARA)

टेंगरा को टेंगान या टेंगनी भी कहते है। यह हमारे यहाँ की प्रसिद्ध मछली है जो अपने स्वादिष्ठ मास के लिए मशहूर है। यह हमारे देश में उत्तरी भाग की प्राय सभी नदियो और तालाबो में पायी जाती है।

टेंगरा

इसकी पीठ का काँटा बहुत बडा और मजबूत होता है। इसके थूथन काफी चौडे होते हैं और इसका ऊपरी जबडा निचले जबडे से कुछ आगे बढा रहता है।

टेंगरा की मूँछें बडी महीन होती है जिनकी सख्या ८ रहती है। इसके मुँह में तेज और महीन दाँत रहते हैं।

इसके बदन का ऊपरी हिस्सा सिलेटीपन लिये भूरा और बगल का रुपहला रहता है।

दड-मत्स्य वर्ग

(ORDER APODES)

इस वर्ग मे सर्पाकार या डडे की शक्ल की मछलियाँ एकत्र की गयी है जिन्हें हमारे यहाँ बाम या दडमत्स्य कहा जाता है। यह वर्ग छोटा ही है और यहाँ इसके एक ही परिवार का वर्णन किया जा रहा है जो बाम-परिवार कहलाता है।

बाम परिवार

(FAMILY MURAENIDAE)

बाम परिवार में संसार की सब बाम मछलियाँ रखी गयी हैं जो देखने में साँप-सी जान पड़ती हैं। इनके दोनों बगल के गलफड़ों की जगह छागर की तरह शिगाफ से कटे रहते हैं। इन मछलियों के वक्ष-पक्ष (Pectoral Fin) कभी रहते हैं और कभी नहीं रहते। लेकिन अध पक्ष (Ventral Fin) तो एकदम गायब ही रहता है। इनका शरीर प्राय सेहरों से रहित रहता है और किसी-किसी के सेहर हुए भी तो वे प्रारंभिक अवस्था के ही जान पड़ते हैं। इनके मुँह में महीन और तेज दाँतों की पंक्ति रहती है और इनके शरीर के भूरे रंग पर पिलछौंह चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

बाम समुद्रों में तो रहती ही हैं, पर वे हमारी नदियों और तालाबों में भी चली आती हैं। वे प्राय एक फुट से तीन फुट की होती हैं लेकिन समुद्र में रहनेवाली बाम मछलियाँ कभी-कभी इससे भी बड़ी हो जाती हैं।

इन मछलियों का जीवन-चक्र इतना अद्भुत और अनोखा होता है कि बहुत दिनों तक प्राणिशास्त्र के विद्वान उसे समझने में असफल रहे किन्तु बाद में जब इस पर काफी परिश्रम किया गया तो असली बात का पता चला।

बाम वास्तव में समुद्र की निवासिनी है। यह अटलांटिक समुद्र में अंडे देती है, जहाँ समय पाकर ये अंडे फूटते हैं और उनमें से छोटे-छोटे चपटे और पारदर्शी शरीर-वाले बच्चे निकलते हैं। ये बच्चे अंडे से बाहर होते ही पूरब की ओर चल पड़ते हैं। उस समय इनकी संख्या लाखों करोड़ों में रहती है। ये समुद्र की ऊपरी सतह पर रहते हैं और इनका यह काफिला प्रतिदिन तीन-चार मील का सफर तै करता है। तीन साल इसी प्रकार निरंतर चलकर ये तीन हजार मील का सफर पूरा कर लेते हैं और तब इनके शरीर में भी कुछ परिवर्तन हो जाता है। ये बढ़कर लगभग तीन इंच के हो जाते हैं और इनका शरीर बहुत कुछ गोल हो जाता है।

कुछ समय बीतने पर इनका शरीर कुछ और पतला होकर सूच्याकार हो जाता है और ये सिकुड़कर ढाई इंच के रह जाते हैं। इनकी शकल-सूरत अब बाम के अनुरूप होने लगती है लेकिन अभी इनका कद बहुत छोटा रहता है।

इन्हें इस समय मीठे पानी की चाह सताने लगती है और ये नदियो के मुहानो से होकर नदियो के भीतर चढ आते है। नालो अथवा दलदलो मे होकर तालावो और झीलो में पहुँच जाते है।

मीठे पानी के जलाशयो में ये अपने जीवन के पाँच-सात वर्ष बिताते है और बढकर लगभग दो-तीन फुट के हो जाते है और तब हम इन्हें वाम कहने लगते है।

पाँच-सात वर्ष बीत जाने पर बामो के शरीर के रग-रूप मे सहसा परिवर्तन होता है। इनके शरीर का पीलापन गायब हो जाता है और ये निलछौह सिलेटी रग की हो जाती है।

तब इनको जैसे अपनी जन्मभूमि की याद आ जाती है। ये फिर मीठे पानी से समुद्रो में चली जाती है। ये पश्चिम की ओर चलने लगती है और एक दिन फिर अपने उसी स्थान पर पहुँच जाती हैं जहाँ से अडा फूटने पर चली थी। वहाँ पहुँचने पर ये अडे देती हैं और मर जाती है और इनका रहस्यमय जीवन समाप्त हो जाता है।

यहाँ अपने यहाँ की प्रसिद्ध वाम का वर्णन किया जा रहा है।

वाम

(EEL)

वाम के अद्भुत जीवन-चक्र के बारे मे हम जान ही चुके है। अव हमें उसके रग-रूप, आकार-प्रकार तथा स्वभाव के बारे में भी कुछ जान लेना चाहिये।

वाम का शरीर एकदम साँप-जैसा होता है और जिन्होने इसे पहले नही देखा है, वे इसे साँप समझ लें तो इसमे उनका दोप नही।

वाम हमारे यहाँ के सभी जलाशयो में पायी जाती है। यह समुद्र में भी रहती है और नदी, तालाव तथा झीलो में भी। यही नही, इसे कीचडो में भी देखना कुछ आश्चर्य-जनक वात नही है।

वाम का गलफड अन्य मछलियो के समान विकसित नही हुआ है। वह पर्तदार और ढकने से युक्त न होकर एक शिगाफ-सा रहता है। इसका पृष्ठपक्ष गुद्दी के पास से शुरू होकर पीठ पर दूर तक चला जाता है और गुह्यपक्ष भी फैलकर दुम में जा मिलता है। इसके वदन पर छोटे-छोटे सेहर रहते है जो इसकी खाल मे धँसे-से रहते है। दोनो वक्षपक्ष वहुत छोटे-छोटे और पखो के आकार के रहते है।

वाम के तैरने का तरीका भी अन्य मछलियो मे भिन्न रहता है। अपनी सर्पाकार बनावट के कारण यह पानी मे आगे बढने के लिए अपनी दुम को ही नही वरन् सारे शरीर को इधर-उधर चलाती है, जैसे मगर और घडियाल अपनी दुम को चलाते है।

वाम
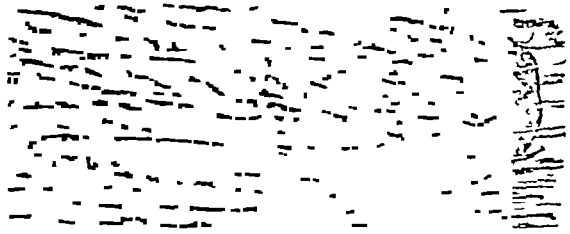
इसका सिर इसके शरीर से कुछ चौडा और आगे को बढा रहता है। इसका मुंह भीतर की ओर काफी दूर तक फटा रहता है, जिसमे बहुत महीन दाँत होते है।

वाम के शरीर का रग इसकी अवस्था के अनुसार बदलता रहता है। प्रौढ हो जाने पर ऊपरी हिस्सा भूरा हो जाता है जो बगल से हलका होते-होते नीचे पिलछौंह हो जाता है। कुछ की ऊपरी सतह पर काली चित्तियाँ रहती है जो कभी-कभी इसके सुफनो तक फैल जाती है।

वाम बहुत क्रोधी मछली है। इसका मुख्य भोजन छोटी मछलियो के अलावा सडा-गला मास है। यह अक्सर कछुओ के साथ लाशो से अपना पेट भरती दिखाई पडती है।

सपक्ष-मत्स्य वर्ग

(ORDER SYNENTOGNATHI)

इस वर्ग की मछलियो का शरीर चपटा और मुंह चौडा रहता है। इनके शरीर पर के सेहर पतले और बडे होते है। इनके पृष्ठपक्ष (Dorsal Fin) और गुह्यपक्ष (Anal Fin) बहुत पीछे की ओर रहते है और इनके बगल की धारियां बहुत स्पष्ट रहती है।

इनमे से कुछ के मुंह का निचला भाग ऊपर के भाग से कुछ बडा रहता है और काफी बढकर लबा और नोकीला हो जाता है। इनमे से कुछ ऐसी मछलियां है जो पानी की सतह पर कुछ दूर तक उछल जाती है। इसी कारण उनके पृष्ठपक्ष बढकर उनके शरीर के आधे के बराबर हो गये है। ये मछलिया इन्ही लबे सुफनो के सहारे पानी की सतह पर उछलकर सौ डेढ सौ गज से भी ज्यादा दूर तक हवा में तैरती चली

जाती है। आँधी या तूफान के समय ये मछलियाँ हवा के झोके से जहाज के डेक पर पहुँच जाती है।

ये हमेशा झुड में रहती है और इनका मुख्य भोजन घोघे, कटुए और छोटी-छोटी मछलियाँ है। इनके वैसे कई परिवार है, लेकिन यहाँ केवल एक उडकूमछली-परिवार का ही वर्णन किया जा रहा है।

उडकूमछली परिवार

(FAMILY EXOCOETIDAE)

इस परिवार मे केवल उडकूमछलियाँ रखी गयी है जिनके वक्षपक्ष वढकर पख जैसे हो गये है। इन मछलियो की लगभग ४० जातियाँ सारे ससार में फैली हुई हैं।

ये मछलियाँ अपने वढे हुए सुफनो को चिडियो के डैनो की तरह नही इस्तेमाल करती, बल्कि वे अपनी दुम को तेजी से चलाकर हवा मे उछलती है और उसके बाद अपने वडे सुफनो को फैलाकर हवा में उसी तरह तैरती चली जाती है जैसी हमारी उडनेवाली गिलहरियाँ करती है। इनकी यह उडान पानी की सतह से कुछ ही ऊपर रहती है, लेकिन कभी-कभी समुद्री तूफान और हवा के झोंके इन्हे जहाज के ऊपर तक पहुँचा देते है। यहाँ अपने यहाँ की प्रसिद्ध उडकूमछली का वर्णन किया जा रहा है।
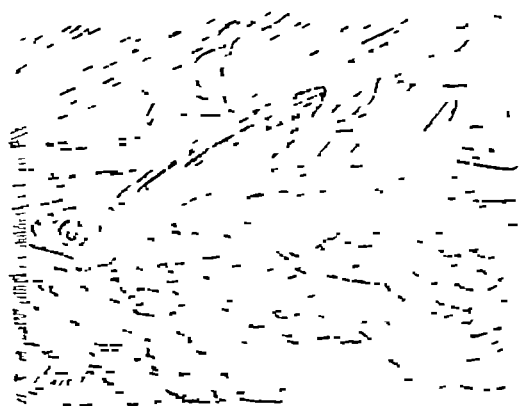
उडकू-मछली

(FLYING FISH)

उडकू-मछली

उडकू-मछलियो के उडने का विवरण हम ऊपर पढ ही चुके है। हमारे यहाँ के समुद्रो में पायी जानेवाली उडकू मछलियाँ लगभग एक फुट की होती है और उनके वक्षपक्ष ६ इच से कम नही रहते।

इनके वदन पर सेहर होते है और इनका निचला जवडा ऊपरी जवडे की अपेक्षा वडा होता है।

इन मछलियो का ऊपरी हिस्सा निलछौंह और दोनो बगल के हिस्से रुपहले रहते है।

चन्द्रमत्स्य वर्ग

(ORDER ALLOTREOGNATHI)

यह वर्ग भी छोटा ही है जिसमे की मछलियाँ अपनी विचित्र शकल-सूरत और मुख की अद्भुत बनावट के कारण अन्य मछलियो से भिन्न होती है। इनमे कुछ पतली और चपटे शरीर की और कुछ गोल-मटोल रहती है।

इनमे की प्रसिद्ध चाँदमछली, जो लगभग ५०० पाउण्ड वजन की होती है, अपने सुन्दर रग और अडाकार गुदगुदे शरीर के कारण मछली जान ही नही पडती। इसके ऊपर का रग नीला होता है और बगल के निलछौंह रग मे बैगनी और सुनहली झलक भी मिल जाती है। इसके नीचे का हिस्सा लाल रहता है। इसके सारे शरीर पर गोल रुपहले चित्ते रहते है और सुफनो का रग चटक सिंदूरी रहता है। इन मछलियो का मास बहुत स्वादिष्ठ होता है।

इस वर्ग की मछलियो का मुख्य भोजन सीप, घोघे और छोटी-छोटी मछलियाँ है। वैसे तो इस वर्ग में कई परिवार है, लेकिन यहाँ केवल फीतामछली-परिवार का वर्णन किया जा रहा है।

फीतामछली परिवार

(FAMILY TRACHYPTEIDAE)

इस परिवार की मछलियाँ अपने फीता-जैसे पतले और चपटे शरीर तथा सिर से लेकर दुम तक फैले हुए पृष्ठपक्ष के कारण अन्य मछलियो से भिन्न रहती है।

ये मछलियाँ कभी-कभी २०-२० फुट तक की पायी जाती है। इनकी चौडाई एक फुट और मोटाई एक इच रहती है। ये अक्सर रुपहली होती है और सुफने गुलाबी रहते है।

हमारे यहाँ पायी जानेवाली फीता-मछली (Ribbon Fish) का कद बहुत बडा नही होता, लेकिन इसका शरीर बहुत पतला रहता है। यहा इसी एक मछली का वर्णन किया जा रहा है।

फीता-मछली

(RIBBON FISH)

फीता-मछलियाँ समुद्र की इतनी गहराई में रहती हैं कि वे हम लोगो को बहुत ही कम दिखाई पडती हैं। ये इतनी लबी होती हैं कि इन्हें पहले लोग समुद्री अजदहे समझते थे।

फीता-मछली

इस मछली का पृष्ठपक्ष (Dorsal Fin) सारी पीठ पर फैला रहता है, जिसमें बहुत-से नरम कांटे रहते हैं। इसका मुंह छोटा होता है जिसमें दाँतो की पक्तियाँ रहती हैं।

इंगलैड के समुद्री तट पर जो फीता-मछली (Ribbon Fish) मिली थी उसकी लबाई २० फुट, चौडाई एक फुट और मोटाई एक इच थी, लेकिन हमारे देश की फीता मछली का कद छोटा होता है और उसका शरीर भी १ फुट चौडा न होकर डडे की तरह गोल रहता है। इसके सुफने गुलाबी रग के होते हैं। यह देखने में मछली की अपेक्षा सांप से अधिक मिलती-जुलती होती हैं।

अश्व मत्स्य वर्ग

(ORDER SOLENICHTHYES)

इस छोटे वर्ग मे अद्‌भुत शकल-सूरत की मछलियाँ पायी जाती है जो देखने में कोई अन्य जीव जान पडती हैं। इन सबका थूथन आगे की ओर एक नली-जैसा बढा रहता है जिसमे दाँत नही होते। ये अपने इसी नलीनुमा मुखसे पानी को पिचकारी की तरह भीतर खीच लेती हैं और उसमे के छोटे-छोटे कीडो को खाकर अपना पेट भरती हैं।

ये सब छोटे और निरीह जन्तु हैं जिनकी आत्मरक्षा पास-पडोस के रगरूप और शकल-सूरत की अनुरूपता से ही हो पाती है क्योकि प्रकृति ने इन्हे अपना रग बदलने की अद्‌भुत शक्ति प्रदान कर रखी है।

इन अद्‌भुत शकल-सूरत की मछलियो मे से केवल घोडा मछली-परिवार का वर्णन यहाँ किया जा रहा है जिसे घोडे के अनुरूप होने के कारण यह नाम मिला है।

घोड़ा मछली परिवार

(FAMILY SYNGNATHIDAE)

इस परिवार मे घोडा मछली रखी गयी है जो अपनी विचित्र शकल-सूरत के कारण अन्य मछलियो से भिन्न होती है। यह पानी में अपनी दुम के सहारे खडे ही खडे तैरती है और अपना काफी समय पानी के भीतर के किसी पौधे का सहारा लेकर बिताती है। इन मछलियो के नर को ही मादा के स्थान पर अडा सेना पडता है। इसके लिए बेचारे को अपनी दुम के पास की थैली मे अडो को रखकर तब तक घूमना पडता है जब तक वे फूट नही जाते।

यहाँ अपने देश मे पायी जानेवाली प्रसिद्ध घोडा-मछली का वर्णन किया जा रहा है।

घोड़ा मछली

(SEA HORSE)

यह विचित्र मछली, जिसे घोडे-जैसे मुंह के कारण घोडामछली का नाम मिला है, शकल-सूरत तथा शरीर की बनावट आदि किसी बात मे मछली नही जान पडती।

यह समुद्र में रहनेवाली मछली है, जो हमारे यहाँ बगाल की खाडी में पायी जाती है।
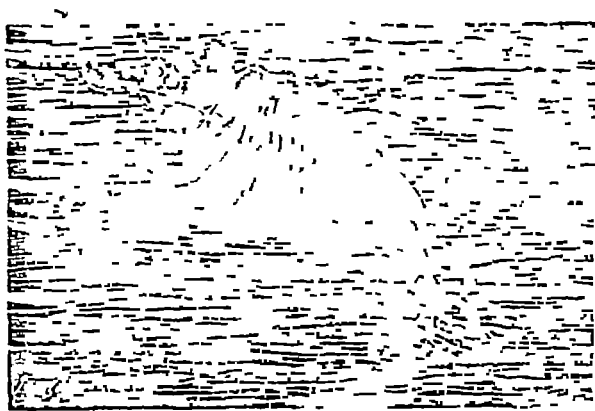
घोडा मछली

इसका धड दोनो ओर से चपटा रहता है और पेट का हिस्सा कुछ बाहर की ओर निकला रहता है। धड, हड्डियो के छल्लो के मिलने से वनता है, जिस पर जगह-जगह उभार-सा रहता है। धड के ऊपर इसका सुअर ऐसा सिर रहता है जो चपटा होता है और जिसके ऊपर का हिस्सा उभरे हुए काँटो और घुडियो से भरा रहता है जो देखने में मुकुट-सा जान पडता है।

इसके पृष्ठपक्ष धड के ऊपर और वक्षपक्ष दोनो वगल रहते हैं, लेकिन गुह्यपक्ष नही होता। यह अपनी दुम से किसी घास को पकडकर पानी में सीधी खडी रहती है।

भेटकी वर्ग

(ORDER PERCOMORPHE)

यह वर्ग वहुत ही वडा और विस्तृत है, इसी कारण सुविधा के लिए इसको कई उपवर्गो मे वाँटना पडा है। इस वर्ग की मछलियाँ खारे और मीठे दोनो प्रकार के पानी मे पायी जाती हैं।

वैसे तो इस वर्ग के अन्तर्गत बहुत-से उपवर्ग हैं, पर यहाँ केवल उन उपवर्गों का ही वर्णन किया जा रहा है जिनमें की मछलियाँ हमारे देश में पायी जाती हैं।

१ भेटकी उपवर्ग—Sub-order Percoidea

२ रूपचाद उपवर्ग—Sub-order Stromateoydea

३ कवई उपवर्ग—Sub-order Anabantoidea

४ तेगामछली उपवर्ग—Sub-order Scombroidea

भेटकी उपवर्ग

(SUB-ORDER PERCOIDEA)

भेटकी परिवार

(FAMILY PERCIDAE)

इस परिवार की प्राय सभी मछलियाँ समुद्री हैं जिनका शरीर बहुत लंबा न होकर गोलाई लिये रहता है। इनके पृष्ठपक्ष मे आगे की ओर काँटे रहते हैं। इस परिवार की मछलियो का रग बहुत कुछ इनके पास-पडोस की वस्तुओ के अनुरूप रहता है। मटमैले पानी मे रहनेवाली मछलियाँ मटमैले रग की और साफ पानी मे रहनेवाली मछलियाँ चटकीले रगकी होती हैं।

यहाँ इस परिवार मे केवल प्रसिद्ध भेटकी मछली का वर्णन किया जा रहा है जो समुद्र की निवासिनी है।

भेटकी

(BHETKI)

भेटकी हमारे यहा की बहुत प्रसिद्ध समुद्री मछली है। वैसे तो यह सारे देश के समुद्री किनारो और नदियो के मुहानो पर पायी जाती है लेकिन बगाल की खाडी में यह बहुत अधिक सख्या मे मिलती है।

भेटकी के शरीर का रग सिलेटी रहता है जिसमें पीठ पर के हिस्से पर हरी झलक रहती है।
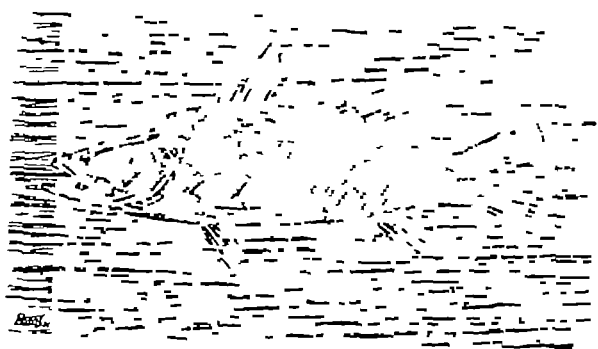
भेटकी

इसका निचला हिस्सा रुपहला रहता है जिसमें बरसात में एक प्रकार का बैगनीपन आ जाता है।

भेटकी लम्बाई में पाँच फुट और वजन में दो-ढाई मन तक की पायी गयी है। इसका मास खाने में स्वादिष्ठ होता है।

चन्द्रा परिवार

(FAMILY CHAETODONTIDAE)

चद्रा परिवार की मछलियाँ भी समुद्र की निवासिनी है, लेकिन इनमें कुछ ऐसी भी है जो नदियो में कुछ दूर तक चढ जाती है।

इन मछलियो का शरीर चपटा, मुख-छिद्र गोल और थूथन सिरे पर रहता है। इनका शरीर ऐसे सेहरो से ढका रहता है, जो पतले, गोल और ददानेदार रहते है।

इस परिवार की कुछ मछलियाँ बहुत सुदर होती है जिनमें मूंगे की चट्टानो के निकट रहनेवाली मछलियाँ तो अपनी रगीन पोशाक से तितलियो को भी मात कर देती है। इन रगीन मछलियो को तितली-मत्स्य कहा जाता है जो सब प्रकार से ठीक ही है। इनका मुख बहुत पतला और नली के आकार का होता है जिसे वे मूंगे की चट्टानो के सूराखो में डालकर पानी में रहनेवाले छोटे-मोटे कीडो को पकडा करती है।

यहाँ केवल चँदवा नाम की मछली का वर्णन किया जा रहा है जो हमारे यहाँ के समुद्रों की बहुत प्रसिद्ध मछली है।

चँदवा

(CHANDAWA)

चँदवा हमारे यहाँ की प्रसिद्ध मछली है जो हमारे देश के समुद्रों मे काफी सख्या में पायी जाती है।

चँदवा
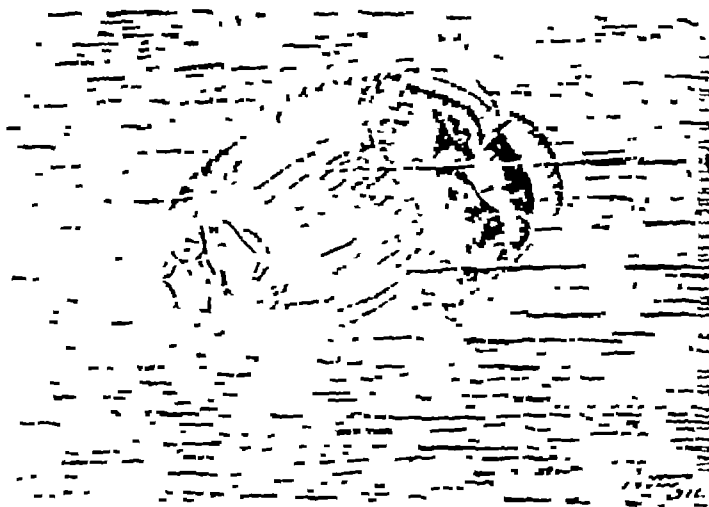
यह लगभग डेढ़ फुट लम्बी मछली है जिसे अपने चपटे और चितकबरे शरीर के कारण शायद यह नाम मिला है।

चँदवा के शरीर का रंग रुपहला रहता है जिसमें कुछ सुनहली और बैंगनी झलक रहती है। इसके बदन पर कभी-कभी खड़ी धारियाँ और चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

इसका मास बहुत स्वादिष्ठ न होकर मामूली ही रहता है।

लेठा परिवार

(FAMILY CENTRARCHIDAE)

इस परिवार की मछलियाँ भी खारे और मीठे दोनो प्रकार के जलाशयो में रहती है। इनका शरीर कभी लबा और कभी अडाकार और चपटा रहता है। इनमें से कुछ मछलियो का शरीर तो ऐसा गोल-मटोल रहता है कि सहसा हम उन्हें मछली कह ही नही सकते। सूर्य मछली (Sun Fish) इसी प्रकार की अडाकार शरीरवाली मछली है, जो समुद्रो में पायी जाती है ।

इसका पृष्ठपक्ष कभी-कभी दो हिस्सो में न बँटकर सारी पीठ पर फैला रहता है। इसके बदन पर सेहर रहते है जिनके किनारे कटावदार होते है। यहाँ इस परिवार की केवल एक लेठा मछली का वर्णन किया जा रहा है।

लेठा

(LETHA)

लेठा भी हमारे देश की प्रसिद्ध मछली है जो मीठे पानी के जलाशयो के अलावा पानी से भरे हुए खेतो में भी पायी जाती है। यह सात-आठ इच की छोटी सी मछली है जो पानी से बाहर किये जाने पर भी जल्द नही मरती।

लेठा

लेठा के शरीर का रग हरापन लिये भूरा रहता है, जिसमे एक प्रकार की ताँबे-जैसी झलक रहती है। इसके शरीर पर ऊपर से नीचे तक तीन चौडी पट्टियाँ रहती है और एक चौडी पट्टी दुम के ऊपर तक चली जाती है। कभी-कभी इस पट्टी की जगह एक काला चित्ता रहता है।

लेठा के वदन पर सेहर होते है, जो गुद्दी पर तो छोटे लेकिन शरीर के अन्य भागो पर वडे रहते है। इसका मास स्वादिप्ठ होता है।

रूपचाँद उपवर्ग

(SUB-ORDER STROMATEOYDEA)

रूपचाँद परिवार

(FAMILY STROMATEIDAE)

रूपचाँद परिवार भी छोटा ही है जिसमें की सब मछलियाँ समुद्र में रहनेवाली हैं। इन मछलियों का शरीर चपटा और बीच में उभरा-उभरा-सा रहता है। इनका पृष्ठपक्ष बहुत लंबा होता है जिसमें प्राय कड़े काँटे नही रहते। इन मछलियों के गलफड़ों के सूराख चौड़े होते हैं और इनके जबड़ों में एक ही कतार में छोटे-छोटे दाँत रहते हैं।

इनमें से यहाँ केवल एक रूपचाँद नाम की मछली का वर्णन किया जा रहा है जो हमारे यहाँ की प्रसिद्ध समुद्री मछली है।

रूपचाँद

(ROOPCHAND)

रूपचाँद समुद्र की मछली है। जो हमारे देश के प्राय सभी समुद्रों में बहुतायत से पायी जाती है। अपने सुन्दर रुपहले रंग के कारण इसका रूपचाँद नाम ठीक ही लगता है।

रूपचाँद

रूपचाँद लगभग एक फुट लंबी होती है। इसके प्राय सभी सुफने टेढ़े होते हैं और गुदापक्ष (Anal Fin) तो इतना टेढ़ा रहता है कि दूर से दूज के चाँद-सा लगता है।

इसके सिर और पीठ के ऊपर का रंग सिलेटी होता है जिसमें बैंगनी झलक रहती है। शरीर का

बाकी हिस्सा रुपहला रहता है जो पेट तक जाते-जाते सफेद हो जाता है। इसके सारे बदन पर छोटी-छोटी बिन्दियाँ रहती है और गलफडो के दोनो ढकनो पर गाढे रग के चित्ते रहते है।

कवई उपवर्ग

(SUB-ORDER ANABANTOIDEA)

कवई परिवार

(FAMILY ANABANTIDAE)

इस छोटे परिवार मे यद्यपि थोडी ही मछलियाँ है, लेकिन हवा मे भी थोडा-बहुत साँस ले सकने के कारण ये अन्य मछलियो से भिन्न रहती है। ये उभयचरो की तरह पानी के बाहर भी काफी देर तक रह सकती है।

इन मछलियो का शरीर चपटा और अडाकार होता है जिसका ऊपरी हिस्सा कुछ उठा उठा-सा रहता है। इनके गलफड के छेद कुछ पतले रहते है और पीठ पर का सुफना पीठ पर काफी दूर तक फैला रहता हे। इनके शरीर पर सेहर होते है जिनका अगला हिस्सा कुछ कटावदार रहता है।

इस परिवार की सब मछलियाँ मीठे पानी मे रहती है जो हमारे यहाँ के बडे जलाशयो और नदियो मे काफी सख्या मे पायी जाती है।

यहाँ इनमे से प्रसिद्ध कवई मछली का ही वर्णन किया जा रहा है।

कवई

(CLIMBING PEARCH)

कवई हमारे यहाँ की बहुत प्रसिद्ध मछली है जो पानी से बाहर उछलकर कुछ दूर तक सूखे पर भी चल लेती है। यह हमारे देश मे प्राय सभी बडे जलाशयो मे पायी जाती हे।

कवई को कही-कही सुभा भी कहा जाता हे। इसका कद लगभग ८-९ इच का होता है। इसका पृष्ठपक्ष (Dorsal Fin) गलफड के ऊपर से शुरू होकर दुम की जड

तक चला जाता है, जिसमे थोडे से पिछले हिस्से को छोडकर बाकी हिस्से मे कडे काँटे उभरे रहते हैं।
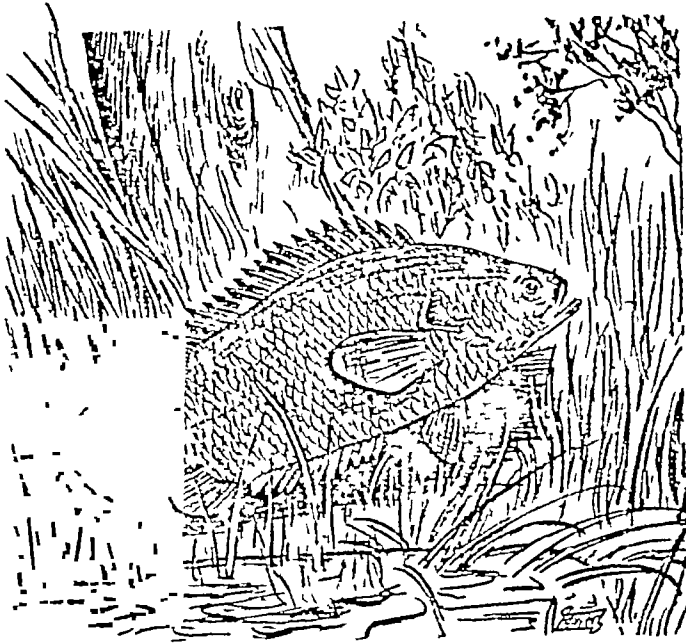
कवई

इसके शरीर का रग हरापन लिये सिलेटी रहता है जिस पर चार चौडी-चौडी खडी पट्टियाँ रहती हैं और एक धारी मुँह के कोने से लेकर गलफड तक फैली रहती है। इसका मास स्वादिष्ठ होता है।

सौर परिवार

(FAMILY OPHIOCEPHALIDAE)

सौर परिवार भी छोटा ही कहा जायगा। इसमें हमारे यहाँ की प्रसिद्ध सौर और उसके भाई-बन्धु हैं जो सब मीठे पानी में रहते हैं।

इन मछलियो का शरीर लबा होता है जो आगे की ओर गोलाकार रहता है। इनका सिर चपटा, गलफड चौडे और शरीर सुडौल रहता है। पीठ पर का सुफना

सारी पीठ पर फैला रहता है, लेकिन उसमें कडे कांटे नही होते। इनके जबडो में तेज और महीन दाँत रहते है।

ये मछलियाँ पानी के बाहर भी कुछ देर तक उभयचरो की तरह रह सकती हैं और इनमें से कुछ अपने सुफनो की मदद से कीचड पर साँप की तरह रेगकर काफी दूर तक चली जाती हैं।

इन मछलियो को कीचड से भरे ताल और घास तथा सेवार से भरी हुई नदियाँ ज्यादा पसद है। इनमें से कुछ जाति की मछलियाँ जलाशयो के सूख जाने पर मिट्टी में गड जाती हैं और एक छिद्र के द्वारा हवा मे साँस लेकर जीवित रहती है। वर्षा के आरभ होने पर जब ताल-तलैयाँ पानी से भर जाती है तो ये मछलियाँ फिर पानी में तैरने लगती है और इनके गलफड फिर पानी मे घुली हुई हवा से साँस लेने योग्य हो जाते है।

यहाँ केवल प्रसिद्ध सौर मछली का वणन किया जा रहा है जो अपने यहाँ की प्रसिद्ध मछली है और जिससे हम भलीभाँति परिचित है।

सौर

(SERPENT HEAD)

सौर हमारे यहाँ की वहुत प्रसिद्ध मछली है जो हमारे देश के प्राय सभी वडे जलाशयो में पायी जाती है। इसे बडी और साफ जलवाली नदियो की अपेक्षा घास,
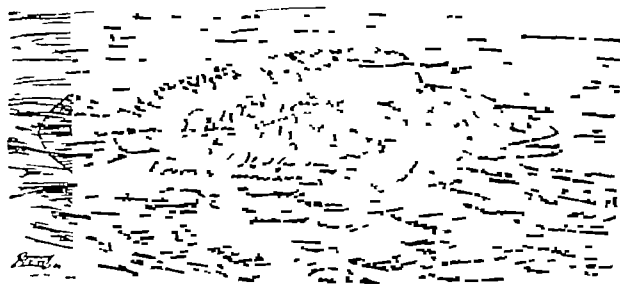
सौर

सेवार और नरकुल आदि से भरे हुए जलाशय और दलदल अधिक पसद है। नदियो में भी जहाँ वँधा पानी रहता है वहाँ यह अपने रहने का स्थान चुनती है।

मीर के शरीर का ऊपरी भाग गाढा मिलेटी या कलछौंह और नीचे का हिस्सा पिलछौंह या सफेद रहता है।

मीर का शरीर लगभग दो-तीन फुट लंबा होता है जो बहुत छोटे-छोटे सेहरों से ढँका रहता है। ये सेहर उसके सिर के ऊपर तक फैले रहते हैं। इसके गाल और मुँह के निचले भाग पर धारियाँ और चित्तियाँ पड़ी रहती हैं और शरीर के दोनों बगल से पेट तक काली या मिलेटी पट्टियाँ चली आती हैं। इसका मांस बहुत स्वादिष्ठ होता है।

तेगामछली उपवर्ग

(SUB-ORDER SCOMBROIDEA)

तेगामछली परिवार

(FAMILY XIPHIIDAE)

तेगामछली का परिवार बहुत छोटा है और इसमें की सब मछलियाँ समुद्र की निवासिनी हैं। इन मछलियों का शरीर चपटा होता है और इनका ऊपरी जबड़ा तलवार की शकल का होकर आगे की ओर काफी दूर तक बढ़ा रहता है।

इनका मुँह भीतर की ओर काफी गहराई तक कटा रहता है जिसमें दाँत नहीं होते। इनमें से यदि किसी के दाँत हुए भी तो वे छोटे अकुर-जैसे ही रहते हैं।

इन मछलियों के शरीर पर सेहर तो नहीं होते, लेकिन कुछ की खाल के ऊपर थोड़ा-सा उभार जरूर रहता है।

वैसे तो इनमें कई प्रकार की तेगामछलियाँ हैं, लेकिन यहाँ अपने यहाँ की प्रसिद्ध तेगामछली का वर्णन किया जा रहा है जो अपने समुद्रों में काफी संख्या में पाई जाती हैं।

तेगामछली

(SWORD FISH)

तेगामछली हमारे यहाँ की प्रसिद्ध समुद्री मछली है जिसका यह नाम उसके ऊपरी थूथन के तेगा या तलवार जैसी शकल के हो जाने से पड़ा है। यह अपनी अजीब शकल-सूरत के कारण शीघ्र ही पहचानी जा सकती है।

तेगामछली ५-६ से १०-१५ फुट तक लबी होती है। इसके शरीर का ऊपरी हिस्सा सिलेटी रग का रहता है जो नीचे जाते-जाते हलका हो जाता है। इसके वदन
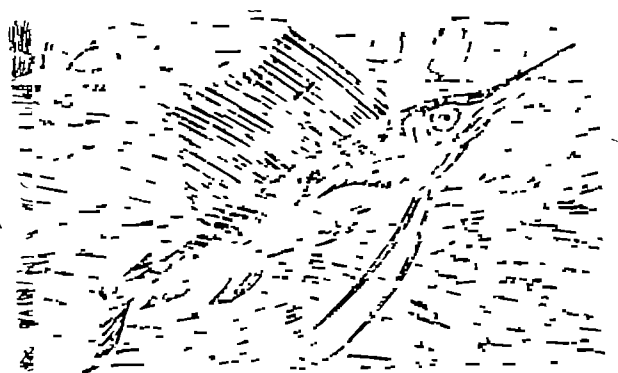
तेगामछली

पर की खाल उभरी-उभरी-सी रहती है और दुम की जड के पास दोनो ओर दो जगहो पर थोडा-थोडा-सा उभार रहता है।

चूषिका मत्स्य वर्ग

(ORDER DISCOCIPHALI)

इस वर्ग में अजीब तरह की भद्दी शक्लवाली मछलियो को एकत्र किया गया है, जो सब समुद्र की रहनेवाली हैं। इनका सिर चपटा होता है जिस पर लहरदार मास-पेशियो की उभरी हुई एक चुसनी रहती है। अपने माथे पर के इस अद्‌भुत अवयव या यत्र द्वारा, जिसे चुसनी कहा जाता है, ये मछलियाँ हागर आदि वडी मछलियो या समुद्र के भीमकाय कछुओ के पेट में चिपक जाती हैं और उन्ही के साथ-साथ विना परिश्रम के ही समुद्र में इधर-उधर घूमा करती हैं। कभी-कभी ये जहाज के पेंदे में भी अपनी इसी चुसनी के द्वारा चिपक जाती हैं और मीलो का सफर अनायास ही कर लेती हैं।

इस प्रकार सफर करते समय जव इन्हें कही छोटी मछलियो का झुड दिखाई पडता है तो ये अपने को वडी मछली से अलग करके वही रुक जाती हैं और अपना

भोजन समाप्त करके फिर किसी के पेट में चिपक कर वहाँ से दूसरी जगह चली जाती हैं। इनमें कुछ एक फुट की और कुछ तीन फुट तक की होती हैं।

इनका एक ही परिवार है जो चुसनी-परिवार कहलाता है। यहाँ हम उसी का वर्णन कर रहे हैं।

चुसनी परिवार

(FAMILY ECHINIDADAE)

इस परिवार की मछलियाँ अपने सिर पर के विचित्र यंत्र के कारण अन्य सब मछलियों से भिन्न होती हैं। इसी अंग के सहारे ये दूसरी बड़ी मछलियों, कछुओं तथा जहाज के पेंदों में चिपक जाती हैं, जैसा कि हम कह चुके हैं, और बिना किसी परिश्रम के मीलों का सफर कर लेती हैं।

यहाँ अपने यहाँ के समुद्रों में पायी जानेवाली प्रसिद्ध चुसनी-मछली का वर्णन किया जा रहा है।

चुसनी मछली

(SUCKING FISH)

चुसनी हमारे यहाँ की समुद्री मछली है जो अपने सिर पर के विचित्र अंग के कारण अन्य मछलियों से भिन्न है। इसके सिर पर का चूषक-यंत्र इसके बहुत काम का

चुसनी मछली
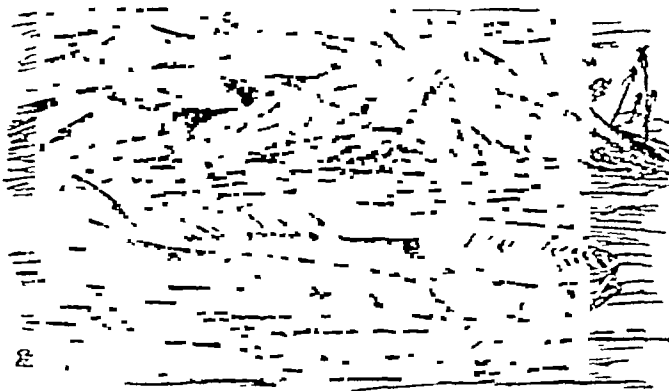
होता है जिसके सहारे यह शार्क आदि बड़ी मछलियों के निचले हिस्से में चिपक कर मीलों का सफर कर लेती है।

यह मछली लगभग एक फुट की होती है जिसके शरीर का रग अन्य मछलियो की तरह ऊपर गाढा और नीचे हलका न होकर नीचे गाढा और ऊपर हलका रहता है। इसका कारण यह है कि ज्यादा समय तक सिर के बल शार्क आदि के बदन में चिपके रहने से इसके शरीर का ऊपरी हिस्सा अँधेरे में रहता है और वह हलके रग का रह जाता है, लेकिन इसके नीचे का हिस्सा बाहर रहने के कारण गाढे भूरे रग का हो जाता है जिससे वह नीली लहरो में छिप जाय।

चूँकि ये मछलियाँ कभी-कभी जहाज के पेंदे और बडे समुद्री कछुओ के नीचे चिपक जाती हैं इससे कुछ शिकारी इन्हें पालकर इनसे समुद्री कछुओ को पकडते हैं।

चिपिट मत्स्य वर्ग

(ORDER HETESOSAMATA)

इस छोटे वर्ग में भी विचित्र शकल-सूरत की चपटी मछलियाँ रखी गयी हैं, जो सब समुद्र की रहनेवाली हैं। ये सब अपने स्वादिष्ठ मास के लिए प्रसिद्ध हैं।

इन मछलियो की बनावट में एक खास बात यह होती है कि इनकी दोनो आँखें प्राय उसी ओर रहती हैं जिस ओर का हिस्सा रगीन रहता है। इनके चपटे शरीर के रगीन हिस्से की ओर दाँतो की सख्या भी अधिक रहती है।

इन मछलियो का शरीर चपटा होता है जिसका एक हिस्सा रगीन और दूसरा सादा रहता है। सादे हिस्से पर कभी-कभी चित्तियाँ भी रहती हैं। इन मछलियो को इनके चपटे शरीर के कारण विदेशो में सोल (Sole) और हमारे यहाँ 'कुकुरजीभी' मछली कहते हैं।

इन मछलियो के पृष्ठपक्ष और गुह्यपक्ष काफी दूर तक फैले रहते हैं। इनमें से कुछ के वदन पर सेहर रहते हैं और कुछ विना सेहर की ही रहती हैं।

सोल परिवार

(FAMILY PSETTODES)

इस परिवार में चपटे शरीरवाली मछलियाँ हैं जो सोल या कुकुरजीभी मछलियाँ कहलाती हैं। इनका एक हिस्सा सादा तथा दूसरा रगीन रहता है और इनकी ोनो आँखे रगीन हिस्से की ही ओर रहती हैं। इनका मास वहुत स्वादिष्ठ होता है।

वैसे तो इस परिवार मे अनेक मछलियाँ है, लेकिन यहाँ अपने यहाँ की प्रसिद्ध जेवरा-मछली का ही वर्णन किया जा रहा है।

जेवरा मछली

(ZEBRA SOLE)

जेवरा मछली हमारे यहाँ की समुद्री मछली है जो बगाल की खाडी मे पायी जाती है। इसका शरीर चपटा होता है और, जैसा इनके नाम से स्पष्ट है, इसके सारे भूरे शरीर पर जेवरा की तरह आडी-आडी काली धारियाँ पडी रहती है।

जेवरा का शरीर बहुत चपटा होता है। इसीलिए इसे अग्रेजी मे जेवरा सोल और हमारे यहाँ धारीदार तल्ला कहते है। यह देखने मे भी जूते के तल्ले-सी जान पडती है।

जेवरा मछली

इस मछली का मुँह बहुत छोटा, पतला और बायी ओर को रहता है लेकिन इसकी दोनो आँखे दाहिनी ओर ही रहती है, जिनमे ऊपर की आँख नीचे की आँख से कुछ आगे की ओर बढी रहती है।

जेवरा मछली का पृष्ठपक्ष (Dorsal Fin) इसके थूथन के पास से शुरु होकर दुम तक पहुँच जाता है और इसका एक वक्षपक्ष Pectoral Fin इसके धारीदार हिस्से की ओर रहता है। दूसरा वक्ष-पक्ष सादे शरीर की ओर या तो रहता ही नहीं और अगर हुआ भी तो बहुत छोटा रह जाता है।
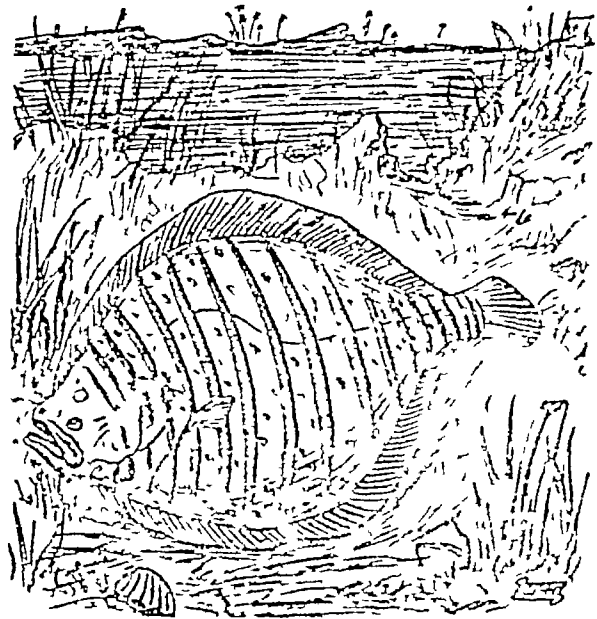
जेवरा मछली की लबाई लगभग डेढ फुट होती है।

सूर्य मत्स्य वर्ग

(ORDER TLECLOGNATHI)

इस वर्ग की मछलियाँ भी अपनी शक्ल-सूरत में अन्य मछलियो से भिन्न होती है। इन्हें अपना बदन फुला लेने की ऐसी सहूलियत प्रकृति की ओर से मिली है कि ये उसकी मदद से जरूरत पडने पर अपने कद को फुला कर काफी वडा बना लेती है। ऐसा करने पर इनके वदन पर के छोटे-छोटे कॉटे खडे हो जाते है और इनका शरीर एक कॅटीले कवच से ढक जाता है। वैसे इनका शरीर बहुत मुलायम होता है और इनका गलफड, जो इनके वक्षपक्ष (Pectoral Fins) के आगे रहता है, पतला होता है। इनका मुँह भी छोटा और सॅकरा होता है।

इनमे से कुछ का बदन तो एक दम चिकना होता है और कुछ के बदन पर खुरदुरे सेहर रहते है। कुछ ऐसी भी है जिनका शरीर कॉटो या कडे प्लेटो से ढका रहता है। ये मछलियाँ खाने के काम नही आती क्योकि इनमें से अधिकतर ऐसी है जिनका मास जहरीला होता है।

इस परिवार की सव मछलियाँ समुद्र में रहती है लेकिन इनमे से दो-एक ऐसी भी है जो हमारी वडी नदियो में चली आती है।

वैसे तो इस वर्ग में कई परिवार है, लेकिन यहाँ उनमें से तीन परिवारो का वर्णन किया जा रहा है, जिनमे की मछलियाँ हमारे यहाँ काफी सख्या में पायी जाती है।

ये परिवार इस प्रकार हैं —

१ सूरजमछली परिवार, २ गौरैयामछली परिवार, ३ साहीमछली परिवार। इनमे से प्रत्येक परिवार से एक-एक मछली का वर्णन किया जा रहा है।

सूरजमछली परिवार

(FAMILY MOTIDAE)

इस परिवार मे सूरजमछलियाँ इकट्ठी की गयी है, जिन्हें यह नाम उनके गोल-मटोल शरीर के कारण मिला है। ये छोटी भी होती है और वडी भी। वडी मछलियाँ लगभग एक टन वजन तक की हो जाती है। यहाँ एक प्रसिद्ध सूरजमछली का वर्णन किया जा रहा है।

सूरज मछली

(SUN FISH)

सूरज मछली समुद्र मे रहनेवाली मछली है जो अपने भारी शरीर और बड़े कद के कारण प्रसिद्ध है। यह सभी गरम समुद्रो मे पायी जाती है और अपने गोल शरीर के कारण अन्य मछलियो के बीच पहचान ली जाती है। इसके पृष्ठपक्ष और गुह्य-पक्ष ऊपर और नीचे की ओर चपटे फलवाले बल्लम-से निकले रहते है जिसके बीच मे इसकी पखीनुमा दुम गोलाई लिये रहती है। इसके वक्षपक्ष बहुत छोटे-छोटे पखीनुमा, दोनो बगल, रहते है।

सूरज मछली

यह वजन मे प्राय एक टन तक की होती है। यह अक्सर समुद्र की ऊपरी सतह के पास आकर धूप सेकती रहती है लेकिन अपने भोजन की तलाश में यह समुद्र की बहुत गहराई तक चली जाती है।

यह सामान्यत तो प्राय दो फुट लबी हो जाती है लेकिन इसकी किसी-किसी जाति की मछलियाँ ६-७ फुट लबी और वजन मे भी लगभग एक टन को हो जाती है।
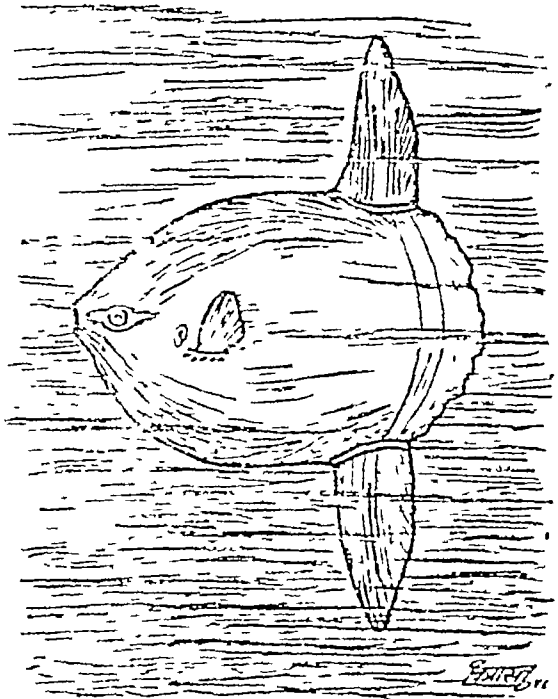
गौरैयामछली परिवार

(FAMILY TRIODONTIDAE)

इस परिवार में गौरैया मछलियो को एकत्र किया गया है जिनके दांत एक मे

मिलकर कडे प्लेट बन गये हैं। ये मछलियाँ अपने शरीर को काफी फुला लेती हैं। यहाँ केवल एक गौरैया मछली का वर्णन किया जा रहा है।

गौरैया मछली

(GLOBE FISH)

गौरैया मछली को बगाल मे टेपा माछ कहते है, लेकिन इसका गौरेया मछली नाम अधिक सार्थक है, क्योकि जब यह अपना शरीर फुला लेती है तो इसकी शकल ठीक गौरैया-सी हो जाती है।

गौरैया मछली

इसके समुद्री भाई तो काफी बडे कद के होते है लेकिन मीठे पानी में पायी जानेवाली यह मछली ३-४ इच से ज्यादा बडी नही होती। हमारे देश में यह बगाल और उडीसा की नदियो में पायी जाती है और कभी-कभी गगा आदि मे होकर बिहार और उत्तर प्रदेश तक चली आती है।

इसकी पीठ चौडी और बीच में उभरी रहती है और इसके बदन के सारे सुफने गोलाकार रहते हैं। इसका ऊपरी रग पिलछौंह या घानीपन लिये हरा रहता है, लेकिन नीचे का हिस्सा सफेद होता है।

इस मछली के शरीर में हवा की थैली होती है जिसके कारण यह अपने शरीर को फुलाकर गोल-मटोल हो जाती है। शरीर को फुला लेने से इसे तैरने मे आसानी होती ही है, साथ ही साथ शकल के भयानक हो जाने से इसके दुश्मन भी इससे तो डरने लगते हैं।

साहीमछली परिवार

(FAMILY DIODONTIDAE)

इस परिवार मे उन मछलियो को रखा गया है जिनके शरीर पर कडे काँटे रहते हैं। खतरे के समय जब यह अपना शरीर फुला लेती हैं तो ये काँटे खडे हो जाते है और

मछलियाँ साही की तरह दीखने लगती है। यहाँ इनमे से एक प्रसिद्ध मछली का वर्णन किया जा रहा है।

साही मछली

(PORCUPINE FISH)

साहीमछली भी समुद्र की निवासिनी है जो गौरैया मछली की तरह खतरे को निकट देखकर अपने शरीर को फुला लेती है।

यह कई फुट लबी होती है और इसके शरीर पर साही की तरह तेज काटे होते है, जो इसके शरीर के फूलने पर सीधे खडे हो जाते है और तब यह बहुत भयानक दिखाई पडने लगती है। पूरी तरह से फूल जाने पर यह इधर-उधर भागने मे असमर्थ हो जाती है और समुद्र की लहरो मे पडकर आगे-पीछे आती-जाती है लेकिन ऐसी दशा मे इस पर सहसा दुश्मनो को हमला करने का साहस नही होता।
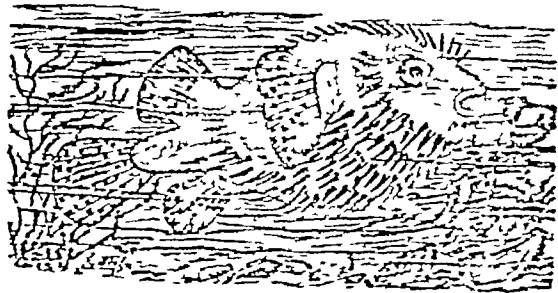
साही मछली

अपनी साधारण अवस्था मे आने के लिए यह अपने भीतर की हवा मुँह और गलफडो से निकाल देती है। हवा निकलते समय बडी तेज आवाज होती है और इसका शरीर पिचककर छोटा और लबा हो जाता है।

खड ११

उभयचर श्रेणी

(CLASS REPTILIA)

उभयचर उन जीवधारियो को कहा जाता है जो जल और स्थल दोनो जगह आसानी से रह सकते हैं। इनका शैशवकाल मछलियो की तरह पानी मे बीतता है, जब ये उन्ही की तरह गलफडो से साँस लेते हैं लेकिन बडे होने पर उनके गलफड बन्द होकर फेफडो का विकास हो जाता है और फिर सरीसृपो अथवा स्तनप्राणियो की तरह उनके साँस लेने का व्यापार इन्ही फेफडो से चलने लगता है। इन जीवो को हम मछलियो और सरीसृपो के बीच की कडी कह सकते हैं।

उभयचरो मे ज्यादातर तो ऐसे हैं जो अपना कुछ समय सूखे मे और बाकी पानी मे बिताते हैं, कुछ ऐसे भी हैं जो पानी मे जाते ही नही और कुछ इनमे ऐसे भी हैं जो शायद ही कभी पानी से बाहर निकलते हो।

खुश्की पर रहनेवाले उभयचरो की खाल सूखी और खुरदुरी होती है और पानी में रहनेवालो की चिकनी, लेकिन कुछ उभयचर ऐसे भी हैं जिनकी खाल पर एक प्रकार की नमी-सी रहती है। इस नमी के कारण वे पानी को सोख सकते हैं और ऐसा करने से फिर उन्हे पानी पीना नही पडता। ऐसे उभचर किसी नम जगह मे पत्थर या मिट्टी के नीचे दबे पडे रहते है।

उभयचरो का कद न बहुत बडा होता है और न बहुत छोटा ही। पानी मे रहनेवाले उभयचरो के पैर जलपाद होते हैं जिससे उन्हे तैरने मे बडी आसानी हो जाती है। इनका मुख भी चौडा होता है और कुछ के छोटे और तेज दाँत भी रहते हैं। ये सब सीधे-सादे निरीह जीव हैं जो ऐसे ही कभी दबाव मे पडकर भले ही किसी को काट लें, वैसे ये खतरे को देखकर भागना और छिपना ही ज्यादा पसन्द करते हैं।

उभयचर अण्डज प्राणी है जो साल मे एक बार अण्डे देते है। अण्डे देने के लिए ये पानी मे चले जाते है, जहाँ इनकी मादा हजारो की तादाद मे अण्डे देती है। ये अण्डे बहुत छोटे, चिपचिपे और गोल होते है जो आपस में एक पतली झिल्ली से जुडे रहते है।

अण्डो के फूटने पर इनमे से जो छोटे मछली की शकल-सूरत के बच्चे निकलते है वे टैडपोल (Tadpole) या छूछू मछली कहलाते है। ये मछलियो की तरह गलफडो से साम लेते है, लेकिन इनमे एक विशेषता यह भी होती है कि इनका कोई अग कट जाने पर वह फिर नये सिरे से निकल आता है।

ये इस अवस्था मे तो शाकाहारी रहते है लेकिन बडे हो जाने पर एकदम मासाहारी हो जाते है और कीडे-मकोडे तथा केचुए आदि कुछ भी इनसे नही बचने पाते।

उभयचर श्रेणी वैसे तो कई वर्गों मे विभक्त है लेकिन यहाँ केवल मेढक वर्ग का ही वर्णन किया जा रहा है, क्योकि अन्य वर्ग के प्राणी या तो पृथ्वी पर से सदा के लिए लुप्त हो गये है या हमारे देश मे वे पाये ही नही जाते।

मेढक वर्ग

(ORDER SALIENTIA)

मेढक हमारे बहुत परिचित जीव है जो पानी और खुश्की दोनो स्थानो पर रह लेते है। लेकिन अधिक सख्या उन्ही की है जिनका ज्यादा समय पानी मे बीतता है। यही नही, कुछ ने तो पेडो पर तक चढने का अभ्यास कर लिया है जहाँ से वे उडनेवाली गिलहरियो की तरह हवा में तैरकर जमीन पर उतरते है।

यह सब होते हुए भी अभी तक मेढक जल से अपना सम्बन्ध नही तोड सके है और आज भी उनका जन्म पानी मे ही होता है। मेढकी पानी मे अण्डे देती है जिनमें से मछलीनुमा छोटे-छोटे बच्चे निकलते है जो छूछू मछली या टैडपोल कहलाते है। कुछ समय बाद इनकी शकल कई परिवर्तनो को पार करके मेढको-जैसी हो जाती है। यह परिवर्तन बडा रोचक होता है जिसका सक्षिप्त वर्णन यहा दिया जा रहा है। लेकिन इनको ठीक-ठीक समझने के लिए किसी शीशे के बर्तन मे टैडपोलो को पाल-कर उनका निरीक्षण करना ही ठीक होगा।

मेढकी समय आने पर किसी जलाशय मे जाकर हजारो की सख्या में अण्डे देती है जिन पर नर एक प्रकार का रस फैला देता है । ये अण्डे पानी पर इधर-उधर तैरते फिरते है। ये एक प्रकार के लसीले पदार्थ में मालाकार जुटे रहते है जिस पर पानी का कोई असर नही हो पाता। अण्डे धूप की गरमी से विना सेये ही फूट जाते है जिनमें से टैडपोल निकलते है। शुरू-शुरू में टैडपोल का सिर बडा और दुम लम्बी होती है जिसके सहारे यह तैरता है। इसका मुँह शार्क मछली की तरह नीचे की ओर रहता है। इस समय इसके मछलियो की तरह गलफड होते है जिससे यह पानी में घुली हुई हवा से साँस लेता है और पानी से बाहर निकाल लेने पर यह मछलियो की तरह मर जाता है। कुछ दिनो बाद पहले टैड-

पोलो के दोनो पिछले पैर निकलते है। फिर धीरे-धीरे दोनो अगले पैर भी निकल आते है। इनकी दुम थोडा-थाडा करके एकदम गायब हो जाती है। इस समय ये कद मे वहुत छोटे रहने पर भी अपने मेढक के असली रूप मे आ जाते है । इस रूपान्तर के वाद ये पानी के वाहर रहने के योग्य हो जाते है क्योकि उनके मछलियो जैसे गलफड नही रह जाते वलिक उसके स्थान पर खुली हवा मे साँस लेने के लिए फेफडे उत्पन्न हो जाते है। इनका यह रूपान्तर चार-पाच सप्ताह मे जाकर कही पूर्ण हो पाता है और लाखो-अरबो अण्डे नष्ट होने पर कही जाकर एक मेढक वन पाता है।
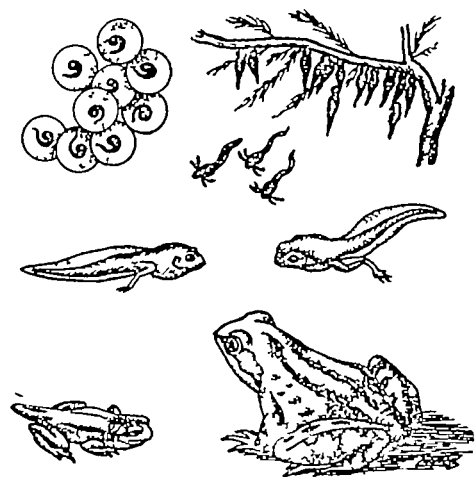
मेढको की शरीर-रचना के बारे मे कुछ जानने के पहले खुश्की के काले मेढक और अन्य मेढको का मोटा-मोटा भेद जान लेना चाहिये। इनकी वनावट प्राय एक जैसी ही होती है लेकिन काले या टर मेढक की खाल और मेढको की तरह पतली और चिकनी न होकर सूखी और खुरदरी होती है। उस पर छोटे-छोटे मस्से से उभरे रहते है।

मेढक का कद छोटा और गठा हुआ होता है। उसके अगले पैर छोटे होते हैं जो उसके सिर और कन्धे को उठाये भर रहते है, लेकिन उसके पिछले पैर लम्बे और मजबूत होते है। अगली और पिछली टाँगो की लम्बाई मे इतना भेद होने से मेढक कगारू की तरह उछलकर चलता है। बैठे रहने पर यह अपनी पिछली टाँगो को सिकोड़-कर रखता है, लेकिन तैरते समय यह इन्ही टाँगो को बाहर की ओर फेककर पानी मे आगे की ओर बढता है।

ज्यादातर जीवधारियो के शरीर को सिर, गरदन और धड इन्ही तीन हिस्सो मे बाँटा जाता है, लेकिन मेढक की बनावट कुछ अजीब-सी होती है। इसके गरदन होती ही नही जिससे यह देखने मे बहुत बदशक्ल लगता है। इसका सिर और माथा बडा और तिकोना-सा रहता है जिसमे बडी-बडी उभरी-सी आँखे रहती हैं। इन आँखो को घुमा-फिराकर मेढक अपने चारो ओर की चीज देख सकता है और खतरा निकट देख-कर इसे वह काफी भीतर तक खीच लेता है जिससे ऊपर चोट न लगे। रात मे उसकी आँखे और स्पष्ट और चमकीली दीख पडती है।

मेढक के कान का गोल-सा छिद्र इसकी आँख के पीछे ही रहता है जिस पर एक प्रकार की पतली झिल्ली चढी रहती है। इसका मुँह इसके कद को देखते हुए बडा ही कहा जायगा जो खोलने पर कान के नीचे से दूसरे कान के नीचे तक खुल जाता है। मेढको मे वैसे तो प्राय किसी के निचले जबडे मे दाँत नही होते, लेकिन इनमें से कुछ जातियाँ ऐसी भी हैं जिनका ऊपरी जबडा भी बिना दाँत के रहता है। दाँत न होने के कारण ये काटने में असमर्थ रहते है, लेकिन कुछ मेढक ऐसे जरूर है जिनके बदन से एक प्रकार का हलका जहरीला पदार्थ निकला करता है।

मेढको की जबान की बनावट भी कम आश्चर्यजनक नही होती। यह पीछे की तरफ जुटी न रहकर आगे की तरफ जुटी रहती है जैसे किसी ने इसकी लम्बी जबान को भीतर की तरफ दुहरा दिया हो। किसी कीडे को पकडते समय मेढक अपनी इस दुहरी हुई जबान को बाहर की तरफ फेकता है और फिर उसे उठाकर भीतर की ओर कर लेता है। यदि जबान का निशाना ठीक पडा तो कीडा उसी मे चिपककर उसके मुँह मे चला आता है क्योकि इसकी जीभ पर एक प्रकार का ऐसा चिपचिपा पदार्थ रहता है जिससे से कीडो का फँसकर निकलना सभव नही होता। यह वैसे तो कीडे-मकोडो को पूरा ही निगल जाता है, लेकिन अगर कभी बडा कीडा इसके मुँह मे आ गया तो यह उसे अपने

दॉतो के सहारे भीतर ढकेल लेता है। कीडे-पतिगो को निगलते समय मेढक अपनी आँखे इस प्रकार बन्द कर लेता है जैसे इसे बडा स्वाद आ रहा हो। कीडो का नाश करके एक प्रकार से मेढक हमारा बहुत फायदा करते है, क्योकि ये जो कीडे खाते है उनमे से ज्यादा सख्या उन्ही की है जो हमारे लिए हानिकारक है। इनकी सख्या का हमे अन्दाजा इसी से लग सकता है कि जितने कीडे-मकोडे मेढको द्वारा प्रतिवर्ष खाये जाते है उन्हे यदि एक पक्ति मे बगल-बगल रखा जाय तो वे हमारी पृथ्वी को घेर लेगे।

मेढको के अगले छोटे पैरो मे चार-चार उँगलियाँ होती है। इनको यदि हम गौर से देखे तो इनमे इनके अँगूठे का अवशेष चिह्न भी दिखाई पड जायगा, किन्तु उसे उँगली या अँगूठा नही कहा जा सकता। पिछले पैरो मे पॉच-पॉच उँगलियाँ होती है जो बत्तखो की तरह आपस मे एक प्रकार की झिल्ली से जुडी रहती है। इनके शरीर का चमडा बूढो-जैसा ढीला-ढाला रहता है जिस पर बाल या शल्क आदि नही रहते। ज्यादा सख्या तो उन्ही मेढको की है जिनका शरीर चिकना होता है, लेकिन टर या काले मेढक के सिर और बदन पर छोटे-छोटे मस्से से उभरे रहते है। इन मस्सो या ग्रन्थियो से अक्सर एक प्रकार का जहरीला पदार्थ निकलता रहता है जिसकी वजह से इस पर शत्रु कम हमला करते है। इस मेढक के इन ग्रन्थियो के अलावा कुछ और ग्रन्थियाँ भी रहती है जो एक प्रकार का रस निकालती है। इस रसीले पदार्थ से इसका शरीर भीगा-भीगा-सा जान पडता है।

मेढको के शरीर मे पसलियाँ नही होती। इससे सॉस लेने पर इनका सीना हम लोगो की तरह फूल नही आता। इनके सॉस लेने का ढग भी निराला है। अगर हम किसी मेढक को गौर से देखे तो हमे उसके गले के नीचे का हिस्सा उठता-बैठता दिखाई पडेगा। यह हिस्सा इसके सॉस लेने पर ठीक उसी प्रकार उठता गिरता है जैसे हम लोगो का सीना। इसका कारण यह है कि सॉस लेते समय पहले यह अपनी नाक-द्वारा हवा को अपने मुँह मे भर लेता है, फिर अपनी नाक के दोनो छिद्रो को बन्द करके अपने मुँह का नीचे का हिस्सा ऊपर की ओर ढकेलता है। ऐसा करने से इसके मुँह के भीतर की हवा दबकर फेफडे की ओर चली जाती है और वहाँ से वह मासपेशियो को सिकोडकर मुँह मे लौटा दी जाती है। इस गदी हवा को मेढक मुँह से बाहर निकाल देता है। यही कारण है कि बार बार मुँह मे हवा भरकर उसको फेफडे की ओर ढकेलने और फेफडे से हवा मुँह मे लाकर तब उसे बाहर निकालने में हम मेढक के गले को बार-बार उठते और गिरते हुए देखते है। अगर मेढक का मुँह

बराबर खुला रखा जाय तो वह उसी तरह मर जायगा जिस प्रकार हम लोग मुँह और नाक बन्द कर देने पर मर जाते हैं। मेढक को साँस लेने के इस तरीके के अलावा अपनी त्वचा के द्वारा हवा खींचने की सहूलियत भी मिली हुई है। पानी में रहनेवाले मेढक पानी में घुली हुई हवा को थोडा-बहुत अपनी खाल में सोख सकते हैं। त्वचा से साँस लेने में समर्थ होने के कारण जाडों में जब ये शीतशायी होते हैं तो बिना नाक से साँस लिये इसी खाल के छिद्रों से ही इनका काम चलता रहता है।

मेढक की कर्कश और भद्दी बोली से ऐसा कौन है जो अपरिचित होगा। बरसात में तो यह दादुर-ध्वनि इतनी ज्यादा बढ जाती है कि नींद आना मुश्किल हो जाता है। वर्षा ऋतु में इनकी बोली इसलिए ज्यादा नहीं बढ जाती कि वे अधिक पानी के कारण खुश होकर ज्यादा बोलने लगते हैं बल्कि इनके ज्यादा बोलने का मुख्य कारण यह होता है कि यही समय इनके जोडा बाँधने का होता है। उस समय खुश्की में रहनेवाला काला मेढक भी पानी में कूद पडता है और जी खोलकर बोलता है।

मेढकों के बोलने का ढंग भी कुछ अजीब-सा है। हम लोग जब बोलते हैं तो होता यह है कि हवा हमारे फेफडे के भीतर के स्वर-यंत्र के ऊपर चलकर मुँह के द्वारा बाहर निकाल दी जाती है। इसीलिए कुछ भी बोलते समय हमारा मुँह खुल जाता है। लेकिन मेढक ऐसा नहीं करता। वह फेफडे से हवा मुँह तक तो लाता है, लेकिन फिर उसे वह मुँह से बाहर नहीं निकालता बल्कि उसी हवा को फिर फेफडे में ले जाता है। इसीलिए बोलते समय उसका मुँह नहीं खुलता।

मेढक की आँख, कान और नाक ये ही प्रधान इन्द्रियाँ कही जा सकती हैं। यह स्वाद पाता है या नहीं, यह ठीक से नहीं कहा जा सकता और न यही अभी तक ज्ञात हो सका है कि इसको सूँघने की शक्ति प्रकृति ने दी है या इसके नाक के बडे-बडे छिद्र केवल साँस लेने के लिए ही हैं। इसकी दृष्टि भी तेज नहीं होती। यह न तो ज्यादा दूर ही देख सकता है और न ज्यादा नजदीक ही।

मेढकों के रंग के बारे में एक नियम नहीं बनाया जा सकता क्योंकि इनका रंग बहुत कुछ इनके पास-पडोस के अनुरूप हो जाता है। कूडे में छिपकर रहनेवाले मेढक जहाँ ज्यादा काले हो जाते हैं वहीं उसी जाति के मेढक, जो खुली जगह में रहते हैं हलके रंग के ही रह जाते हैं। पानी में रहनेवाले मेढकों का रंग जहाँ सिलछौंह होता है वहीं पेड पर रहनेवाले कठमेढे प्रायः हरे रंग के होते हैं। इसके अलावा इनको थोडा-बहुत रंग बदलने की सहूलियत भी प्रकृति ने दे रखी है। इनकी त्वचा के नीचे रंग के कोष

रहते है जो वाहर के आलोक से सकुचित होकर और फैलकर मेढक का रग बहुत कुछ उसके पास-पडोस के अनुरूप कर देते है।

मेढक शीतकाल मे कम दीख पडते है क्योकि कुछ सरीसृपो की तरह इनको किसी निरापद स्थान पर जाडे भर सोना ज्यादा पसन्द है। इनमे से अधिकाश विना कुछ खाये-पिये मिट्टी, पत्थर या कूडे के नीचे छिपकर जाडे के दो-तीन महीने सुप्तावस्था मे ही विता देते है। इस समय यदि मेढको को छू भी लिया जाय तो भी इनकी कुम्भकर्णी निद्रा नही टूटती।

मेढको का मुख्य आहार कीडे-मकोडे है, लेकिन ये मरे हुए कीडो को नही खाते। ये केवल जिन्दा और चलते हुए कीडो पर ही आक्रमण करते है।

मेढको के वदन पर से भी साँप और छिपकलियो की तरह केचुल निकलती है जिसे ये फौरन खा जाते है।

मेढक वैसे तो वहुत ही निरीह जन्तु है और मनुष्यो का वे वहुत उपकार भी करते है लेकिन उनके शत्रुओ की सख्या कम नही है। पहले तो इनके अण्डो को ही मछलियाँ आदि वचने नही देती, फिर उनमे से वचकर जो मेढक पैदा होते है उनकी जान के अनेक ग्राहक हो जाते है जिनमे कछुए, साँप, चिडियाँ आदि मुख्य है। मनुष्यो को भी इनकी कुछ जातियो की पिछली टाँगे वडी स्वादिष्ठ लगती है और दूसरे देशो मे प्रतिवर्ष लाखो मेढक खाने के लिए मारे जाते है।

मेढको की वैसे तो अनेक जातियाँ हमारे देश मे पायी जाती है, लेकिन मोटे तौर पर इनको तीन हिस्सो मे वाँटा जा सकता है—

१—पानी मे रहनेवाले मेढक—इनमे गोपाल मेढक और मेचकुर आदि शामिल है।
२—खुश्की पर रहनेवाले मेढक—इनमे काले या टर मेढक (भेक) आते है।
३—पेड पर रहनेवाले मेढक—इनमे पेड पर के कठमेघे आदि रखे गये है।

मेढक के वारे मे सव कुछ जानकर भी अन्त मे यह जान लेना जरूरी है कि यह रोशनी का वहुत प्रेमी होने पर भी एक नम्वर का मूर्ख होता है और यही कारण है कि इसे अन्य जीवधारियो की तरह पालतू करना असभव-सा है।

मेढको का यह वर्ग काफी वडा और विस्तृत है, जिसे सुविधा के लिए अनेक परिवारो मे विभक्त किया गया है, लेकिन यहाँ केवल दो परिवारो का वर्णन दिया जा रहा है जो इस प्रकार है—

१—दादुर परिवार—Family Ranidae
२—भेक परिवार—Family Bufonidae

दादुर परिवार

(FAMILY RANIDAE)

मेढकों का यह परिवार बहुत बड़ा है जिसके मेढक सारे संसार में फैले हुए हैं।

इस परिवार में इतने तरह के मेढक हैं कि इनकी रहन-सहन और आदतों में बहुत भेद रहता है। इनमें से कुछ तो अपना सारा जीवन पानी में ही बिता देते हैं और कुछ ऐसे हैं जिन्होंने पानी से अपना नाता एकदम तोड़ लिया है और जो अण्डे देने के लिए भी पानी में नहीं जाते। कुछ ऐसे हैं जो खुश्की में रहते हैं, लेकिन अपने अण्डे पानी में देते हैं और कुछ अपना समय जल-थल दोनों में बिताते हैं और अपने अण्डे झरनों आदि के बहते पानी में देते हैं। कुछ खुश्की पर रहते हैं तो कुछ पानी में ही अपना समय बिताते हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो मिट्टी में घुसे रहते हैं और कुछ ने पेड़ों पर रहने की आदत डाल ली है।

लेकिन इन सब में उन्हीं की संख्या अधिक है जो अपना अधिक समय खुश्की पर बिताते हैं और अपने अण्डे पानी में देते हैं। इन्हीं में हमारा वह मेढक भी है जिससे हम बहुत परिचित हैं और जिसे हम बराबर अपने आस-पास देखते हैं। यहाँ उसका तथा उसके साथ के कई प्रसिद्ध मेढकों का वर्णन दिया जा रहा है।

मेढक (गोपाल)

(BULL FROG)

इस मेढक को अपने यहाँ गोपाल मेढक भी कहा जाता है। इसको यह नाम शायद इसलिए मिला है कि यह हमारे यहाँ का सबसे बड़ा मेढक है। हमारे देश में यह हिमालय की तराई से लेकर सारे भारतवर्ष में पाया जाता है।

गोपाल की पीठ पर का रंग भूरा, गदा हरा या जैतूनी रहता है जिस पर गहरे रंग की चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। इसकी रीढ़ के ऊपर पीले रंग की एक धारी पड़ी रहती है जिससे इसको पहचानने में देरी नहीं लगती। इसके अगले पैरों की उँगलियाँ

ऊपरी हिस्सा हरापन लिये जैतूनी रहता है जिस पर गहरे रंग की चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। इसकी रीढ़ पर एक हल्के रंग की धारी रहती है और जाँघ के दोनों बगली हिस्सों पर काले धब्बे पड़े रहते हैं।

मेढकी वैसे तो सभी प्रकार के जलाशयों में पायी जाती है, लेकिन इसके रहने का मुख्य स्थान पानी से भरे धान के खेत हैं।

मेचकुर

(WATER SKIPPING FROG)

मेचकुर हमारे देश में प्राय सभी जलाशयों में पाये जाते हैं जो अपना अधिक समय पानी ही में बिताते हैं। ये पानी की सतह पर पिछले दोनों पैर फैलाकर ठहरे रहते हैं और पास जाने पर पानी के ऊपर ही ऊपर कूदते हुए थोड़ी दूर जाकर फिर उसी तरह ठहर जाते हैं।

मेचकुर

ये कद में ढाई इंच के होते हैं और देखने में मेढक के बच्चे जान पड़ते हैं। इनके शरीर का ऊपरी हिस्सा भूरा या जैतूनी होता है जिन पर उसी रंग की चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। इनकी जाँघों के पिछले हिस्सों पर अक्सर दो कत्थई धारियां पड़ी रहती हैं और निचला भाग कत्थई चित्तियों से भरा रहता है।
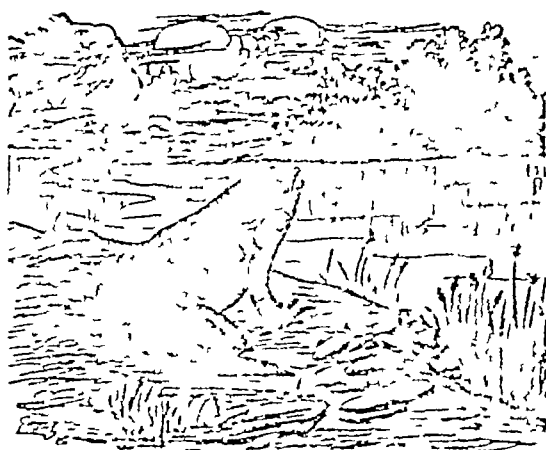
मदोवर

(FAT FROG)

मदोवर खुश्की पर रहनेवाला मेढक है जो अपने छोटे और फूले हुए सिर के कारण देहातों में मदोवर के नाम से प्रसिद्ध है। यह हमारे यहां प्राय सब स्थानों

पर पाया जाता है, लेकिन मिट्टी के भीतर गडे रहने के कारण यह बहुत कम दिखाई पडता है।

मदोबर

इसके शरीर की खाल चिकनी होती है, लेकिन शरीर की ऊपरी सतह पर दाने-दाने से उभरे रहते हैं जो दूर से चित्ते से दीख पडते हैं।

यह लगभग ढाई इच का होता है। इसके शरीर का ऊपरी भाग जैतूनी या भूरा और पेट का हिस्सा एकदम सफेद रहता है। इसका मुख्य भोजन चीटियाँ है।

भेक परिवार

(FAMILY BUFONIDAE)

भेक परिवार में वे काले मेढक रखे गये है जो कलमेघा या टर कहलाते है। इनका पहला नाम तो इनके काले रग के कारण और दूसरा इनकी कर्कश बोली के कारण मिला है। गोपाल मेढक की तरह ये भी सारे ससार में फैले हुए है।

इन मेढको की और गोपाल की शक्ल-सूरत और शरीर की वनावट प्राय एक-जैसी ही रहती है। फर्क सिर्फ इतना रहता है कि इनके शरीर की खाल चिकनी न रहकर रूखी और खुरदुरी रहती है जिस पर दाने-दाने से उभरे रहते है।

टर महीने में दो वार साँप की तरह केंचुल वदलते है। उस समय इनकी पुरानी खाल पीठ के पास फट जाती है जिसे ये अपने पिछले पैरो से निकालकर खा जाते है। इन मेढको की वोली वहुत ही कर्कश होती है और वरसात में तो अक्सर रात मे इनके मारे सोना हराम हो जाता है। इतना शोर मचाने के वावजूद भी ये हमारे लिए वहुत लाभदायक सिद्ध हुए है क्योकि ये कीडे-मकोडो को खाकर हमारी खेती और वाग-वगीचो की वहुत रक्षा करते है।

इनकी मादा पानी मे अण्डे देती है जो दुहरी पंक्ति मे मोती की लडी के समान फैले रहते है। इस परिवार मे वैसे तो कई मेढक है, लेकिन सबकी आदते एक-जैसी होने के कारण यहाँ अपने यहाँ के प्रसिद्ध काले मेढक या टर का वर्णन दिया जा रहा है।

भेक (टर)

(TOAD)

गोपाल की तरह टर भी हमारे देश का बहुत परिचित मेढक है जो प्राय सभी जगह पाया जाता है। हिमालय प्रदेश मे तो यह दस हजार फुट की ऊँचाई तक पहुँच जाता है। गोपाल की तरह यह हमेशा पानी मे रहना पसन्द नही करता। इसे जल और थल दोनो जगह देखा जा सकता है लेकिन पानी मे ज्यादा इसे खुश्की ही पसन्द है।

भेक (टर)

टर गोपाल से कद मे कुछ छोटा होता है। इसके थूथन से लेकर मलछिद्र तक की लम्बाई लगभग ६ इच तक रहती है। इसके सिर के दोनो ओर उभरी हुई लकीर-सी रहती है और सिर के पीछे जहा ग्रन्थियाँ रहती है वहाँ का हिस्सा भी उभरा-उभरा रहता है। इसका थूथन छोटा और दबा-दबा-सा रहता है और इसके मुँह मे दाँत नही होते।

टर की अगली टाँगो की उँगलियाँ जुटी नही रहती लेकिन पिछली टाँगो की उगलियाँ आधी दूर तक जुटी रहती है। इसकी खाल की ऊपरी सतह पर मसे से उभरे रहते है।

भेक का रग भूरापन लिये कल्छौंह रहता है और इसके निचले हिस्से पर कभी-कभी चित्तियाँ पडी रहती है। नर के गले मे स्वरग्रन्थि का स्थान काफी उभरा रहता है। यह गोपाल की तरह कूद-कूदकर नही चलता बल्कि जमीन पर धीरे-धीरे चलता है। इसका मुख्य भोजन कीडे-मकोडे है।

खड १२

सरीसृप श्रेणी

(CLASS REPTILIA)

सरीसृप उन जानवरो को कहते है जो पृथ्वी पर रेगकर चलते है। इनमे मगर, घडियाल , कछुए, सॉप तया सब प्रकार की छिपकलियॉ आ जाती है।

ससार मे सरीसृपो की सख्या अव जरूर वहुत कम हो गयी है, लेकिन एक समय ऐसा भी था जब हमारी पृथ्वी पर इन्ही का राज्य था और ये सारे भूमण्डल के उसी प्रकार स्वामी थे जिस प्रकार आज स्तनपायी जीव है। इनका राज्य-काल सौ-दो सौ वर्षो तक नही बल्कि दस करोड वर्षो के लगभग रहा, लेकिन इमी समय पृथ्वी पर भयकर हिमयुग आया और ये सरीसृप जो वडे काहिल और स्थूलकाय हो गये थे अपने स्थान से भाग न सकने के कारण उस भीपण सर्दी मे सदा के लिए सो गये।

यह तो हम सभी जानते है कि सरीसृपो ने उभयचरो से अपना विकास किया और धीरे-धीरे वे खुश्की पर रहनेवाले जीव हो गये, लेकिन इस प्रकार विकसित होने के लिए उन्हे हजारो लाखो वर्षो तक वहुत कठिन सघर्प करना पडा। उन्होने पहले अपने पैरो का विकास किया जिससे उन्हे खुश्की पर चलने-फिरने की सहूलियत हो गयी। फिर धीरे-धीरे उनके गलफड सदा के लिए वेकार हो गये और वे फेफडे द्वारा खुली हवा मे सॉस लेनेवाले जीव हो गये।

धीरे-धीरे पृथ्वी पर से शीतकाल समाप्त हुआ और ग्रीष्म ऋतु का आगमन होने से चारो ओर वनस्पति की वहुतायत हो गयी। सरीसृपो को अनायास ही भोजन की इतनी प्रचुरता मिल जाने से उनकी सख्या और उनका कद दिन दूना रात चौगुना वढने लगा। वे थोडे ही दिनो मे सारी पृथ्वी पर छा गये और उनमे से कुछ ने खुश्की पर रहना ठीक न समझकर फिर पानी का आश्रय लिया और कुछ ऐसे साहसी निकले कि उन्होने आकाश मे अपना राज्य स्थापित करने का निश्चय किया। इन हवा मे उडनेवाले

सरीसृपों में पक्षांगुष्ठ या टेरोडेक्टल (Pterodactyl) बहुत प्रसिद्ध है जिसने चमगादड़ की तरह अपने शरीर के दोनों ओर मजबूत झिल्ली का विकास करके हवा में उड़ने का अभ्यास कर लिया था। टेराडेक्टल छोटे बड़े सभी तरह के थे। उनमें छोटे तो गौरैया के बराबर थे लेकिन बड़ों के झिल्लीदार पंखों का फैलाव २०-२० फुट तक पहुंच जाता था।

टेरोडेक्टल

इन उड़नेवाले सरीसृपों का सिर बड़ा और लंबा होता था और उनके मुंह में तेज दांत रहते थे। उनके रहन-सहन और स्वभाव के बारे में हमें अधिक ज्ञात नहीं हो सका है, लेकिन ऐसा अनुमान किया जाता है कि उनकी उड़ान चिड़ियों की तरह तेज न होकर भारी और भद्दी रही होगी।
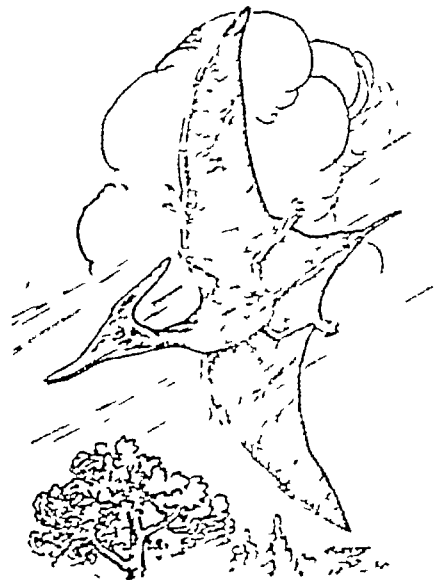
पृथ्वी पर रहनेवाले सरीसृपों में डाइनासोर (Dianosarus) बहुत प्रसिद्ध थे। इनमें से छोटे-छोटे कदवाले तो छिपकलियों के बराबर थे, लेकिन इनमें से कुछ का कद तो इतना बड़ा कि वे १०० फुट से भी लंबे हो गये। ब्रैन्कियोसोरस (Branchiosaurus) का कद तो लगभग १२० फुट तक पहुंच गया और वे वजन में भी करीब ८० टन के हो गये। इन भीमकाय सरीसृपों में कुछ तो पृथ्वी पर रहनेवाले हो गये और कुछ कीचड़ से भरे हुए जलाशयों में अपना समय बिताने लगे। इनमें से कुछ तो शाकाहारी थे और कुछ मांसाहारी। शाकाहारियों का कद मांसभक्षी डाइनासोरों से बड़ा था क्योंकि उन्हें खाने की कोई कमी नहीं थी। वे मांसाहारियों की तरह फुर्तीले भी नहीं थे और न उनके शरीर पर आत्म-रक्षा के लिए कड़े प्लेटों का कवच ही था। वे बहुत ही काहिल जीव थे जो अपना सारा समय दलदलों में बिताते थे। इनमें कुछ की शक्ल छिपकलियों से मिलती थी तो कुछ नक्रियों के आकार के थे। कुछ का

शरीर गैंडे के अनुरूप था तो कुछ अजीब तरह की लबी गरदन और छोटे सिर वाले जीव थे जो देखने में बहुत भद्दे और भोडे दिखाई पडते थे ।

जैसा पहले बताया गया है, सरीसृप रेंगनेवाले जीव है जिनका शरीर कडे प्लेटो या शल्को से ढका रहता है जिससे उनकी सूखी हवा से रक्षा होती है। ये सब ठढे खून के प्राणी कहलाते है जिसका अर्थ यह होता है कि इन प्राणियो के शरीर का तापमान उस स्थान की जलवायु के अनुसार घटता-बढता रहता है। वे चिडियो की तरह अपने शरीर के तापमान को परो की सहायता से सदैव एक जैसा नही रख सकते और गरमी के लिए उन्हें धूप का सहारा लेना पडता है। उनके शरीर में कम गरमी रहती है और वे चिडियो तथा स्तनप्राणियो से काहिल और कम फुर्तीले होते है।

इन सरीसृपो में मगर और घडियाल कद में सब से बडे होते है। उसके बाद समुद्री कछुओ का नम्बर आता है। कुछ साँप भी काफी बडे होते हैं, लेकिन छिपकलियो में गोह को छोडकर सब छोटे ही कद की होती है। ये सब अण्डज जीव है, लेकिन इनमें से कुछ ऐसे भी है जो बच्चे जनते है। प्राय सभी सरीसृप अपने अण्डो को चिडियो की तरह नही सेते बल्कि वे उन्हें मिट्टी मे गाडकर उनकी ओर जाते भी नही। ये अण्डे अपने आप सूरज की गरमी से फूटते है।

वैसे तो बहुत-से जीवो के शरीर की ऊपरी खाल उधड जाती है और उसका स्थान नयी खाल ले लेती है, लेकिन सरीसृपो मे यह परिवर्तन स्पष्ट रूप से दिखाई पडता है। साँप का केंचुल बदलना हम सभी ने देखा होगा। वे प्राय महीने मे एक बार अपनी केंचुल बदलते है और तब उनके शरीर की पुरानी खाल ढीली होकर निकल जाती है। छिपकलियाँ भी केंचुल बदलती है, लेकिन वे अपनी पुरानी खाल या केंचुल को फौरन खा डालती है। इसीसे हमें साँप की केंचुल की तरह छिपकलियो की केचुल कभी नही पडी मिलती।

अन्य जीवो की तरह सरीसृपो का रग-रूप भी उनके पास-पडोस के अनुरूप रहता है। पानी में रहनेवाले मगर जहाँ गदे हरे या जैतूनी रग के होते है वही मैदानो में रहनेवाले साँप और छिपकलियाँ हलके भूरे या सिलेटी रग की होती है। जगलो में रहनेवाले सरीसृप चितकबरे या धारीदार होते है जिसमे वहाँ की धूपछाँह में वे भली भाँति छिप जायें।

बोली के मामले मे सरीसृप दूसरे जीवो से जरूर पिछड़े हुए है। वे न तो चिड़ियो की तरह मीठी बोली बोल पाते है और न लगूरो की तरह शोर ही मचा सकते है। साँप जरूर फुफकारते है और छिपकलियाँ भी थोड़ा-बहुत चिट-चिट की आवाज कर लेती है, लेकिन कछुए बिलकुल नही बोलते। मगर भी कुछ घुरघुराहट कर लेते है, लेकिन इनमे से कोई भी स्पष्ट बोली नही बोल पाता।

इन सब जीवो मे साँप जरूर जहरीला और मगर खूँख्वार होता है, लेकिन ज्यादा सख्या उन्ही की है जो सीधे और निरीह है। साँप भी अकारण ही किसी पर आक्रमण नही करते और अपने जहरीले दाँतो का प्रयोग केवल आत्म-रक्षा के समय ही करते है।

ये सब जीव प्राचीन काल के जीव है जिनका जीवन वर्तमान काल की परिस्थितियो के अनुकूल नही हो पाया है। ये न तो अपने शरीर पर बालो का विकास कर पाये है और न सर्दी से बचने के लिए उन्होने अन्य किसी साधन का सहारा लिया है जिससे इनके शरीर का तापमान सदैव एक-जैसा रहे। लेकिन बहुत दिन पहले एक समय ऐसा भी था जब इन पिछड़े जीवो ने ही साहस करके समुद्रो को छोड़कर खुश्की पर रहने का अभ्यास डाला था और हजारो लाखो वर्षो तक निरन्तर सघर्ष करके उन्होने अपने पैरो का विकास कर अपने शरीर को उनके सहारे पृथ्वी पर से ऊपर उठाया था।

इनमे से जिन जीवो ने अपने शरीर पर बालो का विकास करके पृथ्वी पर अपना आधिपत्य कायम किया वे स्तनप्राणी कहलाये और जिन्होंने अपने शरीर पर परो का विकास करके आकाश पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया वे पक्षी के नाम से प्रसिद्ध हुए।

सरीसृपो की बड़ी श्रेणी को कई वर्गो मे विभाजित किया गया है जो इस प्रकार है—

१—नक्र वर्ग—Order Crocodilia

२—कच्छप वर्ग—Order Chelonia

३—गोधा वर्ग—Order Squamata

४—सर्प वर्ग—Order Ophidia

यहाँ इन चारो वर्गो का और उनके अन्तर्गत प्रसिद्ध परिवारो का वर्णन दिया जा रहा है जिनमे के जीव हमारे यहाँ पाये जाते है।

(१) नक्र वर्ग

(ORDER CROCODILIA)

नक्र वर्ग मे यद्यपि बडे कद के जीव है, लेकिन उनकी सख्या बहुत थोडी ही है। ये सब हमारे बहुत परिचित जीव है।

इस वर्ग मे ससार के सब प्रकार के मगर और घडियाल एकत्र किये गये है जो छोटी-बडी नदियो, तालो तथा समुद्रो मे पाये जाते है।

इन दोनो जीवो के बारे मे कुछ जानने से पहले हमे इन दोनो का भेद अच्छी तरह समझ लेना चाहिये क्योकि इन दोनो का स्पष्ट अतर न समझने से हम अक्सर इनके बारे मे धोखे मे पड जाते है।

मगर हमारे यहाँ का ही नही दूसरे देशो का भी जलचर है जिसने प्राय सभी उपयुक्त जलाशयो पर अपना आधिपत्य जमा रखा है, लेकिन घडियाल का निवास सिर्फ भारत ही है। यहाँ भी वह केवल गगा, सिन्धु, ब्रह्मपुत्र, महानदी और उनकी सहायक नदियो मे ही पाया जाता है। इसकी शरीर-रचना, रहन-सहन और आदते तो बहुत कुछ मगर से मिलती-जुलती है, लेकिन शकल-सूरत मे यह मगर से भिन्न होता है। मगर के मुँह की बनावट तो बहुत-कुछ गोह और छिपकली-सी रहती है, लेकिन घडियाल का थूथन काफी लम्बा रहता है जिसके सिरे पर एक गोला कुब्बक-सा उठा रहता हे। दूसरा खास भेद इसमे और मगर मे यह होता है कि मगर जहाँ मछलियो के अलावा अन्य पशुओ का शिकार कर लेता है, घडियाल सिर्फ मछलियो से ही अपना पेट भरता है। इसका कारण यह है कि इसके गले का छेद बहुत सॅकरा होता है।

घडियाल दीर्घजीवी और बहुत बडे कदवाले जलचर है जिनकी लम्बाई समुद्री मगरो की बराबरी भले ही न कर सके, लेकिन ये अन्य सभी मगरो से लम्बे होते है। बडे होने पर ये २०-२५ फुट तक के हो जाते है, और कही-कही ये ३० फुट तक के पाये गये है।

घडियाल मछली खानेवाले जीव है जो आदमियो पर हमला नही करते, लेकिन दबाव मे पडने पर ये अपनी दुम से ऐसा वार करते है जो मनुष्यो के लिए घातक सिद्ध होता है।

हमारे यहाँ मगरो की दो जातियाँ पायी जाती है। एक समुद्री मगर, जो केवल समुद्री किनारो पर रहते है और दूसरे नदियो के मगर जो हमारे यहाँ की करीब-

करीब सभी नदियों और जलाशयों में पाये जाते हैं। यही नहीं, यहाँ के दलदलों में भी इनकी काफी बडी सख्या फैली हुई है।

समुद्र के मगर मीठे पानी के मगरों से शकल-सूरत में तो कुछ ही भिन्न होते हैं लेकिन इन दोनों की लम्बाई में काफी फर्क रहता है। नदी के मगर जहाँ २५ फुट तक लबे होते हैं, समुद्री मगरों की लम्बाई ३० से ३५ फुट तक पहुँच जाती है।

मगर छिपकली की शकल-सूरत के पर उससे बहुत बडे कदवाले जलचर हैं। इनके बच्चे वैसे तो छिपकली से मिलते-जुलते होते हैं लेकिन उनका बडा सिर, आरीनुमा दुम और मुँह बन्द होने पर भी खुले हुए दाँत उन्हें छुटपन से ही छिपकलियों से अलग रखते हैं।

मगर के अगले पैरों में पाँच-पाँच उगलियाँ होती हैं जो या तो सादी होती हैं या जड के पास थोडी दूर तक एक प्रकार की झिल्ली से जुडी रहती हैं। इनके पिछले पैरों में चार ही चार उँगलियाँ होती हैं जो बत्तखों की तरह आपस में झिल्ली से जुडी रहती हैं।

मगर गदे हरे या जैतूनी रग का होता है। इसकी पीठ पर के शल्क (Scales) बहुत मोटे और उभरे-उभरे से रहते हैं। इन शल्कों के नीचे कडी हड्डी की तह रहती है जिसके कारण ये इतने मजबूत हो जाते हैं कि इन पर जल्द बन्दूक की गोली भी असर नहीं करती। इनके पेट पर की खाल के नीचे यद्यपि हड्डी की तह नहीं रहती, फिर भी वह कम मोटी नहीं होती। इसी खाल के जूते और सूटकेस वगैरह बनते हैं।

मगर की दुम दोनों बगल से चपटी और बहुत ही मजबूत होती है जिससे वह तैरने का काम तो लेता ही है साथ-ही-साथ इसी से वह ऐसा जबरदस्त हमला भी करता है कि उसकी चोट में आ जाने पर किसी का बचना मुश्किल हो जाता है। उसकी दुम के ऊपरी हिस्से पर आरे जैसा कटाव रहता है। मगर जब किसी शिकार को पानी के किनारे से कुछ दूर देखता है तो वह अपनी दुम से इस तेजी से वार करता है कि शिकार लिपटकर पानी में चला जाता है। उसकी दुम की मार से छोटी शिकारी नावें तक उलट जाती हैं। तैरते समय वह अपने पैरों को समेट लेता है और अपनी दुम को इधर-उधर हिलाकर पानी में बहुत तेजी से आगे बढता है।

मगर के मुँह की बनावट कम विचित्र नहीं होती। वह जब मुँह खोलता है तो ऐसा जान पड़ता है कि वह अपना ऊपरी जबडा उठा रहा है, लेकिन वास्तव में वह ऐसा

अपना निचला जबडा ही चलाता है। उसके गले की नली में एक परदा-सा रहता है जो उसके मुँह खोलने पर इस तरह बन्द हो जाता है कि फिर पानी मुँह के भीतर नही जा सकता। इसी सहूलियत के कारण मगर पानी के भीतर मुँह खोलकर मछलियो का शिकार करता फिरता है क्योकि गले के परदे से उसके मुँह के भीतर या फेफडे में पानी जाने का डर तो रह ही नही जाता। उसका गला घडियाल की तरह सँकरा न होकर काफी चौडा और फैलनेवाला होता है जिससे वह छोटे शिकार को समूचा ही निगल सकता है। उसके जबडे वहुत ही मजबूत और दाँत वहुत तेज होते है जिनके बीच में पडकर किसी का जीता निकलना सम्भव नही। उसकी जीभ जरूर चौडी होने पर भी नीचे की ओर इतनी दूर तक जुडी रहती है कि वह उसे बाहर नही निकाल सकता।

मगर के नथुने और आँखें ऊपर की ओर तो रहती ही हैं, साथ-ही वे इतनी उभरी रहती हैं कि वह अपना शरीर पानी के भीतर रखकर भी अपनी आँखे और नथुनो को पानी के बाहर निकाले रख सकता है। उससे इसको साँस लेने की जो सुविधा होती है वह तो होनी ही है, साथ ही साथ उसको अपने शिकार पकडने में भी सहूलियत हो जाती है। वह दूर से ही पानी की सतह के ऊपर अपनी उभरी आँखो को निकालकर शिकार को देख लेता है और पानी में डुबकी लगाकर ठीक उस जगह आ जाता है जहाँ शिकार वडी लापरवाही से पानी पीता रहता है। फिर उसकी पकड मे अगर वह आ गया तो आ गया नही तो वह अपनी दुम का वार करने में जरा भी नही चूकता। पकडे हुए शिकार को वह एक वार मे ही हमेशा नही निगल जाता। यदि वह वडे शरीर वाला प्राणी हुआ तो मगर उसे पानी मे दबोचकर मार डालता है और फिर उसे किसी निर्जन स्थान में किनारे के किसी गढे या खोह में रख देता है और सडने के वाद अपनी सहूलियत के मुताविक नोच-नोच कर खाता रहता है। मगर वैसे तो आदमियो पर हमला नही करता और ज्यादा पानी छपछपाये जाने पर अक्सर वहाँ से भाग भी जाता है। लेकिन एक-दो वार आदमियो का शिकार कर लेने पर वह लागुन और आदमखोर हो जाता है। मछलियो के अलावा वह छोटे-मोटे जानवरो का ही शिकार नही करता वल्कि वडे-वडे गाय-बैलो को भी आसानी से मार लेता है।

मगर की आँखें उभरी होने पर भी उसके भारी शरीर को देखते हुए छोटी ही कही जायँगी। ये हलके रग की होती है और इनके भीतर एक प्रकार की पारदर्शी झिल्ली-सी चढी रहती है जिनको मगर पानी के भीतर जाते ही चढा लेता है। कुछ लोगो का यह

विश्वास है कि मगर की आँखें उसका मर्मस्थल है और यदि उसकी आँखों में उँगली डाली जाय तो वह अपने पकड़े हुए शिकार को छोड़ देता है। आँखों के अलावा उसका मर्मस्थल उसकी कनपटी है जहाँ ठीक से गोली लगने पर ही वह मर सकता है। गोली लगने पर अगर वह पानी के भीतर चला गया तो फिर उसकी लाश दूसरे तीसरे दिन ही मिल सकती है क्योंकि सड़न शुरू हो जाने के बाद जब पेट में गैस भर जायगी तभी तो इतनी भारी लाश ऊपर आ सकेगी।

मगर का मस्तिष्क वैसे तो बहुत छोटा होता है लेकिन ये गजब के चालाक और मक्कार होते हैं। सुनसान किनारों पर जब ये धूप सेंकने के लिए सूने में पड़े रहते हैं तो ऐसा जान पड़ता है जैसे ये बेधड़क सो रहे हैं। लेकिन आदमियों की जरा भी आहट इन्हें मिली नहीं कि ये फौरन ही पानी में सरक जाते हैं।

इनकी पाचनशक्ति गजब की होती है जिससे इनकी निगली हुई हड्डियाँ तक बड़ी आसानी से गल जाती हैं। अपनी पाचनशक्ति को और तेज करने के लिए ये प्रायः पत्थर के टुकड़ों को निगल लेते हैं जो मारे जाने पर अक्सर इनके पेट से निकलते हैं।

मगर की ग्रन्थियों का एक जोड़ा तो जबड़े के पास रहता है और दूसरा उस जगह पर रहता है जहाँ इसकी जाँघें पेट के पास मिलती हैं। इन ग्रन्थियों से एक प्रकार की तेज मुश्क की-सी बू निकलती रहती है जो इनकी उपस्थिति का पता दे देती है। नर में यह बू मादा की अपेक्षा ज्यादा तेज होती है और इसकी जाँघ के पासवाली ग्रन्थि, जिसे लोग इसकी नाभि के नाम से पुकारते हैं, अच्छे दामों पर बिक जाती है। यह सुपारी की शकल की होती है और अक्सर लोग इसको ताकत के लिए खाते हैं। लेकिन डाक्टरी मत से इस विश्वास में कुछ भी तत्त्व नहीं है।

मगर उन सरीसृपों में से है जो जल और स्थल दोनों पर रह लेते हैं लेकिन जिनका ज्यादा समय जल में ही बीतता है। जल में रहकर भी इनको मछलियों की तरह पानी में घुली हुई हवा से साँस लेने की सुविधा नहीं मिली है। इसी से इन्हें थोड़ी-थोड़ी देर पर पानी से बाहर साँस लेने के लिए अपने नथुनों को बाहर निकालना पड़ता है। इन नथुनों में भी एक प्रकार का पर्दा-सा रहता है जिससे इनके भीतर पानी जाने की कोई सम्भावना नहीं रहती। वैसे तो यह कुछ ही देर बाद साँस लेने के लिए बाहर निकलता है, लेकिन जरूरत पड़ने पर यह ५-६ घंटे तक पानी के भीतर रह जाता है।

मगर बहुत ही सतर्क और खूँखार जीव है। इसकी देखने और सूँघने की शक्ति बहुत तेज होती है। मनुष्यो को इससे बहुत होशियार रहना चाहिये क्योकि मौका पडने पर यह हम लोगो की जान लेने में नही चूकेगा। खासकर सध्या के समय जब मछलियाँ गहरे पानी से हटकर छिछले पानी या किनारे की ओर चली आती है तो उस समय मगर और घडियाल उनके शिकार के लालच में अक्सर किनारे पर ही रहते है।

वैसे तो मगर जल में रहनेवाले जीव है, लेकिन इन्हे अक्सर किसी निरापद स्थान में सूखे पर धूप लेते देखा जा सकता है। धूप लेते समय ये अक्सर अपना मुँह खोले रहते हैं। उस समय एक वात देखने योग्य होती है। जब घडियाल या मगर मुँह खोलकर धूप में लेटते है तो एक प्रकार की छोटी टिटिहरी जाति की चिडिया उनके मुँह के भीतर घुसकर उनके खूँखार दाँतो से छोटे-छोटे कीडे और मास के रेशो को निकालकर खाती रहती है। यह खेल उन छोटी चिडियो के लिए जानलेवा हो सकता है लेकिन ऐसा कभी नही होता कि घडियाल अपना मुँह सहसा वन्द कर ले क्योकि ये चिडियाँ जब उसके मुँह के भीतर घुसकर कीडो को खाती है तो मगरो को वहुत आराम मिलता है और वे बडी खुशी से मुँह खोलकर इन चिडियो की सेवा को स्वीकार कर लेते है।

मगर अण्डज जीव है जिनकी उत्पत्ति अण्डो से होती है। मादा एक बार मे कई दर्जन अण्डे देती है जो रेत में यो ही धूप में सूखने के लिए छोड दिये जाते है। अण्डे देने के वाद माता-पिता किसी से भी उनका कोई सम्वन्ध नही रह जाता। ये अण्डे सफेद रग के गोल आकार के होते है जिनकी लम्बाई ३-४ इच की रहती है। अण्डो के फूटने पर उनमें से छोटे-छोटे छिपकली जैसे वच्चे निकलते है जिनका सिर छिपकलियो से वडा रहता है। शुरू-शुरू मे इनके आगे की ओर एक दाँत रहता है जिसे डिम्वदत (Egg tooth) कहते है। इसी से वच्चे अण्डे का कडा छिलका तोडकर अण्डे से वाहर निकलते है। यह दाँत कुछ दिनो में ही गिर जाता है।

मगर वहुत दिनो तक जीनेवाले जीव है। यदि मनुष्यो से इनकी दुश्मनी न होती तो आज सचमुच इनकी सख्या वहुत ज्यादा हो गयी होती। लेकिन इस दुश्मनी के अलावा अपने मास और चमडे के लिए भी इन्हें काफी वडी सख्या में प्रतिवर्ष आदमियो का शिकार होना पडता है।

मगर के शिकार का मुख्य तरीका तो बन्दूक की गोली से मारने का है जिसके लिए बहुत सतर्कता की जरूरत पड़ती है। शिकारी लोग या तो किश्ती पर से इनका शिकार खेलते हैं या फिर उस स्थान पर पहले से गढा खोदकर उसी में छिपे रहते हैं जहाँ अक्सर मगर या घड़ियाल धूप सेकने के लिए बाहर निकलते हैं। सन्नाटा पाकर जब घड़ियाल या मगर किनारे पर निकलकर लेटता है तो थोड़ी ही दूर गड्ढे में छिपा हुआ शिकारी उठकर उसे गोली का निशाना बना लेता है।

दूसरा तरीका उनको कांटे से फँसाने का है जो देखने में बहुत क्रूर जान पड़ता है। किसी छोटे जीव या बकरे वगैरह की आंत में एक मजबूत कटिया पिरोकर उसे ऐसे स्थान में फेंका जाता है जहाँ मगरों के रहने की सम्भावना रहती है। जब मगर उसे निगल जाता है तो उसकी अद्भुत पाचन-शक्ति के कारण मांस का हिस्सा शीघ्र ही पच जाता है और कटिया जाकर उसकी आंत में धँस जाती है। फिर मजबूत डोरी के सहारे, जिसमें कटिया बंधी रहती है, उसको खींचकर निकाल लेना बहुत आसान हो जाता है।

नक्र वर्ग वैसे तो कई परिवारों में बाँटा गया है, लेकिन यहां केवल एक मगर परिवार का ही वर्णन दिया जा रहा है जिसमें हमारे यहाँ के प्रसिद्ध मगर और घड़ियाल हैं।

मगर परिवार

(FAMILY CROCODILIDAE)

मगर परिवार में हमारे यहाँ के मगर और घड़ियाल हैं जिनका वर्णन ऊपर दिया जा चुका है। मगर हमारे देश के प्राय सभी जलाशयों में पाये जाते हैं, लेकिन घड़ियाल गंगा आदि बड़ी नदियों में ही मिलते हैं।

घड़ियाल यद्यपि कद में मगर से बड़ा होता है लेकिन वह मछलीखोर जीव है जो मनुष्यों के लिए मगर की तरह खतरनाक नहीं होता। यहां मगर और घड़ियाल दोनों का संक्षिप्त वर्णन दिया जा रहा है।

मगर

(CROCODILE)

मगर हमारे यहाँ घड़ियालों से अधिक संख्या में पाये जाते हैं। इनकी दो जातियां हमारे देश में पायी जाती हैं। एक तो वे मगर जो हमारी नदियों में रहते हैं और दूसरे जो समुद्र के निवासी हैं।

नदियो के मगर सारे भारत की नदियो, दलदलो और तालो में रहते हैं और वे घडियालो से ज्यादा खतरनाक समझे जाते है।

इनका मुँह या थूथन घडियालो की तरह लम्बा न होकर सुअर या गोह की तरह छोटा और चौडा होता है जिसमे ऊपरी और निचले जबडो में हर तरफ २९ तक दाँत रहते हैं। थूथन जड के पास की चौडाई से डेढगुना बडा रहता है जो जड के पास चौडा होकर आगे की ओर पतला होता जाता है। जबड का पाँचवाँ दाँत सबसे बडा होता है और नीचे के जबडे का चौथा दाँत जबडा बद होने पर ऊपरी जबडे के छेद में बैठ जाता है जिससे बद होने पर इनका मुँह जल्द नही खोला जा सकता।

मगर का सिर खुरखुरा जरूर रहता है, लेकिन उस पर कुछ ज्यादा उभार नही रहता। हाँ, पिछली टाँगो पर कुछ हिस्सा जरूर उभरा-सा रहता है। इनकी उँगलियाँ जड के पास ही जुडी हुई रहती हैं लेकिन बाहरी अँगूठा झिल्ली से करीब-करीब पूरा जडा रहता है। इनके पैर के बाहरी किनारे पर दाँत-से कटे रहते है।

मगर

मगर लम्बाई में प्राय १२ फुट के होतेहै, पर कभी-कभी इससे बडे मगर भी पाये जाते है। घडियाल की तरह इनके शरीर पर भी कडे शल्क या सेहर रहते हैं जिसमें पीठ के शल्को के नीचे हड्डी रहती है। इनकी गुद्दी पर चार चौडे चौकोर शल्क रहते हैं

तितलियाँ
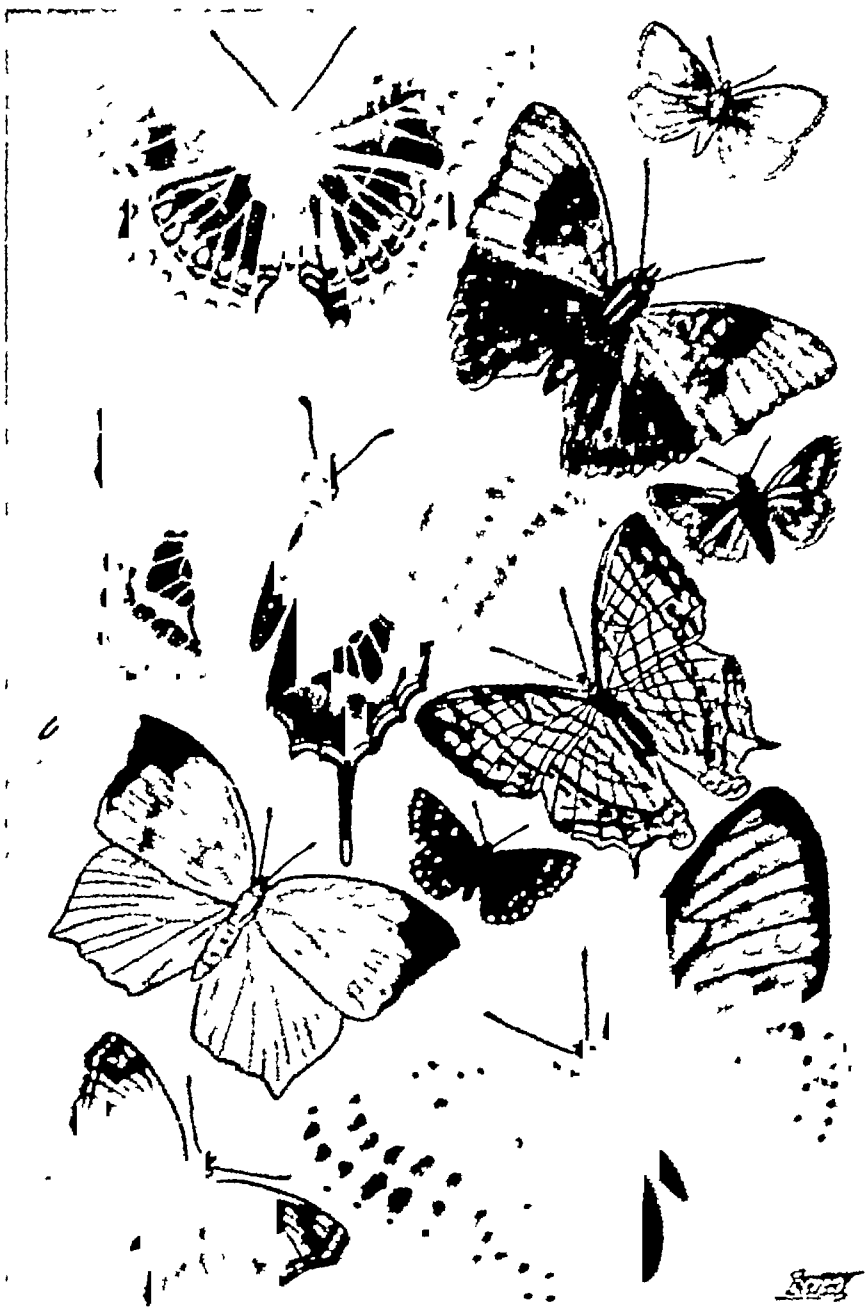
और पीठ पर के कड़े शल्क खड़ी धारियों जैसे जान पड़ते हैं जो चार से छ तक रहती हैं। मगर का ऊपरी रंग जैतूनी होता है जिन पर कभी-कभी काली चित्तियाँ भी रहती हैं। नीचे या पेट का हिस्सा घड़ियालों की तरह पिलछौंह सफेद होता है।

मगरों को कीचड़ बहुत पसन्द है और इसीलिए ये अक्सर जंगली नदियों के गहरे कुंड या दलदलों में रहते हैं। कभी-कभी तो कीचड़ के सूख जाने पर ये मेढकों की तरह जमीन में गड़े रहते हैं और फिर पानी भर जाने पर ही बाहर निकलते हैं।

इनका मुख्य भोजन मछली और जलपक्षी हैं लेकिन मौका पाने पर ये आदमियों और जानवरों पर हमला करने में नहीं चूकते।

बरसात के शुरू में पानी के किनारे लंबी सुरंग जैसे बिल खोदकर मगरी बीस या उससे ज्यादा अण्डे देती है जो करीब चालीस दिन में फूट जाते हैं। इन अण्डों से छिप-कली-जैसे बच्चे निकलते हैं जो घड़ियाल के बच्चों से छोटे होते हैं।

घड़ियाल

(GHARIAL)

घड़ियाल हमारे यहां का बहुत परिचित मांसाहारी जलचर है, जिसे हममें से बहुतों ने देखा होगा। कुछ लोग घड़ियाल को मगर की तरह आदमी पर हमला करने-वाला जीव मानते हैं लेकिन इसका सँकरा जबड़ा और गले का पतला सुराख मछलियां पकड़नेके लिए भले ही उपयुक्त हो, मनुष्य को समूचा निगलने की सामर्थ्य उसमें नहीं होती। फिर भी इसे एकदम हानिकारक न मानना ठीक नहीं जान पड़ता क्योंकि यह आदमी को भले ही न निगले लेकिन दबाव में पड़ने पर उसे पकड़ सकता है और अपनी मजबूत दुम से मार तो सकता ही है। और ये दोनों अवस्थाएँ हमारे लिए घातक हो सकती हैं।

घड़ियाल की एक ही जाति हमारे यहाँ पायी जाती है जो हमारी गंगा, सिन्धु, ब्रह्मपुत्र, महानदी और उनकी सहायक नदियों में फैली हुई है।

घड़ियाल की लंबाई २० से २५ फुट तक होती है, लेकिन ये ३० फुट तक के पाये गये हैं, जिनमें इनका लम्बा और पतला मुंह भी शामिल है। पुराने नरों के थूथन के सिरे पर का गोल हिस्सा, जिसे नूबो कहते हैं, लोटे की तरह ऊपर उठा रहता है।

घडियाल की ऊपरी और निचली सतह पर चारखाने की शकल के शल्क या सेहर रहते है जो आपस में जुटे रहने पर भी अलग-अलग जान पडते है। ऊपरी हिस्से के सेहरो के नीचे हड्डियो की तह रहती है जिससे इसकी पीठ बहुत कडी और मजबूत रहती है लेकिन नीचे के सेहरो के नीचे हड्डी नही होती और यही का चमडा सिझाकर जूते और सूटकेस वगैरह बनाने के काम मे आता है।
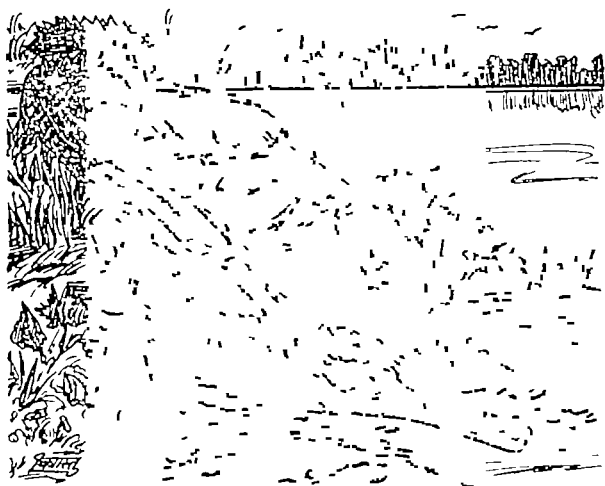
घडियाल

घडियाल की नीचे की उगलियाँ एक तिहाई और बाहर की दो तिहाई हिस्से तक जुडी रहती है और उसके चारो पैरो पर कुछ कडा हिस्सा रीढ-सा उठा रहता है।

घडियाल के बच्चे, जिन्हें प्राय मगरौठी कहते है, हलके जैतूनी रग के होते है, पर बडे और पुराने होने पर इनका रग गाढा जैतूनी या काई जैसा हो जाता है जिस पर गाढी भूरी चित्तियाँ या धारियाँ भी रहती है।

इनकी आँखे काफी उभरी-उभरी होती है जिनमे एक पारदर्शी झिल्ली रहती है। पानी के भीतर देखते समय यह झिल्ली अपने आप सरककर इनकी आँखो के सामने आ जाती है, जिसमे फिर इनकी आँखो के भीतर पानी जाने का खतरा नही रहता।

(२) कच्छप वर्ग

(ORDER CHELONIA)

कच्छप वर्ग भी बहुत बडा नही है लेकिन इसमे सब प्रकार के जल और स्थल के कछुए एकत्र किये गये है। जल मे रहनेवाले कछुए प्राय सब प्रकार के जलाशयो मे पाये जाते है। ये मीठे और खारे दोनो प्रकार के पानी मे रह लेते है।

कछुए अपने ढग के निराले जीव है जिनकी बनावट अजीब डिब्बे जैसी होती है। इनका शरीर कडे खपडे का होता है जिसमे से इनके चारो पैर, छोटी दुम और लम्बी गरदन बाहर निकली रहती है। इनके शरीर का डिब्बेनुमा ढाचा हड्डी जैसे कडे पदार्थ का रहता है जिसका निचला हिस्सा तो चपटा और नीरस रहता है, लेकिन ऊपर का हिस्सा, जो खपडा कहलाता है, गुम्बज-सा गोलाई मे उठा रहता है।

कछुए वैसे तो जल मे रहनेवाले जीव है, लेकिन इनमे से कुछ जातियां ऐसी भी है जो सूखे मे भी रह लेती है। इस प्रकार कछुओ को दो हिस्सो मे बाटा जा सकता है—जलवासी कछुए और स्थलवासी कछुए। इन दोनो की शरीर-रचना, आकृति तथा स्वभाव आदि बहुत कुछ एक-जैसे होते है। इसमे इन दोनो का वर्णन यहा साथ ही दिया जा रहा है।

कछुए हमारे बहुत परिचित जीव है जिनकी अनेक जातिया इस देश मे फैली हुई है। हमारे यहा शायद ही कोई जलाशय हो जहाँ ये न पाये जाते हो। नदी और ताल ही नही, इनकी कुछ जातियो ने समुद्रो को भी अपने रहने का स्थान चुना है लेकिन कुछ ऐसे भी है जिन्हे दलदल या सूखे स्थान ही पसद आते है।

तीनो प्रकार के कछुओ मे थोडा ही फर्क रहता है। नदियो या तालाबो मे रहने-वाले कछुओ की उँगलिया बतखो की तरह जालदार (Webbed) होती है तो समुद्र के रहनेवाले कुछ कछुओ के पैर मछलियो के सुफनो की तरह पतवारनुमा होते है जिनसे उन्हे तैरने मे बहुत आसानी हो जाती है।

जैसा पहले बताया गया है कछुओ की पीठ और पेट का हिस्सा हड्डी जैसे कडे आवरण से ढका रहता है। इस पर कभी तो एक प्रकार की झिल्ली-सी चढी रहती है जिससे वह चिकना लगने लगता है और कभी कडे सल्को के कारण उभार-सा जान पडता है।

ये खपड़े इतने सख्त और मजबूत होते है कि उन पर लाठी तथा बरछी तक का जल्द असर नही होता।

कछुओ का सिर चपटा रहता है जो सिरे पर जाते-जाते तिकोना हो जाता है। इनकी गरदन जरूर बहुत लम्बी और लचीली होती है जिसको जरूरत पडने पर ये अपने खपड़े के भीतर और बाहर कर सकते है। इनके मुँह के भीतर और जानवरो की तरह दाँत नही होते बल्कि दाँतो की जगह एक प्रकार का कडा हड्डी का प्लेट-सा रहता है जिसके सहारे ये बडी आसानी से मास तक काट लेते है।

कछुओ के पैर मजबूत होते हुए भी छोटे होते है जिनको इनके भारी शरीर को सँभालने मे काफी दिक्कत पडती है। खुश्की पर चलते समय ये अपने अगले पजो से जमीन को पकड लेते है और फिर उसी के सहारे इनका शरीर घिसट-घिसटकर आगे बढता है। इनके अगले पैर पीछे की ओर मुडे रहने के बजाय बाहर की ओर निकले रहते है जो देखने मे बहुत बेडौल जान पडते है। इनके पजो मे नाखून भी होते है जो भिन्न-भिन्न जातियो मे कम और ज्यादा रहते है।

कछुए के छोटे पैर उसके पानी मे तैरने अथवा खुश्की मे चलने मे भले ही सहायक होते हो लेकिन वे उसके चित हो जाने पर बेकार-से हो जाते है। कछुए को चित कर देने पर वह बेबस हो जाता है। उस समय वह अपनी लम्बी गरदन बाहर निकालकर और उसी को जमीन पर टेककर उलटने की कई बार कोशिश करता है और थोडे उद्योग के बाद अत मे उसी के सहारे सीधा होने मे वह सफल हो जाता है।

कछुए के शरीर का ज्यादा हिस्सा तो खपड़े से ही ढका रहता है, लेकिन उसकी दुम, पैर और गरदन का हिस्सा ऐसा रहता है जिसपर कडी खाल चढी रहती है। उसके पैर की खाल काफी मोटी और ढीली-ढीली-सी रहती है जिस पर सेहर से उभरे रहते है। उसकी गरदन और माथे पर का चमडा जरूर पतला रहता है।

कछुओ के ओठ मोटे और भद्दे होते है और उनकी दुम बहुत छोटी रहती है जिसका थोडा ही हिस्सा इनके खपड़े के बाहर दिखाई पडता है।

कछुओ के नोकीले थूथन के ऊपर नाक के दो छिद्र स्पष्ट दिखाई पडते है। इसी के सहारे ये पास-पडोस के खाद्य-पदार्थों को सूँघकर तुरत उसका पता लगा लेते है। इनके माथे पर दो छोटी-छोटी आँखे रहती है जिनमे दो के बजाय तीन पलके रहती है।

जिस प्रकार सब जीवों के ऊपर नीचे दो पलकें रहती हैं वैसी दो पलकें तो इनके (कछुओं के) रहती ही हैं, साथ-ही-साथ इनकी आँखों के भीतर की ओर कोने में एक और पलक भी रहती है जिसे जरूरत पड़ने पर ये खोल बंद कर सकते हैं।

इनके कान के छिद्र दोनों ओर जबड़ों के पास रहते हैं जो इनके बड़े काम के हैं क्योंकि इसी के सहारे ये जरा सी आहट पाते ही पानी में घुस जाते हैं।

कछुओं के साँस लेने का ढंग भी कुछ अजीब-सा है। वैसे तो ये फेफड़े से हवा से सांस लेनेवाले जीव हैं जिनके मछलियों की तरह गलफड़ नहीं होते, लेकिन इनको पानी में घुली हुई हवा को इस्तेमाल करने की भी थोड़ी सहूलियत प्रकृति ने दे रखी है। इससे ये पानी के भीतर भी काफी देर तक रह सकते हैं। इसके लिए कछुए पानी को मुंह द्वारा भीतर खींचकर फिर उसे बड़े जोर से बाहर निकालते हैं और उसमें घुली हुई हवा का कुछ हिस्सा सोख लेते हैं। दूसरा ढंग इस प्रकार की हवा सोखने का इनमें भी अद्‌भुत है। कछुए की आंत का निचला हिस्सा बड़ा होकर दो लम्बी थैलियों के आकार का हो जाता है जिसमें काफी रक्त-शिराएं रहती हैं। कछुआ अपनी गुदा-द्वारा इन थैलियों में पानी खींचकर फिर बाहर निकाल देता है और तभी ये रक्त-शिराएँ पानी में घुली हुई हवा का कुछ अंश सोख लेती हैं। यहां एक बात जान लेनी चाहिये कि कछुओं के मल-मूत्र त्यागने और अण्डा देने का काम एक ही छिद्र द्वारा चलता है।

कछुए अण्डज जीव हैं जो एक बार में काफी अंडे देते हैं। मेढकों, मछलियों की तरह ये अण्डे पानी में नहीं दिये जाते बल्कि समय आने पर कछुई बालू में अण्डे देती है जो शकल में अण्डाकार या गोल होते हैं और जिनका रंग दूध-सा सफेद रहता है। अण्डों को वह बालू से ढक देती है और फिर उसके बाद उसका उनसे कोई वास्ता नहीं रह जाता। ये अण्डे तेज धूप पाकर बिना सेये ही फूट जाते हैं।

कछुई एक बार में एक दो नहीं, अनेक अण्डे देती है जिनकी संख्या कभी-कभी कई दरजन तक पहुंच जाती है लेकिन गनीमत यही है कि इनमें से बहुतों को तो सियार, लोमड़ी आदि जंगली जीव खा लेते हैं। नहीं तो आज हम कछुओं से अपने सारे जलाशयों को भरा पाते।

कछुए बहुत ही डरपोक प्राणी हैं जो जरा सी आहट पाते ही पानी में कूद पड़ते हैं। यदि ये सूखे में घिर जाते हैं तो अपनी गर्दन खपड़े के भीतर करके वहीं पड़

जाते है। इनमें से कुछ का आहार तो पानी की घासपात और काई वगैरह है लेकिन कुछ मेढक-मछलियाँ और कीडे-मकोडो के अलावा मुरदे का मास भी खाते है। कभी-कभी ये मासाहारी कछुए आदमियो को भी काट लेते हैं। ये उस जगह के मास को ऐसा साफ तराश ले जाते है जैसे किसी ने तेज चाकू से काट लिया हो।

कछुओ को, जैसा पहले कहा जा चुका है, दो मुख्य भागो में बाँटा जा सकता है—

१ स्थल-कच्छप—Land Tortoises

२ जल-कच्छप—Sea Turtles

स्थल पर रहनेवाले प्राय सभी कछुए शाकाहारी होते है। इनका खपडा अण्डाकार होता है जिसकी ऊपरी सतह कडे शल्को से ढकी रहती है। इनकी उँगलियाँ छोटी या औसत नाप की होती है, जिनमे चार या पाँच नाखून रहते है। इनके पैर पानी के कछुओ के पैरो की तरह जालपाद अथवा पतवारनुमा न होकर मजबूत और जमीन पर चलने योग्य रहते है। इनकी अनेक जातियाँ है जिनमे ज्यादा सख्या उन्ही की है जो सूखे और पानी दोनो मे रहनेवाले है, लेकिन ऐसी एक भी जाति नही है जो एकदम सूखे मे ही रहना पसद करती हो।

जल मे रहनेवाले कछुओ की सख्या बहुत ज्यादा है जिनमे से कुछ तो ऐसे है जो नदियो तथा अन्य जलाशयो मे रहते है और कुछ ऐसे है जिनका निवास समुद्र है।

समुद्री-कछुओ मे से कुछ के पैर पतवारनुमा होते है जिससे उन्हे तैरने मे बहुत आसानी हो जाती है। इनमे कुछ बहुत भारी-भरकम होते है और उनका वजन कई मन तक पहुँच जाता है। इनका मुख्य भोजन काई और शाकपात है।

मीठे पानी के कछुए प्राय मासभक्षी होते है। इनमे से कुछ शाकपात भी खा लेते है, लेकिन इनका मुख्य भोजन मास ही है। इन कछुओ की पीठ और पेट अक्सर कडे शल्को से ढके न रहकर एक प्रकार की मुलायम खाल से मढे रहते है। इनका ओठ मोटा और थूथन नोकीला होता है और अक्सर इनके पजो की तीन उँगलियो मे ही नाखून रहते है।

कच्छप-वर्ग काफी विस्तृत है। इसलिए विद्वानो ने उसे कई परिवारो मे विभक्त कर दिया है। यहाँ उनमे से निम्नलिखित तीन परिवारो का वर्णन दिया जा रहा है, जिनमें हमारे देश के प्राय सभी प्रसिद्ध कछुए आ जाते है।

१ स्थल-कच्छप परिवार—Family Testudımıdıe

२ समुद्री-कच्छप परिवार—Family Chelonıdae

३ जल-कच्छप परिवार—Family Trıonychıdae

स्थल-कच्छप परिवार

(FAMILY TESTUDINIDAL)

इस परिवार के कछुए आस्ट्रेलिया को छोड़कर करीब-करीब सारे जगत में फैले हुए हैं। इनमें से कुछ तो एकदम पानी में रहनेवाले हैं, लेकिन कुछ को पानी से ऐसी नफरत है कि यदि वे पानी में छोड़ दिये जायें तो डूबकर मर जायें। लेकिन ज्यादा सख्या उन्हीं की है जिन्होंने बीच का रास्ता अपनाया है और जो अपना समय खुश्की और पानी दोनों में बिताते हैं।

यहां इनमें से तीन कछुओं का वर्णन दिया जा रहा है जो हमारे देश में काफी सख्या में पाये जाते हैं।

साल कछुआ

(RED STREAKED KACHLGA)

साल हमारे देश का प्रसिद्ध कछुआ है जो गंगा, गोदावरी और कृष्णा आदि नदियों में पाया जाता है।

यह पानी में रहनेवाला शाकाहारी कछुआ है जिसके खपड़े की लम्बाई १५-१६ इंच होती है। इसकी पीठ पतली झिल्ली से ढकी न रहकर एक प्रकार के सल्क से ढकी रहती है और सिर के पिछले भाग में लकीरों के रहने से सेहरे-से दाग पड़ते हैं। खपड़े पर स्थान-स्थान पर उभार-से रहते हैं।

इसके सिर का बगली हिस्सा सिलेटी रहता है और इसके गले के नीचे दो लाल या पीले अण्डाकार चित्ते रहते हैं।

साल का सिर औसत नाप का होता है और इसका अगला हिस्सा नोकीला और ऊपर की ओर उठा हुआ रहता है।

इसका ऊपरी हिस्सा भूरे रग का होता है, लेकिन नीचे का हिस्सा पिलछौह रहता है। इसकी गरदन भूरी रहती है जिस पर ललछौह लकीरें पडी रहती हैं ।
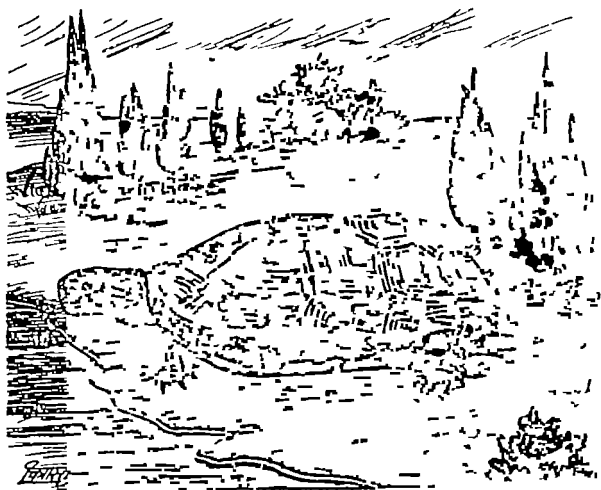
साल कछुआ

साल के पैरो पर आडे-आडे लवे और पतले सेहर-से रहते हैं । उसकी उँगलियाँ आपस में झिल्ली से जुडी रहती है जिनमें नाखूनो की सख्या ४ से ५ तक रहती है। इसका मास कुछ लोग वडे स्वाद से खाते है ।

छतनहिया कछुआ

(STARRED TORTOISE)

छतनहिया को हम पूरे तौर से स्थल कछुआ कह सकते हैं क्योंकि यह अपना सारा समय सूखे पर ही विताता है। वैसे तो यह आस्ट्रेलिया को छोडकर सारे ससार में फैला हुआ है, लेकिन हमारे देश मे यह केवल वगाल के दक्षिणी भाग में नही पाया जाता।

इसके खपडे की लवाई १० इच से ज्यादा नही होती जिस पर कुव्वक-से उठे रहते हैं। इसकी पीठ काले रग की होती है जिसपर पीली चित्तियाँ पडी रहती है और

वहीं से पीले रंग की पतली धारियाँ भी चारों ओर फैल जाती हैं। इसके नीचे का रंग भी कलछौंह ही रहता है।

छतनहिया कछुआ

छतनहिया का सिर औसत कद का और माथा उभरा-उभरा-सा रहता है जिस पर बेतरतीब से कुछ सेहुर बने रहते हैं। इसके थूथन का कुछ हिस्सा नीचे की ओर मुड़ा रहता है, जो दो या तीन हिस्सों में कटा रहता है।

छतनहिया कछुए के खपड़े के अगले हिस्से पर बीच में कुछ कटाव-सा रहता है और इसके खपड़े का पिछला हिस्सा भी कुछ दूर तक कटा रहता है।

यह भी साल की तरह शाकाहारी कछुआ है जिसकी दुम छोटी और पैर की उंगलियाँ पतली होती हैं जिनमें चार या पाँच नाखून रहते हैं।

रामानंदी कछुआ

(COM ROOFED TI RRAPIN)

रामानंदी कछुआ भी हमारे यहाँ का प्रसिद्ध कछुआ है जो हमारे देश के अलावा अन्य देशों में भी कहीं-कहीं पाया जाता है। हमारे यहाँ यह गंगा, सिंधु, ब्रह्मपुत्र तथा उनकी सहायक नदियों में पाया जाता है। यह भी शाकाहारी कछुआ है।

यह बहुत सुदर कछुआ है जिसके माथे पर तिलक-जैसा चिह्न होने के कारण ही इसका रामानदी नाम पडा है। इसका खपडा ९ इच लबा होता है, जो बीच में काफी ऊँचा उठा रहता है। इसकी पीठ का रग जैतूनी रहता है, जिस पर बचपन में

रामानन्दी कछुआ

एक नारगी या लाल धारी पडी रहती है, लेकिन जब यह प्रौढ हो जाता है तो पीठ पर की यह धारी पीठ के गाढे रग में छिप जाती है। इसके नीचे का खपडा नारगी या लाल रग का होता है जिस पर काली चित्तियाँ पडी रहती हैं। इसकी गर्दन कलछौह रहती है, जो पतली धारियो से भरी रहती है। इसके पैर गाढ जैतूनी रग के होते है, जिन पर पीली बिंदियाँ रहती है । इसके पैरो की उगलियाँ चौडी झिल्ली से नाखूनो तक जुटी रहती है। इन कछुओ का मास खाया जाता है।

समुद्री-कच्छप परिवार

(FAMILY CHELONIDAE)

इस परिवार मे सब समुद्री-कछुओ को एकत्र किया गया है, जो गरम देश के प्राय सभी समुद्रो मे पाये जाते है। ये अपना सारा समय पानी मे ही बिताते है, और केवल अण्डे देने के लिए पानी से बाहर आते है।

ये कछुए कद में चार-पाँच फुट के होते हैं और अपने मांस तथा खपड़ों के लिए काफी संख्या में पकड़े जाते हैं।

यहाँ इनमें से दो प्रसिद्ध कछुओं का वर्णन दिया जा रहा है।

हरा कछुआ

(GREEN SEA TURTLE)

हमारे यहां के समुद्री कछुओं में हरा कछुआ सबसे प्रसिद्ध है। यह वैसे तो हमारे सभी समुद्रों में पाया जाता है, लेकिन अण्डमान द्वीप के आसपास यह अधिक संख्या में दिखाई पड़ता है।
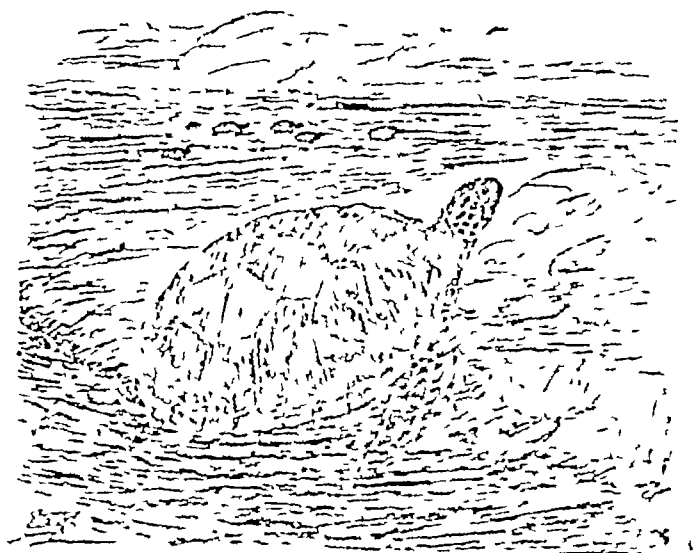
समुद्री हरा कछुआ

इस कछुए का सिर छोटा और दबा-दबा-सा रहता है और इसके पैर में सिर्फ एक ही उंगली रहती है। इसके खपड़े पर शल्क जरूर रहते हैं, लेकिन वे एक-दूसरे पर चढ़े नहीं रहते। इसका रंग, जैसा इसके नाम से स्पष्ट है, सदा हरा या जैतूनी रहता है लेकिन नीचे का हिस्सा पिलछौंह रहता है और पैरों के ऊपर इधर-उधर काला निशान रहता है। इसके पैर अन्य कछुओं की तरह न होकर पतवार-नुमा होते हैं जिनसे यह पानी में बड़ी आसानी से तैरता है।

हरा कछुआ करीब चार फुट लबा होता है और इसका शरीर इतना भारी होता है कि यदि इसे उलटा न किया जाय तो यह थोडी देर में ह्वेल की तरह अपने ही बोझ से, दम घुटने से, मर जाता है।

यह कछुआ शाकाहारी जीव है जो वैसे तो समुद्र में उगनेवाली वनस्पति से अपना पेट भरता है, लेकिन मौका पाने पर यह मछलियो और कटुओ आदि को भी नही छोडता।

लोग इसका मास खाने के काम मे लाते है, लेकिन कभी-कभी वह जहरीला भी हो जाता है। इसकी मादा साल भर मे तीन बार अण्डे देती है, जिनकी सख्या ४–५ सौ तक पहुच जाती है।

बाजठोठी कछुआ

(HAWK'S BEAK TURTLE)

बाजठोठी कछुआ भी समुद्र का निवासी है, लेकिन यह हरे कछुए से कद में कुछ छोटा होता है। इसको यह नाम इस कारण मिला है कि इसका थूथन बाज आदि शिकारी पक्षियो की चोच की तरह टेढा-सा रहता है।

बाजठोठी कछुआ

इसके पैर भी पतवारनुमा होते हैं जिनमे प्रत्येक मे दो-दो नाखून रहते हैं। इसके खपडे के ऊपर उभरे-उभरे शल्क रहते हैं जो एक-दूसरे पर चढे रहते है।

इस कछुए का मांस तो खाने के काम में नहीं आता लेकिन उसके अण्डे को लोग कछुए के अण्डे की तरह बड़े स्वाद से खाते हैं। इसके खपड़े के उभरे हुए शल्क बहुत कीमती होते हैं जिनसे ऐनक के मूल्यवान फ्रेम बनते हैं।

जल-कच्छप परिवार

(FAMILY TRIONYCHIDAE)

इस परिवार में वे कछुए रखे गये हैं जिनका अधिक समय कीचड़ और पानी में बीतता है। ये हमारे यहाँ के ताल-तलैयों तथा छोटी-बड़ी नदियों में काफी संख्या में पाये जाते हैं। ये सब मांसभक्षी कछुए हैं, जिनका शरीर चपटा और गोल रहता है और इनके खपड़े पर एक प्रकार की मुलायम खाल चढ़ी रहती है।

इन कछुओं के पंजे बत्तखों की तरह आपस में जुटे रहते हैं जिससे उन्हें पानी में तैरने में बहुत आसानी हो जाती है। इनका थूथन आगे की ओर निकला रहता है जिसके सिरे पर इनके नाक के छिद्र रहते हैं।

यहाँ इनमें से कुछ प्रसिद्ध कछुओं का वर्णन दिया जा रहा है, जो हमारे यहाँ की नदियों और जलाशयों में काफी तादाद में पाये जाते हैं।

सेवार कछुआ

(GANGES SOFT SHELL TORTOISE)

सेवार गंगा का सबसे बड़ा कछुआ है जो गंगा और सिंधु, महानदी तथा उनकी सहायक नदियों में पाया जाता है। इसे हम नदी के किनारे पर अपना गर्दन उठाकर धूप सेंकते देख सकते हैं। इसके खापड़े पर खाने-खाने से नहीं कढ़े रहते बल्कि उसके ऊपर एक पतली झिल्ली-सी चढ़ी रहती है जिससे इसकी पीठ बहुत चिकनी दिखाई पड़ती है।

इस कछुए के खापड़े की लंबाई डेढ़ दो फुट की रहती है और इसकी गर्दन भी काफी लंबी रहती है। इसके पैर भी लंबे होते हैं जिनकी उँगलियाँ आपस में एक झिल्ली से जुड़ी रहती हैं।

सेवार की पीठ का रंग जैतूनी या गहरा हरा रहता है। इसका सिर हल्का [illegible]

हरा कछुआ करीब चार फुट लबा होता है और इसका शरीर इतना भारी होता है कि यदि इसे उलटा न किया जाय तो यह थोडी देर मे ह्वेल की तरह अपने ही बोझ से, दम घुटने से, मर जाता है।

यह कछुआ शाकाहारी जीव है जो वैसे तो समुद्र में उगनेवाली वनस्पति से अपना पेट भरता है, लेकिन मौका पाने पर यह मछलियो और कटुओ आदि को भी नही छोडता।

लोग इसका मास खाने के काम में लाते है, लेकिन कभी-कभी वह जहरीला भी हो जाता है। इसकी मादा साल भर में तीन बार अण्डे देती है, जिनकी सख्या ४–५ सौ तक पहुँच जाती है।

बाजठोठी कछुआ

(HAWK'S BEAK TURTLE)

बाजठोठी कछुआ भी समुद्र का निवासी है, लेकिन यह हरे कछुए से कद में कुछ छोटा होता है। इसको यह नाम इस कारण मिला है कि इसका थूथन बाज आदि शिकारी पक्षियो की चोच की तरह टेढा-सा रहता है।

बाजठोठी कछुआ

इसके पैर भी पतवारनुमा होते है जिनमें प्रत्येक में दो-दो नाखून रहते हैं। इसके खपटे के ऊपर उभरे-उभरे शल्क रहते है जो एक-दूसरे पर चढे रहते हैं।

इस कछुए का मांस तो खाने के काम मे नही आता लेकिन इसके अण्डे को लोग कछुए के अण्डे की तरह बड़े स्वाद से खाते है। इसके खपड़े के उभरे हुए शल्क बहुत कीमती होते है जिनसे ऐनक के मूल्यवान फ्रेम बनते है।

जल-कच्छप परिवार

(FAMILY TRIONYCHIDAE)

इस परिवार मे वे कछुए रखे गये हैं जिनका अधिक समय कीचड़ और पानी मे बीतता है। ये हमारे यहाँ के ताल-तलैयों तथा छोटी-बड़ी नदियो मे काफी संख्या मे पाये जाते है। ये सब मांसभक्षी कछुए है, जिनका शरीर चपटा और गोल रहता है और इनके खपड़े पर एक प्रकार की मुलायम खाल चढ़ी रहती है।

इन कछुओं के पंजे बत्तखों की तरह आपस मे जुटे रहते है जिससे उन्हे पानी मे तैरने मे बहुत आसानी हो जाती है। इनका थूथन आगे की ओर निकला रहता है जिसके सिरे पर इनके नाक के छिद्र रहते है।

यहाँ इनमें से कुछ प्रसिद्ध कछुओं का वर्णन दिया जा रहा है, जो हमारे यहाँ की नदियों और जलाशयों में काफी तादाद मे पाये जाते है।

सेवार कछुआ

(GANGES SOFT SHELL TORTOISE)

सेवार गंगा का सबसे बड़ा कछुआ है जो गंगा और सिंधु, महानदी तथा इनकी सहायक नदियो मे पाया जाता है। इसे हम नदी के किनारों पर अक्सर गर्दन उठाकर धूप सेंकते देख सकते है। इसके खपड़े पर खाने-खाने से नही कटे रहते बल्कि इसके ऊपर एक पतली झिल्ली-सी चढ़ी रहती है जिससे इसकी पीठ बहुत चिकनी दिखाई पड़ती है।

इस कछुए के खपड़े की लम्बाई डेढ़ दो फुट की रहती है और इसकी गर्दन भी काफी लम्बी रहती है। इसके पैर भी बड़े होते है जिनकी उंगलियां आपस मे पतली झिल्ली से जुड़ी रहती है।

सेवार की पीठ का रंग जैतूनी या गहरा हरा रहता है। इसका सिर [illegible]

रहता है जिस पर आँखो के बीच से लेकर गुद्दी तक एक काली धारी या पट्टी चली आती है, जहाँ उसे कई शकल की धारियाँ काटती है। नीचे का रग पिलछौंह सफेद रहता है।
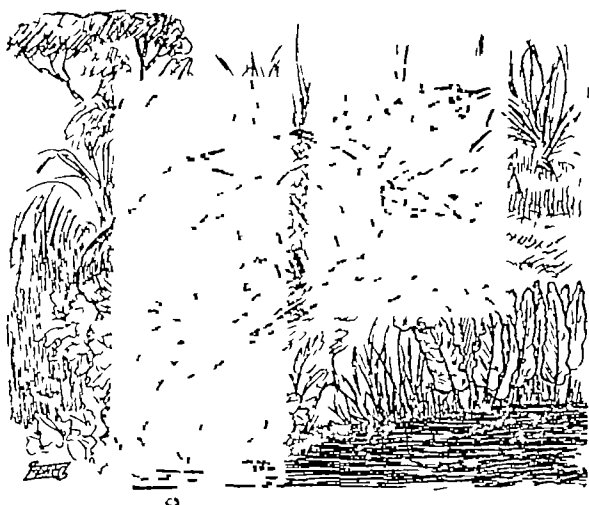
सेवार कछुआ

सेवार नदी का मुर्दाखोर कछुआ है जिसका मुख्य भोजन मास और मछलियाँ हैं। इसका मास नही खाया जाता।

चिकना कछुआ

(SOUTHERN SOFT SHELL TORTOISE)

चिकना भी गगा का कछुआ है जो यहाँ की बडी नदियो में काफी सख्या में पाया जाता है।

यह सेवार से बहुत मिलता-जुलता होता है लेकिन कद में उससे छोटा रहता है। इसका रग भी सेवार की तरह गदा हरा होता हैं और इसका भी खपडा पतली खाल से ढका रहता हैं। ऊपरी खपडे के किनारे पर गदी हरी या काली बिंदियाँ पडी रहती है जो इसके खपडे तक ही न रहकर इसकी गरदन और पैर तक फैल जाती है।

इसके सिर पर पीले चित्ते भी पड़े रहते हैं जो पुराने कछुओं में बहुत धूमिल हो जाते हैं।
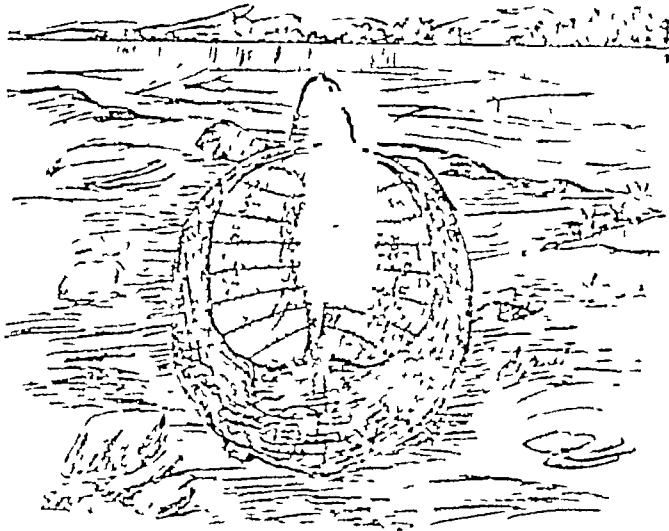
चिकना कछुआ

चिकना भी सेवार की तरह मुरदाखोर कछुआ है जो मांस, मछली और मुर्दों से अपना पेट भरता है।

इसकी और आदतें सेवार से मिलती-जुलती रहती हैं।

कछुई

MUD TURTLE

कछुई हमारे यहाँ के प्रायः सभी तालाबों और नदियों में पाई जाती है। यही नहीं, हमारे यहाँ की नहरों में भी इसने अपना घर बना लिया है।

कछुई, जैसा इसके नाम से जाहिर है, कद में कछुए से छोटी होती है। इसका खपड़ा ८-९ इंच से बड़ा नहीं होता, जिस पर पतली लकीरें पड़ी रहती हैं।

कछुई का ऊपरी हिस्सा हरापन लिये भूरे रंग का होता है और इसका निचला हिस्सा पीला या सफेद रहता है। इसकी दुम बहुत छोटी होती है और पैरों की पाँचों उँगलियाँ आपस में एक मजबूत झिल्ली से जुड़ी रहती हैं।

कछुई बहुत सीधी और डरपोक होती है लेकिन यह ढीठ भी कम नही होती पानी के किनारे पडे हुए किसी सूखे पेड के तने पर या किनारे की किसी दीवाल पर काफी सख्या में धूप सेंकती दिखाई पडती है। जाडे के दिनो में जब काफी सरद
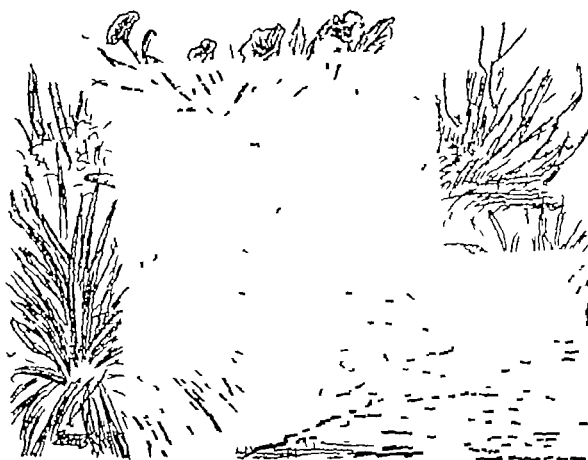
कछुई

पडने लगती है तो ये अपने को कीचड में गाड लेती है और जाडे भर वही शीतशायी अवस्था मे पडी रह जाती हैं।

इनके भोजन के बारे में कोई एक नियम नही है। ये घास-पात के अलावा मास मछली भी बडे मजे से खाती हैं।

(३) गोधा वर्ग

(ORDER SQUAMATA)

गोधा वर्ग काफी विस्तृत वर्ग है जिसमे सब प्रकार की छिपकलियो को एकत्र किया गया है, लेकिन उनके बारे में जानने के लिए हमें कुछ विस्तार में जाना होगा।

छिपकलियो के बारे मे यह तो हम सभी जानते है कि ये मगर की शक्ल-सूरत के किन्तु कद मे उससे बहुत छोटे जीव है जिनके सिर, पैर और दुम साँप की तरह एक में मिले न रहकर अलग-अलग रहते है। इनमे कुछ ऐसी जरूर है जो देखने मे साँप-जैसी लगती हैं लेकिन उनकी सख्या बहुत ही कम है।

छिपकलियों की वैसे तो संसार में प्राय: ढाई हज़ार किस्में हैं लेकिन हमारे देश में इनकी ढाई सौ से अधिक जातियाँ नहीं पायी जाती। ये सब एक-जैसी नहीं होती और इनकी शक्ल-सूरत में इतना भेद रहता है कि इनमें से मुख्य-मुख्य जाति की छिपकलियों का अलग-अलग परिचय देना अनुचित न होगा।

सबसे पहले हम अपने घरों में रहनेवाली छिपकलियों को लेते हैं जो कलछौंह या भूरे रंग की होती हैं। ये हमारे यहाँ की प्रसिद्ध छिपकलियाँ हैं जिन्हें बिस्तुइया भी कहा जाता है।

छिपकलियाँ या बिस्तुइयाँ रात्रिचर जीव हैं जो दिन में हमारे घर के सूराखों के भीतर, करकटों के नीचे, तस्वीरों और परदों के पीछे तथा खपरैलों के नीचे घुसी रहती हैं। लेकिन रात में लैम्प जल जाने पर जब उनके इर्द-गिर्द कीड़ों का जमघट लग जाता है तो ये ऐसी निडर होकर उनका शिकार करने लगती हैं जैसे उन्हें किसी का डर ही न रह गया हो।

घरों के अलावा कुछ छिपकलियाँ जंगलों में और रेगिस्तानों में भी रहती हैं जहाँ उनका ज्यादा समय झाड़ियों और बिलों में बीतता है।

इन छिपकलियों की दुम बहुत नाजुक होती है जो छूते ही टूट जाती है और फिर उसके स्थान पर नयी दुम निकल आती है। दुमों से भी अद्भुत इनके पैरों की कटोरी-नुमा उँगलियाँ होती हैं जिनके सहारे ये छतों पर बड़ी आसानी से उलटी होकर दौड़ा करती हैं। होता यह है कि जब ये अपनी कटोरीनुमा उँगलियों को दीवाल पर दबा-कर चलती हैं तो उनके भीतर की हवा निकल जाती है और वे दीवाल में उसी तरह चिपक जाती हैं जैसे खाली गिलास मुँह पर लगाकर हवा खींच लेने से वह मुँह पर चिपक जाता है। गिलास के भीतर की हवा को भीतर खींच लेने पर जिस प्रकार उसमें वैकुअम (Vacuum) बन जाता है, उसी प्रकार छिपकलियों की उँगलियों में भी दबाव पड़ने पर वैकुअम बन जाता है और उसी के सहारे वे छतों से उलटी चिपकी रह सकती हैं।

छिपकलियों से बहुत मिलती-जुलती हमारी बम्हनियाँ होती हैं जिन्हें कहीं-कहीं बम्हन-बीछी भी कहते हैं। उनकी शकल-सूरत छिपकलियों-जैसी ही होती है, लेकिन उनका सिर और गरदन एक ही में मिले रहते हैं। उनका अंग सुदृढ़ होता है लेकिन दुम छिपकलियों की तरह ही नाज़ुक रहती है।

इनकी पीठ चिकनी और पैर छोटे होते है। पीठ पर स्पष्ट धारियाँ पडी रहती ह। इनके शरीर का रग अन्य छिपकलियो से चटक रहता है और जबान साँप की तरह बीच में फटी रहती है। इसी फटी जबान को देखकर कुछ लोग इन्हें जहरीली समझते है लेकिन वास्तव में ऐसा है नही। ये बहुत निरीह जन्तु है जो कीडे-मकोडो को खाकर हमारा बहुत फायदा करती है। ये अपना अधिक समय किसी नम जगह मे कूडे-करकट या मिट्टी के नीचे बिताती है।

बम्हनी से शक्ल-सूरत में मिलती-जुलती कोतरी होती है जो उसकी तरह चटकीले रग की न होकर भूरी या कत्थई रग की होती है। इसका कद भी बम्हनी से कुछ बडा होता है। लेकिन इसके शरीर की बनावट भिन्न है।

कोतरी की भी दुम कोमल होती है और उसकी जबान भी साँप की तरह बीच स फटी रहती है। इसकी पीठ का ऊपरी हिस्सा कडे शल्को रो ढका रहता है।

यह भी अपना अधिक समय नम जगहो पर, लकडी व सूखी पत्तियो अथवा कूडे-कबाड के नीचे बिताती है। कुछ ऐसी भी है जो पेडो पर रहती है लेकिन इनमें से एक भी ऐसी नही है जो पानी में रहती हो। इनका मुख्य भोजन भी कीडे-मकोडे है।

कोतरियो से कुछ बडे साँडा होते है जिनके शरीर की बनावट बहुत गठीली रहती है। इनकी दुम अन्य छिपकलियो की दुमो से एकदम भिन्न रहती है, इससे इन्हें पहचानने मे तनिक भी कठिनाई नही हो सकती। इनकी दुम के ऊपरी हिस्से पर काँटे-काँटे-से रहते है, जिससे वे अपनी आत्मरक्षा करने है।

साँडा शाकाहारी जीव है जो ज्यादातर ऊसर और रेगिस्तानी प्रान्तो मे पाया जाता है।

साँडे से कुछ लबा लेकिन पतला गिरगिट होता है जिससे हम सभी परिचित है। इसकी दुम काफी लबी होती है और यह अपने रग बदलने की आदत के कारण बडी आसानी से पहचान लिया जाता है। यह अपना अधिक समय पेडो पर बिताता है।

नर गिरगिट के सिर पर मुकुट-जैसा उभार रहता है और गले के नीचे एक थैली-सी लटकती रहती है। जोडा बाँधने के समय उसका रग भी लाल हो जाता है। गिरगिटो के सिर पर छोटे-छोटे शल्क रहते है और पीठ पर के सेहर एक-दूसरे पर चढे रहते है। कभी-कभी इनकी पीठ पर काँटे-से उभरे रहते है।

इनमें से कुछ शाकाहारी, कुछ कीटभक्षी और कुछ सर्वभक्षी होते है।

गिरगिट की ही तरह का एक और जीव हमारे यहाँ पाया जाता है जिसे अपना रंग बदलने की अद्भुत शक्ति के कारण बहुरूपी कहा जाता है। इनके सिर पर की हड्डी कलँगी या मुकुट की तरह उठी रहती है जिससे यह बहुत सुन्दर दिखाई पड़ता है।

बहुरूपी के पैरों की उँगलियाँ दो हिस्सों में बँटी रहती है, जिससे यह पेड़ की टहनियों को आसानी से पकड़ लेता है। यह बहुत ही काहिल जानवर है जो अपना अधिक समय वृक्षों पर ही बिताता है। इसकी दुम काफी लंबी होती है जिसे यह किसी पेड़ की डाल में लपेट लेता है और घंटों उसी जगह बैठा रहता है। अपना शिकार करते समय भी यह कुछ तेजी नहीं दिखाता और बड़ी काहिली से उसी जगह बैठे-बैठे अपनी लंबी गोल और सुन्दर जैसी जबान को बड़ी तेजी से तीर की तरह बाहर फेंकता है जिसके सिरे पर के चिपचिपे पदार्थ में कीड़े-मकोड़े चिपक कर इसके पेट में पहुँच जाते हैं।

बहुरूपी बहुत निरीह जीव है जो हमारे यहाँ के पूर्वी प्रान्तों में पाया जाता है। इसे प्रकृति ने अपने शरीर का रंग पास-पड़ोस के रंग के अनुरूप कर लेने की अद्भुत शक्ति प्रदान की है जिससे यह अपने ढंग का अकेला ही प्राणी है।

गोह हमारे बहुत परिचित जीव हैं जो अपने भारी-भरकम शरीर से अन्य छिपकलियों से अलग ही रहते हैं। इनमें से कुछ सूखे में रहते हैं और कुछ पानी में। सूखे में तो ये काफी तेज चल ही लेते हैं, पानी में भी ये काफी तेज तैर लेते हैं। यही नहीं ये पानी के भीतर काफी देर तक डुबकी भी लगा लेते हैं। इसका कारण यह है कि इनके नथुनों के भीतर की नली काफी फैल जाती है जिसके भीतर वे हवा भरकर पानी के भीतर काफी देर तक रह लेते हैं।

गोहों का शरीर वैसे तो चपटा होता है लेकिन पानी में रहनेवालों की बनावट कुछ गोलाई लिये रहती है। उनकी दुम दोनों ओर से दबी-दबी रहती है जो लम्बाई में भी कम नहीं होती।

गोहों की जबान बहुत लंबी, चिकनी और साँप की जबान की तरह दुफंकी रहती है। इनकी जबान की जड़ के पास एक खोलना सा रहता है जिसमें ये साँपों की तरह अपनी जबान को खींचकर भीतर कर लेते हैं। इनकी आँख की पुतली गोल होती है जिन पर मोटी-मोटी पलकें रहती हैं। इनकी गर्दन काफी लंबी और सब अंग बड़े सुडौल और मजबूत होते हैं। इनके सिर पर छोटे-छोटे शल्क रहते हैं जिनके किनारे पर सामने से उभरे रहते हैं।

गोह वैसे तो बहुत सीधे-सादे जानवर है, लेकिन दबाव मे पडने पर ये अपनी दुम से बडे जोर से वार कर देते है। दुम के अलावा गुस्सा होने पर ये अपने नोकीले दाँतो का भी प्रयोग करते है और पजे भी चलाते है।

गोह मासाहारी जीव है जिनका मुख्य भोजन छोटे-मोटे जानवर, मेढक, साँप, चिडियाँ और अण्डे है।

छिपकलियो मे कुछ तो पेडो पर रहती है और कुछ अपना समय पानी मे व्यतीत करती है, लेकिन ज्यादा सख्या उन्ही की है जिन्होने सूखे पर रहनेकी आदत डाल ली है। इन तीनो प्रकार के प्राणियो के शरीर की बनावट पर भी इसका बहुत असर पडता है और हम जहाँ पर यह देखते है कि जमीन पर रहनेवालो का शरीर ऊपर से चपटा रहता है वही पेड पर रहनेवालो का दोनो ओर से दबा हुआ शरीर हमसे नही छिपता। पानी मे अपना ज्यादा समय बितानेवालो का शरीर गोलाई लिये रहता है और चिकनी दीवार पर दौडनेवाली छिपकलियो ने अपनी उँगलियो का ऐसा विकास कर लिया है कि उन्हे छतो पर उलटी अवस्था मे दौडने मे भी कोई दिक्कत नही होती। छिपकलियो की खाल की बनावट साँप-जैसी सेहरनुमा होती है जो साँप के केचुल की तरह समय आने पर शरीर से उतर जाती है। लेकिन ऐसी छिपकलियाँ कम है। ज्यादा तादाद उन्ही की है, जिनकी खाल टुकडे-टुकडे होकर निकलती है।

छिपकलियाँ जहरीली नही होती। विदेश मे एक प्रकार की छिपकली जरूर होती है जिसे जहरीली कहा जा सकता है। लेकिन हमारे यहाँ की किसी छिपकली मे जहर नही होता। कुछ लोग गोह के बच्चो को, जिनकी पीठ पर काली चित्तियाँ पडी रहती है, बिसखोपडी कहकर पुकारते है। वे इस पर विश्वास करते है कि बिसखोपडी के काटने से आदमी फौरन मर जाता है, लेकिन यह एकदम कपोल-कल्पित बात है। बिसखोपडी जहरीली नही होती।

बिसखोपडी के बारे मे यह ख्याल, जान पडता है, इनकी साँप-जैसी दुफकी जबान के कारण पडा है। गोह की जबान लबी और साँप की तरह फटी-फटी-सी रहती है, लेकिन और छिपकलियो की जबान भिन्न-भिन्न तरह की होती है। विद्वानो ने इनको इनकी भिन्न-भिन्न किस्म की जबानो के अनुसार अलग-अलग परिवारो मे विभक्त कर रखा है।

छिपकलियो के दाँत दो तरह के होते है। एक तो वे जो इनके जबडे की हड्डी के भीतर की ओर रहते है और दूसरे वे जो जबडे के अगले हिस्से पर रहते है। कुछ

जो मासाहारी हैं। इनके मास के आहार में मास-मछली, कीडे-मकोडे और मेढको के अलावा हर तरह के अण्डे भी शामिल हैं।

छिपकलियाँ हमारे लिए बहुत उपयोगी हैं। एक ओर जहाँ वे कीडे-मकोडे खाकर हमको हर प्रकार से फायदा पहुँचाती हैं, वही दूसरी ओर इनके शरीर के चमडे से तरह-तरह की चीजे बनाकर मनुष्य काफी कमा लेते हैं। छोटे-छोटे बेग, जूते और बहुत किस्म की दूसरी वस्तुएँ बनाने के लिए छिपकलियो का चमडा काफी मात्रा मे विदेश भेजा जाता है। इनका चमडा मजबूत तो होता ही है, साथ-ही-साथ इसमे खाने से कटे रहते हैं, जो कम सुन्दर नही लगते।

छिपकली की खाल की तिजारत करनेवालो से इतना लाभ तो अवश्य हुआ है कि हमको बहुत-सी छिपकलियो का पता चल गया है, लेकिन इस बात का खतरा भी इन्ही लोगो के कारण से बढता जा रहा है कि कही हमारे यहाँ से कुछ छिपकलियाँ सदा के लिए लुप्त न हो जायें। खाल की तिजारत करनेवालो से अन्य छिपकलियो की अपेक्षा ज्यादा खतरा गोह के बारे मे है क्योकि बडा होने के कारण सबसे ज्यादा इसी की खाल की माँग है। हमारे देश से सन् १९३३ ई० से सरीसृपो की करीब तीस लाख खाल बाहर गयी जिसमे गोह की खाल ही सबसे ज्यादा थी।

छिपकलियो को छ मुख्य परिवारो मे इस प्रकार बाँटा जा सकता है —

१ छिपकली परिवार—Family Geckonidae

२ कोतरी परिवार—Family Scincidae

३ बम्हनी परिवार—Family Lacertidae

४ गोह परिवार—Family Varanidae

५ गिरगिट परिवार—Family Agamidae

६ बहुरूपी परिवार—Family Chamachiontidae

छिपकली परिवार

(FAMILY GECKONIDAE)

इस परिवार मे सब तरह की छिपकलियाँ रखी गयी हैं जिनमे हम सब भली भाँति परिचित हैं। ये ससार के सभी गर्म देशो मे पायी जाती हैं और केवल हमारे देश में

इनकी ३० जातियों का पता चला है। इनका कद छोटा और खाल मुलायम रहती है और इनकी आँखों पर एक पारदर्शी झिल्ली-सी चढ़ी रहती है।

इनके पंजों के नीचे की बनावट नरम गद्दे-जैसी रहती है जिनको दबाकर चलने से उनके नीचे की हवा निकल जाती है और वे सतह पर चिपक जाते हैं। अपने इन्हीं अद्भुत पंजों के सहारे ये छत पर उलटी चल-फिरकर भी नहीं गिरती।

छिपकलियों की दुम बहुत कमजोर होती है जो जरा-सा धक्का लगने पर टूटकर अलग हो जाती है और उसके स्थान पर फिर दूसरी दुम निकल आती है।

छिपकलियां बहुत कम बोलती हैं। इनमें से कुछ तो एकदम गूंगी होती हैं और कुछ कभी-कभी एक प्रकार की महीन आवाज करती हैं। ये सब अण्डज जीव हैं जिनकी मादाएँ एक बार में प्रायः दो अण्डे देती हैं।

ये वैसे तो बड़ी घिनौनी होती हैं, लेकिन हमारे घर के कीड़े-मकोड़ों को साफ करने में इनकी बहुत उपयोगिता है।

इनकी बहुत-सी जातियां हैं, लेकिन यहां केवल अपनी प्रसिद्ध छिपकली का वर्णन दिया जा रहा है जिसे हम रोज ही अपने घरों में देखते हैं।

छिपकली

(HOUSE LIZARD)

छिपकलियां हमारे यहां के सरीसृपों में सबसे अधिक परिचित हैं। इनको बिस्तुइया भी कहा जाता है। ये वैसे तो रात में निकलनेवाले प्राणियों की श्रेणी में आती हैं लेकिन इन्हें हम अपने घरों में दिन में भी आसानी से देख सकते हैं।

हमारे यहां करीब ३० जाति की बिस्तुइयां पायी जाती हैं। इनमें से कुछ छोटी और भूरी होती हैं, लेकिन इन सबकी आदतें एक-जैसी ही होती हैं।

बिस्तुइया हमारे देश में हर जगह फैली हुई है। यह हमारे यहां की सबसे छोटी जाति की छिपकली है। इसकी लम्बाई थूथन से दुम के सिरे तक पांच इंच से ज्यादा नहीं होती जिसमें इसकी दो इंच की दुम ही रहती है। इसका सिर गोलाई लिये हुए, थूथन लम्बा, माथा दबा हुआ और शरीर की बनावट सुडौल होती है। इसकी

उँगलियाँ जुटी न रहने पर भी थोडी उभरी रहती है। इसकी दुम की बनावट गोलाई लिये रहती है जो जड के पास चपटी और सिरे के पास पतली हो जाती है।

छिपकली

इसके नर की जाँघ पर कुछ बारीक बारीक छिद्र और कुछ दाने रहते हैं। इसके कान का छेद कुछ तिरछा रहता है।
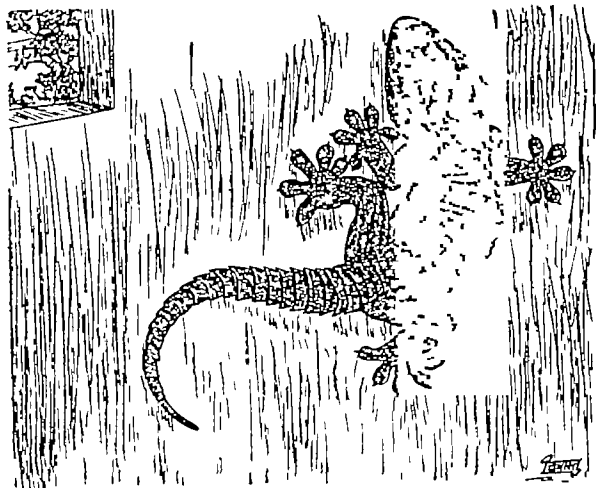
इसकी पीठ का रग हलका भूरा रहता है, जिस पर गाढे रग की चित्तियाँ रहती है। इसके दोनो ओर आँख से बगल तक एक गाढी पट्टी चली जाती है और पेट या नीचे का हिस्सा गदा सफेदी-मायल रहता है। ये गोल और सफेद अण्डे देती है जिनका छिलका कडा होता है।

कोतरी परिवार

(FAMILY SCINCIDAE)

कोतरी परिवार के वैसे तो ७० जीव हमारे देश में पाये जाते हैं, लेकिन यहाँ केवल एक का ही वर्णन दिया जा रहा है। इसमें के कुछ प्राणियो के पैर बहुत छोटे होते है और कुछ ऐसे भी है जिनके पैर ही नही होते। इन साँप की शक्ल के जीवो के पैर न होकर भी पैर के स्थान पर कुछ निशान तो रहते ही है जिनसे यह जाना जा सकता है कि उनके किसी समय पैर अवश्य रहे होगे।

इनकी पीठ का ऊपरी हिस्सा एक तरह के कडे प्लेटो से ढका रहता है जो इनके शल्को के नीचे रहते हैं।

कोतरियो में ज्यादा ऐसी है जो जमीन या पेड़ो पर रहती हैं, लेकिन ऐसी कोई भी नही है जिसे पानी मे रहना भाता हो।

इनकी दुम चिकनी तथा कोमल होती है और आंख की पुतलिया गोल और जबान बम्हनी की जबान की तरह चपटी और फटी हुई रहती है।

इनका मुख्य भोजन छोटे-छोटे कीडे-मकोडे है। इनमें से दो-एक को छोडकर बाकी सब अण्डे देती हैं लेकिन हमारे यहाँ की प्रसिद्ध कोतरी बच्चे जनती है।

कोतरी

(SKINK)

कोतरी यद्यपि बम्हनी से भिन्न है, लेकिन शक्ल-सूरत मे एक-जैसी होने के कारण प्राय लोग इन्हें भी बम्हनी ही समझते है। ये हमारे यहा सारे देश मे फैली हुई हैं और हमारे यहाँ के परिचित जीवो मे से है।
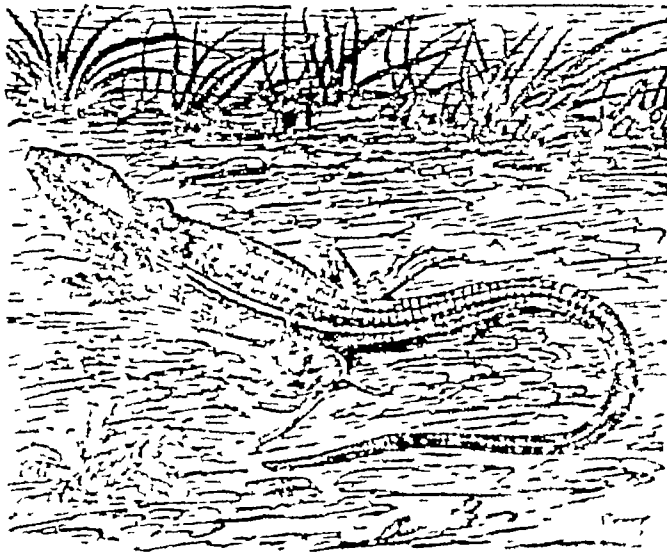
कोतरी

कोतरी की लबाई १२ इच रहती है, जिसमे इसकी ७ इच की दुम भी शामिल है। इसके बदन की बनावट मोटी होती है लेकिन इसके पैर सुडौल रहते है। इसकी उंगलियो का निचला हिस्सा चपटा और ऊपर का गोल रहता है।

कोतरी के बदन का ऊपरी रग भूरा या जैतूनीपन लिये भूरा रहता है जिस पर सिलसिले से काली चित्तियाँ या काली खडी धारियाँ पडी रहती है। वगल का हिस्सा गहरे रग का होता है जिस पर कभी-कभी कुछ हलके धब्वे भी रहते है। इसकी आँखे गोल होती है जिनके पास से दोनो वगल एक हलके रग की धारी दुम तक चली आती है। जोडा बाँवते समय नर के दोनो वगली हिस्सो पर कधे से पिछली टाँग तक एक लाल पट्टी-सी दिखलाई पडने लगती है। इसके नीचे का हिस्सा पिलछौंह रहता है।

कोतरी अण्डे देने के मामले में अन्य छिपकलियो से भिन्न है क्योकि यह औरो की तरह अण्डे नही देती बल्कि इसके अण्डे मादा के पेट में ही रहकर फूटते है और मादा वच्चे जनती है। कोतरी मासाहारी होती है जो वैसे तो जमीन पर रहती है लेकिन जरूरत पडने पर पेड पर भी आसानी से चढ जाती है।

वम्हनी परिवार

(FAMILY LACERTIDAE)

वम्हनी परिवार में सब तरह की वम्हनियाँ है जो अपनी चिकनी पीठ तथा छोटे पैरो के कारण छिपकलियो से भिन्न रहती है। इनका सिर, धड और दुम एक ही में ऐसे मिले रहते है कि जान पडता है एक ही में ढाल दिये गये हो। इनके अग सुन्दर और सुदृढ होते है और दुम छिपकलियो की तरह कोमल रहती है।

इनके सिर के ऊपर तरतीबवार सेहर से वने रहते है जो पीठ तक फैल जाते हैं। इनकी पीठ चिकनी तो होती ही है, साथ ही रगीन भी रहती है।

ये सव वहुत सीधे और निरीह जानवर हैं जो अपनी चपटी और फटी जवान के कारण जहरीले समझे जाते है, लेकिन इनमें से किसी के भी जहर नही होता। इनकी वैसे तो २०-२५ जातियाँ हमारे देश में पायी जाती है लेकिन यहाँ उनमे से केवल एक का वर्णन दिया जा रहा है क्योकि सव की आदत एक-जैसी नही होती।

वम्हनी

(SNAKE-EYED LIZARD)

वम्हनी को कही-कही वम्हनविछिया भी कहा जाता है। उसका यह नाम किस कारण पडा, यह तो ठीक-ठीक नही कहा जा सकता लेकिन इस नाम से उसे इतना लाभ अवश्य हुआ है कि हिन्दू लोग उसे इसी कारण वहुत कम मारते है।

बम्हनी यहाँ की बहुत ही परिचित छिपकलियों में से एक है जो अक्सर पुराने मकानों में सीलन की जगह या मिट्टी खोदने पर दिखाई पड़ती है। हमारे देश में इसका निवास पूर्वी पंजाब, उत्तरप्रदेश और मध्यभारत है, पर यह मध्यप्रदेश और मद्रास में भी कहीं-कहीं मिल जाती है।

बम्हनी

बम्हनी का कद छिपकलियों के बराबर होता है लेकिन सिर उनसे ज्यादा चपटा रहता है। इसकी नीचे और ऊपर की पलकें जुटी हुई होती हैं जिनपर एक पारदर्शी पर्दा चढ़ा रहता है। इसकी पीठ पर के सेहरे एक दूसरे पर तह से जमे रहते हैं और इसकी दुम सिर और शरीर से ड्योढ़ी या दूनी रहती है।

बम्हनी का रंग बहुत ही सुन्दर और भड़कीला होता है। इसके चपटे शरीर का ऊपरी हिस्सा भूरा होता है जिसमें तांबे की-सी झलक रहती है। पीठ के दोनों तरफ दो-दो सुनहली चौड़ी लकीरें रहती हैं जिनका हाशिया काले रंग का होता है। इनमें से भीतरवाली लकीरें इसकी भौंह के ऊपर से दुम तक चली जाती हैं और बाहरवाली ओठ के पास से चलकर पिछली टाँगों की जड़ तक रह जाती हैं। इन लकीरों के बीच में अक्सर काली चित्तियाँ भी रहती हैं। इसके नीचे का हिस्सा सफेद रहता है, जिसमें कुछ पीलापन मिला रहता है।

गोह परिवार

(FAMILY VARANIDAE)

इस परिवार में ऐसे बड़े गोह रखे गये हैं जो छिपकलियों में सबसे अधिक लम्बे होते हैं। इनमें से कुछ की लम्बाई तो दस फुट तक पहुँच जाती है।

गोहो मे कुछ तो खुश्की पर रहते है और कुछ ऐसे भी है जो अपना अधिक समय पानी मे विताते है । गोह की दुम काफी लबी और वहुत मजबूत होती है, इसी के लिए यह प्रसिद्ध है कि इसकी कमर मे रस्सी बॉधकर लोग इसे मकानो पर चढा देते है जहॉ जाकर यह इतनी मजबूती से जमीन को पकड लेता है कि लोग उसे पकडकर ऊपर चढ़ जाते है।

गोहो की जबान वहुत लबी और सॉप की तरह फटी रहती है। इससे कुछ लोग इन्हे विषैला समझते है, लेकिन वास्तव मे ऐसी बात नही है। इनमे जहर नही होता लेकिन दबाव मे पडने पर ये अपनी दुम से वहुत जोर का वार करते है। ये सव अण्डज जीव है।

गोह मासभक्षी जीव है जिसके बदन का रग भूरा मटमैला या चित्तीदार होता है। चित्तीदार गोहो के बच्चो को लोग बिसखोपडी कहते है और उन्हे बहुत जहरीला मानते है, लेकिन इसमे कुछ भी तथ्य नही है और वे सब एकदम निरीह जीव है। इनकी यहॉ छ जातियॉ पायी जाती है लेकिन यहॉ केवल तीन प्रसिद्ध गोहो का ही वर्णन दिया जा रहा है।

गोह

(LARGE LAND MONITOR)

गोह का दूसरा नाम गोहटा भी है और कही-कही इनकी सॉप की-सी फटी हुई जबान के कारण इनको गोहसॉप भी कहा जाता है।

गोह सारे भारत का निवासी है जो किसी सूखे स्थान पर या सूराखो आदि में रहता है। इसके दॉत नोकीले, चपटे और जड के पास कुछ सूजे से रहते है। इसका थूथन ऊपर की ओर उठा हुआ रहता है और नथुने और कान के छेद तिरछे होते है। इसके पैरो की उँगलियॉ मजबूत और लबी होती है और दुम चपटी होती है जिसका ऊपरी हिस्सा कगूरित रहता है। गोह की पीठ की जमीन का रग पिलछौंह भूरा रहता है जिस पर काली चित्तियॉ रहती है।इसके गाल पार एक काली धारी-सी रहती है और नीचे का सारा हिस्सा पिलछौंह रहता है। किसी-किसी के गले पर की काली चित्तियाँ वहुत घनी हो जाती है। गोह ५-६ फुट लवे होते है।

गोहों की गर्दन लम्बी और आगे की ओर कुछ बढ़ी हुई रहती है। इनकी दुम लम्बी होती है जो छिपकली की तरह नाजुक नहीं रहती। ये जहरीले तो नहीं होते, लेकिन गुस्सा होने पर बहुत जोर से काट लेते हैं। ये अपनी दुम से बहुत जोर से मारते हैं और कभी-कभी अपने मजबूत पंजों से खरोंच भी लेते हैं। अपने पंजों की मजबूती के लिए तो ये मशहूर ही हैं और इनके लिए यह प्रसिद्ध है कि ये ऊँची छतों पर जाकर अपने पंजों से दीवार को इतनी मजबूती से पकड़ लेते हैं कि इनकी कमर में रस्सी बाँधकर आदमी ऊपर चढ़ सकता है।

गोह
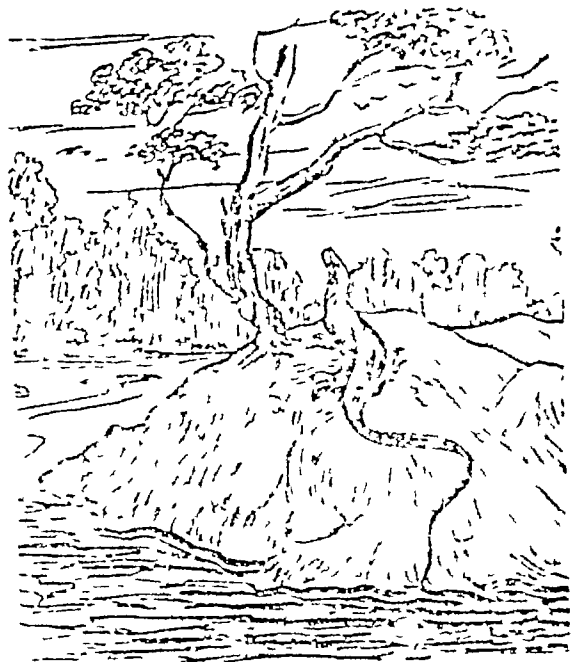
गोह मांसभक्षी जीव हैं जिनका मुख्य भोजन कीड़े-मकोड़े, छोटे-छोटे जीव-जन्तु और अण्डे हैं। हमारे देश में कुछ लोग इनके मांस और अण्डों को बड़े स्वाद से खाते हैं। मादा सितम्बर में २५-३० तक अण्डे देती है।

कबरा गोह

(WATER MONITOR)

कबरा गोह को पानी का गोह भी कहा जाता है क्योंकि इसे पानी का पड़ोस और दलदल बहुत पसंद है। ये हमारे देश के उत्तरी भाग में और खासकर बंगाल की ओर ज्यादा पाये जाते हैं। ये अपना अधिक समय पानी के किनारे पर के पेड़ों पर बिताते हैं और जरूरत पड़ने पर पानी के भीतर भी चले जाते हैं, जहाँ ये काफी समय तक रह लेते हैं।

इनकी शक्ल-सूरत और आदतें अन्य गोहो की तरह होती है, लेकिन रग और नाप में जरूर फर्क रहता है। ये हमारे यहाँ के सबसे बडे गोह है जो प्राय सात फुट या उससे भी ज्यादा लबे होते है।

इन गोहो के दाँत नोकीले और थूथन का सिरा दबा-दबा-सा रहता है। इनकी उँगलियाँ औसत दर्जे की और सुडौल होती है और दुम चपटी रहती है।

कबरा गोह

इनका ऊपरी हिस्सा गाढा भूरा या कलछौंह रहता है जिस पर पीले रग की बिंदियाँ या छल्ले रहते है। इनकी कनपटी पर एक काली पट्टी रहती है जो आँख से गरदन तक चली जाती है। इस पट्टी में पीला हाशिया भी रहता है और नीचे का हिस्सा भी पीला ही रहता है। इसके बच्चो के बदन पर भी बिंदियाँ, चित्तियाँ या छल्ले बहुत चटक और स्पष्ट रहते है।

कबरा गोह भी मासाहारी होता है, लेकिन पानी के निकट रहने के कारण इसका मुख्य भोजन कीडे-मकोडो और छोटे जीवो के अलावा मेढक, मछली और केकडे आदि भी है। मादा बरसात के शुरू में किसी बिल या सूराख में अण्डे देती है जो सख्या में १५-२० तक होते है। इसके अण्डो को तो कुछ लोग खाते है, लेकिन इसका मास हमारे देश में नही खाया जाता।
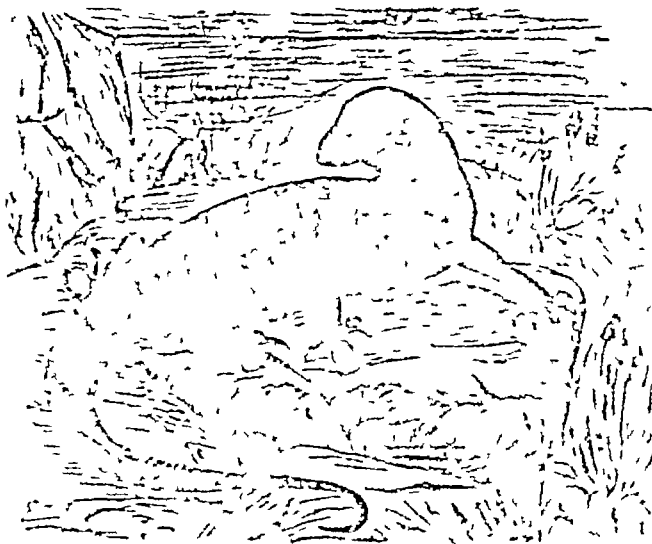
गिरगिट परिवार

(FAMILY AGAMIDAE)

इस परिवार में भी लगभग ७० प्राणी है जो हमारे देश में पाये जाते है। इनमें से ज्यादा सख्या उन्ही की है जो अपना ज्यादा समय पेडो पर बिताते है। साँडा आदि कुछ प्रसिद्ध जीव है जो जमीन पर ही रहते हैं। वृक्षो पर रहनेवालो का शरीर दोनो ओर से दबा हुआ और जमीन पर रहनेवालो का ऊपर से चपटा रहता है। गिरगिट की दुम काफी लबी होती है जो छिपकलियो की तरह टूट नही जाती।

गिरगिटो की काफी बडी सख्या ऐसी है जो अपना रग बदलती रहती है। कुछ का गला लाल रहता है जिससे वे रक्तचुसा कहे जाते है। जोडा बाँधने के समय नर लाल हो जाता है। इनके सिर और पीठ पर छोटे-छोटे शल्क होते है जो एक दूसरे पर चढे रहते है। कभी-कभी इनकी पीठ पर काँटे से रहते है और अक्सर नरो के सिर पर या तो मुकुट-जैसा उभार रहता है या उनके गले में एक थैली-सी लटकती रहती है।

हमारे यहाँ के गिरगिटो के सिर पर थोडा सिर का उभार रहता है जो इनकी गुद्दी तक फैल जाता है। इनकी दुम पर कुछ काँटे-से उभरे रहते है और इनके शरीर की खाल खुरखुरी-सी रहती है। ये अपना रग अपने इच्छानुसार बदल लेते है और हम अक्सर देखते हैं कि इनका सिर कभी-कभी एकदम लाल हो जाता है। बहुरूपी आदि की तरह इनके शरीर का रग पास-पडोस की वस्तुओ के अनुरूप होने के लिए नही बदला करता बल्कि तेज धूप और गरमी के कारण ही इनके शरीर के रग में परिवर्तन होता रहता है।

गिरगिट अक्सर बाग-बगीचो में दिखाई पडते है। इनका शरीर और इनके पैर बहुत मजबूत होते है। इनकी मोटी जबान नीचे की ओर काफी दूर तक जुटी रहती है और उसके आगे का हिस्सा कुछ कटा-सा रहता है। ये भी अण्डज जीव है जिनका मुख्य भोजन कीडे-मकोडे है, लेकिन इनमे से कुछ फलाहारी है और कुछ ऐसे भी हैं जिन्हे सर्वभक्षी कहा जा सकता है।

यहाँ अपने देश के प्रसिद्ध गिरगिट और साँडा का वर्णन दिया जा रहा है।

दंदानी हागर (शार्क मछली)
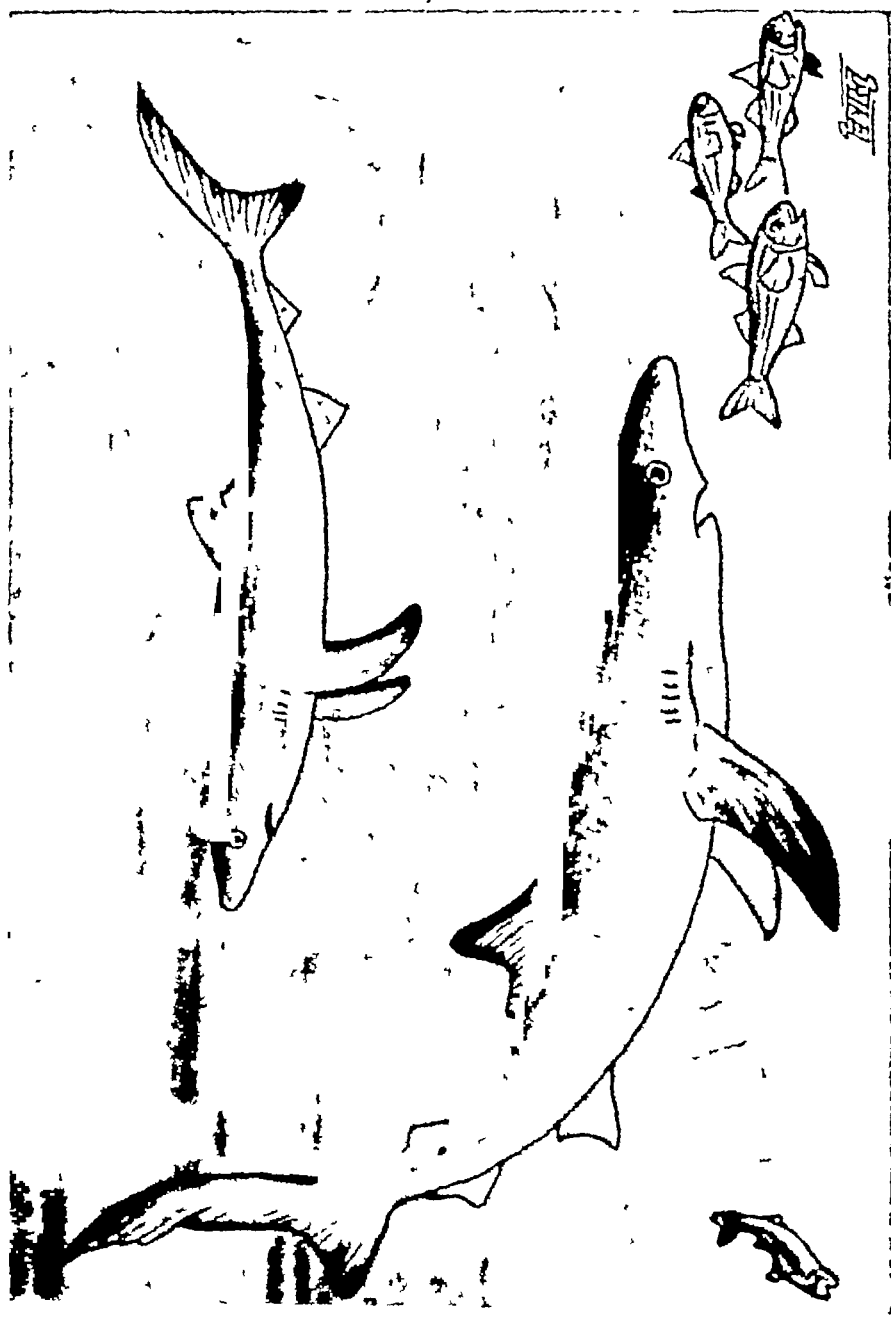
गिरगिट का रग हलका भूरा या पिलछौह रहता है जिस पर या तो गाढी आडी धारियाँ और बिदियाँ रहती है या गाढा जैतूनीपन लिये भूरी चित्तियाँ और पट्टियाँ रहती है। ये सब धारियाँ या चित्तियाँ नर मे धूमिल रग की होती है पर मादा और बच्चो मे ये स्पष्ट रहती है।

इसकी लम्बाई वैसे तो थूथन से दुम तक लगभग साढे चार इच ही रहती है। पर अपनी एक फुट लम्बी दुम को लेकर यह १६ से २० इच तक का हो जाता है। गिरगिट या गिद्दा प्राय झाडियो, पेडो या खुले मैदानो मे चुपचाप कीडे-मकोडो की ताक मे बैठा रहता है जो इसका मुख्य भोजन है। जरूरत पडने पर यह पानी मे भी अच्छी तरह तैर लेता है।

गिरगिट अण्डज प्राणी है जो अपने सफेद और गोल अण्डो को जमीन में गाडकर सेने से छुट्टी ले लेता है।

साँडा

(SPINY TAILED LIZARD)

साँडा वैसे तो हमारे देश मे पश्चिमोत्तर प्रान्त का निवासी है, पर ऊसरी जमीन ज्यादा पसन्द होने के कारण यह यू० पी० के कुछ हिस्सो मे भी मिल जाता है। यह अपने ढग का अकेला ही जीव है और इस जाति के और जीव हमारे यहाँ नही मिलते।

साँडे का सिर कुछ चपटा होता है। इसका थूथन छोटा और नथुने चौडे रहते है। इसके सिर के ऊपर के सेहर या शल्क शरीर के शल्कों से वडे और चिकने रहते है और इसकी गरदन पर कडी झुर्रियाँ-सी पडी रहती है। इसके हाथ-पाँव छोटे और गठे हुए होते है और पिछले पैरो पर कुछ छोटे-छोटे काँटे से उभरे रहते है जो आपस मे जुटकर एक या दो दाँत से बन जाते है जिनसे इसे किसी चीज के काटने मे बडी आसानी हो जाती है।

इसका ऊपर का रग मटमैला या बालू के रग का रहता है जिस पर अक्सर गहरी चित्तियाँ पडी रहती है, जो घनी होने पर टेढी-मेढी लकीरे जान पडती है। इसकी जाँघो में एक-एक काले चित्ते रहते है और नीचे का हिस्सा सफेदी-मायल रहता है। इसकी दुम सुडौल और मजबूत होती है जो लम्बाई मे शरीर और सिर

से उठोड़ी रहती है। दुम पर ऊपर की ओर काँटे से उभरे रहते हैं जो इसकी जड़ से सिरे की ओर धारी में जान पड़ते हैं। इसी कटीली दुम से यह अपनी रक्षा करता है।

सांडा
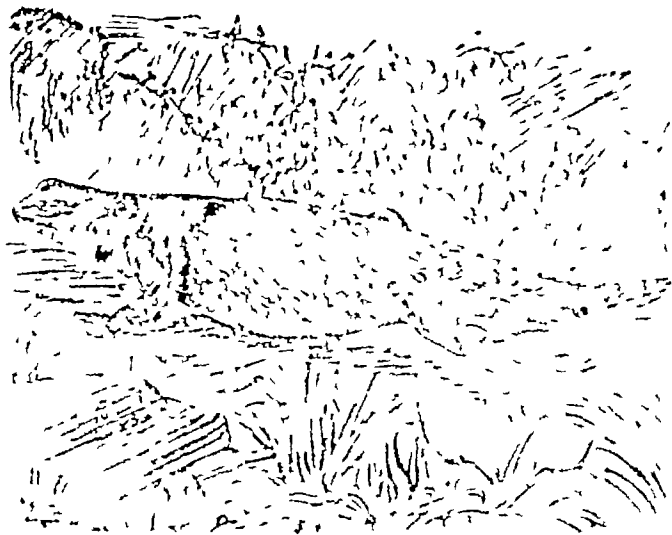
सांडा शाकाहारी जीव है जो जमीन में बिल खोदकर रहता है। इसकी लम्बाई एक फुट तक होती है जिसमें इसकी लगभग सात इंच की दुम भी शामिल रहती है।

बहुरूपी परिवार

(FAMILY CHAMAELEONTIDAE)

इस परिवार के जीव बहुत विचित्र होते हैं। इनके पैर की बनावट, इनकी लम्बी दुम, इनके सिर पर का मुकुट, इनकी लम्बी जबान और इनके रंग बदलने का ढंग सब निराला ही है। ये इसी से शायद बहुरूपी कहलाते हैं।

बहुरूपी के शिकार करने का ढंग भी अनोखा है। ये अपनी लम्बी दुम और पैर की उँगलियों से किसी पेड़ की डाल को अच्छी तरह पकड़कर शिकार की ताक में बैठे रहते हैं और किसी कीड़े-मकोड़े को देखकर अपनी लम्बी जबान को उस

तेजी से वाहर की ओर फेंकते हैं कि कीडा उसी में चिपककर इनके पेट में पहुँच जाता है।

बहुरूपी भी गिरगिटो की तरह रग बदलते है और इनको इस मामले में गिरगिटो से ज्यादा सहूलियत मिली हुई है। इनके शरीर का रग कुछ तो इनकी इच्छा से और कुछ गरमी और धूप के तापमान से अपने आप ही बदलकर पास-पडोस के रग के अनुरूप हो जाया करता है।

यह अपने परिवार का अकेला ही प्राणी है जिसे अपनी अद्भुत आकृति के कारण अन्य सब छिपकलियो से अलग ही रखना पडा है। यहाँ उसी का वर्णन दिया जा रहा है।

वहुरूपी

(CHAMAELION)

वहुरूपी को उसके रग बदलने के कारण यह सुन्दर नाम मिला है। यह हमारे देश मे गगा के दक्षिण भाग के जगलो में पाया जाता है।

इसके माथे पर हड्डी की एक कलँगी-सी उठी रहती है और दोनो आँखो के बीच का कुछ हिस्सा उभरा-उभरा रहता है। इसकी आँखो के ऊपर भी कुछ उभार रहता है। इसके शरीर के ऊपर दाने-से होते है और पीठ पर एक दाँतेदार धारी रहती है। पैर और गले पर भी उभरे हुए दानो की कतारें रहती हैं। वहुरूपी की दुम सिर और शरीर से लम्बी होती है और गले पर का काँटेदार उभार सफेद रहता है। इसके वदन का इससे अधिक रग वताना सम्भव नही क्योकि यह अपने आसपास की वस्तुओ के अनुरूप ही अपना रग वदलता रहता है।

वहुरूपी जगल का निवासी है जो पेडो पर चढने मे उस्ताद होता है।

इसके पैर की उँगलियाँ दो हिस्सो में वँटी रहती है जो आपस मे खाल से इस तरह जुटी रहती है कि केवल नाखून ही जाहिर होते है। अगले पैरो में भीतर की ओर तीन और वाहर की ओर दो उँगलियाँ रहती है लेकिन पिछले पैरो में इसका उलटा होता है और भीतर की ओर दो ही उँगलियाँ रहती हैं।

इसकी आँखे वडी होती हैं और पलको पर दाने-दाने से रहते हैं। इन मोटी पलको से इसकी आँखें ऐसी ढँकी-सी रहती है कि इसकी केवल पुतली भर दिखाई

पड़ती है। इसकी आँखों से भी ज्यादा अद्भुत बनावट इसकी जबान की होती है जो काफी लम्बी, गोल और मुग्दर के शक्ल की रहती है। शिकार पकड़ते समय यह मारे काहिली के अपनी जगह से तो हिलता नहीं, बस अपनी इसी लम्बी जबान को बड़ी तेजी से बाहर निकालता है जिसके सिरे पर के चिपचिपे पदार्थ में कीड़े-मकोड़े चिपक जाते हैं।

बहुरूपी
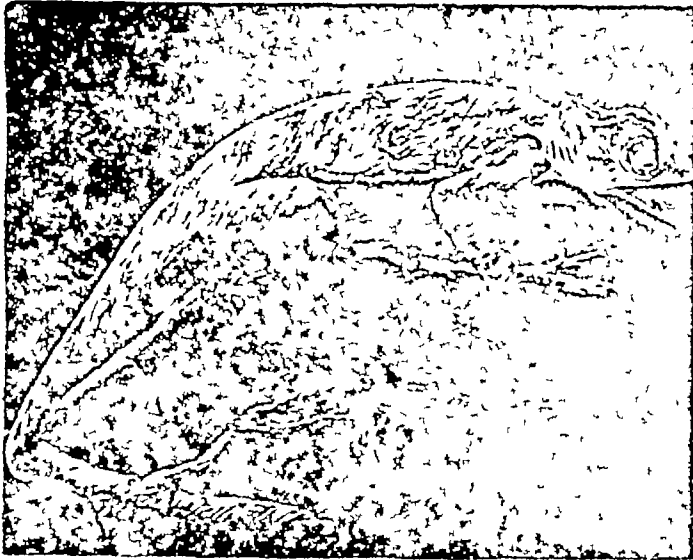
बहुरूपी को यह सुन्दर नाम इसके रंग बदलने के कारण ही मिला है। यह बहुत जल्दी-जल्दी रंग बदलता है और थोड़ी देर तक इसकी ओर देखने से ऐसा प्रतीत होता है मानो इसके बदन पर रंगों की लहर-सी उठ रही है। डर से यह कभी पीला, कभी हरा और कभी लाल हो जाता है।

इसके रंग बदलने का रहस्य यह है कि कुछ जलचर, उभयचर और सरीसृपों की त्वचा के कोष में लाल, पीले, काले सुनहरे और अन्य तरह के अनेक रंगों के कण रहते हैं जो वर्णकोश कहलाते हैं। ये वर्णकोश जब खाल के ऊपर फैल जाते हैं तो खाल का भी वही रंग दिखाई देने लगता है। जब इस प्रकार के गिरगिट आदि प्राणी गुस्सा होते हैं या डरते हैं तो ये वर्णकोश खाल के ऊपर अपना रंग दिखाते

है। भय से जैसे हम लोगो का चेहरा सफेद और क्रोध से लाल हो जाता है, उसी प्रकार बहुरूपियो के शरीर का रग भी बदलता रहता है।

बहुरूपी बहुत ही निरीह और आलसी जीव है जिनका अधिक समय वृक्षो पर ही बीतता है। ये लगभग १५ इच के होते है जिसमे उनकी आठ इच लम्बी दुम भी शामिल है। इसी लम्बी दुम के सहारे ये डाली को पकडकर ऊपर चढते है। ये पेड पर थोडी दूर खिसकने में ही पूरा दिन लगा देते है और इसी सुस्ती के कारण ये शिकार का पीछा करके नही बल्कि उसे अपनी लम्बी जबान को तीर की तरह फेककर पकडते है।

(४) सर्प वर्ग

(ORDER OPHIDIA)

सर्प-वर्ग सरीसृप श्रेणी का सबसे बडा वर्ग है जिसमे ससार भर के सब सर्पो को एकत्र किया गया है। इसमे सब प्रकार के विषधर और बिना विष के सर्प है जिनकी शक्ल-सूरत ही नही, वरन् रग-रूप और स्वभाव मे भी भिन्नता रहती है।

साँप हमारे देश ही मे नही, सारे ससार मे फैले हुए है। अभी तक इनकी लगभग १५ हजार जातियो का पता चल सका है जिनको प्राणि-शास्त्र के विद्वानो ने नव परिवारों मे विभक्त किया है। हमारे देश मे नवो परिवारो के साँप पाये जाते है, लेकिन स्थानाभाव से यहाँ प्रत्येक परिवार का परिचय देना सम्भव नही है अत साँपो के बारे मे यहाँ कुछ साधारण बाते दी जा रही है जो इन अद्भुत प्राणियो की थोडी-बहुत जानकारी प्राप्त करने मे सहायक हो सकेगी।

साँप वैसे तो छिपकलियो के भाई-बन्धु ही है, लेकिन उनकी शकल-सूरत मे बहुत भेद रहता है। छिपकली परिवार के प्राणी जहाँ चार पैरवाले होते है वहाँ साँपो ने अपने पैरो को बेकार समझकर जैसे उनके विकास की ओर ध्यान ही नही दिया। इसके परिणाम-स्वरूप इन प्राणियो के पैर गायब हो गये है। ऊपरी तौर से देखने पर इस तरह के कई भेद मिल जायँगे, लेकिन इनके और छिपकलियो के एक मुख्य भेद के बारे मे जानना जरूरी है जिसके बारे मे हम आम तौर पर नही जान सकते। साँप के जबडे छिपकलियो के जबडो से भिन्न होते है। इनके दोनो जबडे एक दूसरे से घट-बढ सकनेवाले अस्थि-बन्धन

से जुड़े रहते हैं जिससे सांप अपने मुख को काफी चौड़ा कर सकता है और बड़े शिकार को आसानी से निगल सकता है। अजगर वगैरह कुछ सांपों के तो ऊपरी जबड़े और तालू की हड्डी भी लचीली होती है जिससे वे दूसरे सांपों की अपेक्षा अधिक मुंह फैला सकते हैं।

सांपों की पलकें नहीं झँप सकतीं क्योंकि उनकी आंखों पर एक पारदर्शी झिल्ली-सी चढ़ी रहती है। जब सांप अपनी केंचुल निकालता है तो उसके साथ ही साथ आंख की झिल्ली का यह ऐनकनुमा हिस्सा भी निकल आता है। सांपों के कान के छिद्र नहीं होते और न ये कान से सुन ही सकते हैं इसीलिए हमारे यहां इनको चक्षुश्रवा कहा जाता है, लेकिन ये आंख से सुनते हों ऐसी बात भी नहीं है। इनको प्रकृति ने आहट पहचानने की ऐसी अजीब शक्ति दे रखी है कि इसे देखकर ताज्जुब होता है। इनके सारे शरीर की त्वचा को ही सुनने या आहट का अनुभव करने की इन्द्रिय कह सकते हैं। इसी के सहारे ये दूर तक रेंगनेवाले प्राणियों की आहट का अनुभव कर लेते हैं क्योंकि यह आहट या धमक पृथ्वी की सतह के सहारे इनके शरीर तक पहुंच जाती है। वैसे सांप के पास अगर बंदूक भी दाग दी जाय तो उसकी आवाज शायद वह न सुन सके लेकिन कुछ दूर पर अगर कोई पैर पटके तो उसे तुरन्त उसका पता चल जाता है। यही हाल सपेरों की बीन का भी है। सांप के बीन के स्वर पर मुग्ध होने की बात में कुछ भी सच्चाई नहीं है। वह तो सँपेरे की बीन का मधुर स्वर सुन ही नहीं पाता। फिर उस पर मस्त होना कैसा। होता वास्तव में यह है कि जब सँपेरा अपनी बीन बजाता है तो वह सांप के फन के पास अपनी बीन को ले जाकर उसे हिलाता रहता है और अक्सर बीन से सांप के फन को छेड़ देता है। अपने बचाव के लिए सांप बीन के पास अपना सिर उसके साथ ही साथ हिलाता रहता है और बार बार सँपेरे पर फन का वार करता है। उस समय हम लोग सोचते हैं कि सांप बीन के स्वर से मस्त होकर झूम रहा है तो वास्तव में [illegible] यह है कि सांप सँपेरे की छेड़छाड़ से बेहद तंग रहता है और [illegible] [illegible] रहता है।

[illegible]
[illegible]

यह जड के पास एक खोल से घिरी रहती है जिसके भीतर साँप अपनी जबान को समेट सकता है। साँप की दुम विभिन्न नाप की जरूर होती है, लेकिन यह कभी भी सिर और धड से बडी नही होती। कुछ साँप तो ऐसे है जिनकी दुम नोकीली न होकर छोटी और सिरे की ओर मोटी और गोल होती है, जैसे सिरे का कुछ हिस्सा किसी ने काट लिया हो।

साँप के पैर जरूर नही होते लेकिन पैर न होने पर भी ये सूखे पर इतनी तेजी से भागते है कि देखकर आश्चर्य होता है। इनके चलने का तरीका भी बहुत ही अद्भुत है जिसके बारे मे कुछ जान लेना जरूरी है। साँप के पेट के नीचे एक पतले और लम्बे सेहरो की कतार-सी रहती है जिसके दोनो सिरे उसकी पसलियो के किनारो से जुडे रहते है। जब साँप की पसलियाँ हरकत करती है तो यह सेहर मुडकर ऊपर की ओर हो जाते है और साँप को आगे की ओर खिसकने मे सहायता मिलती है। इसी प्रकार पसलियो के हरकत करने से नीचे के सेहर सिकुडते और फैलते है और साँप का शरीर जमीन पर रगडता हुआ आगे की ओर बढता है। इसके अलावा साँप अपने शरीर को इधर-उधर चलाकर भी आगे की ओर सर्पाकार बढता है। इसके पानी की सतह पर तैरने का यही तरीका है।

साँप का मुख्य भोजन छोटे-छोटे जानवर है, लेकिन उनमे भी इसे कुछ खास-खास जीव ही पसन्द है। इसके खाने का तरीका भी इतना रोचक है कि उसका सक्षेप में वर्णन करना असगत न होगा। जैसा पहले बता चुके है, साँप के दोनो जबडे एक प्रकार के अस्थि-बन्धन से जुडे रहते है जिसके कारण उसका मुख काफी चौडा फैल सकता हे और वह आसानी से बडे शिकार को भी पकडकर निगल सकता है। यह निगलना भी अजीब ढग का होता है क्योकि साँप के दाँत भीतर की ओर मुडे रहते है और जब वह किसी को निगलने लगता है तो वह उसे इन दाँतो की पक्ति से उसी तरह भीतर की ओर सरकाता है जैसे पैर पर मोजा चढाया जाता है। भीतर की ओर मुडे हुए दाँतो के कारण साँप को शिकार के निगलने मे आसानी जरूर होती है, लेकिन वह आधे निगले हुए शिकार को अपने मुंह से बाहर नहीं निकाल सकता। साँप-छछूंदरवाली कहावत मे सत्यता इतनी ही है कि साँप छछूंदर ही क्यो, किसी भी शिकार को आधा निगलकर फिर बाहर नही निकाल सकता। सम्भव है, जब यह कहावत बनी हो तो साँप ने छछूंदर को

ही पकड़ रखा हो। कुछ साँप अपने शिकार को जिन्दा ही निगल जाते हैं और कुछ उसे निगलने से पहले अपनी कुण्डली में कसकर मार डालते हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो अपने शिकार को विष द्वारा मारकर तब निगलते हैं, लेकिन यह अन्तिम उपाय वे ही काम में लाते हैं जो विषधर होते हैं और यह तो सभी जानते हैं कि विषैले साँपों की संख्या इनी-गिनी ही होती है।

साँप के भोजन के बारे में कोई खास नियम नहीं है। ये छोटे बड़े जीवजन्तु कीड़े, मेढक, चिड़ियाँ, मछलियाँ और अण्डे तो खाते ही हैं, साथ ही साथ दूसरे साँपों को भी खाने से नहीं चूकते। चिड़ियों के अण्डे-बच्चों का ये काफी नुकसान करते हैं। इनका भोजन बहुत कुछ इनके डील-डौल पर निर्भर करता है। अजगर जहाँ अपनी कुण्डली में बन्दरों और स्यारों को कसकर उनसे पेट भरते हैं, छोटे साँपों को चूहे और मेढकों पर ही सन्तोष करना पड़ता है। साँप जो कुछ भी खाते हैं वह बहुत जल्द हजम हो जाता है, लेकिन इस सहूलियत के होते हुए भी वे खाते बहुत कम हैं। खाने की इस कमी को, जान पड़ता है वे पानी या दूध पीकर पूरा करते हैं और यही कारण है कि उन्हें अक्सर ओस चाटने के लिए बाहर चक्कर लगाना पड़ता है। यदि यह दिक्कत उनके साथ न लगी होती तो शायद हम साँपों को इतना अधिक न देख पाते। वे साल में कई बार खाकर ही अपना काम चला लेते हैं, और पानी के साँप तो दो-चार मेढकों पर ही पूरा साल गुजार देते हैं।

साँप अण्डे देनेवाले जीव हैं जो बैसाखी अण्डे देते हैं। इन अण्डों का छिलका मुलायम चमड़े-सा होता है और ये कभी-कभी आपस में एक लसलसे पदार्थ से जुड़े रहते हैं। अजगर को छोड़कर कोई भी साँप अपने अण्डों को नहीं सेता। ये जहाँ भी रहते हैं वहाँ की गर्मी से अपने आप फूट जाते हैं। पानी में रहनेवाले साँपों को पृथ्वी पर अण्डे देने की सहूलियत प्राप्त नहीं है। अतः वे अपने अण्डों को पेट में ही रखते हैं जहाँ उनके फूटने पर बच्चे बाहर निकलते हैं।

अगर सब साँप विषैले होते या अधिकांश के भी ज़हर होता तो उनकी मौजूदगी मनुष्यों के लिए बहुत खतरनाक होती लेकिन बात ऐसी है नहीं। इनमें से थोड़े ही ऐसे हैं जिनके विष की ग्रन्थियाँ होती हैं और वे ही हमारे लिए खतरे का कारण बन सकते हैं। इनमें ज्यादातर तो ऐसे ही हैं जो हमें कुछ भी नुकसान नहीं पहुँचाते,

लेकिन इन थोडे विपैले सर्पो के कारण आज हम अपनी अनभिज्ञता से सभी सॉपो से दुश्मनी मान बैठे है। सॉप के विप की ग्रन्थियॉ ऊपरी जबडे के ऊपर और दोनो ऑखो के पीछे ओर नीचे रहती है। ये ग्रन्थियॉ जहरीले दॉतो की जड तक एक नली से जुडी रहती है। जहरीले दॉत पोले होते है और उनके सिरे या नोक पर बहुत पतला छेद रहता हे जिसे भीतर गडाकर सॉप अपनी विप-ग्रन्थियो से विप भर देता हे, जैसे इन्जेक्शन दिया जाता हे। इन विप-ग्रन्थियो मे विप थोडी ही मात्रा मे रहता हे ओर एक बार डस लेने या विप निकाल देने पर साप की विप-ग्रन्थियो मे थोडा या बिलकुल विप नही रह जाता। इस प्रकार सॉप कुछ देर के लिए विपहीन हो जाता है। कुछ सॅपेरे, जो सॉप का विप-दन्त नही उखाडते, अक्सर सॉप का तमाशा दिखाते समय हाथ मे एक कपडा लिये रहते हे, जिस पर गुस्सा होने पर सॉप अपने फन का वार करता हे और अपना विप निकाल देता हे। कई बार ऐसा कर देने पर सॉप कुछ देर के लिए विपहीन हो जाता हे ओर तब सॅपेरा बहुत गर्व से उसे पकडकर दर्शको के सामने अपनी बहादुरी दिखाता हे। सॉपो को विपहीन बनाने के लिए एक तरीका यह भी है कि उनके विपदन्त निकाल दिये जायॅ। लेकिन यह तरीका स्थायी नही कहा जा सकता, क्योकि अक्सर पुराने दॉत उखड जाने पर उनके स्थान पर नये दॉत निकल आते है।

विपधर-सर्प सख्या मे कम भी होते है ओर वे अकारण आक्रमण भी नही करते, लेकिन वे साप जिनमे विप नही होता विपैले-सॉपो से ज्यादा हमला तो करते ही है, साथ ही साथ वे काटते भी है।

सॉप गिरगिट आदि की तरह रग नही बदलते ओर उनकी पुरानी खाल या केचुल थोडी-थोडी करके निकलती हे। ये समय आने पर अपने शरीर से पूरी केचुल उतार फेकते है जिसके साथ इनकी ऑखो पर चढी हुई झिल्लीनुमा खाल भी निकल जाती हे। केचुल के साथ ऑख के ऊपर की इस झिल्ली के निकल जाने से साप कुछ दिनो तक बहुत कम देख पाते है। इनका यह समय बहुत सुस्ती मे कटता है और इस समय छेडे जाने पर ये अक्सर काट भी लेते है।

सापो की ज्यादा किस्मे ऐसी है जो हमेशा पृथ्वी पर ही रहती है ओर वे न तो पानी मे ही जाते है और न पेडो पर ही चढते है। लेकिन कुछ सॉप ऐसे है जो पानी मे

ही रहना पसंद करते हैं और कुछ को पेड़ों पर ही रहना भाता है। जमीन पर रहनेवाले सापों का शरीर गोलाकार होता है और उनके पेट के नीचे के सेहरे चौड़े होते हैं, लेकिन पेड़ों पर चढ़नेवाले साप बहुधा रंगीन होते हैं। वे पतले होते हैं और उनका शरीर कोमल होता है और उनके पेट पर के सेहरों पर उभार-सा रहता है जिससे उन्हें पेड़ की डाल को मजबूती से पकड़ने में सहायता मिलती है। कुछ पेड़ पर रहनेवाले साप, जो अपना ज्यादा समय पानी में ही बिताते हैं, तैरने और डुबकी लगाने में बहुत उस्ताद होते हैं। उनके नथुने ऊपर की ओर उठे रहते हैं जिससे उनको पहचानना कठिन नहीं होता। इस प्रकार हम सापों को देखकर उनके रहने के स्थान का तो पता लगा सकते हैं, लेकिन उनमें से विष वाले और बिना विषवाले सापों का पहचानना तब तक आसान नहीं होता जब तक हमें उनके बारे में अच्छा ज्ञान न हो जाय।

इस संक्षिप्त वर्णन से आप लोग सापों के बारे में ज्यादा भले ही न जान सके हों लेकिन इतना तो आपको मालूम ही हो गया होगा कि उनमें बहुत थोड़े ही ऐसे हैं जिनके विष होता है और जो हमारे लिए घातक हैं। ज्यादा संख्या तो उन्हीं की है जो हमारा कुछ भी नुकसान नहीं करते बल्कि वे हमें हानि पहुंचानेवाले कीड़ों-मकोड़ों और जानवरों का नाश करके हमारी भलाई ही करते हैं।

सर्प वर्ग वैसे तो कई परिवारों में विभाजित है, लेकिन यहां केवल तीन परिवारों का वर्णन दिया जा रहा है जो इस प्रकार है—

१ अजगर परिवार—Family Boidae

२ नाग परिवार—Family Colubridae

३ दुबोइया परिवार—Family Viperidae

इन तीनों परिवारों में प्राय सभी प्रसिद्ध साप आ जाते हैं।

अजगर परिवार

(FAMILY BOIDAE)

अजगर परिवार में अजगर तथा उसी जाति के अन्य सर्प रखे गये हैं जो अपने भारी शरीर के लिए प्रसिद्ध हैं। इनमें से कुछ सर्पों की लम्बाई २५-३० फुट तक पहुंच जाती है।

ये सब वहुत काहिल, सुस्त और सीधे होते है और अकारण ही किसी पर हमला नही करते। इनमे विप भी नही होता, इसलिए ये अपने शिकार को अपनी गुजलक मे कसकर मार डालते है और फिर उसे समूचा ही निगल जाते है। इनमे कुछ छोटे कद के भी होते है, लेकिन इन सभी छोटे-वडे सर्पो का रग प्राय मटमैला रहता है।

अजगर पेडो पर आसानी से चढ जाते है और तैरने मे तो ये उस्ताद होते ही है। इन्हे पानी बहुत पसद है और इसीलिए ये दिन-दिन भर पानी मे पडे रहते है।

ये अन्य सर्पो की तरह अपने अण्डो को धूप की गरमी से फूटने के लिए नही छोड देते वल्कि उन्हे अपनी गुजलक मे रखकर सेते है। कुछ ऐसे भी है जिनके पेट मे ही अण्डे परिपक्व होते है और वे बच्चे जनते है।

यहाॅ अपने यहाॅ के प्रसिद्ध अजगर और मटिहा का वर्णन दिया जा रहा है जो इस परिवार के वडे और छोटे साॅपो का प्रतिनिधित्व करते है।

अजगर

(INDIAN PYTHON)

अजगर हमारे यहाॅ का सबसे बडा और प्रसिद्ध साॅप है जो इस देश मे प्राय सभी जगह पाया जाता हे।

इसका कद ८-१० फुट का होता है लेकिन कही-कही ये २० फुट से भी लबे देखे गये है। वजन मे भी ये ३ मन तक के पाये गये है। इनके शरीर की वनावट गोल, सिर चौडा, आॅखे औसत कद की और पुतलियाॅ आडी होती है। इनकी आॅखे विल्ली की आॅखो जैसी होती है जिससे ये रात मे भी देख सकते है।

अजगर को पठारो के ढलुए स्थान, पुराने भीटे और पानी के आस-पास के जगल वहुत पसद है। जगलो मे ये पेड पर भी वडी आसानी से रहते है। पेड पर किसी शिकार को पकडते समय ये अपनी दुम से डाल को पकड लेते है और अपने शरीर के अगले हिस्से से शिकार को कस लेते है। इनका मुख्य भोजन मास है जिसमे चिडियो से लेकर हिरन तक वडे पशु-पक्षी आ जाते है।

अजगर सूखी जमीन और पेडो के अलावा पानी मे भी रह लेते है, जहाॅ १५-१५ मिनट की डुवकी लगाना इनके लिए कोई वात ही नही है। ये वहुत अच्छी तरह तैरते है और काफी ताकतवर होने के कारण पानी की तेज धार को भी चीरते चले जाते है। वैसे ये सुस्त और काहिल होते है और भोजन के पश्चात तो इनकी काहिली और भी वढ जाती है।

अजगर की पीठ का रग राखीपन लिये भूरा या पिलछौंह होता है जिस पर बीच में, सिर से दुम तक, कत्थई चित्तो की खडी लकीर-सी रहती है। ये चित्ते चौकोर

अजगर

रहते हैं जिनका हाशिया काला होता है। इन चित्तो के दोनो ओर छोटे चित्तो की खडी धारियाँ भी रहती हैं। इनके सिर पर एक भूरी तीर की शक्ल की लकीर रहती है, जो गुद्दी तक चली आती है। दोनो बगल आँखो पर होकर एक एक भूरी पट्टी भी रहती है। आँखो के नीचे भी दोनो ओर एक एक आडी भूरी पट्टी रहती है। नीचे का हिस्सा पिलछौंह रहता है जिसके किनारे भूरी चित्तियाँ रहती हैं।

मादा अजगर एक बार मे ८ से १०० तक अण्डे देती है जो बत्तख के अण्डो की तरह लेकिन नाप में कुछ छोटे रहते हैं। इनके बच्चे दो फुट या उससे कुछ बडे होते हैं।

मटिहा साँप

(EARTH SNAKE)

मटिहा साँप, जैसा कि इसके नाम से जाहिर है, मिट्टी मे रहनेवाला साँप है। यह अजगर का निकट सम्बन्धी है और कद में उससे बहुत छोटा होने पर भी इसकी बहुत आदतें अजगर से मिलती हैं।

हमारे यहाँ यह पजाब से बगाल तक फैला हुआ है। इसे मटियार और पथरीली जमीन से रेतीली जमीन ज्यादा पसद है। यह एक से ढाई फुट तक का होता है। इसके बदन की बनावट गोल होती है और दूर से यह अजगर का बच्चा-सा जान पडता है। इसका थूथन कुछ आगे की ओर बढा रहता है। इसकी आँख छोटी और पुतली आडी होती है।
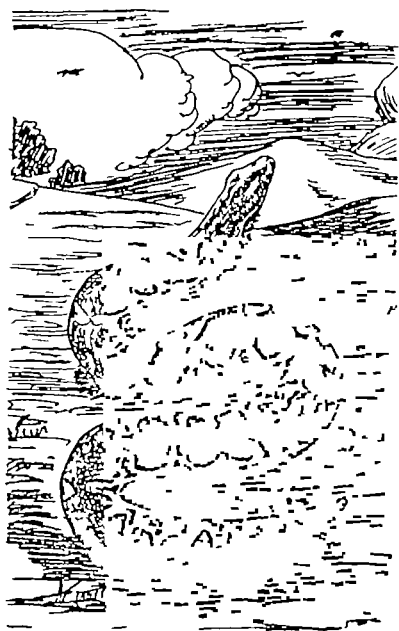
मटिहा के शरीर का ऊपरी हिस्सा पिलछौह या भूरापन लिये राख के रग का रहता है जिसके ऊपर गाढे भूरे चित्ते, टेढे-मेढे ढग से, रहते हैं। इसके सिर पर तीर जैसा चिह्न रहता है और पेट का हिस्सा सफेद रहता है। इसके बच्चो का रग चटक होता है।

मटिहा

मटिहा के जहर भले ही न हो पर इसमें गुस्से की कमी नही रहती। यह दबाव पडने पर बडे जोर से काट लेता है। मटिहा मिट्टी के भीतर बिल खोदकर रहता है जो बहुत गहरा होता है। यह भद्दा और काहिल साँप है जो और साँपो की तरह तेज नही भागता।

इसके मुख्य भोजन में चुहियाँ, गिलहरी आदि छोटे-छोटे जीव आते हैं जिन्हें यह अजगर की तरह अपनी गुजलक में कसकर मार डालता है। इसकी मादा अण्डे न देकर बच्चे ही जनती है।

नाग-परिवार

(FAMILY COLUBRIDAE)

सरीसृप श्रेणी में छिपकली परिवार की तरह नाग-परिवार भी बहुत विस्तृत है। इस परिवार के साँप सारे ससार के गरम देशो में पाये जाते हैं।

इन साँपो मे से कुछ तो जमीन पर रहते है, लेकिन कुछ ने पेडो पर रहने का अभ्यास कर लिया है। कुछ पानी में ही अपना सारा समय व्यतीत करते है तो कुछ ऐसे भी है जो जमीन के भीतर बिलो में ही घुसे रहना पसद करते है। इस प्रकार अलग-अलग स्थानो पर रहने के कारण उनके स्वभाव, शरीर-रचना तथा रगरूप मे भी काफी भेद आ गया है, जो उनको देखने से साफ जाहिर होता है।

जमीन के भीतर अधिक समय व्यतीत करनेवाले सॉपो का कद छोटा होता है और उनकी दुम और आँखें भी अपेक्षाकृत छोटी होती है। रेगिस्तानो मे रहनेवाले साँपो की खाल बहुत रूखी होती है और उनका रग भी हलका रहता है जिससे वे अपने पास-पडोस के रग में आसानी से छिप जाते है। लेकिन खुश्की पर रहनेवाले सॉपो की दुम लबी होती है और उनका शरीर भी सुडौल रहता है। उनकी गरदन से उनका सिर अलग जान पडता है और उनकी आँखे बडी होती है। पानी मे रहनेवाले साँपो का थूथन कुछ उभरा-उभरा-सा रहता है, और उनके नाक के छिद्र थूथन के सिरे पर रहते है। इन छिद्रो को पानी के भीतर जाते समय ये सॉप अपने इच्छानुसार बद कर सकते है।

इस बडे परिवार को सुविधा के लिए तीन मुख्य भागो में इस प्रकार बॉटा गया है—

१ **विषहीन सर्प**—Division Aglypha

जिन सर्पो के विषदन्त नही होते।

२ **विषैले सर्प**—Division Opisthoglyphe

जिन सर्पो के विषदन्त ऊपरी जबडे के पिछले हिस्से मे रहते है और

३ **विषधर सर्प**—Division Proteroglyphe

जिन सर्पो के विषदन्त मुँह के आगे ही रहते हैं।

पहले भाग मे हमारे यहाँ का प्रसिद्ध धामिन सॉप आता है जिसका वर्णन आगे दिया गया है।

दूसरे भाग मे हमारे यहाँ का पनिहा सॉप और यहाँ का प्रसिद्ध उडनेवाला सॉप आता है जिसे प्राय. लोग नागिन कहते है। यह अपनी पसलियो को सिकोडकर ऐसी जोर-जोर से कूदती है कि हवा मे कुछ दूर तक तैरती चली जाती है।

तीसरे भाग में हमारे यहाँ के प्रसिद्ध विषधर सर्प रखे गये है जो अपने विष के कारण हमारे बहुत परिचित है। इन्ही के साथ समुद्रो में रहनेवाले विषैले सर्प भी है जिनका भारी शरीर अजगर से कुछ ही छोटा होता है । ये अपना सारा समय पानी में ही बिताते है इसीलिए इनकी दुम नोकीली न होकर चपटी बना दी गयी है जिसे इधर-उधर चलाकर ये पानी में आसानी से तैर सकते है।

यहाँ इनमें से करायत, घोडकरायत, नाग, नागराज तथा समुद्र मे रहनेवाले चीतल का वर्णन दिया जा रहा है।

नाग

(COBRA)

नाग हमारे यहाँ का सबसे प्रसिद्ध और परिचित साँप है जो हमारे देश में प्राय सभी स्थानो में पाया जाता है। यह अपने फन के कारण और साँपो से अलग रहता है और गुस्सा होने पर जब अपना फन फैलाता है तो इसे पहचानने मे कोई दिक्कत रह ही नही जाती। यह जहरीला भी बहुत होता है और इसके डसने से काफी आदमी हर साल मरते हैं।

नाग के हमारे यहाँ बहुत-से नाम है जिसमें करिया या फेटार प्रसिद्ध हैं। ये ४-५ फुट लम्बे होते हैं, पर कही-कही ६ फुट तक के नाग पाये गये हैं। इनके फन पर कई तरह के चिह्न रहते हैं। कुछ के फनो पर ऐनक की तरह गोल चिह्न बने रहते है तो कुछ के फन पर सफेद पान का चिह्न रहता है जिसमें का कुछ हिस्सा काला रहता है। और कुछ ऐसे भी है जिनके फन पर किसी तरह का चिह्न नही रहता।

नाग का ऊपरी हिस्सा राखीपन लिये गाढा-भूरा या काला रहता है। कुछ के शरीर पर हलके रग की चित्तियाँ रहती है तो कुछ के चारखाने जैसी धारियाँ पडी रहती है। इनके नीचे का हिस्सा सफेदी मायल भूरा या कलछौह रहता है। किसी और के निचले भाग पर काले चौकोर चिह्न पडे रहते है।

नाग वैसे तो जमीन पर रहनेवाला साँप है, पर यह पेड पर भी चढ जाता है और पानी मे भी अच्छी तरह तैर लेता है। इसका मुख्य भोजन छोटे-छोटे साँप, चूहे, मेढक और छिपकलियाँ है। यह शिकार के लिए रात को बाहर निकलता है और दिन मे अक्सर मकान में या उसके आसपास के बिलो और सूराखो में घुसा रहता है। वैसे तो

इनके रहने के स्थान घने जगल, खुले मैदान, झाडियाँ, वाग-वगीचे और खेत है लेकिन वस्तियो मे भी इनकी काफी वडी सख्या रहती है।

नाग

नाग अकारण आक्रमण नही करता और छेडे जाने पर भी भागने की ही कोशिश करता है, लेकिन अगर छेडनेवाला निकट हुआ और दवाव ज्यादा हुआ तो यह अपना अगला हिस्सा उठाकर और फन फैलाकर डसने को तैयार हो जाता है। उस समय इसकी फुफकार वडी डरावनी लगती है। अगर आदमी डर गया और भागने की कोशिश की तो यह आक्रमण करके उसे जरूर डस लेता है। पर यदि मनुष्य चुपचाप वही का वही रह गया तो यह धीरे-धीरे चला जाता है। पुराने नाग उतने खतरनाक नही होते लेकिन वच्चे और पट्ठे वडे गुस्सैल होते है और वे वडी जल्दी ही हमला कर वैठते है।
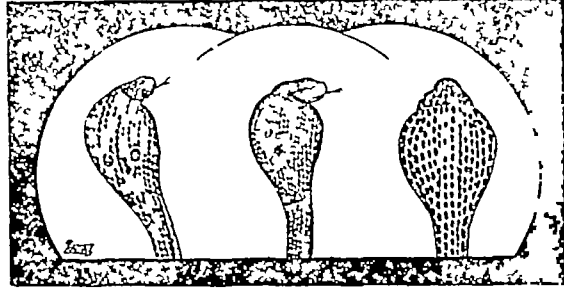
नाग का मुख्य भोजन चूहे और मेढक है, पर यह चिडियाँ और उनके अण्डे भी वडे स्वाद से खाता है। इसके अलावा इससे छिपकलियाँ, गिलहरियाँ और दूसरे छोटे साँप भी नही वचते।

नाग का जहर वहुत तेज होता है और इसका काटा हुआ मनुष्य दो से छ घटे के भीतर मर जाता है। वैसे यह जरूरी भी नही है कि इसका काटा मर ही जाय क्योकि एक वार डसने के वाद साँप के जहर की थैली से पर्याप्त विप निकल जाता है और फिर उसमें दुवारा विप भरने में कुछ समय लगता है। यदि नाग किसी को डस चुका है तो वहुत सभव है कि दुवारा डसने पर वहुत ही कम विप चढे।

इसकी मादा अण्डे देती है, जो १२ से २२ तक रहते हैं। इनमे से करीव दो महीने पर सँपोले निकलते है जो अण्डे से वाहर निकलने पर ८-१० इच के रहते है। कुछ लोगो का ख्याल है कि ये सँपोले नाग से भी अधिक जहरीले होते है जो गलत है।

नागराज

(KING COBRA)

नागराज हमारे देश में केवल दक्षिणी भारत, उडीसा, बगाल और मद्रास की ओर पाया जाता है। यह नाग से अधिक जहरीला और खतरनाक होता है, पर खैरियत यही है कि यह अधिक सख्या में नही पाया जाता।

यह नाग से कद में वडा होता है। इसकी लवाई औसतन ८ से १२ फुट तक होती है, लेकिन कही-कही यह १५ फुट से भी वडा होता है। नाग की तरह इसके भी फन होता है लेकिन इसके फन पर उसकी तरह किसी प्रकार का चिह्न नही वना रहता। इसके शरीर का रग बादामी या जैतूनी होता है जिस पर गहरे रग की पटरियाँ रहती है। इसके बच्चे प्राय काले होते है जिनके शरीर पर पीले छल्ले और सिर के ऊपर चारखानेनुमा पीली पटरियाँ पडी रहती है।

नागराज

नागराज ज्यादातर जगलो में रहना पसद करता है। यह नाग से अधिक भयकर होता है और आदमियो को देखकर भागने की जगह उनका पीछा करता है। यह इतना तेज चलता है कि इससे वचकर भागना वहुत कठिन हो जाता है। इसके आक्रमण

से वचने के लिए एक ही तरीका है कि यदि आदमी अपना छाता या कोई कपडा भागते समय फेंक दे तो यह उमी मे उलझ जाता है।

नागराज का मुख्य भोजन साँप है। यह धामिन वगैरह के अलावा नाग या करायत जैसे जहरीले साँपो को भी खाता है। यह वैसे तो जमीन पर रहनेवाला साँप है, लेकिन यह पेडो पर भी वडी आसानी से चढ जाता है।

नागिन

(INDIAN FLYING SNAKE)

नागिन हमारे यहाँ के जहरीले साँपो मे से एक है, लेकिन हमारे यहाँ इसकी इतनी कम सख्या है कि इसे वहुत कम लोगो ने देखा होगा।

यह डेढ-दो फुट से अधिक लवी नही होती और अपने काले रग के कारण ही शायद इमे नागिन का नाम मिला है। इमके शरीर के प्रत्येक सेहर पर छोटी-छोटी पीली विंदियाँ पडी रहती है और पीठ पर पीले रग के फूलों की एक पट्टी-सी रहती है जिमके वीच का रग लाल रहता है।

इसे उडनेवाला साँप भी कहा जाता है क्योकि यह जमीन मे उछलकर हवा मे कुछ दूर तक तैरती चली जाती है। यह किमी प्रकार का खतरा निकट आने पर ही हवा में उछलती है और ऊपर उठ जाने पर अपनी पसलियो को वाहर की ओर फैलाकर अपना पेट पिचका लेती है। ऐसा करने से इसके शरीर का निचला हिस्सा खमदार होकर इमे जल्द नीचे नही गिरने देता।

करायत

(KARAIT)

करायत हमारे यहाँ का सवमे जहरीला साँप है जिमके डसने से हमारे यहाँ सवमे ज्यादा लोग मरते है क्योकि यह हमारे घरो में अन्य साँपो से अधिक सख्या में रहता है। इसका जहर भी नाग से कम तेज नही होता।

करायत सारे भारतवर्ष मे पाया जाता है और इसका रग वहुत कुछ डेढुई मे मिलने के कारण अक्सर लोग इसके और उसके पहिचानने में धोखा खा जाते हैं। लेकिन

इसकी पीठ पर की आडी सफेद धारियाँ दुम के सिरे से चलकर सिर से कुछ दूर पहले ही खतम हो जाती है और डेढुई की पीठ पर ये लकीरे सिर के पास से शुरू होकर निचली पीठ तक जाती है।
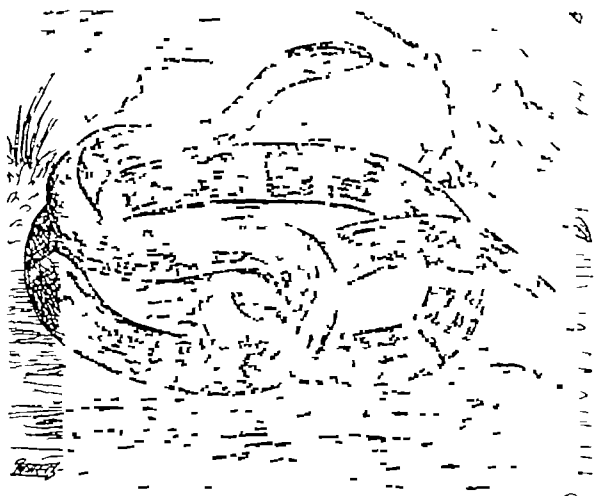
करायत

करायत के ऊपर का रग कलछौह या निलछौंह काला रहता है जिस पर पतली आडी सफेद धारियाँ या घनी चित्तियाँ रहती है। पेट का हिस्सा सफेद रहता है।

करायत लबाई मे २ से ४ फुट तक का होता है। यह रात मे निकलनेवाला साँप है जिसका मुख्य भोजन छोटे साँप, चूहे, मेढक, छिपकलियाँ आदि है। घोड करायत की तरह अपनी खूराक की तलाश मे यह भी पानी मे उतरने से नही हिचकता। दिन को यह अँधेरी कोठरियो और पुराने सूराखो आदि मे छिपा रहता है, पर अँधेरा होते ही इसमे वहुत तेजी आ जाती है और यह इधर-उधर घूमने लगता है।

करायत अक्सर जोडे मे रहते है और एक के मारे जाने पर दूसरा हमला कर देता है। इससे एक को मारने के वाद उसके जोडे से सावधान रहने की वहुत जरुरत रहती है। इसके काटने पर चद घटो मे ही मृत्यु हो जाती है।

करायत की मादा अण्डे देती है जो सफेद रग के और करीव डेढ इच लम्बे होते है।

घोड करायत

(BANDED KARAIT)

घोड करायत हमारे यहाँ के जहरीले साँपो में से एक है। इसे राज-साँप भी कहते हैं। हमारे देश में यह बगाल, दक्षिण भारत और उत्तरी भारत मे पाया जाता है। लोगों का ऐसा ख्याल है कि यह घोडे की तरह बोलता है और इसी से इसका नाम घोड-करायत पडा है।

यह ५-६ फुट लबा साँप है जो कहीं-कहीं सात फुट तक लबा पाया गया है। यह देखने मे बहुत ही सुदर लगता है। इसका सारा शरीर काली और पीली आडी पट्टियों से भरा रहता है। यह देखने में जितना सुदर होता है उतना ही जहरीला भी होता है। इसका जहर नाग से भी तेज होता है और इसका काटा हुआ मुश्किल से बचता है।
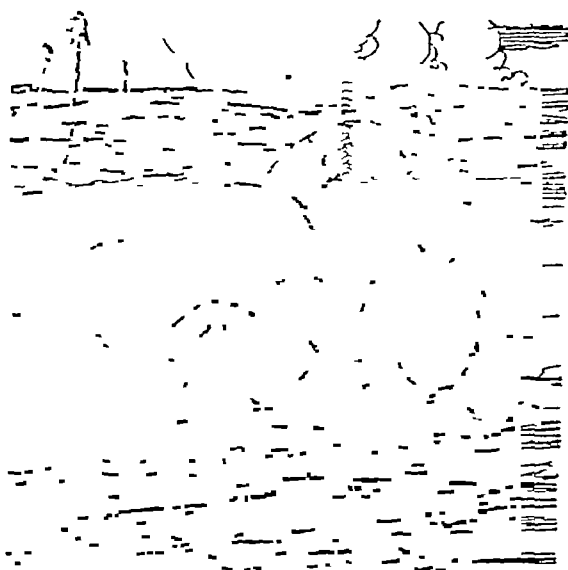
घोड़करायत

घोड करायत वैसे स्वय बहुत कम आक्रमण करता है, पर दबाव मे पड जाने पर यह डसने से नहीं चूकता। यह रात मे निकलनेवाला साँप है जिसका मुख्य भोजन छोटे साँप, सरीसृप, छिपकली आदि हैं। यह पानी में भी मेढक और मछलियो की तलाश मे चला जाता है। इसकी मादा अण्डे देती है और उनको बच्चो के निकलने तक सेती है।

धामिन साँप

(RAT SNAKE)

धामिन हमारा बहुत परिचित साँप है जो अपनी लबाई के कारण औरो से नहीं छिपता। यह सारे भारतवर्ष में फैला हुआ है। इसका कद औसतन ५-६ फुट का होना

है, लेकिन कही-कही ये १२ फुट तक के भी पाये गये है। इसे पहाड से ज्यादा मैदान पसद है, लेकिन पहाड पर भी ये ६००० फट की ऊँचाई तक पाये जाते है।

धामिन का शरीर वडा मजबूत और सुडौल होता है। इसकी दुम भी लवी और सारे बदन की लबाई की करीव चौथाई होती है। इसके शरीर का रग हरापन लिये भूरे रग का होता है जिस पर निचली पीठ या दुम पर काले चारखाने से निशान पडे रहते है। पेट का हिस्सा सफेदी मायल या पिलछौंह रहता है। वच्चो की शकल-सूरत बडो जैसी होने पर भी उनका रग राखी-सा रहता है और उनकी पीठ पर के चारखानो का चिह्न और चटक रहता है।
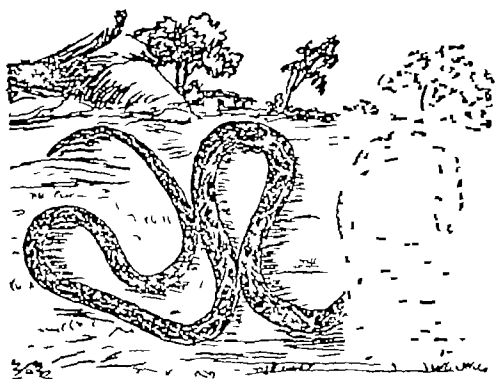
धामिन

धामिन हमें अक्सर दिखाई पडते है क्योकि इन्हें प्राय सभी तरह की जगह रहने के लिए पसद आ जाती है। यह दिन में घूमनेवाला साँप है जो दिन को पेडो, झाडियो, जगलो और खेतो में बरावर शिकार की तलाश में घूमता रहता है। इसका मुख्य भोजन चूहे, मेढक, छिपकली और छोटी चिडियाँ हैं।

धामिन जितना तैरने में उस्ताद होता है उतना ही पेडो पर चढने में भी माहिर होता है। तालो के मेढक और पेड पर चिडियो के घोसलो पर इसका अक्सर धावा होता रहता है। यह बहुत गुस्सैल साँप है जो वैसे तो आदमियो को देखकर भागने की कोशिश करता है, लेकिन दवाव में पड जाने पर यह वडे जोर से आक्रमण करता है और अपने लवे कद और मजवूत शरीर के कारण ज्यादातर मुँह पर ही चोट करता है।

जहरीला साँप न होते हुए भी इसका तेज हमला और तेज फुफकार डर उत्पन्न कर देता है। धामिन की मादा अण्डे देती है।

पनिहा साँप

(WATER SNAKE)

पनिहा पानी मे रहनेवाला प्रसिद्ध साँप है जो सारे भारतवर्ष मे पाया जाता है। इसकी कई जातियाँ हमारे यहाँ पायी जाती है। ये नदियो और दलदलो के किनारे रहते है और पानी में बडी आसानी से तैर लेते है क्योकि इनके नथुने के छेद और साँपो की तरह बगल में न रहकर ऊपर की ओर रहते है जिससे पानी मे तैरते समय ये आसानी से साँस लेते रहते है। ये जहरीले नही होते और इनकी सब आदतें प्राय एक-जैसी होती है।
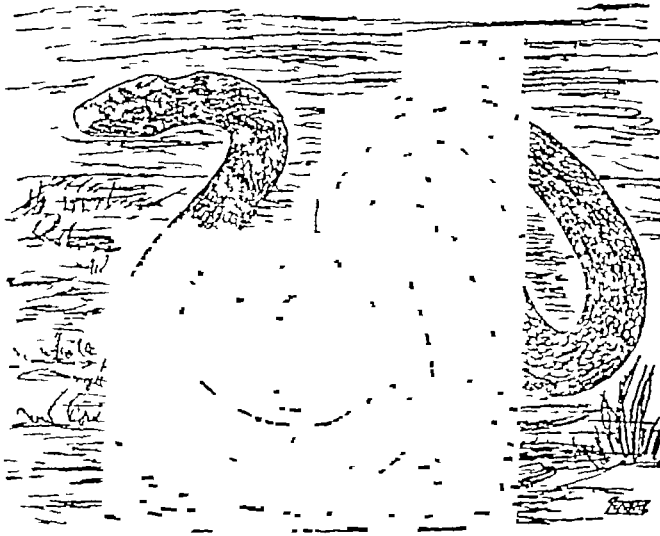
पनिहा

पनिहा बहुत ही सीधा-सादा साँप है जिसका मुख्य भोजन मछली और मेढक है। यह औसतन २-३ फुट का होता है पर कही-कही चार फुट तक का भी पाया गया है।

इसके ऊपर की सतह का रग हलका सिलेटी या राखी रहता है जिस पर आडी कलछौंह धारियाँ पडी रहती है। पेट हलका बादामीपन लिये सफेद रहता है जिस पर कुछ हरापन लिये काले चित्ते रहते है। पेट का रग पीठ की तरह धूमिल न होकर चटकीला रहता है।

इसका सिर कजई होता है जिस पर प्लेटें रहती हैं। निचला जवडा कुछ बडा और वढा हुआ रहता है जो कुत्ते के मुँह से वहुत कुछ मिलता है। इसकी आँखो से होकर एक-एक पट्टी पीछे की ओर चली जाती है।

पनिहा वैसे तो सीधा साँप है जो न तो जहरीला ही होता है और न किसी पर आक्रमण ही करता है, लेकिन छेडा जाने पर यह वडे जोर से फुफकार मारकर जवान लपलपाता है। हाथ से उठाने पर यह हाथ को अपनी गुडली में काफी जोर से कस भी लेता है और ज्यादा परेशान किये जाने पर यह काट भी लेता है। इसकी मादा अण्डे न देकर वच्चे जनती है।

चीतल

(CHITTAL)

चीतल हमारे यहाँ के समुद्री साँपो में से एक है जिसकी कई जातियाँ हमारे देश में पायी जाती हैं। यह समुद्र के किनारे का निवासी है जो हमारे देश के प्राय सभी समुद्री किनारो पर पाया जाता है। इसकी लबाई ५-६ फुट की होती है।

चीतल

चीतल की पीठ का रग भूरापन लिये जैतूनी रहता है जिस पर काली-काली चौखानेदार पट्टियाँ रहती हैं। ये पट्टियाँ पीठ पर सवसे ज्यादा चौडी हो जाती हैं।

इसका शरीर कुछ चपटा और दुम चौडी और चपटी रहती है, जिससे इसे तैरने मे भी मदद मिलती है। इसके शरीर का अगला हिस्सा पतला और सिर छोटा होता है। पानी से वाहर निकलने पर यह एकदम असहाय हो जाता है क्योकि एक तो यह करीव-करीव अधा-सा रहता है, दूसरे इसके विप के दाँत वहुत छोटे होते हैं। ये जहरीले होने पर भी इसके लिए ज्यादा काम के नही होते। चीतल का मुख्य भोजन मछली, मेढक वगैरह हैं। इसकी मादा अण्डे न देकर वच्चे जनती है।

दुवोइया-परिवार

(FAMILY VIPERIDAE)

यह परिवार यद्यपि छोटा है, लेकिन इसमे के प्राय सभी साँप विषैले हैं। ये सव खुश्की पर रहनेवाले सर्प हैं जिनका शरीर भारी और सिर चपटा रहता है।

इन सर्पो के ऊपरी जवडे खिसकनेवाले होते हैं जिससे मुँह वद करने पर इनके विपदन्त मुडकर इनके तालू से सट जाते हैं।

इस परिवार में हमारे यहाँ का प्रसिद्ध दुवोइया और फुरसा आता है जिसे हम सव अच्छी तरह जानते हैं। यहाँ इन्ही दोनो का वर्णन दिया जा रहा है।

दुवोइया

(RUSSELS VIPER)

दुवोइया हमारे यहाँ का वहुत प्रसिद्ध विपधर सर्प है जो सारे देश में फैला हुआ है। इसे पहाड से ज्यादा मैदान पसद आते है, लेकिन पहाडो पर भी यह ६००० फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है।

दुवोइया तीन-चार फुट लवा होता है जिसके शरीर का रग हलका भूरा रहता है। शरीर के ऊपरी हिस्से पर काली छल्लेनुमा चित्तियाँ रहती हैं, जिनका हाशिया हल्के रग का रहता है। ये चित्तियाँ दुवोइया के शरीर के ऊपरी और वगली हिस्से मे खडी कतारो में रहती हैं। पेट का हिस्सा पिलछौंह या सफेद रहता है जिस पर कभी-कभी अर्धचन्द्राकार छोटी-छोटी काली चित्तियाँ भी रहती हैं।

इसका सिर कजई होता है जिस पर प्लेटे रहती है। निचला जबडा कुछ वडा और वढा हुआ रहता है जो कुत्ते के मुँह से वहुत कुछ मिलता है। इसकी आँखो से होकर एक-एक पट्टी पीछे की ओर चली जाती है।

पनिहा वैसे तो सीधा साँप है जो न तो जहरीला ही होता है और न किसी पर आक्रमण ही करता है, लेकिन छेडा जाने पर यह बडे जोर से फुफकार मारकर जबान लपलपाता है। हाथ से उठाने पर यह हाथ को अपनी गुडली में काफी जोर से कस भी लेता है और ज्यादा परेशान किये जाने पर यह काट भी लेता है। इसकी मादा अण्डे न देकर बच्चे जनती है।

चीतल

(CHITTAL)

चीतल हमारे यहाँ के समुद्री साँपो मे से एक है जिसकी कई जातियाँ हमारे देश में पायी जाती है। यह समुद्र के किनारे का निवासी है जो हमारे देश के प्राय सभी समुद्री किनारो पर पाया जाता है। इसकी लबाई ५-६ फुट की होती है।

चीतल
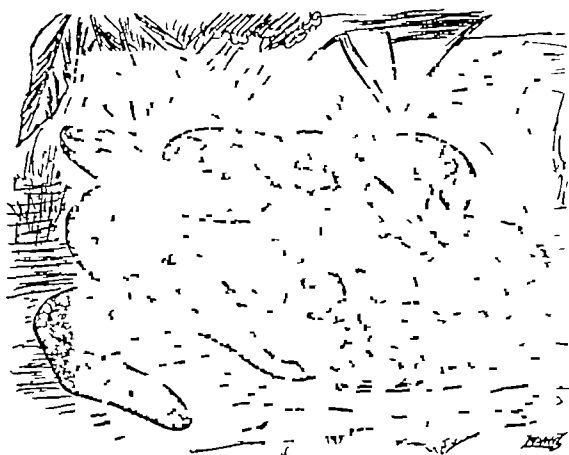
चीतल की पीठ का रग भूरापन लिये जैतूनी रहता है जिस पर काली-काली चौखानेदार पट्टियाँ रहती है। ये पट्टियाँ पीठ पर सबसे ज्यादा चौडी हो जाती है।

इसका शरीर कुछ चपटा और दुम चौडी और चपटी रहती है, जिससे इसे तैरने मे भी मदद मिलती है। इसके शरीर का अगला हिस्सा पतला और सिर छोटा होता है। पानी से वाहर निकलने पर यह एकदम असहाय हो जाता है क्योकि एक तो यह करीव-करीव अधा-सा रहता है, दूसरे इसके विप के दाँत वहुत छोटे होते है। ये जहरीले होने पर भी इसके लिए ज्यादा काम के नही होते। चीतल का मुख्य भोजन मछली, मेढक वगैरह है। इसकी मादा अण्डे न देकर वच्चे जनती है।

दुवोइया-परिवार

(FAMILY VIPERIDAE)

यह परिवार यद्यपि छोटा है, लेकिन इसमे के प्राय सभी साँप विपैले है। ये सव खुश्की पर रहनेवाले सर्प है जिनका शरीर भारी और सिर चपटा रहता है।

इन सर्पो के ऊपरी जवडे खिसकनेवाले होते है जिससे मुँह वद करने पर इनके विपदन्त मुडकर इनके तालू से सट जाते हैं।

इस परिवार में हमारे यहाँ का प्रसिद्ध दुवोइया और फुरसा आता है जिसे हम सव अच्छी तरह जानते हैं। यहाँ इन्ही दोनो का वर्णन दिया जा रहा है।

दुवोइया

(RUSSELS VIPER)

दुवोइया हमारे यहाँ का वहुत प्रसिद्ध विपधर सर्प है जो सारे देश मे फैला हुआ है। इसे पहाड से ज्यादा मैदान पसद आते है, लेकिन पहाडो पर भी यह ६००० फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है।

दुवोइया तीन-चार फुट लवा होता है जिसके शरीर का रग हल्का भूरा रहता है। शरीर के ऊपरी हिस्से पर काली छल्लेनुमा चित्तियाँ रहती है, जिनका हाशिया हलके रग का रहता है। ये चित्तियाँ दुवोइया के शरीर के ऊपरी और वगली हिस्से में खडी कतारो मे रहती है। पेट का हिस्सा पिलछौंह या सफेद रहता है जिस पर कभी-कभी अर्धचन्द्राकार छोटी-छोटी काली चित्तियाँ भी रहती है।

दुबोइया रात को निकलनेवाला साँप है जो दिन में किसी कोने में चुपचाप पडा रहता है । लेकिन रात होते ही इसमें बहुत फुर्ती आ जाती है। यह वैसे तो नाग अथवा करायत से ज्यादा विपैला नही होता लेकिन अपने बडे दाँतो से यह काटनेवाले के शरीर में काफी परिमाण में जहर भर देता है। इसके नाग की तरह फन जरूर नही होता, लेकिन इसकी फुफकार उससे कही ज्यादा तेज होती है।

दुबोइया

इसका मुख्य भोजन मेढक और चूहे हैं। इसकी मादा अण्डे न देकर बच्चे जनती है।

फुरसा

(PHOORSA-SAW SCALED VIPER)

फुरसा भी हमारे यहाँ के विपैले साँपो में बहुत प्रसिद्ध है। यह हमारे देश के पूर्वी
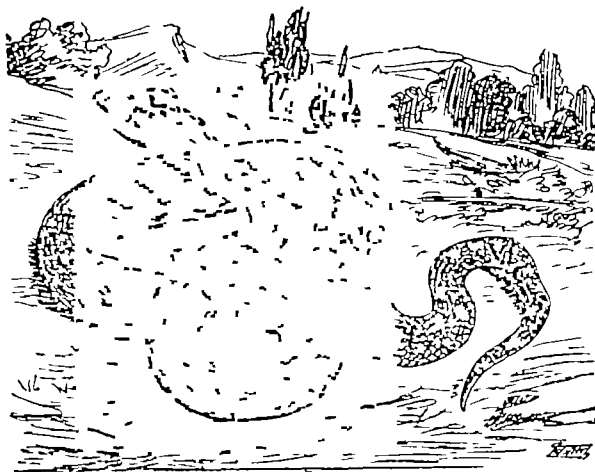
फुरसा

भागो में पाया जाता है, लेकिन सख्या मे कम होने के कारण नाग तथा करायत की तरह ज्यादा नहीं दिखाई पडता ।

फुरसा वहुत क्रोधी साँप है जो जरा-मा भी छेडे जाने पर वडे वेग से आक्रमण कर वैठता है। इसकी लवाई दो फुट के करीव होती है। इसके सिर पर छोटे-छोटे शल्क रहते हैं और शरीर के दोनो वगल के शल्क आरीनुमा कटे रहते हैं ।

फुरसा का रग हलका भूरा या वादामी होता है जिसमे सिलेटीपन और हलकी ललाई मिली रहती है। इसके सिर के ऊपर एक तीर-जैसा चिह्न रहता है और पीठ पर तथा दोनो वगल हलके रग की चित्तियो की कतारे दुम तक चली जाती हैं।

फुरसा वहुत जहरीला साँप है जिमके दोनो वगल के काँटेदार शल्को से चलते समय एक तेज आवाज निकलती है ।

खड १३

पक्षि-श्रेणी

(CLASS AVES)

हमे इस बात पर सहसा विश्वास नही होता कि हवा मे उडनेवाली हमारी ये सुन्दर चिडियाँ पृथ्वी पर रेगनेवाले सरीसृपो से बदलकर बनी है, लेकिन अब इसमें तनिक भी सदेह नही रह गया है कि चिडियाँ वास्तव मे सरीसृपो के ही विकसित और परिवर्तित रूप है जिन्होने अपना विकास करके परो की पोशाक प्राप्त कर ली है और आकाश पर अपना आधिपत्य कायम कर लिया है।

इतने बडे परिवर्तन के बाद भी आज हम पक्षियो मे सरीसृपो के कुछ चिह्न देखते है जिससे इस मत की पुष्टि हो जाती है। चिडियो के एक दूसरे पर चढे हुए पर जहाँ हमें सरीसृपो के शल्को की याद दिलाते है, वही मुर्गे आदि के सिर की कलँगी गिरगिट आदि छिपकलियो के सिर पर के मुकुट के ही अनुरूप होती है। चिडियो के पैर और पजो की बनावट बहुत कुछ गोह और दूसरी छिपकलियो-जैसी होती है और दोनो के पैरो के शल्क एक जैसे ही रहते है। पक्षी और सरीसृप दोनो ही अण्डे देते है और दोनो के बच्चो के प्रारभ मे डिम्ब दन्त (Egg Tooth) रहते है जिनसे वे अण्डे के छिलके को तोडकर बाहर निकलते है। इतना ही नही, इन दोनो के शरीर के ककाल और कुछ अवयवो में भी बहुत कुछ समानता रहती है।

सरीसृप किस प्रकार अपना क्रमिक विकास करके चिडियो मे बदले, इसका सिलसिलेवार ब्योरा तो नही मिलता लेकिन सरीसृपो के युग मे जिन जीवो ने आकाश मे उडने का अभ्यास कर लिया था उनके पथराये ककाल (Fossils) अवश्य मिले है। इन पथराये ककालो से यह अनुमान किया जाता है कि जिन सरीसृपो ने पक्षियो का रूप धारण किया, वे छोटे कद के डाइनासोर (Dinosarus) नामक सरीसृप थे जो पृथ्वी पर अपने छोटे अगले पैरो को उठाये रखते थे और पिछली लबी टाँगो से कगारू की तरह उछल-उछलकर भागते थे। भागते समय ये अपने

अगले पैरो को अपना सतुलन कायम रखने के लिए हवा मे तेजी से चलाते थे जिसका परिणाम यह हुआ कि उनके अगले पैर धीरे-धीरे डैनो का रूप ग्रहण करने लगे। पहले तो इन प्रारभिक डैनो से ये थोडी दूर तक उछलकर हवा मे तैर लेते थे, फिर धीरे-धीरे वे इतने विकसित हो गय कि उनके सहारे ये जीव हवा मे बे-रोकटोक उडने लगे और सरीसृप से बदलकर पक्षी बन गये।

प्रारभिक काल के पक्षी शकल-सूरत मे आजकल के पक्षियो मे अधिक सरीसृपो से ही मिलते-जुलते होते थे। उनकी लबी दुम खजूर की डाल जैसी होती थी और उनके मुँह मे तेज दाँत होते थे। इतना ही नही, उनके डैनो पर तीन उँगलियाँ भी रहती थी जिनसे वे पेड की डालियो को पकड सकते थे। इनमे से प्रत्न पुराीय आर्किओप्टेरिस्क (Archaeopteryx) नाम के जीव के, जिसे हम पक्षियो का पूर्वज कह सकते हैं, दो पथराये ककाल मिले हैं। इन पथराये ककालो से हमे उसकी आकृति का बहुत कुछ अनुमान हो सका है और उसी आधार पर उसका काल्पनिक चित्र भी बना लिया गया है।

चिडियो के पर उनके बहुत काम के है और उन्होने उनके विकास मे बहुत सहायता पहुँचायी है। इन्ही परो की सहायता से उन्होने आकाश पर अपना प्रभुत्व कायम किया है और ये पर ही उनके शरीर मे गरमी का एक-जैसा तापमान कायम रखते है, नही तो ये जाडो मे विना सूरज की गरमी के न तो हवा मे ही उड पाती और न आकाश मे ही ऊँचाई तक जा पाती।

चिडियो का शरीर जैसे हवा में उडने के योग्य ही बना है। उनका शरीर हलका और सूच्याकार होता है जिससे उन्हें हवा चीरकर आकाश मे उडने मे काफी सहूलियत हो गयी है। उनकी हड्डियाँ खोखली होती है जिससे उनके डैनो पर उनके शरीर का बोझ नही पडता। जलसिह आदि बडे और भारी शरीरवाले पक्षियो की हड्डियाँ झाँझें जैसी खोखली होती है और उनमे हवा भरी रहती है। नही तो इतने भारी शरीर को उठाकर आकाश मे ले जाना इन डैनो के लिए कभी सभव न होता।

चिडियो के डैने वास्तव मे उनके अगले पैर या हाथ है जो धीरे-धीरे बदलकर उनके डैने हो गये है। यदि हम चिडियो के डैने को गौर से देखे तो हमें उसमें अपने हाथ की तरह बाँह की ऊपरी हड्डी (Upper Arm), निचली हड्डी (Fore Arm), कुहनी (Elbow), कलाई (Wrist) और अँगूठा (Thumb) स्पष्ट दिखाई पडेगा। अँगूठे के अलावा हमे उसमें पहली और दूसरी उँगलियाँ भी दिखाई पडेगी, लेकिन शेष

दो उँगलियाँ गायब हो गयी है, जो किसी पक्षी के डैने को देखने मे भली भाँति स्पष्ट हो जावेगी।

चिडियो की उडान के बारे मे अक्सर लोग यह समझते है कि चिडियाँ अपने डैनो को पखी की तरह चलाकर हवा मे उडती है लेकिन वास्तव मे ऐसा है नही। होता यह है कि जब हवा मे उडते समय चिडियाँ अपने डैनो को ऊपर ले जाकर नीचे की ओर ले आती है तो उनके डैनो के सिरे नीचे पहुँचकर गोलाई से घूमकर तब ऊपर जाते है। इस प्रकार डैने नीचे पहुँचकर गोलाई से घूमने के बाद ऊपर न जायँ तो चिडियाँ उलटकर जमीन पर गिर पडे।

तेज हवा मे उडते समय चिडियो को अपने डैनो को बार-बार नही चलाना पडता। ऐसे समय वे अपने डैने के सिरो को तिरछा करके उसी के सहारे हवा मे ऊपर चढती चली जाती है। हवा मे उडते समय चिडियो को अपना रुख बदलने के लिए डैनो तथा दुम का सहारा लेना पडता है। दुम से ही वे अपनी उडान की रफ्तार को कम करती है और जमीन पर उतरते समय दुम के परो को फैलाकर बडी आसानी से पृथ्वी पर उतर पडती है।

ससार मे पक्षी ही ऐसे जीव है जिन्हे प्रकृति ने परो की सुन्दर पोशाक दी है। ये उनके शरीर पर बालो की तरह निकलते है और फैलकर चौडे हो जाते है। ये छोटे-बडे सभी प्रकार के होते है और इनकी बनावट भी कम विचित्र नही होती। इनके बीच मे एक डडी रहती है जिसका निचला हिस्सा चिडियो के शरीर मे घुसा रहता है। डडी के दोनो ओर बहुत-सी शाखाएँ फूटी रहती है जिनमे से फिर दोनो ओर बहुत-सी उप-शाखाएँ रहती है। इन शाखाओ और उपशाखाओ मे बहुत छोटी-छोटी अँकुसियाँ-सी रहती है, जो एक दूसरे मे फँसकर पूरे पर की सतह को बहुत चिकनी और हमवार बना देती है और यह जान भी नही पडता कि यह चौडा पत्तीनुमा पर इतनी शाखाओ और उप-शाखाओ के जुडने से बना है। परो को फैलाने से सब शाखाएँ अलग-अलग हो जाती है लेकिन सीधी ओर से हाथ फेर देने से फिर सब की सब अँकुसियाँ एक दूसरे से फँस जाती है और पर पहले की तरह चिकना हो जाता हे।

चिडियो के ये पर भिन्न-भिन्न शकल और भिन्न-भिन्न रग के होते है और इन्ही से हम चिडियो को पहचानते है। यही नही, उनकी बनावट से हम उनके रहने का स्थान और उनके रग से उनके पास-पडोस का सहज मे अनुमान कर सकते है। जमीन पर रहनेवाली चिडियो के पर जहाँ मटमैले होते है, वही रेत पर रहनेवाली चिडियो के पर

राखी या सिलेटी रहते है। पेडो पर रहनेवाली चिडियाँ हरे, काले, पीले रग की अथवा चितली होती है तो पानी मे अपना अधिक समय वितानेवाले पक्षियो का रग हरा, नीला, बैंगनी और सफेदी का ऐसा मिला-जुला रूप होता है कि वह उन्हे पानी मे छिपने मे बहुत सहायता पहुँचाता है।

चिडियो के पर साल मे एक, दो या तीन वार गिर जाते है और उनके स्थान पर दूसरे नये पर निकल आते है। उस समय चिडियाँ अपनी नयी पोशाक मे वहुत सुन्दर लगती है। नर पक्षी की यह चटकीली पोशाक मादा को रिझाने के वहुत काम आती है, जिसके विना मादा पक्षी नर को जोडा वाँधने की स्वीकृति नही देती।

चिडियो की अगली टाँगे तो वदलकर उनके डैने वन गये है। इसलिए वे अपनी पिछली टाँगो पर मनुष्यो की तरह चलती है। कुछ की टाँगे छोटी और कुछ की लवी होती है, लेकिन किसी भी पक्षी की टाँगो पर पर नही होते। पानी या कीचड मे रहने-वाली चिडियो की टाँगे लवी होती है और वे जमीन पर तेजी मे भाग लेती है, लेकिन पेड पर रहनेवाली चिडियाँ, जिनकी टाँगे छोटी होती है, जमीन पर फुदक-फुदककर चलती है।

चिडियो के पैर के निचले हिस्से मे उनका पजा रहता है जिनमें तीन या चार उँगलियाँ रहती है। इन पजो की वनावट चिडियो के स्वभाव, भोजन और रहन-सहन को देखते हुए अलग-अलग तरह की रहती है और उनके पजो को देखकर हम उनके वारे मे वहुत कुछ जान सकते है।

चिडियो की चोच उनके वहुत काम की होती है क्योकि वे उसी से अपने हाथ का काम लेती है। उनकी गर्दन को प्रकृति ने वहुत लचीली वनाया है जिसको हर दिशा मे घुमा-फिराकर वे अपना भोजन चुनती है। उनकी चोचें वहुत कडी होती है जिनमें नाक के छिद्र प्राय पीछे की ओर रहते है। चिडियो के मुख मे दाँत नही होते लेकिन वत्तख आदि की चोचो का भीतरी भाग ददानेदार रहता है जिससे उन्हे घास आदि के नोचने मे आसानी हो जाती है। इन चोचो की वनावट भिन्न-भिन्न तरह की होती है जिन्हें देखकर हम चिडियो की भिन्न-भिन्न खूराक का आसानी से पता चला लेते है। जहाँ वाज, वहरी आदि शिकारी चिडियो की चोच की वनावट टेढी रहती है, वही चहा आदि कीचड मे रहनेवाली चिडियो की चोच लवी और गोल होती है। मछली पकडने-वाली चिडियो की चोच सीधी और नोकीली होती है तो दाना चुगनेवाली चिडियो की चोच छोटी और कडी रहती है।

भोजन के मामले में भी सब चिड़ियाँ एक-जैसी नही है। कुछ शाकाहारी है तो कुछ मासाहारी और कुछ ऐसी भी है जिन्हें सर्वभक्षी कहा जा सकता है। शाकाहारी पक्षी फल-फूल और दानो पर गुजर करते है तो मासाहारी मास-मछली, अण्डे और कीडे-मकोडो से अपना पेट भरते है और कौए आदि सर्वभक्षी पक्षियो से कुछ भी नही बचने पाता। गिद्ध आदि कुछ पक्षी ऐसे भी है जिन्हे हम चिडियो का मेहतर कह सकते हैं। ये मुर्दाखोर पक्षी है जो मरे हुए जानवरो पर अपनी गुजर करते है और शकरखोरा आदि कुछ छोटी चिड़ियाँ ऐसी भी है जो फूलो का रस पीकर ही सतुष्ट हो जाती है, भले ही उनके साथ छोटे-छोटे फूल के कीडे भी क्यो न चले जाते हो।

चिडियो में सूँघने और स्वाद लेने का ज्ञान नही के बराबर ही होता है और उन्हें इनकी ज्यादा जरूरत भी नही पडती क्योंकि पक्षी अपने भोजन का पता सूँघकर नही बल्कि देखकर ही लगाते हैं। कीचड से कीडे-मकोडे पकडने में चहा आदि पक्षियो को उनकी चोच का स्पर्शज्ञान बहुत सहायक होता है।

चिडियो की आँखें अवश्य बहुत विकसित है। उनकी निगाह इतनी तेज होती है कि वे काफी ऊँचाई से उडते-उडते ही नीचे की चीजो को देख लेती है। उनकी आँखें स्तनपायी-जीवो की आँखो की तरह सामने न होकर दोनो बगल रहती है जिनसे वे सामने तो कम लेकिन दोनो बगल साफ देख लेती है। उन्हे जब सामने की ओर देखना होता है तो वे अपनी लचीली गर्दन को घुमाकर एक ही आँख से देखती है। इसीलिए उन्हे जिस ओर देखने की जरुरत पडती है उसी ओर उनकी गरदन घूम जाती है।

चिडियो को रग के पहचानने का अच्छा ज्ञान प्रकृति की ओर से मिला है जिसके द्वारा मादा जोडा बाँधने के समय नर की सुन्दर पोशाक को पसन्द करती है। कुछ चिड़ियाँ रगीन फूलो, परो और कीटो से अपना घोसला सजाती है और कुछ पृथ्वी पर अण्डे रखने के स्थल को रगीन पत्थरो से घेरकर उस स्थान को सजाती है।

चूँकि चिडियो का शरीर लम्बा और सूच्याकार रहता है इससे यदि उनके कान बाहर की ओर निकले हुए होते तो उससे उन्हे उडने मे कुछ रुकावट पडती, लेकिन इसका यह अर्थ नही है कि चिडियो की सुनने की शक्ति भी कम होती है। उनके कान के छिद्र छोटे और आँख के पीछे जरूर रहते है, लेकिन उनकी सुनने की

शक्ति कम नही होती। वे जिस प्रकार देखने के लिए अपनी लचीली गरदन को घुमाकर उसी ओर कर लेती हैं उसी प्रकार सुनने के लिए भी उनको उसी ओर अपनी गरदन को घुमा देना पडता है।

चिडियो की बोली के भी अनेक भेद है। कुछ की बोली कर्कश होती है तो कुछ बहुत मीठे स्वर मे बोलती है। कुछ की बोली मामूली होती है तो कुछ का चीत्कार बडा भयकर होता है। कोयल, पपीहा और श्यामा आदि चिडियां अपनी मीठी बोली के लिए प्रसिद्ध है, तो तोता मैना आदि पक्षी मनुष्यो की बोली की नकल करने मे उस्ताद होते है। कौए और चरखियाँ जहाँ अपनी बोली से जी उबा देती है, वही रात में घू-घू करके बोलनेवाले बडे उल्लुओ के भयानक स्वर से डर-सा लगने लगता है।

चिडियाँ वैसे भी कई तरह से बोलती है जिनको उनके साथी तो समझ ही लेते है, हम लोग भी उनका बहुत कुछ आशय जान लेते हैं। वसन्त ऋतु में जब नर पक्षी मादा को रिझाने के लिए अपने कण्ठ मे सारी मिठास भरकर बोलता है तो वह हमसे छिपा नही रहता। उसके बाद जोडा बँध जाने पर जब वह आनन्द-विभोर होकर किसी स्थान पर अधिकार जमाकर बोलता है तो वह भी साफ जाहिर हो जाता है। इसी प्रकार उनका डरकर चीत्कार करना, क्रोध से कर्कश स्वर में बोलना, अपने साथियो को खतरे मे आगाह करना और अपनी उडान के समय अपने साथियो को साथ रहने के लिए चेतावनी देना हमें स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जाता है।

सन्ध्या के समय प्राय सभी चिडियाँ चहचहाने के बाद सोने चली जाती है जिसे हम बसेरा लेना कहते हैं। चिडियाँ अपना अण्डा सेते समय भले ही घोसलो में रह ले, वैसे वे घोसले के बाहर ही रहती हैं। ज्यादा सख्या उन्ही चिडियो की है जो पेड की डालियो पर ही बसेरा लेती है, लेकिन कुछ ऐसी भी है जो झाडियो, खुले मैदानो, सूराखो तथा ताल-तलैयो मे ही रात गुजार देती हैं।

चिडियो के प्रवासगमन के बारे में हमने कुछ न कुछ अवश्य ही सुना होगा। उनकी यह लम्बी उडान हर साल जाडो के प्रारम्भ मे होती है। उस समय चिडियो की बहुत बडी सख्या, जिनमें बत्तखे मुख्य हैं, अपने देश मे उडकर गर्म मुल्को की ओर चली जाती हैं और जाडा समाप्त होते-होते फिर अपने स्थान पर वापस आ जाती है। हमारे देश मे मौसमी बत्तखो का आगमन सुर उत्तर के साइबेरिया तक

के देशो से होता है जिनसे जाडो मे यहाँ के ताल और पोखर भर जाते है। ये बत्तखें हमारे देश के दक्षिणी छोर तक जाकर फिर उत्तर की ओर वापस होने लगती है और मार्च के समाप्त होते-होते हमारे देश की उत्तरी सीमा से बाहर चली जाती है। प्रतिवर्ष मौसमी चिडियो की यह बाढ हमारे यहाँ उत्तर की ओर से आती है जो जाडा समाप्त होते-होते हमारे देश से उत्तर की ओर फिर बाहर चली जाती है। इसी को हम पक्षियो का स्थान-परिवर्तन या प्रवास-गमन कहते है। वे चिडियाँ उस समय कितनी ऊँचाई पर उडती है इसका कोई ठीक लेखा-जोखा तो नही है, लेकिन उनकी यह उडान लगभग २,००० फुट की ऊँचाई तक और उनकी रफ्तार लगभग ३०-४० मील प्रतिघटे से कम नही रहती।

चिडियो के घोसले के बारे मे हम बहुत कुछ जानते ही है, लेकिन सब चिडियाँ पेडो पर ही घोसला बनाती है सो बात नही है। तीतर, बटेर और टिटिहरी आदि जमीन पर रहनेवाली चिडियाँ जमीन पर ही अपने अण्डे देती है तो कौडिल्ला आदि भीटो के बिलो मे रहनेवाले पक्षी बिलो मे ही अण्डे देते है। लेकिन कुछ चिडियाँ, जो ज्यादातर पेडो पर रहती है, अपना घास-फूस का घोसला पेड की दोफकी डालो पर रखती है। कुछ चिडियो के घोसले मामूली और तितरे-बितरे रहते है, लेकिन कुछ चिडियाँ अपने घोसलो को बहुत ही सुन्दर ढग से बनाती है। बया का घोसला तो कारीगरी का सुन्दर नमूना ही है लेकिन दर्जिन फुदकी भी दो पत्तो को जोडकर बडी सफाई से थैलेनुमा घोसला बनाती है जिसमे सेमल की नरम रुई और पर आदि भरकर बहुत मुलायम बना लिया जाता है। घोसले बनाने का कार्य प्राय मादा पक्षी के ही जिम्मे रहता है, नर तो घोसले का सामान ला-लाकर उसे देता रहता है।

घोसला बन जाने पर मादा उसमे बैठकर अण्डे देती है। फिर या तो वह अकेली या नर और मादा दोनो पारी-पारी से अण्डो पर बैठकर उसे सेते है। इन अण्डो की बनावट एक-जैसी नही रहती। कुछ गोल होते है तो कुछ बैजावी, लेकिन ज्यादातर इनकी बनावट बैजावी या अण्डाकार ही रहती है। उनका एक सिरा पतला और नोकीला होता है तो दूसरा गोल और चपटा रहता है।

अण्डो की ऐसी बनावट के कारण उनके नीचे गिरने का डर बहुत कम रह जाता है और यदि वे कभी घोसले में लुढक भी जाते है तो वे अपने पतले सिरे के चारो ओर गोलाई से घूमकर वही रह जाते है और घोसले से बाहर नही गिरने पाते।

चिडियो के इन अण्डो का रग भी एक-जैसा नही होता। कुछ नीले होते है तो कुछ सफेद। कुछ का रग कत्थई होता है तो कुछ का गुलावी या हरा। लेकिन ज्यादा सख्या उन्ही की है जिन पर छोटी-वडी चित्तियाँ या धव्वे पडे रहते है। इन अण्डो का रग प्राय उनके पास-पडोस के अनुरूप ही रहता है जिससे वे उसी मे छिप जायँ और दुश्मनो की निगाह उन पर न पडे। टिटिहरी के अण्डे, जो रेत पर रहते है, रेतीले रग में ऐसे छिप जाते है कि हम वहुत पास जाने पर भी उनको नही देख पाते। इसी प्रकार तीतर आदि के अण्डे मटमैले और कौए आदि के नीले रहते है जो अपने आसपास के रग मे आसानी से छिप जाते है। विलो, सूराखो या अँधेरी जगह मे दिये जानेवाले अण्डे सफेद होते है क्योकि उन्हे अपने को किसी रग से मिलाने की जरूरत नही रहती। अण्डो के फूटने का भी कोई एक नियम नही है। भिन्न-भिन्न पक्षियो के अण्डो के फूटने का अलग-अलग समय है। दामा और दँहगल के अण्डे १३ दिन मे और अवावील के १५ दिन मे फूटते है। घरेलू मुर्गी के अण्डो को फूटने मे २१ दिन और वत्तख के अण्डो को २८ दिन लग जाते है। हस के अण्डे को फूटने मे और समय लगता है। ये ४२ दिन से पहले नही फूटते। जव अण्डा फूटने का समय आ जाता है तो भीतर का वच्चा अपनी चोच के सिरे पर के उभरे हुए हिस्से से, जिसको डिम्वदन्त कहते है, अण्डे को चौडे सिरे की ओर तोड कर उसमे से वाहर निकल आता है। अण्डे से वाहर निकलते ही उसका डिम्वदन्त गिर जाता है।

वच्चो के निकलने पर चिडियो को वहुत व्यस्त हो जाना पडता है। नर और मादा दोनो सुवह से शाम तक अपने वच्चो के लिए खूराक जमा करते रहते है। वच्चो के लिए वे नरम से नरम खूराक लाते है। कभी वे उसे स्वय खाकर और कभी आधी पची दशा मे ही उसे अपने मुँह से वाहर निकालकर उन्हें खिलाते है तो कभी उनके लिए केचुए और जरोइयाँ आदि मुलायम कीडो को पकड लाते है। कवूतर आदि दाना चुगनेवाले पक्षी दाने को अपने नीचे की थैली मे भर लेते है जहाँ से वे दानो का दूध-जैसा रस अपने वच्चो को पिलाते है।

चिडियो के वच्चे जव कुछ वडे हो जाते है तो चिडियाँ उन्हे उडने की शिक्षा देती है जो जल्द ही समाप्त हो जाती है और वे आकाश में अपने माँ-वाप की तरह दक्ष होकर उडने लगते है। इस प्रकार स्वच्छन्द वायु मे विचरने के लिए उनका जीवन प्रारम्भ होता है और उन्हे हम अपनी प्यारी चिडियो के रूप मे अपने चारो ओर उडते देखते है।

ससार मे चिडियो की इतनी अधिक सख्या है और उनकी इतनी अधिक जातियाँ हैं कि उनका वर्गीकरण करना आसान काम नही है। फिर भी प्राणिशास्त्र के विद्वानो ने पक्षिश्रेणी को दो उपश्रेणियो में विभक्त किया है जो इस प्रकार है—

१ आदि–पक्षि उपश्रेणी—Sub class Archaeornithes

२ नव–पक्षि उपश्रेणी—Sub class Neornithes

आदि–पक्षि उपश्रेणी में वे पक्षी रखे गये है जिन्हें हम पक्षियो का पूर्वज कह सकते हैं और जो अब हमारी पृथ्वी पर से सदा के लिए लुप्त हो गये हैं।

इन पक्षियो के पूर्वज प्रत्नपुखीय आरकीओपटेरिस्क (Archaeopteryx) के अभी तक दो ही पथराये ककाल (Fossils) मिले है जिनका देखकर ज्ञात होता है कि वे उडनेवाले प्रसिद्ध प्राणी, पक्षागुष्ठ टेराडेक्टल्स (Pterodactyls) से शक्ल-सूरत में भिन्न थे। लेकिन इन दोनो जीवो के पैरो में मजबूत पजे और जबडो में दाँत होते थे।

आरकिओपटेरिस्क के पथराये ककालो को देखकर मनुष्यो ने उसका एक काल्पनिक चित्र भी बनाया है जिससे उसकी आकृति का बहुत कुछ पता चल सकता है।

दूसरी नव-पक्षि उपश्रेणी में वे पक्षी रखे गये हैं जो हमारी पृथ्वी पर इस समय मौजूद हैं।

इस उपश्रेणी को इसके विस्तार के कारण फिर दो समूहो (Divisions) में बाँटा गया है जो इस प्रकार है—

१ पुरा–हनव समूह—Division Palaeognathae

२ नत–हनव समूह—Division Neognathae

पुरा-हनव समूह

(DIVISION PALAEOGNATHAE)

इस समूह मे शुतुरमुर्ग (Ostrich), इमू (Emu), किवी (Kiwi) और कैसोवैरी (Cassowary) आदि विदेशी पक्षी है जो धीरे-धीरे अपनी उडने की शक्ति खो चुके है और जिनके डैने भागते या तैरते समय उनके सतुलन कायम रखने का काम देते है। इनमें से कोई भी हमारे देश मे नही पाये जाते।

नव-हनव समूह

(DIVISION NEOGNATHAE)

इस समूह के अन्तर्गत शेष सभी वर्तमान पक्षी आते हैं जो हमारे देश के अलावा सारे ससार में फैले हुए है।

इन पक्षियो को विद्वानो ने अनेक वर्गों मे बाँटा है लेकिन यहाँ निम्नलिखित ११ वर्गो का ही वर्णन दिया जा रहा है जिनमे की चिडियाँ हमारे देश मे पायी जाती है।

१. वजुल-वर्ग

(ORDER COLYMBIFORMES)

इस वर्ग मे सब प्रकार की छोटी-बडी पनडुब्बियाँ रखी गयी है जिनका अधिक समय पानी में ही बीतता है।

२ समुद्रकाक-वर्ग

(ORDER PORCELLARIFORMES)

इस वर्ग में समुद्र के निकट रहनेवाले पक्षी है जिनका अधिक समय समुद्र के ऊपर उडने में बीतता है। इनमें कुछ समुद्र के भीतर पनडुब्बियो की तरह तैरते रहते हैं तो कुछ समुद्रकाक की तरह समुद्री लहरो पर ही अपना समय बिताते हैं।

३. महाबक-वर्ग

(ORDER CICONIFORMES)

यह वर्ग पानी अथवा पानी के निकट रहनेवाली चिडियो का है जो महाबक अथवा जलकाक कहलाते हैं। ये अपना अधिक समय कीचड मे अथवा पानी के भीतर मछलियो की तरह तैरकर बिताते हैं।

४. हस-वर्ग

(ORDER ANSERIFORMES)

यह वर्ग काफी बडा है जिसमे सब तरह की छोटी बडी बत्तखे, हस और कलहस आते है। ये पक्षी अपना अधिक समय पानी में ही बिताते है, इसमे इनमे के प्राय सभी पक्षी जालपाद होते है।

५ श्येन-वर्ग

(ORDER FALCONIFORMES)

यह वर्ग शिकारी पक्षियो का है जिसमे बाज, बहरी, शिकरा और उकाब आदि शिकारी पक्षियो के अलावा गिद्ध और चील आदि पक्षी भी रखे गये है ।

६ मयूर-वर्ग

(ORDER GALLIFORMES)

इस वर्ग मे मोर, मुरगी और तीतर, बटेर आदि शिकार की चिडियाँ एकत्र की गयी है जिनका मास सफेद और बडा स्वादिष्ठ होता है।

७ क्रौञ्च-वर्ग

(ORDER GRUIFORMES)

इस वर्ग मे सारस, क्रौञ्च और करकरा आदि लम्बी टाँगोवाले पक्षी रखे गये है जो पानी के निकट ही अपना सारा समय बिताते है । साथ ही साथ हर किस्म के जलकुक्कुटो को भी इसी वर्ग मे सम्मिलित कर लिया गया है जिनका सारा समय जलाशयो मे ही बीतता है।

८ तटचारी-वर्ग

(ORDER CHARADRIFORMES)

यह वर्ग उन पक्षियो का है जिनका अधिक समय नदी, तालाबो तथा अन्य जलाशयो के आस-पास बीतता है। इसमे सभी प्रकार के चहे, कुररियाँ, टिटिहरियाँ, भटतीतर तथा कबूतर आदि शामिल है।

९ शुकपिक-वर्ग

(ORDER OPHISTHOCOMIFORMES)

इस छोटे वर्ग मे, जैसा इसके नाम से स्पष्ट है, सब प्रकार के तोते और कोयल आदि पक्षी रखे गये है।

१० कीटभक्षी-वर्ग

(ORDER CORACIIFORMES)

कीट-भक्षी पक्षियो का यह वर्ग भी काफी बडा है जिसमे सब प्रकार के उल्लू, कौडिल्ले, पतेने, धनेश, छपका, बसता, हुदहुद, नीलकठ और अबाबील इत्यादि चिडियाँ एकत्र की गयी है। ये सब कीडे-मकोडो से अपना पेट भरती है।

११ शाखाशायी-वर्ग

(ORDER PASSERIFORMES)

पक्षियो का यह वर्ग सब वर्गों से बडा है जिसमे उन सब पक्षियो को रखा गया है जो रात में पेडो पर बसेरा लेते हैं और जिनका अधिक समय पेडो पर ही बीतता है। इसमें सब प्रकार के कौए, मुटरियाँ, गगरा, चरखियाँ, मैना, बुलबुल, पिद्दे, दामा, शकरखोर, मुनियाँ, भरत और तूती आदि चिडियाँ रखी गयी है।

वजुल-वर्ग

(ORDER COLYMBIFORMES)

इस वर्ग में सब प्रकार की पनडुब्बियाँ एकत्र की गयी है जिनका अधिक समय पानी मे ही बीतता है। ये सब एक ही परिवार मे रखी गयी हैं, जो पनडुब्बी-परिवार (Family Colymbi) कहलाता है।

पनडुब्बी परिवार

(FAMILY COLYMBI)

पनडुब्बी परिवार मे केवल पनडुब्बियाँ रखी गयी है जिन्होने हवा मे उडना करीब-करीब छोड दिया है और जो पानी के भीतर मछलियो के समान तैर लेती हैं। इनमें इतनी फुरती होती है कि ये मछलियो को आसानी से पकड लेती है। वे सूखे पर सिवा अण्डे देने के और बहुत कम आती है और अपना सारा समय पानी में ही बिताती है।

अण्डे देने के लिए भी पानी मे इन्हे ज्यादा दूर नही जाना पडता क्योंकि इनके घोसले प्राय पानी के किनारे ही रहते हैं। कुछ के घोसले तो पानी पर तैरते रहते है जिन्हे ये किसी नरकुल से इसलिए बाँध रखती है कि वे बहकर दूर न चले जायँ।

पनडुब्बियाँ मीठे और खारे दोनो तरह के पानी मे रह लेती है। इन सब के पजे इतने चपटे होते है कि उनके दोनो किनारे पतली धार की तरह जान पडते हैं। इनसे इन्हें तैरते समय पानी को काटने मे बहुत सहूलियत हो जाती है। इनमे से कुछ के पैर बत्तखो की तरह जालपाद होते है यानी उनके पैर की उँगलियाँ आपस में एक प्रकार की झिल्ली से जुटी रहती हैं और कुछ की उँगलियो मे दोनो ओर पत्ती-सी निकली रहती है जिससे उन्हे पानी में तैरने की सहूलियत हो जाती है।

पनडुब्बियो का मुख्य भोजन तो मछलियाँ है, लेकिन ये घासपात और पानी के कीडे-मकोडो को भी खाती है। दाना खानेवाली चिडियो की तरह, कुछ पनडुब्बियाँ भी छोटे-छोटे ककड खा जाती है जो उनके पेट में दाने को पीसने में सहायक होते है। हमारे यहाँ की प्रसिद्ध छोटी पनडुब्बी के पेट में तो ककड पत्थर के टुकडो के अलावा मुलायम पर भी मिले है जिनका कारण अभी तक नही जाना जा सका है।

हमारे यहाँ दो पनडुब्बियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं—छोटी पनडुब्बी (Little Grebe) और बडी पनडुब्बी (Great Crested Grebe)। नीचे उन्ही दोनो का वर्णन दिया जा रहा है।

छोटी पनडुब्बी

(LITTLE GREBE)

छोटी पनडुब्बी हमारे देश के प्राय सभी छोटे-बडे जलाशयो में पायी जाती है। कभी-कभी तो यह बस्तियो के निकट की गहरी गडहियो तक मे दिखाई पडती है। छोटे ताल-तलैयो मे तो ये दो-चार एक साथ दिखाई पडती है, लेकिन बडी झीलो मे इनका गिरोह ४०-५० तक का हो जाता है। ये तैरने और डुबकी लगाने मे बहुत उस्ताद होती है। कभी-कभी तो ये बदूक दागने पर इतनी तेजी से डुबकी लगाती है कि जब तक छर्रे इन तक पहुँचे ये पानी के भीतर हो जाती है।

हमारे देश में ये सभी स्थानो मे फैली हुई है। हिमालय तथा प्रायद्वीप के पहाडो पर ये पाँच हजार फुट की ऊँचाई तक के जलाशयो में दिखाई पडती है।

पनडुब्बी ८-९ इच लम्बी चिडिया है, जिसके दुम नही होती। इसी से इसका पिछला हिस्सा बूचा-बूचा-सा दिखाई पडता है। इसके नर-मादा एक ही रग के होते है। इसका सिर और गरदन का ऊपरी हिस्सा गाढा खैरा रहता है, लेकिन नीचे का हिस्सा हलके रग का हो जाता है। इनका ऊपरी हिस्सा गाढा भूरा और नीचे का भाग गदा सफेद रहता है। जाडो मे इनका सिर और गरदन का ऊपरी भाग भूरा रहता है और नीचे के हिस्से मे कुछ ललाई-सी आ जाती है और ठुड्ढी का हिस्सा भी सफेद हो जाता है। इसकी चोच पतली, नोकीली और काली रहती है और पैर गदे हरे रग के होते है।

छोटी पनडुब्बी हमारे यहाँ की छोटे कद की बत्तखो में से एक है जिसका मुख्य भोजन पानी के कीडे-मकोडे, छूछू मछली (Tadpole) और उनके अण्डे-बच्चे

है। यह छोटे-छोटे कटुओ आदि को पानी की तह से पकडने के लिए बार-बार डुबकी लगाती रहती है और अपने शिकार के लिए पानी के भीतर मछलियो की तरह तैरा करती है।
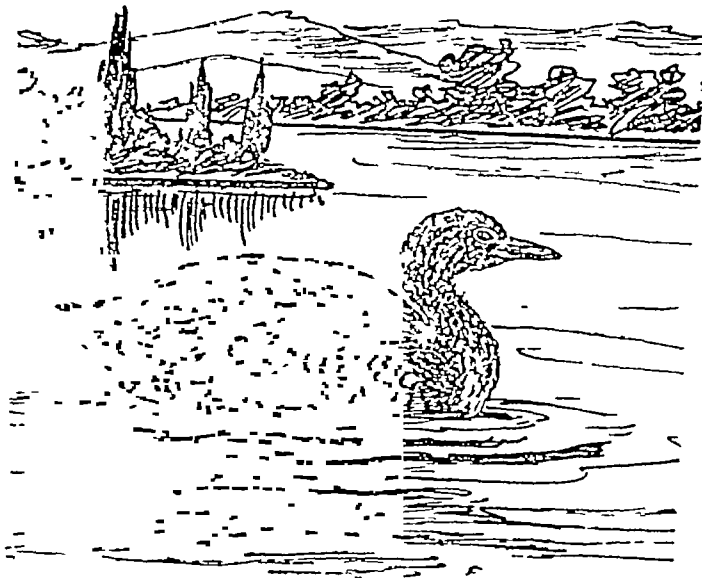
छोटी पनडुब्बी

यह मई से सितम्बर के बीच किसी पानी की घास या नरकुल के बीच में अपना घास-फूस का घोसला बनाकर तीन से पाँच तक अण्डे देती है। ये अण्डे पहले तो सफेद रहते है, लेकिन बाद में गदे भूरे रग के हो जाते है। अण्डो को नर और मादा दोनो पारी-पारी से सेते है। लोग इसका मास बडे स्वाद से खाते है।

बड़ी पनडुब्बी

(GREAT CRESTED GREBE)

बडी पनडुब्बी छोटी पनडुब्बी से कद मे बडी होती है। यह उत्तरी भारत की झीलो मे जाडो मे बाहर से काफी संख्या मे आकर भर जाती है। यह वैसे तो मौसमी बत्तख है, लेकिन इसकी काफी बडी सख्या यहीं रह जाती है और यही अण्डे देती है।

इसके नर-मादा एक जैसे होते है जिनके शरीर का ऊपरी भाग कत्थई और नीचे का सफेद रहता है। इसकी गरदन पतली और लम्बी होती है। जोडा बाँधने के समय

इसके माथे पर भडकीली काली चोटी निकल आती है और बगल का हिस्सा कत्थई हो जाता है जिससे यह और भी सुन्दर लगने लगती है।

बडी पनडुब्बी

इसकी चोच पतली, नोकीली और तेज रहती है जिस का रग काला होता है। इसके पैर गदे हरे रग के होते है।

इस पनडुब्बी का भी सारा समय पानी में ही बीतता है, जहाँ यह पानी के भीतर तैरकर कीडे-मकोडो आदि से अपना पेट भरती है।

इसके घोसला बनाने का समय भी वही मई से सितम्बर के बीच का है, जब यह पानी के नरकुलो के बीच अपना घासपात का घोसला बनाकर चार-पाँच अण्डे देती है। ये अण्डे सफेद होते है जो कुछ ही दिनो मे भूरे हो जाते है।

इसकी और आदतें छोटी पनडुब्बी-जैसी ही होती है। इसका मास बडे स्वाद से खाया जाता है।

समुद्र-काक वर्ग

(ORDER PROCELLARIFORMES)

इस वर्ग के सब पक्षी समुद्र के निकट रहनेवाले हैं जो अपना समय समुद्र के ऊपर उडकर बिताते है। इनमें से कुछ ऐसे भी हैं जो समुद्र के भीतर पनडुब्बियो की तरह

तैर लेते हैं। इनका मुख्य भोजन मछलियाँ और कीड़े-मकोड़े हैं। ये सब पक्षी एक ही बड़े परिवार में रखे गये हैं, जो समुद्रकाक-परिवार कहलाता है।

समुद्र-काक-परिवार

(FAMILY PROCELLARIDAE)

यह परिवार काफी बड़ा है और इसमे समुद्र-काक की सभी जातियो को एकत्र किया गया है। इनमे से कुछ तो छोटी बत्तखो के बराबर होते हैं, लेकिन कुछ ऐसे भी हैं जिनके डैने फैलाये जाने पर एक फुट तक फैल जाते हैं। ये सब समुद्री-पक्षी हैं, जिनका समय समुद्र के ऊपर हवा मे, समुद्र की सतह पर, अथवा समुद्र के भीतर बीतता है। ये उडने में और पानी के भीतर तैरने मे बहुत उस्ताद होते हैं ।

ये कभी कुररियो की तरह समुद्र की लहरो पर पानी को छूते हुए तिरछे होकर तेजी से उडते रहते हैं, तो कभी हवा में अबाबील की तरह पख फैलाकर तैरते रहते हैं। उस समय जो मछली पानी से ऊपर उछलकर आती है उसका इनसे बचना किसी प्रकार सम्भव नही होता ।

इनकी वैसे तो अनेक जातियाँ हैं, लेकिन इनमे से यहाँ केवल तूफानी समुद्र-काक का वर्णन दिया जा रहा है जो हमारे देश के समुद्रो के निकट दिखाई पडता है।

तूफानी समुद्र-काक

(STORMY PETREL)

तूफानी समुद्र-काक समुद्री पक्षी है। जैसा इसके नाम से ही स्पष्ट है, यह अपना अधिक समय समुद्र पर ही बिताता है और बडे तूफानो और अण्डा देने के समय के अलावा किनारे पर बहुत ही कम आता है।

यह ६ इच का छोटा-सा पक्षी है, जिसके डैने अबाबील की तरह शरीर से कुछ लम्बे ही होते हैं। इसके नर-मादा एक ही रग-रूप के होते हैं जिनका पैर जालपाद रहता है। तूफानी समुद्री-काक का शरीर कलछौंह रहता है और उसके दुमगजे के पास एक सफेद धारी-सी पडी रहती है। यह अक्सर समुद्र मे जहाज को देखकर कुछ दूर तक उसके पीछे-पीछे चलता है। यह समुद्र की लहरो मे ऐसा मिलकर

उडता है कि जान पडता है कि जैसे लहर के ऊपर चल रहा हो। यही नही, कुछ दूर हो जाने पर ऐसा लगता है कि जैसे काले रग की बडी-सी तितली पानी से मिलकर
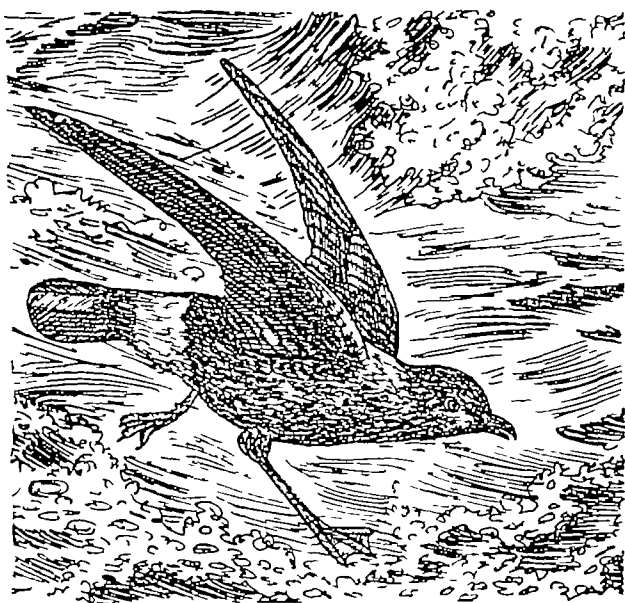
तूफानी समुद्रकाक

उड रही हो। तूफानी समुद्रीकाक समुद्र के किनारे की चट्टानो मे कोई गहरा सूराख अण्डा देने के लिए चुनता है जिसमें मादा एक अण्डा देती है, जो दूध-सा सफेद रहता है।

महावक वर्ग

(ORDER CICONIFORMES)

इस वर्ग में उन पक्षियो को एकत्र किया गया है जो जल मे या जल के निकट रहनेवाले हैं। यह वर्ग दो उपवर्गों में विभक्त किया गया है जो इस प्रकार है—

१ महावक उपवर्ग—Sub order Ciconiae

२ जलकाक उपवर्ग—Sub order Steganopodes

महावक उपवर्ग
(SUB ORDER CICONIAE)

महावक उपवर्ग मे लम्बी टाँगोवाली वे चिडियाँ है जो अपनी लम्बी चोच और लम्बी टाँगो के कारण अन्य पक्षियो के बीच आसानी से पहचानी जा सकती है। ये छिछले पानी में या पानी के आसपास के कीचड मे अपना अधिक समय बिताती है, जहाँ इन्हे अपना पेट भरने के लिए मेढक, मछली, कटुए तथा दूसरे कीडे-मकोडे काफी सख्या मे मिल जाते है।

यह उपवर्ग वैसे तो कई परिवारो मे विभक्त है लेकिन यहाँ केवल नीचे लिखे चार परिवारो के पक्षियो का वर्णन दिया जा रहा है—

१ महावक परिवार—Family Ciconiidae

२ वक परिवार—Family Ardiedae

३ बुज्जा परिवार—Family Ibidae

४ हसावर परिवार—Family Phoenicopteridae

महावक परिवार
(FAMILY CICONIIDAE)

महावक परिवार में प्राय वे सभी महावक शामिल हैं जिन्हे उनकी लम्बी टाँगो के कारण पहचानने में जरा भी कठिनाई नही होती। इनके शरीर की बनावट बगुलो की तरह हलकी न होकर भारी होती है और कद मे भी ये बगुलो मे ऊँचे होते है।

इनके पैर की उँगलियाँ इनके कद को देखते हुए छोटी ही कही जायँगी। इनकी जवान भी बगुलो की तरह पतली और लम्बी न होकर बहुत छोटी और तिकोनी होती है। ये पक्षी बोलते नही, बल्कि अपनी लम्बी चोच के दोनो हिस्सो को लडाकर एक प्रकार की आवाज करते है। ये अपनी लम्बी गरदन को पहले नीचे झुकाकर फिर ऊपर की ओर चक्कर देकर ले जाते है और उसे मोडकर पीठ पर रख लेते है।

उडते समय ये अपनी लम्बी गरदन को बगुलो की तरह मोड नही लेते बल्कि उसे आगे की ओर सीधी ताने रहते है। इनका मुख्य भोजन मछली, मेढक, घोघे, कटुए, कीडे, फतिगे और अन्य छोटे जीव-जन्तु है।

इस परिवार में वैसे तो बहुत से पक्षी है, लेकिन यहाँ इनमें से लगलग, जाँघिल, घोंघिल, गैवर और चमरघेंच इन पाँच महावको का ही वर्णन दिया जा रहा है।

लगलग

(WHITE NECKED STORK)

लगलग को कही-कही लोग हाजी लगलग भी कहते है। यह हमारे यहाँ के महा-बको में बहुत प्रसिद्ध पक्षी है, जिसे पानी या दलदलो के आसपास देखा जा सकता है।

यह हमारे यहाँ का वारहमासी पक्षी है जो अपना अधिक समय पानी के निकट ही बिताता है। इसे अक्सर बगुलो के साथ पानी के आसपास के ऊसरो में अथवा धान के खेतो में देखा जा सकता है। हमारे देश मे यह प्राय सभी मैदानी प्रान्तो में दिखाई पडता है।

लगलग

लगलग करीब तीन फुट लम्बा पक्षी है जिसके नर-मादा एक ही शकल-सूरत के होते हैं। इसका माथा और सिर का ऊपरी हिस्सा तो काला रहता है, लेकिन उसके वाद पूरी गरदन सफेद रहती है। दुम का निचला हिस्सा भी सफेद रहता हैं लेकिन उसके अलावा सारा वदन धुर काला रहता है। इसकी चोच लम्बी और काली रहती हैं लेकिन लम्बी टाँगो का रग लाल रहता है। इसका मुख्य भोजन मछली, मेढक और घोघे, कटुए आदि है।

लगलग वरसात के आसपास किसी जलाशय के किनारे या गाँव के पास के किसी ऊँचे पेड पर सूखी टहनियो का घोसला बनाता है जो देखने में भद्दा-सा

रहता है। मादा इसमें ३-४ अण्डे देती है जो हलका नीलापन लिये सफेद रग के रहते हैं।

जाँघिल

(PAINTED STORK)

जाँघिल हमारे यहाँ का प्रसिद्ध महावक है जिसे कही-कही इसकी पीली चोच के कारण सदलचोचा भी कहा जाता है। इसके कधे और डैने के कुछ पर गुलावी रहते है जिससे इसे पहचानने में गलती नही हो सकती। अन्य महावको की तरह ये भी कभी जोडे मे और कभी झुडो मे पानी या दलदलो के किनारे दिखाई पडते है। हमारे यहाँ ये सारे देश में फैले हुए है, लेकिन पजाव की ओर ये कम सख्या मे दिखाई पडते है।

जाँघिल करीव साढे तीन फुट ऊँचे होते है। इनके नर-मादा एक-जैसे होते है जिनका रग सफेद और काला रहता है। इनकी गरदन, सीना और पीठ सफेद होती है और पेट पर एक काली पट्टी रहती हे। उसके वाद नीचे का कुल हिस्सा सफेद रहता है। डैने और पीठ का पिछला हिस्सा काला रहता है जिसमे एक प्रकार की हरी चमक रहती है। कधे पर के और डैने पर के पर गुलावी रहते है।

इनकी चोच लम्बी और भारी होती है जिसका सिरा आगे की ओर झुका-सा रहता है। चोच का रग पीला होता है और पैर भूरे रहते है।

जाँघिल हमारे यहाँ का वारहमासी पक्षी है जो अपना सारा समय जलाशयो के आसपास ही विताता है। वारहमासी होकर भी यह यही थोडा स्थान-परिवर्तन कर लेता है। जोडा वाँधने का समय निकट आने पर जाँघिल झुड वनाकर रहने लगते है। रात मे पानी के निकट के किसी ऊँचे पेड पर इनका गिरोह वसेरा लेता है, जहाँ वीच-वीच मे इनकी कर्कश वोली सुनाई पडती है। इनका मुख्य भोजन मछली, मेढक और पानी के अन्य कीडे-मकोडे हैं।

जाँघिल के जोडा वाँधने का समय सितम्वर से जनवरी तक रहता है जव ये वडी-वडी टहनियो का भद्दा और छिछला घोसला वनाते है। ये घोसले प्राय पानी मे खडे हुए पेडो पर रहते है और अक्सर एक ही पेड पर २०-२५ तक घोसले
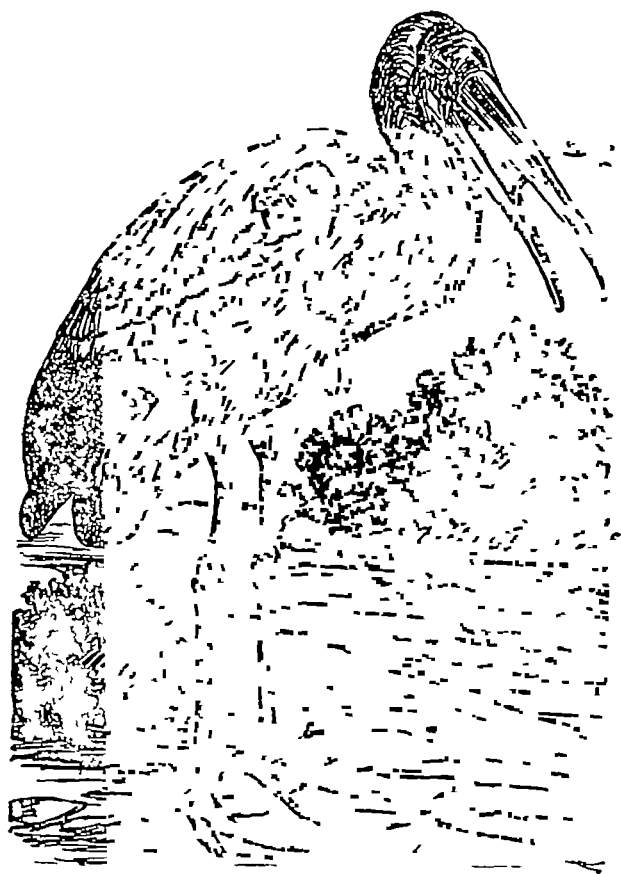
जाँघिल

देखे जा सकते है। मादा समय आने पर चार-पाँच अण्डे देती है, जो धूमिल सफेद रहते हैं। कभी-कभी इन पर भूरी चित्तियाँ और धारियाँ भी पडी रहती हैं।

घोंघिल

(OPEN BILLED STORK)

घोंघिल हमारे यहाँ का मशहूर महावक है जिसकी चोच के बीच में कुछ दूर तक सधि-सी रहती है। इसी कारण इसे पहचानने में अधिक कठिनाई नही होती।

घोघिल गदे सिलेटी रग का महाबक है जिसे ताल-तलैयो तथा कीचड से भरे गढो के आसपास भोजन की तलाश मे देखना कुछ मुश्किल नही। घोघिल वैसे तो जोडे मे रहते है, लेकिन कभी-कभी इनके झुण्ड भी हमे दिखाई पड जाते है।

ये हमारे देश में प्राय सभी स्थानो मे पाये जाते है। इनके नर-मादा एक-जैसे होते है। ये कद मे जाँघिल से छोटे होते है और खडे रहने पर इनकी ऊँचाई ढाई फुट से ज्यादा नही होती। इनके बदन का रग हलका सिलेटी या राखी और डैने काले रहते हैं। चोच लम्बी और नोकीली होती है, जिसका रग ललछौंह काला रहता है। चोच के दोनो हिस्से खमदार होते है जिनके बीच का कुछ हिस्सा खुला ही रहता है। पैर लाल रग के रहते है।

घोघिल
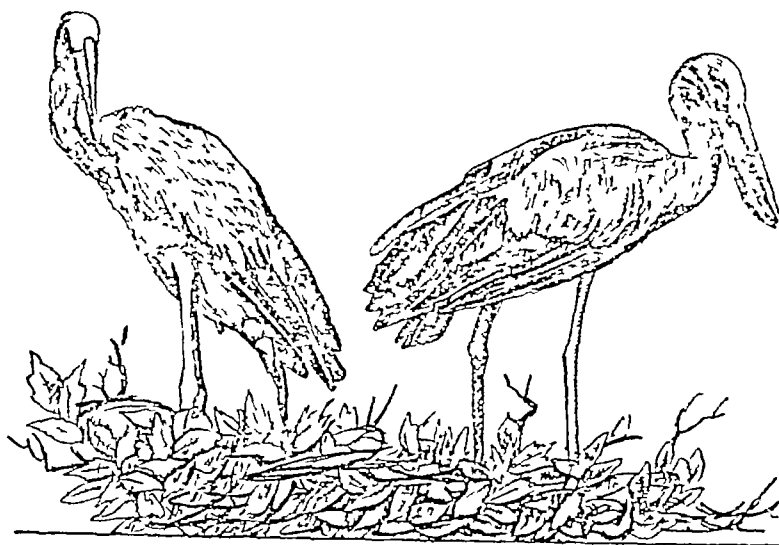
घोघिल हमारे देश का बारहमासी पक्षी है जो ऋतु-परिवर्तन के साथ-साथ थोडा स्थान-परिवर्तन भी कर लेता है। यह भी अपनी चोच के दोनो हिस्सो को लडाकर एक प्रकार की आवाज करता है जो बहुत कर्कश होती है। इसका मुख्य भोजन मेढक, मछली, केकडे तथा घोघे और कछुए है। घोघे आदि को यह बडी आसानी से अपनी मजबूत चोच से तोड डालता है और भीतर का नरम मास खा जाता है।

इनके जोडा बाँधने का समय जुलाई से सितम्बर तक है जब ये झुण्ड के

झुण्ड एक साथ किसी पानी के निकट के पेड पर अपने घोसले वनाते है। ये घोसले टेढी-मेढी टहनियो के भद्दे-से होते है जिनमें मादा दो से चार तक अण्डे देती है।

गैबर

(WHITE STORK)

गैबर भी हमारे यहाँ का सुन्दर महाबक है जो अपनी लाल चोच और टाँगो के कारण अन्य महाबको से भिन्न रहता है। इसको भी हम ताल-तलैयो तथा
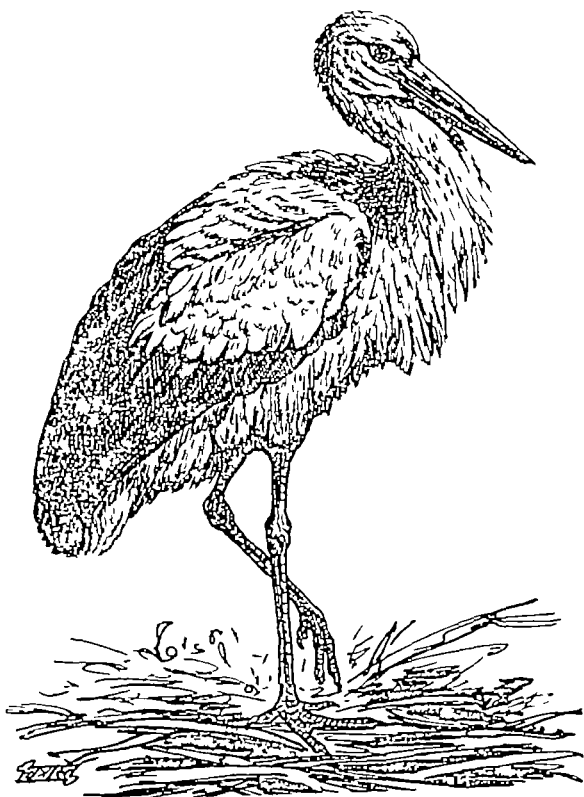
गैबर

दलदलो के आसपास देख सकते है जहाँ यह जोडे में या छोटे-वडे झुण्डो में अक्सर अपने भोजन की तलाश में घूमता रहता है।

गैवर साढे तीन फुट ऊँचा पक्षी है जिसके नर-मादा एक रग-रूप के होते हैं। इसके शरीर का रग सफेद होता है लेकिन डैने धुर काले रहते हैं। इसकी चोच लम्बी और नोकीली होती है जिसका रग लाल रहता है। पैर भी लाल होते हैं।

गैवर हमारे यहाँ का मौसमी पक्षी है जो हमारे देश के उत्तरी भागो मे जाडो मे आ जाता है। हमारे यहाँ यह सितम्बर के अन्त तक आ जाता है और यहाँ से अप्रैल तक लौट जाता है। गैवर अकेले या जोडे मे जलाशयो के निकट घूमते-फिरते दिखाई पडते हैं, लेकिन यहाँ आते समय या लौटते समय ये अपने बडे झुड बना लेते हैं। इनका भोजन मेढक, मछली, छोटे सरीसृप और कीडे-मकोडे हैं। टिड्डियाँ इन्हे बहुत पसन्द है। अन्य महाबको की तरह ये भी अपनी चोच के दोनो हिस्सो को लडाकर एक प्रकार की कर्कश आवाज करते हैं।

इनके जोडा बाँधने का समय मई से जुलाई तक है जब ये टहनियो मे अपना मचाननुमा भद्दा-सा घोसला बनाते हैं। ये घोसले हमारे देश मे तो देखे नही जा सकते क्योकि इस समय ये हमारे देश मे नही रहते, लेकिन विदेशो मे इनके घोसलो को मकान के ऊँचे धुवाँकशो, मकान की मीनारो तथा ऊँचे पेडो पर देखना कठिन नही।

मादा समय आने पर ४-५ अण्डे देती है जो एकदम सफेद रहते हैं।

चमरघेच

(ADJUTANT STORK)

चमरघेच के भी कई नाम हमारे यहाँ प्रचलित हैं। कही यह गजा कहलाता है तो कही इसे दमरडेक या पडवाडेक का नाम मिला है। यह बहुत ही भद्दा और बदसूरत पक्षी है जिसके चँदुले भारी सिर, लम्बी चोच तथा गले के नीचे लटकती हुई थैली से इसे दूर ही से आसानी से पहचाना जा सकता है।

हमारे देश मे यह केवल उत्तरी भागो मे ही पाया जाता है जहाँ इसे बस्तियो तथा जलाशयो के आसपास अकेले या छोटे-छोटे झुडो में देखना कठिन नही।

चमरघेच चार-पाँच फुट ऊँचा पक्षी है जिसके नर-मादा एक-जैसे होते हैं। इसके शरीर का रग चितकबरा रहता है जिसमे गरदन का ऊपरी हिस्सा, दोनो

कधे, मीना और नीचे का कुल हिस्सा मफेद और पीठ का कुल हिस्सा और डैने काले तथा गाढे सिलेटी रहते है । डैने के बडे पर सफेद होते है। इसका सिर एकदम नगा रहता है और इसकी गरदन पर भी पख नही रहते। गरदन के नीचे सीने पर एक १०-१५ इच लम्बी थैली लटकती रहती है । इसकी चोच बहुत लम्बी और भारी होती है जिसका रग ललछौह रहता है । पैर भी ललछौह रहते हैं।

चमरघेंच
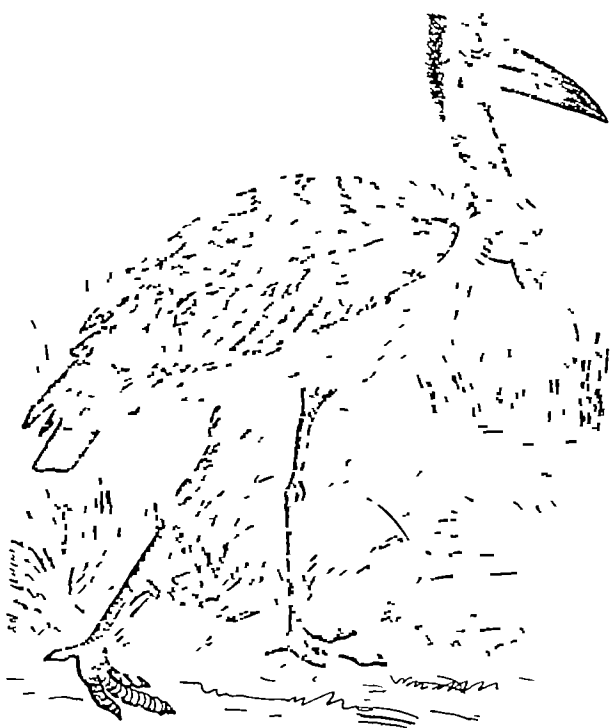
चमरघेच हमारे यहाँ का मौसमी पक्षी है जो हमारे यहाँ गर्मियो में आकर कुछ महीनो बाद वापस चला जाता है। यह मुर्दो को ही नही, सभी गदी चीजो को खानेवाला सर्वभक्षी पक्षी है जिसमे मछली, मेढक, छोटे सरीमृप तथा कीडे-पतिगे कुछ भी नही बचने पाते।

जोडा बाँध लेने पर चमरघेच पहाड की किसी ऊँची चोटी या ऊँचे पेड पर टहनियो का वड़ा और भद्दा-सा घोसला बनाता है जिसमे मादा ३-४ सफेद अण्डे देती है।

वक परिवार

(FAMILY ARDIEDAE)

वक या वगुले, जैसा पहले वता चुके है, महावको मे कद में छोटे और हल्के होते है। छिछले पानी मे या पानी के किनारे ही इनका सारा दिन वीतता है, जहाँ ये मछली, मेढक तथा पानी के अन्य कीडे-मकोडे पकडते है। इसी कारण इनको प्रकृति ने लम्बी टाँगें, पतली और लम्बी गरदन तथा तेज चोच दी है, जिससे मछली छूटकर नही जाने पाती। इनके वीच की उँगली के नाखून की वनावट कघी-जैसी रहती है जिससे ये अपनी चोटी या कलँगी को सँवार लेते है।

इनके सीने पर दोनो ओर और दोनो जाँघो के कुछ हिस्से पर वहुत ही मुलायम रोएँ रहते है जो देखने में मुलायम ऊन जैसे लगते है लेकिन इनको छुआ नही कि ये टूट जाते है और उँगलियो मे पाउडर-जैसा पदार्थ लग जाता है।

वगुलो की वैसे तो अनेक जातियाँ है, लेकिन सुविधा के लिए ये दो भागो में वाँट दिये गये है—सफेद वगुले और सिलेटी वगुले। इनके अलावा वहुत तरह की वगुलियाँ भी होती है, जो पिलछौंह कत्थई, सिलेटी तथा चितली होती है। इतना ही नही, कुछ वगुले ऐसे भी है जो उल्लुओ की तरह रात मे ही उडना पसन्द करते है। इन्हे वाक कहा जाता है।

यहाँ अपने यहाँ के प्रसिद्ध वगुलो का वर्णन दिया जा रहा है।

आँजन वगुला

(COMMON HERON)

आँजन या अजन वगुला को, इसकी कर्कश वोली के कारण, कही-कही टर वगुला भी कहते है। यह सफेद और सिलेटी रग का वहुत सुन्दर वगुला है जो कद मे और सव वगुलो मे वडा होता है। यह प्राय अकेला ही नाले-नलैयो तथा अन्य जलाशयो के निकट अपने शिकार की घात में पानी मे चुपचाप खडा रहता है।

टर हमारे देश का बारहमासी पक्षी है जो हमारे यहाँ प्राय सभी स्थानो पर पाया जाता है। पहाडो पर भी यह लगभग ५ हजार फुट की ऊँचाई तक चला जाता है। यह लगभग ढाई फुट ऊँचा पक्षी है जिसके नर-मादा एक रगरूप के होते है। इसका सिर, गरदन और नीचे का कुल हिस्सा सफेद रहता है, लेकिन सीने पर के कुछ पर काले रहते है। आँख के पास से एक काली रेखा सिर तक चली जाती है, जहाँ से दो लबे काले पर निकलते है, जो इसकी चोटी-से जान पडते है। इसके शरीर का ऊपरी हिस्सा और डैने सिलेटी रग के रहते है, जिनके सिरे पर के पर काले रहते है। इसके कधे के कुछ पर सफेद रहते है। इसकी लबी और नोकीली चोच गदे पीले रग की होती है और लबे पैर हरापन लिये पिलछौंह रहते है।

आँजन बगुला

टर रात को प्राय एक ही पेड पर झुड बनाकर बसेरा लेता है। यह वैसे तो दिन भर पानी के किनारे ही रहता है, लेकिन इसके शिकार का उपयुक्त समय सुबह और शाम है। यह ज्यादातर ऐसे जलाशयो को पसन्द करता है जिनके किनारे घास या नरकुल हो जहाँ यह अपने शिकार की घात में पानी में चुपचाप गरदन सिकोडे खडा रहता है, जैसे सो रहा हो। लेकिन मछली के पास आते ही इसकी लबी गरदन इस तेजी से चलती है कि इसकी तेज चोच की पकड से मछली बच नही पाती। यह मछली, मेढक, घोघे, कटए तथा पानी के अन्य कीडे-मकोडो से अपना पेट भरता है।

टर के जोडा बाँधने का समय जुलाई से सितम्बर तक है, जब ये पानी के किनारे के किसी पेड पर टहनियो का मचाननुमा भद्दा घोसला बनाते हैं, जिसमे बीच मे गढा-सा रहता है । इन घोसलो को पत्तियो से मुलायम बना दिया जाता है जिसमें मादा प्राय तीन अण्डे देती है जो हलके हरे रग के रहते हैं।

वाक
(NIGHT HERON)

वाक को शायद इसकी बोली के कारण ही यह नाम मिला है। यह रात्रिचर बगुला है जो दिन भर उल्लू की तरह किसी पेड पर बैठा ऊँघा करता है और रात होते ही
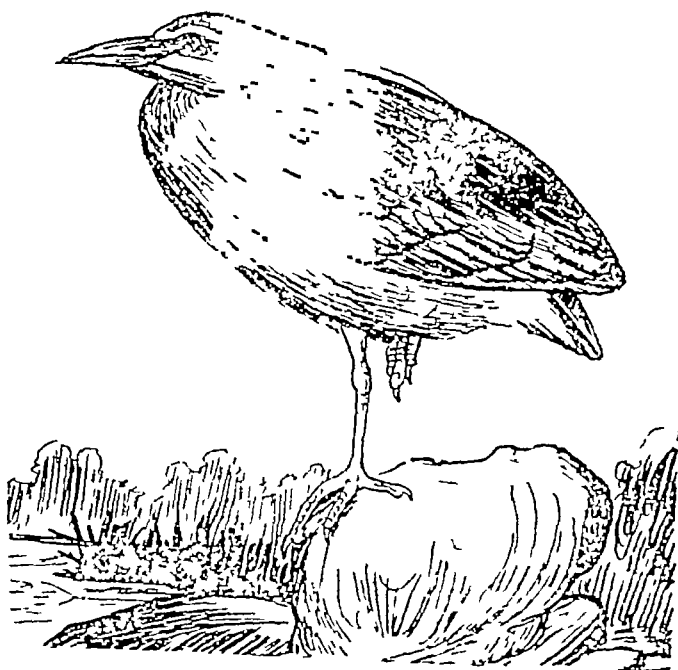
वाक बगुला

वाक्-वाक् करके इधर-उधर उडने लगता है । हमारे यहा यह सारे देश मे फैला हुआ है और पहाडो पर भी ऑजन बगुले की तरह यह पाँच हजार फुट तक पाया जाता है।

वाक हमारे यहाँ का बारहमासी पक्षी है जिनके नर-मादा एक-जैसे होते हैं। यह हमारे यहाँ की बगुली के बराबर लगभग बीस-बाईस इच का पक्षी है जिसके

सिर का ऊपरी हिस्सा और पीठ काली होती है। इसमें एक प्रकार की हरी चमक भी रहती है। इसकी चोटी सफेद, माथा काला और नीचे का कुल हिस्सा सफेद रहता है। इसकी गरदन, दुम और डैने हलके सिलेटी रहते हैं जिसमे हलका गुलाबीपन मिला रहता है। इसकी नोकीली चोच काली और पैर पिलछौंह हरे रहते हैं। वाक झुडो मे बसेरा लेते हैं, जहाँ ये सारे दिन पेडो पर बिताकर शाम होते ही जलाशयो के आसपास उडने लगते हैं।

वाक उडते समय, बीच-बीच में बोलता रहता है जिससे इसकी मौजूदगी का पता आसानी से लग जाता है। इसका मुख्य भोजन मेढक, मछली और अन्य कीडे मकोडे हैं। इसकी और सब आदतें अन्य बगुलो से मिलती-जुलती हैं।

वाक के जोडा बाँधने का समय अप्रैल से सितम्बर तक रहता है जब मादा समय आने पर चार-पाँच पिलछौंह हलके हरे रग के अण्डे देती है। इसका घोसला मामूली-सा रहता है जो टहनियो का बना होता है।

बगुली

(POND HERON)

बगुली से हम सभी परिचित हैं। यह हमारे यहाँ के छोटे-बडे सभी ताल-तलैयों के किनारे बैठी दिखाई पडती है। यही नही, इसे गाँव और बस्तियो के आसपास के पानी से भरे गढो में भी मेढक-मछली पकडते देखा जा सकता है।

बगुली को चमरबगुली या अधीबगुली भी कहते हैं। हमारे देश मे यह सभी जगह पायी जाती है और पहाडो पर भी इसे तीन हजार फुट तक देखना कठिन नही है। यह १८-२० इच ऊँची होती है जिसके नर-मादा एक-जैसे रहते हैं। इसका सिर और गरदन का ऊपरी हिस्सा गहरा भूरा और पीठ सिलेटी भूरी रहती है। लेकिन बाकी ऊपरी हिस्सा और नीचे का कुल हिस्सा सफेद रहता है। इसके सीने पर भूरी धारियाँ पडी रहती हैं और सिर पर कुछ लबे सफेद चोटी के पर निकले रहते हैं। इसकी नोकीली चोच पीली रहती है, जिसका सिरा काला और जड निलछौंह रहती है। इसके पैर गहरे हरे रग के होते हैं।

बगुली बहुत ढीठ पक्षी है जो बहुत निकट चले जाने पर भी नही उडती। यह यहाँ की बारहमासी चिडिया है, जो बराबर यही रहती है और पानी के सूखने पर या खूराक के कम हो जाने पर ही अपना स्थान छोडती है।

अन्य वगुलो की तरह वगुली का भोजन मेढक, मछलियाँ और कीडे-मकोड़े हैं और यह भी उन्ही की तरह पानी के किनारे चुपचाप शिकार की ताक मे खड़ी रहती है। रात को वगुलियो के झुड किमी पानी के किनारे के पेड पर वमेरा लेते हैं। इनकी वोली भी काफी कर्कश होती है।

वगुली
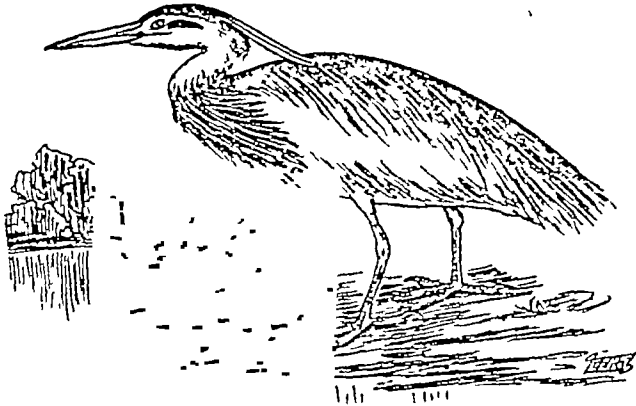
वगुली के जोडा वाँधने का ममय मई मे सितम्वर तक रहता है जव यह छोटी टहनियो का तितरा-वितरा-सा घोमला वनाती है। एक ही पेड पर वगुलियो के वहुत-से घोसले देखे जा सकते हैं जहाँ ये लगातार उमी पर हर माल अपने घोमले वनाती रहती है। ममय आने पर मादा उनमे ४-५ हरछौह नीले रग के अण्डे देती हैं।

मलग वगुला

(LARGE EGRET)

मलग मफेद रग के वगुलो मे मवमे वडा होता है। यह टर मे कद मे थोडा ही छोटा रहता है और इमे प्राय अकेले ही देखा जा मकता है। इमके सिर पर चोटी नही रहती और इमे इमकी दूध-जैसी मफेद पोशाक के कारण पहचानने में जरा भी दिक्कत नही होती।

मलग हमारे यहाँ का वारहमामी पक्षी है जो यहाँ के प्राय मभी जलाशयों के निकट दिखाई पडता है। यह ढाई फुट मे कुछ ही छोटा होता है जिमके नर-मादा एक-जैसे होते हैं। मलग मारे देश में फैले हुए हैं जिन्हे मभी स्थानों मे देखा जा मकता

है। इनका शरीर धुर सफेद रहता है और जब इनकी पक्ति नीले बादलो में उड़ती है तो देखने में बहुत भली लगती है। इनकी चोच वैसे तो पीली रहती है, लेकिन अण्डा देने का समय आने पर वह काली हो जाती है। इनके पैर काले रहते है।

मलग बगुला

मलग अन्य बगुलो की तरह मेढक, मछली, कटुए और कीड़े-मकोडो से अपना पेट भरता है। इसके शिकार करने का ढग भी अन्य बगुलो की तरह रहता है। जोडा बाँधने के समय इसके सीने और पीठ पर बहुत महीन और चमकीले पर निकल आते है जो अच्छी कीमत पर बिकते है। इन परो की पहले यूरोप में बहुत खपत थी, लेकिन अब इनकी माँग बहुत कम हो गयी है। हमारे यहाँ भी जडाऊ कलँगियो के पीछे इनके पर लगाये जाते थे लेकिन अब यहाँ भी इसका चलन उठता जा रहा है।

इसके जोडा बाँधने का समय जुलाई से अगस्त तक है, जब यह किसी जलाशय के निकट के पेड़ पर टहनियो का भद्दा-सा घोसला बनाता है। मादा उसमें चार-पाँच अण्डे देती है, जो हलके हरे रग के होते है।

करछिया वगुला

(LITTLE EGRLT)

करछिया भी सफेद रग का वगुला है जो अपनी काली चोच और काले पैरो के कारण करछिया कहलाता है। जोडा बाँधने का ममय निकट आने पर इमके मिर पर दो लम्बे पर निकल जाते हैं।

करछिया वगुला हमारे यहाँ का वारहमासी पक्षी है जिसके नर-मादा एक ही जैसे होते हैं। यह हमारे यहाँ के प्राय सभी वडे जलाशयो में दिखाई पडता है। यह प्राय छोटे-छोटे गरोहो में दिखाई पडता है और घास मे भी कीडे-मकोडो की तलाश में घूमता रहता है। यह किसी पेड पर गरोह बाँधकर वमेरा लेता है।

करछिया वगुला

इसका कद १८ मे २२ इच के लगभग रहता है और इनके नर-मादा एक रग-रूप के होते हैं। इसका मारा वदन वुर सफेद और चोच तया पैर काले रहते हैं। जोड़ा बाँधने के ममय इमके सिर पर दो लवे पर वढ आते हैं और मीने तया पीठ पर भी वहुत मुन्दर चमकीले पतले पर निकलते हैं जो अच्छी कीमत पर विकते हैं। ये पर कलँगियो मे लगाने के काम आते हैं और इन्ही के लिए विदेशो मे लोग इन वगुलों को काफी संख्या में पालते थे, लेकिन अव इनकी खपत कम हो जाने से इनके पालनेवाले भी कम हो गये हैं।

करछिया भी मलंग की तरह जुलाई और अगस्त मे जोडा बाँधता है और टहनियां

का भद्दा-सा घोसला बनाता है। मादा, समय आने पर, चार-पाँच अण्डे देती है जो हलके हरे रग के रहते है।

गाय बगुला

(CATTLE EGRET)

गाय बगुले को जहा मवेशियो के साथ रहने के कारण गाय बगुला कहते है वही उसे, सीने और पीठ पर के पिलछौंह सुनहले महीन परो के कारण, सुरखिया बगुला भी कहते है। यह भी हमारे यहाँ का प्रसिद्ध सफेद बगुला है जिसे जलाशयो के अलावा चरागाहो में भी काफी सख्या मे देखा जा सकता है। यह मवेशियो के आसपास इसी लिए रहता है कि उनके घास में चलने पर जो कीडे-पतिंगे उडते है उन्हे यह पकड-पकडकर अपना पेट भरता रहे।

सुरखिया या गाय बगुला

गाय बगुला कद मे करछिया बगुले के बराबर ही होता है जिसके नर-मादा एक जैसे रहते है। इसका सारा बदन धुर सफेद रहता है। यह बगुलो की तरह बहुत ढीठ पक्षी है, लेकिन जोडा बाँधने का समय आने पर इसके सिर, सीने और पीठ पर के महीन पर सुनहले रग के हो जाते है जिससे फिर इसे पहचानने मे कोई दिक्कत नही रह जाती। इसकी चोच पीली रहती है लेकिन पैर अन्य सफेद बगुलो की तरह काले ही होते है।

गाय बगुला हमारे लिए बहुत उपयोगी पक्षी है, जो दिन भर कीडे-मकोडो को खाकर उनकी सख्या कम करता रहता है। यह पशुओ की पीठ पर बैठकर उनके

शरीर की किलनी और कुटकियो को खाता रहता है जिससे उनका बहुत लाभ होता है। इसका मुख्य भोजन तो कीडे-मकोडे है, लेकिन मौका पडने पर यह मेढक-मछलियो को भी बडे मजे से खाता है। अन्य बगुलो की तरह यह भी किसी पेड पर झुड मे बसेरा लेता है।

इनके जोडा बाँधने का समय जून से अगस्त तक रहता है जब ये झुड-के-झुड किसी पेड पर टहनियो के भद्दे मे घोसले बनाते है। घोसला बनाने के लिए ये पानी के पास के ही पेड को नही चुनते बल्कि कभी-कभी ये ऐसे पेडो पर भी घोसला बनाते है जो बस्ती और बाजारो के बीच मे रहते है। मादा तीन से पाँच तक अण्डे देती है जो हलका हरापन या पीलापन लिये सफेद होते है।

बुज्जा परिवार

(FAMILY IBIDAE)

बुज्जा परिवार के पक्षी भी लबी टाँगोवाले है। शकल-सूरत मे ये बहुत कुछ बगुलो तथा महाबको से मिलते-जुलते रहते है, लेकिन इनकी झुकी हुई या टेढी चोच इन्हें अन्य पक्षियो से भिन्न रखती है। इनमें दाबिल जरूर ऐसा है जिसकी चोच रोटी सेकने के चिमटे की शकल की रहती है। ये वैसे तो जलाशयो के निकट रहते है जहाँ इन्हे पेट भरने के लिए मेढक, कछुए, घोघे तथा दूसरे कीडे-मकोडे आसानी से मिल जाते है, लेकिन कौआरी जाति के पक्षी ऐसे भी है जो पानी से दूर खुले मैदानो में भी कीडे-मकोडे खाकर रह लेते है।

इस परिवार के पक्षी महाबको की तरह गूंगे नही होते बल्कि समय-समय पर उनकी तेज और कर्कश आवाज हमे सुनाई पडती है।

इनकी वैसे तो कई जातियाँ है लेकिन यहाँ उनमे से केवल तीन पक्षियो का वर्णन दिया जा रहा है।

काला बुज्जा

(BLACK IBIS)

काला बुज्जा का दूसरा नाम कडाकुल है। कही-कही इसे सिर पर के लाल रग के कारण मुर्ग फेन भी कहते है। यह काले रग का गदा-सा पक्षी है जो अपनी टेढी चोच और लाल रग की टाँगो के कारण दूर ही से पहचान लिया जाता है।

कडाकुल हमारे यहाँ का वारहमासी पक्षी है जो हमारे यहाँ करीब-करीब सभी जगह पाया जाता है। यह बारहो महीने पानी के आसपास के मैदानो और ऊसरो में कीड-मकोडे, दाने और बीज की तलाश में घूमा करता है। इसके नर-मादा एक रग-रूप के होते है।

कडाकुल ढाई फुट से कुछ कम ही ऊँचा होता है। इसके डैने काले और सारा बदन गदे कलछौंह कत्थई रग का रहता है। इसके कधे के पास दोनो ओर एक-एक सफेद चित्ता रहता है और सिर के ऊपर के कुछ छोटे पर लाल रग के होते हैं। इसकी चोच काफी लबी और आगे की ओर झुकी-झुकी-सी रहती है और पैर बडे और लाल रग के होते है।

काला और सफेद वुज्जा
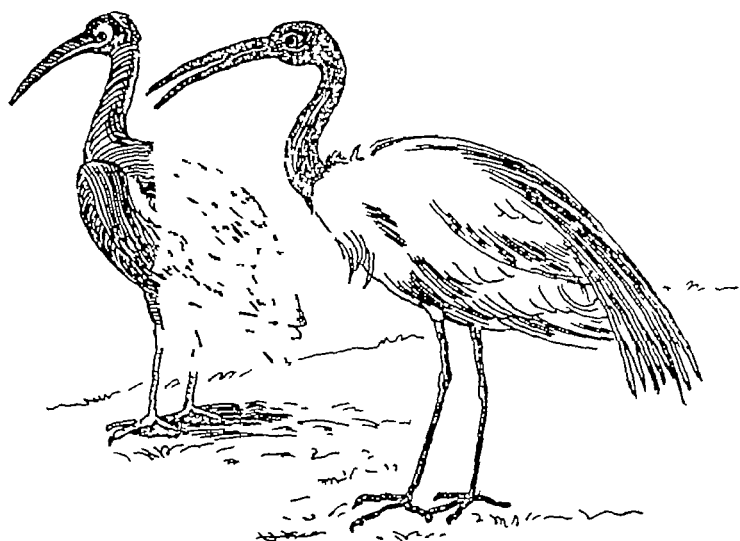
काले वुज्जो को दलदल से ज्यादा सूखे मैदान पसन्द है जहाँ य अक्सर जोडे मे दिखाई पडते है। कभी-कभी इनके छोटे-वडे झुड भी दिखाई पडते हैं जो उडते समय रह रह कर एक प्रकार की कर्कश आवाज करते है। ये रात मे एक ही पेड पर जमा होकर वसेरा लेते हैं जो पानी या वस्ती के निकट रहता है।

इसके जोडा बाँधने का समय मार्च से नवम्बर तक रहता है, जब यह किसी ऊँचे पेड की चोटी पर सूखी टहनियो का गहरा घोसला बनाता है। मादा, समय आने पर, इसमें दो-चार अण्डे देती है जो हलके हरे रग के होते हैं और जिनमे से किसी-किसी पर कुछ चित्तियाँ या धारियाँ पडी रहती हैं।

सफेद बुज्जा

(WHITE IBIS)

सफेद बुज्जा कद में काले बुज्जे से कुछ बडा होता है और इसका रग भी उससे कही साफ और सुन्दर रहता है। यह अपनी सफेद पोशाक, आधे काले सिर और लबी तथा टेढी चोच के कारण आसानी से पहचाना जा सकता है। इसे कही-कही मुडा और हरजोता भी कहते हैं। यह अपना अधिक समय कीचड और दलदलो के आस-पास ही बिताता है।

सफेद बुज्जा हमारे देश के प्राय सभी मैदानी हिस्सो मे पाया जाता है। इसका कद ढाई फुट से कुछ ऊँचा ही रहता है। इसके नर-मादा एक रग-रूप के होते हैं। इसके सिर और गरदन पर बाल नही होते और उनका रग एकदम काला रहता है। बाकी सारा शरीर एकदम सफेद रहता है जिसमे दुम के ऊपर बढे हुए कुछ पर भूरे और सिलेटी रग के रहते हैं। बरसात में ये पर और बडे हो जाते हैं और इसके सीने और गरदन के नीचे के पर भी बढकर लबे हो जाते है। इसकी चोच काफी लबी और आगे की ओर झुकी हुई रहती है और पैर चमकीले काले रग के होते हैं।

सफेद बुज्जे को सूखे मैदान उतने पसन्द नही हैं जितने काले बुज्जे को। यह कीचड के आसपास ही रहना ज्यादा पसन्द करता है और इसे अक्सर धान के खेतो मे मेढको की तलाश में घूमते देखा जा सकता है। कडाकुल की तरह यह अकेले या जोडे मे नही दिखाई पडता बल्कि हमे अक्सर इनके छोटे या बडे झुड ही दिखाई पडते हैं। इसका मुख्य भोजन मेढक, कटुए घोघे और कीडे-मकोडे आदि हैं।

इनके जोडा बाँधने का समय जून से अगस्त तक है जब ये बगुलो, महावको आदि के साथ किसी पेड पर टहनियो का मचाननुमा भद्दा-सा घोसला बनाते हैं। मादा इनमे दो से चार तक निलछौंह या हरछौंह सफेद अण्डे देती है।

दाबिल

(SPOON BILLED IBIS)

दाविल वैसे तो बुज्जा का ही भाई-बन्धु है, लेकिन अपनी चोच की चम्मच-जैसी बनावट के कारण इसकी शकल-सूरत उससे एकदम भिन्न होती है। यह इसी चम्मच-जैसी चोच के कारण कहीं-कही चमचबुज्जा भी कहा जाता है। इसकी यह चपटी चोच इसके बडे काम की होती है। यह पानी में अपनी अधखुली चोच को डुबोकर अपनी गरदन बडी तेजी से दोनो ओर हिलाता है जिससे पानी मे डूबी हुई इसकी चपटी चोच बडी तेजी से इधर-उधर चलने लगती है और पानी के मथ जाने से जो कीडे-मकोडे आदि सतह से ऊपर आकर इसकी चोच के बीच मे आ जाते है वे इसके पेट मे पहुँच जाते है।
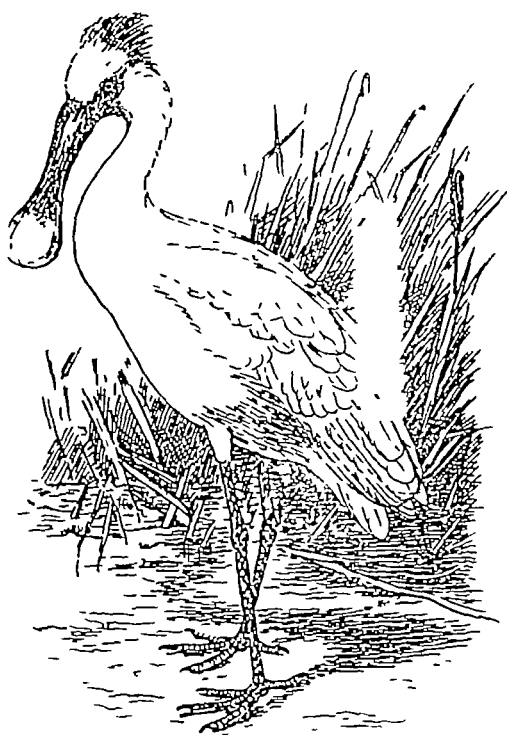
दाविल

दाविल हमारे देश का वारहमासी पक्षी है जो यहाँ के प्राय सभी बडे जलाशयो मे पाया जाता है। यह ऐसे ताल और झील पसन्द करता है जिनमे कीचड काफी हो। यह प्राय गिरोह बाँधकर रहता है। इसे इसकी लबी गरदन, चपटी चम्मच-जैसी चोच तथा दूध-जैसी पोशाक के कारण बडी आसानी से पहचाना जा सकता है। दूर से यह बगुला ही जान पडता है, लेकिन इसकी विचित्र चोच को देखकर इसे बगुले से अलग करना कठिन नहीं होता।

मूंगे की चट्टानोंवाला प्रवालद्वीप

दाविल का कद प्राय ३३ इच का होता है और इसके नर-मादा दोनो एकदम दूध-जैसे सफेद रहते हैं। इसकी चोच सीधी और लबी होती है जिसका सिरा चिपटा और गोल रहता है जैसे किसी ने सिरे पर एक पैसा लगा दिया हो। चोच का रग काला और पीला रहता है, लेकिन पैर बुर काले होते है।

दाविल का मुख्य भोजन घासपात के अलावा मेढक, मछलियाँ और पानी तथा कीचड के कीडे-मकोडे हैं।

दाविल के अण्डा देने का समय अगस्त से नवम्बर तक है, जब इनके गरोह एक साथ मिलकर पानी के किनारे के किसी पेड पर पतली टहनियो के ठडे और मचान की तरह चौरस घोसले बनाते है। मादा इनमे तीन-चार सफेद अण्डे देती है जिन पर गाढी भूरी या कत्थई चित्तियाँ पडी रहती है।

हसावर परिवार

(FAMILY PHOENICOPTERIDAE)

जिस प्रकार हम बुज्जा को बगुला और महाबक के बीच का पक्षी कह सकते है, उसी प्रकार हसावर को महाबक और बत्तख के बीच की चिडिया कहना अनुचित न होगा।

इस परिवार मे केवल हसावर रखा गया है जो अपनी लबी टाँगो और टेढी चोच के कारण जल्द ही पहचान लिया जाता है। यह अपनी गरदन झुकाकर इसी टेढी चोच को छिछले पानी मे डालकर इधर-उधर हिलाता रहता है और अपनी जबान से छोटे-छोटे कीडे वगैरह खाता रहता है। इसकी चोच महाबको की तरह चिकनी नहीं होती बल्कि उस पर बत्तख की चोचो की तरह एक पतली झिल्ली चढी रहती है।

इन पक्षियो के पैर बत्तखो की तरह जालपाद होते है और ये उन्ही की तरह पानी मे अच्छी तरह तैर भी लेते हैं।

हसावर प्राय झुड मे रहते है और एक साथ ही अपने घोसले भी बनाते है। ये घोसले मिट्टी के होते हैं जो जमीन पर छोटे-छोटे ऊँचे टीलो से जान पडते है।

हसावर

(FLAMINGO)

हसावर हस के बरावर तो सुदर नही होते, फिर भी इन्हें कम सुन्दर नही कहा जा सकता। इन्हें कही-कही राजहस भी कहा जाता है, लेकिन इनका हसावर नाम ही अधिक उपयुक्त है। इन्हें इनकी लवी आकृति और टेढी चोच के कारण वडी आसानी से पहचाना जा सकता है।
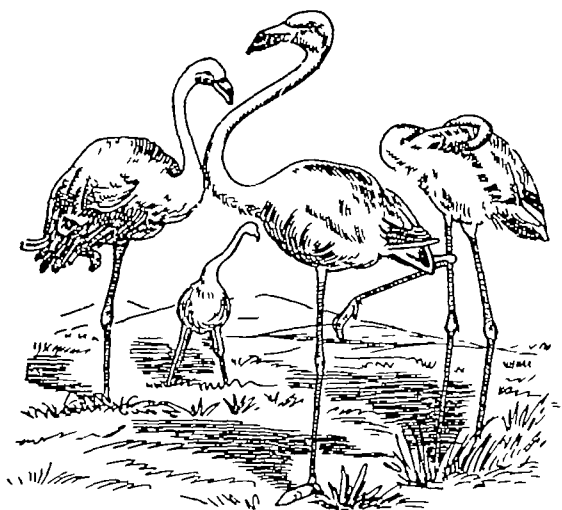
हसावर

हसावर हमारे यहाँ का मौसमी पक्षी है जो हमारे यहाँ जाडो के प्रारभ में पश्चिम की ओर से आकर गरमी शुरू होते-होते यहाँ से फिर उसी ओर वापस चले जाते है। हमारे देश में हसावर पश्चिमी प्रदेशो तक ही आते है और उत्तर प्रदेश तक इनकी वहुत थोडी सख्या पहुँच पाती है।

हसावर सारस से कुछ छोटी, किन्तु उसी तरह की लवी टाँगवाली चिडिया है जिसके नर-मादा एक-जैसे होते है। इसके सिर, गरदन, दुम और वदन का कुल हिस्सा सफेद रहता है जिसमे गुलावी झलक रहती है। इसके डैने का ऊपरी हिस्सा लाल और चोच गुलावी रहती है जिसका सिरा काला होता है। इसकी लवी टाँगे लाल रग की रहती है।

हसावर कीचड में रहना ज्यादा पसन्द करता है जहाँ वह कीडे-मकोडे और काई आदि से अपना पेट भरता रहता है। कीचड में अपना अधिक समय विताने पर भी यह गहरे पानी में किसी वत्तख से कम नही तैरता। यह प्राय झुडो में ही रहता है

और आकाग मे उडते हुए इसका गरोह तीर के फल की गकल वनाकर उडता है। हमारे यहाँ हसावर का, वत्तखो की तरह ही खाने के लिए, शिकार होता है और इसका मांस भी वड स्वाद से खाया जाता है।

मौसमी पक्षी होने के कारण हसावर हमारे देग में अण्डे नही देते। विदेशो मे ये काफी सख्या में पानी के पास किसी निरापद स्थान को चुनकर एक साथ ही मिट्टी के ऊँचे टीले वनाते है जो ऊपर की ओर पोले होते हैं। मादा इन्ही मे कई अण्डे देती है जो रग मे धुमैले सफेद रहते हैं।

जलकाक उपवर्ग

(SUB ORDER STEGANOPODES)

इस उपवर्ग में उन जलपक्षियो को एकत्र किया गया है जिनकी टाँगे छोटी होती है और जो अपना अधिक समय पानी मे ही विताते हैं।

ये सव मछलीखोर पक्षी है लेकिन इनके मछली पकडने का ढग अलग-अलग है। कुछ मछली पकडने में इतने उस्ताद होते हैं कि पानी के भीतर मछलियो की तरह तैर लेते हैं और कुछ अपने भारी-भरकम शरीर के कारण पानी के भीतर ज्यादा देर तक नही रह सकते। ये अपनी लवी चोच के नीचे लटकती हुई वडी थैली मे मछलियो को छान लेते है। इनके पैर की उँगलियाँ आपस में वत्तखो की तरह जुटी रहती हैं जिससे इन्हें पानी में तैरने मे वहुत आसानी हो जाती है।

यह उप-परिवार कई परिवारो मे वाँटा गया है, लेकिन यहाँ केवल दो परिवारो का वर्णन दिया जा रहा है—

१ जलकाक परिवार—Family Phalacrocoracidae

२ जलसिंह परिवार—Family Pelecanidae

पहले परिवार में पनकौआ और वानवर है और दूसरे में हमारे यहाँ के प्रसिद्ध जलसिंह।

जलकाक परिवार

(FAMILY PHALACROCORACIDAE)

इस परिवार के पक्षियो के पैर की सव उँगलियाँ आपस मे एक प्रकार की मजवूत झिल्ली मे जुटी रहती है। ये पानी के भीतर मछलियो की तरह फुर्ती से तैर लेते है

और मछलियाँ ही इनका मुख्य भोजन है। ये उडने मे उतने उस्ताद नही होते जितने तैरने मे और इनका अधिक समय पानी मे ही बीतता है। इनमे से कुछ की चोच सिरे पर मुडी हुई और कुछ की नोकीली रहती है।

इस परिवार मे वैसे तो कई जाति के पक्षी है लेकिन यहाँ केवल दो प्रसिद्ध पक्षियो का वर्णन दिया जा रहा है।

जलकौआ

(CORMORENT)

जलकौआ, जैसा उसके नाम से स्पष्ट है, काले रग का पक्षी है जो अपना अधिक समय पानी मे ही बिताता है। पानी मे यह उसकी ऊपरी सतह पर ही नही रहता बल्कि उसके भीतर भी यह मछलियो की तरह तैरकर अपनी खूराक तलाशता रहता है। इसे हम जलाशयो के किनारे या पानी मे गिरे हुए किसी पेड की डाल पर पख फैलाये हुए बैठे देख सकते है।

जलकौआ हमारे यहाँ का बारहमासी पक्षी है जो हमारे देश के प्राय सभी भागो मे पाया जाता है। यह १० इच लबा पक्षी है जिसके नर-मादा एक-जैसे होते है। इसके सारे बदन का रग काला रहता है जिसमे एक प्रकार की हरी चमक होती है। इसका गला सफेद रहता है और डैने के कुछ पर सिलेटी होते है। जोडा बाँधने का समय आने पर गले की सफेदी गायब हो जाती है, लेकिन कुछ सफेद पर सिर पर निकल आते है और कुछ महीन सफेद पर गरदन के दोनो बगल भी दिखाई पडने लगते है। इसकी चोच लबी होती है जिसका ऊपरी सिरा कुछ टेढा रहता है। चोच का रग भूरा और पैर का कलछाह रहता है। इसके पैर बत्तखो की तरह जालपाद होते है।

जलकौए बडे तालो, झीलो तथा बडी नदियो मे दिखाई पडते है। ये कभी-कभी अकेले या जोडे मे भी दिखाई पड जाते है, लेकिन इन्हे प्राय गिरोहो मे ही देखा जाता है जहा ये या तो पानी मे डुबकी लगाकर मछलियाँ पकडते रहते है या किनारे पर डैने फैलाकर धूप लेते रहते है। पानी की सतह पर तैरते समय बत्तखो की तरह इनका पूरा शरीर पानी के ऊपर नही रहता, बल्कि इनकी गरदन और पीठ का थोडा हिस्सा

भी बाहर निकला रहता है। इनका मुख्य भोजन वैसे तो मछली है, लेकिन ये कभी-कभी मेढको पर भी हाथ साफ कर देते है।

इनके जोड़ा बाँधने का समय जुलाई से सितबर तक है, जब ये हजारो की सख्या मे इकट्ठे होकर एक ही जगह अपने घोसले बनाते है। ये छोटी टहनियो मे अपने

पनकौआ (जलकौआ)

छिछले-से घोसले बनाते है जिनमे मादा चार-पाँच हल्के निलछौंह हरे रग के अण्डे देती है।

बानवर
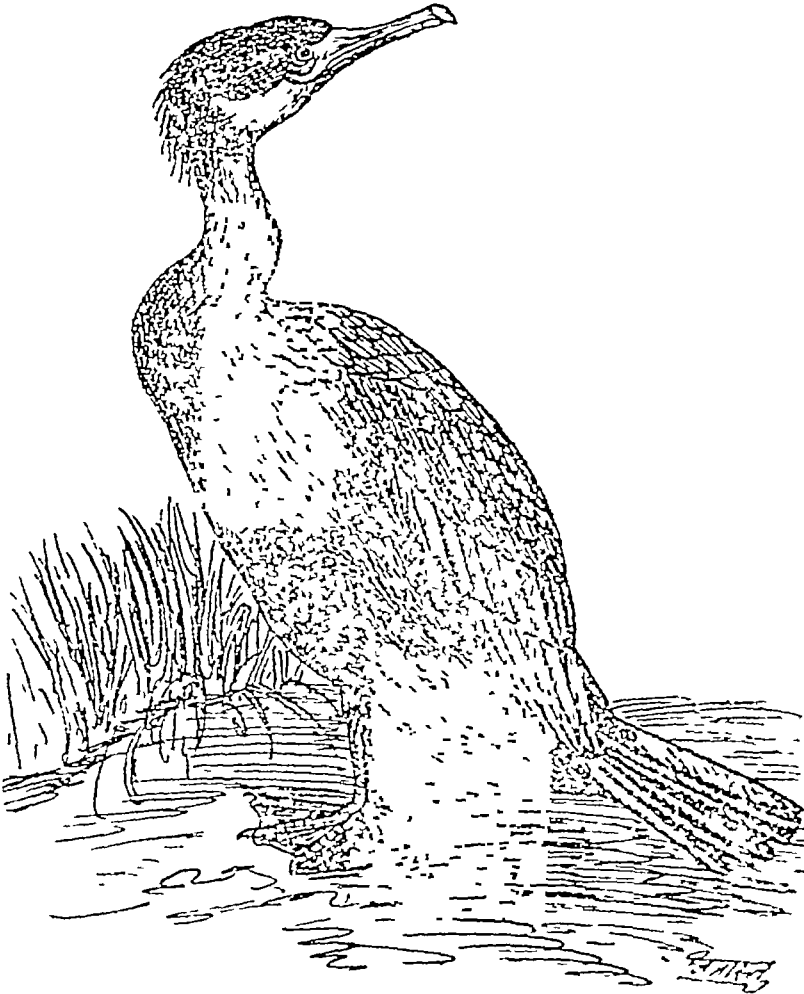
(DARTER)

बानवर जलकौआ का भाई-बन्धु है। इसे कही-कही नागिन भी कहते हैं क्योकि जब यह पानी में तैरता है तो इसका सारा शरीर पानी के भीतर रहता है लेकिन इसकी पतली गरदन, जो दूर से साँप-सी दीख पडती है, पानी के वाहर रहती है। हमारे देश में यह सभी स्थानो में फैला हुआ है और कोई भी तालाब ऐसा नही मिलेगा जहाँ यह शिकार करके किनारे या पानी के बीच किसी ठूंठ पर डैने फैलाये बैठा दिखाई न पडता हो। इसकी साँप-जैसी पतली और लबी गरदन और तेज बरछी-जैसी पतली चोच के कारण इसे पहचानने मे कोई भी दिक्कत नही हो सकती।

बानवर

बानवर हमारे यहाँ का बारहमासी पक्षी है जिसके नर-मादा एक-जैसे होते हैं। इसके शरीर का रग काला रहता है जिसपर सफेद, भूरी और सिलेटी धारियाँ, बिंदियाँ और निशान पडे रहते हैं। इसकी चोच और पैर काले होते हैं। चोच लबी और नोकीली होती है और पैर आधे जालपाद रहते हैं।

बानवर पानी के भीतर मछलियो की तरह तैर लेते हैं। ये कभी कभी अकेले दिखाई पडते हैं और कभी-कभी इनका ५० से १०० तक का गरोह भी रहता है। इनका मुख्य भोजन मछलियाँ हैं, जिनको ये डुबकी लगाकर खदेडते हैं और अपनी बगुले-जैसी तेज चोच से पकड लेते हैं। मछली को पकडकर ये पानी के वाहर अपनी गरदन निकालते हैं और

थोडा-सा झटका देकर मछली को निगल जाते है। इनकी और आदते जलकौए से मिलती-जुलती होती है।

बानवर के जोडा बाँधने का समय जून से अगस्त तक है जब ये काफी सख्या मे एकत्र होकर जलकौओ, बगुलो तथा महावको के साथ अपने घोसले बनाते है। ये घोसले पानी के निकट के किसी पेड पर टहनियो द्वारा मचाननुमा बनाये जाते है। मादा ऐसे ही घोसले मे तीन-चार अण्डे देती है जो हलके हरछाँह नीले रग के होते है।

जलसिह परिवार

(FAMILY PELECANIDAE)

इस परिवार मे केवल जलसिह रखे गये है जो अपने भारी शरीर के कारण अन्य पक्षियो से अलग ही रहते है। ये प्राय झुड मे रहते है और इनकी लबी चोच के नीचे एक बडी-सी थैली लटकती रहती है जो फैलकर काफी बडी हो जाती है। जलसिह के पैर छोटे और जालपाद होते है।

इनका मुख्य भोजन मछलियाँ है जिन्हे ये अपना सिर पानी मे डुबाकर चोच के नीचे की थैली मे छान लेते है।

ये जमीन पर तो कठिनाई से चल पाते है, लेकिन तैरने और हवा मे उडने में उस्ताद होते है। इनकी वैसे तो ८-९ जातियाँ है, लेकिन यहाँ एक प्रसिद्ध जलसिह का वर्णन दिया जा रहा है, जो हमारे देश मे अक्सर दिखाई पडता है।

जलसिह

(PELICAN)

जलसिह को कही-कही हवासिल और कही-कही पीलो भी कहते है। यह हमारे यहाँ का बहुत प्रसिद्ध पक्षी है जो अपने भारी भरकम शरीर के कारण अन्य पक्षियो मे भिन्न रहता है।

इसकी बडी चोच और उसके नीचे लटकती हुई बडी थैली के कारण इसको पहचानने मे जरा भी कठिनाई नही होती। जलसिह हमारे देश मे प्राय सभी ऐसे स्थानो मे रहता है जहाँ बडी-बडी झीलें, ताल और नदियाँ है। यह खुश्की पर इतना भारी शरीर लेकर आसानी से नही चल पाता, इसीलिए इसका ज्यादा समय पानी मे ही बीतता है।

जलसिंह ५ फुट लबा पक्षी है जिसके नर-मादा एक-जैसे होते हैं। इसके शरीर का रग वैसे तो सफेद रहता है, लेकिन इसकी पीठ का पिछला हिस्सा दुमगजा, डैने और दुम के नीचे का कुछ हिस्सा गुलाबी रहता है। इसके चोटी और पीठ पर के बडे पर भूरे रहते हैं और डैने की उडान के कुछ पर कलछौंह रहते हैं। सकी दुम राखीपन लिये भूरे रग की रहती है। इसकी चोच ललछौंह पीले रग की और पैर गाढे रहते हैं।
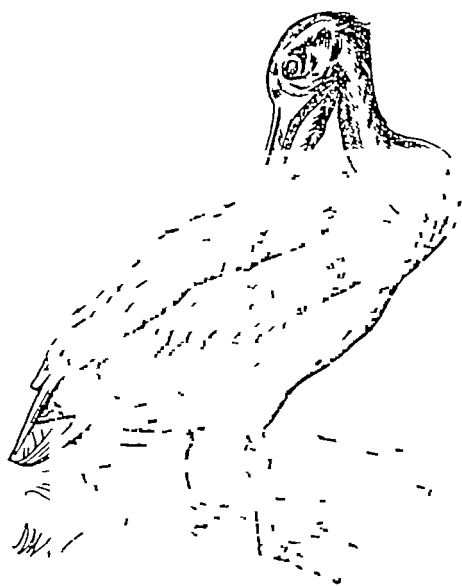
जलसिंह

इनका जलसिंह नाम बहुत उचित रखा गया है क्योकि तालाबो और मछलियो से भरी झीलो मे जव इनका गोल पहुँचता है तो फिर वहाँ इन्ही का एकच्छत्र राज्य हो जाता है और थोडे ही दिनो में ये तालाब को साफ कर देते हैं।

जलसिंह हमारे यहाँ का बारहमासी पक्षी है जिसे अपने भारी शरीर के कारण हवा मे उडने मे कठिनाई जरूर होती है, लेकिन एक वार ऊपर उठ जाने पर यह वडी खूबी मे उडता है। यह तैरने मे वहुत उस्ताद होता है लेकिन पानी में वानवर अथवा जलकौए की तरह डुवकी नही लगा सकता। इसके मछली पकडने क। ढग सवसे निराला है। इसकी ऊपरी चोच तो लवी, चपटी और सिरे पर मुडी रहती है, लेकिन नीचे को चोच लचीली होती है जिसमें एक वडी-सी थैली लटकती रहती है जो आवश्यकतानुसार वढ जाती ह। अपनी इमी वडी थैली को नीचे करके यह उससे मछलियो को उसी तरह छान-फॅमा लेता है जैसे छोटे जाल से मछलियो को मछुए छान लेते है। इसका मुख्य भोजन मछलियाँ है।

जलसिंह मई-जून में जोडा वाँधते हैं। हमारे देश में केवल मद्रास प्रदेश में ही

इनके घोसले देखे जा सकते हैं जो किसी ऊँचे पेड पर सूखी टहनियों से बनाये जाते हैं। एक पेड पर इनके ८-१० घोसले रहते है जिनमे मादा तीन अण्डे देती है। ये अण्डे पहले तो सफेद रहते हैं, लेकिन कुछ दिन बाद भूरे या कलछौंह हो जाते हैं।

हस वर्ग

(ORDER ANSIRIFORMES)

यह वर्ग काफी बडा है जिसमें सब प्रकार के हस और छोटी-बडी बत्तखे रखी गयी हैं।

हस और बत्तखें यद्यपि बक और महाबको के भाई-बन्धु है, लेकिन छिछले पानी और कीचड मे अपना सारा समय बिताने के कारण जिस प्रकार बको और महाबको की टाँगे लबी हो गयी हैं, उसी तरह अधिकतर पानी मे रहने के कारण बत्तखो की टाँगें छोटी और जालपाद हो गयी है।

यह वर्ग वैसे तो दो उपवर्गो मे बाँटा गया है, लेकिन इसका एक उपवर्ग बहुत छोटा है और उसमे छोटी जाति के विदेशी पक्षी हैं। इसलिए यहाँ केवल दूसरे हस-उपवर्ग का ही वर्णन दिया जा रहा है।

हस उपवर्ग

(SUB ORDER ANSERES)

हस-उपवर्ग मे सब प्रकार की बत्तखे और हस रखे गये हैं जो अपना सारा समय करीब-करीब पानी मे ही बिताते हैं। इसीलिए ये सब जालपाद होते हैं और इनकी टाँगे छोटी होती है। अपनी छोटी टाँगो के कारण इनको खुश्की पर चलने मे कठिनाई जरूर होती है, लेकिन हवा मे ये बडी तेजी से उड लेते हैं। इनकी उडान बहुत ऊँची होती है और उडते समय ये तीर के फल की शकल बनाकर उडते हैं।

इनमे ज्यादा पक्षी तो शाकाहारी हैं जो घासपात से अपना पेट भरते है, लेकिन थोडे ऐसे भी हैं जो मछली आदि खाते हैं। मुख्य भोजन घासपात होने के कारण बत्तखों और हसो की चोच की बनावट इस प्रकार की होती है कि उन्हे इस काम मे आसानी हो जाय। उनकी चोच और जबान के किनारे दाँतेदार रहते हैं जिससे घास-पात

फिसल न जाय और ये उन्हें आसानी से नोच सकें। चोच के ऊपरी हिस्से पर एक प्रकार का खोल चढा रहता है जिसका सिरा बहुत कडा और नोकीला रहता है।

इस उपवर्ग में एक ही परिवार है जो हस-परिवार कहलाता है।

हस-परिवार

(FAMILY ANTIDAE)

हस-परिवार मे हस, बतें और सब प्रकार की छोटी-बडी वत्तखें आती हैं जिनकी विशेपताओ का वर्णन ऊपर हो चुका है।

हस अपनी लबी गरदन और सुन्दर शरीर के कारण पक्षियो का राजा माना जाता है। हमारे देश में हस बहुत कम आते हैं। इनकी दो-एक जातियाँ कश्मीर या नेपाल तक कभी-कभी पहुँच जाती है, लेकिन इससे आगे इन्हें नही देखा जा सकता।

हसो की ८-१० जातियाँ ससार भर में पायी जाती हैं जिनमें ज्यादा सख्या सफेद हसो की ही है। एक जाति काले और दूसरी जाति चितकबरे हसो की भी है, लेकिन ये सब विदेश के पक्षी हैं।

हस पानी के भीतर नही तैरते, लेकिन वे अपनी लबी चोच पानी के भीतर डालकर घासफूस की जडे, कटुए, सूतियाँ और पानी के कोडे-मकोडे खाया करते हैं। यहाँ केवल एक हस का वर्णन दिया जा रहा है।

वतें हस से छोटी होती है, लेकिन इनका कद वत्तखो से वडा होता है। इनकी वनावट वत्तखो की तरह न होकर हसो से ज्यादा मिलती-जुलती रहती है और उनकी गरदन भी काफी लवी रहती है। वतो की चोच जड से आगे की ओर काफी ढलुई रहती है और उनके किनारे काफी कडे और कटावदार रहते हैं। ये ज्यादातर पानी में रहती है, लेकिन दिन को और चराई के समय इन्हे रेत या जलाशयो के किनारे के खेतो में भी देखा जा सकता है।

वतो की वैसे तो कई जातियाँ है, लेकिन यहाँ उनमें से केवल दो वतो का ही वर्णन दिया जा रहा है जो हमारे यहाँ प्रतिवर्प जाडे के मौसम में लाखो की सख्या में आती है।

वत्तखो का कद हस और वतो से छोटा होता है। इनको दो भागो मे बाँटा जा सकता है। पहली में वे वत्तखें है जो वतो और हसो की तरह पानी के भीतर नहीं तैरती और पानी के ऊपर ही तैरकर अपना पेट भरती रहती हैं और दूसरी वे वत्तखें

हैं जो पानी के भीतर पनडुब्बियो अथवा जलकौओ की तरह तैरने मे उस्ताद होती हैं। इनमें बुडार और लालसर आदि मुख्य हैं।

हस

(MUTE SWAN)

हस हमारे यहाँ का सबमे सुन्दर पक्षी है जिसके वर्णन से हमारा साहित्योद्यान भरा पडा है। इसकी वैसे तो कई जातियाँ हैं, लेकिन हमारे देश मे केवल मूक हस जाडे में कश्मीर के आसपास आकर फिर वहीं से वापस चला जाता है ।

यह सुन्दर पक्षी हमारे देश का मौसमी पक्षी है जो यहाँ उत्तर की ओर से रावल-पिंडी और सिंध होकर कश्मीर तक आ जाता है। इसके आगे फिर इसके आने का कोई प्रमाण नही मिलता।

इस हस की लबाई करीब पाँच फुट रहती है जिसके दोनो डैनो का फैलाव सात फुट तक पहुँच जाता है। इसका वजन भी नौ-दस सेर तक हो जाता है । इसके नर-मादा एक रगरूप के रहते हैं,लेकिन हस हसिनी से कुछ बडा होता है और उसकी ऊपरी चोच की जड के पास, प्रौढ होने पर, एक कुब्बक-सा निकल आता है।
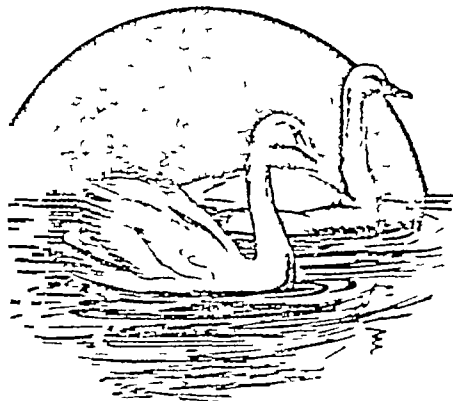
मूक हस

हस का रग दूध-सा सफेद रहता है, लेकिन ज्यादा उम्र हो जाने पर इसकी पीठ पर हलका बादामी रग फैल जाता है। इसकी चोच नारगी रग की होती है, लेकिन उसकी नोक, ऊपरी चोच के किनारे और चोच की जड काली रहती है। पैर भी काले ही रहते हैं।

हस, जैसा कुछ लोगो का विश्वास है, मोती नही चुगते बल्कि अन्य बटी बतो की तरह घास-फूस और काई आदि खाते हैं। इनमे दूध-पानी के अलग करने की भी क्षमता नही होती ।

इनके अण्डा देने का समय, अन्य बतो की तरह, मई से जुलाई के बीच रहता है।

बडी बत

(GREY LAG GOOSE)

बडी बत सवन से कद में कुछ बडी होती है लेकिन इनकी सवन से कम सख्या हमारे देश में आती है। सवन की तरह यह भी हमारे यहाँ की मौसमी चिडिया है जो यहाँ जाडो के प्रारभ में उत्तर की ओर से आकर जाडा समाप्त होने पर फिर उसी ओर लौट जाती है। यह ढाई फुट से कुछ लबी होती है और इसके नर-मादा एक रग-रूप के रहते हैं।

बडी बत

बडी बत का ऊपरी हिस्सा गाढा कत्थई रहता है जिसमें पीठ का पिछला हिस्सा राखी रहता है। इसका सीना और पेट का अगला हिस्सा राखीपन लिये सफेद रहता है जिस पर कत्थई पटरियाँ पडी रहती हैं। पेट का निचला हिस्सा सफेद रहता है। इसका सिर और गरदन कत्थई रहती है और पख काले रहते है, चोच हलकी गुलाबी और पैर घुमैले लाल रग के रहते है।

वते भी सवन की तरह गिरोहो मे रहती है और उन्ही की तरह ये तालावो मे ज्यादा वडी नदियो का किनारा पसन्द करती है जहाँ के कछारो के खेतो मे इनकी चराई शाम होते ही शुरु हो जाती है। रात भर चक्कर मारे दिन रेत या किसी टापू पर इनका झुड वैठा ऊंघा करता है। इनका मुख्य भोजन घासपात और फसल के नरम कल्ले हैं।

वडी वतो का भी, सवन की तरह, हमारे यहाँ काफी शिकार होता है। इनका मास रूखा और मामूली होता है। ये वजन मे करीव साढे तीन सेर की होती है।

हमारे यहाँ की मौसमी चिडिया होने के कारण वते इस देश मे अण्डे नही देती। इनके अण्डा देने का स्थान साइवेरिया और मगोलिया है, जहाँ मादा नरकुल और खर-पतवार के वीच घास-फूस का सुन्दर घोसला वनाकर १०-१२ अण्डे देती है, जिनका रग पिलछौंह सफेद रहता है।

सवन

(BARRED HEADED GOOSE)

सवन हमारे देश की सवसे प्रसिद्ध वत है जिसे सोन, काज और कलहस भी कहा जाता है। शकल-सूरत और शरीर की वनावट मे हसो की तरह होकर भी यह कद मे उनसे छोटी होती है। इसके राखी रग और माथे पर की दो काली पट्टियो से इसे वडी आसानी से पहचाना जा सकता है।

सवन हमारे यहाँ की मौसमी चिडिया है जो हमारे यहाँ जाडो के प्रारभ मे उत्तर की ओर से आकर जाडा समाप्त होते-होते फिर उसी ओर वापस चली जाती है। इसके नर-मादा एक-जैसे होते है। सवन लगभग ढाई फुट लवी सुन्दर

सवन

चिडिया है, जिसके शरीर का ऊपरी हिस्सा राख के रग का और नीचे का सफेद रहता है। इसकी पीठ और कधो पर पिलछौंह सफेद धारिया पडी रहती है और सफेद

बडी बत

(GREY LAG GOOSE)

बडी बत सवन से कद मे कुछ बडी होती है लेकिन इनकी सवन से कम सख्या हमारे देश मे आती है। सवन की तरह यह भी हमारे यहाँ की मौसमी चिडिया है जो यहाँ जाडो के प्रारभ मे उत्तर की ओर से आकर जाडा समाप्त होने पर फिर उसी ओर लौट जाती है। यह ढाई फुट से कुछ लबी होती है और इसके नर-मादा एक रग-रूप के रहते हैं।

बडी बत

बडी बत का ऊपरी हिस्सा गाढा कत्थई रहता है जिसमें पीठ का पिछला हिस्सा राखी रहता है। इसका सीना और पेट का अगला हिस्सा राखीपन लिये सफेद रहता है जिस पर कत्थई पटरियाँ पडी रहती हैं। पेट का निचला हिस्सा सफेद रहता है। इसका सिर और गरदन कत्थई रहती है और पख काले रहते हैं, चोच हलकी गुलाबी और पैर धुमैले लाल रग के रहते हैं।

वते भी सवन की तरह गिरोहो मे रहती है और उन्ही की तरह ये तालावो मे ज्यादा वडी नदियो का किनारा पसन्द करती है जहाँ के कछारो के खेतो मे इनकी चराई शाम होते ही शुरू हो जाती है। रात भर चक्कर मारे दिन रेत या किसी टापू पर इनका झुड वैठा ऊँघा करता है। इनका मुख्य भोजन घासपात और फसल के नरम कल्ले है।

वडी वतो का भी, सवन की तरह, हमारे यहाँ काफी शिकार होता है। इनका मास रूखा और मामूली होता है। ये वजन मे करीव साढे तीन सेर की होती है।

हमारे यहाँ की मौसमी चिडिया होने के कारण वते इस देश में अण्डे नही देती। इनके अण्डा देने का स्थान साइवेरिया और मगोलिया है, जहाँ मादा नरकुल और खर-पतवार के वीच घास-फूस का सुन्दर घोसला वनाकर १०-१२ अण्डे देती है, जिनका रग पिलछौंह सफेद रहता है।

सवन

(BARRED HEADED GOOSE)

सवन हमारे देश की सवसे प्रसिद्ध वत है जिसे सोन, काज और कलहस भी कहा जाता है। शकल-सूरत और शरीर की वनावट मे हसो की तरह होकर भी यह कद मे उनसे छोटी होती है। इसके राखी रग और माथे पर की दो काली पट्टियो से इसे वडी आसानी से पहचाना जा सकता है।

सवन हमारे यहाँ की मौसमी चिडिया है जो हमारे यहाँ जाडो के प्रारभ मे उत्तर की ओर से आकर जाडा समाप्त होते-होते फिर उसी ओर वापस चली जाती है। इसके नर-मादा एक-जैसे होते है। सवन लगभग ढाई फुट लवी सुन्दर

सवन

चिडिया है, जिसके शरीर का ऊपरी हिस्सा राख के रग का और नीचे का सफेद रहता है। इसकी पीठ और कधो पर पिलछौंह सफेद धारियाँ पडी रहती है और सफेद

सिर पर आँखो के पीछे दो काली पट्टियाँ रहती है। डैने भूरे होते है जिनके सिरे काले रहते है और दुम पिलछौंह राखी रहती है। इनका सीना सफेदी मायल भूरे रग का, चोच पीली और पैर गुलावी रहते है।

सवन झुड मे रहनेवाली चिडिया है जिसे तालाबो से ज्यादा वडी नदियो का पास-पडोस पसन्द है, जहाँ कछारो के खेतो मे इनका गरोह शाम होते ही चराई के लिए पहुँच जाता है। ये दिन मे प्राय रेत मे बैठी दिखाई पडती है। सवन हमारे यहाँ की प्रसिद्ध शिकार की चिडिया है, जिसका हमारे यहाँ काफी सख्या मे प्रतिवर्ष शिकार होता है। इसका मास रूखा और मामूली होता है और वजन मे यह करीब तीन सेर की होती है। सवन का मुख्य भोजन घास-पात, काई और फसल के नरम कल्ले है।

मोसमी चिडिया होने के कारण सवन हमारे यहाँ अण्डे नही देती। इनके घोसला बनाने का स्थान साइबेरिया तथा मगोलिया है, जहाँ ये घास और नरकुलो के बीच अपना घास-फूस का घोसला बनाती है। मादा उसमे १०-१२ अण्डे देती है जो पिल-छौह सफेद रहते है।

नीलसर
(MALLARD)

नीलसर हमारे यहाँ की वहुत सुन्दर और प्रसिद्ध बत्तख है जो अपनी निलछौह गाढे हरे रग की गरदन के कारण अन्य बत्तखो से एकदम भिन्न रहती है। मादा नर से कुछ छोटी होती हे। इसके नर दो फुट लवे होते है जिनका वजन करीव डेढ सेर रहता है। इसका सिर और गरदन का ऊपरी आधा हिस्सा गाढा चमकीला हरा रहता है जिसमे नीलेपन की झलक रहती हे। गरदन का निचला हिस्सा भूरी लकीरो से भरा रहता हे जो वीच मे एक सफेद कठे से अलग रहता है। पीठ भूरी चितली रहती हे और दुम के पास का कुछ हिस्सा हरा रहता हे। डैने के पर भूरे चितले और गाढे नीले रग के होते है और दुम राखी, भूरी रहती है जिसके वीच के चार पर ऊपर की ओर घूमे-घूमे रहते है। सीना और छत्ता गाढा भूरा या कत्थई और पेट राखीपन लिये सफेद रहता हे। मादा का सारा ऊपरी हिस्सा भूरा, परो के किनारे हलके कत्थई, सिर और गरदन सदली जिसमे कलछौह लकीरे रहती है, सीना और निचला हिस्सा

पिलछौंह भूरा रहता है जो कत्थई चित्तियाँ और लकीरों से भरा रहता है। इसकी चोंच का अगला हिस्सा हरापन लिये राखी और निचला पिलछौंह रहता है। पैर नारंगी रंग के होते हैं।

नीलसर प्राय ८-१० के गोल मे रहते हैं लेकिन अण्डा देने का समय निकट आने पर ये जोडे मे रहने लगते हैं। इनकी चराई का वक्त रात है और दिन को इन्हे भी सवनो की तरह किनारे पर ऊँघते देखा जा सकता है। ये जमीन पर चलने, पानी में डुबकी लगाने और हवा में उडने में बडे उस्ताद होते हैं। इनका मुख्य भोजन पानी के नरम पौधे, जडें, कीडे-मकोडे और छोटी मछलियाँ हैं।
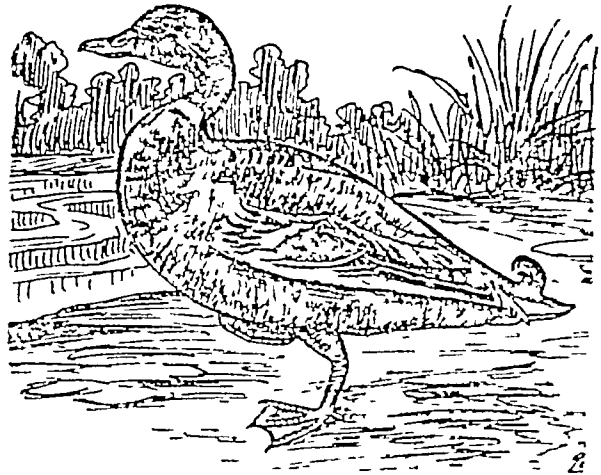
नीलसर

नीलसर की काफी बडी संख्या गरमियो मे कश्मीर की झीलो मे रह जाती है जहाँ ये मई-जून मे घास-फूस का घोसला बनाते हैं जिसमे मादा ९-१० अण्डे देती हैं। ये अण्डे हरे रंग के होते हैं।

सीखपर
(PINTAIL)

सीखपर हमारे यहाँ की बहुत प्रसिद्ध बत्तख है जो चैनी के बाद सबसे अधिक संख्या मे प्रतिवर्ष हमारे देश मे आती है। इसको कही-कही पुछार भी कहा जाता है। यह हमारे यहाँ की मौसमी बत्तख है जो हर साल जाडो के प्रारंभ मे यहाँ आकर गरमियो के शुरू मे यहाँ से फिर उत्तर की ओर लौट जाती है। इसकी दुम के पीछे दो सीक-जैसे नोकीले पर निकले रहते हैं जिनसे इसे पहचानने मे कठिनाई नही होती।

इसके नर-मादा का रंग-रूप भिन्न रहता है और मादा कद मे नर से कुछ छोटी रहती है। नर का सिर और गरदन हल्का कत्थई रहता है, जिसमे कान के पास हरी

और बैगनी चमक हाती है। इनकी पीठ पतली काली और कत्थई धारियो से भरी रहती है और डैने काले रहते है। दुम भूरी और सीकनुमा बटे हुए दोनो पर काले होते है। सीना और पेट सफेद रहता है, लेकिन बगली हिस्से मे कलछौंह लकीरें पडी रहती है। पेट का निचला हिस्मा कजई चित्तियो से भरा रहता है। मादा का सिर और गरदन कत्थई, जिसमे धुमैली लकीरे, ऊपरी हिस्सा केसरिया भूरा और निचला हलका भूरा रहता है। निचले हिस्से में घनी भूरी चित्तियाँ पडी रहती है। इनकी चोच काली और टाँग गाढ सिलेटी रहती है।
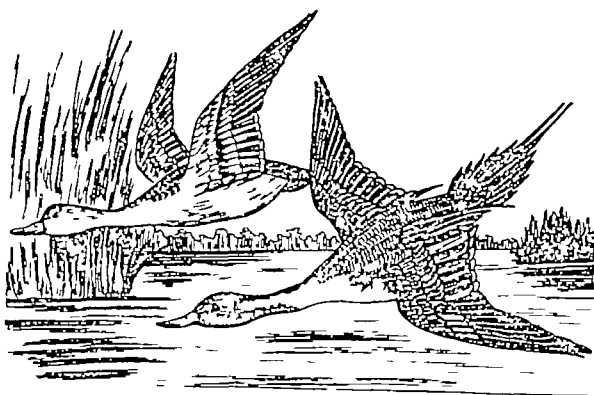
सीखपर

सीखपर जाडो मे हमारी वडी झीलो और तालो मे काफी सख्या मे फैल जाते हैं, जहाँ से वे रात मे सब तरह के ताल-तलैयो मे चराई के लिए जा कर दिन मे फिर उन्ही वडी झीलो मे लौट आते है जहाँ का पानी साफ रहता है।

मीखपर प्राय २०-२५ के गिरोह से सौ दो सौ तक के झुड मे रहते है। ये उडने और तैरने में वहुत उस्ताद होते है। इनका मुख्य भोजन धान और घास-फूस वगैरह है। इसके अलावा ये कीडे-मकोडे और कटुए घोघे भी खा लेते है। इनका मास सब वत्तखो से अधिक स्वादिष्ठ होता है और इसी लिए इनका यहाँ काफी शिकार भी होता है।

ये मौसमी वत्तखें है जो हमारे देश मे अण्डे न देकर उत्तर एशिया के भागो में अण्डे देती है। अण्डा देने का समय मई-जून है जब ये घास-फूस का घोसला बनाते है जो घने नरकुलो के दलदलो में जमीन पर रखे रहते है। मादा इसमें ७-८ पिलछौंह रग के अण्डे देती है।

चैती

(TEAL)

चैती हमारे यहाँ की छोटी मौसमी बत्तखो मे सबसे प्रसिद्ध है जो हमारे देश में सबसे अधिक सख्या मे आती है। यह जाडो के प्रारभ मे यहाँ आकर जाडा खतम होते-होते यहाँ से उत्तर की ओर वापस चली जाती है। इसे छोटी मुरगाबी भी कहते है और इससे शायद ही कोई ऐसा शिकारी होगा जो परिचित न हो। इसकी आँख पर की चौडी हरी पट्टी और डैने पर की पिलछौह हरी और काली तिरगी पट्टियो के कारण इसे पहचानने में जरा भी दिक्कत नही होती।

चैती करीब १५ इच की छोटी बत्तख है जिसके नर-मादा का रग-रूप एक-जैसा नही रहता। नर का सिर और गरदन कत्थई रग की होती है जिसमें आँखो पर से दोनो ओर एक-एक चौडी हरी पट्टी पडी रहती है जिसके किनारे पीली धारी रहती है, पीठ और बदन के दोनो बगल का हिस्सा पतली-पतली काली और सफेद धारियो से भरा रहता है, डैने भूरे होते है जिन पर पिलछौह हरी और काली पट्टी पडी रहती है।

चैती

इसकी दुम भूरी तथा सीना और पेट सफेद रहता है, लेकिन सीने पर काली और सिलेटी चित्तिया भरी रहती है।
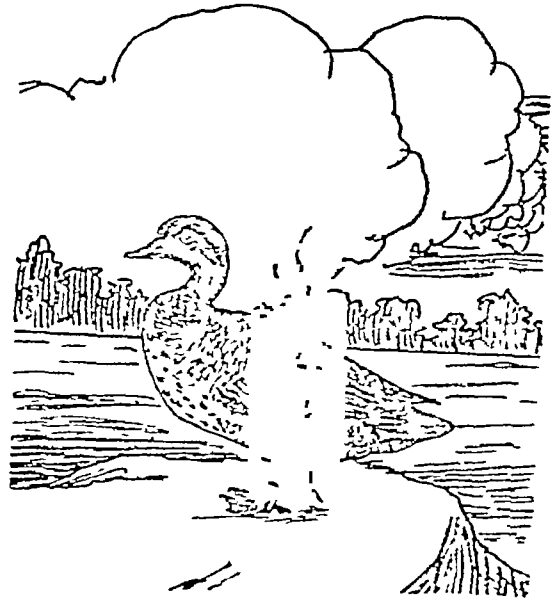
मादा का सारा ऊपरी हिस्सा भूरे रग का होता है, लेकिन डैने और नीचे का हिस्सा नर की तरह रहता है। सीने पर काली चित्तियो की जगह भूरी चित्तिया ले लेती है और सिर भी भूरी चित्तियो से भरा रहता है। इसकी चोच गहरी सिलेटी और पैर भूरापन लिये सिलेटी रंग के होते है।

चैती हमारे यहाँ सब तरह के ताल-तलैयो, नदियो, झीलो, नहरो तथा वरसात मे पानी से भरे हुए गढो मे दिखाई पडती है और इनसे हमारे सभी जलाशय भरे रहते है। ये वैसे तो ४-६ के छोटे-छोटे गरोहो मे रहती है लेकिन वडे तालो और झीलो मे इनके सैकडो के झुड दिखाई पड जाते है। ये जलाशयो के किनारे छिछले पानी मे अक्सर चरती दिखाई पडती है ओर रात मे पानी के आस-पास के धान के खेतो मे चरने चली जाती है। इनका मुख्य भोजन घास-पात, धान, नरम कल्ले, दाना और सेवार आदि है, लेकिन ये कीडे-मकोडे ओर घोघे-कटुए आदि भी खाती है जिनको ये कीचड मे अपनी चोच गडाकर पकडने मे काफी समय लगाती है। इनकी उडान बहुत तेज होती हे और ये पानी पर उतरने से पहले हवा मे काफी गिरहवाजी दिखाती है। इनका मास वहुत स्वादिप्ठ होता हे।

चैती के जोडा वॉधने का समय अप्रॅल से जून तक रहता हे, लेकिन ये हमारे देश मे अण्डे नही देती। इनका घोसला घास-फूस का होता हे जो घास और नरकुलो के वीच पानी के किनारे जमीन पर रखा रहता हे। मादा इसमे ८ से १२ तक अण्डे देती है जो हलके वादामी या सदली रग के होते है।

नकटा

(COMB DUCK)

नकटा हमारे यहाँ की प्रसिद्ध वारहमासी वडी वत्तख हे जो हमारा देश छोडकर कही वाहर नही जाती। इसे पेड की वत्तख भी कहा जाता हे क्योकि यह अपना काफी समय ताल-तलैयो के किनारे के पेडो पर व्यतीत करती हे। यह हमारे देश मे प्राय सभी जगह पायी जाती हे लेकिन ऊँचे पहाड इसे पसन्द नही है। इसे इसकी काली पीठ, चित्तीदार गरदन ओर चोच पर उठे हुए कुव्वक के कारण पहचानने मे ज्यादा दिक्कत नही होती।

नकटा ३० इच का पक्षी है जिसके नर और मादा रग-रूप मे करीव-करीव एक-जैसे होते है। नर का ऊपरी हिस्सा काला रहता हे, जिसमे हरी ओर नीली झलक रहती है। पीठ का निचला हिस्सा गहरे भूरे रग का रहता हे और सीना और नीचे का कुल हिस्सा सफेद होता है। सिर और गरदन सफेद रहती हे जिस पर काली चित्तियाँ पडी रहती है। मादा कद मे कुछ छोटी होती हे और उसकी चोच पर नर की तरह कुव्वक नही उठा रहता। उसके सिर ओर गरदन पर ज्यादा चित्तियाँ रहती है।

नकटा की चोच गहरे भूरे रग की और पैर हरछौंह सिलेटी रग के रहते है । नर की चोच के ऊपर एक कुब्बक-सा उठा रहता है जो चोच के ही रग का होता है।
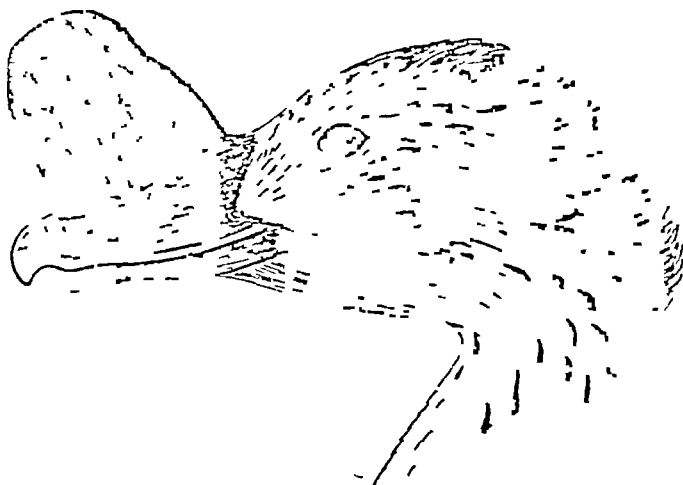
नकटा

नकटा को ऐसे जलाशय ज्यादा पसन्द है जिनमे बीच-बीच मे घास और नरकुल हो। ये प्राय ४ से २० तक के गरोह मे दिखाई पड़ते है लेकिन कभी-कभी इनके बड़े-बड़े झुड भी देखे जाते है। जोड़ा बॉधने के समय ये जोड़े मे हो जाते है लेकिन उसके बाद फिर इनका गरोह बन जाता है। ये तैरने और डुबकी लगाने मे तो उस्ताद होते ही है, साथ ही साथ खुश्की पर चलने मे और पेड़ो पर बसेरा लेने मे भी माहिर होते है। इनका मुख्य भोजन तो घास-पात, धान और काई, सेवार आदि है, लेकिन ये मेढक, मछली और कीड़े-मकोड़े भी खा लेते है। इनका मास मामूली किस्म का होता है।

बरसात मे ये पानी के किनारे के किसी पेड पर या खोखले तने मे अपना घास-फूस का घोसला बनाते है जिसमें मादा १०-१२ अण्डे देती है। ये अण्डे मटमैले सफेद रहते है जिन पर एक प्रकार की चमक होती है।

सुरखाब

(RUDDY SHELDRAKE)

सुरखाब के बहुत-से नाम हमारे यहां प्रसिद्ध है। ये चक्रवाक, चकई, कोक भी कहलाते है और हमारे साहित्य मे कवियो ने इनका नाम अमर कर दिया है।

सुरखाव हमारे यहाँ की प्रसिद्ध मौसमी वत्तख है जो जाडो में तालावो के अलावा नदियो में भी काफी सख्या में दिखाई पडती है। यह भी हमारे यहाँ शुरू जाडे में बाहर से आकर गरमी शुरू हो जाने पर यहाँ से उत्तर की ओर लौटता है। अन्य वत्तखो की अपेक्षा ये ढीठ होते है और अक्सर इनके जोडे बस्तियो के निकट के जलाशयो में तैरते दिखाई पडते हैं। इन्हें इनके नारगी रग की पोशाक के कारण वडी आसानी से पहचाना जा सकता है।

सुरखाब
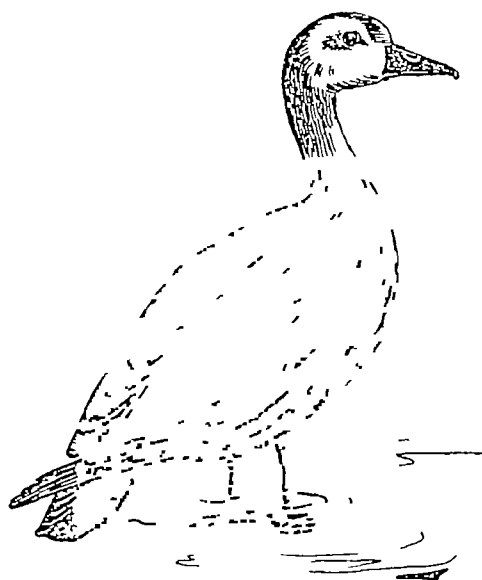
सुरखाव दो फुट लम्बा पक्षी है जिसके नर-मादा के रग-रूप मे थोडा ही भेद रहता है। नर के सारे बदन का रग सुनहरा या नारगी भूरा होता है, लेकिन सिर और गरदन वादामी रहती है। इसकी गरदन के चारो ओर काला कठा रहता है और पीठ का पिछला हिस्सा और दुम काली रहती है। इसके डैने का सिरा काला, बीच का हरा और नीचे का हिस्सा हलके खैरे रग का होता है। मादा का रग नर से कुछ हलका रहता है और उसके गले में नर की तरह काला कठा नही रहता। इसकी चोच और पैर काले होते है।

सुरखाव हमारे यहाँ जाडो में दक्षिण भारत को छोडकर सारे देश मे फैल जाता है और यहाँ से सवसे वाद वत्तखो के वापस होता है। यह वैसे तो जोडे में रहता है, लेकिन कभी-कभी इसके वडे झुण्ड भी दिखाई पडते है जो छिछले पानी के किनारे या रेतो पर दिन में आराम करते रहते है।

इनका मुख्य भोजन वैसे तो घास-पात, गल्ला, जडें और सेवार आदि है, लेकिन ये छोटी मछलियाँ और घोघे-कटुए आदि भी खाते है। कुछ लोगो का विश्वास

है कि ये मुर्दो का सडा मास भी खाते है। इनका माम मामूली और विमैंवा होता है।

सुरखाव भी मौसमी पक्षी होने के कारण हमारे देश मे कश्मीर को छोडकर और कही अण्डा नही देता। यह अण्डा देने के लिए घोमला वनाने का कष्ट नही उठाता और इसकी मादा पहाड के सूराखो मे जमीन को घास-फूस से नरम करके मई-जून मे ८-१० अण्डे देती है, जो पिलछोह या गदे मफेद होते है।

चकवा का एक और निकट सम्वन्धी पक्षी हमारे यहाँ उत्तरी भारत तक जाडो मे आता है जिसे शाह-चकवा (Sheldrake) कहते है। यह वहुत ही सुन्दर पक्षी है और इसको पहचानने मे तनिक भी कठिनाई नही होती। यह वहुत कम सख्या मे हमारे यहाँ आता है और इसी कारण यह हमको वहुत कम दिखाई पडता है। इसके वदन का रग मफेद रहता है जिस पर हरी, काली और कत्थई पट्टियाँ पडी रहती है। इसकी और सव आदते सुरखाव या चकवे से मिलती-जुलती होती है।
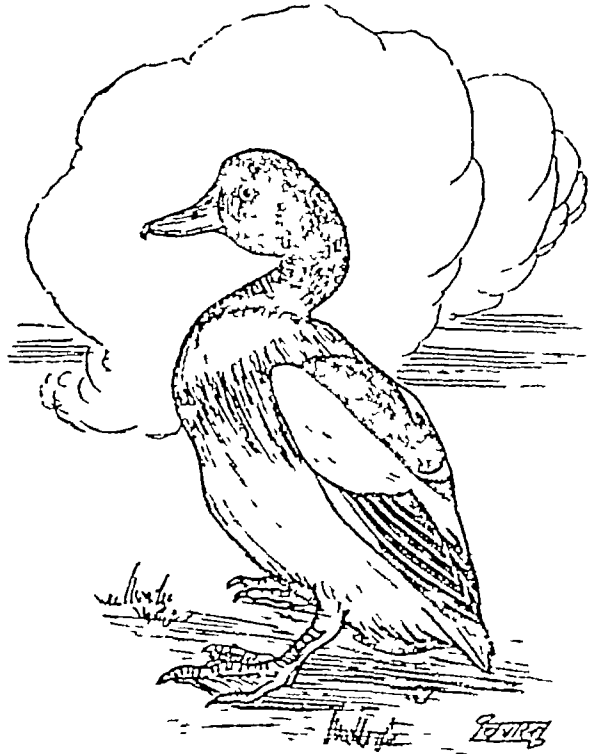
शाह चकवा

तिदारी

(SHOVELLER)

तिदारी भी हमारे यहा की मौसमी वतख है जो हमारे यहाँ शीतकाल के प्रारम्भ मे आकर जाडा खतम होते-होते यहाँ से वापस चली जाती है। यह वहुत

गदी बत्तख है जो गदे पानी में ही अपना अधिक समय विताती है। वहाँ यह अपनी चौडी और गोल चोच से कीचड में मेढको, मछलियो, घोघो, कटुओ, कीडे-मकोडो और सेवार आदि मे अपना पेट भरती रहती है। इसकी चपटी चोच के कारण इसको पहचानने में जरा भी दिक्कत नही होती।

तिदारी २० इच की छोटी बत्तख है जिसके नर-मादा अलग-अलग रग-रूप के होते है। नर की गरदन और सिर चमकीला हरा और पीठ चितकवरी भूरी रहती है। इसका सीना सफेद तथा पेट खैरे रग का रहता है और डैनो में भूरे, नीले, सफेद और सिलेटी पर रहते हैं।

तिदारी

मादा का रग हलका रहता है और डैनो में नर की तरह कई रग के पर होते हुए भी उनके रग में धूमिलपन रहता है। इसका सारा वदन भूरा, चितकवरा होता है। नर की चोच काली और मादा की भूरी रहती है लेकिन दोनो के पैर गुलावी रहते हैं।

तिदारी काफी ढीठ होती है और इसे लोग इसकी गदी आदत और खूराक के कारण वहुत कम मारते है। इसका मास भी रद्दी किस्म का होता है।

मौसमी वत्तख होने पर भी तिदारी लौटते समय कश्मीर की झीलो मे रह जाती है और मई से जुलाई तक वही घास-फूस का घोसला वनाकर १०-१२ अण्डे देती है जो रग मे हलके हरे रग के होते है।

बुडार

(POCHARD)

बुडार को डूवा भी कहते है। ये उस श्रेणी की वत्तखें है जो पानी मे डुवकी लगाकर, और मछलियो की तरह तैरकर अपनी खूराक एकत्र करती हैं। इनके डैने अन्य वत्तखो की अपेक्षा छोटे होते हैं और उडते समय उनको जल्दी-जल्दी चलाने से एक प्रकार की तेज आवाज होती है जिससे इन्हे पहचानने मे देर नही लगती।

बुडार हमारे यहाँ की डुवकी लगानेवाली प्रसिद्ध मौसमी वत्तख है जो जाडे के प्रारम्भ मे यहाँ आकर जाडे के अन्त तक यहाँ से उत्तर की ओर लौट जाती है। इसकी लम्बाई करीव डेढ फुट के होती है, लेकिन नर-मादा के रग-रूप मे थोडा भेद रहता है। मादा कद में नर से छोटी होती है।

नर बुडार का सिर और गरदन कैरी रहती है। उसका सीना चमकीला काला होता है और पेट सफेद रहता है। दुम का ऊपरी और निचला हिस्सा काला रहता है और शरीर का वाकी कुल हिस्सा पिलछौंह सिलेटी रहता है जिस पर पतली-पतली काली धारियाँ पडी रहती है। डैने भूरे होते हैं और चोच और पैर सिलेटी रहते हैं।

बुडार

मादा का सिर, गरदन और सीना कत्थई, पेट सफेद और वाकी भाग ऊपर और वगल का हिस्सा सिलेटी रहता है जिस पर महीन काली धारियाँ पडी रहती है। डैने भूरे, दुम का ऊपरी हिस्सा कलछौंह और नीचे का भूरा रहता है।

बुडार छोटी पनडुव्वी वत्तख है जिसका मुख्य भोजन पानी में उगनेवाली घास, नरकुल आदि पौधो की जडे है। बुडार गरोहो मे रहना ज्यादा पसन्द करती है और ज्यादातर वडी झीलो मे उतरती है, जहाँ का पानी गहरा और साफ रहता है। इनकी चराई का समय रात मे ही रहता है और दिन का समय ये ज्यादातर पानी

गदी बत्तख है जो गदे पानी मे ही अपना अधिक समय बिताती है। वहाँ यह अपनी चौडी और गोल चोच से कीचड मे मेढको, मछलियो, घोघो, कटुओ, कीडे-मकोडो और सेवार आदि से अपना पेट भरती रहती है। इसकी चपटी चोच के कारण इसको पहचानने में जरा भी दिक्कत नही होती।

तिदारी २० इच की छोटी बत्तख है जिसके नर-मादा अलग-अलग रग-रूप के होते है। नर की गरदन और सिर चमकीला हरा और पीठ चितकवरी भूरी रहती है। इसका सीना सफेद तथा पेट खैरे रग का रहता है और डैनो में भूरे, नीले, सफेद और सिलेटी पर रहते है।

तिदारी

मादा का रग हलका रहता है और डैनो में नर की तरह कई रग के पर होते हुए भी उनके रग में धूमिलपन रहता है। इसका सारा बदन भूरा, चितकवरा होता है। नर की चोच काली और मादा की भूरी रहती है लेकिन दोनो के पैर गुलाबी रहते है।

तिदारी काफी ढीठ होती है और इसे लोग इसकी गदी आदत और खूराक के कारण बहुत कम मारते हैं। इसका मास भी रद्दी किस्म का होता है।

मौसमी बत्तख होने पर भी तिदारी लौटते समय कश्मीर की झीलो में रह जाती है और मई से जुलाई तक वही घास-फूस का घोसला बनाकर १०-१२ अण्डे देती है जो रग मे हलके हरे रग के होते है।

बुडार

(POCHARD)

बुडार को डूबा भी कहते है। ये उस श्रेणी की बत्तखे है जो पानी मे डुबकी लगाकर, और मछलियो की तरह तैरकर अपनी खूराक एकत्र करती हैं। इनके डैने अन्य बत्तखो की अपेक्षा छोटे होते है और उडते समय उनको जल्दी-जल्दी चलाने से एक प्रकार की तेज आवाज होती है जिससे इन्हे पहचानने मे देर नही लगती।

बुडार हमारे यहाँ की डुबकी लगानेवाली प्रसिद्ध मौसमी बत्तख है जो जाडे के प्रारम्भ मे यहाँ आकर जाडे के अन्त तक यहाँ से उत्तर की ओर लौट जाती है। इसकी लम्बाई करीब डेढ फुट के होती है, लेकिन नर-मादा के रग-रूप मे थोडा भेद रहता है। मादा कद मे नर से छोटी होती है।

नर बुडार का सिर और गरदन खैरी रहती है। उसका सीना चमकीला काला होता है और पेट सफेद रहता है। दुम का ऊपरी और निचला हिस्सा काला रहता है और शरीर का बाकी कुल हिस्सा पिलछौंह सिलेटी रहता है जिस पर पतली-पतली काली धारियाँ पडी रहती है। डैने भूरे होते है और चोच और पैर सिलेटी रहते है।
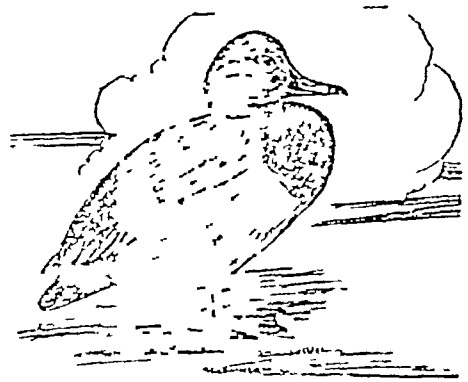
बुडार
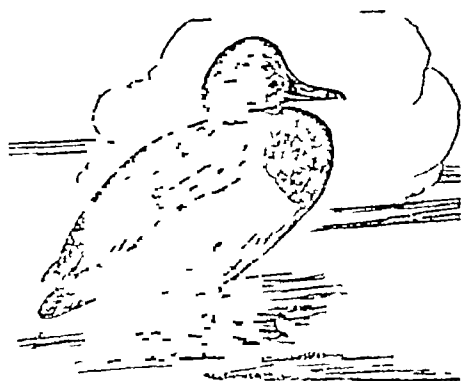
मादा का सिर, गरदन और सीना कत्थई, पेट सफेद और बाकी भाग ऊपर और बगल का हिस्सा सिलेटी रहता है जिस पर महीन काली धारियाँ पडी रहती है। डैने भूरे, दुम का ऊपरी हिस्सा कलछौंह और नीचे का भूरा रहता है।

बुडार छोटी पनडुब्बी बत्तख है जिसका मुख्य भोजन पानी मे उगनेवाली घास, नरकुल आदि पौधो की जडे है। बुडार गरोहो में रहना ज्यादा पसन्द करती है और ज्यादातर बडी झीलो मे उतरती है, जहाँ का पानी गहरा और साफ रहता है। इनकी चराई का समय रात मे ही रहता है और दिन का समय ये ज्यादातर पानी

पर ऊँघते हुए विताती है। उडने मे ये सुस्त जरूर होती है लेकिन एक बार हवा में उठ जाने पर ये वहुत तेज उडती है। इनका मास अच्छा होता है।

वुडार हमारे देश में अण्डा नही देती। इसके लिए इन्हे फिर उत्तर की ओर लौट जाना पडता है, जहाँ मादा घास-फूस का घोसला वनाकर किसी घनी घास या नरकुल के वीच या किनारे ही जमीन पर उसे रख देती है और समय आने पर उसमें १०-१२ अण्डे देती है। ये अण्डे हरछौह राख के रग के होते है।

लालसर

(RED CRESTED POCHARD)

वुडार की तरह लालसर भी हमारे यहाँ की प्रसिद्ध पनडुब्वी वत्तख है जो जाडो मे आकर जाडा खतम होते-होते फिर यहाँ से लौट जाती है। यह दक्खिन की ओर हैदरावाद के आगे नही जाती और वही से वापस लौट आती है। लालसर को उसकी ललछौह भूरी चोटी और गरदन तथा चटक सिंदूरी रग की चोच के कारण पहचानने मे जरा भी कठिनाई नही होती। कहीं-कही इसी सुर्ख चोच के कारण इसे लालचोच भी कहते है।

लालसर २०-२१ इच लम्वा पक्षी है जिसके नर-मादा के रग-रूप में फर्क रहता है। नर का सिर और पूरी गरदन ललछौह भूरी, पीठ, डैने और दुम वादामी, पख का निचला तथा वदन के दोनो वगल के भाग सफेद और सीना तथा पेट काला रहता है। सिर पर ललछौह चोटी रहती है। इसकी चोच चटक सिंदूरी और पैर नारगी रग के होते है। मादा का ऊपरी हिस्सा हलका वादामी और सिर तथा गरदन गाढे वादामी रग की होती है। सीना और वगल के दोनो हिस्से भी वादामी ही रहते है, लेकिन पेट का रग कजई या राखी रहता है।

लालसर डुवकी लगानेवाली वत्तख है। इससे उन्हे ऐसे गहरे ताल ज्यादा पसन्द आते है जिनमे सेवार आदि फैली हो। ये वैसे तो अक्सर १०-१२ की टोलियो मे रहती है लेकिन वडी झीलो और तालावो में, जहाँ इन्हे काफी सहूलियत मिल जाती है, इनका हजारो का गोल भी दिखाई पडना असम्भव नही।

लालसर वहुत सुन्दर पक्षी है जिनका मुख्य भोजन घासपात, काई, सेवार, पानी के पौधो की जडे और नरम कल्ले है लेकिन इसके अलावा ये कीडे-मकोडे और

घोघे, कछुए भी खा लेते हैं। इनको चराई का समय वैसे तो रात है लेकिन ये सवेरे भी काफी समय तक चरते हैं। दिन मे बुडार की तरह ये ताल के बीच मे पानी मे ऊँघते और आराम करते रहते हैं। इनका मास स्वादिष्ठ होता है।
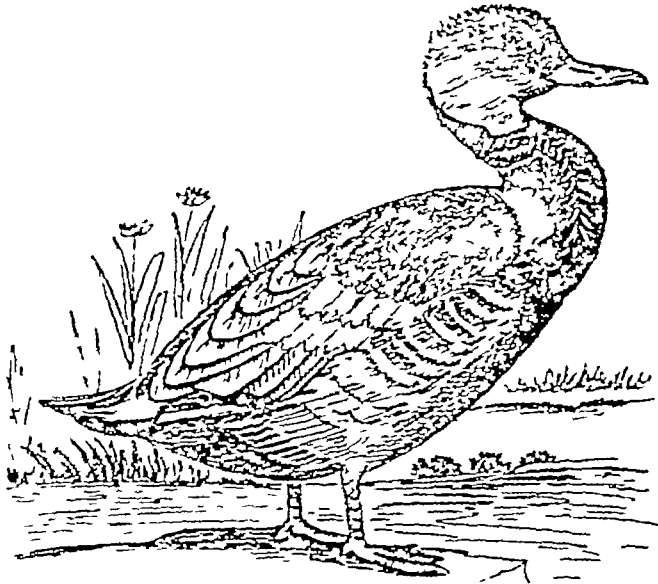
लालसर

इसकी मादा हमारे देश मे अण्डे नही देती। इसके लिए इसे पश्चिमोत्तर प्रान्त की ओर जाना पडता है। वहाँ किसी जलाशय के किनारे या टापू पर अपने घास-फूस के घोसलो को जमीन पर रखकर उसीमे वह मई-जून मे ८-१० अण्डे देती है जो हल्के हरे रग के होते हैं।

पतेरा

(WIGEON)

पतेरे को कही-कही छोटा लालसर भी कहते हैं। यह भी हमारे यहां की प्रसिद्ध मौसमी बत्तख है जो जाडो मे यहां आकर गर्मी शुरू होते-होते यहां से लौट जाती है।

पतेरा लगभग डेढ फुट लम्बा होता है जिसके नर-मादा अलग-अलग रग-रूप के रहते हैं। नर का माथा और चोटी सदली पीली और बाकी सिर और गरदन

कत्थई लाल रहती है जिस पर काली चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। पीठ पर काली और सफेद धारियो की लहरियाँ-सी रहती हैं। इसकी ठुड्डी और गला काला, सीना लाल और पेट सफेद रहता है। दोनो के बगली हिस्से काली और सफेद लकीरो से भरे रहते हैं। पख काले रहते हैं, लेकिन उनके किनारे सफेद होते है। डैनो का रग राखीपन लिये भूरा रहता है जिन पर तीन स्पष्ट पट्टियाँ पड़ी रहती हैं। इनमे से ऊपर-नीचे की पट्टियाँ काली और बीच की चटक हरी रहती हैं। इसकी चोंच निलछौंह सिलेटी और पैर गाढे सिलेटी रहते है।

मादा का सिर और गरदन गदा पीलापन लिये भूरी होती है जिसमें धुमैली चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। पीठ और पख धुमैले भूरे और बगल के दोनो हिस्से ललछौंह भूरे रहते है। बाकी और सब रग नर-जैसा रहता है।
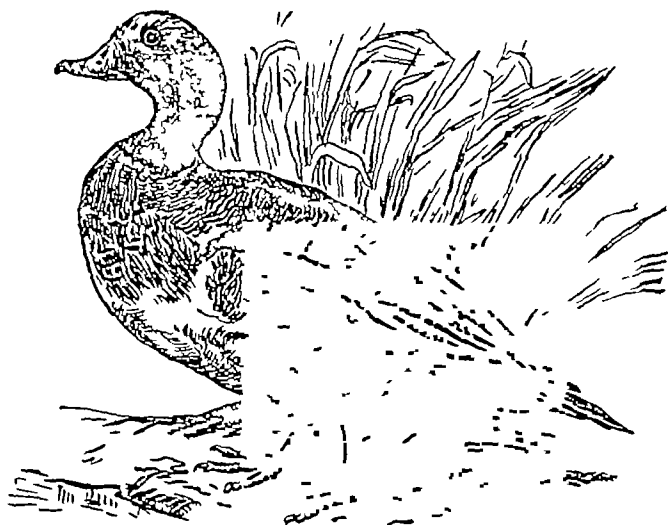
पतेरा

पतेरा झुण्डो में रहते है जो इनके सुविधानुसार छोटे और बड़े हर तरह के होते है। इन्हें छोटे ताल और बडी नदियाँ पसन्द नही आती, बल्कि ये ऐसे गहरे और बडे ताल या छोटी नदियाँ पसन्द करते है जिनके किनारे घास और नरकुलो से भरे रहते हैं। इनका मुख्य भोजन घास-पात, जडें और पौधो के नरम कल्ले है, लेकिन इसके अलावा ये घोघे, कटुए और कीडे-मकोडे भी खा लेते है। इनकी चराई का

समय दिन है और सीखपर आदि की तरह ये भी रात को अपना स्थान नहीं बदलते। इनका माम मामूली होता है।

पतेरा भी हमारे यहाँ अण्डे नही देते। इनके लिए ये उत्तर की ओर के देशो मे लौट जाते हैं, जहाँ मई-जून में इनकी मादा ८-१० अण्डे देती है। इनके घासफूस के घोसले पानी के किनारे, घास के बीच मे, रखे रहते हैं और कभी-कभी ये जमीन पर ही छिछला गढा बनाकर उसी में घास-पात और पर रखकर मादा के लिए अण्डा देने का स्थान बना देते है।

श्येन वर्ग

(ORDER FALCONIFORMES)

श्येन-वर्ग मे सब शिकारी चिडियो को रखा गया है। गिद्ध मे लेकर शिकरा तक इस वर्ग मे आ गये हैं। पहले प्राणिशास्त्र के विशारद शिकारी पक्षियो के साथ उल्लुओ को भी रखते थे, लेकिन अब उनका अलग वर्ग बना दिया गया है। इन शिकारी पक्षियो मे गिद्ध आदि कुछ ऐसे पक्षी जरूर है जो मुर्दाखोर है लेकिन ज्यादा सख्या उन्ही की है जो जिन्दा शिकार पकडते है।

ये सब पेडो पर रहनेवाले पक्षी है जो हवा मे काफी ऊँचाई तक उड लेते है। इनके पैर के नाखून बडे तेज और टेढे होते है और इनकी चोच तोते की तरह आगे की ओर झुकी रहती है जिससे इन्हे मास नोचने मे बडी आसानी हो जाती है। इनकी चोच की जड के पास का हिस्सा कुछ सूजा-सा और नरम खाल मे ढँका रहता है जिसका रग अक्सर पीला होता है। इनके पैर के नीचे का हिस्सा गद्देदार रहता है और इनकी निगाह बहुत तेज होती है।

ये सब मासभक्षी पक्षी है जिनके गले के भीतर कबतरो की तरह एक थैली होती है जिसमे ये जल्दी-जल्दी अपने शिकार को नोचकर भर लेते है। फिर वहा से वह धीरे-धीरे पेट में सरक जाता है। जिस तरह दाने को पीसने के लिए कबूतर अपनी इस थैली मे छोटे-छोटे ककड निगल लेते है, वही काम इन शिकारी चिडियो की थैली में निगले हुए शिकार के पर करते है।

इन शिकारी-पक्षियो की मादा नर से हमेशा बडी होती है जो प्राय एक ही अण्डा देती है क्योकि इनके घोसले इतनी ऊँचाई पर और सुरक्षित रहते हैं कि इनके अडो के

नष्ट होने का डर नही रहता। वच्चे अण्डा फूटने पर असहाय-से रहते है लेकिन जल्द ही उनके रोये और पर जम आते है। श्येन-वर्ग वैसे तो कई उपवर्गो मे बॉटा गया है, लेकिन यहाँ केवल एक श्येन-उपवर्ग के पक्षियो का ही वर्णन दिया जा रहा है जो सवसे वडा उपवर्ग है और जिसमे के पक्षी हमारे देश मे पाये जाते है।

श्येन-उपवर्ग

(SUB ORDER ACCIPITRES)

यह उपवर्ग इतना वडा है कि इसमे प्राय सभी प्रकार के शिकारी पक्षी आ गये है। जैसा ऊपर वता चुके है, ये सव मासभक्षी पक्षी है जो कीडे-मकोडे, चूहे, खरगोश, सॉप, छिपकली और सभी तरह की चिडियो का मास खाते है। कुछ ऐसे भी है जो मुर्दाखोर होते है। इनकी निगाह वहुत तेज होती है और ये एक हजार फुट से भी अधिक ऊँचाई से जमीन पर पडे हुए मुर्दे को आसानी से देख लेते है और फिर इन्हे जमीन पर उतरते देखकर इनके दूसरे साथी भी उसी स्थान पर उतर आते है।

इनके पजे वहुत मजबूत और इनके नाखून बहुत तेज और टेढे रहते है जिनकी पकड मे आकर शिकार का निकल जाना वहुत कठिन हो जाता है। इनकी चोच टेढी और बडी मजबूत होती है जिससे ये मास को वडी आसानी से चीर-फाड डालते है।

यह उपवर्ग तीन परिवारो मे इस प्रकार बॉटा गया है—

१ श्येन-परिवार—Family Falconidae

२ गृद्ध-परिवार—Family Vulturidae

३ कुरर-परिवार—Family Pondionidae

श्येन-परिवार

(FAMILY FALCONIDAE)

श्येन परिवार वहुत वडा है जिसमे हमारी सव शिकारी चिडियाँ आ जाती है। इनका मुख्य भोजन मास, मछली, चिडियॉ, कीड-मकोडे और छोटे-मोटे जीव-जन्तु है जिन्हे ये आसानी से पकड सकती है। इनकी टेढी मजवूत चोच और टेढे नाखून-वाले मजवूत पजे इनकी विशेषता हे जिनके सहारे ये अपना पेट भरती है। इनकी

निगाह और उडान मे असाधारण तेजी होती है, नही तो एक भी शिकार इनके हाथ न लगे और ये भूखों मर जायँ।

आगे हमने यहाँ की कुछ प्रसिद्ध शिकारी चिडियो का वर्णन दिया जा रहा है जिनसे हम सभी परिचित है।

गरुड

(GOLDEN EAGLE)

गरुड हमारे यहाँ का सबसे बडा शिकारी पक्षी है, लेकिन यह हमारे यहाँ हस की तरह प्रसिद्ध होकर भी उसी की तरह केवल हिमालय के ऊँचे प्रदेशो मे ही दिखाई पडता है। हमारे यहाँ इसी का भाई-बन्धु छोटा गरुड या उकाब (Tawny Eagle) काफी सख्या मे फैला हुआ है जो करीब-करीब सारे देश मे दिखाई पडता है। यह हिमालय पर भी चार हजार फुट तक की ऊँचाई तक देखा जा सकता है। उसके ऊपर फिर इसकी जगह गरुड ले लेता है।

गरुड

गरुड उकाब से गहरे रग का होता है जो दूर से काला-सा जान पडता है। इसकी दुम भी कुछ लम्बी होती है। इसकी और सब आदते उकाब-जैसी ही होती है। यहाँ उकाब का ही वर्णन दिया जा रहा है जिसमे और गरुड में उपर्युक्त भेद के अलावा और कोई भेद नही रहता। छोटा गरुड या उकाब यहा का बारहमासी पक्षी है जिसकी शकल-सूरत बहुत कुछ चील से मिलती-जुलती रहती है। यह कद मे उससे भारी होता है और इसकी दुम भी चील की तरह दुफकी न होकर गोल रहती है। यह बहुत ही सुन्दर पक्षी है जिसकी शकल से बहादुरी टपकती है। यह अपने मजबूत पंजो से खरगोश तक को उठा ले जाता है।

छोटे गरुड का कद लगभग २५ इच लबा होता है लेकिन इसकी मादा २८ इच से कम नही होती। दोनो नर-मादा एक ही रग-रूप के होते है। इसके शरीर का रग हलका बादामी या सुनहरा भूरा होता है और पख कलछौंह खैरे रग के रहते है। डैनो के सिरे पर सफेद चित्तियाँ रहती है। इसकी चोच निलछौंह सिलेटी और पैर पीले होते है।

उकाब का सिर चपटा रहता है और चोच टेढी और मजबूत होती है। इसके पर पैरो को ढके रहते है और इसके डैने इतने लबे होते है कि बैठे रहने पर दुम के सिरे तक पहुँच जाते है।

उकाब शिकारी पक्षी है जो दिन भर आकाश मे अपनी खूराक की तलाश मे उडता रहता है। इसे जगलो से ज्यादा खुले मैदान पसन्द है जहाँ ऊपर से इसे जमीन पर अपने शिकार को देखने में आसानी रहती है। इसका मुख्य भोजन छोटे जानवर, चिडियाँ, साँप, मेढक और छिपकलियाँ आदि है जिन्हे यह ऊपर से बडी तेजी से झपटकर अपने मजबूत पजो से पकडकर उठा ले जाता है।

इसके अण्डा देने का समय नवम्बर से जून तक रहता है जब यह काँटेदार सूखी टहनियो से किसी ऊँचे पेड की चोटी पर अपना छिछला-सा घोसला बनाता है जिसका भीतरी हिस्सा घास और पत्तियाँ लगाकर मुलायम बना दिया जाता है। मादा इसमे १ से ३ तक अण्डे देती है जो रग मे हलके राखी या सफेद रहते है। इनमे से कभी-कभी कुछ अण्डो पर लाल और बैगनी चित्तियाँ पडी रहती है।

बाज
(GOSHAWK)

बाज को शिकारी पक्षियो का सरदार कहना ठीक होगा। पाले जानेवाले शिकारी पक्षियो मे यह सबसे बडा और बहादुर होता है। इसकी मादा को जुर्रा कहा जाता है, जो कद मे इससे बडी होती है।

बाज हमारे यहाँ केवल हिमालय मे एक सिरे से दूसरे सिरे तक पाया जाता है। इसे मैदान पसन्द नही आते और यह तराइयो मे भी गर्मियो मे ही कभी-कभी दिखाई पडता है।

बाज लगभग २० इंच का पक्षी है जिसके नर-मादा एक रंग-रूप के होते हैं। इसका ऊपरी हिस्सा राखीपन लिये भूरा होता है और सिर, गुद्दी और गरदन के दोनों बगल का हिस्सा काला रहता है। दुम का ऊपरी हिस्सा हल्के भूरे रंग का रहता है जिसका सिरा सफेद होता है। नीचे का सफेद हिस्सा काली और भूरी चित्तियों से भरा रहता है। इसकी टेढ़ी चोंच गाढ़ सिलेटी और पैर पीले रंग के होते हैं। इसके पंजे बहुत मजबूत होते हैं।

बाज को जंगलों में रहना अधिक पसन्द है जहाँ यह अपना अधिक समय आकाश में उड़ने में ही बिताता है। यह नीचे कोई शिकार देखकर उस पर इस तेजी से टूटता है कि उसे अपने को इसके चंगुल से बचाना कठिन हो जाता है। इसका मुख्य भोजन छोटे-मोटे जानवर और चिड़ियाँ हैं। इनके अलावा इससे छोटे सरीसृप भी नहीं बचते। यह कबूतर, तीतर और जंगली मुरगियों आदि का शिकार बड़ी आसानी से कर लेता है।

बाज

इसकी मादा जुर्रा कहलाती है जो करीब दो फुट की होती है। इसे शौकीन लोग शिकार के लिए पालते हैं और इससे चिड़ियों का शिकार कराया जाता है। सिखाये जाने पर यह शिकरा और बहरी की तरह चिड़ियों और खरगोश आदि को अपने मालिक के लिए पकड़ लाती है।

बाज के जोड़ा बाँधने का समय मार्च से जून तक है। इसी बीच किसी ऊँचे पेड़ पर ये टहनियों का भद्दा-सा घोंसला बनाते हैं जिसमें जुर्रा ३–४ अण्डे देती है। ये अण्डे वैसे तो सफेद रहते हैं, लेकिन कभी-कभी उन पर थोड़ी चित्तियाँ भी पड़ी रहती हैं।

बहरी

(PEREGRINE FALCON)

बहरी हमारे यहाँ की प्रसिद्ध शिकारी चिड़िया है, जो बाज की तरह केवल हिमालय प्रान्त मे न रहकर सारे देश मे फैली हुई है। यह कद में बाज से छोटी जरूर होती है, लेकिन इसकी तेजी का मुकाबला कोई शिकारी पक्षी नही कर सकता। जब यह तालाबो के ऊपर बत्तखो के झुड पर टूटती है तो बहुत-सी बत्तखें डर के मारे अपने पख समेट लेती है और ऊपर से पानी में ढेले की तरह पटापट गिरने लगती है। इसके इसी वेग के कारण इसको 'वेगी' भी कहते है।
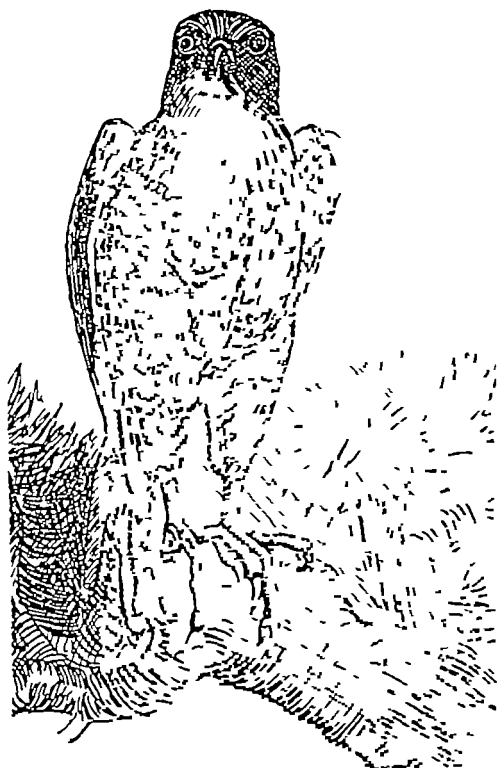
बहरी

बहरी करीब २० इच की बारहमासी चिड़िया है जिसका नर करीब १६ इच का होता है। इसके नर, मादा से कद में छोटे होने पर भी एक ही रग-रूप के होते है। इनका ऊपर का हिस्सा भूरा और गरदन से लेकर पेट तक का हिस्सा सफेद रहता है। नीचे की सफेदी पर तमाम कत्थई रेखाएँ और चिह्न पडे रहते है। दोनो आँखो के ऊपर भौं की शकल की एक-एक सफेद स्पष्ट रेखाएँ रहती है और आँखो के नीचे दोनो ओर एक-एक काली मूँछनुमा रेखाएँ चोच से गरदन तक चली जाती है। डैने कत्थई या कलछौंह रहते हैं और दुम भूरी

कबरा गोह्

होती है, लेकिन उसका सिरा सफेद ही रहता है। इसकी चोंच टेढ़ी और निलछौंह सिलेटी रहती है। पैर पीले रहते हैं।

बहरी उड़ने मे बहुत तेज होती है और इसके डैने और पंजे भी बहुत मजबूत होते हैं। इसे न तो घना जंगल ही पसन्द है और न पहाड़ ही। यह खेतों और बागों के आसपास या जलाशयों के निकट रहकर छोटी चिड़ियों का शिकार करती है जो इसकी मुख्य खूराक हैं। तीतर, बटेर, कबूतर, हारिल आदि का पकड़ना तो इसके लिए कुछ मुश्किल नहीं होता। इसके अलावा यह छोटी बत्तखों के गिरोह पर भी सफल हमला करती है।

इसके अण्डा देने का समय जनवरी से अप्रैल तक रहता है। इसी बीच यह या तो अपना भद्दा-सा घोंसला बनाती है या गिद्ध और कौए आदि के पुराने घोंसले को ठीक-ठाक करके उसी में तीन-चार अण्डे देती है। ये अण्डे गुलाबी या हलके भूरे रंग के रहते हैं जिन पर कत्थई चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

शिकरा

(SHIKRA)

शिकरा हमारे यहाँ की छोटी शिकारी चिड़ियों में सबसे प्रसिद्ध है। इसे कुछ लोग छोटा बाज भी कहते हैं जो एक प्रकार से ठीक ही है। लेकिन इसका रंग बाज से न मिलकर पपीहे-जैसा रहता है। शिकारी चिड़ियों में इसे सबसे सुन्दर और बहादुर पक्षी कहना अनुचित न होगा। सिखाये जाने पर यह अपने से चौगुनी चिड़ियों को पकड़ लेता है।

शिकरा हमारे यहाँ का बारहमासी पक्षी है जिसे घनी अमराइयों के आगे न तो घने जंगल ही पसन्द हैं और न खुले मैदान और न पहाड़ ही। यह अपना सारा दिन या तो किसी पेड़ की ऊँची डाल पर बैठकर या बाग-बगीचों के आस-पास शिकार की तलाश में उड़कर बिता देता है। हमारे देश में यह प्रायः सभी स्थानों पर पाया जाता है और पहाड़ पर भी इसे चार-पाँच हजार फुट पर देखना मुश्किल नहीं।

शिकरा का नर लगभग एक फुट का और मादा १४ इंच की होती है। नर और मादा करीब-करीब एक रंग-रूप के होते हैं। मादा के ऊपर और नीचे का हिस्सा नर से कुछ गहरे रंग का रहता है। नर का ऊपरी हिस्सा गहरे राख के रंग का होता है जिसमें

गले के चारो ओर कुछ पीली झलक रहती है। इसके डैने भूरे हाते हैं, जिनके सिरे काले रहते हैं। इसकी दुम भूरी होती है जिस पर आडी-आडी पट्टियाँ पडी रहती है। वदन का निचला हिस्सा ललछौंह रहता है जिस पर आडी सिलेटी लकीरे पडी रहती हैं। इसकी टेढी और मजवूत चोच कलछौंह नीली रहती है और पैर पीले रहते है। इसका मुख्य भोजन छोटी चिडियाँ, छिपकलियाँ, चूहे और टिड्डी आदि है।

शिकरा

शिकरा को लोग शिकार कराने के लिए पालते है और सिखाये जाने पर यह अपने मालिक के लिए चिड्यिाँ पकडकर लाता है। इसकी एक और जाति, जो इमी शकल-सूरत की लेकिन इससे कुछ लवी टाँगोवाली होती है, गौरहिवा शिकरा (Sparrow Hawk) कहलाती है। इसकी मादा को वासा और नर को वासिन कहते है। इसकी सव आदते शिकरे से मिलती-जुलती रहती है। इसमे उन्हें दुहराने की आवश्यकता नही है।

शिकरा के अण्डा देने का समय अप्रैल से जून तक रहता है, जव यह किसी घने पेड पर सूखी टहनियो का तितरा-वितरा-सा घोसला वनाता है। मादा इसमें तीन-चार तक अण्डे देती है जिनका रग हलका नीलापन लिये सफेद रहता है। कभी-कभी इन पर सिलेटी चित्तियाँ भी पडी रहती है।

टीमा

(WHITE EYED BUZZARD)

टीमा भी शिकारी चिड़िया है, लेकिन इसमें शिकारी चिड़ियों के सब गुण नहीं होते। यह खुद तो शिकार करता ही है, साथ ही दूसरों के किये हुए शिकार से भी पेट भर लेता है। कभी-कभी तो यह मुर्दाखोर पक्षियों की तरह मरे हुए ढोर का मांस भी खाते देखा जा सकता है।

यह हमारे यहाँ का बारहमासी पक्षी है जिसे खुले मैदान ज्यादा पसन्द हैं। यह किसी पेड़ पर या ऊँचे टीले पर शिकार की घात में अलसाया-सा बैठा रहता है और वहीं से किसी चूहे, छिपकली, मेढक या घायल चिड़िया को देखकर उसे तेजी से झपटकर उठा ले जाता है। इसके अलावा यह कीड़े-मकोड़े भी बड़े मजे में खाता है।
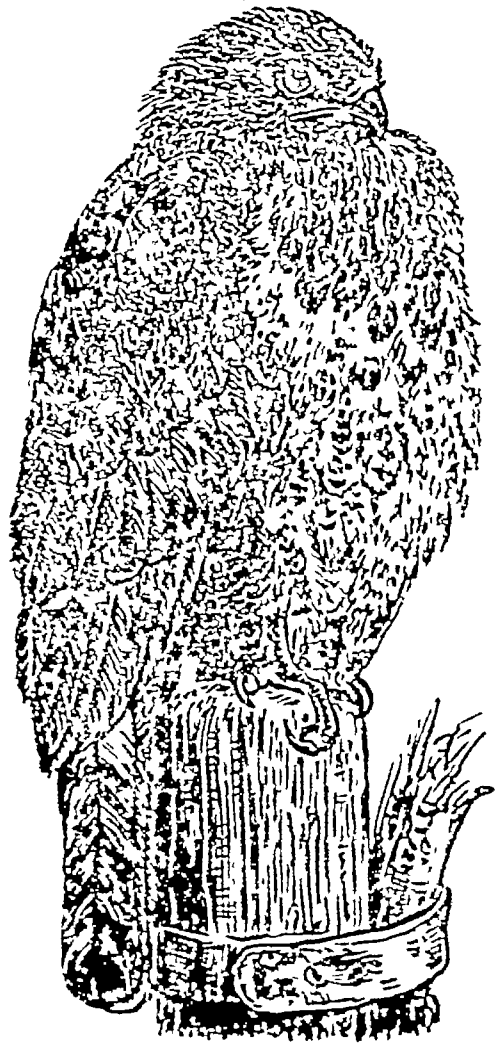
टीमा के नर-मादा एक रंग-रूप के होते हैं और दोनों का कद बराबर ही रहता है। यह लगभग डेढ़ फुट का पक्षी है जिसके शरीर का ऊपरी हिस्सा खैरा और नीचे का सफेदी मायल रहता है। सीने से पेट तक का हिस्सा भूरा रहता है जिस पर सफेद चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। इसके डैने गहरे भूरे रहते हैं जिनके

टीमा

गले के चारो ओर कुछ पीली झलक रहती है। इसके डैने भूरे हाते है, जिनके सिरे काले रहते है। इसकी दुम भूरी होती है जिस पर आडी-आडी पट्टियाँ पडी रहती है। वदन का निचला हिस्सा ललछौह रहता है जिस पर आडी सिलेटी लकीरे पडी रहती है। इसकी टेढी और मजबूत चोच कलछौह नीली रहती है और पैर पीले रहते है। इसका मुख्य भोजन छोटी चिडियाँ, छिपकलियाँ, चूहे और टिड्डी आदि है।

शिकरा
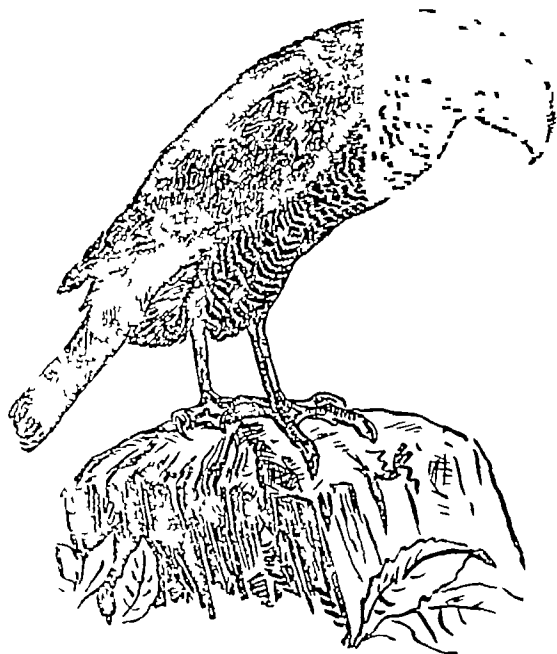
शिकरा को लोग शिकार कराने के लिए पालते है और सिखाये जाने पर यह अपने मालिक के लिए चिडियाँ पकडकर लाता है। इसकी एक और जाति, जो इसी शकल-सूरत की लेकिन इससे कुछ लबी टाँगोवाली होती है, गोरहिवा शिकरा (Sparrow Hawk) कहलाती है। इसकी मादा को वासा और नर को वासिन कहते है। इसकी सब आदते शिकरे से मिलती-जुलती रहती है। इससे उन्हें दुहराने की आवश्यकता नही है।

शिकरा के अण्डा देने का समय अप्रैल से जून तक रहता है, जब यह किसी घने पेड पर सूखी टहनियो का तितरा-वितरा-सा घोसला वनाता है। मादा इसमे तीन-चार तक अण्डे देती है जिनका रग हल्का नीलापन लिये सफेद रहता है। कभी-कभी इन पर सिलेटी चित्तियाँ भी पडी रहती है।

टीसा

(WHITE EYED BUZZARD)

टीसा भी शिकारी चिडिया है, लेकिन इसमे शिकारी चिडियो के सब गुण नही होते। यह खुद तो शिकार करता ही है, साथ ही दूसरो के किये हुए शिकार मे भी पेट भर लेता है। कभी-कभी तो यह मुर्दाखोर पक्षियो की तरह मरे हुए ढोर का मास भी खाते देखा जा सकता है।

टीसा

यह हमारे यहाँ का बारह-मासी पक्षी है जिसे खुले मैदान ज्यादा पसन्द है। यह किसी पेड पर या ऊँचे टीले पर शिकार की घात में अलसाया-सा बैठा रहता है और वही से किसी चूहे, छिपकली, मेढक या घायल चिडिया को देखकर उसे तेजी से झपटकर उठा ले जाता है। इसके अलावा यह कीडे-मकोडे भी बडे मजे में खाता है।
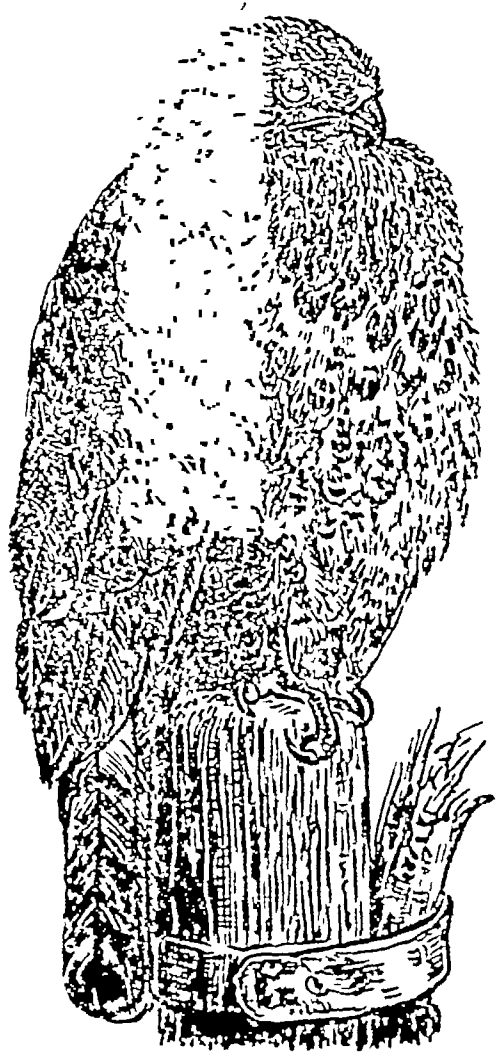
टीसा के नर-मादा एक रग-रूप के होते है और दोनो का कद बराबर ही रहता है। यह लगभग डेढ फुट का पक्षी है जिसके शरीर का ऊपरी हिस्सा खैरा और नीचे का सफेदी मायल रहता है। सीने से पेट तक का हिस्सा भूरा रहता है जिस पर सफेद चित्तियाँ पडी रहती है। इसके डैने गहरे भूरे रहते है जिनके

सिरे काले रहते हैं। इसके डैनो पर सफेद धब्बे रहते हैं और ठुड्डी और गला भी सफेद रहता है। दुम का ऊपरी भाग भूरा होता है जिस पर काली आडी धारियाँ पडी रहती हैं। इसकी चोच नारगी रग की होती है। चोच का सिरा काला और पैर नारगीपन लिये पीले रग के होते हैं।

टीसा वैसे तो किसी टीले पर अपने शिकार की घात में बैठा रहता है, लेकिन कभी-कभी यह जमीन पर भी अपनी खूराक की तलाश मे इधर-उधर घूमता रहता है।

इसके जोडा बाँधने का समय फरवरी से मई तक रहता है जब यह किसी पेड पर सूखी टहनियो से अपना भद्दा-सा घोसला बनाता है। मादा इसी में बैठकर तीन-चार अण्डे देती है जो हलका नीलापन लिये सफेद रहते हैं। कभी-कभी इन अण्डो पर कत्थई चित्तियाँ भी पडी रहती हैं।

तुरमुती
(TURUMUTI)

तुरमुती बहरी की ही भाई-बन्धु है और उसी की तरह यह भी शिकारी चिडियो में बहुत तेज होती है। यह हमारे यहाँ की प्रसिद्ध शिकारी चिडिया है जिसकी मादा नर से बडी होती है। यह भी हमारे यहाँ बाज और शिकरे की तरह पाली जाती है और शौकीन लोग इसे सिखाकर इससे मैना, फाख्ता और हुदहुद आदि चिडियो का शिकार कराते हैं।

तुरमुती १४ इच की चिडिया है जिसके नर १२ इच से ज्यादा बडे नही होते। इन्हे चेटवा कहा जाता है। रग-रूप मे तुरमुती और चेटवा दोनो एक ही जैसे रहते हैं।

इसके सिर का ऊपरी भाग और गरदन के दोनो बगल का हिस्सा हलका खैरा रहता है। शरीर का ऊपरी हिस्सा सिलेटी रहता है जिस पर भूरी धारियाँ पडी रहती है। इसकी दुम भरी होती है जिसका सिरा सफेद रहता है और उस पर काली आडी धारियाँ पडी रहती हैं। इनके डैने कलछौंह और चोच हरापन लिये पीली रहती है। पैर भी पीले ही होते हैं।

तुरमुती यहाँ की बारहमासी चिडिया है जिसे घने जगलो से ज्यादा बाग-बगीचे पसन्द है जहाँ इनका जोडा बराबर शिकार करता दिखाई पड सकता है। इसका मुख्य भोजन छोटी-छोटी चिडियाँ हैं।

तुरमुती के जोडा बाँधने का समय जनवरी से मई तक रहता है जब यह किसी ऊँचे पेड पर अपना टहनियों का सुन्दर कटोरानुमा घोसला बनाती है। घोसले को यह

तुरमुती

बाल और परो से मुलायम कर देती है जिसमे समय आने पर मादा तीन-चार अण्डे देती है जो गुलाबीपन लिये सफेद रग के होते है। कभी-कभी इन पर भूरी या कत्थई रग की चित्तियाँ भी पडी रहती है।

खेरमुतिया

(KESTREL)

खेरमुतिया भी बहरी की निकट सम्बन्धी है जो हमारे देश मे जाडो मे काफी सख्या मे आकर चारो ओर फैल जाती है। इसे भी घने जगल से ज्यादा खुले मैदान पसन्द है जहाँ यह अक्सर आसमान मे एक ही जगह मँडराती रहती है। इसके शरीर की बनावट बहरी से कुछ पतली होती है।

खेरमुतिया हमारे यहाँ की बारहमासी चिडिया है जो अण्डे देने के लिए हिमालय के पश्चिमी भागो मे चली जाती है और जाडा शुरू होते-होते सारे देश मे फैल जाती है। इसके नर-मादा के रग में थोडा ही भेद रहता है। नर का ऊपरी हिस्सा ईंट-जैसा लाल होता है जिसमे सिर और गरदन का बगली हिस्सा सिलेटी रहता है। पीठ पर काली-काली तितरी-बितरी चित्तियाँ पडी रहती है और दुम के सिरे पर एक सिलेटी

धब्बा रहता है। इसके डैने और दुम का ऊपरी हिस्सा सिलेटी और निचला सफेदी मायल रहता है। बदन का निचला हिस्सा हलका बादामी रहता है जिसपर सीने के पास भूरी धारियाँ और चित्तियाँ पडी रहती है। डैने भूरे रहते है।

मादा का ऊपरी हिस्सा चटक ललछौंह भूरा रहता है जिसमें सिर के पास और पीठ पर कलछौह धारियाँ-सी पडी रहती है। दुम ललछौंह और गोलाई लिये भूरी या सिलेटी रहती है जिस पर एक काली पट्टी पडी रहती है। नीचे का हिस्सा नर की तरह रहता है।

खेरमुतिया

इसकी चोच काली और पैर नारगी रग के होते है। खेरमुतिया १४ इच की शिकारी चिडिया है जो खुले हुए घास के मैदानो के आसपास अपना ज्यादा समय बिताती है। वहाँ यह आकाश में चक्कर काटा करती है या फिर किसी टीले, सूखे पेड के ठूंठ या तार के खभे पर शिकार की घात में बैठी रहती है जहाँ से यह शिकार पर झपटकर और उसे पकडकर फिर उसी जगह आकर बैठ जाती है। आकाश में उडते-उडते यह एकदम अपने पखो को कुछ देर के लिए रोक लेती है और नीचे गौर से देखने लगती है। अगर इसे घास-फूस में कोई चीज हिलती जान पडी तो यह और नीचे उतर

कर उसे गौर से देखती है और जब इसे निश्चय हो जाता है कि वह कोई शिकार ही है तो यह बडी तेजी से उस पर झपटकर उसे अपने पजो मे पकडकर उड जाती है। इसका मुख्य भोजन कीडे-मकोडे, छोटे जानवर और सरीसृप तथा छोटी चिडियाँ है।

खेरमुतिया के अण्डा देने का समय अप्रैल से जून तक रहता है जब यह हिमालय के पश्चिमी भागो मे पहाड की किसी दराज या सूराख या किसी पेड की खोह या डाली पर सूखी टहनियो का भद्दा-सा घोसला बनाकर तीन से पाँच तक अण्डे देती है जो पिलछौह पत्थरी रग के रहते है। कभी-कभी इन पर कत्थई चित्तियाँ भी पडी रहती है।

लगर

लगर

(LAGGAR FALCON)

लगर को भी बहरी का निकटसवर्ती कहना ठीक होगा। यह १८ इच की शिकारी चिडिया है जिसके नर मादा से छोटे जरूर होते है लेकिन दोनो का रग-रूप एक-जैसा ही रहता है। इनके सिर से लेकर दुम तक का ऊपरी हिस्सा भूरा और नीचे का कुल हिस्सा सफेद रहता है जिसमे आख के नीचे से गरदन तक एक भूरी पट्टी पडी रहती है। इनके गाल सफेद रहते है और सीने और पेट पर दूर-दूर पर पतली कत्थई खडी लकीरें पडी रहती है। उडते समय इनके सफेद पेट से इसे बडी आसानी से पहचाना जा सकता है। इनकी चोच सिलछौह सिलेटी और पैर पीले होते है।
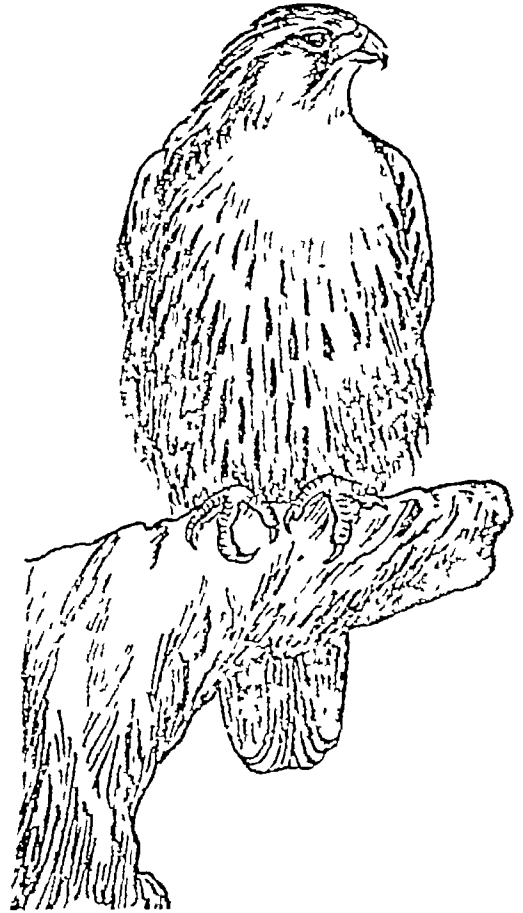
लगर की मादा को कही-कही जग्गर कहते है जो कद मे इससे काफी वडी होती है। लगर हमारे यहाँ का बारहमासी पक्षी हे जो देश भर मे फैला हुआ है। हिमालय पर भी यह दो-ढाई हजार फुट की ऊँचाई तक देखा जा सकता है। यह भी वहरी और तुरमुती की तरह हमारी वहुत परिचित शिकारी चिडिया है जिसे घने जगलो से ज्यादा खुले मैदान तथा खेतो का पास-पडोस भाता है। यही नही, इसे अक्सर शहरो मे चीलो की तरह ऊँची मीनारो पर बैठे या वही उडते देखा जा सकता हे। इसका मुख्य भोजन छोटी चिडियो के अलावा चूहे, छिपकलियाँ, टिड्डियाँ तथा इसी प्रकार के अन्य छोटे जीव है।

लगर अक्सर जोडे मे दिखाई पडते है। ये वहरी की तरह न तो तेज ही होते है और न उसके वरावर वहादुर ही, फिर भी इनकी उडान किसी से कम नही होती। शिकरा आदि की तरह कुछ लोग इन्हे भी चिडियो का शिकार करने के लिए पालते है।

लगर के जोडा वाँधने का समय जनवरी से अप्रैल तक रहता है जब ये किसी ऊँचे पेड या पुरानी इमारत के कार्निसो पर सूखी टहनियो का मामूली-सा घोसला वनाते है। मादा इसमे तीन से पाँच तक अण्डे देती है जो गुलाबीपन लिये सदली या पत्थरी रग के रहते है। इन अण्डो पर कत्थई या गहरे लाल रग की चित्तियाँ भी पडी रहती है।

एक वात आश्चर्य की है कि इनके घोसले प्राय ऐसे पेडो पर ही दिखाई पडते है जहाँ फाख्ता आदि के घोसले रहते है जो इनके शिकार या खूराक है। लेकिन अण्डा देने के समय ये वरावर अपने वच्चो के लिए खाना लेकर आया-जाया करते है और उस पेड के किसी भी पक्षी पर हमला नही करते।

चील

(KITE)

चील हमारी इतनी परिचित चिडिया हे कि इसके वारे मे ज्यादा वताने की आवश्यकता नही ह। शहरो मे तो यदि खाने की वस्तु सँभालकर न ले चले तो ये सडको पर से झपट्टा मारकर हाथ से उसको छीन ले जाती है। शिकारी चिडियो मे इससे ढीठ और शरारती कोई दूसरी चिडिया नही होती।

चील हमारे यहाँ की प्रसिद्ध बारहमासी चिड़िया है जो सारे देश में पायी जाती है। यह दो फुट लंबी होती है और अपनी दोफंकी दुम के कारण अन्य शिकारी चिड़ियों से बड़ी आसानी से पहचानी जा सकती है। इसके नर-मादा एक ही शकल-सूरत के होते हैं। इसका सारा बदन भूरे रंग का होता है जिसमें गुद्दी से गरदन तक के हिस्से में और पेट के कुछ हिस्से में पिलछौंह झलक रहती है। इसके सारे बदन पर बुलबुल की तरह गहरे रंग के सेहर से पड़े रहते हैं। इसकी चोंच काली और पैर पीले होते हैं।
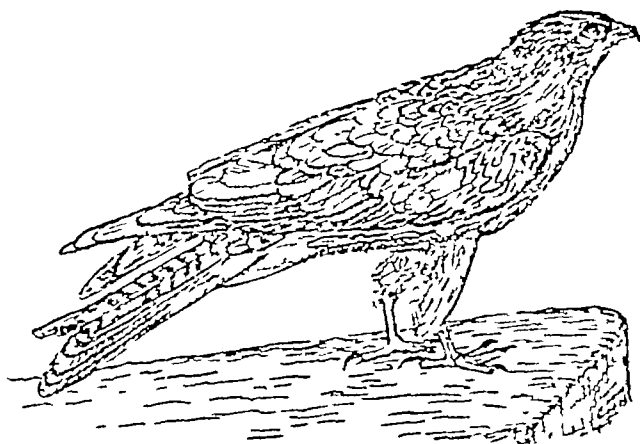
चील

चील उड़ने में बहुत उस्ताद होती है। हवा में यह ऐसी तेजी से उड़ती है जैसे हवा चीरती चली जा रही हो और फिर किसी खाने की चीज पर ऊपर से भरी सड़क पर ऐसी सफाई से झपट्टा मारती है कि क्या मजाल जो सड़क पर के बिजली के तार या खंभों से यह टकरा जाय। इसकी फुर्ती देखकर सचमुच बहुत आश्चर्य होता है। यह कौए की तरह सर्वभक्षी पक्षी है जिससे कोई भी चीज खाने से नहीं बचती। शहर के बूचड़खाने पर तो इनके झुंड के झुंड लोथड़ों के लिए बैठे रहते हैं। छोटे पशु-पक्षी, सरीसृप और कीड़े-मकोड़े के अलावा यह मुर्दा भी खाती है और इसे गिद्धों के साथ हम मरे हुए जानवरों के मांस में भी हिस्सा लगाते देख सकते हैं।

इसके अण्डा देने का समय सितम्बर से अप्रैल तक रहता है। यह घोंसला बनाने में भी अपनी ढिठाई का फायदा उठाती है और शहर तथा गाँवों के बीच के पेड़ों पर भी अपना घोंसला बनाने से नहीं हिचकती। समय आने पर यह सूखी टहनियों का भद्दा-सा घोंसला बनाती है जो किसी ऊँचे पेड़ या पुराने खड़हरों के भीतर के तानियों

पर रखा रहता हे। मादा इसमे दो-तीन अण्डे देती है जो सफेद या हलके सिलेटी रग के होते है और जिन पर कत्थई या लाल चित्तियाँ पडी रहती है।

गृद्ध-परिवार

(FAMILY VULTURIDAE)

गृद्ध-परिवार छोटा ही है जिसमे सब प्रकार के गिद्धो को एकत्र किया गया है। मुर्दा खाने की आदत से इनको शिकारी चिडियो के परिवार से अलग करके इनका एक अपना ही परिवार बना दिया गया है। इनकी निगाह सब चिडियो से अधिक तेज होती है। शिकारी चिडियो की तरह इनकी भी चोच टेढी और मजबूत होती है, पर इनके पजे और नाखून उनके जैसे मजबूत और तेज नही होते। इसीसे इन्हे शिकार न पकडकर मुर्दो से ही अपना पेट भरना पडता है।

गिद्ध गदे, भद्दे और बदशकल होते हुए भी हमारे लिए बहुत उपयोगी पक्षी है। ये चिडियो के मेहतर है और प्रकृति ने इन्हे सफाई का काम सौप रखा है। जहाँ कोई जानवर मरा या मरने के करीब हुआ कि ये आसमान मे चक्कर लगाकर उसके पास तेजी से उतरने लगते है और उसके मास को नोच-नोचकर खाना शुरू कर देते है। अगर ये न होते तो मरे हुए जानवरो की सडन से बीमारी फैल जाया करती।

इनकी वैसे तो कई जातियाँ है लेकिन यहाँ कुछ प्रसिद्ध गिद्धो का ही वर्णन दिया जा रहा है।

चमरगिद्ध

(WHITE-BACKED VULTURE)

गिद्धो की कई जातियाँ हमारे यहाँ पायी जाती है जिनमे चमरगिद्ध सब से बडा होता है। यह हमारे यहा काफी सख्या मे पाया जाता है। यह हमारे यहाँ का बारहमासी पक्षी है जिसके नर-मादा एक रग-रूप के होते है। इसका शरीर तीन फुट लबा और बनावट मे भारी रहता है, लेकिन इतना भारी शरीर लेकर भी यह अपने मजबूत पखो से हवा मे बडी तेज और ऊँची उडान कर लेता हे। गिद्ध आसमान मे काफी ऊँचा चला जाता है और दिन भर हवा मे उडता रहता हे। ऊपर से कोई शिकार देखकर यह बडी तेजी से नीचे उतरता है और फिर एक को देखकर दूसरे भी उसी स्थान पर उतरने लगते है।

चमरगिद्ध हमारे यहाँ प्राय सभी स्थानो मे पाये जाते है। इनका ऊपरी हिस्सा कलछौंह भूरा रहता है जिस पर एक सफेद चित्ता पडा रहता है। इनकी गरदन एकदम नगी रहती है जिस पर भूरे और सफेद रोयें रहते है। दुम और निचला हिस्सा भूरापन लिये काला रहता है और टागे और डैने का ऊपरी पिछला हिस्सा सफेद रहता है।

चमरगिद्ध

इनकी गरदन सिलेटी रग की और पैर कलछौंह रहते है। चोच का अगला हिस्सा गाढ सिलेटी और पिछला सफेद रहता है। ऊपरी चोच का सिरा आगे की ओर झुका रहता है जिससे इन्हे मास नोचने मे बडी आसानी हो जाती है।

भी कहते हैं। इसका मुख्य भोजन मरे हुए जीवो का मास तो है ही, साथ ही साथ यह गोबर तथा पाखाने से भी अपना पेट भरता है। इसी से इसे गोबरगिद्ध का नाम मिला है।

गोबरगिद्ध हमारे यहाँ का बहुत परिचित और ढीठ पक्षी है जो बारहो महीने हमारे देश मे ही रहता है। यह यहाँ प्राय सभी जगह पाया जाता है जहाँ इसे खुले मैदान मे अकेले इधर-उधर जमीन पर टहलते देखना कठिन नही है। इसके अलावा यह शहर के खाली ऊँचे मकानो पर भी बैठा रहता है और कभी-कभी आकाश में शिकार की तलाश में मँडराया करता है।
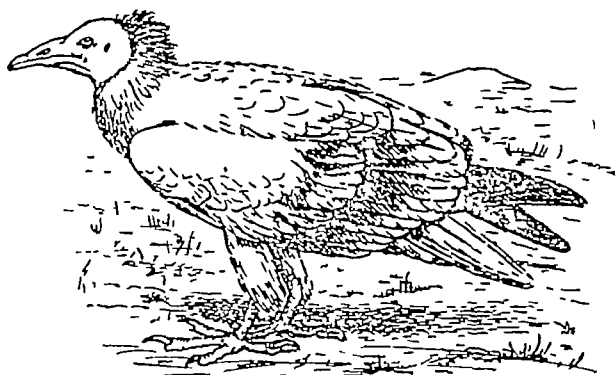
गोबरगिद्ध

यह २०-२२ इच का पक्षी है जिसके शरीर का रग गदा सफेद रहता है। इसके डैने काले और भूरे रहते हैं और गरदन बिना बालो की पीले रग की होती है। अन्य गिद्धो की तरह इसकी गरदन लबी नही होती और उसकी जड के पास छोटे और मुलायम परो का चारो ओर एक कठा-सा रहता है। इसकी चोच कुछ लबी रहती है जिसका रग गाढा सिलेटी रहता है। इसके पैर का रग प्याजी सफेद रहता है।

गोबरगिद्ध फरवरी से अप्रैल के बीच जोडा बाँधते हैं और तब ये किसी ऊँची मीनार, पेड, पुराने खडहर या पहाड की दराज मे अपना घोसला बनाते हैं। इसका घोसला सूखी टहनियो का होता है जो चीथडो और बाल आदि से मुलायम कर दिया जाता है। मादा इसमे अक्सर दो अण्डे देती है जो ललछौंह सफेद रग के होते हैं और जिन पर कत्थई चित्तियाँ पडी रहती हैं।

कुरर-परिवार

(FAMILY PANDIONIDAE)

इस छोटे परिवार मे केवल एक पक्षी हमारे यहाँ प्रसिद्ध है जिसे मछारग का नाम इसलिए मिला है कि इसका मुख्य भोजन मछली है।

यह बडा शिकारी पक्षी है जो कही-कही झुड मे भी रहता है लेकिन हमारे यहा यह प्राय अकेले या जोडे मे ही दिखाई पडता है। इसका घोसला बहुत बडा होता है। नीचे इसका वर्णन दिया जा रहा है।

मछारग

(OSPREY)

मछारग को यह नाम उसके मछली के शिकार के कारण ही मिला है जो उसके लिए सब तरह से उपयुक्त है। यह हमारे यहाँ का प्रसिद्ध शिकारी पक्षी है जो जाडो मे हमारे
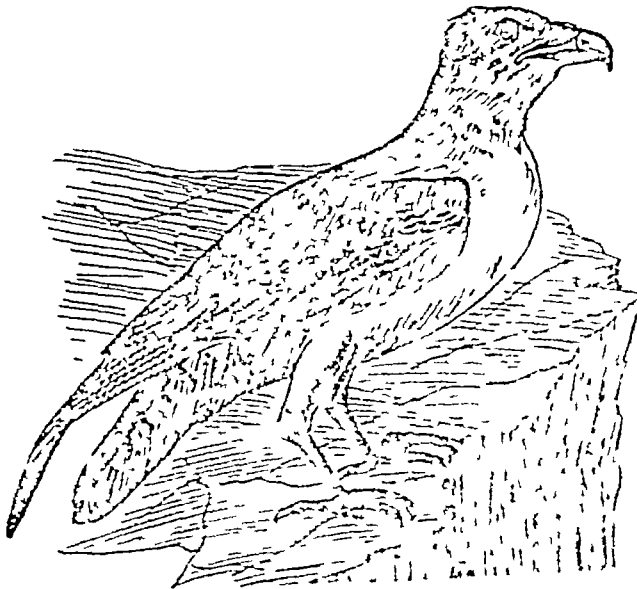
मछारग

देश मे चारो ओर मीठे और खारे पानी के किनारे फैल जाता है। यह या तो पानी के किनारे किसी ठूंठ या टीले पर बैठा रहता है या पानी के ऊपर मछली की ताक में उड़ता

रहता है और मछली को देखते ही पानी मे कौडिल्ले की तरह कूदकर अपने शिकार को पकड लेता है।

यह लगभग २०-२२ इच का पक्षी है जिसके नर-मादा एक रग-रूप के होते है। इसके शरीर का ऊपरी हिस्सा गाढा भूरा और नीचे का सफेद रहता है। इसका सिर सफेदी मायल रहता है जिस पर दोनो ओर एक-एक गाढी पट्टी पडी रहती है। चोच कलछौंह और पैर पीले रहते है।

मछारग हमारे यहाँ का मौसमी पक्षी कहा जा सकता है जो यहाँ जाडो में आकर चारो ओर फैल जाता है। इसकी और आदते यहाँ की शिकारी चिडियो की तरह होती है और यह ज्यादातर अपना पेट मछलियो से भरता है।

मयूर वर्ग

(ORDER GALLIFORMES)

इस वर्ग मे उन सब पक्षियो को एकत्र किया गया है जो अपने मास के लिए प्रसिद्ध है और जिनका हम लोग शिकार करते है।

वैसे तो शिकार की चिडियो मे कुछ लोग वत्तखो को भी शामिल कर लेते है क्योकि वे खाने के लिए काफी सख्या मे प्रति वर्ष मारी जाती है, लेकिन वास्तव मे शिकार की चिडियाँ वे ही है जिन्हे उनके सफेद मास के कारण इस वर्ग मे स्थान दिया गया है।

ये वैसे तो पेड पर रहनेवाले पक्षी है, लेकिन इनमे से अधिकतर ऐसे है जो अपना ज्यादा समय जमीन पर ही विताते है। तीतर आदि कुछ ऐसे जरूर है जिन्होने पेडो पर जाना एकदम छोड दिया है और जो वत्तखो की तरह लवी उडान नही करते लेकिन अपने छोटे, गोल और चौडे डैनो से ये जमीन से एकाएक हवा में उठ सकते है और थोडी दूर तक वडी तेजी से उड सकते है।

इनका मुख्य भोजन गल्ला, वीज और दाना है, लेकिन इनमे से ज्यादातर कीडे-मकोडे भी खाते है। इनकी चोच छोटी और कुछ टेढी होती है जो दाना चुनने के लिए वहुत उपयुक्त है। इनके गले के भीतर कवूतरो की तरह एक थैली होती है जो क्राप (Crop) कहलाती है। ये पहले उसी मे चुगा हुआ दाना भर लेते है जहाँ से वह

कुछ देर बाद इनके पेट मे पहुँचता है। इनके पेट की भीतरी दीवाल की मासपेशियाँ बडी मजबूत होती है। ये पक्षी दाने के साथ कुछ पत्थर के छोटे-छोटे टुकडे भी चुन लेते है जो इनके पेट की मास-पेशियो के चलने मे आपस मे रगड खाते है और उनके चुने हुए दाने को पीस डालते है।

ये पक्षी अपने रंगीन परो के लिए प्रसिद्ध है। मोर तो ससार का सबसे भडकीली पोशाकवाला पक्षी माना जाता है। मोर ही क्यो कुछ फेजेन्ट भी बहुत सुन्दर होते है जिनके परो का रग देखकर आश्चर्य-चकित रह जाना पडता है। इनके नरो को ही रगीन पोशाक मिली है, मादाएँ प्राय खैरी चितली रहती है। इनमे से कुछ के पैर में एक या दो-दो नोकीले खार रहते है जिनसे ये बडी भयकर लडाई लडते है।

यह बडा वर्ग वैसे तो दो उपवर्गों मे बँटा हुआ है, लेकिन यहा केवल मयूर उपवर्ग (Alectoropodes) के पक्षियो का ही वर्णन दिया जा रहा है जिसमे हमारे यहा के शिकार के प्राय सभी पक्षी आ जाते है।

मयूर उपवर्ग

(SUB ORDER ALECTOROPODES)

मयूर उपवर्ग मे प्राय सभी प्रसिद्ध पक्षी आ जाते है जिनकी विशेषताओ के बारे मे ऊपर लिखा जा चुका है।

यह उपवर्ग वैसे तो दो परिवारो मे विभक्त है—लेकिन पहला मोर-परिवार (Family Phasianidae) काफी विस्तृत और बडा है जिसमे प्राय शिकार के सब पक्षी आ जाते है। यहा इसी का वर्णन आगे दिया जा रहा है।

मोर-परिवार

(FAMILY PHASIANIDAE)

मोर-परिवार के पक्षी अपनी रंगीन पोशाक और स्वादिष्ट मास के लिए ससार मे प्रसिद्ध है। इनमे छोटे-बडे सभी प्रकार के पक्षी है जो जमीन पर बडी तेजी से दौड लेते है और खतरा पास आने पर फौरन हवा मे उड जाते है।

इस परिवार मे वैसे तो बहुत-सी जातियो के पक्षी है, लेकिन यहाँ केवल निम्न-लिखित जातियो की चिडियो का वर्णन दिया जा रहा है जिनसे हम सभी परिचित है और जो हमारे देश की प्रसिद्ध चिडियाँ मानी जाती है।

१ मोर (Peacocks)

२ मुरगियाँ (Jungle Fowls)

३ फेजेण्ट (Pheasants)

४ तीतर (Partridges)

५ बटेर (Quails)

६ लवा (Button Quails)

इन सबका मास सफेद होता है और इनका मुख्य भोजन दाना, बीज और कीडे-मकोडे है। ये ज्यादा समय खुले मैदानो मे बिताते है और जमीन पर ही घास-फूस रखकर किसी झाडी मे अडे देते है।

मोर

(PEACOCK)

मोर हमारे यहाँ का सबसे सुन्दर पक्षी माना जाता है। जैसी राजसी पोशाक इसको प्रकृति ने दी है वैसी हमारे यहाँ के किसी भी पक्षी को नही मिली है। अपनी नीली मखमल-जैसी गरदन और लबी सतरगी दुम से यह हमारे बाग-बगीचो की शोभा दुगुनी कर देता है। बरसात मे जब यह अपनी दुम को गोलाकार फैलाकर नाचने लगता है तो इसकी शोभा देखते ही बनती है।

मोर हमारे यहाँ का बारहमासी पक्षी ही नही, एकदम हमारे ही देश का पक्षी है, जो यहाँ के सिवा और किसी देश मे नही पाया जाता। यहाँ यह सारे देश मे फैला हुआ है और हिमालय पर भी यह पाच हजार फुट तक चला जाता है। इसके नर और मादा एक रग-रूप के नही होते और नर जितना ही सुन्दर और भडकीला होता है, मादा उतनी ही भद्दी और बदरग होती है।

नर मादा से कद मे कुछ बडा होता है। उसकी लबाई बिना दुम के जहा ४०-४५ इच की होती है वही मादा ३८ इच से ज्यादा बडी नही होती। अपनी लबी दुम के

साथ नर करीब ९० इंच का हो जाता है। मोर के रंग-रूप का वर्णन आसान नहीं है क्योंकि इसकी पोशाक में रंगों की ऐसी भरमार रहती है कि उसका ठीक-ठीक अंदाजा इसे देखकर ही लगाया जा सकता है। इसका ऊपरी हिस्सा सिलेटी-मायल हरा रहता है जिस पर काले सेहर पड़े रहते हैं। गरदन गाढ़ चमकीली नीले रंग की रहती है और सिर पर के छोटे घुंघराले पर हरे रंग के रहते हैं। इसके सिर पर एक सुन्दर कलँगी रहती है जिसके सिरे पर चमकीले, नीले और हरे रोयें रहते हैं। इसकी गरदन के बाद का कुछ निचला हिस्सा चमकीला हरा रहता है और डैने भूरे रंग के होते हैं। दुम भी भूरी रहती है, लेकिन उसके ऊपर के लंबे पर, जिसे हम इसकी दुम कहते हैं, काफी बड़े और सुन्दर होते हैं। इनमें से कुछ सिरे पर जाकर गोल हो जाते हैं जिसमें गाढ़ा नीले रंग का अर्द्धचन्द्राकार चिह्न बना रहता है।

मोर

मादा भूरे रंग की होती है जिसके सिर पर नर की तरह कलँगी जरूर रहती है, लेकिन इसके अलावा इसकी पोशाक नर की तरह चटकीली नहीं होती। इसका ऊपरी हिस्सा भूरा और निचला बादामीपन लिये सफेद रहता है। गरदन का निचला हिस्सा जरूर हरा रहता है, लेकिन इसके नर की तरह लंबी दुम नहीं होती। दोनों की चोंच हरछौंह, सिलेटी और पैर सिलेटी भूरे रहते हैं।

मोर वैसे तो शिकार की चिडियो की श्रेणी मे आता हे, लेकिन कुछ तो इसकी सुन्दरता के कारण और कुछ धार्मिक विचारो के कारण हमारे देश मे हिन्दू लोग इसे वहुत कम खाते है। यही कारण हे कि ये इतने ढीठ हो गये है कि इन्हे हम अपने वाग-वगीचो तथा खेतो मे आजादी से घूमते देखते है।

मोर सर्वभक्षी पक्षी कहा जा सकता हे जो दाना और गल्ला के अलावा कीडे-मकोडे, छिपकलियाँ और छोटे-मोटे साँप तक खा लेता है। यह अन्य चिडियो की तरह जोडा नही वाँधता वल्कि एक नर के साथ कई मोरनियाँ रहती है। इनके अण्डा देने का समय जून से अगस्त तक रहता हे, जव मादा किसी झाडी मे जमीन पर ही घास-फूस रख कर पाँच-सात अण्डे देती हे। ये अण्डे वादामी या मटमैले होते है और उनपर कुछ ललाई भी झलकती रहती है।

जगली मुरगी

(RED JUNGLE FOWL)

जगली मुरगी शकल-सूरत ही मे नही रगरूप मे भी वहुत-कुछ हमारी पालतू देशी मुरगियो की तरह होती हे। इसके मुरगो के सिर पर भी लाल कघीनुमा मास की चोटी या खेस ओर गरदन के नीचे उसी तरह की लाल मास की थैली लटकती रहती ह जैसे हमारे पालतू मुरगो के होती हे।

जगली मुरगी हमारे यहाँ की वारहमासी चिडिया हे जो हमारे देश के उत्तरी और पूर्वी भागो मे ज्यादा सख्या मे पायी जाती हे। दक्षिण की ओर यह गोदावरी के आगे वहुत कम पायी जाती हे, लेकिन मध्यभारत और मध्यप्रान्त के जगलो मे यह कही-कही दिखाई पड जाती हे। वैसे तो यह हिमालय पर पाँच हजार फुट तक पायी जाती ह लेकिन इनकी ज्यादा सख्या तराई के ऐसे जगलो मे मिलती हे जहाँ ज्यादा नमी रहती ह।

इनके नर-मादा अलग-अलग रग-रूप के होते है। नर दो सवा दो फुट लवा और वहुत भडकीली पोशाकवाला होता हे। मादा डेढ फुट से ज्यादा वडी नही होती। नर का सिर और गरदन सुनहली पीली, पीठ गहरी भूरी, डैने ऊपर कत्थई, नीचे काले, जिनमे हरे और नीले पर और नीचे का हिस्सा काला रहता हे। दुम नारगी होती है। लेकिन उन के लवे पर काले रहते है जिनमे हरी और नीली चमक रहती ह।

दुम के बीच के दो पर काफी लम्बे रहते हैं। मादा का सिर और गरदन कत्थई काला, पीठ पर काले और भूरे मेहर-से, डैने भूरे और नीचे का हिस्सा हलका कत्थई रहता है। दोनो की चोच गाढी भूरी और पैर गाढे सिलेटी रहते है।

जगली मुरगियाँ दिन मे ज्यादातर झाडियो मे घुसी रहती है, लेकिन शाम और सवेरे इनका गरोह झाडियो से निकलकर मैदानो मे खूराक की तलाश मे घूमने लगता है। इनकी मुख्य खूराक दाने, बीज और कीडे-मकोडे है। इनका मास बहुत स्वादिष्ठ होता है।
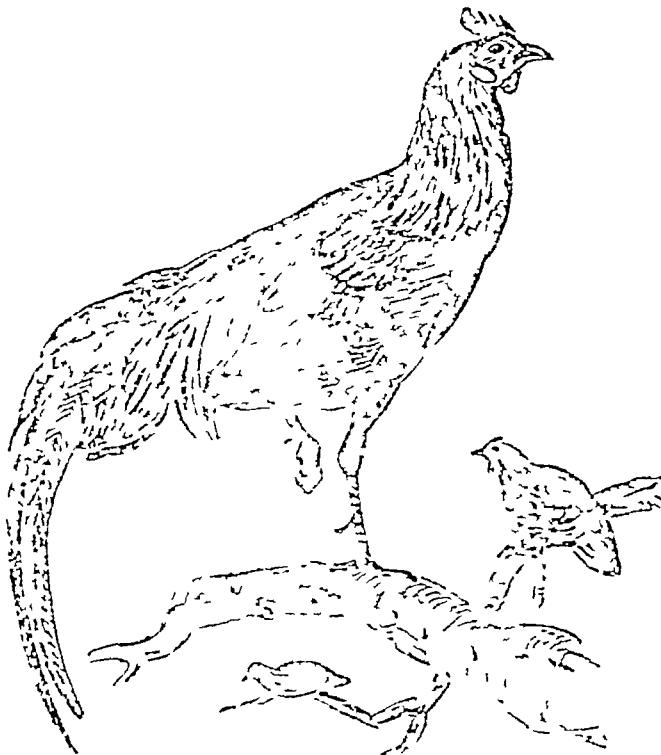
जगली मुरगी

जगली मुरगियो का अण्डा देने का एक खास समय नही है। इनके अण्डे अक्टूबर से नवम्बर तक तथा मार्च से मई तक मिलते है, जिन्हे मादा किसी झाडी मे छिछला-सा गड्ढा बनाकर और उसमे घास-फूस रखकर देती है। अण्डे प्राय ५–७ होते है जिनका रग हल्का बादामी रहता है।

फेज़ेण्ट

(PHEASANT)

फेज़ेण्ट वास्तव मे वे पहाडी मुरगियाँ है जो अपनी भडकीली पोशाक के कारण मुरगियो से भिन्न जान पडती है। ये मैदानो मे नही पायी जाती और इनमे से कुछ तो एक दम बरफिस्तान मे ही अपना सारा समय बिताती है।

चेड फेज़ेण्ट

इनकी वैसे तो कई जातियाँ है जो हमारे यहाँ हिमालय प्रदेश मे पायी जाती है लेकिन यहा केवल चेड फेजेण्ट (Cheer Pheasant) का वर्णन दिया जा रहा है जो हमारे यहाँ का बहुत प्रसिद्ध फेज़ेण्ट है। चीड के जगलो मे अपना अधिक समय बिताने के कारण इसका नाम चीड फेज़ेण्ट (Cheer Pheasant) पड गया है। पहाड मे इसे 'चेड' कहते है।

चेड हिमालय मे ६–७ हजार फुट तक के जगलो मे काफी सख्या मे पाये जाते है। इन्हे घने जगलो से ज्यादा तितरे-बितरे जगल पसन्द है।

चेड हमारे यहाँ के बारहमासी पक्षी हैं जिनके नर-मादा रगरूप मे एक ही जैसे होकर भी कद मे छोटे-बडे होते हैं। नर लगभग ४० इच का होता है लेकिन मादा की लबाई ३० इच मे ऊपर नही जाती। इनका बदन चित्तीदार होता है और आख के चारो ओर की खाल चटक लाल रग की रहती है। इनकी चोच भूरापन लिये निलेटी और पैर भूरे रग के होते हैं। चेड की दुम लगभग दो फुट लबी होती है जिससे इन्हे उडने मे उतनी आसानी नही रह जाती। वे तीतरो की तरह खतरा निकट देखकर पहले जमीन पर भागना ही पसन्द करते हैं लेकिन अधिक दबाव पडने पर इन्हे उडने के लिए मजबूर होना पडता है। इनकी उडान सुस्त-सी होती है और ये थोडी दूर जाकर या तो जमीन पर उतर पडते हैं या पेडो पर जा बैठते हैं।

चेड के शिकार के लिए लोग कुत्तो का सहारा लेते हैं। एक ओर से कुछ आदमी कुत्तो के साथ इन्हें हाँकते हैं और दूसरी ओर कुछ लोग बदूक लेकर खडे रहते हैं जो इनके उडने पर इन्हे बदूक से मार गिराते हैं। इनका मास स्वादिष्ठ होता है।

चेड का मुख्य भोजन पेड-पौधो की नरम जडे है, लेकिन यह फलफूल, दाना, बीज और कीडे-मकोडे भी बडे स्वाद से खाता है। इसके अण्डा देने का समय अप्रैल से जून तक है जब मादा किसी झाडी या घास के बीच घोसला बनाकर ८ से १४ तक अण्डे देती है जिनका रग धुमैला सफेद या पत्थरी रहता है।

तीतर

(GREY PARTRIDGE)

तीतर हमारा बहुत परिचित पक्षी है जिसे अक्सर लोग लडाने के लिए पालते हैं। आज भी हमारे यहाँ शायद ही कोई गाव ऐसा होगा जहा एक-दो तीतर के शौकीन न मिल जायें। पालतू हो जाने पर यह अपने मालिक के पीछे-पीछे कुत्ते की तरह फिरा करता है।

तीतर हमारे यहा का बारहमासी पक्षी है जो हमारे देश के प्राय सभी सूखे स्थानो मे पाया जाता है। इसे झाडियोवाले खुले मैदान बहुत पसन्द हैं। यह १०–१२ इंच का छोटा शिकार का पक्षी है जिसका मास बहुत ही स्वादिष्ठ होता है। इसके नर और मादा एक शकल-सूरत के होते हैं लेकिन नर की टांगो मे एक एक खार रहता है जिसे यह लडने के समय इस्तेमाल करता है।

तीतर का शरीर हलके बादामी रंग का होता है जिसमें सिर और गरदन को छोडकर सारे शरीर पर भूरी धारियो की लहरियाँ पडी रहती हैं। इसकी गरदन और सिर पर भी भूरे चिह्न पडे रहते है और चोच गाढी सिलेटी तथा पैर लाल रहते है।

तीतर प्राय जोडे मे रहते है लेकिन जहाँ इनकी सख्या ज्यादा होती है वहा ये ८–१० के गरोह में दिखाई पडते हैं। ये झाडियो के आस-पास ही मैदान मे चरते रहते है और जैसे ही किसी की आहट मिली नही कि फौरन भागकर इधर-उधर झाडियो मे छिप जाते है। ये हवा मे उडने से ज्यादा जमीन पर भागना ही पसन्द करते है। खतरा निकट देखकर वडी तेजी से उडकर थोडी ही दूर पर जाकर फिर बैठ जाते है और जमीन पर वडी तेजी से भागकर किसी झाडी मे छिप जाते है। इनका मुख्य भोजन वैसे तो दाना और बीज आदि है लेकिन ये कीडे-मकोडे भी खूब खाते हैं। दीमक तो इन्हे खास तौर पर पसन्द है।
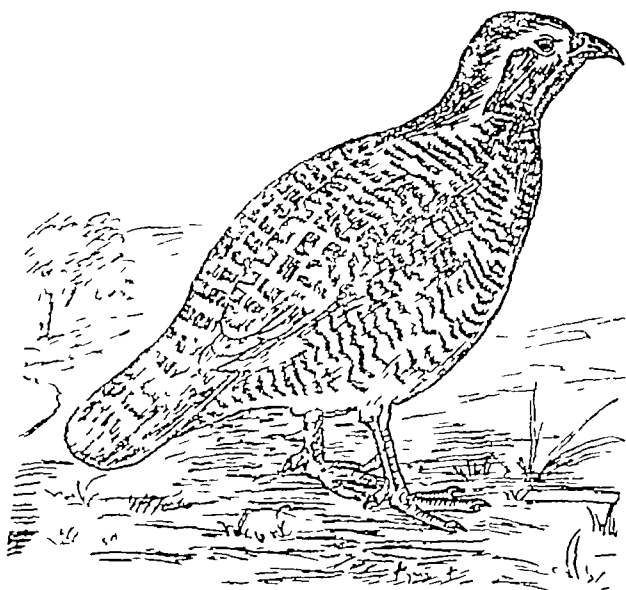
तीतर

इनके अण्डा देने का समय फरवरी से जून तक रहता है लेकिन इनमे से कुछ सितम्बर अक्टूबर मे दूसरी बार फिर अण्डा देते है। ये घोसला नही बनाते वल्कि मादा किसी

झाडी में छिछला गढा बनाकर और उसमे घास-फूस रखकर ६ से ९ तक अण्डे देती है जो मटमैले रग के रहते है।

तीतर की एक और जाति हमारे यहाँ पायी जाती है जो काले रग की होती है। इसे वैसे तो काला तीतर (Black Partridge) कहा जाता है, लेकिन उसकी बोली के कारण इसे 'सुभान तेरी कुदरत' भी कहा जाता है। यह ज्यादातर हमारे यहा कछारो और खादरो मे पाया जाता है और देखने मे बहुत ही सुन्दर लगता है।
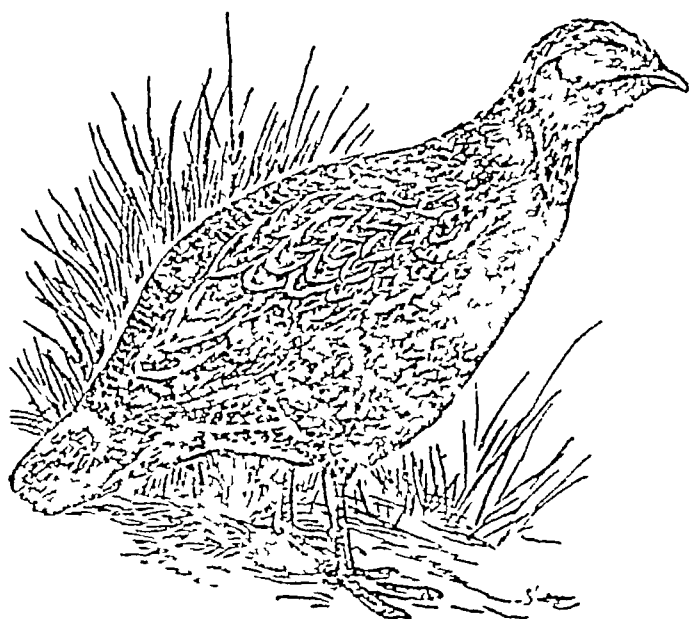
काला तीतर

इसके नर का ऊपरी रग काला रहता है जिस पर सफेद सीधी आडी धारिया और चित्ते पडे रहते है। गले मे कत्थई कठा, सीना काला और निचला हिस्सा गहरे भूरे रग का होता है जिसमे सफेद धारिया पडी रहती है। डैने कत्थई रहते है और आख के नीचे एक सफेद चित्ता पडा रहता है। मादा का ऊपरी हिस्सा तो नर के ही जैसा रहता है, लेकिन उसके काले रग का स्थान गाढा कत्थई ले लेता है। मादा के गले का कठा भूरा और नीचे का हिस्सा बादामी रहता है। दोनो की चोच काली और पैर भूरापन लिये लाल रग के होते है।

इसकी बाकी सब आदतें भूरे तीतर की तरह होती है इसलिए उन्हें फिर से दुहराने की आवश्यकता नही प्रतीत होती।

बटेर

(QUAIL)

बटेर को तीतर का छोटा भाई कहना ही ज्यादा मुनासिब होगा। ये शकल-सूरत में ही नही, रहन-सहन मे भी तीतरो से मिलते-जुलते होते है। इनकी वैसे तो कई जातियाँ है, पर हमारे यहाँ दो ही वटेर खास तौर पर आते है। बडे घाघस और छोटे चिनिग बटेर कहलाते है।

घाघस मौसमी बटेर है जो हमारे यहाँ जाडे के शुरू होते-होते उत्तर पश्चिम से आकर दक्षिण भारत की ओर बढते जाते है। जाडा खतम होते ही ये फिर दक्षिण से लौटने लगते है और खेत की कटाई के साथ ही साथ हमारे प्रान्त को छोडकर उत्तर पश्चिम की ओर चले जाते है।
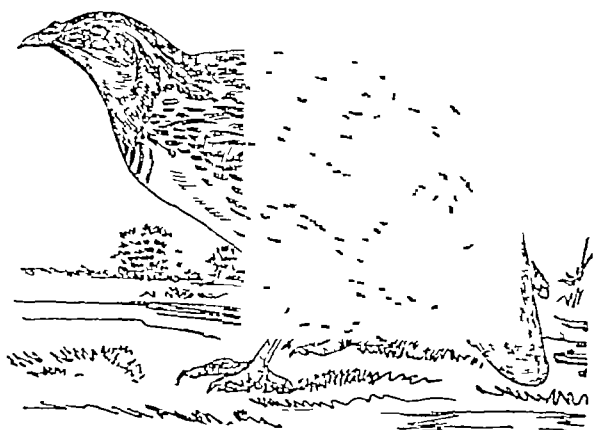
घाघस बटेर

इसके नर और मादा मे बहुत थोडा ही फर्क रहता है। नर के सिर पर काली या कत्थई धारियाँ और दोनो आँखो के ऊपर और बीच सिर में बादामी खडी धारी रहती है। ऊपर का रग भूरा होता है जिस पर सफेद और कत्थई खडे चिह्न रहते है। डैने भूरे होते है जिनमे पहला पख छोडकर बाकी मे ललछौंह पटरियाँ पटी रहती

हैं। दुम गाढ़ी कत्थई रहती है जिसमे बादामी लकीरे होती है। गला सफेद रहता है जिसमे नर के लगरनुमा काला चिह्न रहता है। इनका सीना ललछोह बादामी रहता है जिसमे हलके रग की धारियाँ रहती है। मादा के गले पर लगरनुमा काला चिह्न नही रहता, लेकिन उसकी जगह उसके सीने पर काली चित्तिया पड़ी रहती है।

दोनो की आख की पुतली हलकी बादामी, चोच सिलेटी भूरी और पैर पीले होते है।

बटेर ८ इच की छोटी-सी गोल चिड़िया है जो तीतर की तरह उड़ने से कही ज्यादा भागकर झाड़ियो में दबकना पसन्द करती है। इसे जब मजबूर होकर उड़ना ही पड़ता है तो यह किसी ओर जाने से पहले सीधी आसमान की ओर उड़ती है।

यह दाना भी चुग लेती है और कीड़े-मकोड़े से भी परहेज नही करती। इसका शिकार लोग बदूक से भी करते है और इसे जाल मे भी फँसाते है। इसका मास काफी स्वादिष्ट होता है।

बटेर भी तीतरो की तरह लड़ाने के लिए पाले जाते है और शहरो मे इस युग मे भी बटेरबाज काफी सख्या मे देखे जा सकते है जो इनकी लड़ाई पर सैकड़ो की बाजियाँ लगा देते है।
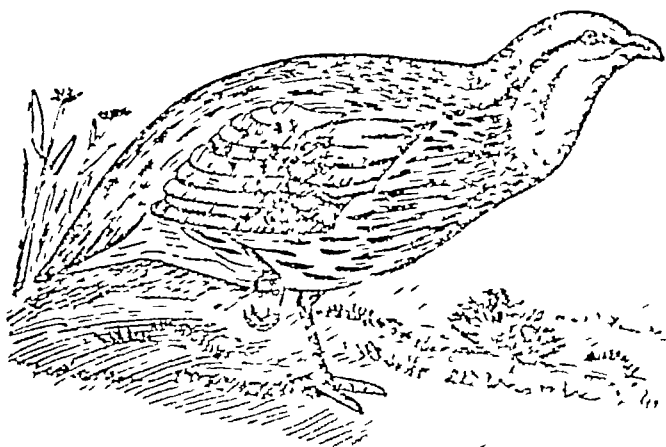
चिनिग बटेर

दूसरा चिनिग बटेर चायस से कुछ छोटा होता है। इसके रगरूप मे केवल इतना ही फर्क रहता है कि इसके डैने भूरे और सफेद होते है और इसका सीना काला रहता है।

यह हमारे यहाँ का वारहमासी पक्षी है जो जरूरत पडने पर थोडा-वहुत स्थान-परिवर्तन जरूर कर लेता है, पर अपना देश छोडकर वाहर नही जाता।

इसकी वाकी और सव आदते घाघस से मिलती है। कुछ लोगो का तो यह ख्याल है कि शिकारियो से जो घाघस वटेर घायल होकर यहाँ रह गये थे उन्ही से इन चिनिग वटेरो की नस्ल चली है जो अव यहाँ के बारहमासी पक्षी हो गये है।

घाघस तो अपने अण्डे तिव्वत या कश्मीर की तराई में जाकर देता है, पर चिनिग की मादा वरसात मे यही किसी झाडी या खुले मैदान में ४ से ६ तक अण्डे देती है। अण्डे देने के लिए जमीन पर ही मामूली गढा वनाया जाता है क्योकि यह पक्षी पेड पर कभी नही बैठता। इस गड्ढे मे घास-फूस का अस्तर दे दिया जाता है जिससे यह नरम रहे।

इसके अण्डे हलके पीले से लेकर गहरे वादामी तक होते है जिन पर काली बैगनी और भूरी चित्तियाँ पडी रहती है।

लवा

(BUTTON QUAIL)

लवा वटेर से भी छोटा पक्षी है। शिकार की चिडियो मे इससे छोटा पक्षी और दूसरा नही होता। कद में यह ५–६ इच से ज्यादा वडा नही होता।

लवा

लवा हमारे यहाँ का वारहमासी पक्षी है जो खेत के आस-पास की घास या सरपत

के बूटों में रहता है। ये १०–१२ के गरोह में निकलते हैं पर आहट पाने पर फौरन ही छिप जाते हैं।

इनके नर-मादा के रंग में थोड़ा ही फर्क रहता है। वैसे दोनों भूरे रंग के होते हैं जिनके पेट पर छोटी-छोटी काली बिन्दियाँ पड़ी रहती हैं पर नर के सिर पर की सफेद और काली धारियों में कुछ फर्क रहता है।

नर का ऊपरी हिस्सा भूरा, सिर कलछौंह जिस पर माथे के पास काली और सफेद धारी, सीना गुलाबीपन लिये सिलेटी और पेट पीलापन लिये हलका गेरा रहता है। पेट पर छोटी-छोटी काली बिन्दियाँ रहती हैं और गला सफेद रहता है।

मादा के निचले हिस्से का रंग धूमिल होता है और उसके सीने पर काली बिन्दियाँ नहीं होतीं। उसके सिर या माथे पर काली और सफेद धारी भी नहीं होती और कद में भी वह नर से कुछ छोटी होती है। दोनों की आँख की पुतली भूरी और चोंच तथा पैर लाल होते हैं।

मादा साल में दो बार अण्डे देती है। पहले जनवरी से मार्च तक, फिर सितम्बर से अक्टूबर तक। यह किसी झाड़ी के नीचे एक छिछला गड्ढा खोदकर अण्डे देने की जगह बना लेती है जिसमें यह हल्के बादामी रंग के १०–११ अण्डे देती है।

क्रौञ्च वर्ग

(ORDER GRUIFORMES)

इस वर्ग में सारस, क्रौञ्च आदि बड़े कद और लंबी टाँगों के पक्षियों के साथ छोटे कद के जलकुक्कुट भी रखे गये हैं जो प्रायः जलाशयों के किनारे अपना जीवन बिताते हैं। इनको इसीलिए जलचारी पक्षी कहा जाता है।

ये पक्षी जलाशयों के आस-पास के कीचड़ में अपना समय बिताते हैं और कभी-कभी खुश्की पर भी रहते हैं। इनका मुख्य भोजन घास-फूस, जड़, गल्ला, दाना और बीज है लेकिन ये मेढक और छिपकली आदि छोटे जीवों को भी खा लेते हैं। ये वैसे तो कई परिवारों में बाँटे गये हैं, लेकिन यहाँ नीचे के दो परिवारों का ही वर्णन किया जा रहा है जिनमें के बहुत से पक्षी हमारे देश में पाये जाते हैं।

१ क्रौञ्च-परिवार—Family Gruidae

२ जलकुक्कुट-परिवार—Family Rallidae

क्रौञ्च-परिवार

(FAMILY GRUIDAE)

क्रौञ्च-परिवार मे सारस, करकरा, कूंज आदि लबी टाँगवाले पक्षी है जो देखने में महावको जैसे ही जान पडते है लेकिन इन पक्षियो की गरदन लबी होते हुए भी उनकी चोच महावको जैसी लबी नही होती। इसके अलावा इनकी चोच में एक खास बात यह रहती है कि उसमे घरारे कटे रहते है जो महावको की चोच मे नही रहते। इनका मुख्य भोजन तो घास-पात और गल्ला है लेकिन ये मेढक छिपकिली आदि भी खा लेते है।

ये अक्सर झुड मे रहनेवाले पक्षी है जिनमें से कुछ जोडा बाँधकर अलग-अलग भी रह जाते है। जोडा बाँधने के समय ये मादा को रिझाने के लिए पर फैलाकर बडा सुन्दर नृत्य करते है। नाच समाप्त होने पर ये अपनी लबी गरदन झुकाते है और फिर हवा में उछल जाते है और इस प्रकार मादा को रिझाकर उससे जोडा बाँध लेते है।
ये न तो वृक्षो पर बैठते है और न वृक्षो पर अपना घोसला ही बनाते है। इनका घोसला जमीन पर ही रहता है जो देखने मे घासपात और नरकुलो का ढेर-सा जान पडता है। इसी मे मादा अण्डे देकर सेने के लिए बैठती है।

इस परिवार मे वैसे तो कई जातियो के पक्षी है, लेकिन यहाँ केवल तीन पक्षियो के वर्णन दिये जा रहे है जो हमारे यहाँ के परिचित पक्षी हैं।

कूंज

(COMMON CRANE)

कूंज को कुलग भी कहा जाता है। वैसे इनका शुद्ध सस्कृत नाम क्रौञ्च है जो हमारे यहा के सारस की जाति के प्रसिद्ध पक्षी है। हमारे देश में ये जाडो के प्रारभ मे आते है और गरमियो के शुरु होते-होते फिर यहाँ से वापस चले जाते है। यहाँ ये उत्तरी भारत के ही जलाशयो के पास रहते है और दक्षिण भारत की ओर नही जाते। इनका असली निवासस्थान यूरोप, चीन और मगोलिया है जहाँ से ये अफगानिस्तान और पाकिस्तान होकर हमारे यहाँ जाडो मे आते है।

कुलग लगभग ४५ इच लबे पक्षी है जिनके नर-मादा एक-जैसे होते हैं। इनके शरीर का रग राख-जैसा रहता है, लेकिन डैने के कुछ पर काले रहते है। चोटी और आँख

एक कलछौंह मिलेटी तिकोना चिह्न पड़ा रहता है और सिर के दोनों ओर आँखों के नीचे से एक-एक सफेद पट्टी चली जाती है। इनकी गरदन, ठुड्डी और गाल कलछौंह रहते हैं। चोंच कलछौंह हरे रंग की रहती है और पैर काले रहते हैं। दुम के पर उठे-उठे-से और घुंघराले रहते हैं।
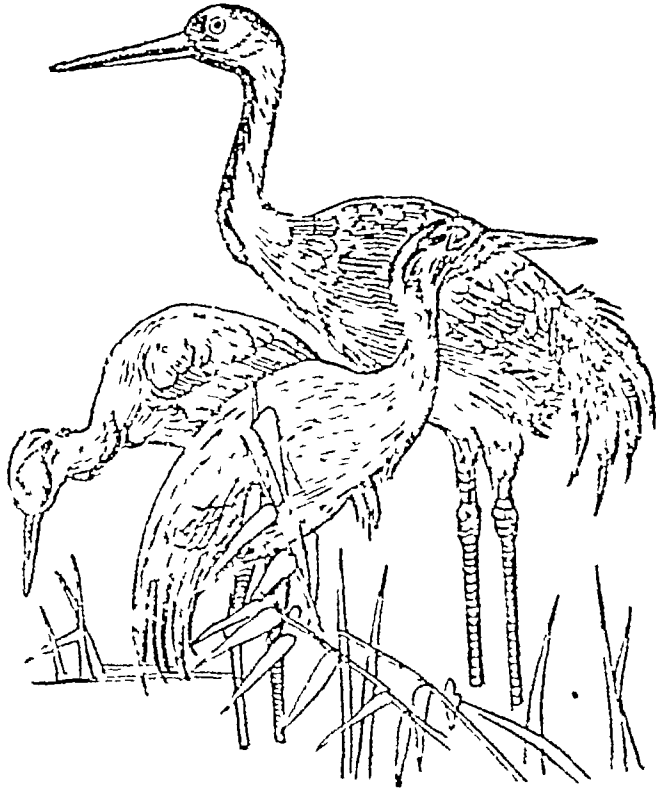
कूँज

कूँज सारस की शकल-सूरत की चिड़िया है जो कद में सारस से छोटी और करकरा से बड़ी होती है। यह करकरा की तरह गरोहों में रहती है और अक्सर इन्हें और करकरा के झुंड एक साथ ही दिखाई पड़ते हैं। इन दोनों की शकल-सूरत भी इतनी मिलती-जुलती रहती है कि अक्सर दोनों में धोखा हो जाता है। इनके गोल दो-दो सौ और तीन-तीन सौ तक के होते हैं।

कूँज वैसे तो बड़े जलाशयों के निकट दिखाई पड़ते हैं लेकिन इन्हें बड़ी नदियों के किनारे रहना भी अधिक भाता है। ये उड़ते समय आकाश में एक सीधी पंक्ति बनाकर

उडते है जो बहुत दूर तक आकाश में फैली हुई दिखाई पडती है। इनकी बोली बहुत कर्कश होती है, जिससे रात में अथवा दूर रहने पर भी इनकी उपस्थिति का पता लग जाता है। इनकी चराई का समय सुबह और शाम को रहता है और जिस खेत में इनका गरोह पडता है उसको साफ ही कर देता है। दिन और रात मे ये किसी झील या नदी के किनारे आराम करते रहते है। इनका मुख्य भोजन हरी फसल के नरम कल्ले और गल्ला है, लेकिन ये कीडे-मकोडे, घोघे और मछलियाँ भी खा लेते है। इनका मास खाने में कडा रहने पर भी अच्छा होता है।

कूज हमारे देश मे अण्डे नही देते। इसके लिए वे फिर अपने देश लौट जाते है जहाँ मादा किसी दलदल के आसपास जमीन पर सूखी टहनियो आदि का ऊँचा घोसला बनाकर दो अण्डे देती है, जो हरछौह भूरे रग के होते है।

करकरा

(DEMOISELLE CRANE)

कूंज या कुलग की तरह करकरा भी सारस की जाति की लबी टाँगवाली मौसमी चिडिया है जो जाडो के प्रारम्भ में यहाँ आकर जाडो के अन्त मे यहाँ से लौट जाती है। कुलग की तरह करकरा सिर्फ उत्तरी भारत में ही नही रहते बल्कि इनके हजारो के गोल दक्षिण भारत की ओर भी जाडो मे दिखाई पडते है। इनकी भी चराई का समय सुबह और शाम है और दिन और रात में ये किसी बडी झील या नदी के किनारे आराम करते रहते है।

करकरा करीब ३२-३३ इच का पक्षी है जिसके नर-मादा एक ही रग-रूप के रहते है। इनके सारे शरीर का रग हलका सिलेटी होता है लेकिन गरदन का निचला हिस्सा काला रहता है। गरदन का यह काला रग इनके सीने तक फैल जाता है जहाँ के पर औरो मे बडे रहते है। इनकी आँखो के पीछे थोडे से सफेद मुलायम पर रहते है जिनसे इन्हे पहचानने मे जरा भी दिक्कत नही पडती। इनकी चोच गदी हरी और पैर काले होते है।

करकरा की बोली काफी तेज और कर्कश होती है और जब ये जाडो मे हमारे यहाँ आने लगते है तो इनकी बोली से इनका आना छिपा नही रहता। इनका भी मुख्य भोजन घास-पात और फसल के नरम कल्ले है जिनके अलावा ये कीडे-मकोडे,

घोंघे, कटुए और मेढक मछली भी खा लेते हैं। करकरा भी आसमान मे पक्ति वाँधकर उडते है और इनकी भी वडी लवी पक्ति आसमान मे फैल जाती है। इनका मास कुलग की तरह कडा और मामूली होता है।

मौसमी पक्षी होने के कारण करकरा भी हमारे देश मे अण्डा नही देते और इसके लिए उन्हे अपने देश लौट जाना पडता है। इनके जोडा वाँधने का समय मई से जून तक रहता है जब मादा दलदलो के आस-पास या जगलो मे जमीन पर घासफूस का ऊँचा और भद्दा-सा घोसला बनाकर दो अण्डे देती है। ये अण्डे हरापन लिये भूरे या सिलेटी रग के होते है जिन पर कत्थई चित्तियाँ पडी रहती है।
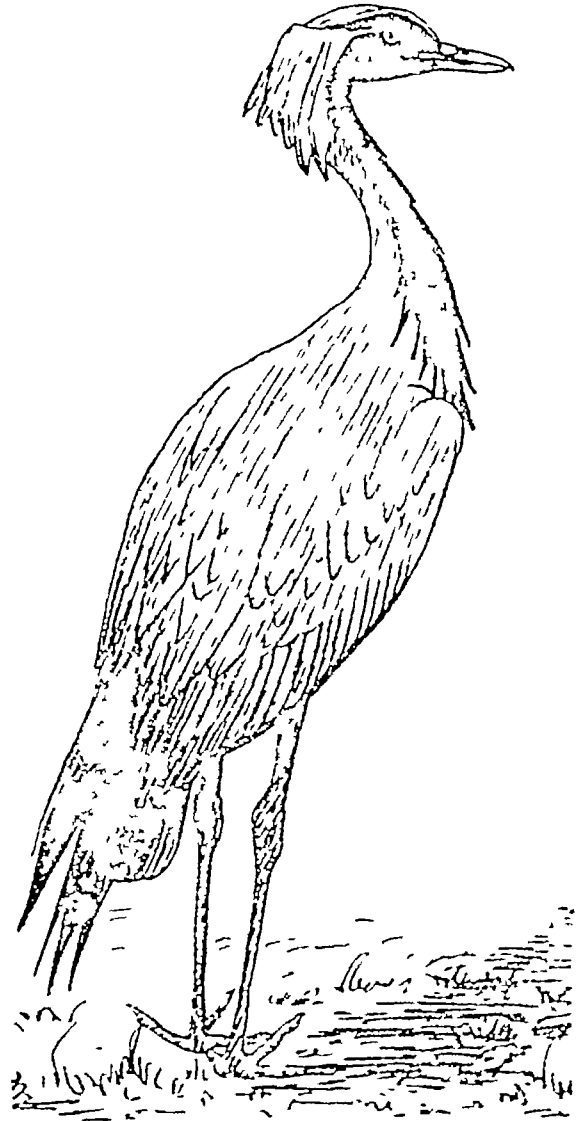
करकरा

सारस

(SARAS CRANE)

सारस हमारे यहाँ की सबसे वडी चिडिया है। ऐसे हम लोगो ने इसे न देखा हो, यह मुमकिन नही। पाच फुट की इस चिडिया से शायद ही कोई गाँव खाली रहता हो।

इसे ज्यादातर लोग मारते नही, इससे ये काफी निडर हो गयी है पर वहुत पास जाने पर वडी कर्कश वोली वोलकर और अपने भारी पखो को मारकर ये आसमान में उडती हैं। उडते समय इन्हे कुछ दूर दौडना पडता है और हवा में उठ जाने पर भी ये जमीन से वहुत ऊँची नही जाती। इनकी वोली 'सत् राम' से मिलने के कारण इनको गाँव के
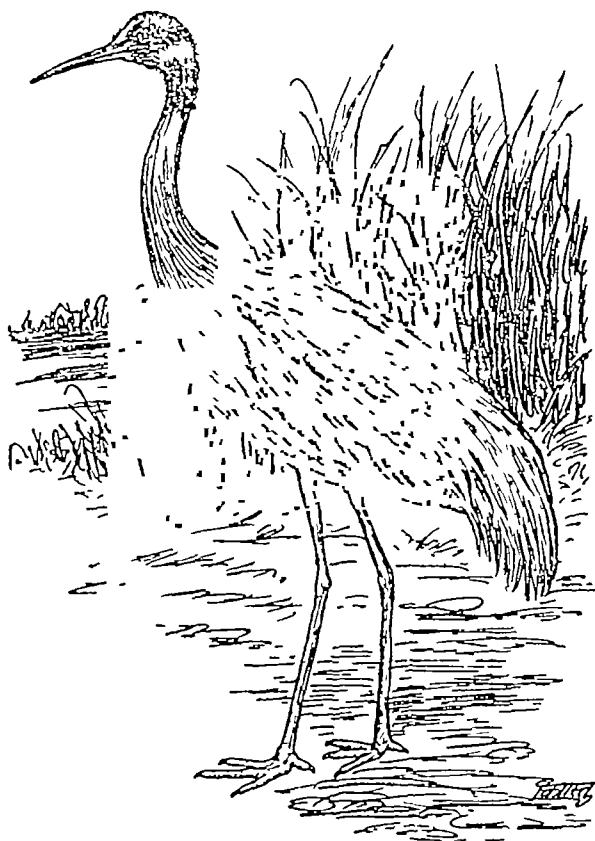
सारस

लोग 'सतराम' भी कहते है। सारस हमारे यहा की वहुत पहचानी हुई वारहमासी चिडिया है जो जोडा वाधकर रहती है और अक्सर यह वात देखी गयी है कि एक वार जोडा फूट जाने पर फिर ये जीवन भर जोडा नही वाँधती।

इनके नर-मादा एक रंग के होते हैं जिनके सारे बदन का रंग सिलेटी रहता है। गर्दन के ऊपरी हिस्से में सफेदी ज्यादा होती है और उसके ऊपर से लेकर सिर तक चटक लाल रंग रहता है। माथा राख के रंग का होता है और कान के पास भी दोनों ओर सिलेटी चित्ते रहते हैं। इसके डैने के सिरे जरूर कलछौंह भूरे रहते हैं, पर निचला हिस्सा सफेदी मायल रहता है। आंख की पुतली नारंगी, चोंच सींग के रंग की और पैर गुलाबी होते हैं।

सारस तालाबों के छिछले किनारों पर कीचड़ में घूमनेवाला पक्षी है जिसकी चोंच, गर्दन और टांगें सब काफी लंबी होती हैं। इसका मुख्य भोजन मछलियां, घोंघे, कछुए और मेढक हैं। बचपन में पाले जाने पर यह इतनी पालतू हो जाती है कि आदमी के पीछे-पीछे घूमती रहती है।

बरसात में मादा सारस पानी के बीच किसी टापू या टिकुरी पर नरकुल, गोंद या दूसरी किसी तालाबी घास के बीच घास का बड़ा-सा घोंसला बनाकर एक से तीन तक अण्डे देती है। अण्डों का रंग हल्का गुलाबीपन लिये सफेद रहता है जिनमें से कुछ पर बादामी और बैंगनी चित्तियां रहती हैं और कुछ सादे ही रहते हैं।

जलकुक्कुट-परिवार

(FAMILY RALLIDAE)

इस परिवार में सब तरह की जलमुर्गियां रखी गयी हैं जो पानी में अथवा पानी के किनारे रहती हैं। कुछ थोड़ी ऐसी भी हैं जो पानी से दूर खेतों में रहने लगी हैं लेकिन ज्यादा संख्या उन्हीं की है जिन्हें हम पानी के आसपास के कीचड़ों में कीड़े-मकोड़ों की तलाश में घूमते हुए देखते हैं। उन्हें ऐसे स्थान बहुत पसन्द हैं जहां किनारे पर घास-फूस या नरकुल हों जिनमें ये आसानी से छिप सकें।

कीचड़ में रहने के कारण इनके पैरों की उंगलियां काफी लम्बी होती हैं। नरकुलों में इधर से उधर उड़कर छिप जाने की आदत से इनके डैने छोटे और इनकी उड़ान मामूली रह गयी है।

टिकरी को छोड़कर इनमें से किसी के पैर झिल्लीदार नहीं होते और टिकरी के पैर की उंगलियां भी बत्तखों की तरह पूरी जुड़ी नहीं रहतीं बल्कि पत्तियों की तरह उनका थोड़ा हिस्सा बढ़ा रहता है जिससे वे पानी में आसानी से तैर लेती हैं। जरूरत पड़ने पर ये सब पानी में तैर लेती हैं, लेकिन टिकरी तैरने में सबसे उस्ताद होती है।

इनका मुख्य भोजन कीचड के कीडे-मकोडे, छोटे-छोटे घोघे और कटुए है जिनके लिए इन्हे लम्बी चोच मिली रहती है।

इनकी वैसे तो कई जातियाँ है लेकिन यहाँ अपने यहाँ की कुछ प्रसिद्ध चिडियो का वर्णन दिया जा रहा है।
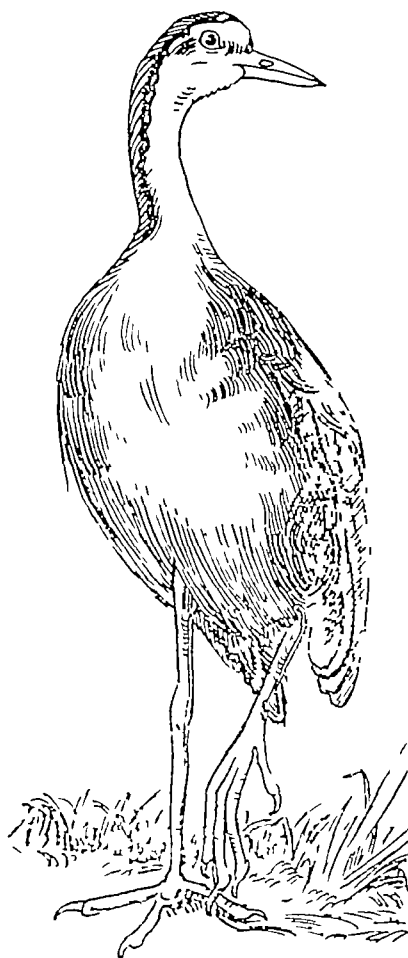
डाउक (बॅसमुरगी)

(WHITE CRESTED WATER HEN)

डाउक को कही-कही बॅसमुरगी भी कहा जाता है क्योकि यह शरमीली चिडिया अक्सर गाँव बस्ती के निकट की ताल-तलैयो के निकट की बाँसवाडी को अपने रहने का स्थान चुनती है। यह वैसे तो बहुत ढीठ चिडिया है और अक्सर हमारे घर के हातो मे ही रहने लगती है, लेकिन जैसे ही इसे पता लगता है कि कोई इसे देख रहा है, यह भागकर तुरन्त पास की किसी झाडी मे छिप जाती है।

डाउक हमारे गाँव की बारहमासी चिडिया है जो वैसे तो बहुत शान्त रहती है, पर बरसात आते ही यह इतना शोर मचाती है कि जी ऊब जाता है। इसके नर और मादा एक ही रग के होते है जिनके पैर के अगूठे लम्बे-लम्बे और दुम दहगल की तरह ऊपर की ओर उठी रहती है। लम्बाई मे यह १२ इच से बडी नही होती।

डाउक

इसका ऊपर का सारा रग गाढा खैरा होता है जो करीब-करीब काला जान

पड़ता है। आँख, गाल और गले से लेकर पेट तक का तमाम निचला हिस्सा सफेद रहता है। इस सफेदी के बाद का हिस्सा भूरा हो जाता है जो दुम के नीचे पहुँचते-पहुँचते धूमिल ललछौंह में बदल जाता है और दुम उठी रहने के कारण साफ दिखाई पड़ता है।

इसकी भूरी चोंच का अगला हिस्सा लाल और पिछला हरा रहता है। पैर हरापन लिये पीले रंग के होते हैं।

डाउक के अण्डे देने का समय जून से सितम्बर तक है, जब पानी के किनारे किसी झाड़ी या तालाबी घास के बीच यह अपना तितरा-बितरा-सा घोंसला बनाती है। घोंसला घास-फूस या बाँस की पत्तियों से बनाया जाता है जिसमें मादा हलका गुलाबीपन लिये सफेद या कत्थई रंग के तीन-चार अण्डे देती है। इन पर ललछौंह भूरी या बैंगनी चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

जलमुरगी

(MOOR HEN)

जलमुरगी हमारे यहाँ की बारहमासी चिड़िया है जो तालों और अन्य जलाशयों के आसपास ही रहती है। इसे ज्यादातर ऐसे ताल पसन्द आते हैं जो घास और नरकुलों से भरे हों और जहाँ इसे छिपने में जरा भी दिक्कत न रहे। पानी में तैरते समय इसकी दुम उठी रहती है जिससे इसके नीचे का सफेद हिस्सा दूर से ही चमकने लगता है। जमीन पर भागते समय भी यह अपनी दुम उठाये ही रहती है। इसके अलावा इसकी चोंच की जड़ के पास एक लाल चित्ता रहता है जिसके कारण इसको पहचानने में जरा भी दिक्कत नहीं रह जाती।

जलमुरगी सुश्की और पानी दोनों में बड़ी आसानी से रह सकती है लेकिन इसका करीब-करीब सारा दिन पानी में ही बीतता है। तैरने के अलावा यह डुबकी लगाने में भी उस्ताद होती है और जरा-सी आहट पाते ही डुबकी मार कर पानी के भीतर चली जाती है।

जलमुरगी का कद १२ इंच से ज्यादा बड़ा नहीं होता और इसके नर-मादा एक ही रंग-रूप के होते हैं। इसका सिर और गर्दन स्लेटीपन लिये काले रहते हैं जो सीने तक पहुँच कर सिलेटी हो जाते हैं। बगल का हिस्सा भी सिलेटी रहता है जिसमें कुछ

सफेद पट्टियाँ पडी रहती है। ऊपर का हिस्सा भूरापन लिये गदा हरा और नीचे का गदा सफेद रहता है। दुम के बाहरी पर काले और दुम का निचला हिस्सा सफेद रहता है। डैने कलछौंह भूरे होते है जिनमे किनारे पर सफेद पट्टी पडी रहती है। चोच लाल और पैर धानीपन लिये सिलेटी रहते है।
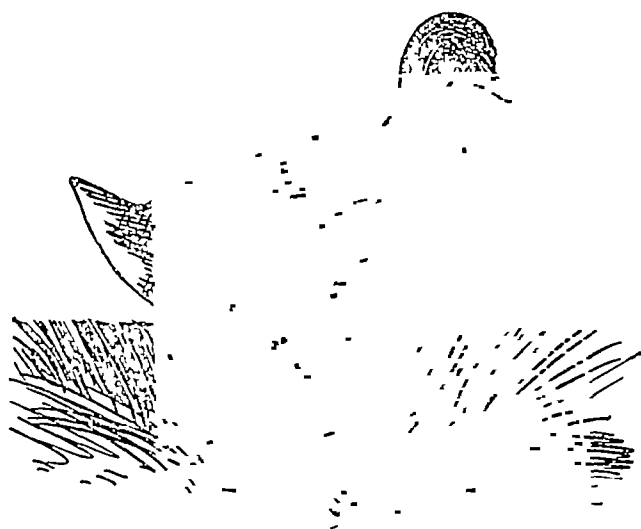
जलमुरगी

जलमुरगी का मुख्य भोजन घास-पात, जडे और कल्ले है, लेकिन इसके अलावा यह पानी के छोटे-छोटे कीडो को भी चट कर जाती है।

इसके अण्डा देने का समय जुलाई से सितम्बर तक रहता है जब यह घने नरकुल या अन्य घास के बीच अपना घासफूस का भद्दा-सा घोसला बनाती है जो प्राय सूखे पर रखा रहता है। समय आने पर मादा इसमें ६ से ८ तक अण्डे देती है जो हलके पत्थरी रग के होते है। इन अण्डो पर कत्थई या बैंगनी चित्तियाँ पडी रहती है।

कैमा

(PURPLE COOT)

कैमा को कही-कही खैमा भी कहते है और कही-कही इसका जलबोदरी नाम भी बहुत प्रसिद्ध है। यह टिकरी की शकल-सूरत की होकर भी कद में उससे कुछ बडी होती

है और इसके रंग में भी कुछ बैंगनीपन रहता है। इसकी सब आदतें टिकरी की तरह रहती हैं।

कैमा या जलबोदरी हमारे यहाँ की बारहमासी चिड़िया है जिसके नर-मादा एक ही रंग-रूप के होते हैं। इसका सिर हलके बादामी रंग का रहता है, जिसका ऊपरी हिस्सा बैंगनीपन लिये सिलेटी होता है। इसका कद करीब डेढ़ फुट लम्बा रहता है। नीचे का रंग भी करीब-करीब भूरा ही रहता है जिसमें सीने पर का नीलापन जरूर ज्यादा हो जाता है। डैने और दुम के पर काले रहते हैं और दुम के नीचे एक सफेद चित्ता-सा रहता है। आँख की पुतली गाढ़े लाल तथा चोंच भूरापन लिये गहरे सुर्ख रंग की रहती है। पैर हलके लाल रहते हैं। कैमा गरोहों में रहनेवाली चिड़िया है जो घास वगैरह से भरे हुए नालों में रहना बहुत पसन्द करती है। यह वैसे तो तैरने में उस्ताद होती है लेकिन उससे भी ज्यादा उस्तादी यह छिपने में दिखाती है। उड़ने में जैसे सुस्त है और एक जगह से उड़कर यह थोड़ी दूर पर ही फिर उतर पड़ती है।

कैमा

इसका मुख्य भोजन घास-पात है और इसी कारण धान वगैरह के खेतों को इससे काफी नुकसान पहुँचता है। कैमा के अण्डा देने का समय भी मई-जून रहता है जब नर-मादा मिलकर गोंद और नरकुलों के बीच अपना घास-फूस का बड़ा-सा घोंसला बनाती है जिसमें यह ८–१० पत्थरी रंग के अण्डे देती है जिन पर बादामी और भूरी चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

टिकरी

(COMMON COOT)

टिकरी को देखकर अक्सर हमें बत्तखो का धोखा हो जाता है और नये शिकारी इसको बत्तख ही समझ कर इसका शिकार कर लाते है, लेकिन जिसने एक बार भी इन्हे पानी पर कुछ दूर दौडकर ऊपर उठते देखा है वह इनको पहचानने में कभी धोखा नही खा सकता।

टिकरी
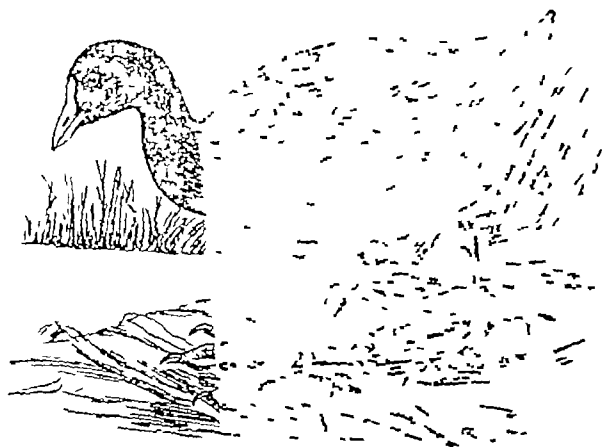
टिकरी हमारे तालाबो में बारहो महीने रहनेवाली चिडिया है जिसके गोल नरकुल, गोंद आदि तालावी घासो के बीच अक्सर घूमते दिखाई पड जाते है। कद मे ये १६ इच से ज्यादा नही होती और इनके नर-मादा रग-रूप में एक-से होते है। इनके सारे बदन का रग सिलेटी काला होता है जो सिर, गर्दन और दुम पर ज्यादा गहरा हो जाता है। नीचे का रग कुछ पीलापन लिये रहता है और डैनो मे किनारे पर सफेदी रहती है। इनकी आख की पुतली लाल, चोच और चोच के ऊपर माथे की ओर बढा हुआ हिस्सा सफेद और पैर हरापन लिये सिलेटी रहते हैं। इनके माथे पर एक सफेद टीका-सा रहता है जिसके कारण इनको कही-कही टिकरी के अलावा टीका या टीकी भी कहते हैं।

टिकरी के पैर के अंगूठे काफी बडे होते है जो बत्तखो की तरह जुडे नही रहते, लेकिन उन सबमें पत्ती की तरह दोनो ओर खाल बढी रहती है। इनके सहारे ये तेजी से तैर तो लेती है, लेकिन एकाएक जल्दी उडने मे इन्हे दिक्कत होती है।

मादा टिकरी मई-जून मे तालाबी घास के बीच अपना घास-फूस का बडा-सा घोसला बनाकर ८–१० अण्डे देती है। इनका रग पत्थर से मिलता-जुलता होता है जिन पर काली और गहरी भूरी चित्तिया पडी रहती है।

तटचारी-वर्ग

(ORDER CHARADRIIFORMES)

इस वर्ग मे उन सब पक्षियो को एकत्र किया गया है जिनके जीवन का अधिक समय नदी-तालाब तथा जलाशयो के निकट व्यतीत होता है। ये सब खुले मैदान के पक्षी है जो अपनी शकल-सूरत और रग-रूप मे इतनी भिन्नता रखते है कि इनको देखकर सहसा यह विश्वास नही होता कि ये सब एक ही वर्ग के पक्षी है। इसी भिन्नता के कारण इस वर्ग को छ उपवर्गों मे विभाजित करना पडा है जिसमे निम्नलिखित उपवर्ग हमारे यहा पाये जाते है—१ तिलोर-उपवर्ग, २ चहा-उपवर्ग ३ कुररी-उपवर्ग, ४ भटतीतर-उपवर्ग, ५ कपोत-उपवर्ग।

यहा इन्ही पाचो उपवर्गों के खास-खास परिवारो का वर्णन दिया जा रहा है।

तिलोर उपवर्ग

तिलोर-परिवार

(FAMILY OTIDAE)

तिलोर-परिवार मे थोडे ही पक्षी है और वे थोडे भी हमारे यहा इतनी कम सख्या में है कि वे हमारी निगाह मे बहुत कम पडते है। ये पक्षी लम्बी टागवाले और भारी शरीरवाले होते है। इनका अधिक समय खुले मैदानो मे ही बीतता है। ये कभी पेड पर नही बैठते। इससे इनके पैर की उगलिया छोटी होती है और पिछला अगूठा होता ही नही। इनका मुख्य भोजन वैसे तो घास-पात और गल्ला आदि है लेकिन ये छिपकली आदि छोटे जीव-जन्तु और कीडे-मकोडे भी खाते है। इनकी

पाँच जातियाँ हमारे यहाँ पायी जाती है लेकिन यहाँ केवल चार का ही वर्णन दिया जा रहा है।

सोहन चिडिया

(GREAT INDIAN BUSTARD)

सोहन पक्षी शकल-सूरत मे शुतुर्मुर्ग का भाई-बन्धु जान पडता है, यद्यपि उनसे और इससे किसी प्रकार का सम्बन्ध नही है। यह हमारे यहाँ की उन चिडियो मे से है जिसे शिकारियो के सिवा वहुत कम लोगो ने देखा होगा। लगभग चार फुट ऊँचा होने पर भी जब यह फसल के बीच चुपचाप खडा रहता है तो दूर से ऐसा जान पडता है कि खेत मे कौओ को डराने के लिए 'धोख' (Scare Crow) खडा किया गया है। इसको हुकना भी कहते है और बडा तिलोर भी।
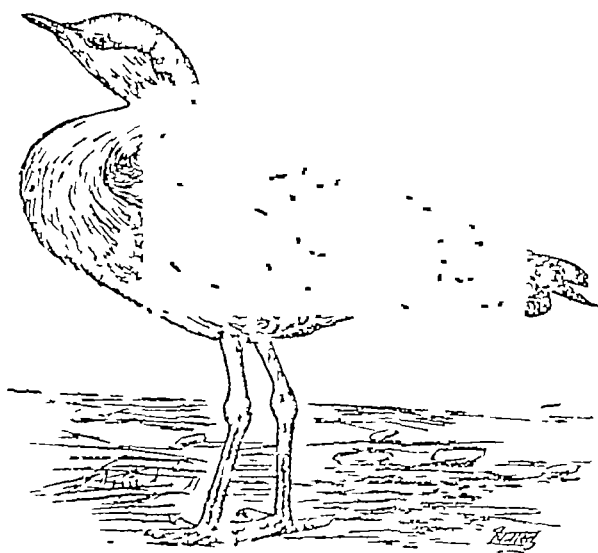
सोहन चिडिया

हुकना गिद्ध के बराबर और उसी की तरह भारी शरीरवाला पक्षी है जो अपनी मजबूत लबी टागो के कारण ऊँचाई मे चार फुट तक पहुँच जाता है। इसका वजन वीस सेर से कम नहीं होता। यह हमारे यहा का बारहमासी पक्षी है, जिसके

नर-मादा एक-जैसे होते हैं। इनके ऊपर का रंग कत्थई रहता है जिस पर तीतर की तरह काले तेहर और लहरिया पड़ी रहती है। इनके माथे को छोड़कर सारी गर्दन और नीचे का हिस्सा सफेद रहता है। माथा काला रहता है और सीने पर एक चौड़ी काली पट्टी पड़ी रहती है। चोंच सिरछौंह सिलेटी और पैर गंदे पीले रंग के होते हैं।

हुकना हमारे देश में पंजाब, कच्छ, काठियावाड़, राजपूताना, गुजरात, मध्यप्रदेश तथा दक्षिण की ओर मैसूर तक पाया जाता है। इसे खुले हुए पहाड़ी स्थान और खेतों का पास-पड़ोस ज्यादा पसन्द आते हैं।

बड़े तिलोर अकेले, जोड़े में अथवा दो-चार के छोटे गरोहों में अक्सर दिखाई पड़ते हैं। ये बहुत शरमीले पक्षी हैं, जो खतरा देखकर खेतों या ऊँची घास में छिपना पसन्द करते हैं लेकिन अधिक दबाव पड़ने पर ये उड़कर काफी दूर चले जाते हैं। उड़ते समय ये पृथ्वी से ज्यादा ऊँचे नहीं उड़ते और बार-बार गिद्धों की तरह अपने डैने चलाते रहते हैं। इनकी बोली हुक-हुक से मिलती-जुलती है इसी से इनको हुकना कहते हैं। इनका मांस सफेद और बहुत ही स्वादिष्ट होता है। हुकना का मुख्य भोजन कीड़े-मकोड़े, गल्ला, बीज और फसल के नरम कल्ले हैं। इनके अलावा ये छिपकलियाँ और छोटे-मोटे साँप भी खा लेते हैं।

इनके जोड़ा बाँधने का समय वैसे तो बारहों महीने रहता है लेकिन मार्च और सितम्बर के बीच में इनके अण्डे ज्यादातर देखे जाते हैं जब मादा किसी झाड़ी में छिछला गड्ढा बनाकर एक अण्डा देती है। अण्डे का रंग हरापन लिये भूरे रंग का रहता है जिस पर गाढ़े भूरे रंग की चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

तिलोर

(LITTLE BUSTARD)

तिलोर शक्ल-सूरत में बहुत-कुछ सोहन चिड़िया या बड़े तिलोर से मिलता-जुलता होता है लेकिन यह उसकी तरह बारहमासी पक्षी न होकर मौसमी पक्षी है जो दक्षिण यूरोप से यहाँ जाड़ों में आकर पंजाब के आस-पास फैल जाता है। जाड़ों के समाप्त होने पर यह फिर उसी ओर लौट जाता है।

तिलोर अक्सर खेतों में १०–१२ की तादाद में दिखाई पड़ते हैं जहाँ ये [illegible] चुनकर दिन को आराम करते हैं। इनकी उड़ान खास ढंग की होती है। ये

पहले बहुत ऊँचे उठ जाते है, फिर हवा मे इधर-उधर फैल जाते है और उडते समय काफी पख फटफटाते रहते है।
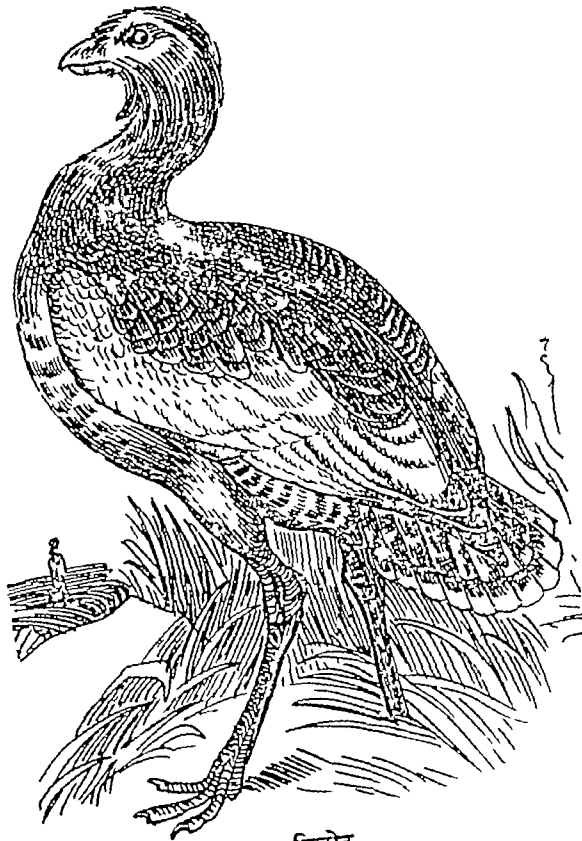
तिलोर

तिलोर १८ इच का पक्षी है जिसके नर-मादा एक रग-रूप के होते है। वजन मे ये लगभग एक सेर के होते है। इनका ऊपरी हिस्सा तो तीतर-जैसा होता है लेकिन नीचे का हिस्सा हलका बादामीपन लिये सफेद रहता है। गर्दन से चारो ओर सीने तक वह भूरा रग चला आता है जिसमें काली और खैरी चित्तियाँ पटी रहती है। चोच कलछौंह और पैर हरापन लिये गदे पीले रग के रहते है। नर मादा से कुछ बडा होता है।

तिलोर का मुख्य भोजन गल्ला, बीज और कीड़े-मकोड़े हैं। इनका मांस स्वादिष्ठ होता है। यह हमारे यहाँ का मौसमी पक्षी होने के कारण यहाँ अण्डा नहीं देता। इसके लिए यह फिर अफगानिस्तान की ओर से दक्षिण यूरोप लौट जाता है, जहाँ मादा जमीन में एक छिछला गड्ढा बनाकर तीन-चार अण्डे देती है। अण्डों का रंग हरापन लिये भूरा रहता है जिन पर गाढ़ी भूरी चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

खरमोर

(LITTLE FLORIKEN)

खरमोर हमारे देश के पश्चिमी प्रान्तों का निवासी है जो बरसात में मध्यप्रदेश, और कभी-कभी बिहार तक चला आता है। मोर की तरह यह भी एकदम भारत का ही पक्षी है जो हमारे देश के अलावा और कहीं नहीं पाया जाता।

इसे ऊबड़-खाबड़ और झाड़ियों से भरे हुए मैदान ज्यादा पसन्द हैं लेकिन जाड़ों में ये अक्सर खेतों में काफी तादाद में दिखाई पड़ते हैं। इनके शिकार के लिए लोग कनात बांध कर इनका हाका-सा करते हैं और जब ये उड़ते हैं तो इन्हें बन्दूकों से मार लिया जाता है। जोड़ा बांधने के समय इनका लोग ज्यादा शिकार करते हैं क्योंकि उस समय नर पक्षी सवेरे थोड़ी-थोड़ी देर पर झाड़ी में निकलकर २-३ फुट ऊपर उछलकर बोलता है और ऊपर से पर फैलाते हुए नीचे उतरता है। इसीसे इनके रहने के स्थान का पता लग जाता है और इन्हें [illegible] करके इनका शिकार करने में ज्यादा परेशानी नहीं रह जाती। इनका मांस [illegible] [illegible] होता है।
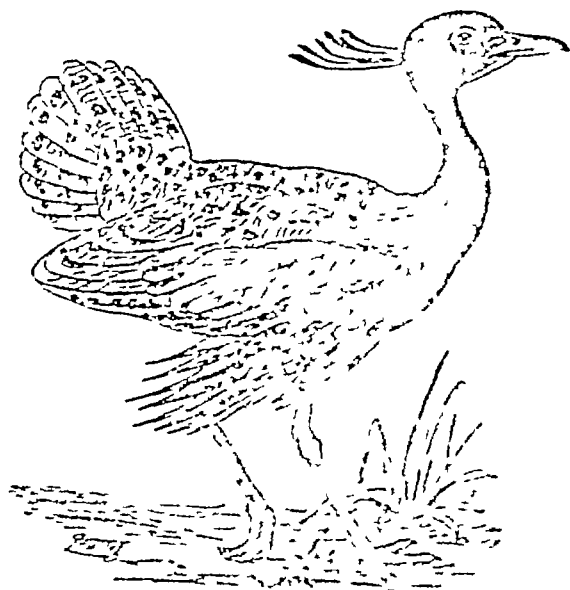
खरमोर

खरमोर १८ इच का पक्षी है जिसकी मादा नर से कुछ वडी होती है। इसके नर-मादा वैसे तो एक ही रग-रूप के होते है, लेकिन जोडा बाँधने का समय आने पर नर की ठुड्ढी छोडकर सारी गरदन और नीचे का कुल हिस्सा काला हो जाता है। इसकी गरदन पर चौडी सफेद पट्टी पडी रहती है और ऊपर का कुल हिस्सा चितकबरा रहता है। उसके सिर के पीछे चोटी की शकल के कुछ पर निकले रहते है। जोडा बाँधने के समय के अलावा नर-मादा की गरदन और सीना भूरा रहता है जिस पर काली धारियाँ पडी रहती है। नीचे का हिस्सा बादामीपन लिये सफेद रहता है और सिर और गरदन कलछौंह लकीरो से भरी रहती है। इसकी पीठ धुर काली होती हे जो घनी भूरी चित्तियो से भरी रहती है। इसकी चोच पिलछौंह और लबी टाँगे गदे पीले रग की होती है।

खरमोर का मुख्य भोजन घास-पात, फल-फूल और नरम कल्ले है, लेकिन इसके अलावा ये कीडे-मकोडे और छिपकलियो को भी खूब मजे मे खाते है। इनके जोडा बाधने का समय सितम्बर-अक्टूबर है जब मादा किसी झाडी में छिछला-सा गढा बनाकर दो-तीन अण्डे देती है। ये अण्डे पत्थरी या हरछौह भूरे रग के रहते है जिन पर गाढी भूरी या कत्थई चित्तियाँ पडी रहती है।

चरत

(BENGAL FLORIKEN)

चरत हमारे यहाँ का प्रसिद्ध शिकार का पक्षी होने पर भी हमारी निगाह तले बहुत कम पडता है। यह हमारे यहाँ का तराई का पक्षी है जो आसाम से लेकर उत्तरप्रदेश के उत्तरी भाग तक पाया जाता है। इसे न तो एकदम खुले मैदान ही पसन्द है और न घने जगल ही। यह गगा के कछारो में और खुले हुए तराई के स्थानो को अपने रहने के लिए चुनता है।

चरत का कद और रग-रूप बहुत कुछ खरमोर से मिलता-जुलता रहता है, लेकिन इसके नर के सिर के पीछे खरमोर की तरह कुछ पर नही निकले रहते बल्कि सिर के ऊपर मोर की तरह कलँगी रहती है। जोडा बाँधने के समय नर अपनी नयी पोशाक मे बहुत भडकीला लगने लगता है। मोर की तरह यह भी बरसात मे, जो इसके जोडा बाधने का समय है, कई मादाओ के सामने पर फैलाकर नाचता है और नाचते-नाचते यह २०—२५ फुट हवा मे ऊपर उठ जाता है। नाच के बाद यह किसी मादा के साथ

जोड़ा बाँध लेता है जो समय आने पर किसी झाड़ी में घोंसला बनाकर कई अण्डे देती है। ये अण्डे हल्के भूरे होते हैं, जिन पर घनी काली चित्तियां पड़ी रहती हैं। इनकी चोंच कलछौंह नीली और पैर गदे बादामी रंग के होते हैं।

चरत लगभग दो फुट का पक्षी है जिसकी मादा नर से कुछ बड़ी होती है। ये वैसे तो झाड़ी से भरे खुले मैदानों में रहते हैं लेकिन रबी की फसल तैयार होने पर इनके गरोह खेतों में भी चरते दिखाई पड़ते हैं। इनके शिकार के लिए खरमोर की तरह हाँका करना पड़ता है। इनका मांस बहुत ही स्वादिष्ट और चर्बीला होता है।

चरत

चरत का भोजन वैसे तो छोटे पौधों के नरम कल्ले और जड़ें आदि हैं लेकिन यह कीड़े-मकोड़ों, टिड्डे, छिपकलियों और संपोलों को भी बड़े मजे से खा लेता है।

चाहा उपवर्ग

(SUB ORDER LIMICOLAE)

इस बड़े उपवर्ग में जलाशयों के तट पर रहनेवाले चाहा, बटान, परेवा, [illegible], टिटिहरी आदि हमारे बहुत से परिचित पक्षी एकत्र किये गये हैं जिन्हें [illegible] परिवारों में बाँटा गया है। हमारे देश में इनमें से केवल चार परिवारों के ही पक्षी पाये जाते हैं इसलिए यहाँ उन्हीं चारों परिवारों का वर्णन किया जा रहा है, जो इस प्रकार हैं—

१. टिटिहरी-परिवार—Family Charadriidae

२. तुर्री-परिवार—Family Glareolidae

३ खरवानक-परिवार—Family Dedicumidae
४ जलमखानी-परिवार—Family Parridae

टिटिहरी-परिवार

(FAMILY CHARADRIIDAE)

यह इस उपवर्ग का सबसे बड़ा परिवार है जिसमें के पक्षी हमारे बहुत परिचित हैं और जिन्हे हम अक्सर पानी के किनारे इधर-उधर दौडते देखते हैं। ये छोटे कद के होते हैं और इनमे से कुछ झुड बाँधकर भी रहते हैं। ये जमीन पर तो तेजी से दौड ही लेते हैं, हवा मे भी काफी तेज उड सकते हैं। इनका मुख्य भोजन कीडे-मकोडे और छोटे घोघे, और कटुए हैं जो जलाशयो के आसपास काफी सख्या मे मिल जाते हैं।

वैसे तो इनकी सैकडो जातियाँ हैं लेकिन यहाँ इनमे से दस प्रसिद्ध पक्षियो का वर्णन दिया जा रहा है।

वटान

बटान

(GOLDEN PLOVER)

बटान हमारा बहुत परिचित मौसमी पक्षी है जो यहाँ पूरब की ओर से आकर जाडो मे आसाम, बगाल, बिहार, उत्तरप्रदेश तथा मध्यप्रदेश तक फैल जाता है। जाडा खतम होते-होते यह फिर पूरब की ओर लौट जाता है।

यह नौ इच का सुन्दर पक्षी है जिसके नर-मादा एक जैसे होते हैं। इसकी पीठ का रग पिलछौह रहता है जो काली लकीरो से भरी रहती है। नीचे का हिस्सा

है जो गर्मियो मे काला हो जाता है। इसकी दुम और पैर काले

मारे यहाँ काफी सख्या मे आते हैं जो जलाशयो के किनारे और दलदलो
-बडे झुडो मे दिखाई पडते हैं। इनका यहाँ काफी शिकार होता है।

का मुख्य भोजन फल वगैरह है। मौसमी पक्षी होने के कारण यह यहाँ
देता।

अण्डे पत्थरी रग के होते हैं जिन पर काली चित्तियाँ पडी रहती है।

जीरा

(LITTLE RINGED PLOVER)

छोटी-सी छ इच की टिटिहरी है, जो हमारे यहाँ बारहो महीने रहती है।
मे यह प्राय सभी जगह पायी जाती है और पहाडो पर भी चार हजार फुट
तक मिलती है। इसके नर-मादा एक रग-रूप के होते हैं। इसके ऊपर का
ार नीचे का सफेद रहता है। माथा भी सफेद रहता है जिस पर एक चौडी
आँख के ऊपर मे होते हुए सिर के बगल तक चली आती है। इसके गले
काला कठा रहता
चोच काली और
हरापन लिये पीले
हते हैं।

। वैसे तो जलाशयो
ों के किनारे जोडे
ई पडते हैं लेकिन
ो इनके तितरे-बितरे
झुड भी दिखाई
। है। ये जलाशयो
ारे-किनारे अपनी
की तलाश में दौड-

जीरा
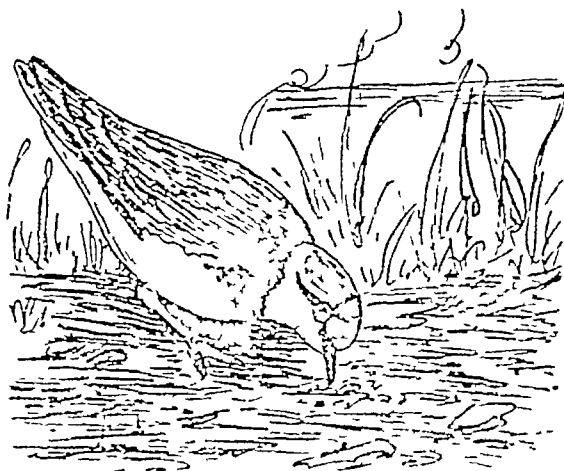
ो-थोडी दूर पर रुक जाते है, और कीडे-मकोडो को पकडकर फिर तेजी
लगते है। कीडो के लिए ये कीचड को बडी तेजी से अपने पंजो से मथते

३ खरवानक-परिवार—Family Dedicumidae
४ जलमग्नानी-परिवार—Family Parridae

टिटिहरी-परिवार

(FAMILY CHARADRIIDAE)

यह इस उपवर्ग का सबसे बड़ा परिवार है जिसमे के पक्षी हमारे बहुत परिचित हैं और जिन्हे हम अक्सर पानी के किनारे इधर-उधर दौडते देखते है। ये छोटे कद के होते हैं और इनमे से कुछ झुड बाधकर भी रहते है। ये जमीन पर तो तेजी से दौड ही लेते है हवा मे भी काफी तेज उड सकते है। इनका मुख्य भोजन कीडे-मकोडे और छोटे घोघे, और कटुए है जो जलाशयो के आसपास काफी सख्या मे मिल जाते है।

वैसे तो इनकी सैकडो जातियाँ है लेकिन यहाँ इनमे से दस प्रसिद्ध पक्षियो का वर्णन दिया जा रहा है।

वटान
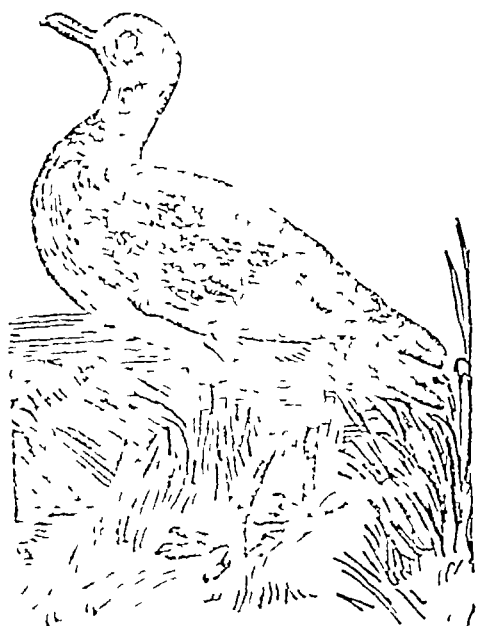
वटान

(GOLDEN PLOVER)

वटान हमारा बहुत परिचित मौसमी पक्षी है जो यहाँ पूरब की ओर से आकर जाडो मे आसाम, बगाल, बिहार, उत्तरप्रदेश तथा मध्य-प्रदेश तक फैल जाता है। जाडा खतम होते-होते यह फिर पूरब की ओर लौट जाता है।

यह नौ इच का सुन्दर पक्षी है जिसके नर-मादा एक जैसे होते है। इसकी पीठ [illegible] रहता है जो काली लकीरो से भरी रहती है। नीचे का हिस्सा

सफेद रहता है जो गर्मियो मे काला हो जाता है। इसकी दुम और पैर काले रहते है।

बटान हमारे यहाँ काफी सख्या मे आते है जो जलाशयो के किनारे और दलदलो के पास छोटे-बडे झुडो में दिखाई पडते है। इनका यहाँ काफी शिकार होता है।

बटान का मुख्य भोजन फल वगैरह है। मौसमी पक्षी होने के कारण यह यहाँ अण्डा नही देता।

इसके अण्डे पत्थरी रग के होते है जिन पर काली चित्तियाँ पडी रहती है।

जीरा

(LITTLE RINGED PLOVER)

जीरा छोटी-सी छ इच की टिटिहरी है, जो हमारे यहाँ बारहो महीने रहती है। हमारे देश मे यह प्राय सभी जगह पायी जाती है और पहाडो पर भी चार हजार फुट की ऊँचाई तक मिलती है। इसके नर-मादा एक रग-रूप के होते है। इसके ऊपर का रग भूरा और नीचे का सफेद रहता है। माथा भी सफेद रहता है जिस पर एक चौडी काली पट्टी आँख के ऊपर से होते हुए सिर के बगल तक चली आती है। इसके गले मे भी एक काला कठा रहता है। इसकी चोच काली और पैर गदा हरापन लिये पीले रग के रहते है।
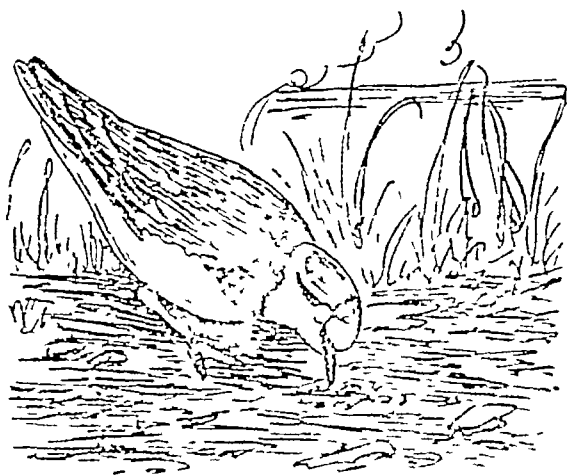
जीरा

जीरा वैसे तो जलाशयो और नदियो के किनारे जोडे मे दिखाई पडते है लेकिन कभी-कभी इनके तितरे-बितरे छोटे-छोटे झुड भी दिखाई पड जाते है। ये जलाशयो के किनारे-किनारे अपनी खूराक की तलाश मे दौड-कर थोडी-थोडी दूर पर रुक जाते हैं, और कीडे-मकोडो को पकडकर फिर तेजी से चलने लगते है। कीडो के लिए ये कीचड को बडी तेजी से अपने पजो से मथने

है जिससे वे ऊपर आ जायें। खजन की तरह ये भी बहुत चचल पक्षी है और इन्हे एक स्थान पर स्थिर देखना सभव नही। ये वैसे तो चराई के समय फैले रहते है, लेकिन खतरा निकट देखकर सबके सब एक साथ ही ची-ची करते हुए उड जाते हैं। काफी देर तक एक साथ उडकर फिर किसी किनारे पर उतर पडते है।

मादा ज्यादातर दक्षिण भारत की ओर अण्डा देती है जहाँ इसे रेवा कहते है। इसके अण्डा देने का समय मार्च से मई तक रहता है। मादा नदी या अन्य किसी जलाशय के किनारे सूखे मे कोई छिछला गढा तलाश करके चार अण्डे देती है जिन्हें नर-मादा दोनो पारी-पारी से सेते है। अण्डो का रग पत्थरी या हलका सिलेटी रहता है जिन पर गाढी भूरी चित्तिया पडी रहती है।

टिटिहरी

(RED WATTLED LAPWING)

टिटिहरी हमारे देश की बहुत प्रसिद्ध चिडिया है जिसे प्राय सभी जलाशयो के निकट देखा जा सकता है।

टिटिहरी १२–१३ इच लबी चिडिया है जो बारहो महीने हमारे यहाँ रहती है। इसके नर-मादा एक रग-रूप के होते है, जो प्राय साथ ही जलाशयो के किनारे टहलते दिखाई पडते है। इसकी पीठ का रग तामडा भूरा और नीचे का सफेद रहता है। सिर गरदन और सीना काला रहता है, आख के पीछे से एक चौडी सफेद पट्टी गरदन से होते हुए नीचे की सफेदी मे मिल जाती है। डैने काले होते है और दुम के सिरे के पास एक चौडी काली पट्टी पडी रहती है। आख के आगे लाल रग का मास बढा रहता है जो चोंच के ऊपर तक चला जाता है। इसकी चोंच सिरे की ओर काली और जड की ओर सुर्ख रहती है, पैर पीले होते है।

टिटिहरी हमारे देश मे प्राय सभी जलाशयो के निकट खुले मैदानो मे पायी जाती है। पहाडो पर भी इसे ५–६ हजार फुट की ऊचाई तक देखना असभव नही। यह जोडा-जोडा मे ही दिखाई पडती है लेकिन कभी-कभी इसके छोटे गरोह भी दिखाई पडते है। इसकी बोली 'डिड ही डु इट' (Did he do it) से मिलती-जुलती रहती है। इसी से अग्रेजी मे इसका एक नाम 'डिड ही डु इट' भी पड गया है।

अन्य टिटिहरियो की तरह ये भी जमीन पर दिन भर इधर-उधर दौडा करती है और थोडी दूर चलने के बाद रुक जाती है। खतरा निकट देखकर ये थोडी

ही ऊँचाई पर उड़कर फिर आगे जाकर जमीन पर उतर पड़ती है। इनका मुख्य भोजन कीड़े-मकोड़े और घोंघे, कटुए आदि हैं।

टिटिहरी
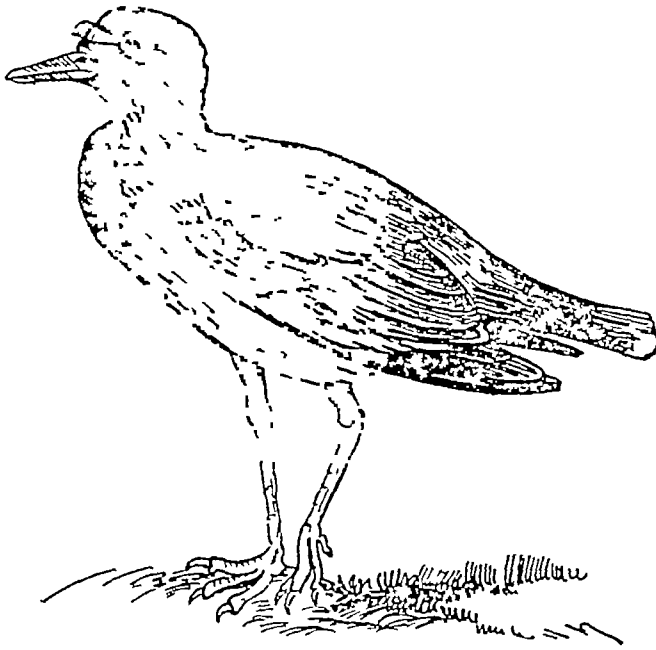
टिटिहरी के अण्डे देने का समय मार्च से अगस्त तक रहता है जब मादा रेत या खुले मैदान में चार अण्डे देती है। ये अण्डे पत्थरी या मिलेटी भूरे होते हैं जिन पर कलछौंह चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

पनलवा

(LITTLE STINT)

पनलवा भी हमारे यहाँ जाड़ों में बाहर से आनेवाला छोटा-सा मौसमी पक्षी है जो जाड़ों के प्रारंभ में यहाँ आकर जाड़ा समाप्त होते-होते यहाँ से लौट जाता है। कलकत्ते में इसे चिरचिरी कहते हैं।

यह छ इंच का छोटा-सा पक्षी है जिसके नर-मादा एक रंग-रूप के होते हैं। इसके ऊपर का रंग गाढ़ा कत्थई और नीचे का सफेद रहता है। इसकी चोंच लंबी और

नोकीली रहती है, जिसका रंग काला रहता है और पतली लम्बी टाँगें सिलेटी रंग की होती है।

पनलवा यहाँ जाड़ो मे आकर सारे देश में फैल जाता है और उस समय इसे अपने यहा के प्राय सभी जलाशयो के किनारे छोटे-बड़े झुंडो मे देखना कठिन नही होता। किनारे पर चरते समय ये दूर तक फैल जाते है, लेकिन जरा-सा खटका होते ही सब इकट्ठे होकर एक प्रकार की चिट-चिट की आवाज करते हुए उड़कर दूसरी जगह पर जा बैठते है। उड़ते समय इनका झुड बड़ी तेजी से हवा में इधर-उधर उड़कर तब कही जाकर जमीन पर उतरता है। किनारे पर ये एक जगह खड़े नही रहते बल्कि इधर-उधर अपनी खुराक के लिए टहलते ही रहते है। इनका मुख्य भोजन कीड़े-मकोड़े, छोटे कटुए और घोंघे आदि है।
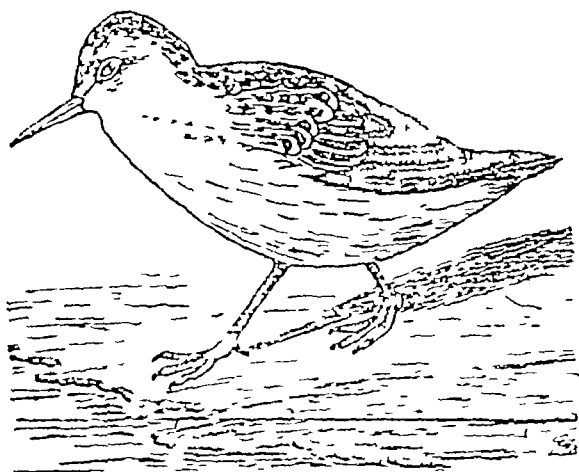
पनलवा

प[illegible] का मौसमी पक्षी है जो जून-जुलाई मे उत्तरी यूरोप तथा साइ-बेरिया की ओर [illegible] अंडे देता है। मादा किसी दलदल के करीब घासफूस का [illegible] जमीन पर [illegible] उसी मे चार अंडे देती है। ये अंडे [illegible] रहती है। इन पर कत्थई [illegible] है।

गुलिदा

(CURLEW)

गुलिदा को कही-कही गोर भी कहते है। यह लगभग दो फुट का पक्षी है जो अपनी लबी टाँगो तथा आगे झुकी हुई ५–६ इच लबी चोच के कारण आसानी से पहचाना जा सकता है। इसका ऊपरी हिस्सा खैरा चितला और नीचे का एकदम सफेद रहता है। चोच काली, जड के पास गुलाबी और पैर सिलेटी रहते है। इसके पैर के अँगूठे आपस मे थोडी दूर तक बत्तखो की तरह जुटे रहते है।

गुलिदा

गुलिदा के नर-मादा तो एक ही रगरूप के होते है, लेकिन मादा नर से कुछ बडी रहती है। यह हमारे यहाँ का मौसमी पक्षी है जो जाडो के प्रारभ मे यहाँ आकर जाडे के खतम होते-होते यहाँ से फिर वापस चला जाता है। जाडो मे ये हमारे सारे देश में फैल जाते है और किसी भी बडे जलाशय, दलदल या नदी के किनारे इनके छोटे-छोटे झुडो को देखना कठिन नहीं। ये किनारे पर कीडे-मकोडे, घोघे, कटुए और घासफूस चुनते हुए इधर से उधर दौडा करते है और उडते समय करली या कर्ल जैसी आवाज करते है। इसी से अग्रेजी मे इन्हें कर्लू (Curlew) कहा जाता है। इनका मास स्वादिष्ट होता है।
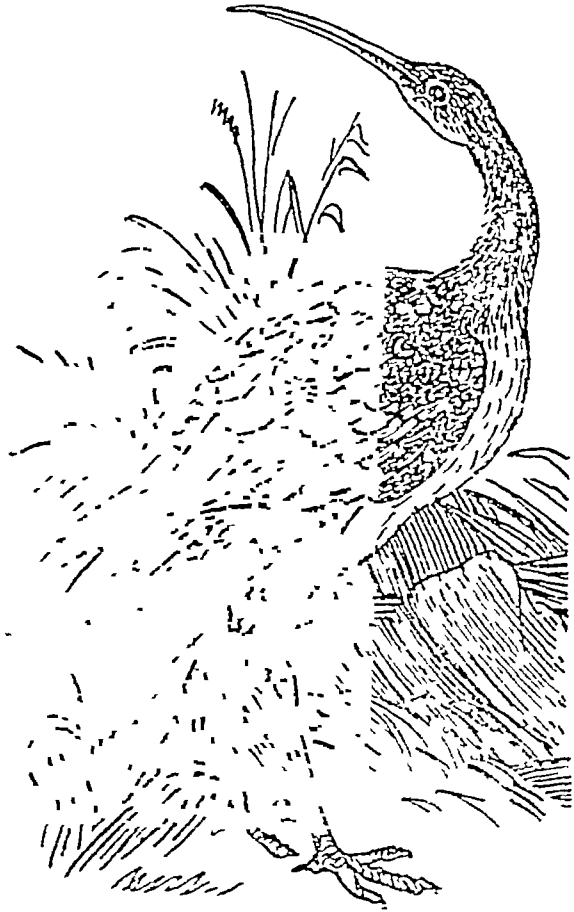
गुलिदा मौसमी पक्षी होने के कारण हमारे देश मे अण्डा नही देता। इसके अण्डा देने का समय अप्रैल से जून तक रहता है, जब वे उत्तरी यूरोप से लेकर साइबेरिया तक फैले रहते है। मादा समय आने पर दलदलो के आसपास जमीन पर ही अपना घास-फूस का घोसला बनाकर चार अण्डे देती है जिनका रग हरछौंह भूरा रहता है। अण्डो पर गहरे रग की चित्तियाँ पडी रहती है।

लमटँगा

(BLACK WINGED STILT)

लमटँगा को यह नाम उसकी लबी टाँग के कारण ही मिला है। कही-कही उसे टिहुआ या बडा पनेवा भी कहते है। यह हमारे उत्तर भारत का बारहमासी

लमटँगा

पक्षी है जो जाड़ों में सारे भारत में फैल जाता है और जाड़ा खतम होते-होते फिर उत्तर की ओर लौट जाता है। यहाँ के अलावा यह यूरोप, अफ्रीका तथा उत्तर एशिया की ओर फैला हुआ है।

यह १७ इंच का लम्बा पक्षी है जो अपनी लम्बी टाँगों के कारण इतना ही ऊँचा भी होता है। इसके नर-मादा एक रंग-रूप के होते हैं। इसका ऊपरी हिस्सा भूरा और नीचे का सफेद रहता है। डैने कलछौंह कत्थई रहते हैं और चोंच काली और लम्बे पैर हल्के लाल रंग के होते हैं।

लमटँगा ज्यादातर दलदल के पास के छिछले जलाशयों या नदियों के छिछले किनारों पर दिखाई पड़ते हैं। ये कभी-कभी जोड़ों में और कभी-कभी झुंड में रहते हैं। कभी-कभी तो इन्हें गाँवों की गड़हियों में भी देखा जा सकता है। इनका मुख्य भोजन पानी के कीड़े-मकोड़े, छोटे घोंघे, कछुए और पानी के पौधों के बीज आदि हैं। ये भूमि पर काफी तेज दौड़ लेते हैं और मौका पड़ने पर पानी में बड़ी खूबी से तैर भी लेते हैं, लेकिन इनकी उड़ान तेज नहीं होती। इनका मांस स्वादिष्ठ होता है।

बड़ा पनेवा के जोड़ा बाँधने का समय अप्रैल से अगस्त तक रहता है जब सैकड़ों पक्षी एक साथ इकट्ठे होकर एक जगह घोंसला बनाते हैं। ये घोंसले किसी तालाब या झील के किनारे जमीन पर छिछले गड्ढे में थोड़ी-सी घासपात रखकर बनाये जाते हैं। मादा इनमें ३–४ अंडे देती है जो हल्के भूरे रंग के होते हैं और जिन पर काली चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

टिमटिमा

(GREEN SHANK)

टिमटिमा भी हमारे यहाँ का प्रसिद्ध जलचारी पक्षी है जो यहाँ जाड़ों में आकर जाड़ा बीतने पर फिर यहाँ से उत्तर की ओर लौट जाता है। यह ज्यादातर अकेला ही जलाशयों के किनारे घूमता रहता है। इसे देखकर कभी-कभी चुपके का धोखा हो जाता है, लेकिन कद में चुपके से बड़ा होने के कारण और टाँगों का रंग गदला हरा होने के कारण यह चुपके से भिन्न ही रहता है।

टिमटिमा १४ इंच का पक्षी है जिसके नर-मादा एक रंग-रूप के होते हैं। इसके सिर से लेकर दुम तक का पूरा ऊपरी हिस्सा सिलेटी भूरा तथा नीचे का कुल हिस्सा सफेद रहता है। आँख के ऊपर एक सफेद रेखा रहती है और चोंच की जड़ के पास
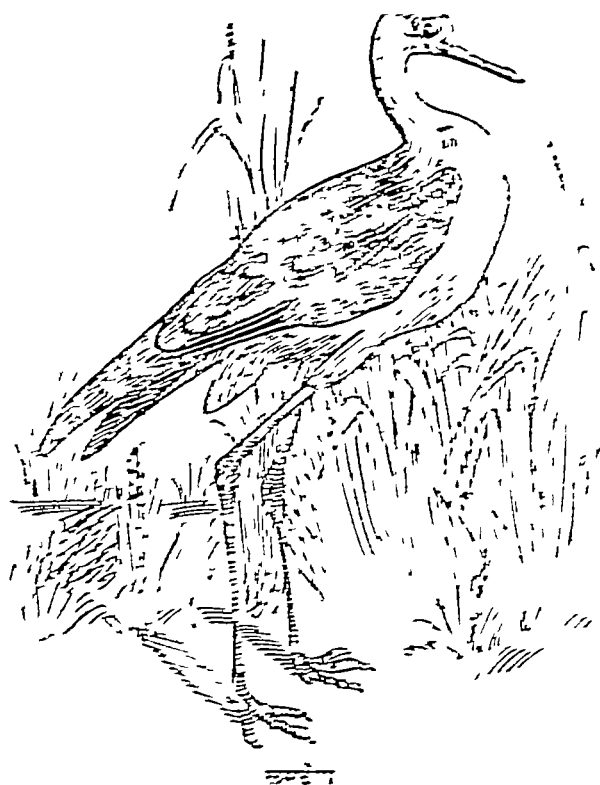
पक्षी है जो जाडो मे सारे भारत में फैल जाता है और जाडा खतम होते-होते फिर उत्तर की ओर लौट जाता है। यहाँ के अलावा यह यूरोप, अफ्रीका तथा उत्तर एशिया की ओर फैला हुआ है।

यह १२ इच का लम्बा पक्षी है जो अपनी लम्बी टाँगो के कारण इतना ही ऊँचा भी होता है। इसके नर-मादा एक रग-रूप के होते है। इसका ऊपरी हिस्सा भूरा और नीचे का सफेद रहता है। डैने कलछौंह कत्थई रहते है और चोच काली और लम्बे पैर हलके लाल रग के होते है।

लमटँगा ज्यादातर दलदल के पास के छिछले जलाशयो या नदियो के छिछले किनारो पर दिखाई पडते है। ये कभी-कभी जोडो मे और कभी-कभी झुड मे रहते है। कभी-कभी तो इन्हें गाँवो की गडहियो में भी देखा जा सकता है। इनका मुख्य भोजन पानी के कीडे-मकोडे, छोटे घोघे, कटुए और पानी के पौधो के बीज आदि है। ये खुश्की पर काफी तेज दौड लेते है और मौका पडने पर पानी में वडी खूवी से तैर भी लेते है, लेकिन इनकी उडान तेज़ नही होती। इनका मास स्वादिष्ठ होता है।

वडा पनेवा के जोडा वाँधने का समय अप्रैल से अगस्त तक रहता है जव सैकडो पक्षी एक साथ इकट्ठे होकर एक जगह घोसला वनाते है। ये घोसले किसी तालाव या झील के किनारे जमीन पर छिछले गढे मे थोडी-सी घासपात रखकर वनाये जाते है। मादा इनमे ३–४ अण्डे देती है जो हलके भूरे रग के होते है और जिन पर घनी काली चित्तियाँ पडी रहती है।

टिमटिमा

(GREEN SHANK)

टिमटिमा भी हमारे यहाँ का प्रसिद्ध तटचारी पक्षी है जो यहाँ जाडो मे आकर जाडा वीतने पर फिर यहाँ से उत्तर की ओर लौट जाता है। यह ज्यादातर अकेला ही जलाशयो के किनारे घूमता रहता है। इसे देखकर कभी-कभी चुपके का धोखा हो जाता है, लेकिन कद मे चुपके से वडा होने के कारण और टाँगो का रग गदा हरा होने के कारण यह चुपके से भिन्न ही रहता है।

टिमटिमा १४ इच का पक्षी है जिसके नर-मादा एक रग-रूप के होते है। इनके सिर से लेकर दुम तक का पूरा ऊपरी हिस्सा सिलेटी भूरा तथा नीचे का कुल हिस्सा सफेद रहता है। आँख के ऊपर एक सफेद रेखा रहती है और चोच की जड के पास

चारो ओर का भाग सफेदी मायल रहता है। चोच इसकी सिलेटीपन लिये भूरी होती है जिसका सिरा काला और पैर पिलछौंह हरे रहते है।
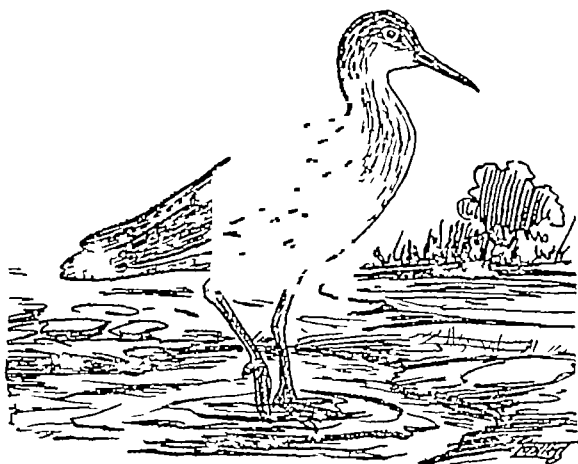
टिमटिमा

टिमटिमा ऐसे जलाशयो को पसन्द करता है जिनके किनारे रेतीले हो और जहाँ ज्यादा घासफूस न उगे हो। यह अन्य तटचारी पक्षियो की भाँति किनारे पर टहलते टहलते थोडी-थोडी दूर पर रुक जाता है। खतरा निकट देखकर यह चिक-चिक की तेज आवाज करके हवा मे उड जाता है और थोडी दूर पर फिर उतर कर किनारे पर टहलने लगता है। यह अपने सिलेटी भूरे रग से चुपके से अलग रहता है। इसका मुख्य भोजन पानी के कीडे-मकोडे है। इसका मास स्वादिष्ठ होता है।

टिमटिमा मौसमी पक्षी होने के कारण अण्डा देने के समय यूरोप और उत्तरी एशिया की ओर लौट जाता है, जहाँ मई-जून मे इसकी मादा जमीन के किसी छिछले गढे मे पत्ती और घासफूस रखकर चार अण्डे देती है, जिन पर कत्थई और सिलेटी चित्तियाँ पडी रहती है।

चुपका

(WOOD SAND PIPER)

चुपका हमारा परिचित पक्षी है जो शकल-सूरत मे बहुत-कुछ चहो जैसा होता है। यह हमारे यहाँ का मौसमी पक्षी है जो यहाँ अगस्त से आने लगता है और मई

तक रहकर फिर उसी ओर लौट जाता है। चहे के शिकारी अक्सर इसको चहा समझकर मार लेते है लेकिन इसके सफेद दुमगजा (Rump) और पटरीदार दुम को देखकर इसको और चहे को पहचानने मे भूल हो ही नही सकती। जाडो मे यह सारे देश मे फैल जाता है।

चुपका लगभग ८ इच का छोटा-सा पक्षी है जिसके नर-मादा एक ही रग-रूप के होते है। इसका ऊपरी हिस्सा कत्थई होता है जिस पर हलकी सफेद चित्तियाँ पडी रहती है। नीचे का हिस्सा सफेद रहता है जो इसकी आँखो के चारो ओर घेरे-सा फैला रहता है। इसका दुमगजा भी सफेद और इसकी लम्बी चोच हरछौह रहती है जिसका सिरा काला रहता है। पैर भी गदे हरे रग के होते है।
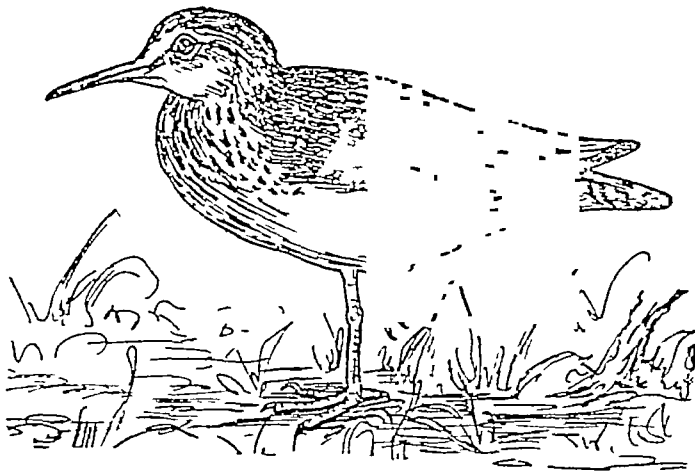
चुपका

चुपके प्राय छोटे-बडे गरोहो मे दिखाई पडते है जो अक्सर जलाशयो के ऐसे किनारो पर रहते है जो दलदलो से भरे हो। ये किनारे पर कीडे-मकोडो के लिए इधर-उधर बराबर दौडते रहते है और थोडी-थोडी देर पर अपनी दुम ऊपर-नीचे किया करते है। इनका मुख्य भोजन कीडे-मकोडे और छोटे घोघे कटुए है।

मौसमी पक्षी होने के कारण ये हमारे यहाँ अण्डा नही देते। इनकी मादा यूरोप और उत्तरी एशिया मे मई-जून मे किसी छिछले गढे मे घासफूस रखकर कई अण्डे देती है। ये अण्डे हरछौह भूरे रग के होते है जिन पर गाढी भूरी चित्तियाँ पडी रहती है।

गेहवाला

(RUFF)

गेहवाला चुपका और पनलवा के भाई-बन्धु है जो हमारे यहाँ जाडो में आकर गरमी के प्रारम्भ में यहाँ से लौट जाते है। ये अपना समय ज्यादातर छिछले पानी के निकट विताते है।

गेहवाला जाडो में सारे उत्तरी भारत मे फैल जाते है जहाँ उनका वटान, चहा और पनलवा की तरह खूब शिकार होता है। इनका मास चहे की तरह स्वादिष्ठ होता है। इनका शरीर गाढा भूरा या कत्थई रहता है लेकिन मादा नर से कुछ छोटी होती है। कभी-कभी नरो की गरदन और सिर सफेद भी हो जाते है। जोडा वाँधने
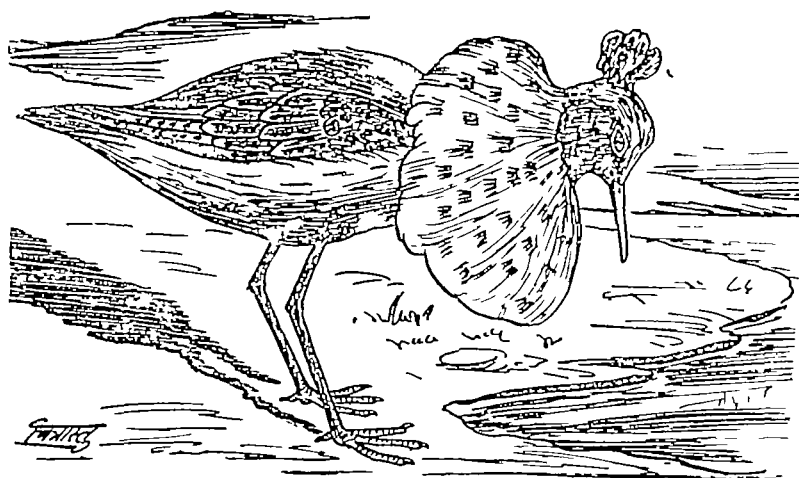
गेहवाला

के समय नर की गरदन पर काफी वडे-वडे पर निकल आते है, जिनको फुलाकर वह वहुत सुन्दर लगने लगता है। इनकी चोच नारगी होती है जिसका अगला हिस्सा काला रहता है। पुराने पक्षियो के पैर गुलावी या नारगी और वच्चो के सिलेटी रहते है। इनकी दुम चुपका की तरह सफेद न होकर भूरी रहती है इससे इन्हे पहचानने में कठिनाई नही होती। इनका मुख्य भोजन वैसे तो दाना और वीज वगैरह है लेकिन ये पानी के कीडे-मकोडे भी खा लेते है।

गेहवाला मौसमी पक्षी है जो अण्डा देने के समय उत्तरी यूरोप या एशिया के उत्तर के भागो में चले जाते है। उस समय नरो मे मादाओ के लिए खूब युद्ध होता है और वे अपने गले के चारो ओर निकले हुए परो को फुलाकर खूब लडते है। विजयी मादा से जोडा बाँध लेता है और वे अपने घोसले की फिक्र मे लग जाते है। इनका घोसला जमीन पर छिछले गढे मे घास-फूस रखकर वनाया जाता है जिसमें मादा चार अण्डे देती है। ये पत्थरी या भूरे रग के रहते है और उनके ऊपर कत्थई या गाढी भूरी सिलेटी चित्तियाँ पडी रहती है।

चहा

(COMMON SNIPE)

चहा हमारे यहाँ का वहुत प्रसिद्ध पक्षी है जिसकी तलाश मे शिकारियो को दलदल-वाले जलाशयो के किनारे चक्कर लगाना पडता है।
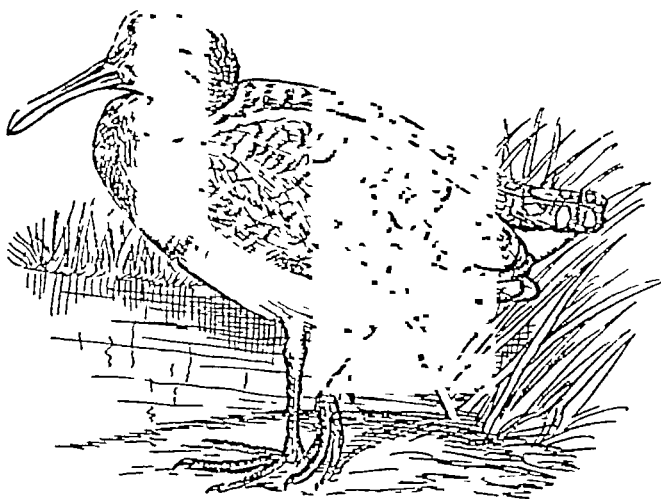
चहा

चहा हमारे यहाँ के मौसमी पक्षी है जो सितम्वर में यहाँ आने लगते है और मई के शुरू होते-होते फिर उत्तर की ओर लौट जाते है। इनका मुख्य भोजन कीचड के कीडे है जिसके लिए इनकी चोच खास तौर पर लम्वी और आगे की ओर गोल वनायी गयी है। इसके ऊपरी हिस्से में निचला हिस्सा इस तरह डिविया की तरह

पायी जाती है। इसे जगल पसन्द नही आते और यह खेतो के आस-पास ऊसर और परती जमीनो पर अपनी खूराक की तलाश मे घूमती रहती है। इसका मुख्य भोजन कीडे-पतिगे और उनकी इल्लियाँ है।

नुकरी खुश्की पर बहुत तेज दौड लेती है। खतरा निकट देखकर यह उडने से ज्यादा जमीन पर भागना ही पसन्द करती है और बडी तेजी से भागती है। ज्यादा दबाव पडने पर ही यह उडती है और थोडी दूर ऊँचाई पर उडकर सौ-पचास गज पर फिर जमीन पर उतरकर दौडने लगती है।

इसके अण्डा देने का समय मार्च से अगस्त तक है जब मादा खुले मैदान मे बिना किसी प्रकार का घोसला बनाये किसी छिछले गढे मे २–३ अण्डे देती है। ये अण्डे पत्थरी रग के होते है जिन पर काली चित्तियाँ पडी रहती है।

धोबैचा

(LITTLE INDIAN PRATINCOLE)

धोबैचा हमें अक्सर नदियो के किनारे कुररियो की तरह झुडो मे दिखाई पडते है जिससे उन्हे पहचानने मे ज्यादा दिक्कत नही उठानी पडती। वैसे तो ये ज्यादातर नदियो के आस-पास रहते है लेकिन कभी-कभी इनके झुड बडे तालो और झीलो मे भी दिखाई पड जाते है। कुररियो को देहातो मे अक्सर धोबिन कहा जाता है। अत उन्ही की तरह दुफकी दुम, लम्बे डैने तथा गरोह मे रहने के कारण ही शायद ये धोबैया कहलाने लगे है। वैसे इनसे और कुररियो से कोई सम्बन्ध नही है।

धोबैया ७ इच के छोटे से पक्षी है जिनके नर-मादा एक ही रगरूप के होते है। इनका सीना धुमैला भूरा और डैने काले और सफेद रहते है। दुम भी सफेद रहती है। इनका ऊपरी हिस्सा रेतीला हलका सिलेटी और नीचे का सफेद रहता है। माथा भूरा, लेकिन सिर के पास के ऊपरी पर कलछौंह होते है। चोच काली रहती है जिसकी जड के पास से एक काली पट्टी आँख तक चली आती है। पैर काले रहते है।

धोबैया अपनी उडान मे अबाबीलो से बहुत मिलते-जुलते है और उन्ही की तरह उडते-उडते ये कीडे-पतिगे भी पकडा करते है। ये ज्यादातर छोटे-बडे गरोह बनाकर कीडे-मकोडो के लिए बडी नदियो के ऊपर शाम को उडते रहते है लेकिन दिन को इनका गरोह रेत पर बैठकर आराम करता रहता है। इनकी उडान बहुत तेज और सधी हुई होती है और उडने मे इन्हे अबाबीलो से कम होशियार नही कहा जा सकता।

इनके जोडा बाँधने का समय मार्च से मई तक रहता है। जब इनका बडा झुड किसी रेतीले टापू को पसन्द करता है जहाँ ये जमीन में गढा बनाकर २–३ अण्डे देते है। ये अण्डे कभी पत्थरी और कभी हरापन लिये सफेद होते है, जिन पर कत्थई और बैंगनी चित्तियाँ और बब्बे पडे रहते हैं।
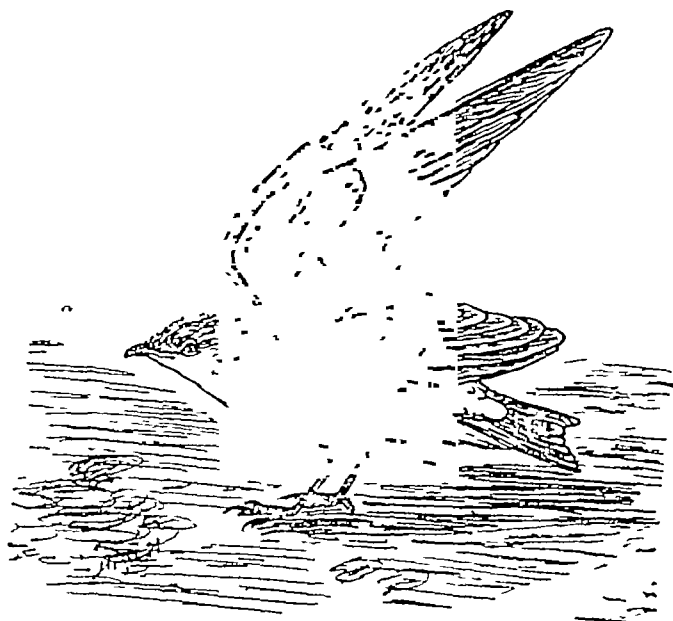
घोबैंचा

घोबैंचा भी टिटिहरियो तथा कुररियो की तरह अण्डे के पास किसी आदमी गे आते देखकर बहुत शोर मचाते हुए सिर के ऊपर मँडराने लगते है। तब ऐसा जान ाडने लगता है कि ये हमला कर बैठेंगे। जब ये बहुत थक जाते है तो अक्सर अपने ख फैलाकर रेत पर लेट जाते हैं और लँगडाते हुए एक ओर चलते हैं, जिसमे ादमी का ध्यान इनके अण्डो की ओर से हट कर इनकी ओर चला जाय और वह नका पीछा करने लगे। अपने पीछा करनेवाले को ये कुछ दूर इसी तरह ले जाकर ्वा में उड जाते हैं। ये अपने थोडे-बहुत अण्डे इस प्रकार भले ही बचा लें लेकिन ादियो की धारा बदलते रहने से इनके सैकडो अण्डे देखते ही देखते नदी की भेंट हो ाते है। इसके अलावा स्यार, लोमडी आदि यदि इनके अण्डो को काफी सख्या ें नष्ट न कर डाला करे तो घोबैंयो की सख्या बहुत ज्यादा बढ जाय।

खरवानक-परिवार

(F \MILY DEDICUEMIDAE)

इस परिवार के पक्षी चहा और चरता के बीच के पक्षी कहे जा सकते है क्योंकि इनकी लम्बी और मोटी टॉगो मे चरतो की तरह छोटी-छोटी उँगलियां होती हैं और ये उन्ही की तरह पानी से दूर खुले मैदानो मे रहते है। वही दूसरी ओर इनके शरीर की बनावट और चोच चहो की तरह होती है और ये उनकी तरह जमीन पर तेजी से दौड लेते है । इनका मुख्य भोजन कीडे-मकोडे तथा छोटे जीव-जन्तु है।

इनकी वैसे तो १५ जातियो का अभी तक पता चल सका है, लेकिन यहां केवल एक खरवानक का ही वर्णन दिया जा रहा है जो हमारे यहाँ का प्रसिद्ध पक्षी है।

खरवानक

(STONE CURLEW)

खरवानक के करवानक, खरमा तथा वडसिरी आदि कई नाम है। यह हमारे यहाँ का वहुत प्रसिद्ध पक्षी है जो शकल-सूरत में बटान की तरह होता है। इसका वडा सिर, बडी-वडी पीली आँखें और लम्वे पीले पैरो से इसे पहचानना कठिन नही
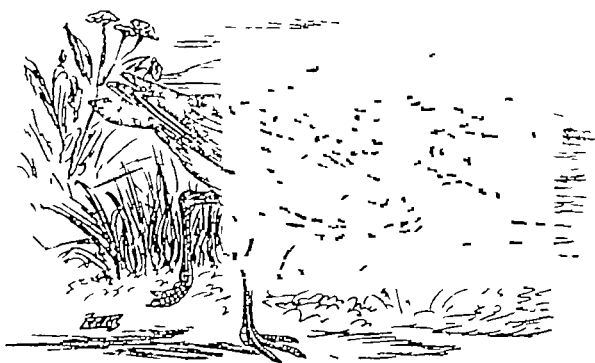
खरबानक

होता। उडते समय इसके डैनो का सफेद चित्ता इसकी पहचान को और भी आसान कर देता है।

यह हमारे देश का वारहमासी पक्षी है जो सारे देश मे फैला हुआ है। इसे ऐसी सूखी और रेतीली जगह, जो जगल या घने वाग के निकट हो या पास-पडोस के सूखे ताल जिनके निकट घास-फूस और नरकुल आदि हो, ज्यादा पसन्द आती है, क्योकि यह एकदम जमीन पर रहनेवाला पक्षी है जो अपना सारा समय मैदानो में ही घूमकर विताता है।

खरवानक १६ इच का पक्षी है जिसके नर-मादा एक रग-रूप के होते हैं और दोनो का कद भी वरावर ही रहता है। इसके शरीर का रग हलका भूरा रहता है जिस पर गाढी भूरी लकीरे पडी रहती है। पीठ पर ये चित्तियाँ घनी और नीचे के सफेद भाग मे कम हो जाती है। डैने भी भूरे रहते हैं जिन पर काली और सफेद धारियाँ पडी रहती है। चोच पीली होती है जिसका सिरा काला और पैर पीले रहते है।

खरवानक दिन से ज्यादा रात में अपना पेट भरने के लिए घूमता है, इसी लिए इसे इतनी वडी आँखे मिली है। यह अकेला या जोडे मे घूमता रहता है और कभी-कभी ८–१० पक्षी एक साथ भी दिखाई पड जाते है। यह अपनी धारीदार भूरी पोशाक से जमीन पर ऐसा छिप जाता है कि उडने या भागने पर ही हमारी निगाह इस पर पडती है। खतरा निकट देखकर यह जमीन पर अपने पर समेटकर लेट जाता है और गर्दन ऊपर करके इधर-उधर देखता रहता है। दवाव पडने पर यह वडे तेज स्वर मे चिक-चिक करके उडता है, लेकिन थोडी ही दूर जाकर फिर जमीन पर उतर कर दौडने लगता है। इसका मास वहुत स्वादिष्ठ होता है।

इसके जोडा वाँधने का समय फरवरी से अगस्त तक रहता है जिसके वीच मे मादा किसी झाडी, घास या सरपत के वीच जमीन पर ही गढा वनाकर दो अण्डे देती है। अण्डे हलके वादामी रग के होते है जिन पर गाढे भूरे रग की चित्तियाँ पडी रहती है। इसका मुख्य भोजन कीडे-मकोडे है।

जलमखानी-परिवार

(FAMILY PARRIDAE)

इस परिवार मे केवल एक जाति के पक्षी हैं जो जलमखानी या टीभू कहलाते हैं। ये अपने पैर की लम्वी उँगलियो के कारण अन्य पक्षियो से अलग कर दिये गये है और इनका एक अलग परिवार वना दिया गया है।

इन पक्षियो को पहले लोग जलकुक्कुट के भाई-वन्धु समझते थे लेकिन वाद को

पता चला कि इनका उनसे कोई सम्बन्ध नही है और वास्तव में ये टिटिहरी और चहो की विरादरी के हैं।

अपनी लम्वी उँगलियो के सहारे ये पानी के ऊपर तैरनेवाली घास-फूस या कमल और कुई के पत्तो पर वडी आसानी से दौडते रहते है, जैसे कोई खुश्की पर दौड रहा हो। इनका मुख्य भोजन पानी के कीडे-मकोडे है जिनकी तलाश मे इन्हे सारा दिन जलाशयो मे विता देना पडता है।

यहाँ अपने यहाँ के दोनो प्रसिद्ध जलमखानियो का वर्णन दिया जा रहा है जिनके रग-रूप मे भेद अवश्य है लेकिन दोनो की आदते एक-जैसी ही है।

जलमखानी

(BRONZE WINGED JACANA)

जलमखानी को जिसने एक वार भी कमल या कुई के पत्तो पर घूमते देखा होगा वह इसे कभी भी नही भुला सकेगा। यह ११ इच की छोटी सी चिडिया अपनी लम्वी उँगलियो के कारण कमल आदि के पत्तो पर इस तेजी से दौडती रहती है जैसे खुश्की पर टहल रही हो। इसको जलपीपी, टीभू और करटिया भी कहते है। इसके नर-मादा एक रग-रूप के रहते हैं।

जलमखानी हमारे यहाँ राजपूताना को छोडकर प्राय सभी जगह पायी जाती है और शकल-सूरत मे जलमुरगियो से मिलती-जुलती रहती है। इसका सिर, गरदन तथा नीचे का हिस्सा काला रहता है जिसमे हरछौह झलक रहती है। इसकी पीठ तामडे रग की और डैने खैरे रहते है। दुम के नीचे का हिस्सा कत्थई रहता है और आँख के पीछे से गरदन तक एक सफेद स्पष्ट पट्टी चली आती है। चोच पिलछौह हरी और पैर गदे हरे रहते है। इसकी चोच की जड के पास एक लाल चकत्ता-सा रहता है।

जलमखानी ज्यादातर ऐसे तालो मे रहती है जो कमल, कुई, सिंघाडा तथा जलकुभी आदि से भरे रहते है। इन्ही के पत्तो पर ये लम्वी उँगलियोवाली चिडियाँ इधर-उधर दौडती रहती है। जलमखानी पत्तो पर ही नही, खुश्की पर भी आसानी से दौड लेती है और मौका पडने पर पानी मे तैर और डुबकी भी लगा लेती है, लेकिन इनकी उडान भद्दी और कमजोर होती है। इसका मुख्य भोजन पानी के पौधो की

जड, वीज और नरम कल्ले आदि हैं। साथ ही कीडे-मकोडे तथा छोटे कटुओ से भी इसे परहेज नही है।
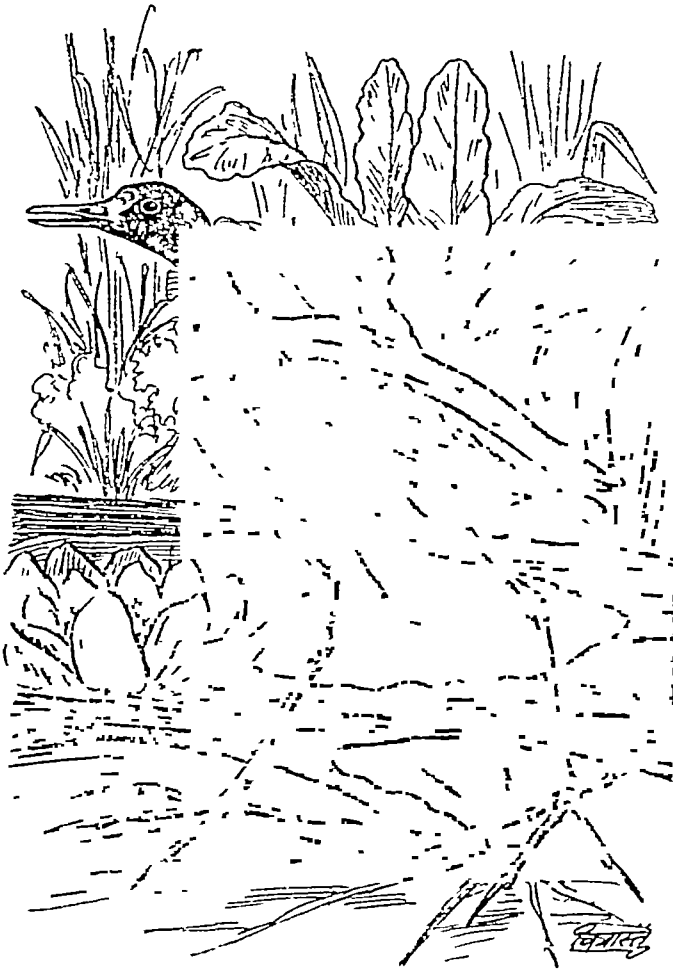
जलमखानी

जोडा बाँधने के समय जलमुरगियो की तरह ये भी बहुत ज्यादा शोर मचानेवाली हो जाती हैं। यह समय जून मे सितम्बर तक रहता है, जब मादा किसी चौडी पत्ती पर अपना घास-पात का भद्दा-सा घोसला बनाकर चार अण्डे देती है। अण्डे भूरे रग के होते हैं जिन पर काली या गाढी भूरी चित्तियाँ पडी रहती हैं।

जलमोर

(PHEASANT TAILED JACANA)

जलमखानी की तरह जलमोर के भी कई नाम प्रचलित है। कही इसे पीही कहते है, तो कही टीभू। कही यह सुखदल के नाम से प्रसिद्ध है तो कही इसे चिकविलाई के नाम से पुकारा जाता है। लेकिन जिसने इसको जलमोर की उपाधि दी है उसकी जितनी तारीफ की जाय थोडी है।
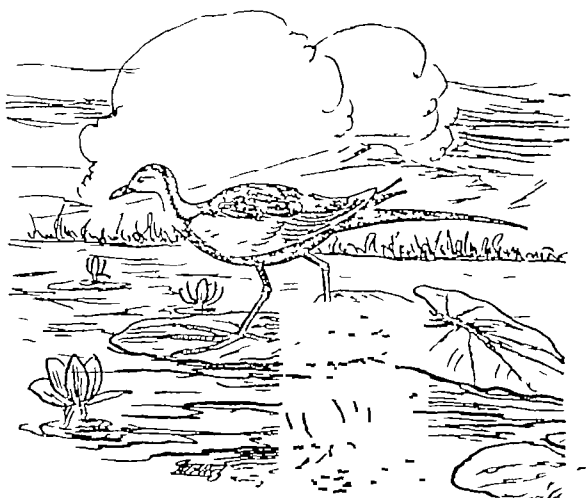
जलमोर

जलमोर १२ इंच का पक्षी है जिसके नर-मादा एक रंगरूप के होते है लेकिन मादा कद में नर से ड्योढी होती है। यह हमारे यहाँ का बारहमासी पक्षी है जो सारे देश में पाया जाता है। कश्मीर मे यह ५-६ हजार फुट की ऊँचाई पर भी देखा जा सकता है। जलमखानी की तरह इसको भी दलदल और कमल या सिघाडे आदि से भरे हुए ताल पसन्द है जिनकी चौडी पत्तियो पर यह इधर-उधर चक्कर लगाया करता है। जलमोर बहुत ही सुन्दर पक्षी है जिसकी गरमियो और जाडो की पोशाक मे बहुत भेद हो जाता है। जाडो में इसका ऊपरी भाग भूरा रहता है और सिर पर तथा ऊपरी गरदन पर सफेद लकीर पडी रहती है। आँख के ऊपर एक सफेद लकीर रहती है और वही से एक भूरी पीली पट्टी गरदन तक चली आती है। सीना कलछौंह और नीचे

का हिस्सा सफेद रहता है। दुम भी सफेद रहती है जिसके बीच के पर भूरे रहते हैं। डैने हलके भूरे रहते हैं जिन पर गाढी भूरी पटरियाँ पडी रहती हैं और दोनो बगल एक-एक सफेद चकत्ते से पडे रहते हैं।

गरमियो मे इसका सिर और गरदन का निचला हिस्सा सफेद हो जाता है और गुद्दी से गरदन का ऊपरी भाग सुनहला पीला तथा बाकी ऊपर और नीचे का सारा शरीर गाढ कत्थई हो जाता है। दोनो बगल के हिस्से सफेद रहते हैं और दुम कलछौंह हो जाती है। नर की दुम पर ६ इच लबे पर निकल आते हैं जिससे वह बहुत भडकीला जान पडने लगता है। इसकी चोच गाढी भूरी और पैर गदे हरे रग के रहते हैं और उनमें की उँगलियाँ काफी लबी होती हैं।

जलमोर जाडो मे कही-कही ५० से १०० तक के झुण्ड मे भी दिखाई पड जाते है जो खतरा निकट देखकर टी-टी की आवाज़ करते हुए हवा मे उड जाते हैं। इनका मुख्य भोजन पानी की घास-पात और उनकी जडें आदि हैं लेकिन ये कीडे-मकोडे भी बडे मजे से खाते हैं। इनकी और आदते जलमखानियो से मिलती-जुलती होती हैं।

जलमोर के जोडा बाँधने का समय जून से सितम्बर तक रहता है, जब मादा किसी चौडी पत्ती पर घासफूस का भद्दा-सा घोसला बनाकर चार अण्डे देती है, जो हरछौंह भूरे या तामड़े रग के रहते हैं।

कुररी उपवर्ग

(SUB ORDER LARI)

इस उपवर्ग मे सब तरह की कुररियाँ और सामुद्रिक रखे गये है जो शक्ल-सूरत मे टिटिहरियो तथा चहो से एकदम भिन्न होते हैं लेकिन पक्षिशास्त्र-विशारदो ने इनकी शरीर-रचना मे समानता पाकर इन्हे एक ही उपवर्ग का पक्षी माना है।

इस उपवर्ग मे एक ही परिवार है जो कुररी परिवार कहलाता है। यहा उसी का वर्णन दिया जा रहा है।

कुररी-परिवार

(FAMILY LARIDAE)

कुररी परिवार में कुररियाँ, सामुद्रिक तथा पनचिरा रखे गये हैं जिन्हे हम पानी के ऊपर उडते तथा पानी में तैरते देख सकते हैं।

कुररियाँ सामुद्रिको से कद में छोटी जरूर होती हैं लेकिन शकल-सूरत और बनावट मे दोनो में बहुत कुछ समानता रहती है। कुररियो के डैने बडे होते है और दुम दुफकी कटी रहती है। उनके पैर भी छोटे होते हैं लेकिन वैसे देखने से ये छोटे कद के सामुद्रिक ही जान पडती हैं । उनके पैर पूरे जालपाद नही होते बल्कि उनकी उँगलियाँ थोडी दूर तक ही आपस में जुटी रहती हैं।

कुररियो की चोच बडी तेज और नोकीली होती है और उनके बदन का ऊपरी हिस्सा सिलेटी तथा निचला सफेद रहता है। सिर के ऊपर का हिस्सा प्राय काला रहता है। इनका मुख्य भोजन मछलियाँ और कटुए आदि है। यहाँ अपने यहा की प्रसिद्ध कुररियो का वर्णन दिया जा रहा है।

सामुद्रिक समुद्र के निकट रहनेवाला पक्षी है, जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है। लेकिन जाडो में हम इसे बडी नदियो और ताला मे भी देख सकते हैं। यह हवा में भी बहुत अच्छी तरह तैर लेता है। इसके पैर बत्तखो की तरह जालपाद होते हैं और इसकी कुछ जातियो का सिर धुर काला रहता है। यह मास-मछली, कटुए, घोघे आदि सब कुछ खा लेता है और अक्सर इसे पानी मे फेंकी हुई लाश के साथ-साथ नदियो में उडते देखा जा सकता है।

यहाँ अपने यहाँ की नदियो मे आनेवाले सामुद्रिक का वर्णन दिया जा रहा है।

पनचिरा शकल-सूरत में तो कुररी की ही तरह होते है लेकिन उनकी ऊपरी चोच छोटी, पतली और नोकीली होती है और निचली काफी लबी और चाकू की तरह पतली रहती है। कुररियाँ मछली पकडते समय ऊपर से पानी में कौडिल्ले की तरह कूद पडती हैं, लेकिन पनचिरा पानी की सतह पर इस तरह उडता है कि उसकी चोच का निचला हिस्सा पानी मे रहता है। इस प्रकार उसकी चोच में जो मछली आ जाती है वह चोच के ऊपरी नोकीले हिस्से में छिद जाती है ।

यहाँ अपने यहाँ की दो प्रसिद्ध कुररियो तथा एक सामुद्रिक और पनचिरा का वर्णन दिया जा रहा है।

कुररी

(TERN)

कुररी को देहात में कुछ लोग धोबिन कहते हैं और कुछ टिटिहरी। इनके धोबिन कहे जाने में तो ज्यादा हर्ज नही है लेकिन इनको टिटिहरी कहना तो सरासर भूल है, क्योकि टिटिहरियो से इनका किसी प्रकार का सम्बन्ध नही है।

इसकी वैसे तो चार-पाँच जातियाँ हैं पर हमारे यहाँ ज्यादातर इसकी दो किस्में दिखाई पडती है —एक वडी कुररी (Com River Tern) और दूसरी छोटी या कलपेटी कुररी (Black-billed Tern)। ये दोनो शकल में एक-जैसी होती हैं। कलपेटी कुररी कुछ छोटी जरूर होती है और उसका पेट भी काला रहता है लेकिन वैसे इन दोनो की आदतें एक-जैसी ही होती है। दोनो के नर-मादा भी एक शकल-सूरत के रहते है।

कुररी

वडी कुररी १६ इच लवी चिडिया है जिसमें उसकी लवी दोफकी दुम भी शामिल है। इसके सारे वदन का रग हलका सिलेटी होता है जो कही हलका और कही गहरा हो जाता है। निचला हिस्सा राख से भी हलका रहता है। गरमियो मे इनकी कनपटी से सिर तक का हिस्सा चमकीला काला हो जाता है, जैसे किसी ने इसे काले मखमल की टोपी पहना दी हो।

इसकी चोच गहरी पीली और छोटे-छोटे पैर लाल रग के होते हैं। चोच लवी और पैर के अँगूठे वत्तखो की तरह जुडे रहते ह और दुम और डैने कद के हिसाव मे काफी वडे होते हैं।

कलपेटी कुररी कुछ छोटी होती है। इसका भी रग हलका सिलेटी होता है, पर काली टोपी के अलावा इसके पेट के नीचे से लेकर दुम तक का हिस्सा भी काला रहता है। अण्डे देने के वाद कुछ समय तक के लिए इसके रग मे भी तब्दीली होती है और इसका काला रग सफेदी मे वदल जाता है।

इसकी चोच नारगी और पैर लाल होते हैं। इसके पैर, दुम और चोच सव वडी कुररी की वनावट के होते हैं।

कुररियाँ झील और दरिया के किनारे रहनेवाली हमारे यहा की बारहमासी चिडियाँ हैं जो नदी के किनारे सैकडो की तादाद में दिखाई पडती है।

इनके पैर बत्तखो की तरह जालपाद होते है, फिर भी ये पानी मे तैरती नही और न इसी वजह से पेड पर ही बैठती है। पेट भर जाने या थक जाने पर ये किनारे पर बालू म और चिडियो के साथ चुपचाप बैठी रहती है। इन्हे अपने लबे और मजबूत डैने पर ज्यादा भरोसा रहता है और उन्ही के सहारे ये ज्यादातर पानी की सतह के ऊपर मछलियो की तलाश मे उडती रहती है, जो इनकी मुख्य खूराक है। शाम को पानी की सतह से चोच मिलाकर इनका उडना बहुत भला मालूम होता है।
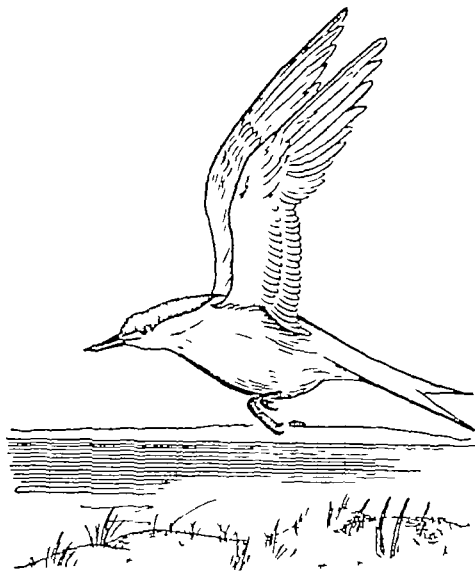
कलपेटी कुररी

ये मार्च से मई तक खुली रेत पर छिछला गड्ढा बनाकर अण्डे देती है। जहाँ तक मुमकिन होता है अण्डे देने के लिए कोई टापू तलाश किया जाता है, जहाँ आदमियो की पहुँच न हो सके। अण्डे पत्थर के रग के होते है जिन पर घनी गहरी भूरी चित्तियाँ पडी रहती है, जिससे वे आसानी से जमीन के रग में मिल जायँ।

बडी कुररी के अण्डे कुछ बडे और कलपेटी के उससे कुछ छोटे होते है लेकिन रग दोनो का एक जैसा ही रहता है।

एक दो नही, सैकडो कुररियाँ एक ही मैदान में अण्डे देती हैं और वहाँ कोई आदमी पहुँचा नही कि उसके सिर के पास ये ऐसी तेज आवाज करती हुई उडती है कि डर लगता है कि वे कही चोच न मार दें।

सामुद्रिक

(GULL)

सामुद्रिक वैसे तो समुद्र की चिड़ियाँ हैं और उनकी अधिक सख्या समुद्र के किनारे ही रहती है लेकिन जाड़े के मौसम में इन्हें उतरी भारत की बड़ी नदियो, झीलो और तालावो के किनारे उड़ते देखा जा सकता है।
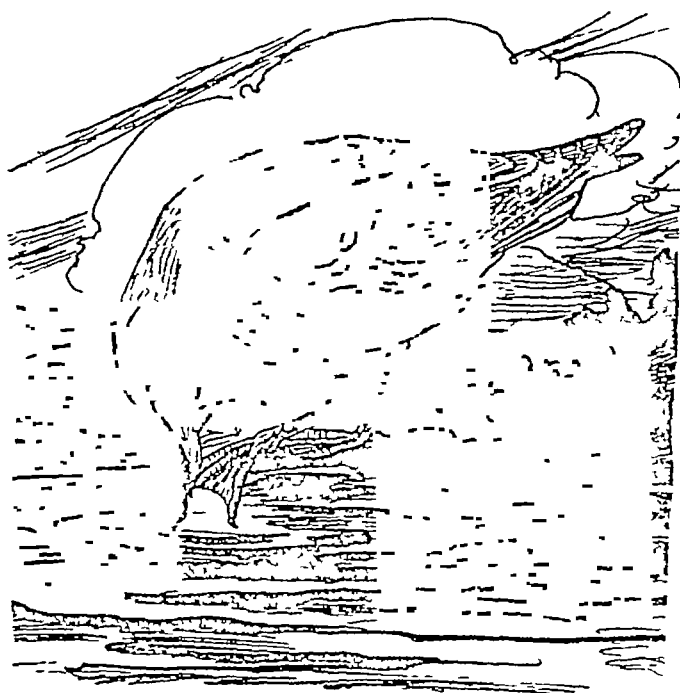
सामुद्रिक

सामुद्रिक हमारे यहाँ का मौसमी पक्षी है जिसका अंग्रेजी नाम गल वैसे तो बहुत प्रसिद्ध है परन्तु हमारे यहाँ इसको घोमरा भी कहते है। इसका सामुद्रिक नाम देहातो मे बहुत प्रचलित है, क्योंकि न जाने लोग यह कैसे जान गये है कि ये समुद्री-पक्षी हैं। वैसे तो ये समुद्र के किनारे रहते हैं लेकिन जाडो मे इन्हें बड़ी नदियो और झीलो के किनारे देखना असम्भव नही।

सामुद्रिक को कुररी का भाई-बन्धु कहना अनुचित न होगा, क्योंकि इनके शरीर की बनावट कुररियो की तरह पतली भले ही न हो लेकिन रगरूप और आदतो

में दोनो वहुत समानता रखते है, यहाँ तक कि इनके पैर के अँगूठे भी कुररियो की तरह जालपाद होते हैं।

सामुद्रिक १६ इच का पक्षी है जिसके नर-मादा एक ही रग-रूप के होते है। इसकी पीठ और डैने हलके राखी रग के रहते है जिनमें एक प्रकार की चमक-सी रहती है। नीचे का हिस्सा, सिर, गरदन और दुम सफेद रहती है, आँख के आगे और कान के पीछे का थोडा हिस्सा भूरा रहता है और डैने के कुछ पखो के सिरे काले रहते है। गरमियो मे इस रग मे कुछ तब्दीली हो जाती है और सामुद्रिक का पूरा सिर और गरदन का कुछ हिस्सा कलछौंह कत्थई रग का हो जाता है। इसकी चोच टेढी और मजबूत होती है। आँख की पुतली भूरी और चोच तथा पैर गाढे लाल रग के होते है।

सामुद्रिक वैसे तो वहुत साफ सुथरी चिडिया है लेकिन इसका भोजन वहुत गदा होता है। पानी मे डुवकी न लगा सकने के कारण यह जिन्दा मछलियो को आसानी स पकड नही पाती। इसी से इसे मुरदाखोर वनना पडा है। किसी तरह की लाश पानी में वहती दिखाई पडी नही कि कुररियो के साथ सामुद्रिको के झुड भी लाश पर चोच मारते दिखाई पडते है।

सामुद्रिको का ज्यादा समय हवा में उडते ही वीतता है, जैसे इनको दूसरा कोई काम ही नही है। हमारे देश में तो ये अण्डे देते ही नही लेकिन यूरोप में इनकी मादाएँ, झुड की झुड कुररियो की तरह, पानी के निकट रेत पर छिछला गढा वनाकर अण्डे देती है। ये गढे घास वगैरह से मुलायम जरूर कर दिये जाते हैं लेकिन इनको छिपाने की जरूरत जैसे इनको नही जान पडती। अण्डो की सख्या दो से चार तक रहती है जिनका रग पत्थरी रहता है और जिन पर गाढी भूरी चित्तियाँ पडी रहती हैं।

पनचिरा

(INDIAN SKIMMER)

पनचिरा को प्राय लोग कुररी ही समझते है क्योकि यह उनका भाई-वन्धु तो है ही, साथ-ही-साथ इसकी शकल-सूरत भी उन्ही की तरह होती है। इसको यह नाम इसकी अनोखी चोच के कारण मिला है जिससे मछलियो के लिए यह उडते-उडते पानी को चीरता चला जाता है। देखने में तो यह कुररियो की तरह होता है लेकिन

इसकी पीठ, डैने और सिर का ऊपरी भाग कलछौंह गाढा भूरा रहता है जिससे इसको पहचानने में ज्यादा दिक्कत नही उठानी पडती ।

पनचिरा हमारे यहाँ का वारहमासी पक्षी है जो अपना सारा समय पानी के पास ही विताता है। इसकी लवाई करीव डेढ फुट की होती है और नर-मादा दोनो एक ही शकल-सूरत और रग-रूप के होते है। सारा शरीर सफेद रहता है लेकिन सिर का ऊपरी हिस्सा, पीठ और डैने कलछौंह भूरे रहते है जो दूर से काले जान पडते हैं। डैने काफी लवे, नोकीले और चटक सिंदूरी रग के होते हैं और पैर जालपाद रहते है। चोच नारगी रग की रहती है। इसकी चोच पतली छुरी की तरह रहती है जिसका ऊपरी हिस्सा निचले हिस्से से छोटा रहता है।
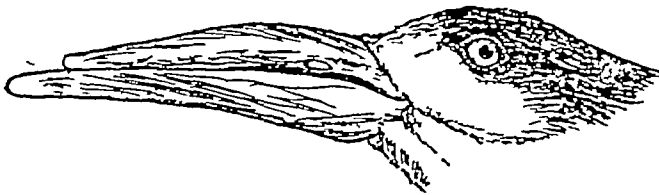
पनचिरा

पनचिरा प्राय वडी नदियो के आसपास रहते है जहाँ इनको अक्सर पानी की सतह से मिलकर उडते देखा जा सकता है। उडते समय ये अपनी चोच से पानी को चीरते चलते हैं, जिससे जो मछली इनकी तेज़ चोच के सामने पड जाती है वह फिर इनसे नही वच पाती। कभी-कभी ये वडी झीलो मे भी चले जाते है लेकिन अगर वहाँ के पानी में काफी दूर तक घास वगैरह न हुई तभी इनको मछलियाँ पकडने मे आसानी होती है। शाम के समय, जव मछलियाँ किनारे की ओर चली आती हैं, तो आठ दस पनचिरे उन्हे घेरकर वडी तेजी से वही चक्कर लगाने लगते है।

इनके जोडा वाँधने का समय मार्च मे मई तक रहता है जव ये कुररियो आदि के साथ काफी वडी सख्या में इकट्ठे होकर जमीन पर अण्डे देते है जो सख्या मे प्राय चार रहते है। इनके अण्डो का रग हरापन अथवा राखीपन लिये सफेद रहता है, जिन पर गाढी भूरी कत्थई या वैंगनी विंदियाँ या चित्ते पडे रहते है।

भटतीतर उपवर्ग

(SUB ORDER DTREOCLES)

भटतीतरो को टिटिहरी वर्ग मे देखकर ताज्जुव होगा, लेकिन वैज्ञानिको ने इनकी शरीर-रचना के वाद यही निश्चय किया कि ये सव एक ही वर्ग के पक्षी है।

ये खुले रेगिस्तानी मैदानो के रहनेवाले पक्षी है जिनके पैर छोटे और डैने नोकीले मजबूत होते है। इनका रग अपने पास-पडोस के रग से ऐसा मिल जाता है कि इनके बहुत निकट जाने पर भी इनको देखना कठिन हो जाता है। अपने इन्ही दोनो गुणो के कारण ये दुश्मनो से वच जाते है।

इनके वच्चे अण्डे से वाहर निकलने के दो ही चार घण्टे वाद अपने माँ-वाप के साथ घूमने-फिरने लगते है लेकिन वे उड नही पाते। इसीलिए वे पानी के पास नही पहुँच पाते जो प्राय इनके रहने के स्थान से दूर रहता है। अत इनकी प्यास वुझाने के लिए इनके वाप को दूर से पानी लाना पडता है। वह जलाशय के पास जाकर अपने सीने के परो को पानी से तर करके वच्चो के पास उड आता है जहाँ उसके प्यासे वच्चे उसके भीगे हुए परो को चूसकर अपनी प्यास वुझाते है।

इनका मुख्य भोजन तरह-तरह के वीज है जो सूखे मैदानो मे मिलते है। इनकी कई जातियाँ हमारे यहाँ पायी जाती है जिनमे से कुछ का वर्णन यहाँ दिया जा रहा है।

भटतीतर

(SAND GROUSE)

भटतीतर को हम तीतर और फाखता के वीच की चिडिया कह सकते हैं। यह एकदम जमीन पर रहनेवाला पक्षी है जो वीस-पचीस के झुड मे रहता है। जमीन पर वैठे रहने पर ये हमे जल्द दिखाई नही पडते लेकिन खुले मैदान मे वैठे रहने के कारण ये शिकारियो को दूर ही से देखकर उड जाते है। इससे उडते समय ही इनका अच्छा शिकार हो सकता है।

भटतीतर यहाँ की वारहमासी चिडिया है जिसे सुनसान मैदानो मे गोल वॉध-कर दाना चुगते हुए अक्सर देखा जा सकता है। इसे न तो नम जगह पसन्द है और न घने जगल ही। इन्हे तो सूखे रेतीले या पहाडी मैदान ही पसद आते है।

इसके नरमादा के रग मे कुछ फर्क रहता है। नर १८ इच का सिलेटी रग का होता है जिममे इसकी लवी दुम भी शामिल रहती है। दुम तो वैसे ज्यादा लवी नही होती, पर उसके वीच के दो पतले पर पतेना की तरह वढे हुए रहते है। मादा की दुम नर से कुछ छोटी होती है। नर के ऊपरी हिस्से का रग हलका सिलेटीपन लिये वादामी रहता है और उमकी पीठ पर कुछ आडी-आडी कत्थई वारियाँ पडी रहती है। दुम और डैने का वाहरी हिस्सा गहरा भूरा होता है और गला हलका पीला और सीना ललछौंह वादामी रहता है।

भटतीतर

इसकी मादा चितकवरी होती है और उसका मारा वदन वादामी रग का रहता है जिसमे सिर, पीठ, डैने और तमाम निचले हिस्से में काले मेहर-मे वने रहते हैं। पेट मे एक आडी पट्टी जरूर विना किमी चिह्न के छूट जाती है और इमकी कनपटी तथा गले के नीचे भी चित्ते नही रहते। चोच तथा पैर मिलेटी रग के होते है। ये अपने गोल के माथ मैदानो मे ही वमेरा करते है, उनमे से कुछ पारी-पारी मे जागकर पहरा देते रहते है, नही तो स्यार और लोमडियाँ इन्हे चट कर जायँ।

भटतीतरी अपने अडे किसी छिछले गड्ढे मे देती है जिसे थोडा घासफूस रखकर मुलायम कर लिया जाता है।

इसके अण्डे अक्मर अप्रैल मे मिलते है जिनकी सख्या दो-तीन से ज्यादा नही होती। अडो का रग गेहुँआ या वादामी होता है जिन पर भूरे और वैगनी रग की चित्तियाँ पडी रहती हैं।

कपोत उपवर्ग

(SUB ORDER COLUMBAE)

कपोत उपवर्ग को टिटिहरी-वर्ग मे देखकर आश्चर्य होगा, लेकिन शरीर-रचना मे समानता होने के कारण यह भी इसी वर्ग मे सम्मिलित कर लिया गया है।

कबूतरो ने जमीन पर रहने के बजाय पेडो पर रहने की आदत डाली, जिससे उनके पैर की उँगलियाँ डाल पकडने लायक हो गयी और उनके बच्चे प्रारभ मे तब तक असहाय रहने लगे जब तक उनके डैने उडने लायक न हो जायें और वे पेड पर के घोसले से बाहर न आने जाने लगे।

उन्होने अपना कीडे-मकोडे का खाना छोडकर दाने से अपना पेट भरना शुरू किया, इससे उनके गले के भीतर एक थैली का विकास हुआ जिसमे वे पहले दाना चुनकर भर लेते है और जहा से कुछ देर बाद दाना पिसकर उनके पेट मे हजम होने चला जाता है। इस थैली मे कबूतर कुछ ककड के टुकडे भी निगल लेते है जो आपस में रगडकर निगले हुए दाने को पीस डालते है। कबूतर इसी थैली से पिसे हुए दाने के रस को, जो दूध जैसा होता है, बच्चो के मुंह मे अपनी चोच डालकर उगल देते है, जिससे उनका पेट भर जाता है।

इस उपवर्ग मे दो ही परिवार है। कपोत-परिवार और डोडो-परिवार। डोडो नाम का पक्षी ससार से लुप्त हो गया है। अत अब केवल एक कपोत-परिवार ही बच गया है।

कपोत-परिवार

(FAMILY COLUMBIDAE)

कपोत परिवार में सब प्रकार के कबूतर, पडकियाँ तथा हारिल रखे गये है जिनके कुछ गुणो का वर्णन ऊपर दिया जा चुका है। ये पेडो पर रहना पसन्द करते है और दाना तथा फल खानेवाले पक्षी है। ये प्राय झुड मे ही रहते है लेकिन इनमें से कुछ जोडा बाँधकर भी रहते है। ये अपनी सिधाई के लिए प्रसिद्ध है और इनमे से कुछ जातियो को मनुष्य ने पालतू बनाकर उनकी अनेक नयी जातियाँ बना डाली है।

यहाँ कबूतर, फाखता तथा हारिल का वर्णन दिया जा रहा है।

कबूतर

(BLUE ROCK PIGEON)

कबूतर हमारे देश के प्राय सभी भागो मे पाया जाता है। यह यहाँ का बारह-मासी पक्षी है, जो देहातो और शहरो मे एक ही समान फैला हुआ है । इसके नर-मादा का रग-रूप एक ही जैसा होता है।

इसके सारे शरीर का रग वैसे तो सिलेटी रहता है लेकिन इसकी गरदन पर चमकीले हरे पखो का एक कठा-मा रहता है जिसके नीचे फिर एक बैंगनी पट्टी रहती है जो सूरज की किरण पडने से चमक उठती है। पीठ और डैनो का रग कुछ गहरा होता है जिन पर दो-तीन आडी पट्टियाँ पडी रहती है। दुम का सिरा काला रहता है जिसके दोनो बगल सफेद धारी रहती है।
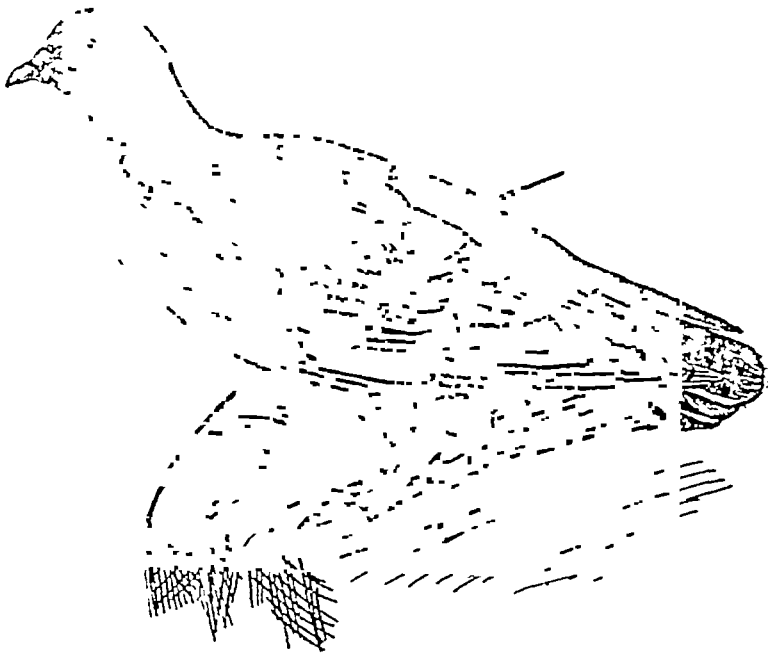
कबूतर

इसकी आँख की पुतली नारगी, चोच सिरे पर काली, जड पर सफेद और पैर गहरे गुलाबी रहते हैं। कबूतर प्राय रात मे पेडो पर बसेरा न करके पुरानी इमारतो अथवा कच्चे कुओ और ऊँचे कगारो की दरार मे रहते है। ये प्राय.

गोल में रहते हैं जिन्हें अक्सर खेतो में दाने चुगते देखा जा सकता है। उडने मे तो कबूतरो की जल्द कोई बराबरी नही कर सकता।

इन्हें घोसला बनाना शायद आता नही, नही तो मकान की कारनिसो, छज्जो, मिट्टी के टीलो और कच्चे कुओ की सूराखो में लापरवाही से थोडा-सा घास-फूस रखकर इनकी मादा अण्डे न देती।

वैसे तो इनके अण्डा देने का समय जनवरी से मई तक है, पर साल मे दो बार अण्डा देने के कारण इनके घोसलो में प्राय सभी महीनो मे अण्डे मिल जाते है। इनके अण्डे सफेद होते है।

इस जगली कबूतर से ही विकास करके मनुष्यो ने इनकी अनेक जातियाँ बनायी है जो अपने सुन्दर रग-रूप के कारण सारे ससार में शौकीनो द्वारा पाली जाती है। इन पालतू कबूतरो में कुछ तो उडान के गिरहबाज़ कबूतर होते है और कुछ ऐसे होते है जिन्हें उनकी सुन्दरता के लिए ही पाला जाता है। इन सुन्दर कबूतरो में चीना, मुक्खी, गोला और अबरसरे आदि मामूली किस्म के सफेद या चित्तीदार कबूतर है जिन्हें अक्सर पालनेवालो के यहाँ देखा जाता है, लेकिन लक्का अपनी टेढी गरदन और उठी हुई पूंछ के कारण औरो से अलग ही रहता है। शीराज़ी कबूतर बहुत सुन्दर होते हैं जिनका कद भी बडा होता है। लोटन कबूतर हाथ में लेकर ज़मीन पर उलटकर छोड देने से लोटता ही रहता है, लेकिन इन सबसे आश्चर्य-जनक होते हैं उडान के कबूतर, जिनके द्वारा आज भी लडाई की खबरें भेजी जाती हैं। ये कबूतर सफेद भी होते हैं और जगली कबूतरो-जैसे सिलेटी भी। लेकिन इनमें यह खासियत होती है कि ये जहाँ पले रहते है उस जगह को, दूर ले जाकर छोडे जाने पर भी, नही भूलते और सैकडो मील दूर छोडे जाने पर भी अपनी पुरानी जगह पर लौट आते हैं। इनको वैसे भी सबेरे उडा दिया जाता है जहाँ ये बहुत ऊपर जाकर आसमान में ऐसे डूब जाते है कि दिखाई ही नही पडते और सारे दिन उडते रहकर शाम को कही नीचे उतरते है।

फाखता या पडकियाँ

(DOVES)

फ़ाखता को पडकी भी कहा जाता है। इनकी कई जातियाँ हमारे यहाँ पायी जाती हैं जो अपने भोलेपन और सिधाई के लिए कबूतरो से कम प्रसिद्ध नही है।

ये कबूतर के भाई-बन्धु हैं, जिनकी शकल-सूरत ही नही आदते भी उन्ही से मिलती-जुलती रहती हैं।

पडकियाँ इतनी सीधी और भोली चिडियाँ हैं कि उनके शिकार में जरा भी परेशानी नही उठानी पडती। खेत के आसपास के बबूल आदि पेडो पर इन्हे देखा जा सकता है। इसके अलावा ये जगल और खुले हुए मैदानो में भी काफी सख्या में दिखाई पडती हैं। यहाँ अपने यहाँ की पाँच पडकियो (फाखतो) का वर्णन दिया जा रहा है जिनकी शकल-सूरत मे भेद भले ही हो, लेकिन इनकी आदतो में किसी प्रकार का भेद नही रहता।
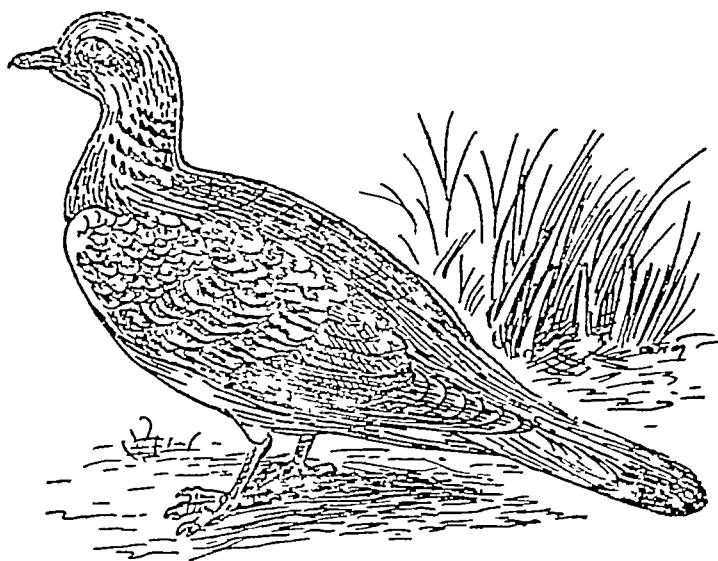
काल्हक फाखता

१ काल्हक फाखता—Turtle Dove
२ चितरोखा- फाखता—Spotted Dove
३ धवर फाख्ता—Ring Dove
४ टुटरूँ फाखता—Brown Dove
५ इँटकोहरी फाख्ता—Red Turtle Dove

काल्हक फाखता का कद सबसे बडा होता है। यह कबूतर के कद का सुन्दर पक्षी है जिसका सिर, गरदन और ऊपरी हिस्सा ललछौंह भूरा और निचला हिस्सा

हलका कत्थई रहता है। गरदन के दोनो ओर काली-काली चित्तियाँ रहती है और डैनो पर सेहर-से निशान पडे रहते है। दुम भूरी होती है जिसका सिरा गाढा कत्थई रहता है।

इसकी चोच भूरी, पैर और पजे लाल होते है। अण्डे सफेद रग के होते है। काल्हक के बाद चितरोखा का नम्बर आता है। यह कद मे तो काल्हक से कुछ छोटा होता है, पर सुन्दरता में उससे आगे ही रहता है।

इसका सिर ललछौंह सिलेटी, गरदन के ऊपरी हिस्से से पीठ तक का हिस्सा काला, जिसमे सफेद बिन्दियाँ, उसके बाद भूरा जिस पर हलकी कत्थई और काली चित्तियाँ और लकीरे रहती है। डैने भूरे और दुम के बीच का हिस्सा भी भूरा रहता है जिसके दोनो किनारे काले और सफेद होते है। इसका गला और दुम के नीचे का हिस्सा सफेद होता है और उसके बीच का तमाम निचला हिस्सा ललछौंह कत्थई रहता है।

इसकी चोच गदी काली और पैर बैगनीपन लिये लाल रहते है। इसके अण्डे घुर सफेद होते हैं।
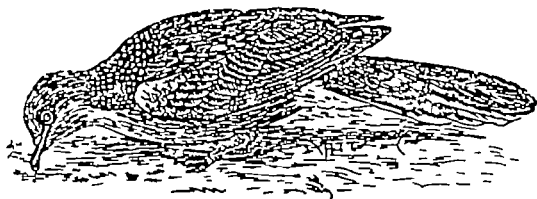
चितरोखा फाखता

धवर चितरोखा के बराबर ही होता है, पर इसका रग चित्तेदार न होकर सुन्दर राख के रग का रहता है। इसके सिर के रग में बहुत हलका फालसई रग मिला रहता है और गरदन के ऊपरी हिस्से पर सफेद और काली धारी का एक कठा-सा रहता है। इसकी पीठ का रग हलका भूरापन लिये हुए हलका सिलेटी और डैने के सिरे और दुम के किनारे चितरोखा की तरह काले और सफेद रहते हैं। निचला कुल हिस्सा हलके सिलेटी या राख के रग का रहता है जिसमें बहुत हलका फालसई रग मिला रहता है।

इसकी चोच काली और पैर गाढे गुलावी रहते है। अण्डे चितरोखा के वरावर और उसी तरह सफेद होते है।
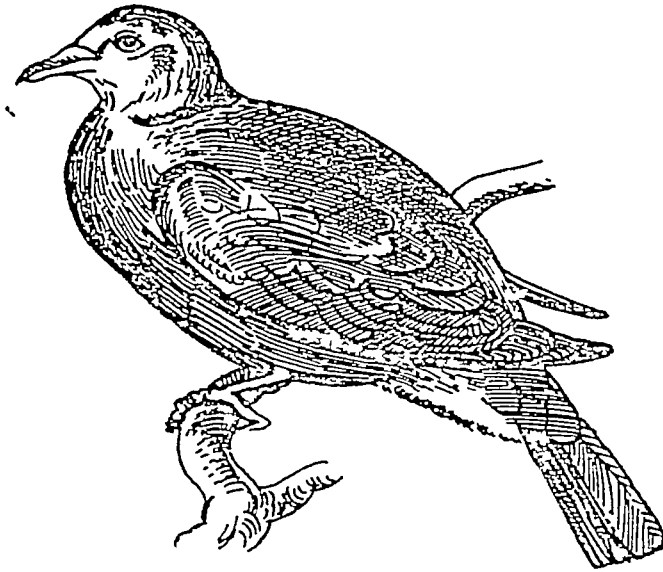
धवर फाखता

टुटरूँ फाखता इन तीनो से छोटी होती है। इसका कद ८–९ इच का रहता है और यह चितरोखा और धवर के वीच की चिडिया जान पडती है। इसका
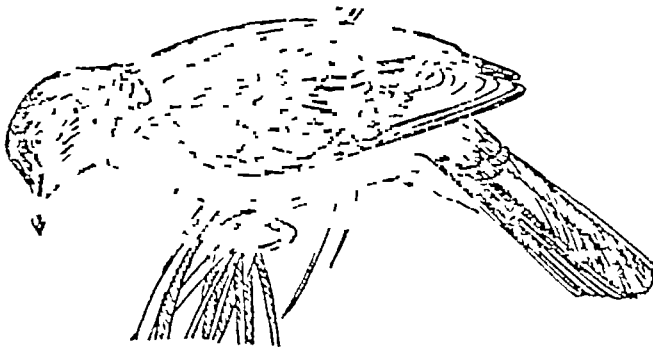
टुटरूँ फाखता

सिर, गरदन और सीना फालसई लिये ललछौंह होता है और गरदन के दोनो ओर कालहक की तरह काली पट्टियाँ होती हैं जो सफेद विन्दियो से भरी रहती है। इस

ऊपरी हिस्से मे हलकी सिलेटी पट्टियाँ पडी रहती है जिसका सिरा कत्थई रहता है। दुम भूरी होती है जिसके किनारे काले और सफेद होते है। इसके सीने के नीचे पेट से लेकर दुम तक का निचला हिस्सा सफेद रहता है। चोच काली और पैर गुलाबी रहते है।

इनके भी अण्डे सफ़ेद ही होते है जो घवर से कुछ छोटे रहते है।
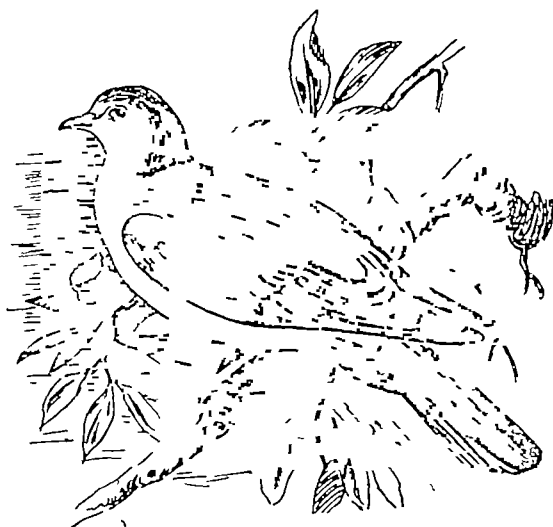
ईंटकोहरी फाखता

पाँचवाँ और आखिरी फाखता ईंटकोहरी या सिरोटी फाखता है। यह सबसे छोटी पडकी है जिसके नर-मादा का रग अलग-अलग होता है। ईट के रग की होने के कारण इसका नाम ईंटकोहरी पड गया है। नर के सिर का रग सिलेटी, गरदन पर घवर की तरह काला कठा, उसके वाद का ऊपरी हिस्सा ईट के रग का, और डैने के सिरे कत्थई रग के होते है। दुम की जड सिलेटी और वाद का हिस्सा भूरा रहता है। इसके किनारे काले और सफेद रहते है। इसके नीचे का हिस्सा भी ईट के रग का रहता है जो दुम के नीचे पहुँचकर सफेदी में बदल जाता है।

मादा का ऊपरी हिस्सा राख के रग का भूरा, सिर, डैने और दुम नर की तरह और निचला हिस्सा हलका भूरा होता है। इसकी चोच काली और पैर हलके होते है। अण्डे का रग अन्य पडकियो की तरह सफेद होता है।

फाखता के अण्डे देने का समय पूरे साल भर रहता है। यह साल मे दो बार अण्डे देती है, पर एक मर्तबा में इनके ज्यादातर दो ही अण्डे पाये जाते है।

इनके घोसले को घोसला न कहकर मचान कहे तो ज्यादा ठीक होगा। ये किसी दोफकी डाल पर दस-बीस सीधी-आडी टहनियाँ रख देती है, जिस पर मादा अण्डे देकर खुला ही छोड देती है। अण्डे ऊपर से ही नही पेड के नीचे से भी साफ दिखाई पडते है।

हारिल

(GREEN PIGEON)

फाखता की तरह हारिल की भी कई जातियाँ है जिनमे कुछ हारिल कहलाती है और कुछ कोकिला, लेकिन इन सबके रगो में थोडा ही फरक रहता है और आदतें तो इन मवकी एक ही जैसी होती है ।
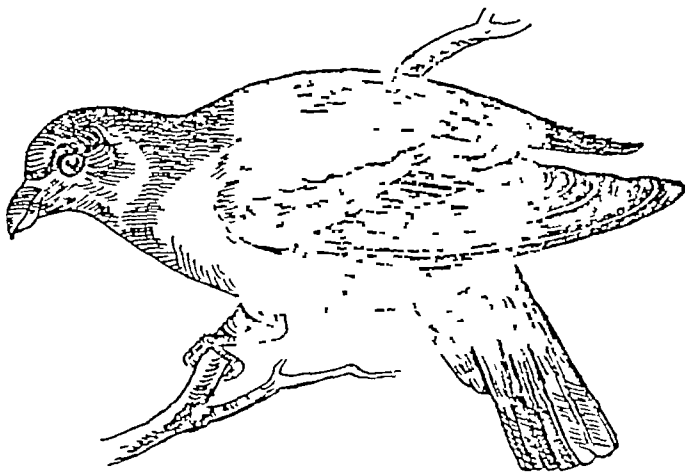
हारिल

हारिल हमारा बहुत परिचित पक्षी जरूर है, लेकिन अपनी फल की मुख्य खूराक के कारण यह शायद ही कभी जमीन पर उतरता हो और इमी कारण यह हमारी निगाहो के तले बहुत ही कम पडता है। हारिल हमारे यहाँ का प्रसिद्ध बारहमासी पक्षी है जिमके नर-मादा एक शकल के होते है। यह कद में कबूतर के बराबर होने पर भी उससे तगडा होता है और रग मे तो उससे कही ज्यादा सुन्दर और भडकीला होता है।

इसका सिर पीलापन लिये हरा, गरदन के चारो ओर से लेकर सीने तक का हिस्सा भूरा और ऊपरी हिस्सा पीलापन लिये गाढा रहता है। डैने पर काली और फालसई धारियाँ पडी रहती है। इसकी दुम हरी, जिसमे बीच मे भूरी-आटी पट्टी, नीचे का भाग भूरा जिसमे बादामी धारियाँ और पेट और नीचे का हिस्सा हलका सिलेटी रहता है।

इसकी ऑख के चारो तरफ एक गुलाबी घेरा रहता है। इसकी चोच सूजी-सूजी-सी, जिसका निचला हिस्सा हरा और आगे का हिस्सा नीलापन लिये सफेद रहता है। पैर नारगी लाल होते है।

हारिल के अण्डा देने का समय मार्च से जून तक है, जब यह किसी ऊचे पेड पर सूखी टहनियो का एक ऐसा तितरा-बितरा घोसला बनाता है जिसके पेदे से अक्सर इनके अण्डे दिखलाई पडते है। घोसले को मुलायम करने के लिए घास-फूस भी नही लगाया जाता क्योकि हारिल को जमीन पर उतरने से नफरत है। इसी भद्दे घोसले मे मादा दो चमकीले अण्डे देती है।

शुकपिक वर्ग

(ORDER OPHISTHOCOMIFORMES)

इस छोटे वर्ग मे हमारे यहाँ के सभी प्रकार के तोते और कोयले आ जाती है। इन दोनो पक्षियो मे कुछ भेद होने के कारण इन्हे इस प्रकार दो उपवर्गो मे बॉट दिया गया है—

१ पिक उपवर्ग—Sub Order Cuculi

२ शुक उपवर्ग—Sub Order Psittaci

पिक उपवर्ग

(SUB ORDER CUCULI)

इस उपवर्ग मे कोयल और उनके भाई-बन्धु है जिनमें से दो एक के सिवा प्राय सभी पेड पर रहते है। इनकी दूसरे के घोसलो में अपना अण्डा सेने के लिए रख आने की आदत को हम सब जानते है। इसी कारण हमारे यहाँ इनको परभृत-जीवी कहा जाता है। मादा समय आने पर चरखी, कौआ या पोदना आदि के

घोसलो मे अपने अण्डे दे आती है जहाँ वे समय पाकर फूटते है। उनमें से इनका जो वच्चा निकलता है वह एक-एक करके दूसरे सव वच्चो को घोसले मे वाहर फेक देता है और अकेले सबका हिस्सा भोजन खाकर शीघ्र मोटा-ताजा हो जाता है। कोयल इसी प्रकार, विना घोसला वनाये और बिना अण्डो पर बैठे ही अपना वश वढाती रहती है।

इनका मुख्य भोजन कीडे-मकोडे और जोराइयाँ है, लेकिन कुछ वडे कद के पक्षी साँप, छिपकली और अन्य छोटे-मोटे जीव-जन्तुओ को भी खा लेते है। हमारे यहाँ की प्रसिद्ध कोयल के नर का रग जरूर काला होता है, लेकिन वाकी और कुक्कू, फूपू, काफलपाक्को आदि कोयले भूरी चितकवरी होती है।

इस उपवर्ग मे एक ही परिवार है जो पिक-परिवार कहलाता है।

पिक-परिवार

(FAMILY CUCULIDAE)

पिक-परिवार के अधिकाश पक्षी चितकवरे होते है, जिनका मुख्य भोजन कीडे-मकोडे है। इनके वारे मे ऊपर वर्णन हो ही चुका है। यहाँ कुछ प्रसिद्ध पक्षियो का वर्णन दिया जा रहा है।

कोयल

(INDIAN KOEL)

कोयल हमारी चिडियो मे सवसे मीठी वोली वोलनेवाली चिडिया मानी जाती है और वास्तव में यह है भी ऐसी ही। वसन्त के वाद आम मे वौर आये नही कि कोयलो की एक वडी सख्या हमारे प्रान्त मे फैल जाती है और कू ऊ ऊ ऊ, कू ऊ ऊ करके गरमी के आगमन की सूचना देने लगती है।

यह हिन्दुस्तान के लिए तो वारहमासी चिडिया है, पर हमारे प्रान्त को जाडो में छोडकर धुर दक्खिन चले जाने के कारण इसको यहाँ मौसमी चिडियो में शामिल कर लिया जाता है। इसका नर धुर चमकीला काला रहता है पर मादा भूरी होती है। इसके पेट का जहाँ हलका रग रहता है वहाँ गहरी भूरी और डैने आदि पर जहाँ गहरा रग रहता है वहाँ सफेद चित्तियाँ रहती है। दुम पर गहरी भूरी और सफेद धारियाँ रहती है। मादा की शकल थोडी वहुत पपीहे मे मिलती-जुलती होती है।

कोयल की लम्बाई लगभग १७ इच होती है। इसकी चोच धूमिल हरी और पैर गहरे सिलेटी रग के होते है। यह मुख्यतया फल खानेवाली चिडिया है और इसी कारण ज्यादातर पेडो पर ही रहती है। इसके अण्डा देने का समय तो जून है, पर इसके अण्डा देने का हाल वहुत दिलचस्प है।

कोयल
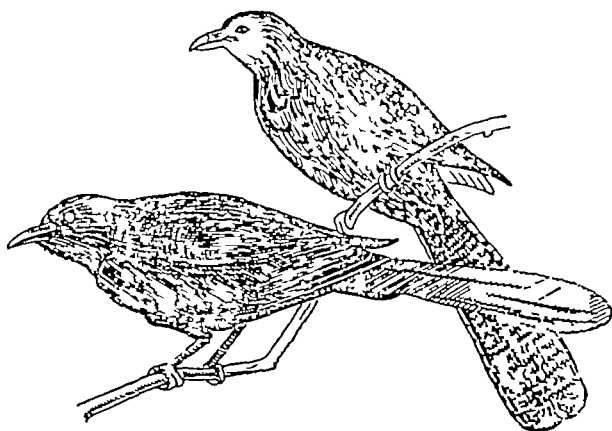
यह स्वय घोसला न वनाकर कौए के घोसले में अपने अण्डे सेने के लिए रख आती है और चूंकि कौआ अपने अण्डो को अकेला नही छोडता और नर या मादा कोई न कोई अण्डो पर वैठा ही रहता है इससे कोयल को उसे धोखा देना पडता है। नर कोयल जिसकी शकल कौए-जैसी होती है, घोसले के पास जाकर इतना उत्पात मचाता है कि वहाँ के सब कौए, जिसमें अण्डा सेनेवाली मादा भी रहती है, उसे खदेड लेते हैं। वह भागता है और तेज उडने के कारण कौओ की पकडाई में न आकर उनको इधर-उधर दौडाता रहता है और तव तक मादा घोसले में जाकर कौए के अण्डे को गिराकर स्वय अण्डे दे देती है। अण्डा फूटने और वच्चो के वडे होने पर कही जाकर असली भेद खुलता है और तव वे कौए के घोसले से खदेड दिये जाते हैं।

इनके अण्डो का रग नीलापन लिये हरा होता है, जिस पर कत्थई चित्तियाँ पडी रहती हैं।

पपीहा

(HAWK CUCKOO)

कोयल की तरह पपीहा भी हमारा वहुत परिचित पक्षी है, जिसे पेडो पर रहने के कारण हमने भले ही न देखा हो, लेकिन इसकी 'पी कहाँ, पी कहाँ' की तेज वोली हम सवने सुनी होगी।

कोयल की तरह यह भी यहाँ का वारहमासी पक्षी है जो जाडो मे दक्खिन की ओर चला जाता है। कुछ पपीहे यहाँ हमारे प्रान्त मे रह भी जाते है, पर चूंकि ये ज्यादातर पेडो पर ही रहते है इससे हम लोग इन्हे नही देखते और देखते भी होगे तो इनको शिकरा समझकर न पहचानते होगे। पपीहे के नर-मादा एक-जैसे होते है और इनकी शकल-सूरत शिकरे से वहुत मिलती-जुलती होती है। हाँ, लम्वाई में १५-१६ इच के होने के कारण ये उसके वच्चे जान पडते है।
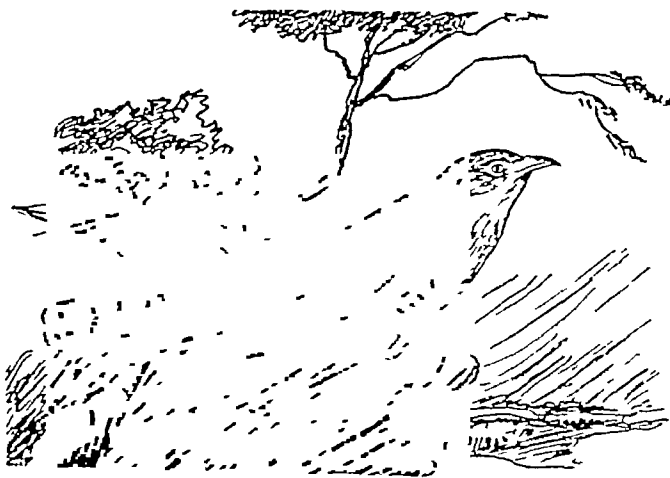
पपीहा

पपीहे के डैने और ऊपरी हिस्से का रग हलका मिलेटी भूरा होता है, जिम पर दुम के पाम से चलकर कुछ छोटी-छोटी सफेद वारियाँ रहती है। इमकी दुम लम्वी होती है जिसके वीच मे दो-चार काली और मफेद आडी पट्टियाँ और छोर पर एक मफेद धारी रहती है। इसकी चोच से लेकर सीने तक मफेदी लिये हुए हलका मिलेटी रग रहता है जिसमे पेट के पाम भूरी वारियाँ रहती है।

इसकी चोच हरापन लिये पीली होती है जिसका आगे का हिस्सा काला रहता है। टाँगे भी पीली ही होती है।

पपीहा वैसे तो फल खानेवाला पक्षी है लेकिन कीडे-मकोडो से भी इसे परहेज नही है। यह रोएँदार जुरई को वडे स्वाद से खाता है, जिसे वहुत चिडिया शायद खाना पसन्द न करे।

इसके अण्डे देने का समय अप्रैल से जून है जव कोयल की तरह यह भी स्वय अण्डे न सेकर दूसरो से ही यह काम लेता है। कोयल को तो कौए-जैसे मक्कार पक्षी को धोखा देना पडता है, पर इसको यह दिक्कत नही उठानी पडती। यह चरखी-जैसी सीधी चिडिया से यह काम लेती है। चरखी को पता भी नही चलता और इसकी मादा उसके अण्डो के पास अण्डे दे आती है। अण्डे फूटने के वाद भी चरखी को पता नही चलता और वह इसके वच्चो को पाल-पोसकर वडा कर देती है।

पपीहे के अण्डे चरखी की तरह नीले रग के होते है, पर नाप मे ये उससे कुछ वडे रहते है।

कुक्कू

(CUCKOO)

कुक्कू हमारे यहाँ का वहुत प्रसिद्ध पहाडी पक्षी हे, लेकिन हिमालय का निवासी होने के कारण हम मैदानो मे इसे वहुत कम देख पाते है। इसके भाई-वन्धु कोयल और पपीहा तो समय आने पर हमे मैदानो में अपनी मीठी वोली सुना जाते है और महोख तो हमारे गाँव की चिडिया वन गयी है, लेकिन कुक्कू मैदान की ओर सिर्फ मध्य-भारत तक ही पहुँच पाती है। यह भी जाडो मे अन्य मौसमी पक्षियो की तरह दूसरे देशो से हमारे यहाँ आया करती हे।

कुक्कू की कई जातियाँ हमारे यहाँ पायी जाती है, लेकिन इसमे एक तो हमारी प्रसिद्ध कुक्कू है जो हमारे यहाँ जाडो मे वाहर से या हिमालय के उत्तरी भाग से मध्य-भारत तक फैल जाती है और दूसरी यहाँ की वारहमासी कुक्कू (Indian Cuckoo) जो काफल पाक्को के नाम से हमारे यहाँ प्रसिद्ध है। दोनो का रग और स्वभाव करीव-करीव एक-जैसा ही रहता है, लेकिन काफल पाक्को कद मे कुक्कू से कुछ छोटी होती है।

कुक्कू १३ इच की मझोले कद की चिडिया है जिसके नर-मादा के रग में थोडा ही भेद रहता है। नर के शरीर का ऊपरी भाग राख के रग का रहता है। इसके डैने भूरे होते हैं जिनमें एक प्रकार की चमक रहती है और ऊपर सफेद पटरियाँ पडी रहती हैं। गला, ठुड्ढी और सीना हलका राखी रहता है और वाकी नीचे का कुल हिस्सा सफेद रहता है जिम पर पतली काली लकीरे पडी रहती हैं।

कुक्कू
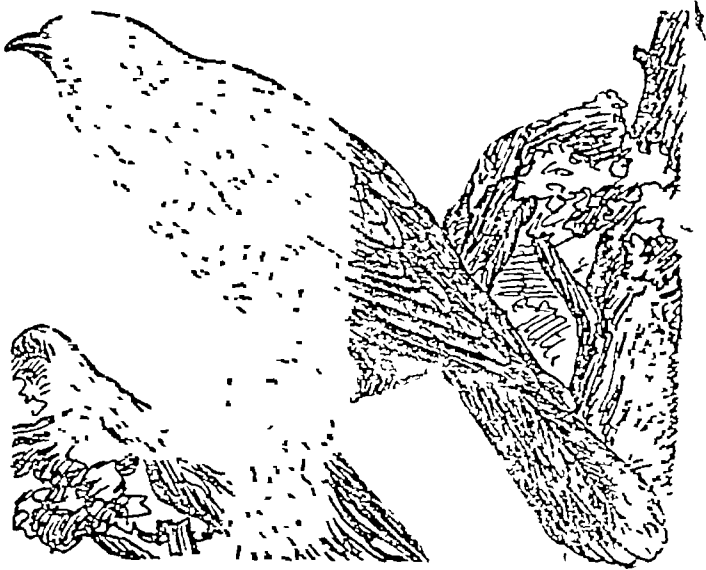
मादा के शरीर के निचले हिस्मे की लकीरें काली न होकर भूरी रहती है और उसका रग नर से कुछ हलका रहता है। दोनो की चोच गाढी भूरी और पैर पीले होते हैं।

कुक्कू कोयल और पपीहे की तरह वहुत शरमीली चिडिया है जो अपना मारा समय पेडो पर ही विताना पसन्द करती है, लेकिन इसकी 'कू कू कू कू कू' अथवा काफल-पाक्को को 'ओ ओ ओं' की परिचित वोली मे इमको पहचानने मे देर नही लगती। जिम प्रकार कोयल हमारे यहाँ वहुत प्रमिद्ध है उमी प्रकार यूरोप आदि देशो मे कुक्कू ने माहित्य मे अमरता प्राप्त कर ली है।

इनकी, दूसरे पक्षियो के घोमले में अण्डा देने की, आदत का विवरण कोयल के वर्णन के साथ दिया गया है, जो पक्षि-जगत मे अपने ढग का अनोखा है। यह पारी-पारी से चरखी आदि के घोसलो मे वीस तक अण्डे दे आती है जहाँ से इनके परभृत

जीवी बच्चे बडे होकर अपना स्वतन्त्र जीवन बिताने के लिए मुक्त आकाश में उड जाते हैं।

इसके अण्डे सफेद प्याजी या पत्थरी रग के होते है जिनपर ललछौंह बैगनी या काली चित्तियाँ पडी रहती है।

महोख
(CROW PHEASANT)

कोयल और पपीहे का भाई-बिरादरी होकर भी महोख शकल-सूरत में उनसे भिन्न होता है। यह हमारा बहुत परिचित और ढीठ पक्षी है और इसे अपने बाग-बगीचो मे देखना बहुत ही आसान है। यही नही, यह बस्ती के आसपास सडक के किनारे सूखती हुई तलैयो में, अमराइयो और बँसवाडियो मे जरूर दिखाई पडेगा। यह कीडे-मकोडे खानेवाला गदा पक्षी है, जो बारहो महीने यही रहता है। यह कीडे ही नही छोटे-मोटे साँप भी खा लेता है।

इसके बोलने का समय रात का पिछला पहर है जब एक महोख के बोलते ही आस-पास के सब महोख बोलने लगते है। गाँव के लोग इसकी बोली से सवेरा होने का अन्दाजा कर लेते है।

महोख

महोख लगभग २० इच लम्बा पक्षी है जिसके नर और मादा की शकल एक-जैसी होती है। गहरे खैरे डैनो को छोडकर इसका सारा बदन काला होता है। इसकी

दुम कद से वडी, डैने कद से छोटे और चोच वाज की तरह टेढी होती है। चोच और पैर काले रहते हैं।

महोख के अण्डे देने का समय जून से सितम्बर तक है। जोडा बॉधने से पहले नर महोख मादा को खुश करने के लिए अपनी लम्बी पूंछ फैलाकर नाचता है। इसके बाद जोडा बॉधने पर दोनो घोसला बनाने मे लग जाते हैं। इनका घोसला अक्सर गोल गुम्बज की शकल का होता है जिसमें बगल से घुसने का रास्ता बना रहता है। कद में यह काफी बडा होता है, इसी से अण्डा सेते समय मादा की दुम घोसले मे बाहर निकली रहती है। इसके अण्डे घुर सफेद रहते हैं।

शुक उपवर्ग

(SUB ORDER PSITTACI)

तोतो को भला कौन नही पहचानता ? ये अपनी टेढी और मजबूत चोच के लिए प्रसिद्ध हैं। इनकी सैकडो जातियाँ ससार मे फैली हैं जो अपनी रगीन पोशाक के लिए विख्यात हैं।

तोते बडे, छोटे सभी कद के होते हैं लेकिन हमारे यहाँ तो छोटे ही कद के तोते पाये जाते हैं, जिनका रग प्राय हरा रहता है।

इनका मुख्य भोजन फल-फूल, गल्ला और बीज है लेकिन कुछ कीडे-मकोडे और छिपकली आदि भी खाते हैं।

ये अक्सर झुड मे रहते हैं और अपने अण्डे किसी पेड के खोथे में, या पहाड की दराज मे देते हैं।

इनके वैसे कई परिवार हैं लेकिन हमारे यहॉ केवल शुक-परिवार के ही पक्षी पाये जाते है।

शुक-परिवार

(FAMILY PSITTACIDAE)

इस परिवार के पक्षियो की विशेषताओ का वर्णन ऊपर हो ही चुका है। हमारे यहाँ जो दो प्रसिद्ध तोते पाये जाते हैं उन्ही का वर्णन यहॉ दिया जा रहा है।

तोते

(PARROTS)

ऐसा कौन है जो तोते को न पहचानता हो ? पालतू चिड़ियों मे सबसे ज्यादा इसी को पिजड़े मे बन्द रहना पड़ता है, लेकिन इसके लिए लोहे के पिंजड़ो की जरूरत पड़ती है, नही तो ये अपनी तेज चोंच से उसे काटकर फौरन उड़ न जायँ।

हमारे यहाँ वैसे तो कई तोते पाये जाते है लेकिन उनमे हरा या ढेलहरा तोता (Green Parakeet) तथा टुइयाँ तोता (Blossom Headed Parakeet) प्रसिद्ध है। यहाँ इन्ही दोनो का वर्णन दिया जा रहा है। हम पहले हरे या ढेलहरा तोते को ही लेते है।

तोता (ढेलहरा)
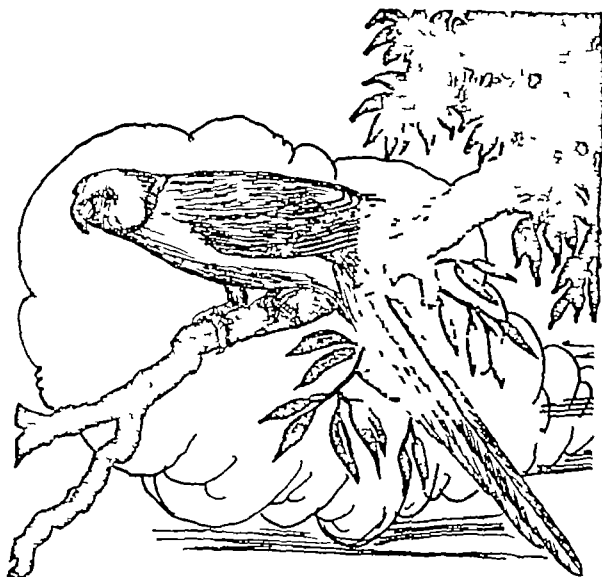
ढेलहरा तोता मय अपनी लम्बी दुम के कद मे १६ इच का होता है। इसके नर के ऊपरी हिस्से का रग चमकीला हरा रहता है जो गरदन तक पहुँचकर धानी हो जाता है। डैने गहरे हरे और दुम के बीच के पर आसमानी और बाकी धानी होते हैं।

गरदन के ऊपरी हिस्से मे एक कठानुमा लाल पट्टी रहती है और निचली चोच और इस कठे तक दोनो गालो पर चन्द्राकार काली धारियाँ रहती है। निचला हिस्सा भी धानी ही होता है। मादा भी करीब-करीब इसी रग की होती है, लेकिन उसका गुलाबी कठा और गाल की काली लकीरे गाढे हरे रग मे बदल जाती है।

दोनो की चोच लाल और पैर हरापन लिये हलके सिलेटी रग के होते है।

तोते की ऊपर की चोच बहुत टेढी होती है जो निचली चोच पर काफी ऊपर तक चढी रहती है।

ढेलहरा या हरा तोता यहाँ का बारहमासी पक्षी है जो गरोह ही मे रहता है और बसेरा करता है। फल और खेतो की बाल पर जो इनके हमलो को जानते है उनसे इनकी खूराक के बारे मे बताने की ज्यादा जरूरत नही। ये इतनी तेजी से उडते है कि इनकी लम्बी दुम किसी प्रकार इसमे बाधा नही डाल सकती। वैसे तो इनकी बोली बडी कर्कश होती है, पर पढाने से ये शरारती होते हुए भी बहुत जल्द पढ जाते है और आदमियो की बोली की नकल करने लगते है।

तोते घोसले नही बनाते। इनकी मादा पेड के खोथो मे चार से छ तक अण्डे देती है जो धुर सफेद रहते है। खोथे न मिलने पर इन्हे अपनी तेज चोच का सहारा लेना पडता है और तब ये कठफोर की तरह पेड के तनो को छेदकर सूराख बना लेते है।

टुइयाँ तोता

टुइयाँ तोता (Blossom headed Parakeet) हरे तोते से कुछ छोटा होता

है पर इसकी शकल-सूरत और बाकी सब आदतें एक-जैसी होती हैं। दोनों के रंग में फर्क जरूर रहता है। इसके नर का सिर बैंगनी लिये हुए लाल होता है जैसे अधपकी जामुन। इसके बाद ही गरदन के चारो ओर एक काला कंठा रहता है और उसके बाद से चटक हरा रंग शुरू होता है जो दुम तक चला जाता है। निचला हिस्सा धानी और डैने गाढे हरे होते हैं जिन पर दोनों ओर एक-एक लाल चित्ती रहती है। मादा के गले के कंठे का रंग पीला होता है और उसका सिर जामुन के रंग का न होकर कुछ बैंगनीपन लिये हुए ऊदी रंग का होता है।

इनकी ऊपरी चोंच नारंगी और नीचे की कलछौंह रहती है। पैर धुमैले हरे रंग के होते हैं।

कीटभक्षी वर्ग

(ORDER CORACIIFORMES)

कीट-पतिंगे खानेवाले पक्षियों का यह वर्ग भी काफी बडा है जिसमे सब प्रकार के कीटभोजी पक्षी एकत्र किये गये हैं। इनमे से अलग-अलग पक्षियों के शिकार करने का अलग-अलग ढंग है। कुछ आकाश मे उडते ही उडते कीडे-पतिंगे पकड लेते हैं, तो कुछ हवा मे एक ही जगह पर काफी देर तक उडते रहकर शिकार पर टूट पडते हैं, कुछ जमीन पर चलकर घास-फूस से कीडे पकडते हैं तो कुछ रात मे इधर-उधर उडकर या जमीन पर बैठकर ही अपना शिकार कर लेते हैं।

इनमे से कुछ को रंगीन पोशाक मिली है तो कुछ को इतने मुलायम पर मिले हैं कि रात में बिलकुल निकट से उड जाने पर भी उनके पंख की आवाज हम नही सुन सकते। कुछ को लम्बे डैने मिले हैं ताकि वे दिन भर अबाबील की तरह हवा मे उडते रहे और कुछ को बिल्लियो जैसी बडी आँखें मिली हैं जिससे रात मे थोडी रोशनी मे भी काफी आसानी से उडने मे समर्थ हो सके।

वैसे तो इन पक्षियों को कई उपवर्गों में बाँटा गया है, लेकिन यहाँ निम्नलिखित छ उपवर्गों का वर्णन किया जा रहा है जिनमे हमारे यहाँ के सब कीटभक्षी पक्षी आ जाते हैं।

१ नीलकंठ उपवर्ग—Sub Order Coraciae

२ कौडिल्ला उपवर्ग—Sub Order Halcyones

फुदकी तथा नीलकठ
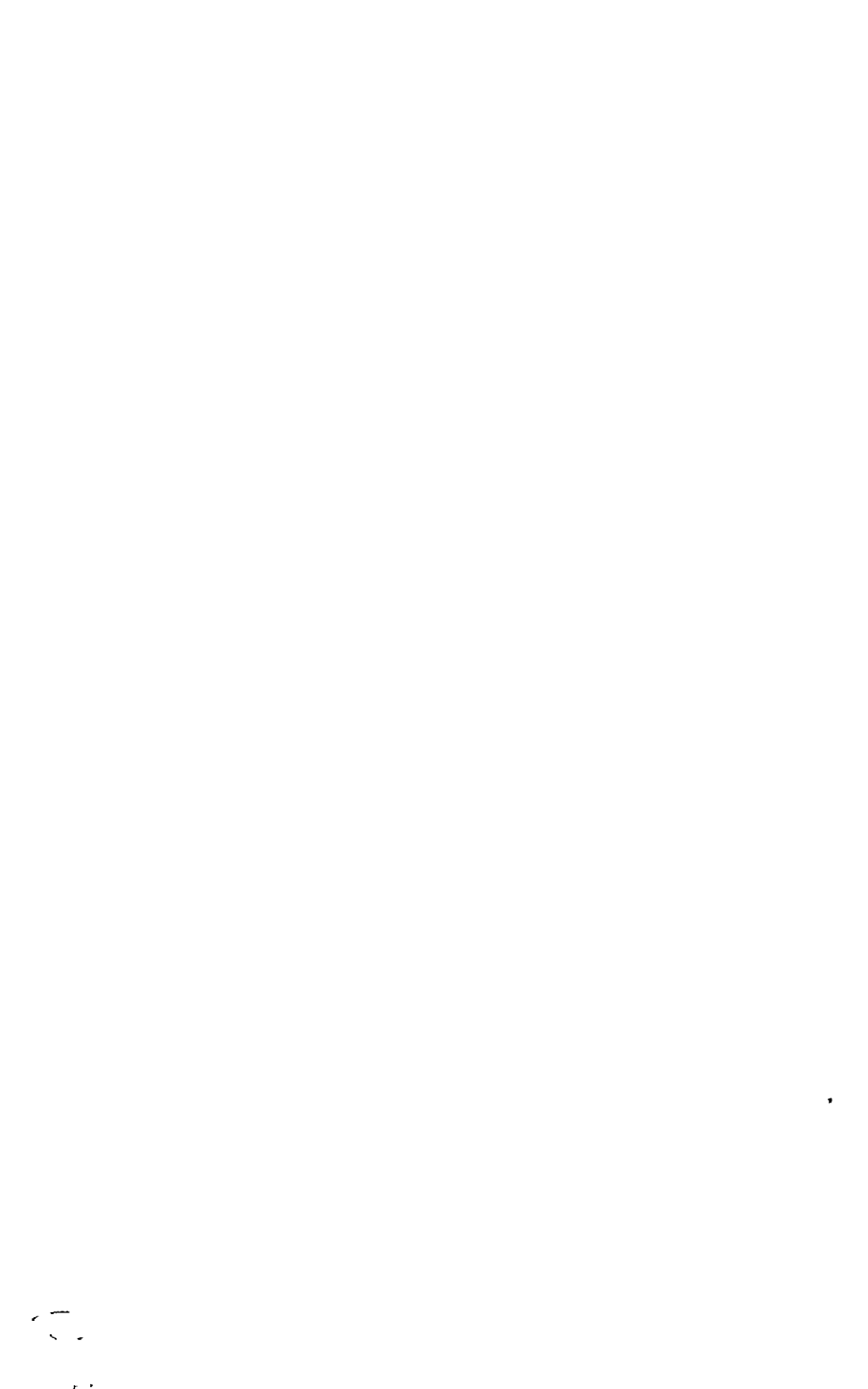
नीलकंठ मैदान मे रहनेवाली हमारी बारहमासी चिडियो मे से एक है जो कीटो-मकोडो की तलाश में दिन भर खेतो में घूमा करता है। इसे हम खुले मैदानो मे, गाँव और बस्तियो के आस-पास, रोज ही देखते रहते है। यह देखने मे तो काहिल और सुस्त-सा जान पडता है लेकिन इसमें इतनी तेजी होती है कि जैसे ही कोई कीडा जमीन पर दिखाई पडता है यह उसे फौरन कूदकर पकड लेता है।
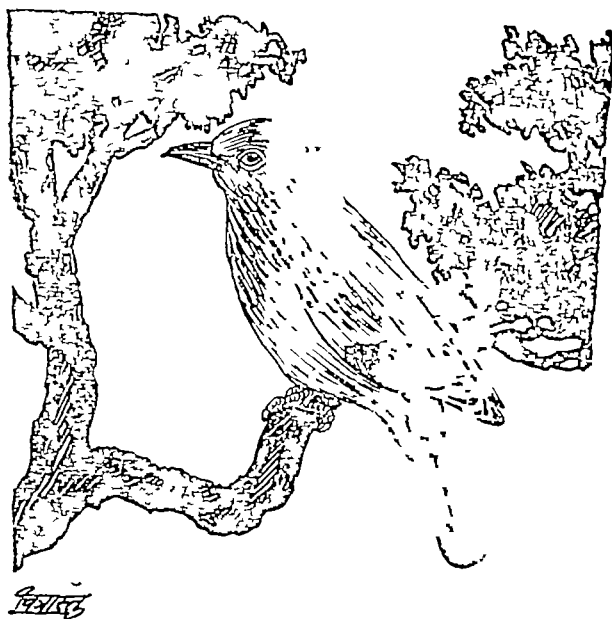
नीलकठ

इसके नर और मादा एक शकल के होते है। इसके सिर के बीच मे एक आसमानी चित्ती होती है। इसके बाद पीठ तक भूरा रग चला आता है। फिर हरी और आसमानी हलकी और गहरी नीली लकीरे रहती है। डैने और दुम की भी यही हालत रहती है। आगे आसमानी, फिर हलकी नीली और बाद को गहरी नीली हो जाती है। दुम के बीच के दो पख गदे हरे रग के होते हैं और सीना ललछौंह कत्थई रग का होता है जिसमें छोटी-छोटी खडी धारियाँ पडी रहती है। पेट का रग बादामी और दुम के नीचे फिर आसमानी रग आ जाता है।

इसकी चोच कालापन लिये गहरी भूरी और टाँगें गहरी बादामी रग की होती है।

इसके जोडा बाँधने का ढग भी मजे का है। कुछ अन्य चिडियो की भाँति नर नीलकठ मादा को खुश रखने के लिए उसके आगे अपना करतब दिखाता है। पहले वह ऊपर उड जाता है, फिर नीचेकी ओर ऐसे गिरता है मानो मर गया हो, पर जमीन पर आने से पहले ही वह सँभलकर ऊपर उड जाता है। इस प्रकार यह मादा को खुश करके जोडा बाँध लेता है और तब दोनो घोसला बनाने की फिक्र मे लग जाते है।

इसके अण्डा देने का समय मार्च से जुलाई तक है, जब मादा किसी पेड के खोथे मे चार-पाँच चीनी मिट्टी के रग के सफेद अण्डे देती है।

कौडिल्ला उपवर्ग

(SUB ORDER HALCYONES)

इस उपवर्ग मे पक्षियो की चोच लम्बी और नोकीली रहती है। इनके पैर छोटे होते है और पैरो की उँगलियाँ पतली होती है। ये सब मासाहारी पक्षी है जिनकी खुराक में कीड़े-मकोडे, छिपकलियाँ, मछली, कटुए तथा इसी प्रकार के अन्य जीव-जन्तु है।

यह उपवर्ग चार परिवारो मे इस प्रकार बँटा है—

१ कौडिल्ला-परिवार—Family Alcedinidae
२ पतेना-परिवार—Family Meropidae
३ हुदहुद-परिवार—Family Upupidae
४ धनेश-परिवार—Family Bucerotidae

आगे इनका अलग-अलग वर्णन दिया जा रहा है।

कौडिल्ला-परिवार

(FAMILY ALCEDINIDAE)

इस परिवार मे सब तरह के कौडिल्ले रखे गये है जो अपनी सुन्दर पोशाक के लिए बहुत प्रसिद्ध है। इनकी चोच लम्बी और नोकीली रहती है जिससे इन्हे मछली पकडने मे बडी आसानी हो जाती है। ये बडे शिकारी पक्षी है जो पानी के ऊपर हवा में एक जगह काफी देर तक पख मारकर ठहरे रहते है और नीचे पानी मे मछली को देखते ही उस पर कूद पडते है।

ये घोसले नही बनाते वल्कि भीटो में अपना लम्बा सुरग-जैसा विल खोद लेते हैं। इनका मुख्य भोजन मछली, कटुए आदि है।

कौडिल्ले

(KING FISHERS)

कौडिल्ले उन चिडियो मे से एक हैं जिन्हे प्रकृति ने सुन्दर पोशाक दी है। इन्हें छोटे-वडे जलाशयो के निकट वडी आसानी से देखा जा सकता है।

कौडिल्ला ताल या नदी के किनारे पानी की सतह से १५-२० फुट ऊपर एक जगह पर स्थिर होकर उडता रहता है और नीचे मछली को देखकर अपना वदन ढीला करके यह इस तरह पानी मे गिरता है कि जान पडता है जैसे मरकर गिरा हो, पर दूसरे ही क्षण हम इसे चोच में मछली दावे किलकिल करते हुए उडते देखते हैं। यही इसके शिकार करने का तरीका है जिसे एक वार देख लेने पर इस शिकारी पक्षी को फिर कभी भूला नही जा सकता।

कौडिल्ला

कौडिल्ला की तीन मुख्य जातियाँ यहाँ होती हैं—कौडिल्ला, कौडिल्ली तथा किलकिला।

कौडिल्ला हमारे यहाँ का वारहमासी पक्षी है जो पानी के करीव रहता है। इसकी चोच लम्वी और नोकीली होती है जिससे मछली फिर छूटकर जा न सके। इसके पैर छोटे होते हैं क्योकि इसे दिन भर उडने के सिवा उनसे काम लेने की फुरसत

ही नही मिलती। यह १२ इच का सुन्दर चितकवरा पक्षी है जिसके सारे वदन मे सफेद और काली धारियाँ, पट्टियाँ और चिह्न रहते हैं। इसका निचला हिस्सा जरूर सफेद रहता है, पर सीना दो-एक काली पट्टियो से नही वचता।

इसकी चोच और पैर काले होते है और अण्डे धुर सफेद रहते है।

कौडिल्ली छोटी होती है। सात इच की इस छोटी चिडिया मे रग की कमी नही रहती। इसका ऊपरी हिस्सा नीला, गला सफेद तथा निचला हिस्सा वादामी रहता है। गाल और दुम के वगल में कुछ कत्थई रग भी रहता है। इसकी चोच काली और पैर धूमिल लाल होते हैं। अण्डो का रग सफेद रहता है। ये दोनो जातियाँ मछलियो से ही अपना पेट भरती हैं।
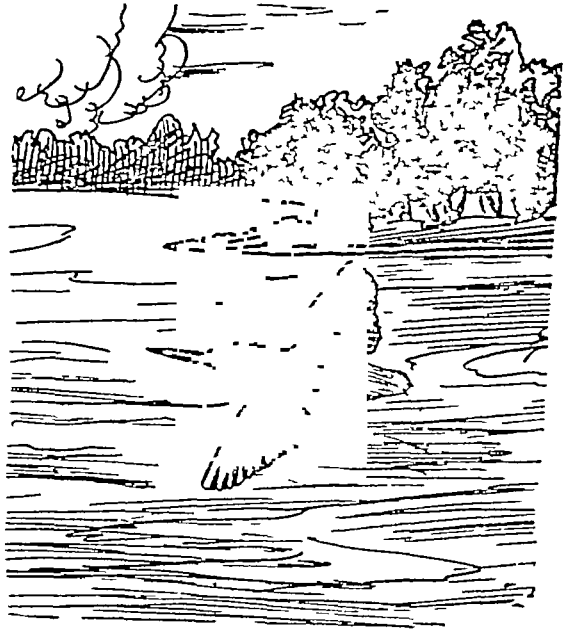
कौडिल्ली

कौडिल्ले घोसले नही वनाते वल्कि मिट्टी के भीटो मे पतेना की तरह लम्वा विल खोद लेते है जिसमें मादा पाँच-सात दूध-से सफेद अण्डे देती है। अण्डे देने का समय मार्च से जून तक रहता है।

किलकिला का ढग ही कुछ दूसरा है। वह इन दोनो की तरह न तो हवा मे शिकार के लिए एक स्थान पर उडता है और न इसका मुख्य भोजन ही मछली है। यह तो किसी पेड की डाल पर वैठा रहता है और जहाँ कोई शिकार दिखा नही कि यह नीलकठ की तरह नीचे टूट पडता है और उसे चट कर जाता है। लम्वाई मे यह कौडिल्ले से कुछ छोटा होता है। पर रग में उससे कही चटकीला होता है। इसका सिर, गरदन और निचला हिस्सा कत्थई रग का होता है जिसमे गले से सीने तक एक

बडा चित्ता पडा रहता है। बाकी ऊपर का हिस्सा नीला और डैने के सिरे काले रहते है।
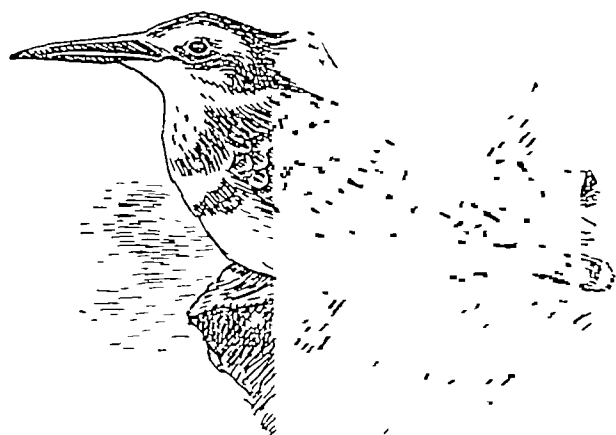
किलकिला

इसकी चोच और पैर धूमिल लाल रग के होते है।

पतेना-परिवार

(FAMILY MEROPIDAE)

इस परिवार में सब प्रकार के पतेने एकत्र किये गये है जो अपनी हरी और नीली पोशाक के कारण हवा मे उडते समय भी पहचाने जा सकते है।

इनका मुख्य भोजन कीडे-मकोडे है जिन्हें ये एक जगह से उडकर हवा में ही पकड लेते है और कौडिल्ले या मछमरनी की तरह उनको खाने के लिए अपने स्थान पर आ बैठते है।

इनकी चोच लम्बी और नोकीली होती है लेकिन वह कौडिल्ले की तरह एकदम सीधी न होकर कुछ खमदार रहती है।

ये अक्सर झुड में रहते है और घने और सायेदार स्थान इन्हे ज्यादा पसन्द हैं। कौडिल्ले की तरह ये भी अण्डे देने के लिए भीटो में बिल खोदते है जिनके सिरे पर कुछ घास-फूस रखकर ये अण्डे देते हैं।

पतेना
(BEE EATER)

पतेना हरे रग की पतली-सी चिडिया है जो दिन भर अबाबील की तरह हवा में उडा करती है। यह हमारे देश में प्राय सभी स्थानो पर पायी जाती है। हिमालय पर भी यह पाँच हजार फुट की ऊँचाई तक देखी जा सकती है।

पतेना को जगल, मैदान तथा बाग-बगीचे आदि सभी ऐसी जगहे पसन्द है जहाँ कीडो की बहुतायत रहती है। वही यह अपने छोटे-छोटे पख फैलाये पतिगो के फिराक मे उडा करती है। इसके अलावा इसे हम नहर और नदी के किनारे भी अक्सर देख सकते है।

यह यहाँ की बारहमासी सुन्दर चिडिया है जो जाडे मे यहाँ थोडा-सा स्थान परिवर्तन कर लेती है। इसका मुख्य भोजन पतिगे है जिनका यह उडते ही उडते शिकार कर लेती है।

पतेना के नर-मादा एक-जैसे होते है। वैसे तो इसकी लम्बाई सात ही इच की होती है, पर अपनी दुम के बीच के दो पतले लम्बे पखो को लेकर यह नौ इच की हो जाती है। इसका समूचा रग चटक हरा होता है जिसमे चोच के नीचे से लेकर गले का निचला हिस्सा नीला रहता है। उसके आगे फिर एक काला कठा होता है और चोच की जड से आँख पर होते हुए एक काली लकीर चली जाती है। गर्दन के दोनो बगल, थोडा-थोडा डैने के ऊपर का कुछ और नीचे का समूचा हिस्सा सुनहला रहता है।

पतेना

दुम के बीच के दोनो पतले पख काले होते है। इसकी चोच काली और पैर गहरे सिलेटी रग के होते है। चोच लम्बी नोकीली और नीचे की ओर कुछ झुकी हुई रहती है।

पतेना खुद तो अक्सर गोल बाँधकर पेड पर बसेरा लेती है, पर अण्डा देने के लिए यह अपनी नोकीली चोच से मिट्टी खोदकर कगारो मे सूराख बना लेती है। ये बिल ५–६ फुट तक गहरे होते है। साथ ही साथ ये भीतर जाकर टेढे भी हो जाते है। इन्हे दरिया के किनारे ऊँचे कगारो मे बडी आसानी से देखा जा सकता है।

बिलो के भीतर जमीन पर ही मादा अप्रैल से जून तक ३ से लेकर ५ तक दूध-से सफेद अण्डे देती है जिन पर किसी किस्म की चित्तियाँ नही रहती।

हुदहुद-परिवार

(FAMILY UPUPIDAE)

हुदहुद परिवार मे अकेले हुदहुद ही है जिनकी कई जातियाँ है। ये पक्षी भी बहुत सुन्दर होते है जिनके सिर पर एक कलँगी-सी रहती है जिसे वे अक्सर उठाते-गिराते रहते है।

ये कीट-भक्षी पक्षी है जो प्राय जमीन पर ही घूम-फिरकर कीडे-मकोडे खाते है। बडे कीडो को ये जमीन पर पटक-पटककर टुकडे-टुकडे कर डालते है। फिर उन्हे ऊपर उछालकर निगल जाते है।

खतरे को निकट देखकर ये अक्सर जमीन पर पख फैलाकर लेट जाते है, जहाँ उनके शरीर की धारियाँ और भूरा रग मिट्टी मे ऐसा मिल जाता है कि ये निकट जाने पर भी दिखाई नही पडते।

ये किसी पेड के खोथे मे घास-फूस रखकर अण्डे देते है जो मख्या में ८–१० तक पहुँच जाते है। अण्डा देने पर मादा बराबर अण्डे पर बैठी रहती है और नर बराबर उसे खिलाता रहता है। हमारे यहाँ का प्रसिद्ध हुदहुद, जिसे दुबया या शाह सुलेमान कहते है, हमारा बहुत परिचित पक्षी है। यहाँ उसी का वर्णन दिया जा रहा है।

हुदहुद

(HOOPOE)

हुदहुद हमारे यहाँ का बहुत ही प्रसिद्ध और परिचित बारहमासी पक्षी है जो सारे देश मे फैला हुआ है। यह हमारे यहाँ के उन सुन्दर पक्षियो में से एक है जो अपनी

भडकीली पोशाक के कारण दूसरे पक्षियो से अलग ही रहते है। इसे गाँव के आस-पास खुले मैदानो मे विना किसी कठिनाई के देखा जा सकता है।

हुदहुद के नर और मादा एक शकल के होते है। ये लम्बाई मे १८ इच से ज्यादा नही होते। दोनो के सिर पर लम्बी चोटी होती है जो जमीन खोदकर कीडे खाते समय तो दबी रहती है पर इसके जरा भी चौकन्ना होने पर खुलकर पखीनुमा हो जाती है। इसकी चोच भी तेज और नीचे की ओर झुकी हुई रहती है।

हुदहुद

इसका चोटी से लेकर गले तक का रग हलका बादामी, चोटी के सिरे काले और सफेद तथा आधी पीठ और कन्धे से लेकर सीने तक का हिस्सा ऊदी मिला हुआ हलका बादामी रहता है। इसकी पीठ पर आडी-आडी सफेद और काली धारियाँ रहती है और दुम का भीतरी हिस्सा सफेद और बाहरी काले रग का होता है।

इसकी चोच सीग के रग की काली और पैर गाढे सिलेटी रग के होते है।

हुदहुद का मुख्य भोजन कीडे-मकोडे है जिनकी तलाश मे यह सदैव इधर-उधर जमीन मे घास ओर दूव आदि खोदा करता हे और जरा-सा खटका पाते ही पेड पर चला जाता है। उडने मे तो यह इतना तेज और गिरहवाज होता ह कि इसे आसानी से शिकरा और लगर आदि शिकारी चिडियाँ भी नही पकड सकती।

इतना सुन्दर पक्षी होते हुए भी यह घोसला वहुत भद्दा वनाता हे। किसी अँधेरे खोखले, छज्जे या वीरान खँडहर की फर्श पर यह थोडी-सी घास-फूस और पख वगैरह रखकर अपना घोसला बनाने से छुट्टी ले लेता हे। मादा इसी पर तीन से दस तक अण्डे देती ह जिनको छोडकर फिर वह उनके फूटने तक हटती नही। नर उसको वाहर से ला-लाकर खाना दिया करता हे। अण्डे फूटने पर मादा को कही छुट्टी मिलती है ओर तव दोनो वच्चो के लिए वाहर से कीडे-पतिगे लाते रहते है।

इसके अण्डे देने का समय फरवरी से जुलाई तक रहता है लेकिन इसके घोसले ज्यादातर अप्रैल और मई मे मिलते है। इन अण्डो का रग हलका वादामी और हरापन लिये हलका नीला होता है।

धनेश-परिवार

(FAMILY BUCEROTIDAE)

धनेश अपनी बडी और कटावदार चोच के कारण अन्य पक्षियो से आसानी से पहचाने जा सकते है। इनकी वडी चोच अगर भरतू या ठोस होती तो इनका उडना मुश्किल हो जाता लेकिन वह भीतर से पोली रहती है और उसमे इतनी हलकी हड्डियाँ रहती है कि वडी होकर भी भारी नही होती। इनकी चोच के ऊपरी हिस्से पर कभी उभार-सा रहता है तो किसी की बनावट कुछ अजीव-सी रहती है।

ये भारी कद के पक्षी है, इससे इनकी उडान भी भारी और सुस्त होती है। इनका मुख्य भोजन तो फल-फूल हे, लेकिन ये कीडे-मकोडे और छोटे-मोटे जीव-जन्तु तथा चिडियाँ भी खा लेते है।

इनके घोसला वनाने का अजीव तरीका है। मादा अण्डा देने का समय आते ही पेड के खोये मे घास-फूस और छोटी टहनियाँ रखकर अपना घोसला बनाती है। अण्डे

देने पर वह उन्हे छोडकर खोये के वाहर नही जाती और नर उस खोये का मुँह मिट्टी से वन्द कर देता है। सिर्फ एक छोटा-सा सूराख जरूर छूटा रहता है जिसमे चोच आ-जा सके और इसी के द्वारा नर मादा को खिलाता रहता है। नर वाहर मे भोजन लाकर सीधे मादा को नही देता वल्कि उसे वह स्वय खा लेता है और उसके पेट मे वह भोजन कुछ पचने के वाद एक प्रकार की झिल्ली की थैली में वद हो जाता है। नर इसी थैली को मादा के मुँह मे उगल देता है जिसे वह खा लेती है। नर जव तक यह झिल्ली का भोजन वाहर नही निकाल देता तव तक वह दूसरा खाना नही खा सकता। इस प्रकार की मेहनत करने पर कभी-कभी नर मर तक जाता है।

हमारे यहाँ धनेश की कई जातियाँ पहाडी क्षेत्रो मे पायी जाती है। यहाँ एक का वर्णन दिया जा रहा है।

धनेश

(COM GREY HORNBILL)

धनेश को उसकी लम्वी और अद्‌भुत वनावटवाली चोच के कारण वडी आसानी से पहचाना जा सकता है। यह वैसे तो पहाडी चिडिया है लेकिन इसकी एक छोटी जाति सारे देश मे फैली हुई है। यहाँ उसी का वर्णन दिया जा रहा है।

धनेश
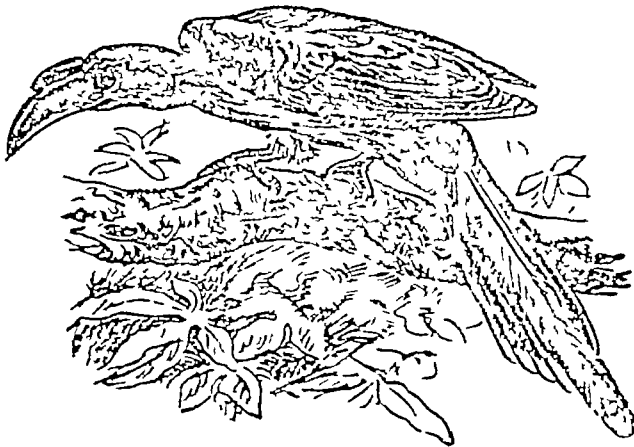
धनेश अपनी लम्वी दुम और चोच को लेकर लगभग दो फुट लम्वा होता है जिसके नर-मादा एक ही-जैसे होते है। यह सिलेटी रग की चिड़िया है जिसका ऊपरी भाग

गहरा और नीचे का हलका रहता है। इसके डैने मे भूरापन रहता है और दुम के सिरे सफेद रहते है। इसकी लम्बी चोच काली ओर पैर गाढ सिलेटी रहते है। ऊपरी चोच के ऊपर जड के पास कुछ दूर तक कुछ भाग उठा-सा रहता है।

धनेश हमारे यहाॅ की बारहमासी चिडिया है जो सारे भारत मे फैली हुई है। यह पेडो पर रहनेवाला पक्षी है जो जमीन पर कभी नही उतरता। यह अक्सर अकेला या जोडे मे दिखाई पडता है और कभी-कभी इनका ५–७ का गरोह भी पीपल, बरगद आदि के पेडो पर ची-ची करता हुआ दिखाई पडता है।

धनेश अपनी लम्बी दुम के कारण तेज उड नही पाता और एक पेड से उडकर थोडी ही दूर पर फिर दूसरे पेड पर बैठ जाता है। इसका मुख्य भोजन वैसे तो पीपल, गूलर ओर बरगद आदि के फल है लेकिन यह टिड्डे आदि बडे कीडे-मकोडो तथा छिपकलियो आदि को भी खाने मे नही चूकता।

धनेश के अण्डा देने का समय मार्च से जून तक रहता है जब मादा किसी पेड के खोथे मे दो-तीन सफेद अण्डे देती है। इसकी मादा जब पेड के खोथे मे अण्डा देने के लिए बैठती है तो नर खोथे का मुँह मिट्टी से इस प्रकार बन्द कर देता है कि मादा की चोच भर बाहर निकली रहती है। इस समय नर बाहर से भोजन लाकर मादा को खिलाता रहता है ओर अपने इस परिश्रम के कारण वह सूखकर कॉटा हो जाता है।

उल्लू उपवर्ग

(SUB ORDER STRIGES)

उल्लू रात्रिचारी पक्षी है जो अपने ढग के निराले होते है। इनकी शकल-सूरत अन्य पक्षियो से भिन्न रहती है। इनकी ऑख अन्य चिडियो की तरह सिर के दोनो बगल न होकर मनुष्यो की तरह सामने होती है जिससे उल्लू सिर्फ सामने की ही ओर देख सकते है। प्रकृति ने उनकी इस कमी को दूर करने के लिए उनकी गरदन ऐसी लोचदार बना दी है कि उसे वे दोनो बगल बडी आसानी से घुमा सकते है।

उल्लुओ को पहले शिकार के पक्षियो के साथ रखा गया था, लेकिन अब उन्हे अलग करके उनका एक अलग उपवर्ग बना दिया गया है। इनके पर इतने मुलायम होते है कि रात मे उडते समय बिलकुल आवाज नही होती। ये प्राय चितले रग के रहते है लेकिन बरफ पर रहनेवाले उल्लू अक्सर सफेद होते है।

उल्लू मांसाहारी पक्षी है जो कीडे-मकोडे, मछली, चिड़िया, छिपकली तथा चूहे-गिलहरी आदि अन्य छोटे-मोटे जीव-जन्तुओ से अपना पेट भरते हैं। इनके पजे वहुत मजवूत और चोच तेज और टेढी होती है।

उल्लू घोमले के मामले मे विलकुल लापरवाह होते हैं। कुछ जमीन पर ही घास और तिनके रखकर अण्डा दे देते हैं तो कुछ किसी पेड के खोये और सूराख मे घास-फूस रखकर अण्डे देते हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो कौए के पुराने घोसले को अपना लेते हैं जिसमें मादा समय आने पर कई अण्डे देती है।

उल्लू की अनेक जातियाँ सारे ससार मे फैली हुई है । हमारे यहाँ भी वहुत तरह के उल्लू पाये जाते हैं, लेकिन वे सव एक ही परिवार मे रखे गये हैं जो उल्लू परिवार कहलाता है।

उल्लू-परिवार

(FAMILY ASIONIDAE)

उल्लू-परिवार काफी वडा है जिसमे छोटे और वडे सभी तरह के उल्लू शामिल हैं। ये रात्रिचारी पक्षी हैं जो अपनी आँख और गोल चेहरे के लिए प्रसिद्ध हैं। इनके पर वहुत मुलायम होते हैं जिससे रात में उडते समय आवाज नही होती।

ये वहुत कम रोशनी में भी देख लेते हैं, इससे इन्हें रात में उडकर शिकार करने मे दिक्कत नही होती।

ये सव मासाहारी पक्षी हैं जिन्हे सर्वभक्षी कहा जा सकता है। इनकी अनेक जातियाँ हमारे देश में हैं लेकिन यहाँ उनमें से कुछ प्रसिद्ध उल्लुओं का ही वर्णन दिया जा रहा है।

उल्लू

(OWLS)

उल्लू अपने ढग के निराले पक्षी हैं जो दिन के वजाय रात को वाहर निकलते हैं जव और सव चिडियाँ वसेरा ले लेती हैं। इनके पर इतने मुलायम होते हैं कि रात मे उडते समय जरा भी आवाज नही होती, नही तो इन्हे अपना शिकार पकडने में इतनी आसानी न रहती।

उल्लू वडे और छोटे सभी तरह के होते है और इनकी कई जातियाँ इस देश में पायी जाती है। हमारे यहाँ वडे उल्लुओ की दो मुख्य जातियाँ है —एक पानी के करीव रहनेवाले मुआ और दूसरे खडहरो और पुराने पेडो पर रहनेवाले घुघ्घू।

उल्लू (मुआ)

मुआ का कद २२ इच का होता है जिसके नर और मादा एक शकल के होते हैं। दूसरे उल्लुओं से इसका सिर वडा होता है। इसके ऊपर के पर कत्थई, डैने भूरे जिन पर सफेद और काले सेहर जैसे निशान, दुम गहरी भूरी जिसके सिरे पर सफेदीपन लिये भूरे रग की धारी और गला सफेद होता है। इसके नीचे के रग में सफेदी का हिस्सा

ज्यादा होता है जिसमे गहरे भूरे रग के छोटे चिह्न पडे रहते है। इसकी चोच टेढी

उल्लू (घुग्घू)

और गहरी गदी हरी तथा पैर धूमिल पीले रग के होते है। यह यहाँ का बारहमासी

पक्षी है जो नदी के किनारे के ऊँचे कगार, पानी की ओर झुकी हुई पेड की किसी डाल या किसी वीरान खडहर मे अक्सर दिखाई पडता है। इसका मुख्य भोजन चिडिया, चूहे, मेढक और मछलियाँ है। मछलियाँ इसके पजो से फिसल न जायँ, इससे इसके पजे खुरदुरे बने रहते है।

इसके अण्डा देने का समय दिसम्बर से मार्च तक है जब यह या तो किसी पुराने पेड का खोथा या कगार का सूराख तलाश करता है या फिर गिद्ध वगैरह किसी बडी चिडिया के इस्तेमाल किये हुए घोसले पर ही अपना दखल जमा लेता है जिसकी मरम्मत हो जाने पर मादा उसमें दो अण्डे देती है। अण्डो का रग बहुत हलका बादामीपन लिये हुए सफेद रहता है।

घुग्घू भी लगभग २२ इच का पक्षी है जिसके नर-मादा एक रग-रूप के होते है। इनको मरचिरैया भी कहते है क्योकि कुछ लोगो का ऐसा विश्वास है कि आदमी की मत्यु के समय इन उल्लुओ को पहले ही से पता चल जाता है और तब ये आसपास के पेड पर अक्सर बोलने लगते है।

घुग्घू के सारे शरीर का रग भूरा रहता है जिसमे डैने गहरे भूरे रग के होते है। इसका निचला हिस्सा सफेदी लिये हलका भूरा रहता है जिसमे काले और गहरे भूरे आडे-आडे निशान पडे रहते है। पेट और दुम भूरी होती है जिसके सिरे पर पीलापन लिये बादामी रग की धारियाँ पडी रहती है।

इसकी आँख की पुतली पीली, चोच सीग के रग की, और पैर रोएँदार तथा काले होते है।

वैसे तो यह चूहे-मेढक आदि सभी कुछ खाता है, लेकिन यह ज्यादातर पेडो पर बसेरा लेते हुए कौओ के अण्डो पर हमला करता है। इसके अलावा अन्य चिडियो को भी यह नही छोडता।

दिन में यह घने जगल, बस्ती या वीरान के किसी बडे पेड पर छिपा सोता रहता है, लेकिन रात को इसकी 'घुग्घूऊ ऊ ऊ' की मनहूस आवाज से हमको इसकी मौजूदगी का पता बडी आसानी से चल जाता है।

यह सितम्बर से मार्च के बीच में किसी पेड की दोफकी शाख पर सूखी टहनियो का भद्दा-सा घोसला बनाता है या किसी गिद्ध के पुराने घोसले की मरम्मत करके उसी से

ठठेरा तथा कठफोर

पक्षी है जो नदी के किनारे के ऊँचे कगार, पानी की ओर झुकी हुई पेड की किसी डाल या किसी वीरान खडहर मे अक्सर दिखाई पडता है। इसका मुख्य भोजन चिडिया, चूहे, मेढक और मछलियाँ है। मछलियाँ इसके पजो से फिसल न जायँ, इससे इसके पजे खुरदुरे बने रहते है।

इसके अण्डा देने का समय दिसम्बर से मार्च तक है जब यह या तो किसी पुराने पेड का खोखा या कगार का सूराख तलाश करता है या फिर गिद्ध वगैरह किसी बडी चिडिया के इस्तेमाल किये हुए घोसले पर ही अपना दखल जमा लेता है जिसकी मरम्मत हो जाने पर मादा उसमें दो अण्डे देती है। अण्डो का रग बहुत हलका बादामीपन लिये हुए सफेद रहता है।

घुग्घू भी लगभग २२ इच का पक्षी है जिसके नर-मादा एक रग-रूप के होते है। इनको मरचिरैया भी कहते है क्योकि कुछ लोगो का ऐसा विश्वास है कि आदमी की मृत्यु के समय इन उल्लुओ को पहले ही से पता चल जाता है और तब ये आसपास के पेड पर अक्सर बोलने लगते है।

घुग्घू के सारे शरीर का रग भूरा रहता है जिसमें डैने गहरे भूरे रग के होते है। इसका निचला हिस्सा सफेदी लिये हलका भूरा रहता है जिसमें काले और गहरे भूरे आडे-आडे निशान पडे रहते है। पेट और दुम भूरी होती है जिसके सिरे पर पीलापन लिये बादामी रग की धारियाँ पडी रहती है।

इसकी आँख की पुतली पीली, चोच सीग के रग की, और पैर रोएँदार तथा काले होते है।

वैसे तो यह चूहे-मेढक आदि सभी कुछ खाता है, लेकिन यह ज्यादातर पेडो पर बसेरा लेते हुए कौओ के अण्डो पर हमला करता है। इसके अलावा अन्य चिडियो को भी यह नही छोडता।

दिन में यह घने जगल, बस्ती या वीरान के किसी बडे पेड पर छिपा सोता रहता है, लेकिन रात को इसकी 'घुग्घूऊ ऊ ऊ' की मनहूस आवाज से हमको इसकी मौजूदगी का पता बडी आसानी से चल जाता है।

यह सितम्बर से मार्च के बीच में किसी पेड की दोफकी शाख पर सूखी टहनियो का भद्दा-सा घोसला बनाता है या किसी गिद्ध के पुराने घोसले की मरम्मत करके उसी से

ठठेरा तथा कठफोर

अपना काम चला लेता है। घोसला भीतर से घास-फूस से मुलायम कर दिया जाता है जिसमें मादा दो सफेद अण्डे देती है।

खूसट
(OWLET)

खूसट ८ इंच का छोटा-सा चितकबरा पक्षी है जिसके नर-मादा एक ही रंग-रूप के होते हैं। इसका ऊपरी हिस्सा, डैने और दुम भूरी होती है जिस पर सफेद आड़ी-आड़ी लकीरें रहती हैं। नीचे का हिस्सा सफेद होता है, जिस पर भूरी आड़ी-आड़ी लकीरें रहती हैं। इसका सिर और आँखें बड़ी होती हैं और इसकी चोंच की जड़ से आँख के ऊपर तक सफेद रंग की भौं-सी बनी रहती है।

खूसट उल्लू

इसकी चोंच और पैर पीलापन लिये हरे रहते हैं। खूसट यहाँ का बारहमासी पक्षी है जो बड़ा ढीठ होता है। पुराने मकानों के सूराखों में चार-पाँच खूसट एक साथ रह लेते हैं, पर अण्डा देने का समय आने पर ये अक्सर जोड़ा बाँधकर रहने लगते हैं। इनके अण्डा देने का समय फरवरी से मई तक है जब मादा खूसट उसी सूराख में थोड़े से पत्ते या घास-फूस रखकर ३ से ६ तक अण्डे देती है। ये अण्डे दूध से सफेद होते हैं।

करैल या रुस्तक
(BARN OWL)

करैल छोटे कद का उल्लू है जिसका पान की शकल का, मसखरों-जैसा, चेहरा जिसने एक बार भी देख लिया है वह इसे भूल नहीं सकता।

करैल को कहीं-कहीं रुस्तक भी कहते हैं। यह हमारे देश में प्राय सभी स्थानो पर पाया जाता है। इसे पुरानी इमारतो और खण्डहरो में सूर्यास्त के बाद देखना कठिन नही होता। यह काफी ढीठ उल्लू है और अक्सर मकानो और पास के पेडो पर निडर होकर बैठा रहता है।

करैल या रुस्तक

करैल भी खूसट की तरह आठ इच का छोटा उल्लू है जिसके नर-मादा एक ही रग-रूप के होते हैं। इसका बदर-जैसा चेहरा गदे सफेद रग का होता है जिसके चारो ओर भूरा हाशिया रहता है। इसके शरीर का ऊपरी हिस्सा सुनहला, भूरा और नीचे का सद-लीमायल सफेद रहता है। पीठ पर और बगल में तितरी-बितरी चित्तियाँ पडी रहती है। चोच और पैर प्याजी रग के रहते हैं।

करैल किसानो का मित्र पक्षी है जो उनको अनजाने ही बहुत लाभ पहुँचाता है। यह चूहो को पकडने में बिल्लियो की तरह उस्ताद होता है और खेत तथा गल्ला-गुदामो के निकट इसके रहने से चूहो की सख्या बहुत कम हो जाती है।

इसके जोडा बाँधने का समय बारहो महीने रहता है। मादा समय आने पर किसी दीवार के सूराख में घास-फूस रखकर पाँच से सात तक अण्डे देती है, जो एकदम सफेद रहते हैं।

छपका उपवर्ग

(SUB ORDER CAPRIMULGI)

इस छोटे उपवर्ग में सब किस्म के छपका रखे गये है जिनसे हम अधिक परिचित नही है। उल्लुओ की तरह ये अँधेरा होते ही बाहर निकलते है और अक्सर खुले मैदानो मे जमीन पर बैठे रहते है। ये कीटभक्षी पक्षी हैं जो हवा मे उडकर कीडे-पतिंगो को पकडते है।

इस उपवर्ग को तीन परिवारो में बाँटा गया है लेकिन यहाँ केवल छपका-परिवार का ही वर्णन दिया जा रहा है।

छपका-परिवार

(FAMILY CAPRIMULGIDAE)

छपका परिवार में छपका की सब जातियाँ रखी गयी है जो कीटभक्षी और रात्रि-चारी पक्षी है। इनकी आँखे काफी बडी, चोच छोटी और मुँह चौडा होता है। ये प्राय. कत्थई या भूरे रग के होते हैं जिन पर छोटी-छोटी चित्तियाँ और धारियाँ पडी रहती है। ये पेड की डाली पर अन्य पक्षियो की तरह आडे-आडे नही बैठते बल्कि लम्बे-लम्बे होकर चिपके रहते है। इनका मुख्य भोजन कीडे-पतिंगे है। इनके पैर के बिचले पजे मे बगुलो की तरह कघी-जैसा कटाव रहता है।

इनकी मादा घोसला नही बनाती बल्कि किसी पेड के खोथे या जमीन पर थोडा घास-फूस रखकर अण्डे देती है।

हमारे यहाँ छपका की अनेक जातियाँ है जिनमें से एक का वर्णन दिया जा रहा है।

छपका

(NIGHT JAR)

छपका उल्लुओ का भाई-बन्धु तो नही है लेकिन इसने उल्लुओ की बहुत-सी आदतें अपना ली है। उन्ही की तरह यह रात को अपना शिकार करता है जिससे इसकी आँखे बडी और पर मुलायम हो गये है। रात्रिचारी होने के कारण हमारी निगाह इस पर बहुत कम पडती है।

छपका को कही-कही छपया भी कहते है। यह हमारे देश का बारहमासी पक्षी है जो सारे देश में पाया जाता है। इसके नर-मादा एक रग-रूप के होते है। यह दस इच लम्बा होता है। इसका ऊपरी हिस्सा पिलछौह बादामी रग का होता है जो छोटी-छोटी काली धारियो और बिन्दियो से घिरा रहता है। नीचे का हिस्सा भूरा रहता है, जिसपर आडी और उससे गाढी धारियाँ पटी रहती है। गले के दोनो ओर एक-एक सफेद चित्ते पडे रहते है। इसकी चोच गाढी भूरी और पैर प्याज़ी भूरे रहते हैं।
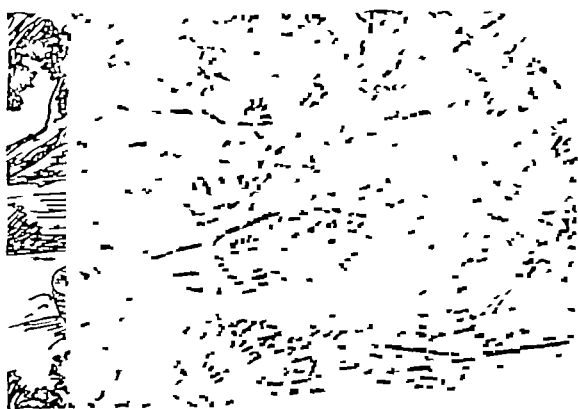
छपका

छपया खुले मैदान मे रहनेवाला पक्षी है जो बाग और जगलो के अलावा गाँव की बस्तियो के आसपास के मैदान अपने रहने के लिए विशेष रूप से चुनता है। यह रात्रिचर पक्षी है जो दिनभर तो किसी झाडी में चुपचाप पडा सोता रहता है, लेकिन सूरज डूबते ही बाहर निकल कर अपने शिकार के फिराक में इधर-उधर उडने लगता है। इसका मुख्य भोजन कीडे-मकोडे है जिन्हें यह उडते-उडते पकडता है। इसकी आँख बहुत बडी होती है जो रात में मोटर या टार्च की रोशनी में बडी तेजी से चमक उठती है। इसका मुँह भी काफी चौडा होता है जिसकी जड के पास काफी रोयें से रहते है।

इसके जोडा बाँधने का समय मार्च से सितम्बर तक रहता है लेकिन यह घोसला नही बनाता बल्कि किसी झाडी में मादा जमीन पर ही दो अण्डे देती है जो हलके प्याजी रग के रहते है और जिन पर कत्थई या बैगनी चित्ते पडे रहते हैं।

वतासी उपवर्ग

(SUB ORDER CYPSELI)

इस उपवर्ग में सब प्रकार की वतासियाँ हैं जो देखने में तो अबाबील की जाति की जान पड़ती हैं लेकिन कई बातों में उससे भिन्न होने के कारण कीटभक्षी वर्ग में एक अलग उपवर्ग में रखी गयी हैं। इस उपवर्ग में हमारे यहाँ केवल वतासी-परिवार के पक्षी पाये जाते हैं।

वतासी-परिवार

(FAMILY CYPSELIDAE)

इस परिवार के पक्षी हवा या वतास में दिन भर उड़ते रहते हैं। इसी से उनको वतासी कहा जाता है। इनके डैने लम्बे, मजबूत और हँसिए की तरह टेढ़े होते हैं जिससे ये हवा को बड़ी आसानी से काटते चलते हैं। संसार का कोई पक्षी हवा में इतनी देर तक नहीं उड़ता जितनी देर तक ये उड़ते हैं।

इनका मुख्य भोजन छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़े हैं जिन्हें ये हवा में उड़ते-उड़ते पकड़ लेते हैं। ये अपने घास-फूस के सुन्दर कटोरानुमा घोंसलों को पुराने मकानों की छतों में अपने चिपचिपे थूक से चिपका देते हैं जो भीतर की ओर परों आदि से मुलायम कर दिये जाते हैं।

इन्हीं वतासियों में से एक वतासी (Edible Swift) अपना घोंसला केवल अपने थूक से बनाती है जो घोंसला बनाने के समय इसके मुँह में पर्याप्त परिमाण में निकलने लगता है और इसके मुँह से बाहर निकलते ही सूखकर कड़ा हो जाता है। ये घोंसले भी कटोरानुमा होते हैं और अँधेरे स्थानों पर दीवारों या चट्टानों में चिपके रहते हैं। ये देखने में पारभासी होते हैं और उन्हें उबाल कर चीनी लोग बड़ा स्वादिष्ठ सूप (Soup) या शोरबा बनाते हैं।

वतासी की एक चोटीदार जाति अपना घोंसला इतना छोटा बनाती है कि देख-कर ताज्जुब होता है। इसके घोंसले लगभग डेढ़ इंच चौड़े होते हैं जब कि वह स्वयं १० इंच लंबी होती है। ये घोंसले पेड़ के तनों से चिपके रहते हैं और तने पर ऊपर बैठकर मादा उसमें एक अण्डा दे देती है क्योंकि इससे ज्यादा अण्डों की उसमें जगह ही नहीं रहती।

बतासियो की अनेक जातियाँ हमारे यहाँ पायी जाती हैं जिनमे से दो-तीन प्रसिद्ध बतासियो का वर्णन यहाँ दिया जा रहा है।

बतासी

(SWTFT)

बतासी अबाबील की शकल-सूरत की छोटी-सी छ इच की चिडिया है जो दिन भर आकाश मे अपने कोडे-पतिगो के भोजन की तलाश मे उडा करती है। यह हमारे यहाँ

बतासी

की बारहमासी चिडिया है जो आवश्यकता पडने पर यही थोडा बहुत स्थान परिवर्तन तो कर लेती है, लेकिन हमारे देश से बाहर नही जाती। हमारे यहाँ यह सारे देश में फैली हुई है।

बतासी के पैर बहुत छोटे और डैने काफी लबे होते है क्योकि इन्हें अपने पैरो से बहुत कम और डैनो से बहुत ज्यादा काम लेना पडता है। इसी कारण यदि यह कही इत्तफाक से जमीन पर गिर पडती है तो इसे हवा मे ऊपर उठाने में इसके पैर सहायक नही होते। यह फिर अपने डैनो को चलाकर यदि किसी प्रकार हवा मे कुछ ऊपर उठने मे समर्थ हो सकती है तभी आकाश मे जाना इसके लिए सभव हो सकता है।

बतासी झुड मे रहनेवाली चिडियाँ है जो सैकडो की सख्या मे साथ उडती है और सब एक साथ ही किसी पुरानी इमारत में अपना घोसला बनाती है। इनके झुड गाँव और शहरो के अलावा खुले मैदानो, जगलो और पहाडो आदि सभी जगहो पर आकाश में उडते देखे जा सकते है।

बतासी का रग कलछौंह लिये खैरा होता है जिसमें ठुड्ढी, गला तथा दुम की जड के पास का कुछ हिस्सा सफेद रहता है, माथे और दुम के निचले हिस्से का रग कुछ हलका हो जाता है और आँख के पास एक गाढा चित्ता साफ दिखाई पडता रहता है।

इसकी चोच काली और पैर ललछौंह भूरे होते है। नर-मादा एक ही जैसे होते है। बतासी अपने घोसले के लिए अपने थूक में घास और परो आदि को मिलाकर एक ऐसा मजबूत और चिपचिपा पदार्थ बना लेती है जो भीतरी हिस्से को बहुत ही गरम रखता है। इसी से इनके घोसले छतो में कटोरे की तरह चिपके रहते है जिनका भीतरी हिस्सा परो से मुलायम रहता है।

मादा इसी में अप्रैल से अगस्त तक तीन-चार दूध-से सफेद अण्डे देती है।

कठफोर उपवर्ग

(SUB ORDER PICI)

इस उपवर्ग में कठफोर और बसता आदि पक्षी हैं जो अपना समय वृक्षो पर ही बिताते है। ये सब कीटभक्षी जीव है जो सुन्दर और रगीन परोवाले होते है। यह उपवर्ग वैसे तो कई परिवारो मे बँटा है लेकिन यहाँ केवल कठफोरा और बसता परिवार का ही वर्णन दिया जा रहा है जिनमे के पक्षी हमारे यहाँ पाये जाते है।

बतासियो की अनेक जातियाँ हमारे यहाँ पायी जाती है जिनमें से दो-तीन प्रसिद्ध बतासियो का वर्णन यहाँ दिया जा रहा है।

बतासी

(SWIFT)

बतासी अबाबील की शकल-सूरत की छोटी-सी छ इच की चिडिया है जो दिन भर आकाश में अपने कीडे-पतिगो के भोजन की तलाश में उडा करती है। यह हमारे यहाँ

बतासी

की बारहमासी चिडिया है जो आवश्यकता पडने पर यही थोडा बहुत स्थान परिवर्तन तो कर लेती है, लेकिन हमारे देश से बाहर नही जाती। हमारे यहाँ यह सारे देश में फैली हुई है।

वतासी के पैर वहुत छोटे और डैने काफी लवे होते है क्योकि इन्हें अपने पैरो से वहुत कम और डैनो से वहुत ज्यादा काम लेना पडता है। इसी कारण यदि यह कही इत्तफाक से जमीन पर गिर पडती है तो इसे हवा मे ऊपर उठाने मे इसके पैर सहायक नही होते। यह फिर अपने डैनो को चलाकर यदि किसी प्रकार हवा मे कुछ ऊपर उठने मे समर्थ हो सकती है तभी आकाश मे जाना इसके लिए सभव हो सकता है।

वतासी झुड मे रहनेवाली चिडियाँ है जो सैकडो की सख्या मे साथ उडती है और सव एक साथ ही किसी पुरानी इमारत मे अपना घोसला वनाती है। इनके झुड गाँव और शहरो के अलावा खुले मैदानो, जगलो और पहाडो आदि सभी जगहो पर आकाश मे उडते देखे जा सकते है।

वतासी का रग कलछौंह लिये खैरा होता है जिसमें ठुड्डी, गला तथा दुम की जड के पास का कुछ हिस्सा सफेद रहता है, माथे और दुम के निचले हिस्से का रग कुछ हलका हो जाता है और आँख के पास एक गाढा चित्ता साफ दिखाई पडता रहता है।

इसकी चोच काली और पैर ललछौंह भूरे होते है। नर-मादा एक ही जैसे होते है। वतासी अपने घोसले के लिए अपने थूक मे घास और परो आदि को मिलाकर एक ऐसा मजवूत और चिपचिपा पदार्थ वना लेती है जो भीतरी हिस्से को वहुत ही गरम रखता है। इसी से इनके घोसले छतो में कटोरे की तरह चिपके रहते है जिनका भीतरी हिस्सा परो से मुलायम रहता है।

मादा इसी में अप्रैल से अगस्त तक तीन-चार दूव-से सफेद अण्डे देती है।

कठफोर उपवर्ग

(SUB ORDER PICI)

इस उपवर्ग में कठफोर और वसता आदि पक्षी है जो अपना समय वृक्षो पर ही विताते हैं। ये सव कीटभक्षी जीव है जो सुन्दर और रगीन परोवाले होते है। यह उपवर्ग वैसे तो कई परिवारो मे वँटा है लेकिन यहाँ केवल कठफोरा और वसता परिवार का ही वर्णन दिया जा रहा है जिनमे के पक्षी हमारे यहाँ पाये जाते है।

कठफोर-परिवार

(FAMILY PICIDAE)

कठफोर हमारे यहाँ के प्रसिद्ध पक्षी है जिनकी लगभग चार सौ जातियाँ ससार में फैली है। ये पेड की पपडियो को ठोक-ठोक कर और उनमे अपनी लबी जवान डाल कर कीडे-मकोडो को चिपका लेते है जो अपने ढग का निराला होता है। इस प्रकार कीटे पकडने मे उन्हे पेड के तनो पर चिपके रहना होता है जिससे उनके पैर की दो उँगलियाँ आगे की ओर और दो पीछे की ओर हो गयी है और इससे इन्हे पेड के तनो पर चिपकने की आसानी हो गयी है। यही नही, उनकी दुम के पर भी ऐसे कडे हो गये है कि उसे तने पर टेक कर जब वे आगे की ओर खिसकते है तो उनकी कडी दुम उनके तीसरे पैर की तरह काम देती है।

इनकी चोच लम्बी, नोकीली और बडी तेज होती है जिसके सहारे ये पेड की पपडियो को उखाड डालते है। ये पेड के तने को काटकर सूराख बनाते है और उसी मे अण्डे देते है।

कठफोर का मुख्य भोजन कीडे-मकोडे, चीटे, छिपकली, मेढक आदि है लेकिन इनमे कुछ ऐसे भी है जो पेड के तने मे अपनी तेज नोक गडाकर उसका रस निकाल-कर पीते है।

इनकी वैसे तो अनेक जातियाँ है, पर उनमे से केवल एक प्रसिद्ध कठफोर का वर्णन यहाँ दिया जा रहा है।

कठफोर

(WOOD-PECKER)

कठफोर हमारे यहाँ का प्रसिद्ध पक्षी है जिसे बाग-बगीचो मे देखना कठिन नही। यह अपनी कीडे-मकोडो की खूराक के लिए पेड के तनो को अपनी चोच से ठोकता रहता है जिससे पपडियो के नीचे रहनेवाले कीडे जरा ऊपर आ जायें और उसकी लम्बी जवान वहाँ तक पहुँच सके। उसकी जवान ऐसी चिपचिपी होती है कि उसको छूते ही कीडे उनमे चिपक जाते है और फिर सीधे उसके पेट मे पहुँच जाते है।

वैसे तो इसे हर एक बाग में पेड के तनो पर चिपका देखा जा सकता है,पर जब यह

एक पेड से उड कर दूसरे पर जाता है तो अपने रग-रूप और तेज बोली के कारण इसका छिपना कठिन हो जाता है। जमीन पर इसे वहुत कम लोगों ने देखा होगा।

कठफोर यहाँ का वारहमासी पक्षी है जो सारे देश में फैला हुआ है। यह घने जगलो से ज्यादा खेतो से मिले हुए पुराने वागो मे रहना पसन्द रहता है क्योकि वहाँ उसे पपडियो के नीचे रहनेवाले कीडे काफी मिलते है जो उसकी खास खूराक है। इनकी कई जातियाँ होती है लेकिन इनमे सोनपिठा कठफोरा वहुत प्रसिद्ध है जिसका यहाँ वर्णन दिया जा रहा है।

११ इच की इस सुन्दर चिडिया के नर और मादा मे थोडा-सा ही फर्क होता है। नर का माथा और चोटी सुर्ख और गर्दन काली होती है जिसमे आँख के नीचे से डैने तक एक सफेद धारी चली आती है। पेट और सीना चितकवरा, दुम और उसका निचला हिस्सा काला और पीठ सुनहली रहती है। मादा के सीने का रग ज्यादा सफेद होता है। इसके अलावा वह और वातो मे नर से मिलती-जुलती होती है।

कठफोर

इसकी चोच सिलेटी और पैर हरापन लिये गाढ सिलेटी होते है।

कठफोर के घर वनाने का ढग निराला ही है। फरवरी मे जुलाई के वीच मे जव इसके अण्डे देने का समय आता है तो यह किसी मोटे पेड के तने में अपनी तेज और नोकीली चोच से इतना वडा सूराख वनाती है जिसमें यह आसानी से आ जा सके। वाहर तो यह छेद ३ इच व्यास तक होता है, पर भीतर ही भीतर इसे वढाकर ६–७ इच तक का कर लिया जाता है जिसमें वैठ कर मादा ३–४ सफेद अण्डे देती है।

गर्दनऐंठा-परिवार

(FAMILY WRYNECK)

इस परिवार में केवल गर्दनऐंठा रखा गया है जो देखने में न तो कठफोर का सम्बन्धी लगता है और न बसता का ही। लेकिन इसकी लम्बी जवान और आगे पीछे दो-दो उँगलियोवाले पैर कठफोर की ही तरह रहते हैं।

ये पेड के तनो पर कठफोर की तरह नहीं चढते, लेकिन अण्डा देने के लिए उसी की तरह पेड के तनो मे छेद करके अपने अण्डे देते हैं। जोडा बाँधने के समय ये मादा को रिझाने के लिए अपनी गर्दन को आगे की ओर बढाकर सिर को गोलाई से घुमाते हैं। इसी से इनका नाम 'गर्दनऐंठा' पडा है।

ये कीटभक्षी पक्षी हैं जो प्राय दिमौरो से दीमक और चींटे खोद-खोद कर खाते हैं। गर्दनऐंठा का वर्णन आगे दिया जा रहा है।

गर्दनऐंठा

(WRYNECK)

गर्दनऐंठा को यह नाम उसके गर्दन ऐंठने की आदत से ही मिला है। यह अपनी गर्दन को ऐंठकर काफी लम्बी बढा लेता है और साँप की तरह फुफुकार कर अपनी लबी जवान को उसी तरह बाहर निकालता है जैसा साँप करते हैं।

गर्दनऐंठा सात-आठ इच का छोटा-सा चितला भूरा पक्षी है जिसके नर-मादा एक ही रग-रूप के होते हैं। यह हमारे यहाँ का मौसमी पक्षी है जो जाडो में उत्तर की ओर से आकर गरमियो में फिर उसी ओर लौट जाता है। इसका रग बहुत कुछ पपीहे से मिलता-जुलता रहता है और इसकी पी पी की तेज बोली भी बहुत कुछ उसी के अनुरूप होती है।

इसका मुख्य भोजन कीडे-मकोडे हैं जिन्हें यह पेड की पपडियो के नीचे से अपनी लम्बी जवान में चिपका लेता है। मादा अपने अडो के लिए कभी तो कठफोर की तरह पेड के तने को काटकर सूराख बनाती है और कभी किसी पुराने खोथे में सात-आठ सफेद अण्डे देती है।

वसता-परिवार

(FAMILY CAPITOMIDAE)

इस परिवार के पक्षी प्राय हरे या चटकीले रग के होते है जो करीव-करीव अपना सारा समय वृक्षो पर ही विताते हैं। ये छोटे कद के पक्षी है जिनका मुख्य भोजन तो कीट-पतग है लेकिन वैसे ये फलफूल भी खा लेते है। इनकी चोच वडी मजवूत और कडी होती है जिसमे ये वृक्षो की पपडियो को कठफोर की तरह ठोक-ठोक कर कीडो को पकड लेते है। इनकी एक छोटी जाति इसी कारण ठठेरा कहलाती है। ठठेरा जव अपनी कडी चोच से पेड के तने को ठोकने लगता है तो सचमुच यही जान पडता है जैसे दूर पर कोई ठठेरा वरतन वना रहा हो।

इनके हरे रग के कारण इन्हे जहाँ वसता कहा जाता है वही इनकी कर्कश वोली के लिए इन्हें कुतुरझा, कुदरूप या पुदरूप भी कहते है जो इनकी वोली मे मिलता-जुलता होता है।

ये कठफोर की तरह किसी पेड के खोथे का मुँह गोलाई से काटकर उसी मे तीन चार सफेद अण्डे देते है।

यहाँ इनकी दो प्रसिद्ध जातियो के पक्षियो का वर्णन दिया जा रहा है।

वसता

(GREEN BARBET)

वसता, जैसा कि इसके नाम मे स्पष्ट है, हरे रग की चिडिया है जो अपनी हरी पोशाक के कारण पेडो मे ऐसी छिप जाती है कि हमारी निगाह सहसा इस पर नही पडती। इसकी पुद्रूप से मिलती हुई वोली के कारण इसे कहीं-कही पुद्रूप और कही-कही कुतुरझा भी कहते है।

यह गाँव के निकट के वागो में पेडो पर ऐसा छिपा रहता है कि इसकी वोली सुनकर भी इसे देखना आसान नहीं होता। इसे हम एक पेड से दूसरे पेड पर उडकर जाते समय ही देखते हैं क्योकि पीपल वरगद-आदि के फल इसकी मुख्य खूराक होने के कारण इसे जमीन पर उतरने की जरूरत ही नही रह जाती।

वसता यहाँ की बारहमासी चिड़िया है जिसके नर और मादा एक ही रग-रूप के होते है। इसकी लम्बाई दस इच के लगभग रहती है। इसकी गरदन, सिर और सीना भूरा होता है जिसमें पतली पीली लकीरे पड़ी रहती है। ऊपरी हिस्सा और दुम चमकीली हरी रहती है जो पतली, पीली, आड़ी लकीरो मे भरी रहती है। डैने इसके भूरे, चोच प्याजी और पैर हलके बादामी रग के होते है।

वसता

वसता बोलता बहुत है। बारहो मास दिन को बागो मे इसकी बोली सुनी जा सकती है। जाडो में इसकी बोली कुछ कम जरूर हो जाती है लेकिन वसन्त के बाद अण्डे देने का समय आने पर इसकी बोली की तेजी बहुत बढ जाती है। मादा वसता वैसे तो मार्च अप्रैल में अण्डे देती है, पर कठफोर की तरह इसे अपने रहनेका सूराख पहले ही से बनाना पडता है। यह किसी ऊँची मोटी डाल में छेद करके अपने रहने के लिए सूराख बना लेती है जिसके भीतर मादा लकडी के टुकडो पर ही दो-चार अण्डे देती है। ये अण्डे एकदम सफेद होते है।

ठठेरा

(COPPER-SMITH)

ठठेरे को छोटा बसता भी कहते हैं। यह भी यहाँ की बारहमासी चिड़िया है जो छ इच की होती है। फुदकी की तरह छोटी होने के कारण यह अक्सर हमारी निगाह के सामने आकर चली जाती है और हम इसकी ओर ध्यान भी नही देते।

इसके डैने, पीठ और दुम धानी रग के होते हैं लेकिन गरदन और सिर बहुत सुन्दर रहता है जिसमे इसके माथे और गरदन का निचला थोडा हिस्सा लाल रहता है। चोच के नीचे, आँख के ऊपर नीचे तथा गरदन का बाकी हिस्सा चटकीला पीला होता है और चोच से लेकर आँख से होती हुई एक काली पट्टी गरदन तक चली आती है जहाँ से वह सिर के ऊपर की ओर घूम जाती है।

ठठेरा

इसकी चोच काली तथा पैर सुर्ख रग के होते हैं। बडे बसते की तरह यह भी यहाँ के बागो मे रहनेवाली चिड़िया है जो फलो से अपना पेट भरती है और जिसे पेड पर से नीचे आने की जरूरत ही नही पडती। इसके नर और मादा एक ही रग-रूप के होते

है। ये पत्तियो मे ऐसे छिप जाते है कि यदि ये वोले नही तो पता भी न चले कि ये किसी पेड पर है भी या नही। इनकी वोली दिन भर सुनी जा सकती है और जव ये वोलने लगते है तो ऐसा जान पडता है जैसे कोई ठठेरा काम कर रहा हो। इसी से इनको ठठेरा नाम दिया गया है।

फरवरी से मई तक ठठेरा के अण्डे देने का समय है जव वसता की तरह यह किसी डाल को काटकर अपना घर वना लेता है। इसके घर का सूराख वाहर से देखने से एक रुपये के वरावर रहता है और जिसका मुँह यह ऊपर की ओर इस डर से नही रखता कि कही उसमे वरसात का पानी न भर जाय।

मादा ठठेरा तीन चार अण्डे देती है जो दूध-से सफेद होते है।

शाखाशायी वर्ग

(ORDER PASSERIFORMES)

शाखाशायी-वर्ग पक्षियो का सवसे वडा वर्ग है जिसमे अनेक जाति के पक्षी सम्मिलित है। ये सव पक्षी वृक्षो पर वसेरा लेनेवाले है और इसी कारण इनके पैर की तीन उँगलियाँ आगे की ओर और एक अँगूठा पीछे की ओर रहता है। अपने इस पिछले अँगूठे से ये सोते समय पेड की डाल को वडी मजवूती से पकड लेते है। ऐसा करने से उनकी उँगलियाँ जव तक वे स्वय नही चाहते नही खुल सकती और इसी कारण वे सोते समय वृक्ष से नीचे नही गिरते। इसी विशेषता के कारण इन्हे शाखाशायी पक्षी कहा जाता है और ये सव इसी कारण एक वर्ग मे रखे गये है।

ये सव पक्षी पेडो पर या पेडो के आसपास रहते है, और इनमे से कुछ अपनी सुरीली वोली और कुछ अपने सुन्दर घोसलो के कारण वहुत प्रसिद्ध हो गये है। इनमे से ज्यादातर ऐसे है जो जमीन पर फुदक-फुदक कर चलते है।

इस वडे वर्ग मे सव तरह के छोटे-वडे पक्षी शामिल है जिनमे कुछ शाकाहारी है तो कुछ मासाहारी। कुछ गल्ला और दाने से अपना पेट भरते है तो कुछ ऐसे है जिन्हे सर्वभक्षी कहा जा सकता है।

ये सव पक्षी अनेक परिवारो मे विभक्त है जिनमे से अधिकाश परिवारो के पक्षी हमारे देश मे पाये जाते है लेकिन स्थानाभाव से यहाँ उनमे से केवल २३ परिवारो के प्रसिद्ध पक्षियो का वर्णन दिया जा रहा है।

फुलचुही-परिवार

(FAMILY DICACIDAE)

यह परिवार बहुत छोटा है जिसमें सब तरह की फुलचुहियाँ रखी गयी हैं। ये शकरखोरो के भाई-बन्धु हैं जो कद मे बहुत छोटी होती है और जिनके नर रंगीन पोशाकवाले होते हैं। इनकी चोच छोटी और टेडी रहती है।

इनमें से कुछ नाशपाती की शकल का सुन्दर घोसला बनाती हैं जो पतली जडो और रेशो से बनाये जाते हैं और जिनका भीतरी हिस्सा परो से मुलायम कर दिया जाता है।

ये फूलो का रस और उसी मे रहने वाले छोटे-छोटे कीडो से अपना पेट भरती हैं। यहाँ अपने यहाँ की एक प्रसिद्ध फुलचुही का वर्णन दिया जा रहा है।

फुलचुही

(TICKELL'S FLOWER PECKER)

फुलचुही फूलो का रस चूसनेवाली बहुत छोटी-सी चिडिया है जिसे हमारे बाग-बगीचो मे अक्सर तितलियो की तरह उडते ही उडते फूलो से रस खीचते देखा जा सकता है। इसका मुख्य भोजन वैसे तो फूलो का रस है लेकिन फूलो के रस के साथ ही साथ उसमें के छोटे-छोटे कीडो को भी यह चट कर जाती है। यह हमारे यहाँ की साढे तीन इंच की चिडिया है जिसके नर-मादा एक जैसे होते हैं।

फुलचुही

इसका गरदन से पीठ तक का ऊपरी हिस्सा, हलका हरापन लिये कजई रहता है। डैने भूरे और दुम गहरी भूरी होती है और नीचे का

हिस्सा पीलापन लिये सफेद रहता है। इसकी चोच पिलछौंह सिलेटी और पैर नीलापन लिये गाढ सिलेटी रहते हैं। यह फूलो के रस और कीटो के अलावा छोटे-छोटे फूल भी खा लेती है। इसकी चोच पतली, लम्बी, नुकीली और आगे की ओर मुडी हुई होती है।

फुलचुही फरवरी से अगस्त तक के बीच मे किसी झाडी मे अपना सुन्दर घोसला बनाती है जो शकरखोरो की तरह घास-फूस और रेशो का रहता है और जिसको यह पेड की डाली में कस देती है। उसका भीतरी हिस्सा सेमल की रुई से मुलायम बना दिया जाता है।

मादा उसमे समय आने पर दो-तीन अण्डे देती है जो एकदम सफेद रहते है।

शकरखोर-परिवार

(FAMILY NECTARINIDAE)

यह परिवार भी छोटा ही है जिसमे सब तरह के शकरखोरे एकत्र किये गये है। ये सब बहुत छोटे कद के पक्षी है जिनकी पोशाक बहुत भडकीली, चमकदार और प्राय गाढे नीले रग की होती है।

इनकी चोच लबी, पतली और टेढी होती है जिसे फूलो मे डालकर ये उसका रस पीते है। रस के साथ ये फूलो मे रहनेवाले छोटे कीडे भी खा लेते है।

फुलचुहियो की तरह ये भी सुन्दर और गोल घोसला बनाते है जो पतली जडो और बारीक रेशो को बुनकर तैयार किया जाता है।

यहाँ अपने यहाँ के एक प्रसिद्ध शकरखोरे का वर्णन दिया जा रहा है।

शकरखोरा

(PURPLE SUNBIRD)

फुलचुहियो की तरह शकरखोरे भी फूलो का रस पीनेवाले छोटे पक्षी है जो कद मे उनसे थोडे ही बडे होते है। ये अपनी पतली और नोकीली चोच को फूलो में गडा देते हैं और अपनी लम्बी जबान से फूलो का रस चूस लेते है। फूलो का रस पीते समय इन्हे कौडिल्ले की तरह अपने पख तेजी से चलाकर हवा मे एक ही जगह स्थिर रहना पडता है। फूलो के रस के अलावा फूलो में रहनेवाले छोटे-छोटे कीडे भी इसकी लम्बी जबान मे लिपटकर इसके पेट में पहुँच जाते है।

फुलचुही तथा पीलक
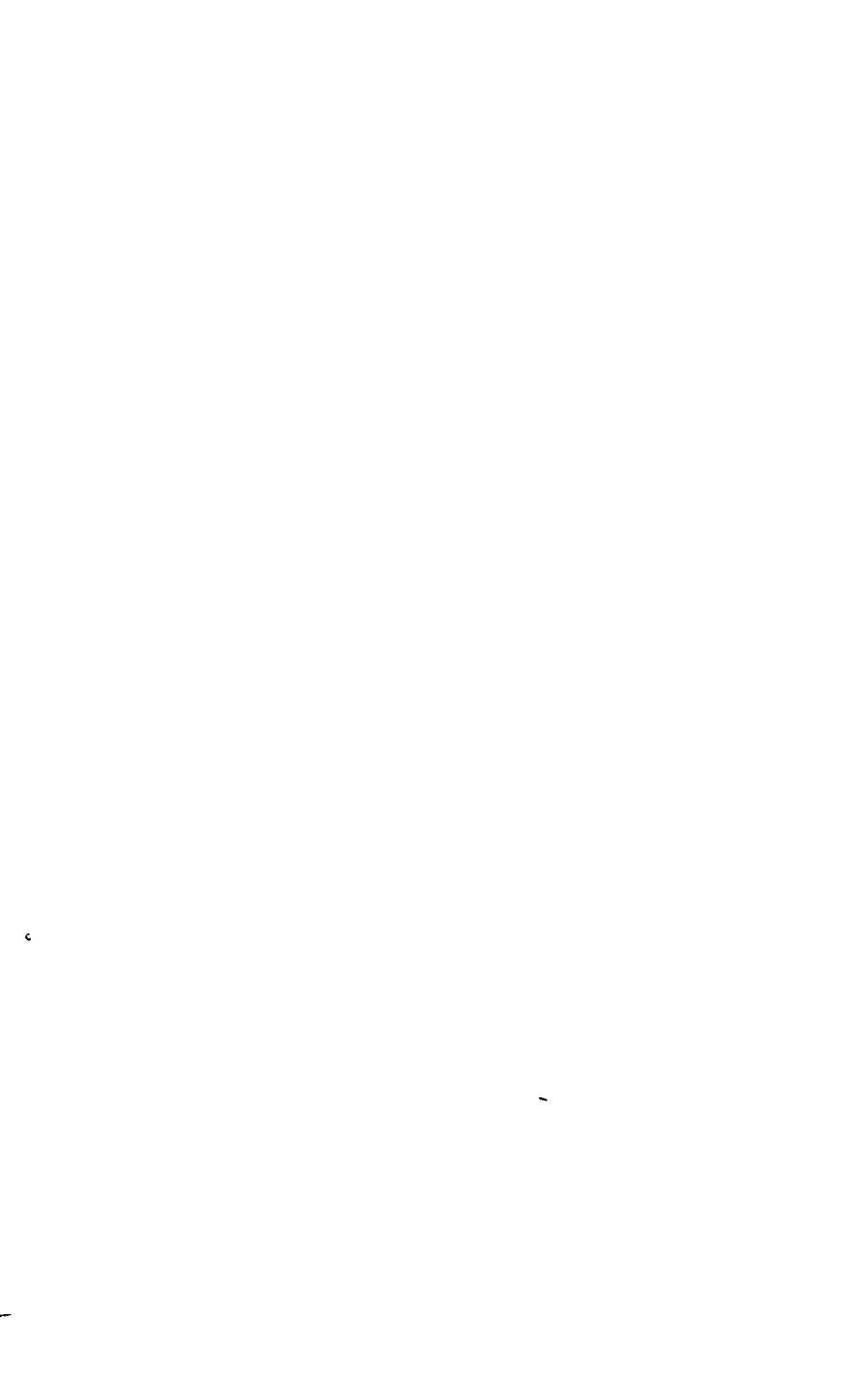
शकरखोरा हमारे बाग मे रहनेवाली बारहमासी चिडिया है जिसे शायद सभी ने फूलो पर उड-उडकर रस चूसते देखा होगा । यह लगभग ४ इच की होती है जो हमारे देश मे प्राय सभी जगह पायी जाती है।

शकरखोरा

इसके नर और मादा का रग जाडो मे करीब-करीब एक-जैसा ही रहता है। उस समय नर की गरदन से लेकर सीने तक का रग गाढ बैंगनी रहता है, पर गरमियो मे यही रग ऊपरी तमाम हिस्से मे फैल जाता है और नर दूर से एकदम काला दीख पडने लगता है। सूरज की किरण पडने पर इसका हरा और नीला रग चमक उठता है। मादा का ऊपरी हिस्सा हरापन लिये भूरा होता है। उसकी दुम गहरी भूरी और नीचे का हिस्सा पीला रहता है।

इसके अण्डा देने का समय फरवरी से अगस्त तक रहता है क्योकि बुलबुल की तरह ये भी बहुत नीचा घोसला बनाते हैं और इनके अण्डे भी अक्सर कौए, गुटरियो और गिलहरियो के शिकार हो जाते हैं जिस कमी को ये दो बार अण्डे देकर पूरा करते है।

इनके घोसले बया की तरह सुन्दर और कलापूर्ण न होकर भी उनसे कुछ मिलते-जुलते ही होते है। पहले यह मकडी के जाले में मिट्टी आदि सानकर खूब मजबूत राल की तरह का चिपचिपा पदार्थ बनाते है जिसको पहले किसी झाडी की तीन चार फुट ऊँची डाल मे खूब लपेट देते है, फिर इसी के सहारे घोसला लटकाया जाता है। घोसला बनाने मे भी उसी राल का इस्तेमाल होता है । ये घास-फूस और रेशो से जो छोटा-सा सुन्दर घोसला बनाते है, उसमे बगल से आने-जाने का छेद रहता है । इस सूराख के ऊपर बरसात का पानी रोकने के लिए एक बरसाती भी होती है। और सेमल की रूई और ऊन आदि से ये घोसले खूब नरम कर लिये जाते है।

शकरखोरे के अण्डे हरापन लिये सफेद होते है जिन पर भूरी और बैगनी चित्तियाँ पडी रहती है। इनकी सख्या दो तीन से ज्यादा नही होती।

बाबुना-परिवार

(FAMILY ZOSTEROPIDAE)

इस परिवार मे सभी जाति के बाबुना है जो प्राय गदे पीले रग के होते है। इनका कद फुलचुहियो की तरह छोटा ही रहता है और इनकी आँखो के चारो ओर एक सफेद छल्ला-सा रहता है जिससे इन्हे पहचानना कठिन नही होता।

इनकी चोच बहुत थोडी-सी टेढी रहती है जिसके किनारे कटावदार होते है। इनका मुख्य भोजन फूलो का रस और कीडे-मकोडे है। यहाँ अपने यहाँ के प्रसिद्ध बाबुना का वर्णन दिया जा रहा है।

बाबुना

(WHITE EYE)

बाबुना बहुत छोटी-सी हरे रग की चिडिया है जो अपने हरे रग, छोटे कद और पेडो पर रहने की आदत के कारण हमारी निगाह तले बहुत कम पडती है।

यह हमारे यहाँ की बारहमासी चिडिया है जो हमारे देश मे रेगिस्तान को छोड कर प्राय सभी स्थानो पर पायी जाती है। इसका कद चार इच से बडा नही होता। बाबुना के नर-मादा एक-से होते है । इनकी पीठ हरापन लिये सुनहली पीली और डैने का छिपा भाग और दुम गहरी भूरी होती है । गला पीला,

सीना और पेट ऊदी और दुम के नीचे का भाग भी पीला रहता है। आँख के चारो ओर एक सफेद छल्ला-सा रहता है, जैसे यह सफेद रिम का ऐनक लगाये हो। इसकी टेढी और नोकीली चोंच काली होती है और पैर गाढे सिलेटी होते हैं।

बाबुना

बाबुना उन चिडियो मे से है जो जमीन पर नही उतरती। यह पत्तियो पर रहनेवाले कीडो से तो अपना पेट भरती ही है, साथ ही जगली फल भी इसके हमले से नही बचते। इसे बस्तियो से ज्यादा बाग-बगीचे पसन्द है, जहाँ मौसम आने पर नर बबने का मीठा स्वर सुना जा सकता है, जो धीरे-धीरे शुरू होकर बाद को तेज ही होता जाता है।
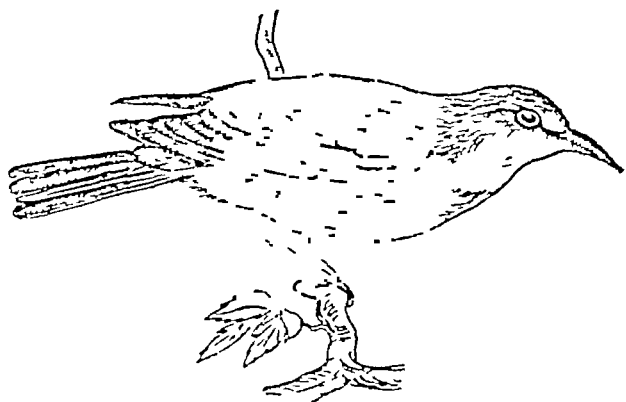
बाबुना यहाँ की बारहमासी चिडिया है जो वैसे तो गोल मे रहती है और एक दूसरे को होशियार करने के लिए सदा धीमे स्वर मे बोलती रहती है लेकिन अण्डा देने का समय निकट आने पर जोडा बाँध लेती है। इसके अण्डे देने का समय फरवरी से सितम्बर तक रहता है, जिसमे मादा दो बार अण्डे देती है।

समय आने पर बबूना झाडियो अथवा ऊँचे पेडो पर अपना सुन्दर और छोटा गोल घोसला बनाती है जो घास-फूस, बाल और रूई का रहता है। यह घोसले पर मकडी के जाले लपेट-लपेटकर उसे मजबूत बना देती है और उसका भीतरी हिस्सा सेमल की रूई और मदार के भुए से मुलायम कर देती है। मादा इसमे दो या कभी-कभी तीन-चार तक छोटे-छोटे अण्डे देती है जिनका रग हरापन या पीलापन लिये हलका नीला रहता है और जिस पर किसी प्रकार के चित्ते नही होते।

भरत-परिवार

(FAMILY ALAUDIDAE)

भरत परिवार मे छोटे गौरैया जैसे मटमैले पक्षी है जिनका अधिक समय जमीन पर ही बीतता है और जो प्राय जमीन पर ही अण्डे देते हैं।

ये गौरैया के निकट सम्बन्धी है और इनकी शकल-सूरत भी उन्ही से मिलती-जुलती होती है। इनकी चोच भी गौरैयो की तरह छोटी और तिकोनी होती है। यहाँ इस परिवार के चार प्रसिद्ध पक्षियो का वर्णन दिया जा रहा है।

भरत

(SKY LARK)

भरत हमारे यहाँ तो पाया ही जाता है लेकिन यह विदेशो मे भी फैला हुआ है। हमारे देश में तो इसे इतना सम्मान नही मिला है, लेकिन अग्रेजी साहित्य मे भरत का वही स्थान है जो हमारे यहाँ कोयल और पपीहे का।

हमारे यहाँ भरत को भरुही भी कहते है। यहाँ इसकी दूसरी जाति जो अपने सिर पर की चोटी के कारण चडूल (Crested lark) कहाती है, भरत से ज्यादा मशहूर है। इसे शौकीन लोग इसकी मीठी बोली के लिए बडे यत्न से पालते हैं। आगे उसका सक्षिप्त वर्णन दिया जा रहा है।
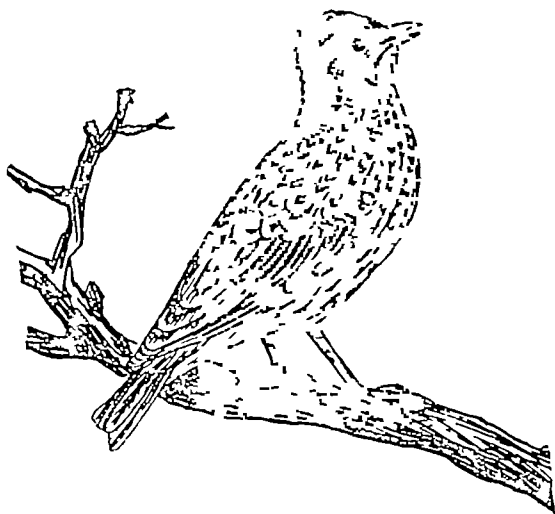
भरत

भरत मटमैले रग की छ इच लम्बी चिडिया है जो हमारे देश में बारहो महीने रहती है। यही रहकर यह आवश्यकतानुसार थोडा-बहुत स्थान परिवर्तन कर लेती है,

इमी कारण हम इसे उत्तर की ओर से आकर मारे देश मे फैल जाते देखते है। यह खुले मैदान में रहनेवाली चिडिया हे जो अपनी भूरी पोशाक के कारण हमारी निगाह तले जल्द नही पडती और हम इमे तभी देख पाते है जब यह इधर-उधर चलती या आकाश मे उडती है। यह वैसे तो अकेले या जोडे मे दिखाई पडती हे लेकिन कभी-कभी इसके छोटे-छोटे झुड भी दिखाई पडते है। इसके नर-मादा एक रग-रूप के होते है।

भरत के शरीर का ऊपरी हिस्सा मटमैला होता है जिसमे कालापन लिये गहरी भरी धारियाँ होती है। डैने भूरे और दुम भी भूरी होती है। इसका मीना और पेट तक का हिस्सा पीलापन लिये भूरा रहता है और ऑख के ऊपर मे गर्दन तक एक धूमिल पीली पट्टी चली आती है। इसकी चोच और पैर हरापन लिये सिलेटी रग के होते है।

भरत को वलुही जमीन काफी पमन्द है इसीमे इसे गाँव के खुले मैदानो मे बडी आमानी से देखा जा सकता है। यह बहुत निडर चिडिया है जो आदमियो को काफी पास तक जाने देती है। यह बहुत मीठी बोली बोलती है। इसकी बोली तो उसी ममय सुनने लायक होती है जब नर जोडा बाँधने के ममय मादा को रिझाने के लिए खुले मैदानो मे गाता है। उस समय यह जमीन से ३०–४० फुट ऊचा उडकर बहुत तेज स्वर मे बोलता है और फिर नीचे उमी स्थान पर आकर बोलता है जहाँ से उडा था। कुछ क्षण रुककर वह फिर उसी तरह उडकर बोलता है और इम प्रकार बोलने का सिलसिला कुछ देर तक जारी रहता है।

इसकी एक जाति अगिन (Red winged Bush lark) कहलाती हे और दूसरी चडूल (Crested lark)। दोनो की शकल-मूरत, रग-रूप और आदते भरत-जैमी ही होती है, लेकिन चडूल अपनी चोटी के कारण जहाँ मबमे अलग रहता हे वहाँ अगिन को उसके डैने के बीच मे पडी हुई लाल पट्टी के कारण पहचानने मे देर नही लगती। चडूल गाने में सब मे उस्ताद होता हे लेकिन अगिन भी गाने में चडूल से कम नही होती। इसकी आवाज मे चडूल की-मी तेजी जरूर नही होती, लेकिन मिठास उतनी ही रहती है।

अगिन को चडूल की तरह खुले मैदान ज्यादा पमन्द नही आते। यह पानी के आस-पास के जगलो और झाडियो के मैदानो मे ज्यादा पायी जाती हे। इसे भी लोग इसकी बोली के लिए पिंजडो मे पालते है।

दवक चिरई (Finch Lark) चडूल से छोटी होती है और इसकी शकल चडूल से ज्यादा गौरैया से मिलती है क्योकि इसकी चोच एकदम गौरैया की तरह मोटी

चडूल

होती है। इसका रग तो चडूल की तरह भूरा होता है पर चोच की जड से एक कत्थई पट्टी आँख से होते हुए गरदन तक चली जाती है। नीचे का रग कत्थई रहता है जो आगे जाकर सीने और पेट तक फैल जाता है।

दवक चिरई को भरदूल भी कहते है। ये वडे-वडे गोल में रहनेवाले छोटे-से पक्षी है जिन्हें खुले मैदान ज्यादा पसन्द आते है।

जिसके किनारे सफेद रहते है। गरमियो मे चोच के नीचे से तमाम सीना काला हो जाता है। मादा भी इसी तरह की होती है। लेकिन उसके बदन की स्याही धूमिल ही रहती है। दोनो की चोच और पैर काले होते है।

खजन

(WAGTAIL)

खजन हमारे यहाँ का बहुत ही सुन्दर चितकबरा पक्षी है जिसकी इसकी चचलता के कारण कवि लोग आँखो से इसकी उपमा देते है। हमारे साहित्य में शुक-सारिका की तरह इसका भी एक विशेष स्थान है।
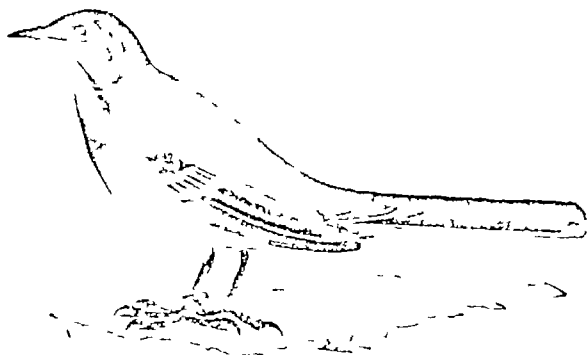
खजन

खजन को खजरीट भी कहते है और देहात में यह 'खॅडरिच' या 'खिडरिच' के नाम से बहुत प्रसिद्ध है। यह हमारे यहाँ की मौसमी चिडिया है जो अगस्त-सितम्बर से हमारे देश के मैदानो मे दिखाई पडने लगती है। यह बहुत ही चचल होती है जो एक स्थान पर स्थिर न रहकर इधर-उधर कीडे-मकोडो की तलाश में चक्कर लगाया करती है।

खजन की वैसे तो कई जातियाँ है लेकिन इन सब में चितकबरा खजन (Pied wagtail) और सफेद खजन (White wagtail) बहुत प्रसिद्ध है। इन दोनो के रग-रूप में ज्यादा फरक नहीं रहता और दोनो की आदतें एक-जैसी ही होती हैं।

खजन बराबर रग बदला करते है। इससे इनके रग का ठीक-ठीक वर्णन करना बहुत कठिन है, तो भी यहाँ इन दोनो खजनो का वर्णन नीचे दिया जा रहा है।

चितकबरे खजन के नर का ऊपरी हिस्सा राखी और नीचे का सफेद रहता है। इसके सिर का ऊपरी हिस्सा काला और सीने पर भी चन्द्राकार काला चित्ता रहता है। डैने काले रहते हैं जिन पर सफेद धारियाँ होती है। दुम भी काली होती है

दिन भर हवा मे उडने के कारण इनके डैने इनके कद को देखते हुए वडे और नोकीले जान पडते है। ये सब कीटभक्षी पक्षी है, जो हवा मे उडते-उडते कीडे पकड लेते है।

इनकी कई जातियाँ हमारे यहाँ पायी जाती है जिनमे से अपने यहाँ की प्रसिद्ध अबाबील का वर्णन यहाँ दिया जा रहा है।

अबाबील

(RED RUMPED SWALLOW)

अबाबील हमारी उन परिचित चिडियो मे से है जिन्हे हम दिन भर हवा मे उडते देखते है। दिन भर उडते रहने के कारण इनके डैने बढकर इनके शरीर से वडे हो गये है। इसीलिए ये अपने घोसले मे हवा में कूदकर आकाश मे उडने लगती है और फिर वही से अपने घोसले मे आकर घुस जाती है। जमीन पर उतर पडने मे इन्हें भी बतासी की ही तरह ऊपर उठने मे वडी दिक्कत होती है।

अबाबील
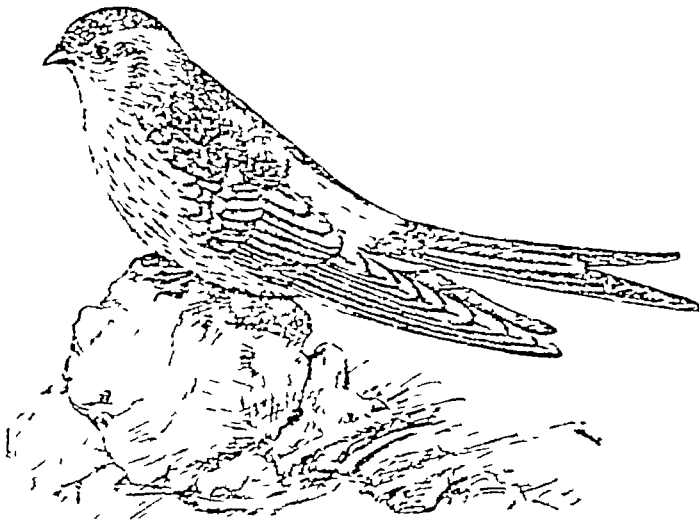
अबाबील हमारे यहाँ की छ इच की बारहमासी चिडिया है जो थोडा-बहुत स्थान-परिवर्तन तो जरूर करती है, पर हमारे देश को छोडकर कही बाहर नही जाती। हमारे देश मे यह प्राय सभी स्थानो मे पायी जाती है और हिमालय पर भी यह चार हजार फुट की ऊँचाई तक चली जाती है।

होती है। लेकिन इसके नर-मादा एक ही जैसे होते हैं। यह भूरी चितली चिड़िया हमारे मैदानो में जोड़े या छोटे-छोटे गरोहो मे रहती है और इसे देखकर हम इसे गौरैया ही समझते है, लेकिन इससे और गौरैया से कोई सम्बन्ध नही है।

ये चिड़ियाँ अपना ज्यादा समय जमीन पर ही विताती है और जव ये खेतो, मैदानो और पेडो के नीचे कीडे-मकोडो के लिए इधर-उधर दौडा करती है, तभी इन्हें देखा जा सकता है। ये खतरा निकट देखकर फौरन उडकर किसी पेड पर जा बैठती हैं। ये खजन की तरह रह-रहकर अपनी दुम को ऊपर नीचे उठाती गिराती रहती है। इसी से हम इनको आसानी से पहचान सकते है। साथ ही इनकी पिट्-पिट् या चिपिट की आवाज से भी हमें इनके पहचानने में सहायता मिलती है। इनका मुख्य भोजन कीडे-मकोडे है।

चचरी
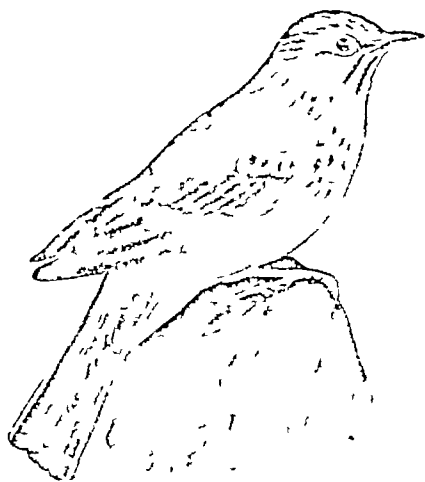
जोडा वाँधने के समय मादा को रिझाने के लिए भरत की तरह यह भी वडे मीठे स्वर में वोलती है और वोलने के वाद चार-पाँच फुट उठकर धीरे-धीरे नीचे उतरती है। यही नही, जब इसके वच्चो पर कोई हमला करता है तव भी यह गुस्सा होकर वडे जोर-जोर से वोलती है और आकाश में ऊपर उडकर थोडी दूर पर अपने पर फैलाकर उतरती है।

इसके अण्डा देने का समय मार्च से जून तक है। यह घास-फूस और रेशे तथा जडो का सुन्दर प्यालेनुमा घोसला वनाकर जमीन पर रख देती है जिसमें मादा तीन चार पिलछौंह या राखीपन लिये सफेद अण्डे देती है, जिन पर भूरी चित्तियाँ पडी रहती हैं।

अवाबील-परिवार

(FAMILY HIRUNDINIDAE)

अवाबील परिवार में वे छोटी-छोटी चिड़ियाँ हैं जो दिन भर हवा में उडती रहती है। ये देखने में वतासी की भाई-वन्धु जान पडती है लेकिन ये उनसे भिन्न है।

इन चिड़ियो का मुख्य भोजन तो दाना और बीज आदि है, लेकिन ये कीड़े-मकोड़े और इनकी जोराइयाँ भी खा लेती है।

इनकी चोच छोटी, कड़ी और तिकोनी होती है जिससे ये कड़े बीज और फलों की गुठलियाँ बड़ी आसानी से तोड डालती है।

इनमे से कुछ चिड़ियाँ रगीन पोशाकवाली होती है और कुछ ऐसी भी है जिनके बदन का रग मौसम आने पर बदल जाता है।

यहाँ इनमे से तीन प्रसिद्ध जातियो का वर्णन दिया जा रहा है।

तूती
(ROSE FINCH)

तूती हमारे यहाँ की प्रसिद्ध बारहमासी चिड़िया है जिसे हम केवल जाड़ो मे देखने के कारण मौसमी पक्षी समझते है। यह हमारे देश भर मे मैदानी भागो मे अवश्य जाड़े मे आती है लेकिन गर्मियो मे हमारे देश मे बाहर न जाकर हिमालय के दस हजार फुट ऊँचे स्थानो मे रह जाती है, और वही अण्डे देती है।

तूती हमारी गौरैया से कद मे कुछ ही बड़ी होती है जिसके नर-मादा के रग मे भेद रहता है। नर गुलाबी रग की छ इच की चिड़िया है जिसकी पीठ और बगल के हिस्से मे कुछ भूरापन रहता है। नीचे का हिस्सा हल्का रहता है जो दुम के नीचे जाते-जाते सफेद हो जाता है। मादा हर्छाह भूरे रग की होती है जिसके ऊपरी और बगली हिस्से पर भूरी लकीरे पड़ी रहती है। इसकी चोच सीग के रग की और पैर धुमैले भूरे रहते है। चोच मोटी और तिकोनी रहती है।
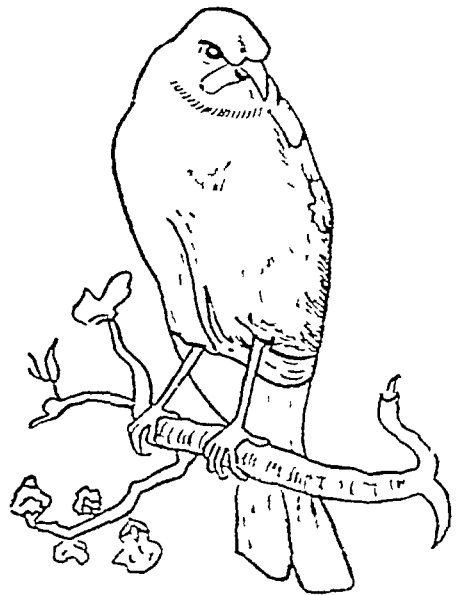
तूती

तूती जाड़ो मे हमारे देश भर मे फैल जाती है। इसके छोटे-छोटे झुण्ड खेतो,

हमे इनकी तलाश मे दूर नही जाना पडता। किसी पुराने मकान, बडे मन्दिर या मस्जिद के आस-पास जहाँ इनके घोसलो की कतारे रहती है, इनके झुण्ड के झुण्ड उडते मिल जाते है। ये दिन भर उडकर भी जैसे थकती ही नही और यह बात नही है कि इनकी उडान की तेजी यही गाँवो तक ही रहती हो। जब ये कही बाहर उडकर जाती है तो इनकी रफ्तार ७०–८० मील फी घटे हो जाती है। उडते समय अपने लम्बे पखो को तान कर ये उनके सिरो को थोडा-थोडा हिलाकर जैसे हवा को चीरती चली जाती है। इनका मुख्य भोजन हवा मे उडनेवाले पतिगे है जिन्हे ये अपने चौडे मुँह मे उडते ही उडते पकड लेती है।

इनके नर और मादा का रग-रूप एक ही-सा होता है। जैसा कि हम पहले कह चुके है, लम्बाई मे ये छ इच से ज्यादा नही होती।

अबाबील का ऊपरी हिस्सा नीलापन लिये चमकीला काला होता है जिसमे दुम की जड के पास एक खैरा चित्ता रहता है। सिर के बगल के हिस्से भूरे, गले के चारो ओर एक कत्थई पट्टी और नीचे का हिस्सा कत्थई छूकर हलका ललछौंह रहता है जिस पर छोटी-छोटी खडी भूरी लकीरे पडी रहती है। इसकी चोच और पैर काले होते है। दुम लम्बी और दोफकी रहती है।

अबाबील अण्डे और घोसले के मामले मे भी अन्य चिडियो से अलग है। इसके घोसले घास-फूस या टहनियो के न होकर, मिट्टी के होते है जो प्राय स्थायी रूप से बने रहते है। इन घोसलो के लिए यह उडते-उडते ही किसी मिट्टी के भीटे मे चोच मारकर मिट्टी खुरच लेती है, जो इसके थूक मे मिलकर नरम और चिपचिपी हो जाती है। इसी पदार्थ से यह बहुत सुन्दर और मजबूत घोसला बनाती है जिसे देखने से ऐसा जान पडता है जैसे किसी ने छत पर मिट्टी का कटोरा चिपका दिया हो। भीतर जाने के लिए छत के पास एक छेद रहता है जिसमे से इसे बार-बार आते-जाते देखा जा सकता है। यह घोसला भीतर से भी परो वगैरह से मुलायम कर दिया जाता है जिसमे मादा अप्रैल से अगस्त के बीच तीन-चार सफेद अण्डे देती है।

तूती-परिवार

(FAMILY FRINGILLIDAE)

तूती-परिवार काफी बडा है जिसमे हर तरह की तूती, गौरैया और पथरचिरटा शामिल है। इनकी सख्या ६०० से भी ऊपर है।

इसकी चोच और पैर भूरे रग के होते है। चोच दाना खानेवाली चिडियो-जैसी मोटी होती है। नर की चोच वैसे तो भूरी रहती है, पर गरमी मे इसका रग काला हो जाता है।

गौरैया छ इच की, छोटी-सी चिडिया है जिसके बिना सचमुच घर सूना लगने लगता है। यह वैसे तो हमारा कुछ नुकसान नही करती लेकिन घोसला बनाने के लिए यह किसी भी ऊँचे सूराख या कोने को नही छोडती और तब काफी गदगी फैलाती है। घोसले का काम बारहो महीने चलता ही रहता है और इसके घोसले मे साल के हर महीने मे अण्डे मिल सकते है। इसके घोसले इसके कद को देखते हुए बडे ही कहे जावेगे, जिसमे यह घास-फूस, रुई, ऊन, कागज आदि जिस चीज के भी छोटे टुकडे पाती है, लगाती रहती है।

इसके अण्डे राख के रग के होते है जिन पर सिलेटी और भूरी चित्तियाँ पडी रहती है। इनकी सख्या चार-पाँच तक हो जाती है।

पथरचिरटा

(BLACK HEADED BUNTING)

पथरचिरटा हमारे यहाँ का मौसमी पक्षी है जो हमारे देश में उत्तर की ओर से सितम्बर मे आकर मार्च अप्रैल तक फिर उसी ओर वापस चला जाता है। जाडो
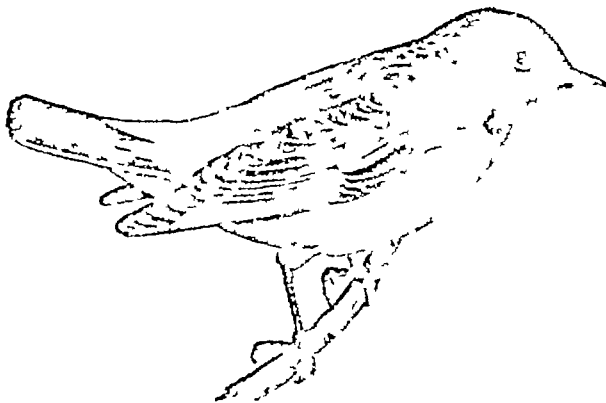
पथरचिरटा

में ये छोटे-छोटे झुण्डो में सारे देश में फैल जाते है और हमारे यहाँ खुले मैदानो, झाडियों और घास से भरे हुए तितरे-बितरे जगलो मे इन्हे देखना कठिन नही होता।

मैदानो और जगलो मे दिखाई पडते है जो अपने भोजन की तलाश मे एक जगह मे उडकर दूसरी जगह आते-जाते रहते है। इसका मुख्य भोजन हर किस्म के फल-फूल और हर तरह के गल्ला और बीज है। इसकी बोली बडी मीठी होती है, जो दूर से नबीजी-सी जान पडती है। इसीसे कही कही इसे नबीजी भी कहते है।

तूती के जोडा बाँधने का समय जून से अगस्त तक रहता है जब ये मैदानो मे हिमालय के ऊँचे प्रान्तो में चली जाती है। वहाँ ये घासफूस और जडो तथा रेशो से सुन्दर प्यालानुमा घोसला बनाती है जो किसी झाडी मे तीन-चार फुट की ऊँचाई पर रखा रहता है। मादा इसमें नीले रग के तीन-चार अण्डे देती है जिन पर गुलाबी और कलछौंह चित्तियाँ पडी रहती है।

गौरैया

(HOUSE SPARROW)

गौरैया को ऐसा कौन होगा जो न पहचानता हो। दिन भर अपने घरो में घूमने-वाली इस छोटी चिडिया से हम सब भली भाँति परिचित है। यह मनुष्यो से इतनी ढीठ हो गयी है कि शायद ही कोई घर ऐसा होगा जहाँ यह आँगन में दिखाई न पडती हो।
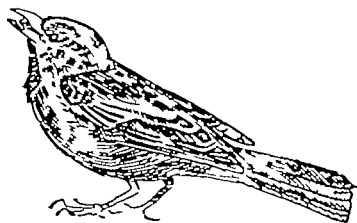
गौरैया

गौरैया हमारे यहाँ की बारहमासी चिडिया है जो हमारे देश में प्राय सभी स्थानो में पायी जाती है। यह एक छोटी चिडिया है जिसके नर-मादा की शकल में थोडा फर्क रहता है। नर के सिर का ऊपरी भाग सिलेटी और चोच मे दोनो आँखो तक और चोच से गरदन के नीचे सीने तक काला रहता है, पीठ और डैने कत्थई भूरे होते है जिनमें छोटी-छोटी काली और सफेद धारियाँ रहती है। दुम गहरी भूरी होती है जिसके किनारे हलके बादामी रहते है। बाकी निचला हिस्सा हलके राख के रग का रहता है। मादा की गरदन से लेकर नीचे का हिस्सा नर-जैसा, ऊपरी हिस्सा भूरा, तथा डैने गहरे भूरे होते है जिन पर नर-जैसी काली और सफेद धारियाँ रहती है। दोनो की आँख के ऊपर एक आडी-सी बादामी रेखा होती है।

सुन्दर घोसलो का कारीगर यहाँ का यही बारहमासी पक्षी है। यह जाडो मे इसी देश मे थोडा स्थान-परिवर्तन जरूर कर लेता है, पर देश छोडकर कही बाहर नही जाता।

बया गौरैया के बराबर और उसी शकल की छ इच की छोटी चिडिया है जिसके नर और मादा भी गौरैया की तरह अलग-अलग रग-रूप के होते है। मादा बया को देखकर अक्सर मादा गौरैया या तूती का धोखा हो सकता है क्योकि उसका रग और उसकी शकल-सूरत ही नही बल्कि उसकी चोच भी गौरैया की तरह मोटी होती है जो दाना चुनने की खासियत है।

बया

नर बया जोडा बाँधने के समय को छोडकर बाकी महीने मादा की शकल का रहता है, पर जोडा बाँधने का समय आने पर उसकी पोशाक बहुत सुन्दर और भडकीली हो जाती है। तब उसकी आँख के नीचे से लेकर सीने के ऊपर तक का हिस्सा स्याही मायल एव गहरा भूरा और सिर का समस्त ऊपरी हिस्सा और सीना पीला हो जाता है जो पेट तक पहुँचते-पहुँचते सफेदी में बदल जाता है। डैने भूरे रहते है जिन पर गहरी कत्थई और सफेद खडी-खडी धारियाँ पडी रहती है और दुम भूरी होती है।

इसकी चोच पीलापन लिये बादामी और पैर स्याह रग के होते है।

बया को घना जगल पसन्द नही। यह गाँव के खेतो के आस-पास बबूल आदि के पेडो पर रहता है। गौरैया की तरह दाना ही इसका मुख्य भोजन है लेकिन अपने बच्चो को कीडे-मकोडे खिलाने मे उसे परहेज नही। बया अप्रैल, मई के बाद अपनी चोच मे सरपत, रामबाँस, केला और कास के पतले-पतले रेशो मे अपना सुन्दर घोसला बनाते है जो नीचे गोल होकर ऊपर पतले हो जाते है। इसमे बुनने के लिए नीचे से

ये गौरैया की शकल-सूरत और उसी कद के छोटे-से पक्षी है जिनका नीचे का हिस्सा पीला रहता है। इनका ऊपरी हिस्सा नारगी भूरा रहता है और डैनो पर गाढी कत्थई धारियाँ पडी रहती है। सिर का ऊपरी हिस्सा काला और दुम गाढी भूरी रहती है, जो गौरैया से बडी और कुछ दोफकी रहती है। मादा कद में बराबर होते हुए भी नर से हलके रग की रहती है। इसकी चोच सीग के रग की और पैर प्याजी भूरे रहते है।

पथरचिरटा का मुख्य भोजन गल्ला तथा बीज है और इसीलिए हमारी रबी की फसल मे इनके झुड अक्सर खेतो में दिखाई पडते है।

इनके जोडा बाँधने का समय मई से जून तक है जब ये हमारे यहाँ से लौटकर हमारे देश से बाहर चले जाते है और वहाँ अपना घासफूस, बाल, ऊन और रेशो का सुन्दर प्यालेनुमा घोसला बनाते है, जो किसी झाडी मे ३–४ फुट की ऊँचाई पर रहता है। मादा समय आने पर करीब पाँच अण्डे देती है जो हलका हरापन लिये सफेद रहते है और जिन पर गाढी भूरी तथा सिलेटी बिन्दियाँ पडी रहती है।

बया-परिवार

(FAMILY PLOCIIDAE)

इस परिवार के पक्षी गौरैयो के भाई-बन्धु है जिनकी चोच गौरैयो की तरह छोटी, कडी और तिकोनी होती है। इनका रगरूप भी उन्ही से मिलता-जुलता रहता है और इनकी आदते भी उन्ही जैसी होती है। ये बहुत सुन्दर घोसला बनाते है। यहाँ प्रसिद्ध बया का वर्णन दिया जा रहा है।

बया

(WEAVER BIRD)

बया हमारे यहाँ का सबसे कारीगर पक्षी है जो अपना ऐसा सुन्दर घोसला बनाता है कि उसे देखकर फिर कोई इस पक्षी को कभी भुला नही सकता।

देहात मे बबूल आदि नीचे पेडो में बीसियो की तादाद में इनके तूँबी की शकल के घोसले अक्सर लटकते हुए दिखाई पडते हैं जिन्हें देखकर ऐसा जान पडता है कि किसी अच्छे कारीगर ने छोटी-छोटी लम्बी झबियाँ बिनकर लटका दी है। इन

तेलियर गरोह मे रहनेवाले पक्षी हैं जो अपने बडे-बडे झुड बनाकर जमीन पर कीडे-मकोडे चुनते रहते हैं। ये जैसे बहुत जल्दी मे रहते हैं और थोडी ही देर मे वहाँ से आगे खिसक जाते हैं। खतरा देखकर ये पेडो पर जा बैठते हैं और थोडी देर मे फिर पूरा गरोह जमीन पर उतर कर कीडे-मकोडे पकडने लगता है। कीडो के अलावा ये फल-फूल और गल्ला आदि भी खाते हैं।
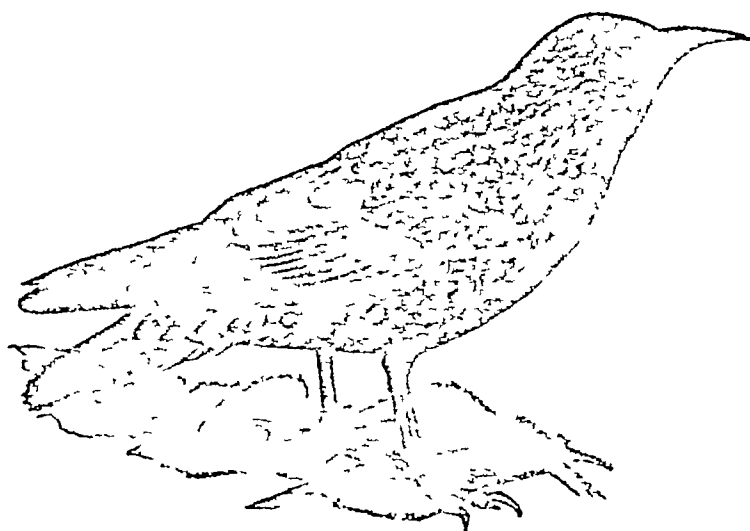
तेलियर मैना

तेलियर मौसमी पक्षी होने के कारण अण्डा देने के समय हमारे देश मे बाहर चले जाते हैं लेकिन इनकी दो एक जातियाँ, जो कद मे इनसे कुछ छोटी होती है, कश्मीर मे रह कर वही अण्डे देती हैं। ये अप्रैल, मई मे नदी के किनारेवाले पेडो के सूराखो में घास-फूस और पर आदि रखकर अपना मामूली-सा घोसला भी बनाते हैं जिसमे मादा पाँच-छ अण्डे देती है। अण्डे हरापन लिये हलके नीले रग के होते हैं और उन पर किसी प्रकार की चित्तियाँ नही पडी रहती।

देशी मैना

(MYNA)

मैना के नाम से कई चिडियाँ हमारे यहाँ मशहूर हैं जिनकी शकल-सूरत में थोडा ही फर्क रहता है। इनमें से जो चार पक्षी मुख्य हैं उनके नाम और वर्णन नीचे दिये

रास्ता रहता है। भीतर दो हिस्से होते है—एक तो वही जिसम बाहर से आने का रास्ता बना रहता है और दूसरा जिसमे कुछ ऊपर जाकर फिर नीचे की ओर उतरना पडता है। इसमे अण्डे रहते है। इस तरह किसी दुश्मन का अण्डे के खाने तक पहुँचने का डर नही रहता और उनके बच्चे आँधी-पानी से भी बचे रहते है। मादा बया अक्सर दो अण्डे देती है, पर कभी-कभी इनके तीन-चार अण्डे भी पाये गये है। ये अण्डे धुमैले सफेद होते है जिन पर किसी किस्म की चित्ती नही रहती।

तेलियर-परिवार

(FAMILY STURNIDAE)

तेलियर वश मे देशी मैना की जाति के सब पक्षी रखे गये है जो कद मे फाखता के बराबर होते है। इनमे कुछ का रग भूरा, कुछ का कत्थई और कुछ का चित्तीदार होता है। ये सर्वभक्षी पक्षी है और इनमे की कुछ जातियाँ हमारी बस्ती में अक्सर दिखाई पडती है।

इनमे से कुछ प्रसिद्ध पक्षियो का वर्णन यहाँ दिया जा रहा है।

तेलियर

(STARLING)

तेलियर मैना की जाति के पक्षी है जो अपनी चितली पोशाक के कारण बडी आसानी से पहचान लिये जाते है। हमारे देश मे पहाडी मैना को साहित्य मे जो स्थान प्राप्त है वही स्थान अग्रेजी साहित्य मे तेलियर को वहाँ के साहित्यकारो ने दिया है। यह है भी विदेश का पक्षी जो हमारे यहाँ जाडो मे आकर जाडा समाप्त होते-होते फिर उसी ओर लौट जाता है। इसे तेलियर मैना भी कहते है।

तेलियर आठ इच का सुन्दर पक्षी है जिसके नर-मादा करीब करीब एक जैसे ही होते है। इसका शरीर चमकीला काला रहता है। इसके शरीर के कुछ परो के सिरे हलके भूरे रग के रहते है जिनके कारण इसका सारा शरीर चित्तियो से भरा दिखाई पडता है और उसमें लाल-नीले तथा हरेपन की झलक-सी रहती है। दुम और डैने भूरे रग के होते है जिनके सिरे चमकीले काले रहते है। इसकी चोच भूरी और पैर प्याजी भूरे रहते है। मादा नर से धूमिल और ज्यादा चितली रहती है।

इसके भी नर और मादा एक किस्म के होते है और अपने कद, अपने घोसले वनाने के ढग और अपने रग-रूप के अलावा उमकी वाकी मव आदते किलहँटे से मिलती-जुलती होती है ।

चही नौ-दस इच की छोटी चिडिया है जिसका सिर के ऊपर और वगल तक का हिस्सा तो काला रहता है, पर वाकी सव सिलेटी रग का होता है। पेट और पख के वीच मे एक-एक गुलावी धव्वा रहता है जो उडने पर साफ दिखलाई पडता है । डैने और दुम भी काली होती है जिसका सिरा वादामी रहता है।
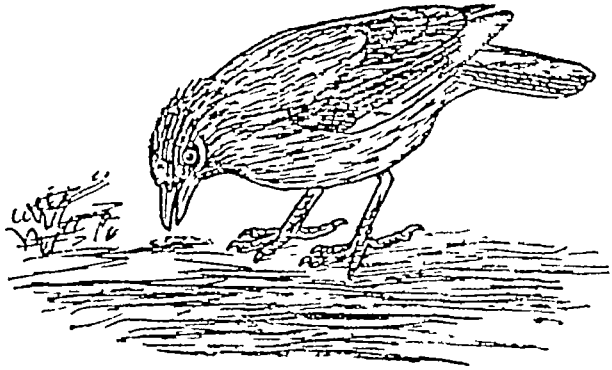
चही मैना

इसकी चोच और पैर पीले होते है। चोच की जड मे आँख के नीचे होते हुए एक लाल धारी रहती है। यह पतेना की तरह कगारो मे मिट्टी खोदकर छ-सात फुट गहरे सूराख मे अपना घोसला वनाती है जिसमे मादा चार-पाँच नीले अण्डे देती है।

अवलखा किलनहिया के वरावर ही होता है और इसके भी नर-मादा एक रग के होते है। इसका पूरा सिर और गरदन काली होती है जिसमे चोच की जड मे दोनो आँखो के नीचे होता हुआ एक गोलाकार सफेद चित्ता रहता है। ऊपरी हिस्सा, दुम और डैने भूरापन लिये काले होते है जिनमे दुम की

अवलखा मैना

जड का ऊपरी हिस्सा भी सफेद रह जाता है। दोनो डैनो पर भी एक-एक सफेद

जा रहे है। ये चारो ही यहाँ के वारहमामी पक्षी है और हमारे देश मे मभी जगह फैले हुए हैं।

१ किलहॅटा—Common Myna

२ किलनहिया या चही—Bank Myna

३ अवलखा—Pied Myna

४ पवई—Black headed Myna

ये चारो हमारे वहुत परिचित पक्षी है जिनमे कोई भी आवादी खाली नही मिलेगी। गॉव के मैदानो में, खेतो और ताल-तलैयो के आम-पास, इनको तलाश करने में जरा भी दिक्कत नही उठानी पडती।

देशी मैना (किलहॅटा)

वैमे तो ये गोल बनाकर रहते और वसेरा लेते है, पर दिन मे इन्हे अक्सर जोडे मे ही देखा जाता है।
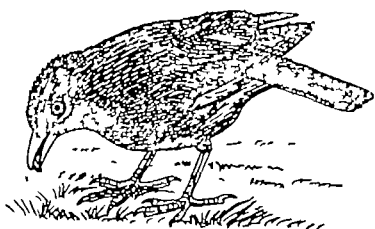
किलहॅटा (Com Myna) इनमें सवसे वडा होता है जिसके नर और मादा एक रग-रूप के होते है। यह १०–११ इच का खैरे रग का पक्षी है जिसका सिर, गरदन, दुम और सीना काला होता है। पेट और डैने के कुछ हिस्से के अलावा दुम का सिरा और दुम का निचला हिस्सा सफेद रहता है। इसकी चोच और चोच की जड से आँख के नीचे तक का उभरा हुआ गोश्त चटक पीला रहता है। पैर भी पीले होते हैं।

किलहॅटा सर्वभक्षी है जिसका मुख्य भोजन कोडे-मकोडे है। इसके अण्डा देने और घोसला वनाने का समय तो जून से अगस्त तक है। पर इसको शायद घोसला वनाना आता नही, क्योकि वैसे तो यह कौए आदि के पुराने घोसलो को ही इस्तेमाल कर लेता है, लेकिन जव मजबूरी आ पडती है तो यह कच्चे मकान की छत या पुरानी दीवार के किसी सूराख में घास-फूस और रुई इत्यादि को जमा करके टेढा-मेढा घोसला वना लेता है जिसमें मादा ३ से ६ तक नीले रग के अण्डे देती है।

किलहॅटा के वाद किलनहिया (Bank Myna) या चही का नम्बर आता है। इसको यह नाम शायद नदी के किनारे चरनेवाले मवेशियो की सोहवत से मिला है जिनकी किलनी आदि यह खाती रहती है। इसको दरिया मैना भी कहते है और यह है भी दरियावाली मैना।

किसी मकान के सूराख मे घास-फूस और पर की मदद से मादा के बैठने और अण्डा देने की जगह बना देती है।

इसके अण्डो की तादाद तीन से पाँच तक होती है जिनका रग अन्य मैनाओ के अण्डो के समान नीला ही होता है लेकिन ये गहरे नीले न होकर हलके नीले ही रहते हैं।

मैना-परिवार

(FAMILY GRACULIDAE)

इस परिवार मे पहाडी मैनाएँ रखी गयी है जो वृक्षो पर ही अपना समय विताती है। इनके शरीर का रग चमकीला काला होता है और इन्हें हम अक्सर उनकी मीठी बोली के लिए पिंजडे मे पालते हैं। यहाँ उसी का वर्णन दिया जा रहा है।

पहाडी मैना

(GRACALE)

मैना से हम सभी परिचित है। पालतू चिडियो मे तोता-मैना ही तो हमारे यहाँ सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। ये दोनो आदमियो की बोली की वडी खूबी से नकल कर लेते है और इसीलिए इन्हे पिंजडो मे कैद रहना पडता है।

मैना हमारे यहाँ की बारहमासी पहाडी चिडिया है जो हमारा देश छोडकर वाहर नही जाती। यह यही पहाडो पर रहती है और जाडो मे पहाडो से उतरकर मैदानो मे भी कुछ दूर चली आती है। हमारे देश मे इनकी कई जातियाँ यहाँ के भिन्न-भिन्न पहाडी स्थानो पर पायी जाती है। इनका रग-रूप एक-जैसा ही रहता है। बस, थोडा-बहुत फर्क जो रहता है वह इनकी आँख के बगल की पीली खाल में ही रहता है, वैसे सबकी आदते एक-जैसी ही होती है।

मैना दस इंच लंबा काले रग का पक्षी है जिसके नर-मादा एक जैसे होते है। इसका सारा बदन चमकीले काले रग का रहता है, जिसमे हरे और बैंगनीपन की झलक रहती है। डैने पर एक सफेद चित्ता रहता है और आँखो के पीछे से सिर की

आडी लकीर रहती है और नीचे का तमाम हिस्सा वहुत हलका वादामीपन लिये हुए राख के रग का होता है।

इसके पैर पीलापन लिये सफेद और चोच नारगी भूरी होती है जिसका निचला हिस्सा सफेद रहता है। कीडो के अलावा इसकी खूराक मे फल-फूल भी शामिल है।

अवलखा के अण्डा देने का समय मई से अगस्त तक है। उसी समय किसी पेड मे इनके गोल के गोल एक साथ ही घोसला बनाते हैं। इसका घोसला घास-फूस का भद्दा-सा होता है जो ऊन और पर वगैरह भीतर लगाकर मुलायम कर दिया जाता है। मादा इसी मे बैठकर चार से छ तक नीले अण्डे देती है।

पवई

पवई का वर्णन अन्त में दिया जा रहा है, लेकिन गाने में यह तीनो से आगे है। यह इन सबसे छोटी जरूर होती है, पर इसकी वोली इतनी सुरीली होती है कि लोग इसे पिजडे मे पालते हैं।

इसके भी नर-मादा की शकल-सूरत मे कोई भेद नही रहता, लेकिन इसके सिर पर एक काली चोटी रहती है जो माथे के काले रग में मिली हुई और पीछे की ओर लटकी रहती है। इसका और बाकी शरीर गहरे वादामी रग का होता है। डैनो का का कुछ हिस्सा काला और दुम के नीचे का हिस्सा सफेद रहता है।

इसकी चोच का सिरा पीला, वीच का हिस्सा हरा और जड नीली रहती है। पैरो का रग चटक पीला होता है।

इसके अण्डा देने का समय मई से अगस्त तक है जब यह किसी पेड के खोथे या

इनका मुख्य भोजन कीडे-मकोडे है लेकिन ये जगली फल-फूल भी वडे मजे मे खाते हैं। ये घास-फूस और पेड की छाल का वहुत सुन्दर घोसला वनाते हैं जो किसी घने पेड की डाली से लटकता रहता है।

हमारे यहाँ इनकी दो जातियाँ पायी जाती है जिनमे से एक का वर्णन यहाँ दिया जा रहा है।

पीलक

(GOLDEN ORIOLE)

पीलक को पिपरोला और पियल्ला भी कहते है। यह पीले रग की ९–१० इच की वहुत ही सुन्दर चिडिया है, जो अपनी सुनहली पीली पोशाक के कारण कही नही

पीलक

छिपती। यह वहुत शरमीली चिडिया है जो अपना सारा समय पेडो पर ही विताती है।

गुद्दी तक पीली खाल की पट्टी बढी रहती है जिसका सिरा पीला रहता है। पैर नारगीपन लिये पीले रग के रहते हैं।

मैना गरोह में रहनेवाली चिडिया है जो अपना ज्यादा समय पेडो पर ही बिताती है। यह बहुत शोर मचानेवाली होती है और इसकी चख-चख से जी ऊब जाता है। कभी-कभी यह जमीन पर भी उतरती और देशी मैनाओ की तरह सीधी न चलकर फुदक-फुदककर चलती है।
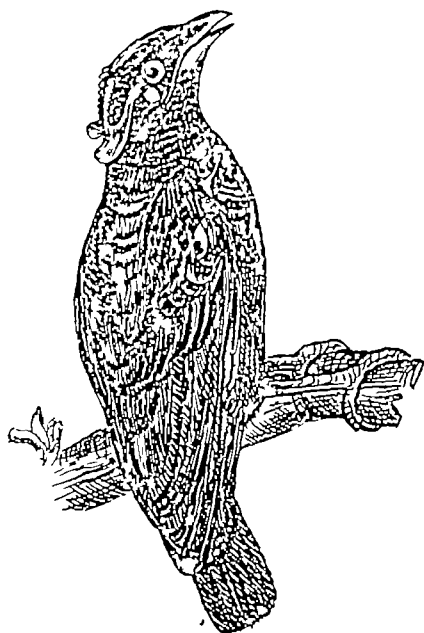
पहाडी मैना

इसका मुख्य भोजन कीडे-मकोडे और फल-फूल हैं। यह फूलो का रस पीने मे भी बहुत उस्ताद होती है।

इसके जोडा बाँधने का समय फरवरी से मई तक रहता है जब यह किसी पेड के ऊचे खोथे मे घास-फूस और पर आदि रखकर अपना घोसला बना लेती है। मादा इसी मे हलके हरे या निलछौंह हरे रग के दो-तीन अण्डे देती है जिन पर भूरी बैंगनी या कत्थई घनी बिन्दियाँ पडी रहती हैं।

पीलक-परिवार

(FAMILY ORIOLIDAE)

पीलक अपनी सुन्दर पीली पोशाक के कारण हमारे बहुत परिचित पक्षी हैं। ये अपना समय वृक्षो पर ही बिताते हैं और जमीन पर नही उतरते।

नीलमी दस इंच की सुन्दर चिड़िया है जिसके नर मादा के रंग में भेद रहता है। नर का सारा शरीर काले मखमल-जैसा होता है जिसके सिर के ऊपरी हिस्से से पीठ तक का भाग बैंगनी रहता है। दुम की जड़ के पास भी यही रंग रहता है और डैने पर भी इसी प्रकार की पट्टी पड़ी रहती है। मादा हल्के नीले रंग की होती है और उसके डैने और दुम कलछौंह होती है जिसमे एक प्रकार की नीली चमक रहती है। इसकी चोंच और पैर काले रहते हैं।
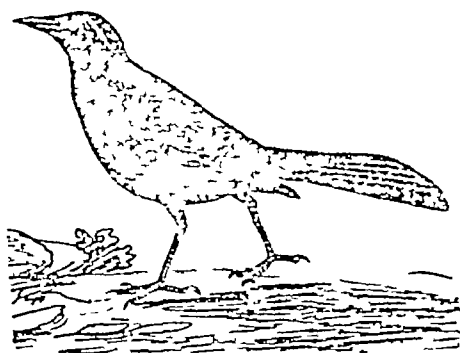
नीलमी

नीलमी हमारे देश में पहाड़ों पर पाँच हजार फुट तक पायी जाती है। यह घने जंगलों में रहनेवाली चिड़िया है जो अपना सारा समय पेड़ों पर ही बिताती है। पेड़ों पर यह इस डाली से फुदककर उस डाली पर अकसर घूमती ही रहती है और कभी-कभी इनका गरोह पेड़ की फुनगी पर बैठा रहता है। दोपहर को ये पानी पीने और नहाने के लिए निकट के झरनों और नदियों के किनारे भी आती हैं। ये एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर जाते समय एक प्रकार की वीट्-वीट् की तरह की तेज आवाज करती रहती हैं।

नीलमी वैसे तो गाढ़े नीले रंग की चिड़िया है लेकिन इसके बदन का रंग इतना गहरा रहता है कि वह दूर से काला ही जान पड़ता है। जब उड़ते समय कभी सूरज की किरण इसके शरीर पर पड़ती है तब इसका नीला रंग जरूर चमक उठता है। इनका मुख्य भोजन तो जंगली फल-फूल है लेकिन यह फूलों का रस भी बड़े स्वाद से पीती है।

नीलमी के जोड़ा बाँधने का समय जनवरी से मई तक रहता है, जब यह किसी ऊँचे पेड़ पर पन्द्रह-बीस फुट की ऊँचाई पर घास-फूस, रेशों तथा पेड़ पर की काई का छिछला-सा घोंसला बनाती है। मादा इसमें अक्सर दो अण्डे देती है जो अक्सर हरापन लिये सफेद रहते हैं और जिन पर कत्थई चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

पियल्ला उन मौसमी चिडियो मे से है जो हमारे यहाँ आमो के साथ-साथ आती है और अगस्त के अन्त तक फिर दक्खिन की ओर लौट जाती हैं। इसकी दो मुख्य जातियाँ है—सुनहली पीलक (Golden Oriole) और टोपीदार पीलक या हरदुआ (Black headed Oriole)। दोनो पीली रहती है पर टोपीदार का सिर काला होता है। टोपीदार के नर-मादा एक जैसे होते है लेकिन सुनहले का नर गहरे सुनहले पीले रग का होता है। इसके डैने और दुम के नीचे का हिस्सा काला होता है और ऑख के दोनो कोनो पर गहरी काली लकीर रहती है। मादा के काले रग की जगह गहरा भूरा ले लेता है। इनकी पीठ हरापन लिये पीली और सीना हलका पीला होता है। चोच गहरी गुलाबी या अबीरी और पैर गहरे सिलेटी रग के होते है।

जैसा ऊपर बता चुका हूँ पियल्ला बहुत सीधी और शरमीली होती है। नौ इच की इस चिडिया को इस पेड से उस पेड पर उडकर जाने के सिवा हम वैसे ज्यादा नही देखते क्योकि यह ज्यादातर ऊची घनी डालियो पर ही रहती है। पीपल, पाकर, बरगद आदि के फलो के अलावा यह कीडे-मकोडे भी खा लेती है।

इसके घोसले बनाने का ढग बडा विचित्र है। इसके अण्डे देने का समय मई से जुलाई तक रहता है जब यह किसी ऊँची दोफकी डाल को अपने घोसले के लिए चुनती है। उसकी दोनो शाखो को यह शहतूत आदि की पतली छाल से इस तरह लपेटती है कि उस पर इसका घोसला रुक सके। फिर उसी पर यह सूखी घास वगरह से अपना बडा सुन्दर गोल घोसला बनाती है जिसमे मादा दो-तीन सफेद अण्डे देती है। अण्डो पर एक ओर काली चित्तियाँ पडी रहती है।

नीलमी-परिवार

(FAMILY IRENIDAE)

इस परिवार के पक्षी अपने नीले रग की पोशाक के लिए प्रसिद्ध है, जिन्हें नीलमी कहा जाता है। यहाँ उसी में से एक का वर्णन दिया जा रहा है।

नीलमी

(FAMILY BLUE BIRD)

नीलमी भी हमारे यहाँ की पहाडी चिडिया है जो अपनी सुन्दर नीली पोशाक के कारण नीलमी कहलाती है। यह हमारे देश की बारहमासी चिडिया है जो हिमालय तथा दक्षिण भारत के पहाडो पर पायी जाती है।

दरजिन हमारे यहाँ के बाग-बगीचो मे रहनेवाली पाँच-छ इच की बारहमासी फुदकी है जिसके नर-मादा एक रग के होते हैं। जोडा बाँधने के समय नर की दुम के बीच के दोनो पख ज़रूर लम्बे हो जाते हैं जिससे वह बडी आसानी से पहचाना जा सकता है।

दरजिन वैसे तो काफी ढीठ होती है और बाग मे बने हुए मकानो के बरामदे तक मे निडर होकर घूमा करती है, पर अपने छोटे कद और हरे रग के कारण यह हरियाली मे ऐसी छिप जाती है कि इसकी ओर जल्द हमारा ध्यान ही नही जाता। इसका मुख्य भोजन छोटे-छोटे कीडे-मकोडे हैं।

फुदकी (दरजिन)

दरजिन का ऊपर का हिस्सा मामूली पीलापन लिये हरा या धानी और नीचे का एकदम सफेद रहता है तथा सिर का ऊपरी हिस्सा कत्थई और आँख के चारो ओर का भाग राखीपन लिये भूरा रहता है। गरदन के दोनो तरफ एक-एक काली लकीर चोच से शुरू होकर आँख के नीचे तक चली जाती है। पैर पीलापन लिये भूरे रहते हैं। और चोच नोकीली, पतली और तेज होती है। इसकी दुम ऊपर की ओर उठी रहती है।
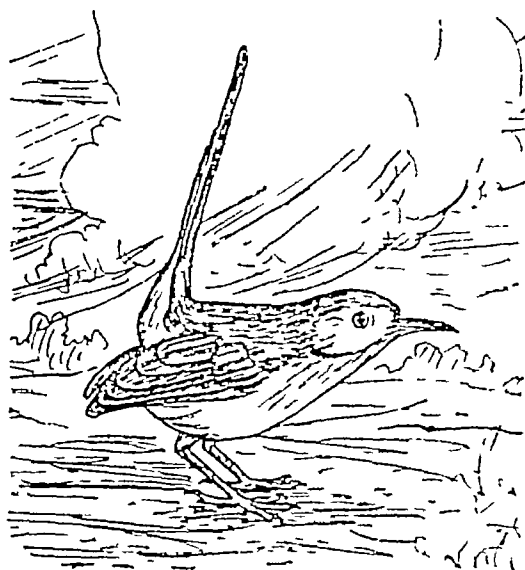
दरजिन को यह नाम इसके घोसला बनाने की वजह से मिला है। यह अपने मुलायम घोसले को दो बडी या कई छोटी पत्तियो को सीकर उनके बीच मे रख लेती है। ये घोसले देखने मे इतने सुन्दर होते है कि इन्हे देखकर बया के बाद फिर इन्ही को कारीगर कहा जाता है। पहिले यह अपनी तेज चोच से पत्तियो के किनारे पर छेद कर लेती है, फिर उनमे मकडी के जाले और रुई आदि को मिलाकर बनाये हुए डोरे को इस तरह पिरो देती है जैसे कोई होशियार दर्जी रफ़ूगे

फुदकी-परिवार

(FAMILY SYLVIIDAE)

फुदकियो का परिवार भी काफी वडा है। इनकी कई सौ जातियाँ ससार भर मे फैली है जिनमे से थोडे ही पक्षी ऐसे है जिनसे हम भली भाँति परिचित है।

ये चिडियाँ गौरैया के बराबर या उससे भी छोटी होती है जो प्राय भूरी, नीली कत्थई या गदे पीले या हरे रग की रहती है। इनका अधिक समय जगल, खेत और घास के मैदानो मे बीतता है, जहाँ ये इधर से उधर अपने पेट भरने की फिक्र में उडा करती है। इनका मुख्य भोजन कीडे-मकोडे है लेकिन ये फल और बीज आदि भी खाती है।

इनमे से दरजिन आदि, कुछ फुदकियाँ बहुत सुन्दर घोसला बनाती है।

इनकी अनेक जातियाँ हमारे यहाँ फैली ह, जिनमे से तीन प्रसिद्ध फुदकियो का वर्णन यहाँ दिया जा रहा है।

फुदकियाँ

(WARBLERS)

फुदकियो की एक नही अनेक जातियाँ है जो सारे ससार मे फैली हुई है। हमारे देश मे भी इनकी कई जातियाँ पायी जाती है जो रग-रूप और शकल-सूरत मे अलग-अलग होकर भी कद मे ५–६ इच से ज्यादा बडी नही होती।

हमारे यहाँ वैसे तो बहुत-सी फुदकियाँ है लेकिन इनकी आदतो मे ज्यादा भेद नही रहता। इसी से यहाँ अपने यहाँ की केवल तीन प्रसिद्ध फुदकियो का वर्णन दिया जा रहा है। उनके नाम इस प्रकार है—

१ दरजिन फुदकी—Tailor Bird

२ टुनटुनी फुदकी—Streaked Fantail Warbler

३ पिटपिटी फुदकी—Indian Wren Warbler

दरजिन फुदकी को देहातो में पटेना कहते है। इसको दरजिन इसलिए कहा जाता है कि यह अपने अण्डो के लिए दो पत्तियो को बडी सफाई से एक में ही सीकर अपना थैलीनुमा घोसला बनाती है।

लड़ाकर पिट्-पिट् की आवाज़ करती है जिसके कारण इसको पहचानने में किसी प्रकार का धोखा नहीं हो सकता। यह पाँच इंच की, भूरे रंग की छोटी-सी बारहमासी फुदकी है जिसके नर-मादा एक ही रंग-रूप और शक्ल-सूरत के होते हैं।

यह फुदकी भी सारे देश में फैली हुई है जिसे घास के मैदानों, धान के खेतों, झाड़ियों से भरे हुए जंगलों में बड़ी आसानी से देखा जा सकता है। यह अक्सर जोड़े में रहती है लेकिन जहाँ कीड़े-पतिंगों की संख्या अधिक होती है वहाँ इनके अनेक जोड़े इकट्ठे हो जाते हैं।

फुदकी (पिटपिटी)

पिटपिटी के बदन का ऊपरी हिस्सा हलका भूरा और नीचे का सफेदी मायल रहता है। इसकी दुम पतली और बढ़ी हुई रहती है। इसका रहन-सहन, भोजन तथा और सब आदतें दरजिन तथा टुनटुनी फुदकी से मिलती-जुलती रहती हैं।
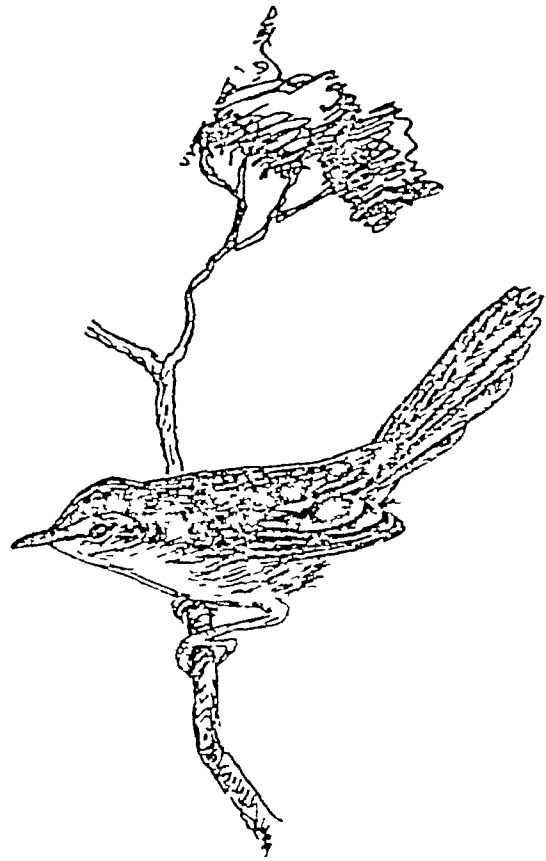
इसके अण्डा देने का समय मार्च से सितम्बर तक रहता है, जब यह पतली घास-पात और रेशों को बुनकर अपना नासपाती की शक्ल का सुन्दर और आराम देह घोसला बनाती है जो किसी खर-पतवार अथवा झाड़ी से ज़मीन से दो-तीन फुट की ऊँचाई पर लटकता रहता है। इन घोसलों में बैठकर मादा चार-पाँच तक अण्डे देती है जो हरछौंह नीले रंग के होते हैं और जिनपर कत्थई चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

के दो टुकडो को थैले जैसा सीता है। पत्तियो के ये थैले जिनमे फुदकी के सेमल की रुई आदि के मुलायम घोसले रहते है, किसी झाडी या पेड मे जमीन से पाँच-छ फुट की ऊँचाई पर लटकते रहते है।

इसके अण्डा देने का समय मई से जुलाई तक रहता है जब मादा दरजिन तीन-चार छोटे-छोटे अण्डे देती है। अण्डो का रग पीला, हलकी ललाई लिये सफेद या पीलापन लिये हलका नीला होता है। जिन पर गाढे बैगनी, भूरे और कत्थई चित्ते पडे रहते है।

टुनटुनी फुदकी Streaked Fantail Warbler चार इच की बहुत छोटी फुदकी है जो अपने छोटे कद के ही कारण शायद 'टुनटुनी फुदकी' या 'टुनटुनियाँ' कहलाती है। यह हमारे देश की बारहमासी चिडिया है जो सारे देश मे फैली हुई है। यह खुले घास के मैदानो मे दिखाई पडती है। उडते समय यह अपनी पखीजैसी दुम फैला लेती है और हवा मे चक्कर काटकर फिर थोडी दूर पर उतर पडती है। इसका मुख्य भोजन कीडे-मकोडे है।

फुदकी (टुनटुनी)

टुनटुनी भूरे रग की चिडिया है जिसका ऊपरी हिस्सा गहरा भूरा और नीचे का सफेदी मायल भूरा रहता है। पीठ पर गाढी कत्थई टूटी-फूटी धारियाँ पडी रहती है।

इसके अण्डा देने का समय जून से सितम्बर तक रहता है जब किसी झाडी में यह घास-फूस का छोटा-सा सुन्दर घोसला बनाती है जो डाली से मजबूती से बँधा रहता है। अण्डो की सख्या तीन से पाँच तक रहती है। ये निलछौंह सफेद होते हैं और इन पर लाल या बैंगनी चित्तियाँ पडी रहती है।

पिटपिटी फुदकी Indian Wren Warbler को यह नाम शायद इसकी पिट्-पिट् की बोली के कारण ही मिला है। खतरा निकट देखकर यह अपनी चोच को

उड़नेवाली गिलहरी (मुन्ज भगत)

भुजगा-परिवार

(FAMILY DICRURIDAE)

इस परिवार के पक्षी अपने काले रग के लिए प्रसिद्ध है। इनकी दुम लम्बी, दुफकी या टेढी रहती है। ये बहुत शिकारी और बहादुर पक्षी है जिनमे मे कुछ हवा मे उडते-उडते कीडे-मकोडो को पकडते है और फिर नीचे आकर उन्हे इत्मीनान से खाते है। कुछ जमीन पर जानवरो की पीठ पर बैठकर कीडे-मकोडे पकडते रहते है।

ये बहुत मीठे स्वर मे बोलते है और बहुत सवेरे इनकी सुरीली बोली हमे देहातो मे सुनने को मिलती है।

इनकी कई जातियाँ हमारे यहाँ पायी जाती है जिनमे मे भुजगा और भृगराज बहुत प्रसिद्ध है। यहाँ केवल भुजगे के बारे मे सक्षेप मे लिखा जा रहा है ।

भुजगा

(KING CROW)

भुजगे को यदि हम अपने यहाँ का सबसे बहादुर और साहसी पक्षी कहे तो अनुचित न होगा। यह हमारे यहाँ का बहुत प्रसिद्ध पक्षी है जिसे हम अक्सर गाय-बैल की पीठ पर अथवा टेलीग्राफ के तारो पर बैठा देख सकते है। यह अपने अण्डो पर हमला होते देखकर कौवे और चील ही नही बन्दरो तक पर हमला कर बैठता है और उस समय उन्हे जान बचाकर भागना ही पडता है। यह कभी किसी बेगुनाह चिडिया पर हमला करता हो, ऐसा नही देखा गया। बल्कि जिस पेड पर भुजगा अपना घोसला बनाता है वह कौए और चील आदि पक्षियो के हमलो से बचा ही रहता है और इसीलिए बहुत-सी चिडियाँ उसी पर आकर अपना घोसला बनाती है। हमारे देश मे भुजगा प्राय सभी स्थानो पर पाया जाता है और यह इस देश को छोडकर कही बाहर नही जाता।

वैसे तो यह छ -सात इच की छोटी-सी चिडिया है, पर दुम को मिलाकर यह १३ इच से कम नही होती। यह चोटी से दुम तक धुर काली होती है जिसमे कभी-कभी नीली चमक-सी दीख पडती है। इसके नर-मादा एक ही रग रूप के होते

है जिनकी आँख की पुतली लाल और चोच तथा पैर काले रहते है। इनकी लम्बी दुम सिरे की ओर चलकर कैचीनुमा दोफकी हो जाती है जिसकी नोक पर कभी-कभी सफेद चित्ता भी पडा रहता है।

भुजगे का मुख्य भोजन कीडे पतिगे है जिन्हे यह जमीन मे बीन-बीनकर नही पकडता बल्कि पतेना की तरह उडते ही उडते इनका शिकार कर लेता है। घास-फूस के ऊपर होकर इसके उडने से जो कीडे उडते है वे इससे बचकर नही जाने पाते।

इसका घास-फूसका घोसला बहुत सुन्दर होता है। यह गोल या छिछले प्याले-सा रहता है जिसे यह मकडी के जाले से किसी दो फाँकवाली ऊँची शाख मे जकड देता है। यह पहले तो भद्दा रहता है, पर धीरे-धीरे भुजगे का जोडा इसमे बैठ-बैठकर इसे एकदम गोल और सुन्दर बना लेता है।

मादा अप्रैल से अगस्त के दरमियान चार-पांच सफेद अण्डे देती है। कभी-कभी इन अण्डो

भुजगा

इतनी सुन्दर पोशाक देकर भी प्रकृति ने इनको मीठी बोली नही दी। ये केवल सी-सी-सी से मिलती हुई आवाज करती रहती है। इनका मुख्य भोजन कीडे-मकोडे है।

सहेली

इनके अण्डा देने का समय अप्रैल से जुलाई तक है जब ये पतली-पतली डालियो और जडो का सुन्दर कटोरेनुमा गहरा घोसला बनाती है, जो मकडी के जाले से बनाये हुए लसदार पदार्थ से किसी दुफकी डाल मे जकडा रहता है। इनके अण्डो का रग पत्थरी या हलका अगूरी रहता है जिन पर कत्थई चित्तियाँ पडी रहती है। इनकी तादाद दो चार तक रहती है।

लहटोरा-परिवार

(FAMILY LANIIDAE)

लहटोरा परिवार मे सब तरह के लहटोरे रखे गये है। ये हमारे परिचित पक्षी है जो शिकार के लिए बहुत प्रसिद्ध है। ये छिपकली, चूहे और चिडियो के अलावा अक्सर हवा मे उडकर कीडे-मकोडो को भी पकड लेते है और फिर उसी डाल पर आकर उसे किसी काँटे मे फँसा कर धीरे-धीरे खाते रहते है।

इनकी चोच शिकारी पक्षियो की तरह टेढी और मजबूत होती है, लेकिन इनके पजे उनकी तरह मजबूत नही होते। इसी कारण ये अपने शिकार को पजो मे

पर छोटे-छोटे काले चित्ते भी पडे रहते और कभी-कभी इसके अण्डे हल्के प्याजी रग के भी पाये जाते है जिन पर छोटे-छोटे ललछौह भूरे चित्ते रहते है ।

सहेली-परिवार

(FAMILY CAMPEPHAGIDAE)

इस परिवार के पक्षी यद्यपि लहटोरो के निकट सम्बन्धी है, लेकिन इनकी रगीन पोशाक के कारण इन्हे एक अलग परिवार मे रखा गया है। ये छोटे कद की चिडिया है जो लाल, काली या लाल-पीली रग की होती है । ये प्राय पाँच-सात के झुड मे रहती है, इसी से इन्हे हमारे यहा 'सात सहेली' भी कहा जाता है।

ये सब शिकारी चिडियाँ है जिनकी चोच टेढी और मजबूत होती है । ये कीडे मकोडो से अपना पेट भरती है।

यहाँ इनकी जाति के एक प्रसिद्ध पक्षी का वर्णन दिया जा रहा है।

सहेली

(MINIVET)

सहेली वैसे तो लहटोरे के परिवार की है, लेकिन अपनी सुन्दर रगीन पोशाक के कारण ये उनसे एकदम अलग समझी जाती है । ये गौरैया के बराबर की मौसमी चिडियाँ है जो हमारे यहाँ के मैदानो मे जाडा शुरू होते-होते आ जाती है और फिर जाडे के अन्त तक उत्तरी पहाडो की ओर लौट जाती हैं। इन चचल पक्षियो को इनकी भडकीली लाल पोशाक के कारण तलाशने में जरा भी दिक्कत नही पडती। ये अक्सर छ-सात के गोल मे रहती है इससे इनको 'सात सहेली' या 'सात-सखी' भी कहा जाता है। इनके गोल मे अक्सर एक या दो नर और बाकी मादाएँ रहती है ।

सहेली के नर-मादा एक रग के नही होते। नर की आधी पीठ तक का ऊपरी हिस्सा और गले तक का निचला हिस्सा काला है, और डैने को छोडकर बाकी सारा बदन चटक लाल रहता है। डैने भी काले होते है, जिनके बीच में एक आडी लाल पट्टी पडी रहती है। मादा भी करीब-करीब और सभी बातो में नर ही जैसी होती है जिसमें लाल रग का स्थान पीला ले लेता है।

इतनी सुन्दर पोशाक देकर भी प्रकृति ने इनको मीठी बोली नही दी। ये केवल सी-सी-सी से मिलती हुई आवाज करती रहती है। इनका मुख्य भोजन कीडे-मकोडे है।

सहेली
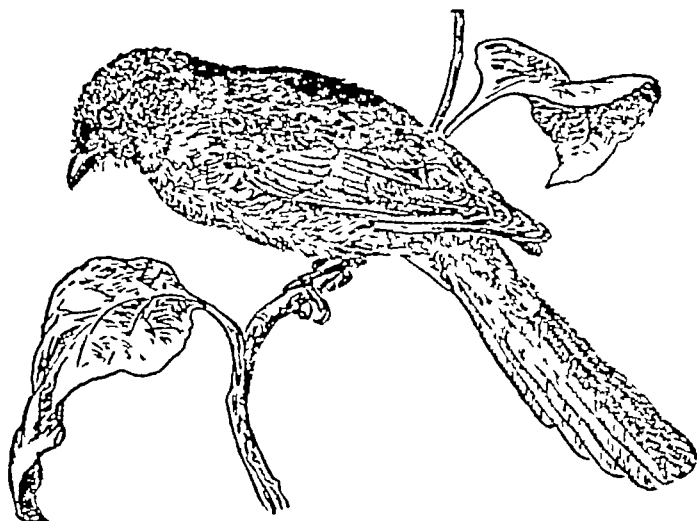
इनके अण्डा देने का समय अप्रैल से जुलाई तक है जब ये पतली-पतली डालियो और जडो का सुन्दर कटोरेनुमा गहरा घोसला बनाती है, जो मकडी के जाले मे बनाये हुए लसदार पदार्थ से किसी दुफकी डाल मे जकडा रहता है। इनके अण्डो का रग पत्थरी या हलका अगूरी रहता है जिन पर कत्थई चित्तियाँ पडी रहती है। इनकी तादाद दो चार तक रहती है।

लहटोरा-परिवार

(FAMILY LANIIDAE)

लहटोरा परिवार मे सब तरह के लहटोरे रखे गये है। ये हमारे परिचित पक्षी है जो शिकार के लिए बहुत प्रसिद्ध है। ये छिपकली, चूहे और चिडियो के अलावा अक्सर हवा मे उडकर कीडे-मकोडो को भी पकड लेते है और फिर उसी डाल पर आकर उसे किसी काँटे मे फँसा कर धीरे-धीरे खाते रहते है।

इनकी चोच शिकारी पक्षियो की तरह टेढी और मजबूत होती है, लेकिन इनके पजे उनकी तरह मजबूत नही होते। इसी कारण ये अपने शिकार को पजो से

पर छोटे-छोटे काले चित्ते भी पडे रहते और कभी-कभी इसके अण्डे हलके प्याजी रग के भी पाये जाते है जिन पर छोटे-छोटे ललछौंह भूरे चित्ते रहते है।

सहेली-परिवार

(FAMILY CAMPEPHAGIDAE)

इस परिवार के पक्षी यद्यपि लहटोरो के निकट सम्बन्धी है, लेकिन इनकी रगीन पोशाक के कारण इन्हे एक अलग परिवार मे रखा गया है। ये छोटे कद की चिडिया है जो लाल, काली या लाल-पीली रग की होती है। ये प्राय पाँच-सात के झुड मे रहती है, इसी से इन्हे हमारे यहा 'सात सहेली' भी कहा जाता है।

ये सब शिकारी चिडियाँ है जिनकी चोच टेढी और मजबूत होती है। ये कीडे मकोडो से अपना पेट भरती है।

यहाँ इनकी जाति के एक प्रसिद्ध पक्षी का वर्णन दिया जा रहा है।

सहेली

(MINIVET)

सहेली वैसे तो लहटोरे के परिवार की है, लेकिन अपनी सुन्दर रगीन पोशाक के कारण ये उनसे एकदम अलग समझी जाती है। ये गौरैया के बराबर की मौसमी चिडियाँ है जो हमारे यहाँ के मैदानो में जाडा शुरू होते-होते आ जाती है और फिर जाडे के अन्त तक उत्तरी पहाडो की ओर लौट जाती है। इन चचल पक्षियो को इनकी भडकीली लाल पोशाक के कारण तलाशने मे जरा भी दिक्कत नही पडती। ये अक्सर छ-सात के गोल मे रहती है इससे इनको 'सात सहेली' या 'सात-सखी' भी कहा जाता है। इनके गोल मे अक्सर एक या दो नर और बाकी मादाएँ रहती है।

सहेली के नर-मादा एक रग के नही होते। नर की आधी पीठ तक का ऊपरी हिस्सा और गले तक का निचला हिस्सा काला है, और डैने को छोडकर बाकी सारा बदन चटक लाल रहता है। डैने भी काले होते है, जिनके बीच मे एक आडी लाल पट्टी पडी रहती है। मादा भी करीब-करीब और सभी बातो में नर ही जैसी होती है जिसमें लाल रग का स्थान पीला ले लेता है।

डैने काले होते हैं जिसके ऊपरी हिस्से पर सफेद धारियाँ रहती हैं। इसकी लम्बी दुम बीच में काली और दोनो बगले सफेद रहती हैं और चोंच तथा पैर एकदम काले होते हैं।

लहटोरे की चोंच शिकरे की तरह टेढी होती है जिससे यह अपने शिकार को छूटकर जाने नही देता। कीडे-मकोडे और टिड्डे की क्यो, छोटी-छोटी चिडियाँ भी इसके हमले से अपने को नही बचा पाती। गाँव के बाहर किसी बबूल के पेड पर या किसी ऊँची झाडी पर लहटोरो को देखना मुश्किल नही होता। ये अक्सर टेलीग्राफ के तार पर भी दिखाई पडते हैं।

लहटोरा यहाँ की बारहमासी चिडिया है जो मार्च से जून के बीच मे घोसला बनाकर अण्डे देती है। इसका घोसला बहुत ही भद्दा होता है। ये बबूल या और किसी कँटीले पेड या झाडी पर सूखी कटीली डालियो को जमाकर उनमे थोडा घास या ऊन लगा कर मामूली-सा घोसला बनाते हैं जिसमे मादा तीन से छ तक सफेद अण्डे देती है। इन अण्डो पर भूरे और बैगनी चित्ते पडे रहते हैं।

मछमरनी-परिवार

(FAMILY MUSCICAPIDAE)

इस परिवार मे सब तरह की मछमरनियाँ रखी गयी हैं जो कीडे-मकोडो से अपना पेट भरती हैं। ये अबाबील या बतासी की तरह बराबर हवा मे उडती रहकर कीडे-मकोडो को नही पकडती बल्कि एक स्थान से उडकर किसी कीडे को पकडकर ये फिर उसे खाने के लिए अपनी जगह पर लौट आती हैं।

इनकी बहुत-सी जातियाँ सारे ससार मे फैली हैं, लेकिन इनके रग-रूप मे भेद होने पर भी इनकी आदतो मे ज्यादा फरक नही होता। ये वैसे तो ज्यादातर भूरे या कत्थई रग की होती हैं, लेकिन कुछ को प्रकृति ने बडी सुन्दर पोशाक दी है। कुछ के बदन का कुछ हिस्सा काला, नीला या बैगनी रहता है तो कुछ के शरीर पर लाल, पीले तथा काले चित्ते रहते हैं। उनमे से दूधराज, जिसे शाहबुलबुल कहा जाता है, नर का रग दूध-सा सफेद और मादा का हल्का कत्थई रहता है। उसकी दुम इतनी लम्बी होती है कि वह अपने ढग की एक निराली चिडिया ही जान पडती है।

यहाँ कुछ प्रसिद्ध मछमरनियो का वर्णन दिया जा रहा है।

पकडकर शिकारी चिडियो की तरह नोच-नोचकर नही खा सकते और उन्हें अपने शिकार का बहुत हिस्सा बेकार छोड देना पडता है। ये प्राय मटमैले रग के होते है।

इनकी कई जातियाँ हमारे यहाँ पायी जाती है जिनमे मे एक प्रमिद्ध लहटोरा का वर्णन यहाँ दिया जा रहा है।

लहटोरा

(GREAT GREY SHRIKE)

लहटोरे को कही-कही लुटेरवा या लुटेरा भी कहते है जो इसके लिए बहुत उपयुक्त शब्द है। कद में छोटे होने पर भी शिकार करने मे ये किमी शिकारी पक्षी से पीछे नही रहते। कही-कही इन्हें कसाई चिडिया भी कहते है क्योकि जब ये कोई शिकार पकडते है तो उसे पेड के किसी मजबूत काँटे में अटका देते है और अपने पजोसे नोच-नोचकर खाते है। रग-रूप में भेद होने पर भी मबकी आदतें एक-जैसी होती है। यहाँ जिस लहटोरा का वर्णन दिया जा रहा है उसे उसके सफेद रग के कारण हमारे यहाँ दूधिया-लहटोरा कहते है।
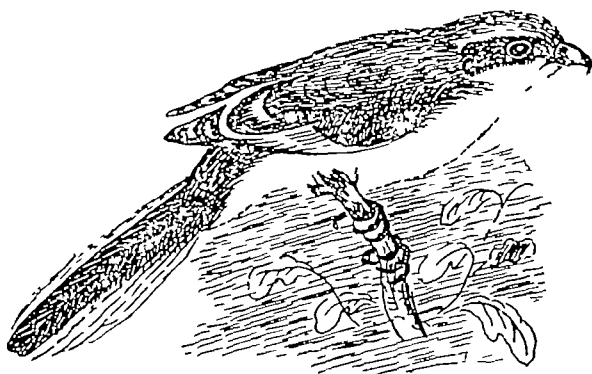
लहटोरा

यह दस इच की लम्बी सिलेटी और सफेद रग की चिडिया है जिसकी चोच मे आँख पर होते हुए गरदन तक एक काली पट्टी चली आती है। इसकी पीठ ऊदी और

काला होता है जिसमे माथे से लेकर आँख के ऊपर होते हुए गरदन तक एक सफेद धारी चली आती है। चोच और गरदन के बगल और नीचे छोटी-छोटी सफेद धारिया रहती है। पीठ, डैने और दुम गहरी भूरी होती है जिसके बीच के दो परो को छोडकर बाकी का सिरा सफेद रहता है। इनका पेट सफेद और चोच तथा पैर काले होते है।

मछमरनी के अण्डे देने का समय फरवरी से अगस्त तक रहता है क्योंकि यह भी दो बार अण्डे देती है। इसका घोसला कटोरानुमा होता है जिसे यह सूखी घास वगैरह मे मकडी का जाला लपेट कर बनाती है। यह घोसला किसी पेड की दोफकी डाल पर रखा रहता है।

मादा दो से चार तक सफेद अडे देती है, जिन पर पेदे की ओर भूरी चित्तियाँ पडी रहती है।

मछमरनी जाति का एक और पक्षी, जो अपनी लम्बी दुम और बुलबुलो-जैसी शकल के कारण शाहबुलबुल कहलाता है, हमारे यहाँ का मौसमी पक्षी है। यह जाडो मे मैदानो की ओर आकर गरमियो मे फिर उत्तरी पहाडो की ओर लौट जाता है।
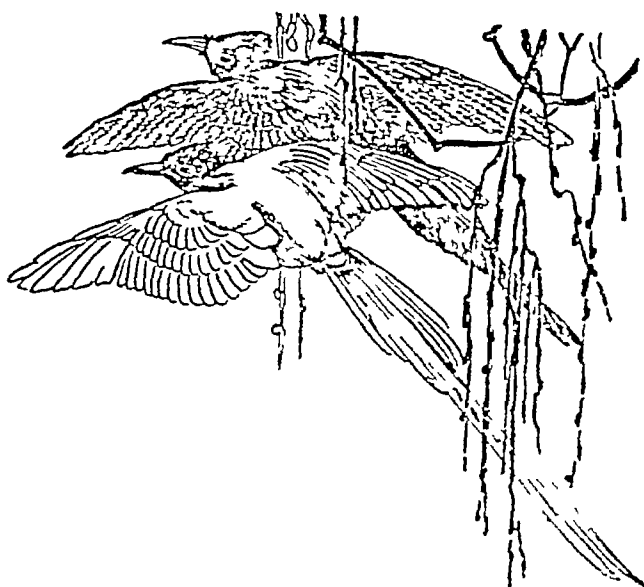
शाह बुलबुल (दूधराज)

शाह बुलबुल के पट्ठे और मादा का रग चटक बादामी होता है पर नर दो-तीन साल के होने पर सफेद हो जाते है। इसी सफेद पोशाक के कारण इन्हे कही कही

मछमरनी

(FLY CATCHERS)

मछमरनियो को यह नाम इसलिए मिला है कि वे दिन भर हवा मे उडकर कीडे-मकोडे पकडकर अपना पेट भरती है। इनकी एक नही अनेक जातियाँ हमारे देश मे पायी जाती है। इनमे से कुछ तो हमारे देश की वारहमासी चिडियाँ है और कुछ जाडो मे यहाँ आकर जाडा खतम होने-होते फिर यहाँ से लौट जाती है। इनकी शकल-सूरत और रग-रूप मे इतना अधिक भेद रहता है कि हम उनको देखकर उन्हे एक परिवार का पक्षी नही कह सकते, लेकिन इन सवका कीडे-मकोडे पकडने का ढग एक ही जैसा रहता है। यहाँ जिस काली मछमरनी का वर्णन दिया जा रहा है, वह हमारे बाग-बगीचो मे रहनेवाली वारहमासी चिडिया है, जिसे हम अपने देश मे प्राय सभी स्थानों पर देख सकते है।
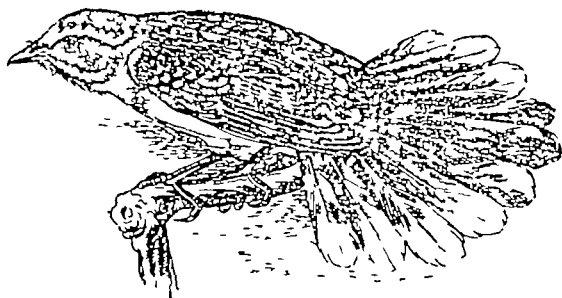
काली मछमरनी

मछमरनी एक स्थान पर थोडी देर भी स्थिर नही रह सकती और अपना सिर, पख और दुम कुछ न कुछ हिलाती ही रहती है। यह बहुत ढीठ चिडिया है, जिसकी एक डाल से उडकर दूसरी डाल पर जाकर पखीनुमा दुम को फैला लेने की नही रह आदत हम वडी आसानी से देख सकते है। इसके बाद इसके पहचानने मे कोई कठिनाई जाती। इसकी मुख्य खूराक उडनेवाले पतिंगे है जिन्हें यह उडकर अपनी चौडी चोच से पकड लेती है।

इस काली मछमरनी के नर और मादा लगभग सात इच लम्बे होते है। ये दोनो करीब-करीब एक ही रग-रूप के होते है। मादा का रग कुछ हलका जरूर होता है लेकिन रगो का बँटवारा नर-जैसा ही रहता है। इनका सिर से लेकर गरदन तक का रग

कस्तूरा यहाँ का बारहमासी पहाडी पक्षी है जिसकी लम्बाई लगभग ११ इच की होती है। इसका नर चमकीले काले रग का रहता है, जिसके नीचे का रग ऊपर से कुछ हलका रहता है । इसके डैनो पर सिलेटी पटरियाँ पडी रहती है। मादा सिलेटी भूरे रग की होती है और उसके डैने पर की पटरियाँ हलकी कत्थई रहती है। दोनो की चोच मूंगे-जैसी और पैर भूरापन लिये पीले रहते है।

कस्तूरा हमारे पहाडो की बहुत मीठी बोली बोलनेवाली चिडिया है जिसकी कई जातियाँ हमारे देश मे पायी जाती है। श्यामा और मैना की तरह इसे भी लोग इसकी बोली के कारण पिंजडो मे पालते है। यह घने जगल की चिडिया है जो प्राय जमीन पर उतरकर कीडे-मकोडे तथा गिरे हुए फल-फूल चुना करती है। पेडो पर के भी फल इससे नही बचने पाते। इसे सुबह और शाम पेडो के नीचे अपनी खूराक की तलाश मे इधर-उधर फिरते देखने मे कठिनाई नही होती। जोडा बाँधने का समय निकट आने पर नर पक्षी पेड की फुनगी पर बैठकर सुबह-शाम बडे मीठे स्वर मे बोलता है।
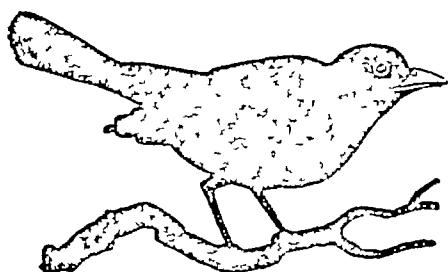
कस्तूरा

इसके अण्डा देने का समय मई से जुलाई तक रहता है जब यह घास-फूस और जडो का बडा-सा घोसला बनाता है। इसके बाहरी हिस्से को पेडो पर की काई से लपेटकर खूब मजबूत बना दिया जाता है। ये घोसले २०–२५ फुट की ऊँचाई पर रखे रहते है, जिनमें बैठकर मादा दो से चार तक अण्डे देती है। ये अण्डे हलके हरे रग के होते है, जिन पर भूरी और कत्थई चित्तियाँ और धब्बे पडे रहते है।

श्यामा
(SHAMA)

श्यामा हमारे देश की मीठी बोली बोलनेवाली बहुत प्रसिद्ध चिडिया है जिसे शौकीन लोग मैना की तरह पिजडो मे पालते है। हमारे देश के दक्षिण भाग में यह बम्बई से ट्रावनकोर तक, पूर्वी भाग मे उडीसा तक और इसके अलावा उत्तरी प्रदेश के पहाडी भागो मे चार हजार फुट तक पायी जाती है।

दूधराज भी कहा जाता है। इसका सिर, गरदन और चोटी चमकीली काले रग की होती है और पीठ, डैने और दुम पर भी काली धारियाँ पडी रहती है। मादा की गरदन राख के रग की और पेट सफेदी मायल होता है। दोनो के पैर सिलेटी नीले होते ह।

इसकी चोच नीली होती है और आँख के चारो ओर इसी रग का एक गोल घेरा भी रहता है।

शाहबुलबुल देखने में बहुत सुन्दर लगता है। यह बराबर पेड पर रहनेवाला पक्षी है, जिसका एक कारण नर की लम्बी दुम भी हो सकता है। यह भी उडते हुए पतिंगो को पकडकर अपना पेट भरता है जो इसका मुख्य भोजन है।

इसके अण्डे देने का समय अप्रैल से जून तक है जिसमे मादा ३–४ सफेद या हलके गुलाबी रग के अण्डे देती है। इन पर ललछौह कत्थई चित्तियाँ पडी रहती है। इसका घोंसला मछमरनी की ही तरह होता है, जिसमे अण्डा सेने के लिए नर और मादा दोनो पारी-पारी से बैठते है।

कस्तूरा-परिवार

(FAMILY MUSCICAPIDAE)

कस्तूरा परिवार मे उन पक्षियो को रखा गया है जो चिलचिल–परिवार के निकट सम्बन्धी है, लेकिन जिनका कद उनसे छोटा होता है।

इन पक्षियो को प्रकृति ने सुन्दर पोशाक तो नही दी, लेकिन इनको बहुत सुरीला कठ दिया है। ससार के प्रसिद्ध गानेवाले पक्षी इसी परिवार के है।

यहाँ इनमें से कुछ प्रसिद्ध पक्षियो का वर्णन दिया जा रहा है।

कस्तूरा

(GREY WINGED BLACK BIRD)

कस्तूरा भी हमारे यहाँ का पहाडी पक्षी है जो हमारे देश के सारे हिमालय प्रान्त में, कश्मीर से आसाम तक, फैला हुआ है। यह वैसे तो वहाँ चार से दस हजार फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है, लेकिन जाडो में इसे तराई में देखना कठिन नही होता। तराइयो के अलावा कभी-कभी यह मैदानो में भी कुछ दूर तक चला आता है।

दँहगल

(MAGPIE ROBIN)

दँहगल हमारे यहाँ की बहुत सुन्दर छोटी सी चितकबरी चिडिया है, जो गाने मे बडी उस्ताद होती है। चिडियो के शौकीन इसे भी इसकी बोली के लिए पालते हैं। यह हमारे यहाँ की बारहमासी चिडिया है जो हमारा देश छोडकर बाहर तो नही जाती, लेकिन अपनी सुविधानुसार थोडा बहुत स्थान परिवर्तन अवश्य कर लेती है।

दँहगल को न तो घनी झाडियाँ पसन्द है और न एकदम खुले मैदान ही। बाग मे, जहाँ इसके रग की तरह धूप और छाया फैली रहती है, हम इसे अक्सर देख सकते है।

इसके पहचानने के लिए इसका रग ही काफी है। फिर भी कीडो के लिए जमीन पर दौडना और 'थरथरकँपनी' की तरह रुककर दुम उठाना-गिराना इसकी विशेषता है।

दँहगल

दँहगल आठ इंच की छोटी-सी चिडिया है जिसके नर-मादा मे थोडा ही फर्क होता है। नर का सिर, गरदन, सीना और पीठ चमकीले काले रग की होती है। नीचे का हिस्सा सफेद होता है। पूछ उठी रहती है जिसमे बीच के दो पर काले और बाकी सफेद होते है। डैने काले रहते है, जिनके बीच मे सफेद धारी होती है। मादा भी करीब-करीब ऐसी ही होती है। फर्क इतना ही रहता है कि नर के जिस हिस्से में स्याही रहती है, वहाँ मादा के कलछौंह भरा होता है। दोनो की चोच काली और पैर गाढे सिलेटी होते है।

यह हमारे देश की बारहमासी पहाडी चिडिया है जो अपनी छ इच की लम्बी दुम के साथ लगभग ११ इच लम्बी होती है। इसके नर-मादा के रग में भेद रहता है। नर चमकीले काले रग का रहता है, लेकिन नीचे का हिस्सा सीने के बाद खैरा हो जाता है। पैर की जड के पास का हिस्सा सफेद रहता है और दुम की जड के पास भी एक सफेद चित्ता रहता है। मादा नर के अनुरूप ही रहती है लेकिन उसके शरीर पर काले का स्थान सिलेटी भूरा और कत्थई का स्थान हलका कत्थई ले लेता है। दोनो की चोच काली और पैर हलके प्याजी रग के होते है।
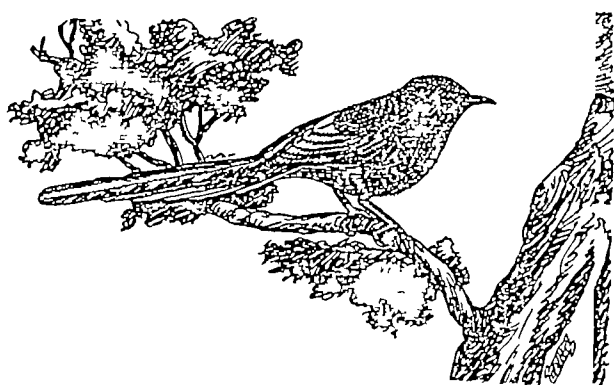
श्यामा

श्यामा घने जगलो में रहनेवाली चिडिया है। इसीलिए हम इसकी मीठी वोली सुनकर भी इसे कम पहचानते है। यह वहुत ही शरमीली चिडिया है जिसे जगल के ऐसे स्थान पसन्द आते है जहाँ झरनो के पास ऊवड-खावड जमीन और खुले मैदान हो। इसका मुख्य भोजन कीडे-मकोडे और जगली फल-फूल है जिनके लिए यह अक्सर जमीन पर उतरती है, लेकिन जरा-सा भी खतरा निकट देखकर यह फिर पेड पर जा वैठती है।

श्यामा सुवह और शाम को वडे ही मीठे स्वर में वोलती है। इसके जोडा वाँधने का समय अप्रैल से जून तक रहता है, जव यह किसी वाँस के झुरमुट मे कूडा-कवाड के वीच अपना सूखी पत्तियो, घास-फूस तथा पेडो की काई का प्यालेनुमा घोसला वनाती है। मादा उसमें चार-पाँच अण्डे देती है जो प्राय पत्थरी रग के होते हैं और जिन पर घनी वैंगनी तथा गाढी भूरी चित्तियाँ पडी रहती है।

धुँवला काला और दुम के निचले हिस्से से लेकर पेट तक का हिस्सा नारंगी भूरा होता है। दुम का ऊपरी हिस्सा कत्थई रहता है। मादा के पेट का रंग कुछ बादामी लिये हुए भूरा रहता है। इसकी आँखों के चारों ओर एक पीला छल्ला-सा होता है और बाकी कुल बातें नर की तरह रहती हैं।

इसके अण्डे देने का समय जून जुलाई है, जब यह यहाँ से अपने देश को वापस चली जाती है। वहाँ पहुँच कर जब इसको अण्डे देना होता है तो यह पुराने मकान के छज्जों के नीचे या पहाड़ियों पर पत्थर के नीचे अपना छोटी-छोटी टहनियों का घोंसला बनाती है जिसमें मादा चार से छ तक अण्डे देती है। इसके अण्डे प्रायः दो रंग के होते हैं। कुछ पीले और हरापन लिये हुए नीले और कुछ एकदम सफेद चमकदार।

पिद्दा

(BUSH CHAT)

पिद्दा का दूसरा नाम फिद्दा भी है। यह पाँच इंच का सुन्दर चितकबरा पक्षी है जो हमारे देश के मैदानों में काफी संख्या में फैला हुआ है। इसकी एक नहीं, अनेक जातियाँ हैं जो सारे देश में पायी जाती हैं।

पिद्दे का सारा बदन वैसे तो काले रंग का होता है, लेकिन इसके दोनों कन्धों पर एक-एक सफेद चित्ते रहते हैं। इसके सीने से दुम के नीचे का हिस्सा भी सफेद रहता है जिस कारण देखने में यह चितकबरा लगता है। पिद्दी काली न होकर भूरी होती है और उसकी दुम का निचला हिस्सा सफेद न होकर नारंगी रहता है। चोंच तथा पैर काले रहते हैं।

पिद्दे के चितकबरे नर और भूरी मादा को हम अक्सर किसी झाड़ी, सरपत या और किसी ऊँची घास की फुनगी पर बैठा देख सकते हैं। इसे घने जंगलों से खुले मैदान, घास और झाड़ियों का पास-पड़ोस ज्यादा पसन्द आता है।

पिद्दा हमेशा चोटी पर ही बैठा रहता हो सो बात नहीं है। खाने के लिए तो इसे जमीन पर उतरना ही पड़ता है क्योंकि हवा में उड़नेवाले कीड़े-पतिंगों से जब इसका पेट नहीं भरता तो इसे मजबूरन कीड़े-मकोड़ों के लिए जमीन की शरण लेनी पड़ती है।

जोड़ा बाँधने के समय पिद्दा मादा को रिझाने में कोई कोर-कसर नहीं उठा

दॅहगल के अण्डा देने का समय मार्च से जुलाई तक रहता हे लेकिन इसके घोसलो मे अण्डे ज्यादातर अप्रैल और मई मे ही मिलते है। यह अपना घास और पत्तियो का छोटा मुलायम घोसला पेड के खोथो, मकान के छज्जो या नदी के किनारे ऊँचे कगारो पर बनाती है जिसमे मादा चार-पॉच नीला और पीलापन लिये हरे रग के चमकदार अण्डे देती हे।

थिरथिरा

(RED START)

थिरथिरा को थरथर-कॅपनी भी कहते है। यह नाम इसकी दुम हिलाने की आदत के कारण पडा है। यह हमारे यहॉ की मोसमी चिडिया है जो सितम्बर के अन्त मे यहॉ आकर अप्रैल के प्रारम्भ मे यहॉ से लौट जाती है।
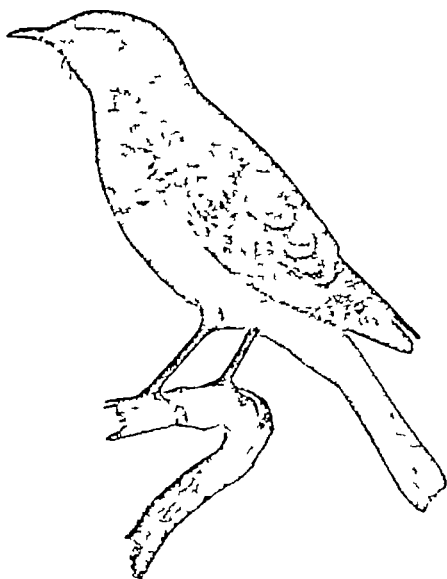
थिरथिरा

इसको तलाश करने के लिए दूर नही जाना पडता। मकान के छज्जो के नीचे और सायेदार वृक्षो की निचली डालियो पर इसे आसानी से देखा जा सकता है। वैसे तो यह कुछ छोटी-सी कलछौह चिडिया है जो अक्सर निगाह से बच जाती है, लेकिन थोडी देर इधर-उधर नजर दौडाने पर यह दिखाई न पडे, यह सम्भव नही। जो इसकी ऊपर-नीचे दुम हिलाने की आदत को जानते है वे इसे देखते ही पहचान लेते है।

यह छ इच की धूमिल काले रग की चिडिया हे जो दिसम्बर के आखीर मे हमारे देश मे आती है और अप्रैल के शुरू होने-होते फिर अपने देश को लौट जाती है। इसके नर का ऊपरी हिस्सा

इनको न तो प्रकृति ने सुरीला गला ही दिया है और न सुन्दर पोशाक ही। य कलछौह, भूरे, मटमैले या गदे पीले और हरे रग के पक्षी है जो अपने पतले शरीर, लम्बी दुम और सिर पर की चोटी के कारण वडी आसानी से पहचान लिये जाते है।

यहाँ अपने यहाँ की कुछ प्रसिद्ध वुलवुलो का वर्णन दिया जा रहा है।

वुलवुल
(BUL BUL)

मछमरनी की तरह वुलवुल की भी अनेक जातियाँ हमारे देश में फैली हुई है जिनमे गुलदुम वुलवुल सवसे प्रसिद्ध है। हमारे यहाँ के शौकीन लोग इसको इसकी मीठी वोली के कारण नही वल्कि इसके लडने की आदत के कारण पालते है।

यह पतले वनावट की चितली भूरी चिडिया अपनी दुम के नीचे लाल निशान के कारण वडी आसानी से पहचान ली जाती है। इसके सिर पर चोटी तो नही होती, लेकिन वहुधा सिर पर के कुछ पर इसके खुश होने पर चोटी की तरह उठ आते है। यह हमारे यहाँ की वारहमासी चिडिया है जो पहाड पर भी चार हजार फुट तक पायी जाती है। यह हमारे यहाँ के वाग-वगीचो, तितरे-वितरे जगलो तथा खुले मैदानो मे अक्सर जोडे मे दिखाई पडती है, लेकिन जहाँ इनको भोजन की सहूलियत रहती है वहाँ इनकेझुड भी मिल जाते है।

गुलदुम वुलवुल
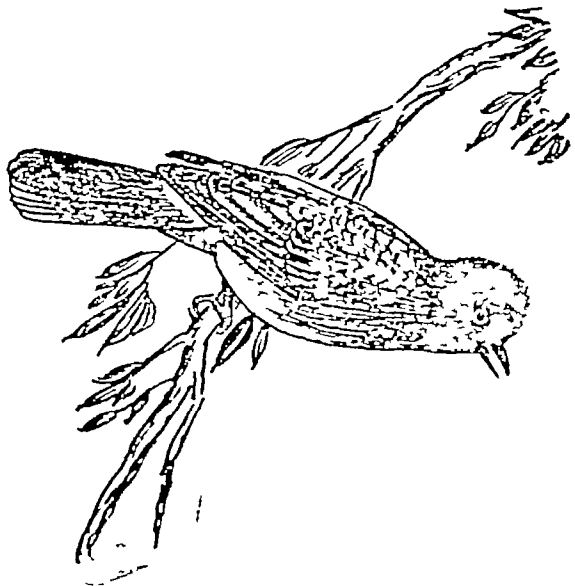
गुलदुम वुलवुल लगभग आठ इच की चिडिया है जिसके नर-मादा की शकल-सूरत एक-जैसी होती है। इनका सिर और गला चमकीला काला और वाकी सव शरीर गहरा भूरा रहता है जिस पर मछली के सेहर से हल्के निशान रहते है। पीठ के

रखता। वह वार-वार अपने डैनो पर के सफेद चित्तो को मादा को दिखाता है और उसके वाद किमी ऊँची फुनगी पर से दुम फैलाकर गाता हुआ ऊपर उडता है। कुछ दूर ऊपर जाकर वह फिर धीरे-धीरे गाता हुआ नीचे उतरता है और इस प्रकार नाच-गाकर एक न एक को रिझा लेता है। वैमे तो पिद्दे की बोली वहुत कर्कश होती है लेकिन इस समय उसके गाने में न जाने कहाँ से वहुत मिठास आ जाती है।

पिद्दा

पिद्दा के जोडा वाँधने का समय मार्च से अगस्त तक है जव इसके सुन्दर कटोरानुमा घोसले घास-फूस और पतली जडो से वनाये जाते हैं जिनमें ऊन, वाल या परो का नरम अस्तर दे दिया जाता है। मादा इसमें चार-पाँच सफेद अण्डे देती है जिन पर कत्थई चित्तियाँ पडी रहती है।

वुलवुल-परिवार

(FAMILY PYCNONOTIDAE)

वुलवुल परिवार में सव प्रकार की वुलवुलें रखी गयी हैं जिन्हे चरखियो और लहटोरो का दूर का सम्बन्धी कहा जा सकता है। ये कीडे-पतिंगे खानेवाले पक्षी है जो फल-फूल भी वडे मजे मे खा लेते हैं।

चिलचिल-परिवार

(FAMILY TIMALIDAE)

चिलचिल परिवार अपने वर्ग का काफी वडा परिवार है जिसमे सब तरह की चरखियाँ, चिलचिले, पोदना आदि शामिल है।

ये मटमैले अथवा गदे चितले रग की चिडियाँ है जिनका कद कौए के बराबर रहता है। ये अपना सारा समय जगलो, बागो या झाडियो के आस-पास बिताती है और कीडे-मकोडे आदि से अपना पेट भरती है। ये बहुत शोर मचानेवाली चिडियाँ है जिनमे से कुछ झुड मे रहती है और कुछ को अकेले ही रहना भाता है। इनके पख और दुम ढीली-ढीली-सी रहती है और इनकी उडान भी बहुत मामूली-सी होती है।

इनकी वैसे तो बहुत-सी जातियाँ है, लेकिन यहाँ इनमे से कुछ प्रसिद्ध पक्षियो का वर्णन दिया जा रहा है।

चिलचिल

(LAUGHING THRUST)

चिलचिल को पहाडी चरखी कहना अनुचित न होगा। जिस प्रकार हमारी चरखी सारे देश मे बाग-बगीचो और तितरे-बितरे जगलो मे फैली हुई है, उसी प्रकार हिमालय पर इनका स्थान चिलचिलो ने ले लिया है। ये चरखियो की तरह काफी शोर मचाती है। इसी से इन्हे चिलचिल कहा जाता है।

चिलचिल हमारे यहाँ की बारहमासी पहाडी चिडिया है जो पश्चिमी हिमालय से भूटान तक पाँच हजार से दस हजार फुट की ऊँचाई तक पायी जाती है। यह आठ इच का सिलेटी रग का पक्षी है जिसका सारा शरीर कत्थई धारियो से भरा रहता है। डैने और दुम खैरे रग के होते है जिन पर हलकी धारियाँ पडी रहती है। इसकी चोच सीग के रग की और पैर प्याजी भूरे रहते है। इसके नर-मादा का रग-रूप एक ही जैसा होता है।

चिलचिल हिमालय के बाग-बगीचो मे रहनेवाली चरखी की जाति की चिडिया है, जो आठ-दस का गरोह बनाकर रहती है और बहुत शोर मचाती है। यह झाडियो मे या पेड की नीची डालियो पर उडकर बैठती है और वहाँ से उडकर थोडी दूर पर

पखो का सिरा पीला, दुम का सिरा मफेद और दुम के नीचे का हिस्सा खूनी सुर्ख होता है। सिर पर छोटी चोटी होती है जो अक्मर दवी रहती है। इनके पैर काले होते हैं।

वुलवुल पक्षी अक्सर जाडो मे दिखाई पडते हैं। ये वैसे तो अकेले या जोडे मे रहते है पर कभी-कभी इनको फलदार पेडो पर झुड मे भी देखा जा सकता है। फल इनका मुख्य भोजन है, लेकिन यह कीडे-मकोडे भी खा लेते हैं।
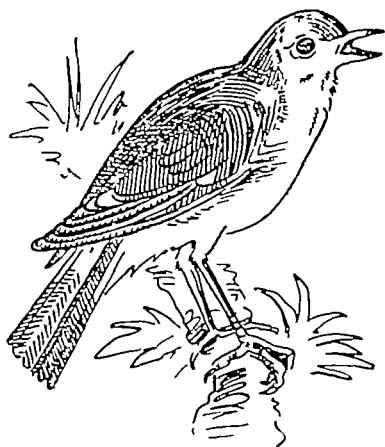
वुलबुल हजार दास्तां

वुलवुल वैमे तो यहाँ के वारहमासी पक्षी है, पर इनकी इतनी अधिक जातियाँ है और ये इम तरह मभी देशो में फैले हुए है कि इनका कौन असली देश है, यह कहना कठिन है। सदा गाकर खुश रहने वाली प्रसिद्ध वुलवुल (Nightin-gale) जिसने उर्दू और फारमी साहित्य मे अपना एक स्थान वना लिया है, हमारे देश मे नही होती। फारस मे इसे वुलवुल हजारदास्ताँ का खिताव मिला हुआ है, लेकिन यह हमारे देश की वुलबुलो से भिन्न पक्षी है।

वुलबुलो के अण्डा देने का समय फरवरी से सितम्वर तक रहता है जव मादा दो वार अण्डे देती है। वह अपना छोटा गहरा घोसला किसी नीची झाडी, झाऊ या मरपत के घने वूटे मे वनाती है जिसे मुलायम घास, चीथडे और वालो से नरम वना लिया जाता है। वहुत नीची जगह पर घोम्ले वनाने के कारण इनके काफी अण्डे दुश्मनो के शिकार हो जाते है, पर दो वार अण्डे देने के कारण इनका औमत पूरा हो जाता है।

अण्डो की तादाद अक्सर तीन तक होती है। इनका रग हलका गुलावी होता है जिम पर लाल वादामी और ललछौंह वैगनी रग की चित्तियाँ पडी रहती है।

की ऊँचाई पर रहती है, लेकिन जाडो मे यह चार हजार फुट के आस-पास तक उतर आती है ।

सिविया को कही-कही गप्पू भी कहते हैं । यह नौ इंच लम्बी होती है और इनके नर-मादा एक ही रग-रूप के रहते हैं । इसके शरीर का रग कत्थई होता है, लेकिन पीठ के बीच का हिस्सा सिलेटी मायल भूरा रहता है। सिर का ऊपरी और बगल का हिस्सा काला रहता है । इसकी दुम भी काली रहती है जिस पर एक गाढी आडी पटरी पडी रहती है। डैने के पर काले सिलेटी और कत्थई रहते हैं और चोच काली तथा पैर प्याजी भूरे रग के होते हैं ।

सिविया

सिविया चरखियो की तरह बहुत शोर मचानेवाली चिडिया है जिसका ज्यादा समय ऊँचे पेडो पर ही बीतता है। यह जमीन पर बहुत कम उतरती है और दिन भर पेडो पर इधर से उधर फुदका करती है। कभी-कभी यह पेडो से उडकर हवा मे भी कीडे-मकोडो को पकडती रहती है, लेकिन कही जरा-सा भी खटका हुआ नही कि यह फौरन ही जाकर पेडो मे छिप जाती है । इसका मुख्य भोजन कीडे-मकोडे हैं ।

जाडो मे सिविया अक्सर छोटे-छोटे गरोहो में दिखाई पडती है और पेडो पर इधर-उधर शोर मचाती हुई फुदकती रहती है, लेकिन जोडा बाँध लेने पर इनकी कर्कशता मे कुछ सिठान आ जाती है और तब सारा जगल इनकी 'टिनी-टिनी-टी' की तेज आवाज से गूँज उठता है ।

फिर इनका गरोह झाडियो और पेडो पर जा बैठता है। यह बडी ढीठ चिडिया है जो आदमियो को बहुत पास तक आने देती है और अपनी चखचख के आगे उनकी ओर ज्यादा ध्यान नही देती। कही-कही तो यह बस्तियो मे भी बडी आजादी से आ जाती है। इसका मुख्य भोजन कीडे-मकोडे, फल-फूल और बीज है।
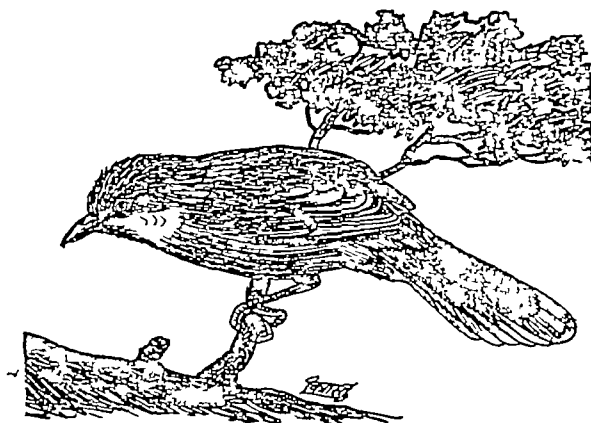
चिलचिल

चिलचिल के जोडा बाँधने का समय मार्च से सितम्बर तक रहता है क्योकि यह अक्सर इसी बीच दो बार अण्डे देती है। इसका कारण यह भी हो सकता है कि इसके घोसले में प्राय कोयल और पपिहरे अपने अण्डे दे आते है और उनके बच्चे अण्डे से बाहर आने पर चिलचिल के बच्चो को घोसले से गिराकर मार डालते है।

चिलचिल का घोसला घास-फूस, सूखी जडो, पेड की छालो और रेशो आदि से बनाया जाता है जो काफी बडा, गोल और गहरा होता है। यह किसी घनी झाडी में अथवा किसी पेड पर पाँच–छ फुट की ऊँचाई पर रहता है। मादा समय आने पर इसमें तीन-चार अण्डे देती है जो हरापन लिये हलके नीले रग के होते है।

सिबिया

(SIBIA)

सिबिया एक पहाडी चिडिया है जो अपने देश में सारे हिमालय के प्रान्तो मे फैली हुई है। यह हमारे देश की बारहमासी चिडिया है जो गरमियो में आठ-दस हजार फुट

इसकी चोच काली और पैर हरापन लिये गाढे सिलेटी होते है ।

कठफोरिया शाखो पर तेजी से ऊपर-नीचे घूमती रहती है क्योकि उसके पजे का पिछला अँगूठा काफी लम्बा होता है। इसकी चोच बहुत तेज और नोकीली होती है जिससे वह पेड की पपडियो से बडी आसानी से कीडे मकोडो को चुन लेती है जो इसके मुख्य भोजन है।
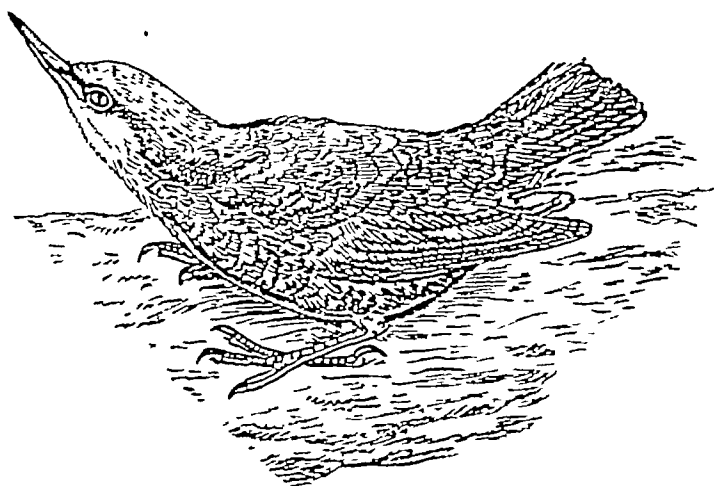
कठफोरिया

कठफोरिया मार्च मे किसी पेड के खोखले को पत्तियो से मुलायम करके चार-छ सफेद अण्डे देती है जिन पर लाल चित्तियाँ पडी रहती है। यह अपने अण्डो को गिलहरी और कौओ आदि से बचाने के लिए केवल एक छोटा सूराख छोडकर, खोखले का सारा मुँह एक प्रकार की चिकनी मिट्टी से बन्द कर देती है, जो सूखने पर सीमेण्ट की तरह कडी हो जाती है ।

गगरा-परिवार

(FAMILY PARIDAE)

गगरा-परिवार मे सभी तरह के गगरा रखे गये है जो अपने छोटे कद के कारण दूर से फुदकी-से जान पडते है।

ये पक्षी सिलेटी या पिल्छौंह होते है और इनका मुख्य भोजन कीडे-मकोडे है। यहाँ अपने यहाँ की एक प्रसिद्ध गगरा चिडिया का वर्णन दिया जा रहा है।

इसके जोडा बाँधने का समय मई से अगस्त तक रहता है जब यह किसी देवदार के ऊँचे पेड पर पेडो की काई, जडो तथा घास और रेशो आदि का सुन्दर प्यालानुमा घोसला बनाती है। मादा इसी मे दो-तीन अण्डे देती है जो हलके हरे या नीले रग के होते हैं। इन अण्डो पर भूरी, कत्थई और लाल चित्तियाँ और चिह्न पडे रहते है।

कठफोरिया-परिवार

(FAMILY SITTIDAE)

यह परिवार भी छोटा ही है जिसमे हर प्रकार की कठफोरिया को रखा गया है। यह छोटी सी चिडिया पेडो के तनो पर चूहो की तरह टहलती रहती है और कीडे-मकोडो से अपना पेट भरती है।

हमारे यहाँ कई जाति की कठफोरिया पायी जाती है, जिनमे से एक का वर्णन यहाँ दिया जा रहा है।

कठफोरिया

(NUTHATCH)

कठफोरिया का हमारे यहाँ के प्रसिद्ध कठफोर से कोई सम्बन्ध नही है, फिर भी इसकी आदत में समानता होने के कारण इसको यह नाम दिया गया है।

यह एक छोटी-सी चिडिया है जो कठफोर की तरह लकडी नही काटती बल्कि पेड की पपडियो से छोटे-छोटे कीडो की तलाश में ही यह पेडो का चक्कर लगाती रहती है। इसे एक जगह पर स्थिर नही देखा जा सकता। हमारे यहाँ शायद ही कोई बाग-बगीचा ऐसा होगा जिसमे यह देखी न जा सके।

कठफोरिया हमारे यहाँ की बारहमासी चिडिया है जिसके नर और मादा अलग-अलग रग के होते हैं। नर का ऊपरी हिस्सा सिलेटी मायल नीला और नीचे का कत्थई रहता है। चोच से दोनो कधो तक एक-एक काली पट्टी-सी रहती है और गले का निचला हिस्सा सफेद होता है। जब तक यह उडती नही तब तक इसके नीचे का कत्थई रग नही दिखाई पड सकता। मादा मे थोडा ही फर्क रहता है। उसके नीचे का रग कत्थई न होकर बादामी होता है और गाल के पास की सफेदी उतनी स्पष्ट नही होती, जितनी नर की।

मुलायम जडो को किमी पेड के खोथे या पहाड की दराज मे रखकर अपना मुलायम घोसला वनाती है जिसमे मादा चार–छ अण्डे देती है।

ये अण्डे सफेद होते हैं जिन पर कत्थई और वैंगनी चित्तियाँ पडी रहती है।

काक-परिवार

(FAMILY CARVIDAE)

काक-परिवार मे कौओ के अलावा सव तरह की मुटरियाँ और वनमर्रे भी रखे गये है, क्योकि ये सव रग-रूप मे भिन्न होने पर भी एक ही परिवार के पक्षी है।

ये सव सर्वभक्षी पक्षी है जो प्राय वृक्षो पर रहते है। इनमे कौओ मे तो हम सव परिचित ही है। मुटरियो की पोशाक रगीन होती है और उनकी दुम काफी लम्बी रहती है। वनमर्रा भी अपनी सुन्दर पोशाक से कौओ का भाई-वन्धु नही जान पडता।

ये सव वडी कर्कश वोली वोलते है और इनके तितरे-वितरे, घोमले टहनियो से वडे भद्दे ढग से वनाये जाते है।

इनकी अनेक जातियाँ है लेकिन यहाँ इनमे से कुछ प्रसिद्ध पक्षियो का वर्णन दिया जा रहा है।

वनसर्रा

(BLACK THROATED JAY)

वनसर्रा को पहाडी पक्षी ही कहना उचित होगा। यह सुन्दर पक्षी पश्चिमी हिमालय से नेपाल तक फैला हुआ है जहाँ इसे पाँच हजार से आठ हजार फुट तक के वीच देखना कठिन नहीं।

यह हमारे देश का वारहमासी पक्षी है जो वरावर यहीं रहता है।

वनसर्रा तेरह इच का पक्षी है जिसके नर-मादा एक-जैसे होते है। इसके सिर की टोपी वुलवुलो की तरह काली और चोटीदार रहती है और ठुड्ढी और गला काला रहता है। वदन का रग भैंरा सिलेटी रहता है जो पीछे की ओर गहरा हो जाता है। इसकी दुम काली और नीली धारियो से भरी रहती है जिसका सिरा सफेद रहता है। डैने काले होते है, जिन पर नीली धारियाँ और सफेद चित्ते पडे रहते है। इसकी चोच गाढे सिलेटी और पैर हल्के सिलेटी रहते है।

गगरा

(TIT)

गगरा को मैदान की चिडिया न कहकर पहाड की चिडिया कहे तो ज्यादा ठीक होगा। यह वैसे तो पहाडो पर ही रहती है लेकिन जाडो में इसके झुड मैदानो मे भी उतर आते है और तब इन्हे मैदान के जगली प्रान्तो मे देखना ज्यादा कठिन नही होता।

गगरा हमारे यहाँ की मौसमी चिडिया है जो जाडो मे हमारे यहाँ आकर जाडे के अन्त में फिर उत्तर पहाडो की ओर लौट जाती है, लेकिन बत्तखो की तरह हय हमारा देश छोड कर पहाडो के उस पार न जाकर सदा यही रहती है।

गगरा

गगरा प्राय अकेली ही देखी जाती है, लेकिन इसे जोडे में भी देखना कठिन नही। यह पेड पर रहनेवाली चिडिया है जो अपना अधिक समय पेडो और झाडियो पर चक्कर लगाने मे ही बिता देती है लेकिन कीडे-मकोडो की तलाश मे इसे हम कभी-कभी जमीन पर भी देख सकते है।

गगरा चार पाँच इच की छोटी-सी चिडिया है जिसके नर और मादा एक रग-रूप के होते है। इसका सिर, गरदन और सीना चमकीले काले रग का होता है। पेट के नीचे भी एक चौडी काली पट्टी रहती है और गाल, गुद्दी और नीचे का हिस्सा सफेद रहता है। ऊपर का सारा हिस्सा राखी या कजई रहता है। इसकी चोच काली और पैर सिलेटी रग के होते है।

गगरा ने जैसी सुन्दर शकल-सूरत पायी है वैसी ही प्यारी टिम्स् टिम्स् की आवाज भी इसे प्रकृति ने दी है। इसके अण्डे देने का समय मार्च से जुलाई तक है जब यह मैदानो से पहाडो की ओर लौट जाती है। वहाँ यह ऊन, बाल, घास और

मुलायम जडो को किमी पेड के खोथे या पहाड की दराज़ मे रखकर अपना मुलायम घोसला वनाती है जिसमे मादा चार–छ अण्डे देती है।

ये अण्डे सफेद होते है जिन पर कत्थई और वैगनी चित्तियाँ पडी रहती है।

काक-परिवार

(FAMILY CARVIDAE)

काक-परिवार मे कौओ के अलावा सव तरह की मुटरियाँ और वनसर्रे भी रखे गये है, क्योकि ये सव रग-रूप मे भिन्न होने पर भी एक ही परिवार के पक्षी है।

ये सव सर्वभक्षी पक्षी है जो प्राय वृक्षो पर रहते है। इनमे कौओ से तो हम सव परिचित ही है। मुटरियो की पोशाक रगीन होती है और उनकी दुम काफी लम्बी रहती है। वनसर्रा भी अपनी सुन्दर पोशाक मे कौओ का भाई-वन्धु नही जान पडता।

ये सव वडी कर्कश वोली वोलते है और इनके तितरे-वितरे, घोसले टहनियो से वडे भद्दे ढग से वनाये जाते है।

इनकी अनेक जातियाँ है लेकिन यहाँ इनमे से कुछ प्रसिद्ध पक्षियो का वर्णन दिया जा रहा है।

वनसर्रा

(BLACK THROATED JAY)

वनसर्रा को पहाडी पक्षी ही कहना उचित होगा। यह सुन्दर पक्षी पश्चिमी हिमालय मे नेपाल तक फैला हुआ है जहाँ इसे पाँच हजार से आठ हजार फुट तक के वीच देखना कठिन नही।

यह हमारे देश का वारहमासी पक्षी है जो वरावर यही रहता है।

वनसर्रा तेरह इच का पक्षी है जिसके नर-मादा एक-जैसे होते है। इसके सिर की टोपी वुलवुलो की तरह काली और चोटीदार रहती है और ठुड्डी और गला काला रहता है। वदन का रग खैरा सिलेटी रहता है जो पीछे की ओर गहरा हो जाता है। इसकी दुम काली और नीली धारियो से भरी रहती है जिसका सिरा सफेद रहता है। डैने काले होते है, जिन पर नीली धारियाँ और सफेद चित्ते पडे रहते है। इसकी चोच गाढे सिलेटी और पैर हल्के सिलेटी रहते है।

गगरा

(TIT)

गगरा को मैदान की चिड़िया न कहकर पहाड की चिड़िया कहे तो ज्यादा ठीक होगा। यह वैसे तो पहाडो पर ही रहती है लेकिन जाडो में इसके झुड मैदानो मे भी उतर आते है और तब इन्हे मैदान के जगली प्रान्तो मे देखना ज्यादा कठिन नही होता।

गगरा हमारे यहाँ की मौसमी चिड़िया है जो जाडो में हमारे यहाँ आकर जाडे के अन्त मे फिर उत्तर पहाडो की ओर लौट जाती है, लेकिन बत्तखो की तरह यह हमारा देश छोड कर पहाडो के उस पार न जाकर सदा यही रहती है।

गगरा

गगरा प्राय अकेली ही देखी जाती है, लेकिन इसे जोडे में भी देखना कठिन नही। यह पेट पर रहनेवाली चिड़िया है जो अपना अधिक समय पेडो और झाडियो पर चक्कर लगाने मे ही बिता देती है लेकिन कीडे-मकोडो की तलाश में इसे हम कभी-कभी जमीन पर भी देख सकते है।

गगरा चार पाँच इच की छोटी-सी चिड़िया है जिसके नर और मादा एक रग-रूप के होते है। इसका सिर, गरदन और सीना चमकीले काले रग का होता है। पेट के नीचे भी एक चौडी काली पट्टी रहती है और गाल, गुद्दी और नीचे का हिस्सा सफेद रहता है। ऊपर का सारा हिस्सा राखी या कजई रहता है। इसकी चोच काली और पैर सिलेटी रग के होते है।

गगरा ने जैसी सुन्दर शकल-सूरत पायी है वैसी ही प्यारी टिस्स् टिस्स् की आवाज भी इसे प्रकृति ने दी है। इसके अण्डे देने का समय मार्च से जुलाई तक है जब यह मैदानो से पहाडो की ओर लौट जाती है। वहाँ यह ऊन, बाल, घास और

मुलायम जडो को किमी पेड के खोथे या पहाड की दराज मे रखकर अपना मुलायम घोसला बनाती है जिसमे मादा चार–छ अण्डे देती है।

ये अण्डे सफेद होते है जिन पर कत्थई और बैंगनी चित्तियाँ पडी रहती है।

काक-परिवार

(FAMILY CARVIDAE)

काक-परिवार मे कौओ के अलावा सब तरह की मुटरियाँ और वनसर्रे भी रखे गये है, क्योकि ये सब रग-रूप मे भिन्न होने पर भी एक ही परिवार के पक्षी है।

ये सब सर्वभक्षी पक्षी है जो प्राय वृक्षो पर रहते है। इनमे कौओ से तो हम सब परिचित ही है। मुटरियो की पोशाक रगीन होती है और उनकी दुम काफी लम्बी रहती है। वनसर्रा भी अपनी सुन्दर पोशाक मे कौओ का भाई-बन्धु नही जान पडता।

ये सब बडी कर्कश बोली बोलते है और इनके तितरे-बितरे, घोसले टहनियो से बडे भद्दे ढग से बनाये जाते है।

इनकी अनेक जातियाँ है लेकिन यहाँ इनमे से कुछ प्रसिद्ध पक्षियो का वर्णन दिया जा रहा है।

वनसर्रा

(BLACK THROATED JAY)

वनसर्रा को पहाडी पक्षी ही कहना उचित होगा। यह सुन्दर पक्षी पश्चिमी हिमालय से नेपाल तक फैला हुआ है जहाँ इसे पाँच हजार से आठ हजार फुट तक के बीच देखना कठिन नही।

यह हमारे देश का बारहमासी पक्षी है जो बराबर यही रहता है।

वनसर्रा तेरह इच का पक्षी है जिसके नर-मादा एक-जैसे होते है। इसके सिर की टोपी बुलबुलो की तरह काली और चोटीदार रहती है और ठुड्डी और गला काला रहता है। बदन का रग भैरा सिलेटी रहता है जो पीछे की ओर गहरा हो जाता है। इसकी दुम काली और नीली धारियो से भरी रहती है जिसका सिरा सफेद रहता है। डैने काले होते है, जिन पर नीली धारियाँ और सफेद चित्ते पडे रहते है। इसकी चोच गाढे सिलेटी और पैर हलके सिलेटी रहते है।

गगरा

(TIT)

गगरा को मैदान की चिडिया न कहकर पहाड की चिडिया कहे तो ज्यादा ठीक होगा। यह वैसे तो पहाडो पर ही रहती है लेकिन जाडो में इसके झुड मैदानो मे भी उतर आते है और तब इन्हे मैदान के जगली प्रान्तो मे देखना ज्यादा कठिन नही होता।

गगरा हमारे यहाँ की मौसमी चिडिया है जो जाडो में हमारे यहाँ आकर जाडे के अन्त मे फिर उत्तर पहाडो की ओर लौट जाती है, लेकिन बत्तखो की तरह यह हमारा देश छोड कर पहाडो के उस पार न जाकर सदा यही रहती है।

गगरा

गगरा प्राय अकेली ही देखी जाती है, लेकिन इसे जोडे में भी देखना कठिन नही। यह पेड पर रहनेवाली चिडिया है जो अपना अधिक समय पेडो और झाडियो पर चक्कर लगाने मे ही बिता देती है लेकिन कीडे-मकोडो की तलाश मे इसे हम कभी-कभी जमीन पर भी देख सकते है।

गगरा चार पाँच इच की छोटी-सी चिडिया है जिसके नर और मादा एक रग-रूप के होते है। इसका सिर, गरदन और सीना चमकीले काले रग का होता है। पेट के नीचे भी एक चौडी काली पट्टी रहती है और गाल, गुद्दी और नीचे का हिस्सा सफेद रहता है। ऊपर का सारा हिस्सा राखी या कजई रहता है। इसकी चोच काली और पैर सिलेटी रग के होते है।

गगरा ने जैसी सुन्दर शकल-सूरत पायी है वैसी ही प्यारी टिस्स् टिस्स् की आवाज भी इसे प्रकृति ने दी है। इसके अण्डे देने का समय मार्च से जुलाई तक है जब यह मैदानो से पहाडो की ओर लौट जाती है। वहाँ यह ऊन, बाल, घास और

मुलायम जडो को किमी पेड के खोथे या पहाड की दराज मे रखकर अपना मुलायम घोसला वनाती है जिसमे मादा चार–छ अण्डे देती है।

ये अण्डे सफेद होते हैं जिन पर कत्थई और वैंगनी चित्तियाँ पडी रहती हैं।

काक-परिवार

(FAMILY CARVIDAE)

काक-परिवार मे कौओ के अलावा मव तरह की मुटरियाँ और वनमर्रे भी रखे गये हैं, क्योकि ये सब रग-रूप मे भिन्न होने पर भी एक ही परिवार के पक्षी है।

ये सब सर्वभक्षी पक्षी हैं जो प्राय वृक्षो पर रहते है। इनमे कौओ मे तो हम सब परिचित ही हैं। मुटरियो की पोशाक रगीन होती है और उनकी दुम काफी लम्बी रहती है। वनमर्रा भी अपनी सुन्दर पोशाक मे कौओ का भाई-बन्धु नही जान पडता।

ये सब वडी कर्कश वोली वोलते है और इनके तिनरे-वितरे, घोमले टहनियो से वडे भद्दे ढग से वनाये जाते है।

इनकी अनेक जातियाँ हैं लेकिन यहाँ इनमे से कुछ प्रसिद्ध पक्षियो का वर्णन दिया जा रहा है।

वनसर्रा

(BLACK THROATED JAY)

वनसर्रा को पहाडी पक्षी ही कहना उचित होगा। यह सुन्दर पक्षी पश्चिमी हिमालय मे नेपाल तक फैला हुआ है जहाँ इसे पाँच हजार से आठ हजार फुट तक के वीच देखना कठिन नही।

यह हमारे देश का वारहमासी पक्षी है जो वरावर यही रहता है।

वनसर्रा तेरह इच का पक्षी है जिसके नर-मादा एक-जैसे होते है। इसके सिर की टोपी वुलवुलो की तरह काली और चोटीदार रहती है और ठुड्डी और गला काला रहता है। वदन का रंग भैरा सिलेटी रहता है जो पीछे की ओर गहरा हो जाता है। इसकी दुम काली और नीली धारियो से भरी रहती है जिसका सिरा सफेद रहता है। डैने काले होते हैं, जिन पर नीली धारियाँ और सफेद चित्ते पडे रहते हैं। इसकी चोच गाढे सिलेटी और पैर हल्के सिलेटी रहते है।

गगरा

(TIT)

गगरा को मैदान की चिडिया न कहकर पहाड की चिडिया कहे तो ज्यादा ठीक होगा। यह वैसे तो पहाडो पर ही रहती है लेकिन जाडो मे इसके झुड मैदानो मे भी उतर आते है और तब इन्हे मैदान के जगली प्रान्तो मे देखना ज्यादा कठिन नही होता।

गगरा हमारे यहाँ की मौसमी चिडिया है जो जाडो मे हमारे यहाँ आकर जाडे के अन्त मे फिर उत्तर पहाडो की ओर लौट जाती है, लेकिन बत्तखो की तरह यह हमारा देश छोड कर पहाडो के उस पार न जाकर सदा यही रहती है।

गगरा

गगरा प्राय अकेली ही देखी जाती है, लेकिन इसे जोडे मे भी देखना कठिन नही। यह पेड पर रहनेवाली चिडिया है जो अपना अधिक समय पेडो और झाडियो पर चक्कर लगाने मे ही बिता देती है लेकिन कीडे-मकोडो की तलाश मे इसे हम कभी-कभी जमीन पर भी देख सकते है।

गगरा चार पाँच इच की छोटी-सी चिडिया है जिसके नर और मादा एक रग-रूप के होते है। इसका सिर, गरदन और सीना चमकीले काले रग का होता है। पेट के नीचे भी एक चौडी काली पट्टी रहती है और गाल, गुद्दी और नीचे का हिस्सा सफेद रहता है। ऊपर का सारा हिस्सा राखी या कजई रहता है। इसकी चोंच काली और पैर मिलेटी रग के होते है।

गगरा ने जैसी सुन्दर शकल-सूरत पायी है वैसी ही प्यारी टिस्स् टिस्स् की आवाज भी इसे प्रकृति ने दी है। इसके अण्डे देने का समय मार्च से जुलाई तक है जब यह मैदानो से पहाडो की ओर लौट जाती है। वहाँ यह ऊन, बाल, घास और

मुलायम जडो को किसी पेड के खोथे या पहाड की दराज मे रखकर अपना मुलायम घोसला वनाती है जिसमे मादा चार–छ अण्डे देती है।

ये अण्डे सफेद होते हैं जिन पर कत्थई और वैगनी चित्तियाँ पडी रहती हैं।

काक-परिवार

(FAMILY CARVIDAE)

काक-परिवार मे कौओ के अलावा सव तरह की मुटरियाँ और वनसर्रे भी रखे गये है, क्योकि ये सव रग-रूप मे भिन्न होने पर भी एक ही परिवार के पक्षी हैं।

ये सव सर्वभक्षी पक्षी हैं जो प्राय वृक्षो पर रहते है। इनमे कौओ मे तो हम सव परिचित ही हैं। मुटरियो की पोशाक रगीन होती है और उनकी दुम काफी लम्वी रहती है। वनसर्रा भी अपनी सुन्दर पोशाक से कौओ का भाई-वन्धु नही जान पडता।

ये सव वडी कर्कश वोली वोलते हैं और इनके तितरे-वितरे, घोसले टहनियो से वडे भद्दे ढंग से वनाये जाते हैं।

इनकी अनेक जातियाँ हैं लेकिन यहाँ इनमे से कुछ प्रसिद्ध पक्षियो का वर्णन दिया जा रहा है।

वनसर्रा

(BLACK THROATED JAY)

वनसर्रा को पहाडी पक्षी ही कहना उचित होगा। यह सुन्दर पक्षी पश्चिमी हिमालय से नेपाल तक फैला हुआ है जहाँ इसे पाँच हजार से आठ हजार फुट तक के वीच देखना कठिन नही।

यह हमारे देश का वारहमासी पक्षी है जो वरावर यही रहता है।

वनसर्रा तेरह इच का पक्षी है जिसके नर-मादा एक-जैसे होते हैं। इसके सिर की टोपी वुलवुलो की तरह काली और चोटीदार रहती है और ठुड्ढी और गला काला रहता है। वदन का रग गैरा सिलेटी रहता है जो पीछे की ओर गहरा हो जाता है। इसकी दुम काली और नीली धारियो से भरी रहती है जिसका सिरा सफेद रहता है। डैने काले होते हैं, जिन पर नीली धारियाँ और सफेद चित्ते पडे रहते हैं। इसकी चोच गाढे सिलेटी और पैर हल्के सिलेटी रहते हैं।

गगरा

(TIT)

गगरा को मैदान की चिडिया न कहकर पहाड की चिडिया कहे तो ज्यादा ठीक होगा। यह वैसे तो पहाडो पर ही रहती है लेकिन जाडो में इसके झुड मैदानो में भी उतर आते है और तब इन्हे मैदान के जगली प्रान्तो मे देखना ज्यादा कठिन नही होता।

गगरा हमारे यहाँ की मौसमी चिडिया है जो जाडो मे हमारे यहाँ आकर जाडे के अन्त मे फिर उत्तर पहाडो की ओर लौट जाती है, लेकिन बत्तखो की तरह यह हमारा देश छोड कर पहाडो के उस पार न जाकर सदा यही रहती है।

गगरा

गगरा प्राय अकेली ही देखी जाती है, लेकिन इसे जोडे मे भी देखना कठिन नही। यह पेड पर रहनेवाली चिडिया है जो अपना अधिक समय पेडो और झाडियो पर चक्कर लगाने में ही बिता देती है लेकिन कीडे-मकोडो की तलाश में इसे हम कभी-कभी जमीन पर भी देख सकते है।

गगरा चार पाँच इच की छोटी-सी चिडिया है जिसके नर और मादा एक रग-रूप के होते है। इसका सिर, गरदन और सीना चमकीले काले रग का होता है। पेट के नीचे भी एक चौडी काली पट्टी रहती है और गाल, गुद्दी और नीचे का हिस्सा सफेद रहता है। ऊपर का सारा हिस्सा राखी या कजई रहता है। इसकी चोच काली और पैर सिलेटी रग के होते हैं।

गगरा ने जैसी सुन्दर शकल-सूरत पायी है वैसी ही प्यारी टिस्म् टिस्स् की आवाज भी इसे प्रकृति ने दी है। इसके अण्डे देने का समय मार्च से जुलाई तक है जब यह मैदानो से पहाडो की ओर लौट जाती है। वहाँ यह ऊन, बाल, घास और

मुलायम जडो को किसी पेड के खोथे या पहाड की दराज़ मे रखकर अपना मुलायम घोसला बनाती है जिसमे मादा चार–छ अण्डे देती है।

ये अण्डे सफेद होते हैं जिन पर कत्थई और बैंगनी चित्तियाँ पडी रहती हैं।

काक-परिवार

(FAMILY CARVIDAE)

काक-परिवार मे कौओ के अलावा सब तरह की मुटरियाँ और बनसर्रे भी रखे गये हैं, क्योकि ये सब रग-रूप मे भिन्न होने पर भी एक ही परिवार के पक्षी हैं।

ये सब सर्वभक्षी पक्षी हैं जो प्राय वृक्षो पर रहते हैं। इनमे कौओ से तो हम सब परिचित ही हैं। मुटरियो की पोशाक रगीन होती है और उनकी दुम काफी लम्बी रहती है। बनसर्रा भी अपनी सुन्दर पोशाक मे कौओ का भाई-बन्धु नही जान पडता।

ये सब बडी कर्कश बोली बोलते हैं और इनके तितरे-बितरे, घोसले टहनियो से बडे भद्दे ढग से बनाये जाते हैं।

इनकी अनेक जातियाँ हैं लेकिन यहाँ इनमे से कुछ प्रसिद्ध पक्षियो का वर्णन दिया जा रहा है।

बनसर्रा

(BLACK THROATED JAY)

बनसर्रा को पहाडी पक्षी ही कहना उचित होगा। यह सुन्दर पक्षी पश्चिमी हिमालय से नेपाल तक फैला हुआ है जहाँ इसे पाँच हजार से आठ हजार फुट तक के बीच देखना कठिन नही।

यह हमारे देश का बारहमासी पक्षी है जो बराबर यहीं रहता है।

बनसर्रा तेरह इच का पक्षी है जिसके नर-मादा एक-जैसे होते हैं। इसके सिर की टोपी बुलबुलो की तरह काली और चोटीदार रहती है और ठुड्ढी और गला काला रहता है। बदन का रग खैरा सिलेटी रहता है जो पीछे की ओर गहरा हो जाता है। इसकी दुम काली और नीली धारियो से भरी रहती है जिसका सिरा सफेद रहता है। डैने काले होते हैं, जिन पर नीली धारियाँ और सफेद चित्ते पडे रहते हैं। इसकी चोच गाढे सिलेटी और पैर हल्के सिलेटी रहते हैं।

गगरा

(TIT)

गगरा को मैदान की चिडिया न कहकर पहाड की चिडिया कहे तो ज्यादा ठीक होगा। यह वैसे तो पहाडो पर ही रहती है लेकिन जाडो में इमके झुड मैदानो मे भी उतर आते है और तव इन्हे मैदान के जगली प्रान्तो मे देखना ज्यादा कठिन नही होता।

गगरा हमारे यहाँ की मौसमी चिडिया है जो जाडो मे हमारे यहाँ आकर जाडे के अन्त मे फिर उत्तर पहाडो की ओर लौट जाती है, लेकिन वत्तखो की तरह हय हमारा देश छोड कर पहाडो के उम पार न जाकर सदा यही रहती है।

गगरा

गगरा प्राय अकेली ही देखी जाती है, लेकिन इसे जोडे में भी देखना कठिन नही। यह पेड पर रहनेवाली चिडिया है जो अपना अधिक समय पेडो और झाडियो पर चक्कर लगाने में ही विता देती है लेकिन कीडे-मकोडो की तलाश में इसे हम कभी-कभी जमीन पर भी देख सकते है।

गगरा चार पाँच इच की छोटी-सी चिडिया है जिसके नर और मादा एक रग-रूप के होते है। इसका सिर, गरदन और सीना चमकीले काले रग का होता है। पेट के नीचे भी एक चौडी काली पट्टी रहती है और गाल, गुद्दी और नीचे का हिस्सा सफेद रहता है। ऊपर का सारा हिस्सा राखी या कजई रहता है। इसकी चोच काली और पैर सिलेटी रग के होते है।

गगरा ने जैमी सुन्दर शकल-सूरत पायी है वैसी ही प्यारी टिस्म् टिम्स् की आवाज भी इसे प्रकृति ने दी है। इसके अण्डे देने का समय मार्च से जुलाई तक है जव यह मैदानो से पहाडो की ओर लौट जाती है। वहाँ यह ऊन, वाल, घास और

मुलायम जडो को किसी पेड के खोथे या पहाड की दराज मे रखकर अपना मुलायम घोसला बनाती है जिसमे मादा चार-छ अण्डे देती है।

ये अण्डे सफेद होते हैं जिन पर कत्थई और बैंगनी चित्तियाँ पडी रहती हैं।

काक-परिवार

(FAMILY CARVIDAE)

काक-परिवार मे कौओ के अलावा सब तरह की मुटरियाँ और बनसर्रे भी रखे गये है, क्योकि ये सब रग-रूप मे भिन्न होने पर भी एक ही परिवार के पक्षी हैं।

ये सब सर्वभक्षी पक्षी हैं जो प्राय वृक्षो पर रहते हैं। इनमे कौओ से तो हम सब परिचित ही हैं। मुटरियो की पोशाक रगीन होती है और उनकी दुम काफी लम्बी रहती है। बनसर्रा भी अपनी सुन्दर पोशाक मे कौओ का भाई-बन्धु नही जान पडता।

ये सब बडी कर्कश बोली बोलते हैं और इनके तितरे-बितरे, घोसले टहनियो से बडे भद्दे ढग से बनाये जाते हैं।

इनकी अनेक जातियाँ हैं लेकिन यहाँ इनमे से कुछ प्रसिद्ध पक्षियो का वर्णन दिया जा रहा है।

बनसर्रा

(BLACK THROATED JAY)

बनसर्रा को पहाडी पक्षी ही कहना उचित होगा। यह सुन्दर पक्षी पश्चिमी हिमालय से नेपाल तक फैला हुआ है जहाँ इसे पाँच हजार से आठ हजार फुट तक के बीच देखना कठिन नही।

यह हमारे देश का बारहमासी पक्षी है जो बराबर यही रहता है।

बनसर्रा तेरह इच का पक्षी है जिसके नर-मादा एक-जैसे होते हैं। इसके सिर की टोपी बुलबुलो की तरह काली और चोटीदार रहती है और ठुड्डी और गला काला रहता है। बदन का रग गैरा सिलेटी रहता है जो पीछे की ओर गहरा हो जाता है। इसकी दुम काली और नीली धारियो से भरी रहती है जिसका सिरा सफेद रहता है। डैने काले होते हैं, जिन पर नीली धारियाँ और सफेद चित्ते पडे रहते हैं। इसकी चोच गाढे सिलेटी और पैर हल्के सिलेटी रहते हैं।

गगरा

(TIT)

गगरा को मैदान की चिडिया न कहकर पहाड की चिटिया कहें तो ज्यादा ठीक होगा। यह वैसे तो पहाडो पर ही रहती है लेकिन जाडो में इसके झुड मैदानो में भी उतर आते है और तब इन्हे मैदान के जगली प्रान्तो मे देखना ज्यादा कठिन नही होता।

गगरा हमारे यहाँ की मौसमी चिडिया है जो जाडो में हमारे यहाँ आकर जाडे के अन्त मे फिर उत्तर पहाडो की ओर लौट जाती है, लेकिन वत्तखो की तरह हय हमारा देश छोड कर पहाडो के उस पार न जाकर सदा यही रहती है।

गगरा

गगरा प्राय अकेली ही देखी जाती है, लेकिन इसे जोडे में भी देखना कठिन नही। यह पेड पर रहनेवाली चिडिया है जो अपना अधिक समय पेडो और झाडियो पर चक्कर लगाने मे ही विता देती है लेकिन कीडे-मकोडो की तलाश मे इसे हम कभी-कभी जमीन पर भी देख सकते है।

गगरा चार पाँच इच की छोटी-सी चिडिया है जिसके नर और मादा एक रग-रूप के होते है। इसका सिर, गरदन और सीना चमकीले काले रग का होता है। पेट के नीचे भी एक चौडी काली पट्टी रहती है और गाल, गुद्दी और नीचे का हिस्सा सफेद रहता है। ऊपर का सारा हिस्सा राखी या कजई रहता है। इसकी चोच काली और पैर सिलेटी रग के होते हैं।

गगरा ने जैसी सुन्दर शकल-सूरत पायी है वैसी ही प्यारी टिस्स् टिस्स् की आवाज भी इसे प्रकृति ने दी है। इसके अण्डे देने का समय मार्च से जुलाई तक है जव यह मैदानो से पहाडो की ओर लौट जाती है। वहाँ यह ऊन, वाल, घास और

एक फुट लम्बी होती है। इसके नर और मादा एक शकल के होते हैं। इसका सिर, गरदन और सीना काला और बाकी हिस्सा कत्थई होता है। पंख और

मुटरी

दुम स्याही लिये हुए सफेद होती है जिसका आखिरी हिस्सा घुर काला रहता है। इसकी चोंच सिलेटी और पैर गहरे भूरे रंग के होते हैं।

मुटरी कौए की तरह चोर और सर्वभक्षी चिड़िया है जिससे फल-फूल, कीड़े,

वनसर्रा वैसे तो पाँच-छ के छोटे गरोहो में रहता है, लेकिन जोडा बाँध लेने पर यह अक्सर जोडे मे ही दिखाई पडता है। यह इतना शोर मचाता है कि जी ऊव जाता है। इसकी वोली वहुत कर्कश होती है। इसका मुख्य भोजन कीडे-मकोडे, फल-फूल और वीज है। यह वैसे तो जगल का पक्षी है, लेकिन गरमियो मे जव यह नीचे उतर आता है तो इसे वाग और वस्तियो मे भी देखा जा सकता है।
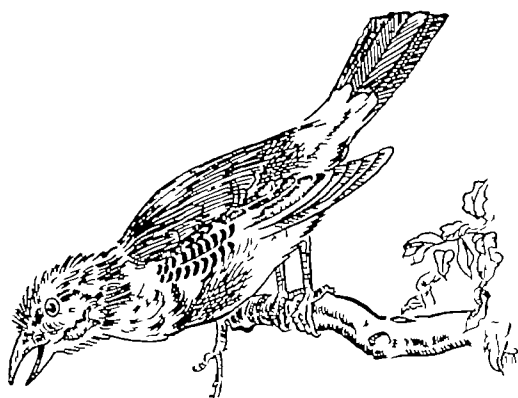
वनसर्रा

वनसर्रा के अण्डा देने का समय अप्रैल से जून तक रहता है जव यह टहनियो और जडो आदि से अपना मामूली-सा घोसला वनाता है जो किसी घनी झाडी या पेड पर वहुत कम ऊँचाई पर रखा रहता है। मादा इसीमे चार-पाँच अण्डे देती है जो पत्थरी या हरछौंह सफेद रहते हैं और जिन पर गाढी भूरी चित्तियाँ पडी रहती है।

मुटरी

(MAGPIE)

मुटरी को कौओ का निकट सम्वन्धी कहना अनुचित न होगा। शकल-सूरत और रग-रूप में कौए से भिन्न होते हुए भी यह चालाकी और चोरी में उससे आगे रहती है। इसकी लम्वी दुम के कारण हमे इसे पहचानने मे जरा भी कठिनाई नही होती। इसको कही-कही रुकमिनी और कही-कही महताव भी कहते हैं।

चालाकी में मुटरी कौए से भले ही कुछ कम मानी जाय, पर चोरी मे यह उससे भी आगे है। अपनी लम्वी दुम के कारण यह जमीन पर नही वैठती, पर इसे किसी ऊँची जगह पर वैठकर चोर की तरह ताकते हुए वडी आसानी से देखा जा सकता है।

मुटरी यहाँ की वारहमासी चिडिया है जिसका कद अट्ठाइस इच का और दुम

सत्रह इंच लम्बा और बडा २४ इंच तक का होता है। दोनो के रंग-रूप मे फर्क जरूर रहता है, लेकिन दोनो की आदत एक-जैसी ही होती है।

काला कौआ धुर काला और चमकीला होता है जिसके पैर काले होते है। इसके नर-मादा एक शकल के होते है। इसको डोम कौआ भी कहते है। छोटे कौए की चोच और पैर बडे कौए की तरह काली होने पर भी उसके बदन का रंग कुछ दूसरा ही होता है। इसकी गरदन से लेकर सीने तक सिलेटी रंग की चौडी पट्टी होती है। बाकी रंग काला रहता है। इसके भी नर-मादा एक ही शकल के होते है। इसे देहातो के लोग 'नौआ-कौआ' के नाम से बहुधा पुकारते है।

डोम कौआ के अण्डे देने का समय फरवरी तक और नौआ कौआ का जून तक
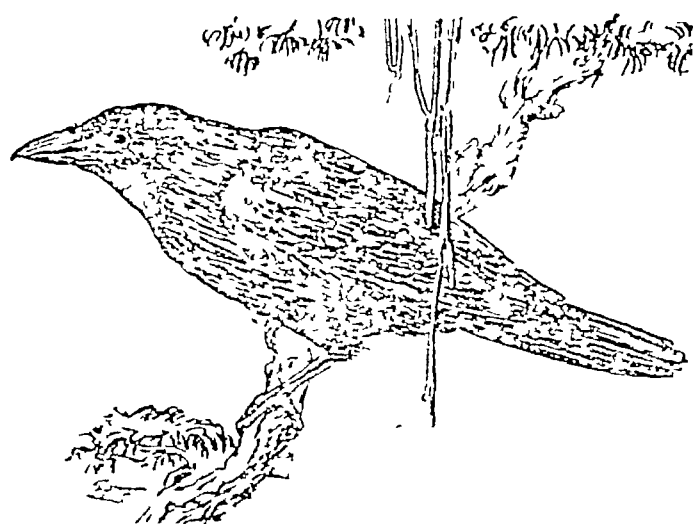
नौआ कौआ

रहता है। ये दोनो किसी पेड की ऊँची डाल पर भद्दा-सा घोसला बनाते है जिसका भीतरी हिस्सा बाल वगैरह लगाकर मुलायम कर लिया जाता है।

समय आने पर मादा चार से छ तक अण्डे देती है जिनका रंग नीलापन लिये हरा होता है और जिन पर प्राय भूरे चित्ते पडे रहते है।

पतिंगे, और छिपकली आदि कुछ नही वचता। खुश रहने पर यह जरूर मीठी वोली वोलती है, पर गुस्सा हो जाने पर इतना शोर मचाती है कि जी ऊव जाता है।

मुटरी के अण्डे देने का समय तो फरवरी से अगस्त तक है, लेकिन इसके घोसले ज्यादातर अप्रैल से जून तक देखने को मिलते है जव किसी ऊँचे पेड पर यह भी कौए की तरह भद्दा-सा घोसला वनाती है। घोंसले का भीतरी हिस्सा ऊन तथा वाल आदि से मुलायम कर लिया जाता है जिसमे मादा चार-पांच अण्डे देती है। इसके अण्डे कभी ऊदे और कभी मटमैले होते है जिन पर लाल, वादामी, वैगनी और हरे चित्ते पडे रहते हैं।

कौआ

(CROW)

कौए से ऐसा कौन है जो परिचित न होगा ? कोई वस्ती, वाग या घर शायद ही ऐसा हो जहाँ सवेरा होते ही ये न पहुँच जाते हों। गौरैयो की तरह कौए भी आदमियो में इतने हिलमिल गये है कि एक तरह से ये हमारे घर के प्राणी ही जान पडते है। लेकिन ये गौरैयो की तरह सीधे नही होते। इनसे तो परेशान हो जाना पडता है। सर्वभक्षी होने के कारण यह मुमकिन नही कि कोई खाने-पीने की चीज इनके चोच मारनेसे वच जाय। चोरी और ढिठाई के साथ ये मक्कार भी परले सिरे के होते है। इससे मनुष्यो को इनके हमलो से हमेशा सतर्क ही रहना पडता है।
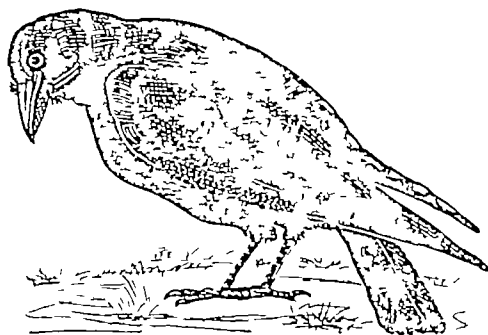
काला कौआ

कौआ यही का वारहो महीने रहनेवाला पक्षी है जो ज्यादातर आवादी के निकट ही रहता है। यह हमारे देश में प्राय सभी स्थानो में पाया जाता है और पहाडो पर भी यह चार-पाँच हजार फुट की ऊँचाई तक दिखाई पडता है। इसकी दो मुख्य जातियाँ है। एक मामूली छोटा कौआ, और दूसरा वडा या काला कौआ। छोटा कौआ

(Theromorph) नाम के सरीसृप से हुआ जो कुत्ते की शकल का था। प्रारम्भिक काल के स्तनप्राणियो के जो पथराये ककाल (Fossils) मिले है उनमे यही पता चलता है कि वे छोटे कद के जीव थे। उनमे अधिक सख्या तो उन्ही की है जो चूहे के बराबर थे और कुछ ऐसे भी थे जिनका कद चूहो से भी छोटा था। उनमे जो बडे-से-बडे थे, वे भी खरगोश से बडे नही थे।

स्तनप्राणियो के इन छोटे कद के पूर्वजो मे जो चूहे के बराबर थे उन्ही को बढने का अधिक अवसर मिला क्योकि वे मास-भक्षी सरीसृपो की निगाह तले जल्द नही पडते थे और उन्हे जिन्दा रहने के लिए थोडे ही भोजन की आवश्यकता थी। वे सम्भवत फल-फूल, पत्ती, जडे और कीडे-मकोडो से अपना पेट भरते थे और डकबिल्ड तथा एकिडना की तरह अण्डे देते थे। वे अपने अण्डो को तो गहरे बिलो मे रखते थे जहाँ सरीसृपो की पहुँच नही रहती थी, लेकिन सरीसृपो के अण्डो को इनके द्वारा बहुत नुकसान पहुँचता था। इस प्रकार बडे सरीसृपो की सख्या दिन प्रतिदिन घटने लगी और ये छोटे जीव दिन दूने रात चौगुने बढने लगे।

इधर धीरे-धीरे पृथ्वी की आवहवा ठढी और खुश्क होने लगी और उस पर खूराक की कमी होने लगी जिसके कारण जीवन का सघर्ष बहुत बढ गया। बडे-बडे भीमकाय सरीसृप जो बाल और समर से रहित थे, भीषण सरदी के कारण अपने शरीर के तापमान का सतुलन कायम न रख सके। इसका फल यह हुआ कि ये बहुत काहिल और सुस्त हो गये और उनका एक स्थान से दूसरे स्थान को जाना असम्भव हो गया। भोजन की कमी, भीषण सरदी और विशाल शरीर के कारण वे एक ही स्थान पर घिर कर दुश्मनो के शिकार हो गये और उनका पृथ्वी पर कोई नामलेवा न रह गया।

दूसरी ओर प्रारम्भिक स्तनप्राणी, जो कद मे बहुत छोटे थे, अपनी फुर्ती के कारण बडी आसानी से दुश्मनो से छिप सकते थे। उन्होने अपने शरीर पर बालो का विकास कर लिया। इससे उन्हे ठढ की भी ज्यादा परवाह न रही। गरम खून के प्राणी होने के कारण उनके शरीर का तापमान सरीसृपो की तरह पास-पडोस के अनुसार न घट-बढकर सदैव एक-जैसा रहता था। इन सब सहूलियतो के कारण यह अनुमान करना कठिन न था कि प्रकृति इन भीमकाय सरीसृपो का समय निकट

खड १४

स्तनप्राणी श्रेणी

(CLASS MAMMILIA)

अपनी पृथ्वी की आयु का हमे अभी तक ठीक-ठीक पता नही चल सका है, लेकिन इस विपय के विद्वान् लोग इसकी उम्र डेढ अरब से लेकर तीन अरब वर्पो के बीच की बताते है। यदि हम इसकी उम्र दो अरब वर्पो की मान लें तो खुश्की पर रहने-वाले मेरुदडी जीवो का समय लगभग ३३ करोड वर्पो का ठहरता है और इस हिसाब से स्तन-प्राणियो और चिडियो का काल आज से लगभग १५ करोड वर्पो का होता है। इसी हिसाब से जब हम मनुष्यो के बारे में जोडते है तो यह पता चलता है कि उसको वनमानुपो के पूर्वजो से अलग हुए तो लगभग एक करोड वर्प हो गये है, लेकिन उसे मनुष्यो के अनुरूप हुए अभी दस लाख वर्प भी नही हो पाये है। पूर्णरूप से मनुष्य होकर तो उसने अभी लगभग बीस हजार वर्प ही बिताये है।

इतना तो हम सब जानते ही है कि स्तन-प्राणी अन्य सभी जीवो से अधिक विकसित जीव है। उनके शरीर पर बाल या समूर रहते है और उनकी अपने शिशुओ को स्तन मे दूध पिलाने की विशेपता ही के कारण उन्हें स्तनप्राणी या स्तनपायी जीव कहा जाता है। डकबिल्ड प्लैटीपस और एकिडना को छोडकर बाकी सभी स्तन-प्राणी अण्डे की जगह बच्चे जनते है और चिडियो की तरह अपने शिशुओ का बहुत ध्यान रखते है।

चिडियो की तरह स्तन-प्राणियो के भी पूर्वज सरीसृप ही थे और उन्ही से क्रमिक विकास करके आज वे स्तन-प्राणियो की अवस्था को पहुँचे है।

सरीसृप युग के अन्तिम चरण में प्रारम्भिक स्तनप्राणी अपना रूप परिवर्तित करने लगे और ऐसा अनुमान किया जाता है कि उनका यह विकास 'थेरोमार्फ'

भोजन के इन मुख्य भेद के कारण स्तनप्राणियो का वडा परिवार दो भागो मे बँट गया है और इम भेद के कारण इन दोनो प्रकार के जीवो के शरीर के भीतरी और वाहरी स्वरूप मे भी विभिन्नता आ गयी है। शाकाहारी जीवो का शरीर जहाँ ढोलक की तरह लम्बा और गोलाकार होता है, वही मासाहारी जीव छरहरे वदन के होते है। इसका कारण यही है कि मामभक्षी जीवो का भोजन वहुत पोपक और शीघ्र पच जानेवाला होता है और उन्हे न तो ज्यादा खूराक की ही आवश्यकता होती है और न उमे पचाने के लिए लम्बी अँतडियो की ही, लेकिन दूसरी ओर शाक-पात के आहार मे थोडा ही पोपक पदार्थ निकलता है, शाकाहारी जीवो को अधिक मात्रा में खाना पडता है और उमको पचाने के लिए उन्हें काफी लम्वी अँतडियो की आवश्यकता पडती है। इन लम्वी अँतडियो के कारण उनका शरीर चारो ओर फैलकर गोलाकार हो जाता है और वह माम-भक्षियो के शरीर की तरह सुडौल नही रहता।

इन जीवो के दाँत, थूथन, जवान और पैर आदि अवयव इनकी भिन्न-भिन्न खूराक को देखते हुए अलग-अलग शकल के होते है। और उनके द्वारा हमे इन जीवो के आहार का वहुत कुछ पता चल जाता है। छछूदर आदि कीटभक्षी जीवो का थूथन जहाँ लम्बा और नुकीला होता है, वही चीटीखोर की जवान इतनी लम्वी होती है कि वह उसे दीमको के विल मे डालकर सैकडो दीमको को एक साथ चिपका लेता है। मामभक्षी जीवो के दांत और पजे वहुत नुकीले और मजवूत होते है जिनसे उन्हे अपने शिकार को पकडने मे वहुत आमानी हो जाती है। उनके दाँत भी शाकाहारियो के दांत से भिन्न रहते है और उनके पीछे की ओर पीमनेवाली दाढो के स्थान पर तेज और नुकीले दात रहते है जिनसे वे आमानी से मास को काट सकते है। उनके वगल के कुकुरदन्त भी वहुत तेज होते है जिनसे ये अपना शिकार पकडते है। सुअर के ये ही दाँत वढकर वाहर निकल जाते है जिनसे वह अपनी रक्षा की लडाई मे शेर का भी मुकावला कर लेता है।

शाकाहारी जीवो मे कुछ ऐसे भी है जो जुगाली करते है—अर्थात् वे पहले जल्दी-जल्दी घास-पात चरकर किसी निरापद स्थान पर बैठ जाते है और फिर चरी हुई घास को पेट से मुह मे निकालकर दुवारा अच्छी तरह चवाकर निगलते है। इसी कारण इन जीवो की अँतडियाँ वहुत लम्बी होती है। इन जीवो को रोमन्थकारी जीव कहा जाता है। इन्हे जुगाली करने का विकास इसलिए करना पडा कि इनके

देखकर इन छोटे जीवो को पृथ्वी पर आधिपत्य कायम करने के लिए हर प्रकार से सहायक हो रही थी।

कुछ समय और वीतने पर स्तनप्राणियो के इन पूर्वजो ने अण्डे देना वन्द कर दिया जिससे उनकी वशवृद्धि मे जो थोडा-वहुत खतरा शत्रुओ से था वह भी चला गया। वे अण्डे की जगह वच्चे जनने लगे और उनकी माताएँ उन्हे अपने स्तनो से दूध पिलाकर उनका पालन-पोषण करने लगी, जिससे वे शीघ्र ही प्रौढ होकर अपने माता-पिता के अनुरूप होने लगे। स्तन से दूध पिलाने के कारण ही इन जीवो को स्तनप्राणी अथवा स्तनपायी जीव कहा जाने लगा जो इनकी एक विशेषता थी।

प्रारम्भिक स्तनप्राणी एक-दूसरे से वहुत कुछ मिलते-जुलते थे, लेकिन धीरे-धीरे पृथ्वी के जल-थल में जो भौगोलिक परिवर्तन हुए और उसके जलवायु मे जो उतार-चढाव हुए उसके कारण इन स्तनप्राणियो की शकल-सूरत मे ही नही वरन् उनके कद में भी वडा भेद हो गया। लाखो करोडो वर्षो मे थोडा-थोडा विकास करके इनमें से कोई तो हाथी की तरह विशाल शरीरवाले जीव वन गये और कोई अपने शरीर को चूहे से ज्यादा न वढा सके। कुछ स्तन-प्राणी, जो भीमकाय हो गये, अपने स्थूल शरीर के कारण पृथ्वी पर से उसी प्रकार उठ गये जैसे वडे-वडे डाइनासोर सदा के लिए लोप हो गये, लेकिन जिन स्तनप्राणियो ने समय के परिवर्तन के साथ अपना विकास कर लिया, वे सारी पृथ्वी पर फैल गये और उनका इस भूमण्डल पर आधिपत्य हो गया। विकास का यह चक्र आज भी उसी प्रकार अवाध गति से चल रहा है और इस समय के स्तनप्राणी अपने पूर्वजो से कद में धीरे-धीरे वढ रहे है। आज का मनुष्य १,००० वर्ष पहले के मनुष्यो से कद में वडा हो गया है और आगे के करोड दो करोड वर्षो में उसमे और भी न जाने कितने परिवर्तन हो जायँगे, इसमें सन्देह नही।

स्तनप्राणियो के भोजन के सम्वन्ध मे यह जान लेना जरूरी है कि उनमे से अधिकतर तो ऐसे भाग्यशाली है कि उन्हें वारहो महीने भोजन मिल जाता है, लेकिन कुछ ऐसे भी है जिन्हें अपना पेट भरने के लिए कठिन परिश्रम करना पडता है। उनके आहार में भी समता नही है क्योकि उनमें थोडे ही मनुष्यो की तरह शाकाहारी और मासाहारी दोनो है, लेकिन ज्यादा सख्या उन्ही की है जो या तो घास-पात से ही अपना पेट भरते है या केवल मास से ही सन्तुष्ट रहते है।

शिखायुक्त साही

शत्रु इन पर प्राय उसी समय आक्रमण करते थे जब ये चराई में लगे रहते थे। इससे ये अपनी बचत के लिए जल्दी-जल्दी घास चर लेने लगे और फिर किसी निरापद स्थान पर बैठकर अपने अधचरे हुए आहार को मुँह मे लाकर दुबारा चबाकर निगलने लगे।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार की अवस्थाओ के कारण भिन्न-भिन्न प्रकार के स्तनप्राणियो का विकास हुआ और आज हम उनकी तरह-तरह की सूरते तथा अलग-अलग रग-रूप देखते है।

कुछ स्तनप्राणियो ने, जिनके पूर्वज खुश्की पर रहनेवाले जीव थे, अपनी रक्षा के लिए समुद्र की शरण ली, जिनमे हमारे समुद्रो मे रहनेवाली ह्वेल (तिमि) और सूस है। इन जीवो का शरीर लम्बा और सूच्याकार हो गया जिससे मछलियो की भाँति उन्हे भी पानी मे तैरने की सहूलियत हो गयी। उनके हाथ-पाँव और दुम भी मछलियो की तरह सुफनो मे बदल गये जिन्हे देखकर हमे मछलियो का धोखा होने लगा। लेकिन ये पानी मे रहकर भी जलचर न हो सके और न उन्हे मछलियो की तरह अपने गलफडो से पानी मे घुली हुई हवा से साँस लेने की सहूलियत ही प्राप्त हो सकी। वे आज भी हम लोगो की तरह हवा मे अपने फेफडे से साँस लेते है और इसके लिए उन्हे थोडी-थोडी देर पर पानी के बाहर अपना सिर निकालना पडता है। इतना ही नही ये अन्य स्तनप्राणियो की तरह आज भी बच्चे जनते है और उन्हें अपने स्तनो से दूध पिलाते है।

कुछ स्तनप्राणी अपनी रक्षा के लिए हवा मे चिडियो की भाँति उडने लगे जिनमें चमगादड प्रमुख है। वैसे कुछ उडनेवाली गिलहरियाँ भी होती है, लेकिन वे अपने शरीर के दोनों ओर बढी हुई खाल के कारण एक पेड से दूसरे पेड पर हवा मे तैरती हुई चली जाती है जिसे वास्तव मे उडना नही कहा जा सकता। चमगादडो ने हवा मे उडना तो सीख लिया, लेकिन उनके शरीर पर चिडियो की तरह पर का विकास नही हुआ बल्कि उनकी उँगलियाँ ही बढकर उनके शरीर मे ज्यादा लम्बी होकर आपस मे एक प्रकार की झिल्ली से जुड गयी जिनके सहारे वे हवा मे चिडियो की तरह उडने लगे।

कुछ स्तनप्राणी ऐसे भी है जो जमीन के भीतर बिल खोदकर रहते है। इन जीवो का शरीर पतला और लम्बा होता है जिससे वे बिलो में आसानी से घुस सकें।

चूहे, छछूंदर आदि जीव इसी श्रेणी मे आते है। उनकी आँखे छोटी होती है लेकिन वे बिल खोदने मे उस्ताद होते है।

अधिक सख्या उन्ही स्तनप्राणियो की है जो खुश्की पर रहते है और जिन्होने भिन्न-भिन्न तरह के जलवायु, परिस्थितियो तथा पास-पडोस की अवस्था के अनुकूल अपने को बना लिया है। ये जगल-पहाड, रेगिस्तान और बर्फ के मैदानो मे रहकर अपने को वहाँ के अनुकूल बना लेते है। इनमे से कुछ ने तो पेडो पर रहने का अभ्यास कर लिया है और कुछ ऐसे भी है जो पहाड की खोहो और माँदो मे ही अपना समय बिताते है।

स्तनप्राणी रग के मामले मे उतने भाग्यवान नही है जितनी चिडियाँ, तितलियाँ या प्रवाल द्वीप की मछलियाँ है, लेकिन इनमे से बाज-बाज को धारीदार या चित्तीदार पोशाक मिली है जो इनके जगल की धूपछाँह मे छिपने मे बहुत सहायक होती है। बरफ पर रहनेवाले जीवो को जहाँ प्रकृति ने सफेद पोशाक दी है वही घास के मैदान मे रहनेवाले जीव भूरे और जल मे रहनेवाले कलछौंह होते है जिससे वे अपने पास-पडोस के रग मे ऐसे मिल जायँ कि दुश्मनो की निगाह उन पर आसानी से न पड सके।

स्तनप्राणियो के पैर भी उनके पास-पडोस की अवस्था को देखकर ही विकसित हुए है। इनमे ज्यादा सख्या तो उन्ही की है जो अपने चारो पैरो को पृथ्वी पर रखकर चलते है और उन्हे इसीलिए चौपाया कहा जाता है। इन चौपायो मे हाथी आदि कुछ जीव ऐसे है जिनके पैर मे पाँच नाखून होते है, लेकिन गाय, बैल और हिरन आदि जीवो के पैरो मे नाखूनो की जगह खुर होते है जो बीच से फटे रहते है। घोडे ने तेज रफ्तार के लिए अपने पैरो का और भी अधिक विकास किया है और उसके पैरो मे एक ही नाखून रह गया है जो सुम कहलाता है। अपने इन सुम की सहायता से वह कडी जमीन पर भी बडी तेजी से भाग लेता है। ऊट को ज्यादातर रेगिस्तानो मे ही चलना पडता है, इससे उसके पैर का निचला हिस्सा चौडा और गद्दीदार हो गया है जो बालू मे नही धसता। इसी प्रकार पानी मे तैरनेवाले ऊद आदि प्राणियो के पैर की उँगलियाँ बत्तखो की तरह जालपाद हो गयी है जिससे वे पानी मे आसानी से तैर लेते है।

मासभक्षी जीवो के पैरो मे चार या पाँच उँगलियाँ होती है जिनमे तेज नाखून

सूघने की शक्ति बहुत तेज़ होती है, लेकिन हिरन आदि शाकाहारी जीवो को अपनी प्राण-रक्षा के लिए प्रकृति ने उनमे भी तेज प्राण-शक्ति दी है, नही तो उन्हे अपने दुश्मनो का पता ही न लगे और आक्रमणकारी उनके पास तक पहुँच जायँ। इतना ही नही, उनके कान भी इसीलिए बडे और घूमनेवाले होते है जिनको इधर-उधर घुमाकर वे दूर से ही दुश्मनो की आहट सुन लेते है। इसी प्रकार रात मे उडनेवाले चमगादडो को भी प्रकृति ने लम्बे कान और तेज सुनने की शक्ति दी है।

स्तनप्राणियो का सक्षिप्त वर्णन समाप्त हुआ। अब आगे उनके वर्गीकरण के बारे मे लिखा जा रहा है—

स्तनप्राणी श्रेणी (Class Mammalia) को विद्वानो ने तीन उपश्रेणियो मे इस प्रकार विभाजित किया है—

१—अण्डज-उपश्रेणी

(SUB CLASS PROTOTHERIA)

इस उपश्रेणी मे डक बिल्ड प्लैटीपस (Duck Billed Platypus) तथा एकिडना (Echidna)नाम के दो प्राणी रखे गये है, जो अन्य स्तनप्राणियो की तरह बच्चे न जन कर अण्डे देते है। ये दोनो जीव आस्ट्रेलिया तथा उसके पास के टापुओ पर पाये जाते है।

२—शिशुधानिन-उपश्रेणी

(SUB CLASS METATHERIA)

इस उपश्रेणी के प्राणियो की यह विशेषता होती है कि उनके बच्चे अपरिपक्व अवस्था मे पैदा होते है जिन्हे उनकी माँ अपने पेट के पास की थैली में रख लेती है और उनका मुख अपने स्तन मे लगा देती है। आठ-नौ महीने तक इसी थैली मे रहकर उनके बच्चे परिपक्व होकर बाहर निकलते है।

इस उपश्रेणी का मुख्य प्राणी कगारू है। यह भी आस्ट्रेलिया का निवासी है और वहाँ के अलावा अन्य किसी देश में नही पाया जाता।

३—जरायुधारी-उपश्रेणी

(SUB CLASS EUTHERIA)

तीसरी उपश्रेणी बहुत बडी है जिसमे शेष सब स्तनधारी जीव एकत्र किये गये है। इस उपश्रेणी के प्राणियो की विशेषता यह है कि उनके गर्भस्थ शिशु का

रहते है। ये नाखून वैसे तो भीतर छिपे रहते है, लेकिन जरूरत पडने पर वे उन्हे निकालकर अपना शिकार पकडते है। उनके पैर का निचला हिस्सा गद्देदार होता है जिससे उनके चलने पर वहुत कम आवाज होती है और वे चुपके-चुपके अपने शिकार के निकट तक पहुँच जाते है।

इसी प्रकार सव स्तनप्राणियो ने अपनी सुविधा के लिए अपने हाथ, पाँव और उँगलियो का विकास किया है। तिमि (ह्वेल) आदि जलचारी जीवो के हाथ-पैर जहाँ सुफनो मे वदल गये है वही वन्दरो आदि की उँगलियाँ लम्वी और अलग-अलग रहती है जिनकी सहायता से उन्हे पेडो पर चढने मे आसानी हो जाती है।

स्तनप्राणियो की आँखो की वनावट मे तो ज्यादा भेद नही होता, लेकिन प्रकृति ने उनकी सुविधानुसार उनके स्थान मे कुछ हेर-फेर जरूर कर दिया है। मासभक्षी जीवो की आँखे जहाँ मनुष्यो की तरह उनके सिर मे आगे और वीच मे होती है, वही शाकाहारी जीवो की आँखे उनके सिर के दोनो वगल मे रहती है। इसका कारण यह है कि जहाँ मासभक्षियो को अपने शिकार के लिए सामने और दूर का ध्यान रखना पडता है, वही शाकाहारियो को इन मासभक्षी जीवो के आक्रमण से वचने के लिए वरावर सतर्क होकर इधर-उधर देखना पडता है जिसके लिए सिर के दोनो वगल आँखों का होना उनके लिए वहुत उपयुक्त है।

वाल स्तनप्राणियो की एक विशेपता है। प्राय सभी स्तनप्राणियो के शरीर पर कम या ज्यादा वाल होते है। यहाँ तक कि ह्वेल आदि जल मे रहनेवाले स्तनप्राणी जिन्होने अपने शरीर को धीरे-धीरे मछलियो की तरह चिकना वना लिया है, अपने थूथन पर के थोडे से वालो से छुट्टी नही पा सके है। ये वाल सीग और नाखून की तरह निर्जीव रहते है, लेकिन इनकी जड त्वचा के उस स्थान पर रहती है जहाँ स्पर्श ज्ञान का केन्द्र रहता है। विल्ली और शेर आदि हिसक जीवो की लम्वी मूछे उन्हे रात में चलने मे वहुत सहायता पहुँचाती है, इसी से ये जीव रात मे अपनी मूछो को फैलाकर चलते है क्योकि जिस स्थान से उनकी फैली हुई मूछ विना किसी वस्तु को छुए हुए निकल जाती है वहाँ से उनका सिर और शरीर भी निकल जाता है।

स्तनप्राणियो की सूघने और सुनने की शक्ति के वारे मे कोई एक नियम नही है और सवने अपने आवश्यकतानुसार ही इन शक्तियो का विकास किया है। मासाहारी जीवो की, जिन्हे अपना शिकार पकडकर अपना पेट भरना पडता है,

६—मांसभक्षी वर्ग

(ORDER CARNIVORA)

शफ वर्ग की तरह यह वर्ग भी काफी बड़ा है जिसमें स्थल पर रहनेवाले सब मांसभक्षियों को एकत्र किया गया है। इन सब जीवों के कुकुरदन्त बहुत तेज़ और नोकीले होते हैं। इस वर्ग में शेर, तेंदुए, भेड़िये, कुत्ते, बिल्ली, लोमड़ी, स्यार और ऊद आदि मांसाहारी जीव रखे गये हैं।

७—कीटभक्षी वर्ग

(ORDER INSECTIVORA)

यह वर्ग छोटा है और इसमें सब कीटभक्षी जीवों को रखा गया है। इनकी विशेषता यह है कि ये जमीन में आनन-फानन बिल खोद डालते हैं। इनमें छछूंदर और कांटा चूहा आदि जीव एकत्र किये गये हैं।

८—करपक्ष वर्ग

(ORDER CHIROPTERA)

इस वर्ग में सब प्रकार के छोटे-बड़े मांसभक्षी और शाकाहारी चमगादड़ों को जमा किया गया है जो स्तनप्राणी होकर भी हवा में चिड़ियों की तरह उड़ लेते हैं।

९—वानर वर्ग

(ORDER PRIMATES)

इस वर्ग में सभी प्रकार के बन्दर, लंगूर तथा वनमानुष इकट्ठा किये गये हैं जो मनुष्यों के निकट सम्बन्धी हैं। इन जीवों के हाथ की उंगलियां बहुत विकसित हैं। अन्य जीवों की अपेक्षा ये जीव बुद्धि में सबसे आगे हैं।

अदन्त वर्ग

(ORDER EDENTATA)

इस वर्ग में वैसे तो चींटीखोर और साल आदि पांच परिवार के प्राणी हैं लेकिन हमारे देश में केवल साल-परिवार के जीव पाये जाते हैं। चींटीखोर जो इस वर्ग का प्रसिद्ध प्राणी है, दक्षिण अफ्रीका का निवासी है।

इन प्राणियों के मुख में आगे की ओर दांत नहीं होते। इसी से इन्हें अदन्त जीव कहा जाता है। आगे साल-परिवार का वर्णन किया जा रहा है।

पोषण एक नाल (Plecenta) द्वारा होता है जो माँ और शिशु से जुडी रहती है। इन जीवो के बच्चे माँ के पेट से ही परिपक्व अवस्था मे उत्पन्न होते है।

इस उपश्रेणी को नौ वर्गो में इस प्रकार बाँटा गया है—

१—अदन्त वर्ग

(ORDER EDENTATA)

इस वर्ग के जीवो की विशेषता यह होती है कि उनके मुख मे आगे की ओर दाँत नही होते और उनके शरीर पर प्राय कडे शल्क रहते है। हमारे यहाँ केवल साल नाम का प्राणी इस वर्ग मे रखा गया है।

२—समुद्रधेनु वर्ग

(ORDER SIRENIA)

यह वर्ग वहुत छोटा है जिसमे समुद्र मे रहनेवाले शाकाहारी स्तनप्राणी रखे गये है। हमारे यहाँ इस वर्ग में केवल समुद्र-धेनु नाम का जीव रखा गया है।

३—तिमि वर्ग

(ORDER CITACEA)

इस वर्ग के जीव भी समुद्र के निवासी है लेकिन ये सब मासभक्षी है जिनमें हमारे यहाँ की तिमि (ह्वेल) और सूस प्रसिद्ध है।

४—शफ वर्ग

(ORDER UNGULATA)

यह वर्ग सब वर्गो से वडा है जिसमे सब प्रकार के हिरन, गाय-बैल, भेड-वकरियो, सुअर, गदहे, घोडे, हाथी और ऊँट आदि शाकाहारी जीवो को इकट्ठा किया गया है। इनमें अधिकाश के खुर या सुम होते है और वे जुगाली करते है।

५—तीक्ष्णदन्त वर्ग

(ORDER RODENTIA)

इस वर्ग मे वे जीव रखे गये है जो अपने तेज़ दाँतो और अपनी कुतरने की आदत के लिए प्रसिद्ध है। इसमे सब प्रकार के चूहे, गिलहरियाँ और खरगोश आदि रखे गये है।

सहायक होते हैं वही ये इनके चलने में बहुत बाधा पहुँचाते हैं। इन टेढ़े नाखूनों के कारण ये जमीन पर अपना पूरा पैर नही रख पाते क्योंकि चलते समय इनके नाखून मुड़कर इनके तलुओ के नीचे आ जाते हैं जिससे इनकी चाल देखने में अजीब-सी लगती है।

साल

(INDIAN PANGOLIN)

साल को हमारे देश मे कही-कही सल्लूसाँप भी कहते हैं। हमारे यहाँ ये पंजाब से बंगाल तक और हिमालय की तराई से सुदूर दक्षिण तक पाये जाते हैं, लेकिन ये इतनी कम संख्या मे रह गये हैं कि इन्हें बहुत ही कम आदमियों ने देखा होगा।

साल बिल खोदकर रहनेवाले जीव हैं जो दिन भर अपने बिलों मे घुसे रहते हैं और रात होने पर ही बाहर निकलते हैं। इनके ये बिल पुराने और सुनसान भीटों में रहते हैं।
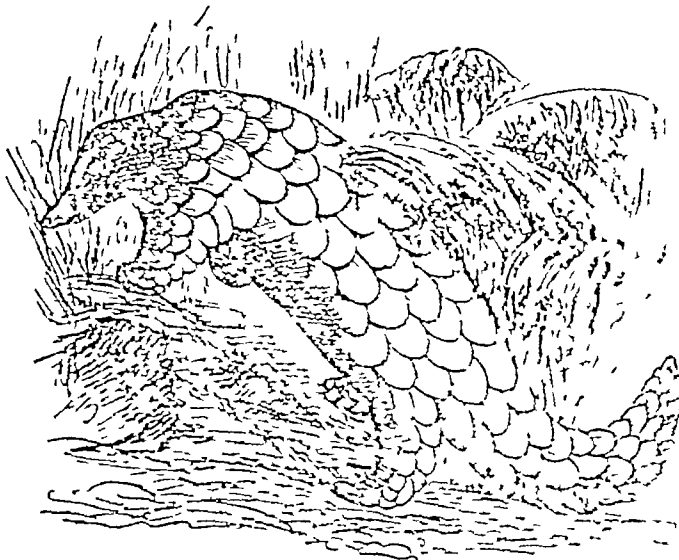
साल

साल का कद लगभग दो फुट लम्बा होता है और उसकी दुम की लम्बाई भी डेढ़ फुट से कम नहीं होती। इसके बदन का ऊपरी और बगली हिस्सा, टाँगों का

साल-परिवार

(FAMILY MARRIDAE)

साल परिवार मे साल ही अकेला जीव है जिसको कही-कही सल्लू साँप भी कहते है। इसकी दो जातियाँ हमारे देश मे पायी जाती है। यहाँ उनमे से एक का वर्णन दिया जा रहा है।

साल विल खोदकर रहनेवाला प्राणी है जिसका मुख्य आहार दीमक है। इसकी जवान काफी लम्वी होती है जो इसके मुख की एक नली के भीतर छिपी रहती है। यह आगे की ओर साँपो की जिह्वा की तरह फटी रहती है इसीसे शायद इसको सल्लू साँप कहा जाता है। आवश्यकता पडने पर साल अपनी जीभ को काफी दूर तक वढा लेता है और इसी के सहारे वह दिमौर से दीमको का शिकार कर लेता है। इसकी जीभ पर ऐसा चिपचिपा पदार्थ रहता है कि दीमक तथा छोटे-छोटे कीडे उसमे चिपककर इसके पेट मे पहुँच जाते है।

इन जानवरो का शरीर लम्वा होता है जो ऊपर से मोटे और दुर्भेद्य शल्को से ढँका रहता है। नीचे का हिस्सा कोमल और मुलायम रहता है, जिस पर शल्को की जगह तितरे-वितरे वाल उगे रहते है। ऊपर के शल्क खपरैल की तरह एक-दूसरे पर चढे रहते है जो वनावट में इतने कडे होते है कि कभी-कभी इन पर वन्दूक की गोली का भी असर नही होता।

खतरा निकट आने पर साल काँटाचूहे की तरह अपने वदन को गोल गेंद-सा लपेट लेते है। फिर किसी जीव की क्या मजाल जो इनका कुछ कर सके। इनके वदन पर के शल्क वहुत कडे और मजवूत होते है जिनके किनारे वहुत तेज रहते है। इनकी दुम और टाँगो का वाहरी हिस्सा भी इन्ही कडे शल्को से ढँका रहता है।

इन जानवरो का सिर छोटा और थूथन लम्वा होता है। इनके मुख का छिद्र वहुत पतला, आँखे छोटी और जवान वहुत लम्वी होती है। इनकी टाँगे इनके कद को देखते हुए छोटी ही कही जायँगी। प्रत्येक टाँग में पाँच उँगलियाँ रहती है जिनमें वहुत मजवूत टेढ नाखून रहते है। इन नाखूनो से ये कडी-से-कडी मिट्टी को वडी आसानी से खोद डालते है। लेकिन ये टेढे नाखून जहाँ इनको कडी मिट्टी खोदने में

उँगलियाँ छिपी रहती है। इन्ही पतवारनुमा हाथो से ये पानी मे बडी कुशलता मे तैर लेते है। इनके पिछले पैर एकदम गायब हो गये है क्योकि पानी मे रहने के कारण वे इनके लिए एकदम बेकार ही थे।

इन जीवो की हड्डियाँ ठोस और भारी होती है, क्योकि इन्हे अपने घास-पात के भोजन के लिए समुद्र के आस-पास ही रहना पडता है जहाँ पानी का बोझ इतना अधिक हो जाता है कि यदि वहाँ कोई मामूली जीव पहुँच जाय तो उसकी हड्डी-पसली चूर-चूर हो जाय। लेकिन इन जीवो की ठोस और भारी हड्डियाँ, जहाँ उन्हे पानी के नीचे जाने मे सहायक होती है वही से उन्हे पानी के भारी बोझ से भी बचाती है जो समुद्र के नीचे जाने पर निरन्तर बढता ही जाता है।

इन प्राणियो की खाल तो मोटी होती ही है, साथ ही उसके नीचे चरबी की एक मोटी तह भी रहती है जो इन्हे सरदी से बचाती है। इनके कृतक दाँत और दाढो के बीच मे थोडा फासला रहता है। ये जीव वैसे तो समुद्र के निवासी है, लेकिन इनका अधिक समय समुद्रतट के आस-पास ही बीतता है। इस वर्ग के जीवो को विद्वानो ने दो परिवारो मे बाँटा है जो इस प्रकार है—

१ मैनिटी-परिवार—Family Manatidae
२ समुद्रधेनु-परिवार—Family Halicoridae

पहले परिवार मे 'मैनिटी' नाम की समुद्रधेनु रखी गयी है जो हमारे देश मे नही पायी जाती। इसका निवास-स्थान अमेरिका और अफ्रीका के समुद्र है। हमारे देश के समुद्रो मे पायी जानेवाली समुद्रधेनु तो दूसरे परिवार की प्राणी है जो हमारे देश के दक्षिणी समुद्रो मे पायी जाती है।

मैनिटी (Manati) यद्यपि हमारे देश मे नही पायी जाती, फिर भी उसके बारे मे यहाँ कुछ बताना असंगत न होगा, क्योकि इन्ही की मादा को देखकर लोगो ने मत्स्य-स्त्री की कल्पना की थी। हमारे यहाँ की समुद्री-गाय का भी दूसरा नाम इसी कारण "माही तल्ला" पडा है जिसका निचला हिस्सा मछली की शक्ल का होता है।

मैनिटी की शक्ल थोडी-बहुत मनुष्यो से मिलने के कारण कुछ लोग उसकी मादा को मत्स्य-स्त्री (Mermaid) समझा करते थे। पुरानी कहानियो मे इन का अक्सर जिक्र आता है कि समुद्रो मे एक प्रकार की मत्स्य-स्त्रियाँ रहती है जिनका

बाहरी हिस्सा और दुम का कुल हिस्सा कडे शल्को से ढँका रहता है। इसके सिर के ऊपरी हिस्से पर भी कडे शल्क रहते है, लेकिन टाँगो के भीतरी हिस्से और दुम को छोडकर नीचे का सारा हिस्सा सादा रहता है। इसकी दुम सिरे की ओर पतली हो जाती है। इसके पैर छोटे और पजो के नाखून टेढ तथा मजबूत होते है।

साल के बदन पर के शल्क, जिनसे उसका शरीर ढँका रहता है, बादामी या भूरे रग के होते है। ये इतने कडे होते है कि कभी-कभी इन पर बन्दूक की गोली का भी असर नही होता। इसकी जबान बहुत लम्बी होती है जिस पर एक प्रकार का चिपचिपा पदार्थ लगा रहता है जिसमे चिपककर छोटे-छोटे कीडे-मकोडे इसके पेट मे पहुँच जाते है।

साल की मादा जाडो के अन्त तक एक बच्चा जनती है, लेकिन कभी-कभी इनके दो बच्चे भी पाये जाते है। बच्चो के शरीर पर कडे शल्क नही होते लेकिन ज्यो-ज्यो वे प्रौढ होते जाते है, उनका शरीर भी कडे शल्को से ढँकता जाता है।

समुद्रधेनु वर्ग

(ORDER [SIRENE\ )

इस समुद्रधेनु वर्ग मे समुद्र मे रहनेवाले उन सब जीवो को एकत्र किया गया है जो पूर्णतया शाकाहारी है और जिनका मुख्य आहार समुद्र मे उगनेवाली वनस्पति है।

जिस प्रकार बन्दर और वनमानुष मनुष्यो के सम्बन्धी है, उसी प्रकार समुद्रधेनु और हाथियो का निकट का सम्बन्ध है। इन दोनो के पूर्वज एक ही थे। हाथियो ने तो अपना विकास करके स्तनप्राणियो मे अपना एक विशेष स्थान बना लिया। लेकिन ये बेचारे भागकर फिर समुद्र मे चले गये और वहाँ मछलियो की तरह अपना जीवन व्यतीत करने लगे।

इन जीवो का सिर गोल और सुडौल होता है, लेकिन आँखे छोटी ही होती है। इनके नाक के छिद्र नथुनो के ऊपर रहते है और कान के छिद्रो के ऊपर ढकने नही रहते। इनकी दुम चपटी होती है जो तिमि वर्ग के जीवो की तरह आडी-आडी न होकर मछलियो की तरह खडी-खडी रहती है।

इन प्राणियो के अगले पैर पखियो के आकार के हो गये है जिनके भीतर इनकी

समुद्री-गाये बहुत काहिल होती है और उनकी शकल-सूरत भी बहुत भोंडी और भद्दी होती है। उनका मास बहुत स्वादिष्ठ होता है जिसके कारण उनका काफी शिकार होने लगा है और वह समय दूर नही जब वे शायद दिखाई ही न पडे।

समुद्री-गाये अक्सर छिछली खाडियो मे दिखाई पडती है। कभी-कभी तो ये बडी नदियो के मुहानो मे वहाँ तक चली आती है जहाँ तक खारा पानी रहता है, लेकिन इन्हे मीठा पानी कतई पसन्द नही है इसीलिए हम इन्हे अपनी नदियो मे कभी नही देखते।

ये शाकाहारी जीव है जो समुद्र के अन्दर उगनेवाली वनस्पति को खाकर अपना पेट भरती है। इनकी मादा एक बार मे एक ही बच्चा जनती है जिसे वह अपने बगल के सुफनो में दबाकर इधर-उधर लिये फिरती है।

तिमि वर्ग

(ORDER CETACIA)

तिमि वर्ग मे सब प्रकार की तिमि (ह्वेल) और सूसे रखी गयी है जो समुद्र मे रहनेवाले जीव है और जिन्होने पृथ्वी के स्थल भाग को सदा के लिए छोडकर जल को ही अपना निवास-स्थान बना लिया है।

बहुत लोग ह्वेल को जल में रहने के कारण मछली की एक जाति समझते है, लेकिन हमे यह भली-भाँति समझ लेना चाहिए कि पानी मे निरन्तर अपना जीवन बिताने पर भी ये मछलियाँ न होकर स्तनप्राणी ही है और अन्य स्तनपायी जीवो की तरह हवा मे साँस लेने के लिए इन्हे बार-बार पानी के बाहर अपना सिर निकालना पडता है। मछलियो की तरह शरीर का आकार-प्रकार होने पर भी इनके शरीर की भीतरी रचना मछलियो की तरह न होकर स्तनप्राणियो की तरह होती है।

ये सब मासाहारी जीव है जिनका मुख्य भोजन छोटी-छोटी मछलिया और घोघे आदि है क्योकि इतनी भीमकाय होने पर भी अपने गले के तग सूराख के कारण ये छोटी मछलिया ही खा पाती है। मादा तिमि अण्डे न देकर बच्चे जनती है जिनको वह अपने स्तनो से दूध पिलाती है।

अपना सारा समय पानी के भीतर बिताने के कारण इन प्राणियो के अगले पैर तो मछलियो के सुफनो (Fins) मे बदल गये है, लेकिन पिछले पैर बेकार होने

ऊपरी धड स्त्रियो की तरह और नीचे का हिस्सा मछलियो की तरह होता है। लेकिन ये सब काल्पनिक बातें है। मैनिटी की मादाओ को देखकर ही लोगो को मत्स्य स्त्री का धोखा हुआ होगा क्योकि अपने बच्चो को दूध पिलाते समय वह पानी मे अपनी दुम के सहारे सीधी खडी हो जाती है और तब दूर मे ऐसा जान पडता है कि जैसे कोई स्त्री पानी में खडी होकर अपने बच्चो को दूध पिला रही हो।

यहाँ केवल समुद्रधेनु-परिवार (Family Halicordae) का वर्णन दिया जा रहा है क्योकि हमारे यहाँ केवल इसी परिवार के जीव पाये जाते है।

समुद्रधेनु-परिवार

(FAMILY HALICORDAE)

यह परिवार अपने वर्ग की ही तरह बहुत छोटा है जिसमे दो प्रकार की समुद्री गाये आती है। भारत की समुद्री-गाय और आस्ट्रेलिया की समुद्री गाय।

यहाँ भारत की समुद्री गाय का वर्णन दिया जा रहा है। वैसे इन दोनो में बहुत थोडा ही अन्तर होता है।

समुद्री गाय

(DUGONG)

समुद्री गाय, जैसा उसके नाम से स्पष्ट है, समुद्री जीव है। यह हमारे देश के दक्षिणी समुद्रो में काफी सख्या में पायी जाती है।
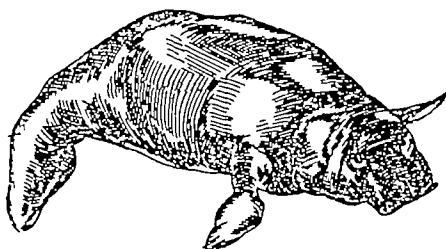
समुद्री गाय

यह सात-आठ फुट लम्बी होती है और इसका शरीर मछलियो से मिलता-जुलता रहता है। इसके शरीर का रग नीलापन लिये सिलेटी होता है।

तिमि-वर्ग को विद्वानो ने इस प्रकार दो उपवर्गों मे बाँटा है—

१—अदन्त उपवर्ग—Sub Order Mystacoceti

२—सदन्त उपवर्ग—Sub Order Odontoceti

अदन्त उपवर्ग में वे ह्वेले है जिनके मुँह मे दाँत नही होते जब कि सदन्त उपवग के प्राणियो के जबडो मे दाँतो की पक्ति रहती है।

अदन्त उपवर्ग

(SUB ORDER MYSTACOCETI)

इस उपवर्ग मे जैसा कि उसके नाम से ही स्पष्ट है दन्तहीन-ह्वेले एकत्र की गयी है। इनमे तीन परिवार है जिनमे अनेक जातियो की ह्वेले है, लेकिन हमारे यहाँ केवल नीली-तिमि-परिवार के जीव पाये जाते है। अत यहाँ केवल उसी मे की एक तिमि का वर्णन दिया जा रहा है।

नीली-तिमि परिवार

(FAMILY BALAENOPTERIDAE)

इस परिवार के जीवो का सिर छोटा होता है और उनकी गरदन से सीने तक के भाग मे खडे-खडे घरारे पडे रहते है। इनका शरीर बहुत गठा होता है और इनके शरीर की लम्बाई कभी-कभी ५० फुट से भी ज्यादा हो जाती है।

इसमे की प्रसिद्ध नीली-तिमि का, जो हमारे देश के समुद्रो मे पायी जाती है, यहाँ वर्णन दिया जा रहा है।

नीली-तिमि

(RORQUAL)

नीली-तिमि को अग्रेजी मे फिन ह्वेल (Fin Whale) भी कहते है और राक्वेल (Rorqual) भी। यह फिन ह्वेल इसलिए कही जाती है कि इसकी पीठ पर एक बडा-सा फिन या सुफना रहता है और चूँकि इसका रग नीला होता है इस कारण इसे नीली-तिमि कहना भी ठीक ही जचता है।

के कारण धीरे-धीरे गायव ही हो गये है। इनके पैरो की उँगलियाँ एक दूसरे से एक प्रकार की झिल्ली मे जुटी रहती है जिनमे नाखून नही होते। इनमे से किसी-किसी की पीठ पर मछलियो की तरह एक काँटा भी रहता है लेकिन उसे वे अपने इच्छानुसार हिला नही सकती।

इस वर्ग के किसी भी जीव के वदन पर वाल नही होते, लेकिन प्रकृति ने उनके वदन मे गरमी कायम रखने के लिए उनके शरीर को चरवी की एक मोटी तह प्रदान की है जो इनकी खाल के नीचे रहकर इन्हे सरदी से वचाती है।

इन जीवो की आँखे छोटी होती है। इनके कान के छिद्र भी खुले हुए और छोटे होते है लेकिन उनमे सुनने की शक्ति की कमी नही रहती। इनके नाक के छिद्र सिरे पर न होकर कुछ ऊपर की ओर चढे रहते है क्योकि इन्हे साँस लेने के लिए थोडी-थोडी देर वाद पानी की सतह पर आना पडता है और नाक के छिद्रो के ऊपर रहने मे इन्हे अपना पूरा सिर नही निकालना पडता।

तिमि या ह्वेल ससार का सवसे वडा जीव मानी जाती है। ये जव पानी की सतह पर आकर हवा मे साँस छोडती है तो कभी-कभी इनके नथुने से पानी की धार सी निकलती है। कुछ लोग उसे देखकर यह अनुमान करते थे कि तिमि (ह्वेल) अपना मुख फैलाकर उसमे पानी भर लेती है और फिर मुँह वन्द करके इसी छेद से पानी वाहर निकाल देती है, जिससे पानी तो वाहर निकल जाता है, लेकिन उसमे की मछलियाँ उसके मुँह मे ही रह जाती है। लेकिन ऐसी वात है नही। होता यह है कि तिमि जव पानी की सतह पर आकर भीतर की साँस जोर से वाहर निकालती है तो उसके साथ जो पानी का हिस्सा और थूक वगैरह वाहर उडता है वही पानी के फौवारे-सा जान पडता है।

उत्तरी ध्रुव के पास की ह्वेले जव वाहर साँस छोडती है तो उनके फेफडे की अशुद्ध वायु, जो भाप से पूर्ण रहती है, वाहर निकलते ही शीत के कारण जम जाती है और ऐसा प्रतीत होता है कि तिमि के नथुने से जल की धाराएँ निकल रही है।

ये जीव हवा मे जरूर साँस लेते है लेकिन यदि इनके समूचे शरीर को पानी के वाहर निकाल कर सूखे मे रख दिया जाय तो वे शीघ्र ही मछलियो की तरह मर जाती है क्योकि हवा मे साँस लेने मे समर्थ होने पर भी उनका निचला भाग वहुत कोमल होता है जो उनके शरीर के ऊपरी भाग का वोझ नही सँभाल सकता और उसके दवाव के कारण तिमि का दम घुट जाता है और वह मर जाती है।

इस परिवार की मोमीतिमि का वर्णन आगे दिया जा रहा है जो हमारे यहाँ की प्रसिद्ध तिमि है।

मोमी-तिमि

(CACHALOT)

इस तिमि को मोमी-तिमि इसलिए कहा जाता है कि इसके माथे के तेल और चरबी से हमारी मोमबत्तियाँ बनती हैं।

मोमी-तिमि गरम समुद्रों में रहनेवाली ह्वेल है जो ठंडे समुद्रों की ओर बहुत कम जाती है। यह हमारे यहाँ अरब सागर से लेकर बंगाल की खाड़ी तक फैली हुई है।

मोमी-तिमि

मोमी-तिमि नीली-तिमि से छोटी होती है जिसके शरीर की लम्बाई साठ फुट से ज्यादा नहीं जाती। इसकी भी मादाएँ लम्बाई में नरों से आधी रहती हैं। इसका शरीर कलछौंह रहता है जिसमें से कुछ का निचला हिस्सा सफेदी-मायल भी हो जाता है।

ये ह्वेलें झुंड बनाकर रहती हैं। इनके झुंड में १५–२० से लेकर १००–२०० तक ह्वेलें दिखाई पड़ती हैं। अकेले तो केवल बुड्ढे नर ही देखे जा सकते हैं।

नीली-तिमि हमारे देश के अरब सागर और बंगाल की खाडी में पायी जाती है। इसके अलावा मालाबार समुद्रतट के आस-पास भी इसके झुड दिखाई पड़ते हैं।

नीली-तिमि

तिमि हमारे यहाँ का ही नही, वरन् सारे ससार का सबसे बडा जीव है जिसके शरीर की लम्बाई ९० फुट से भी ज्यादा पहुँच जाती है। इतने बडे शरीर को लेकर किसी जीव का भी स्थल पर रहना सम्भव न होता, लेकिन पानी मे अपने विशाल शरीर को इधर-उधर ले जाने मे इसे ऐसा सहारा मिल जाता है कि इसे इधर-उधर जाने मे कोई कठिनाई नही होती।

सदन्त उपवर्ग

(SUB ORDER ODONTOCETI)

इस उपवर्ग मे वे जीव रखे गये है जिनके जबडो में तेज दाँत होते है। यह उपवर्ग भी तीन परिवारो में विभक्त है उनमे से जिन दो परिवारो के जीव हमारे यहाँ पाये जाते है उनके नाम ये है —

१ मोमीतिमि-परिवार—Family Physeteridae

२ सूस-परिवार—Family Platanistidae

मोमीतिमि-परिवार

(FAMILY PHYSETERIDAE)

इस परिवार के जीवो का सिर बडा होता है और उनके मुख में तेज दाँत रहते है। इनका शरीर लगभग ५०–६० फुट लम्बा होता है लेकिन इनकी मादाएँ कद में नर की आधी ही रहती है।

काफी सख्या मे रहते है। इनकी आँखे मटर से बडी नही होती। इनके कान के छिद्र भी सुई के छेद से बडे नही होते।

इनके नर, मादा से छोटे, लेकिन उससे गठीले होते है।

शफ वर्ग

(ORDER UNGULATA)

शफ वर्ग स्तनप्राणियो का सबसे बडा वर्ग है जिसमे सब खुरवाले जीव एकत्र किये गये है। ये सब शाकाहारी जीव है जो घास-पात और जडो पर अपना निर्वाह करते है। इन्हे न तो मासभक्षी जीवो की तरह तेज और नोकीले कुकुरदन्त की जरूरत पडती है और न वानरो की तरह लम्बी उँगलियोवाले हाथ-पाँव की। इसी लिए प्रकृति ने इनके पैरो मे उँगलियो और पजो के स्थान पर खुर या सुम बनाये है जिससे वे काफी तेज भाग सकते है।

इनके कृन्तक दाँत भी छेनी की तरह तेज धारवाले बनाये गये है जिससे इन्हे घास-पात चरने मे तनिक भी कठिनाई न पडे। इन प्राणियो के बहुधा कुकुरदन्त होते ही नही और अगर हुए भी तो वे बहुत छोटे और बेकार रहते है। हाँ, इनकी दाढे जरूर बहुत चौडी होती है, जिनकी इन्हे बहुत ज्यादा जरूरत भी पडती है।

इस वर्ग मे विशाल कदवाले जीवो से लेकर छोटे कदवाले जीव तक रखे गये है जो ससार के प्राय सभी भागो मे फैले हुए है।

इन जीवो की कुछ बातो मे समानता होते हुए भी इस वर्ग के प्राणियो के कद और शकल-सूरत मे इतना भेद रहता है कि हमे जल्द इन्हे एक वर्ग का प्राणी मानने मे हिचकिचाहट-सी होती है, लेकिन ये सब खुरदार प्राणी होने के कारण ही एक वर्ग मे रखे गये है जो शफ-वर्ग कहलाता है।

प्राणिशास्त्र के विद्वानो ने इस बडे वर्ग को चार उपवर्गों में विभक्त किया है, लेकिन हमारे यहा तीन ही उपवर्ग के जीव पाये जाते है। जो इस प्रकार है—

१ गो-उपवर्ग—Sub Order Artiodactyla

२ अश्व-उपवर्ग—Sub Order Perissodactyla

३ गज-उपवर्ग—Sub Order Proboscidea

ये तिमि समुद्रो में काफी दूर-दूर का चक्कर लगाती है और पानी में भी काफी देर तक रह लेती हैं। ये पानी में काफी गहराई तक चली जाती हैं।

सूस-परिवार

(FAMILY PLATANISTIDAE)

इस परिवार के जीव तिमि के मुकाबले बहुत छोटे होते है जो समुद्रो के अलावा नदियो मे भी पाये जाते हैं। इनके जबडो मे तेज दाँत होते हैं जिनकी सख्या काफी रहती है।

यहाँ केवल अपने यहाँ की प्रसिद्ध सूस का वर्णन दिया जा रहा है जो हमारे यहाँ गगा और उसकी सहायक नदियो मे पायी जाती है।

सूस

(DOLPHIN)

सूस पानी में रहनेवाला स्तनपायी-जीव है जो थोडी-थोडी देर बाद हवा मे साँस लेने के लिए पानी की सतह के ऊपर अपना सिर निकालता है और गोलाई में घूम-कर सिर के बल पानी में चला जाता है। यह क्रिया आनन-फानन होती है और इसी बीच वह खुली हवा मे साँस ले लेता है।
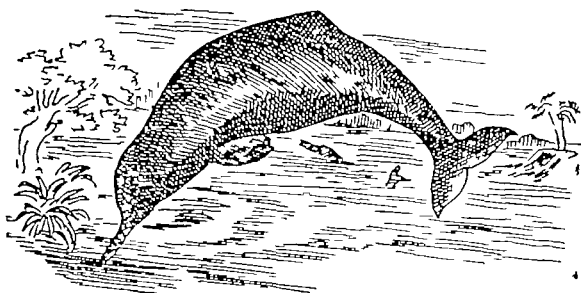
सूस

सूस सात-आठ फुट के कलछौंह जीव हैं जिनकी आकृति मछली जैसी हो गयी है। इनके गोल सिर के आगे घडियाल जैसा लम्बा थूथन रहता है जिसमें बहुत तेज और

उस समय उन्हे इतना समय नही मिलता था कि वे निडर होकर घास-पात चर सके। इसीलिए उन्होने अपने आमाशय या उदर का ऐसा विकास किया कि वह कई हिस्सो मे बँट गया। जिसका फल यह हुआ कि अपने उदर के एक खाने मे ये पहले जल्दी-जल्दी घास वगैरह भर लेते है। फिर जब इनको अवकाश मिलता है तो उसे अपने मुँह तक लाकर और अच्छी तरह चबाकर खा लेते हैं। इसी क्रिया को हम जुगाली करना कहते हैं।

इन प्राणियो के सीग स्थायी होते हैं जो एक ठोस हड्डी के ऊपर एक खोल से चढे रहते है। ये बारहसिंघो के सीग की तरह हर साल गिरते नही। इनकी बनावट सीधी, टेढी और चन्द्राकार जरूर होती है, लेकिन उनमे कभी शाखाएं नही फूटती।

इन सब प्राणियो के जबडो में कुकुरदन्त नही होते। इनकी आँख के नीचे एक गड्ढा-सा रहता है जिसमे से अधिकाश से एक प्रकार का द्रव पदार्थ निकला करता है। ये सब शाकाहारी जीव हैं।

इन पशुओ के खुर बीच से फटे रहते है जिससे इन्हें 'द्विशफ' कहा जाता है। खुरो के बीच से फटे रहने के कारण इनकी चाल में लचक तो आ ही जाती है, साथ ही साथ इनको कीचड और गीली मिट्टी मे चलना बहुत आसान हो जाता है। कीचड में पैर पडते ही इनके ये फटे खुर फैल जाते हैं और बीच से कीचड ऊपर निकल जाता है।

इनमे से कुछ के खुरो के बीच एक ग्रथि होती है जिसमे एक प्रकार का चिकना पदार्थ निकलता रहता है जो खुरो को चिकना बनाये रहता है। ये सब तेज भागने-वाले प्राणी हैं जिनकी सूँघने और सुनने की शक्ति बहुत तेज होती है।

ये सब जीव वैसे तो चार परिवारो मे बाँटे गये हैं, लेकिन हमारे यहाँ इनमे से जिन दो परिवारो के जीव पाये जाते है वे ये है—

१ गो-परिवार—Family Bovidae
२ कस्तूरा-परिवार—Family Cervidae

गो-परिवार

(FAMILY BOVIDAE)

गो-परिवार भी विस्तृत परिवार है। इनमें सब प्रकार के गाय, बैल, भैंसें, हिरन और भेड-बकरिया एकत्र की गयी है।

गो-उपवर्ग

(SUB ORDER ARTIODACTYLA)

गो-उपवर्ग काफी बडा उपवर्ग है जिसे सुविधा के लिए विद्वानो ने चार समूहो मे विभक्त किया है—

पहला समूह **गो-समूह** (Section Pecora) कहलाता है, जिसमे सब प्रकार के गाय-बैल, भेड-बकरी और हिरन तथा बारहसिंघे रखे गये है।

दूसरे समूह को **पिसूरी-समूह** (Section Tragulina) कहा जाता है। इसमें छोटे कदवाले हिरन या पिसूरी है।

तीसरे समूह का नाम **उष्ट्र-समूह** (Section Tylopoda) है जिसमे ऊँट और लामा रखे गये है, लेकिन लामा हमारे देश मे नही होते और—

चौथा समूह **शूकर-समूह** (Section Suina) के नाम से विख्यात है जिसमें सब प्रकार के सुअर और हिप्पोपाटेमस (Hippopotamus) है। हिप्पो भी हमारे देश में नही होते और लामा की तरह इन्हें भी यहाँ हम अपने चिडियाखानो में ही देख सकते है। ये सब जीव खुरवाले है जिनके खुर बीच से फटे रहते है।

गो-समूह

(SECTION PECORA)

इस समूह के सभी प्राणी सच्चे रोमन्थकारी जीव है जो पहले जल्दी-जल्दी घास वगैरह चर लेते है और फिर बाद में किसी निरापद स्थान पर बैठकर जुगाली करते है।

जुगाली करते समय इन जीवो के पेट से चरी हुई घास या पत्तियाँ छोटे-छोटे गोले की शकल मे होकर इनके मुँह तक आ जाती है जिसे ये फिर अच्छी तरह चबाकर निगल जाते हैं। जब यह दुबारा चबाया हुआ चारा इनके पेट के भीतर पहुँचता है तब कही जाकर इनकी पाचन-क्रिया प्रारम्भ होती है।

जुगाली करने का यह ढग विचित्र तो है ही, लेकिन इसकी शुरुआत किस प्रकार हुई, यह भी कम रोचक नही है।

बहुत समय पहले जब पृथ्वी पर बडे-बडे जगलो में हिंस्र जीव भरे थे तो इन शाकाहारी जीवो को उनसे अपनी जान बचाने के लिए बहुत सतर्क रहना पडता था।

गौर का रग वैसे तो भूरा होता है, लेकिन नर पुराने होने पर, रोझ की तरह, काले हो जाते है। नीचे का हिस्सा कुछ हलके रग का रहता है और खुर से लेकर घुटनो के कुछ ऊपर तक पैर सफेद रहते है।

गौर
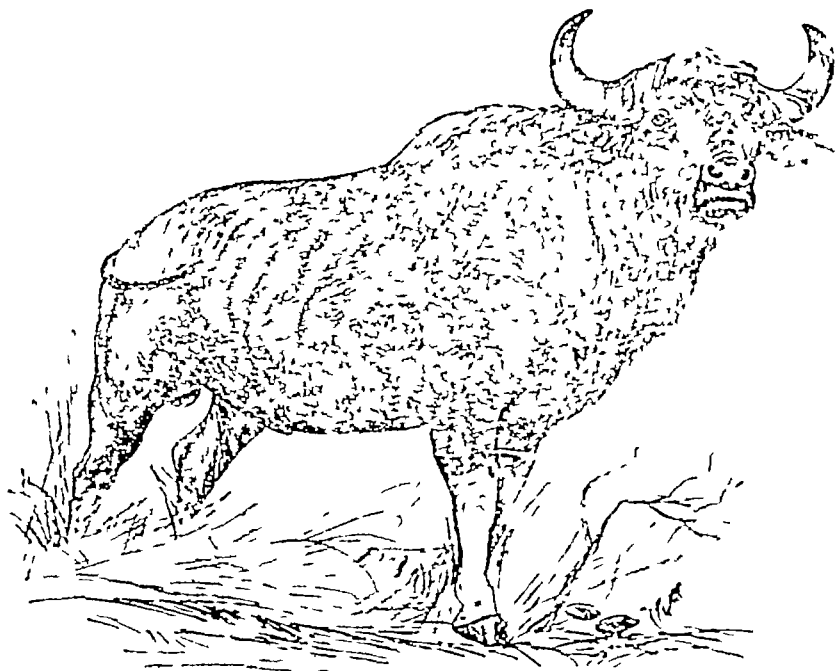
गौर का आँखो के पीछे से गुद्दी तक का हिस्सा राखी रहता है और सीगो का रग गदा हरा या पिलछौंह होता है जिनके सिरे काले रहते है।

गौर बहुत सीधा और डरपोक जानवर है जो खतरा निकट देखकर हमला करने के बजाय भागकर अपनी जान बचाना ही ज्यादा पसन्द करता है। घायल हो जाने पर जरूर इसका हमला बहुत भयकर होता है।

गौर गरोह में रहनेवाले जानवर है जो पाच से बीस तक का गोल बनाकर रहते है। बुड्ढे नर प्राय अकेले ही रहते है। इनका मुख्य भोजन घास-पात और बांस के नरम कल्ले है जिनकी तलाश मे ये सुबह-शाम जगलो मे घूमते रहते है।

इन प्राणियो के सीग स्थायी होते है जो एक ठोस हड्डी के ऊपर कडे खोल की तरह चढे रहते है। ये बारहसिघो के सीगो की तरह हर साल गिर नही जाते। सीधी, टेढी और घुमावदार बनावट होने पर भी उनमें कभी शाखाएँ नही फूटती।

इन सब जीवो की आँखो के नीचे एक गढा-सा रहता है जिसमे से अधिकाश से एक प्रकार का द्रव पदार्थ निकला करता है। ये सब शाकाहारी जीव है जिनके कुकुरदन्त नही होते।

इस परिवार के प्राणियो को वैसे तो सोलह उप-परिवारो मे बाँटा गया है, लेकिन हमारे यहाँ उनमे से केवल छ उप-परिवारो के जीव पाये जाते है। उन छ मे से यहाँ केवल गो, अज, गुरल, मृग तथा रोझ इन्ही पाँच उप-परिवारो का वर्णन दिया जा रहा है, क्योकि हमारे यहाँ के प्राय सभी प्रसिद्ध जानवर इन्ही पाँचो उप-परिवारों में आ जाते है।

गो-उपपरिवार

(SUB FAMILY BOVINAE)

गो-उपपरिवार में हमारी गाय, भैस तथा उनके निकट-सम्बन्धी गौर, गयाल और सुरागाय रखी गयी है। इनका वर्णन नीचे दिया जा रहा है।

गौर

(GAUR)

गौर हमारे यहाँ का प्रसिद्ध जानवर है, जिसका भारी भरकम शरीर देखने पर बहुत रोबीला जान पडता है। इसको किसी-किसी स्थान पर बोदा भी कहा जाता है। गौर अभी तक पालतू नही किये जा सके है। इनको पकडकर अपनी गाय और भैसो की तरह पालतू करने की कई बार कोशिश की गयी, लेकिन पकडे जाने पर ये जिन्दा न रह सके और थोडे ही समय में मर गये।

हमारे देश में ये सभी घने पहाडी जगलो में मिल जाते है, लेकिन इनके रहने के स्थान मध्यप्रदेश के घने जगल तथा हिमालय की तराई का पूर्वी भाग ही है।

ये बडे सुन्दर, सुडौल और कद्दावर जानवर है जिनके कधे की ऊँचाई छ फुट तक पहुँच जाती है। मादा पाँच फुट से ज्यादा ऊँची नही होती। लम्बाई में नर लगभग नौ फुट के और मादाएँ सात फुट तक की होती है।

गाय-बैल

(OXEN)

गाय-बैल के बारे मे ऐसा कौन है जो कुछ न जानता हो ? ये हमारे देश के सबसे उपयोगी पशु हैं जिनकी मेहनत से हमारे यहाँ के नब्बे फीसदी लोगो का पेट भरता है।

पृथ्वी पर इनकी दो मुख्य जातियां पायी जाती हैं। एक तो हमारे यहाँ के कूबड-वाले गाय-बैल, जिनके कंधे पर कूबड उठा रहता है और दूसरे यूरोप के बिना कूबडवाले गाय-बैल जिनके कूबड नही होता। इनमे जरसी आदि प्रसिद्ध नस्लें हैं।
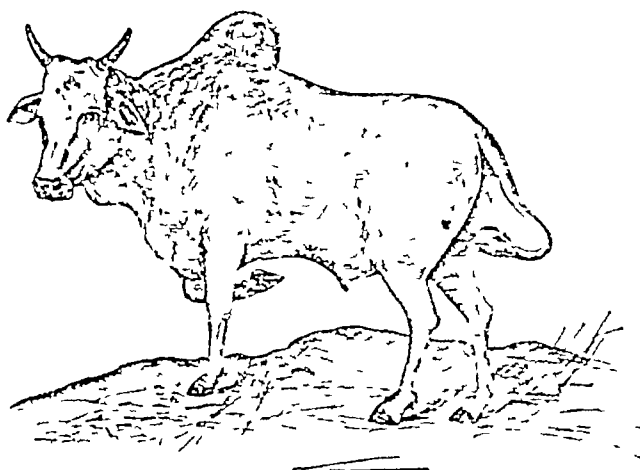
बैल

हमारे देश के इन कूबडवाले गाय-बैलो की भी कई जातियां हैं जिनका संक्षिप्त वर्णन आगे दिया जा रहा है। ये सब भिन्न-भिन्न कद और भिन्न-भिन्न रंगो की होती है जिनमे सफेद और ललछाह रंग प्रधान रहता है। वैसे ये काली, चितकबरी, धूसर और मकरी भी होती हैं।

इनके सींग अर्द्ध चन्द्राकार और चिकने होते हैं जो गाय और बैल दोनो मे एक ही नाप के रहते हैं। दोनो के गले के नीचे की खाल लहरदार होकर लटकती रहती है जिससे इनकी सुन्दरता और भी बढ जाती है। देखने मे तो गाय सुन्दर होती ही है, बैल भी कम सुन्दर नही होता। अपने गठे हुए सुडौल शरीर से वह बहुत ही भोला जान पडता है।

गयाल

(GAYAL)

गयाल को कही-कही मिथन भी कहते है। हमारे देश मे यह आसाम तथा त्रिपुरा के पहाडी जगलो मे पायी जाती है।

शकल-सूरत और रग-रूप मे ये गौर ही जैसी होती है लेकिन इनका कद उनसे जरूर छोटा रहता है। इनका अगला हिस्सा भी गौर की तरह रोबीला नही होता।
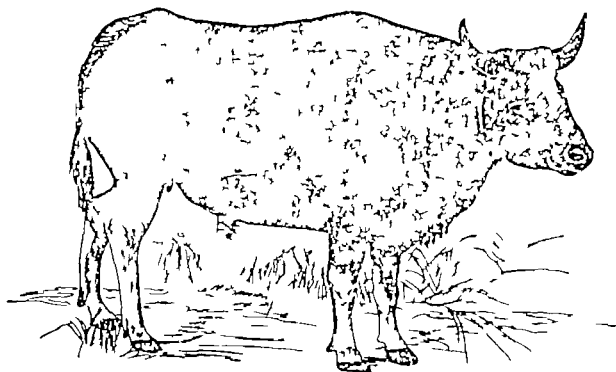
गयाल

गयाल गौर से भी सीधे जानवर है और इसीलिए इन्हे अपनी गायो की तरह मनुष्यो ने पालतू कर लिया है। आसाम की सीमा पर के निवासियो के लिए इनसे अधिक उपयोगी और दूसरा जानवर नही है। वे लोग यद्यपि इनसे खेत जोतने का काम नही लेते, लेकिन इनका मास और दूध बडे स्वाद से खाते है।

गयाल को ऊँट और घोडो की तरह ऐसा पालतू नही किया गया है कि जगलो से उनका नाता ही सदा के लिए टूट गया हो बल्कि वे हाथियो की तरह थोडी सख्या मे ही पालतू किये गये है और जगलो मे उनके भाई-बन्धु अब भी जगली अवस्था मे पाये जाते है। हाथियो की तरह लोगो को जितने गयालो की जरूरत होती है उतने पकड लिये जाते है, क्योकि इनके पकडने मे लोगो को ज्यादा दिक्कत नही उठानी पडती।

कनकथा जाति बुंदेलखंड की है। ये धूसर रंग के होते हैं। इनके बैल खेती के काम के लिए बहुत उपयुक्त होते हैं, लेकिन गाएँ अधिक दुधार नहीं होती।

गंगातीरी जाति के पशु गंगा और घाघरा के बीच के भाग में पाये जाते हैं। ये मझोले कद के बहुत सीधे जानवर हैं। इनका रंग प्राय सफेद या धूसर रहता है। इनकी गायें भी दुधार होती हैं और बैल भी काफी परिश्रमी होते हैं।

सिंधी जाति के पशु वैसे तो करांची के आसपास के रहनेवाले हैं, लेकिन अब ये हमारे देश में भी काफी जगहों में फैल गये हैं। हमारे यहाँ की दुधार गायों में सिंधी का प्रमुख स्थान है। बैल हलका काम ही कर पाते हैं। ये हलके लाल रंग के होते हैं।

खैरीगढ जाति के पशु खीरी जिले के खैरीगढ परगने में मिलते हैं लेकिन अब इनकी नस्ल चारों ओर फैल रही है। ये प्राय सफेद होते हैं। इनकी गायें ज्यादा दूध नहीं देती और बैल भी हलका ही काम कर पाते हैं।

पवार जाति के पशु बड़े मरकहे होते हैं। ये पीलीभीत तथा खीरी जिले के पश्चिमी भागों में पाये जाते हैं। इनका रंग सफेद, काला या चितकबरा रहता है। इस जाति के बैल मेहनत के काम के लिए बहुत अच्छे होते हैं, लेकिन गायें अधिक दूध नहीं देती।

सुरागाय

(YAK)

सुरागाय को तिब्बतवाले याक कहते हैं और अंग्रेजी में भी इसका यही नाम है। यह वैसे तो तिब्बत के ऊँचे पठार का निवासी है, लेकिन हमारे देश में भी यह उत्तरी लद्दाख के आसपास पन्द्रह से बीस हजार फुट की ऊँचाई पर पाया जाता है।

सुरागाय का कंधा ऊँचा, पीठ चौरस और पैर छोटे और गठीले होते हैं। इसकी पीठ और बगल के बाल तो छोटे ही रहते हैं, लेकिन इसके सीने के निचले और पैरों के ऊपरी हिस्से पर काफी लम्बे बाल रहते हैं।

सुरागाय का कद वैसे तो हमारे यहाँ के गाय-बैलों से छोटा ही होता है, लेकिन अपने ऊँचे कंधे और बड़े बालों के कारण यह देखने में उनसे ज्यादा रोबीला जान पड़ता है। नर छ फुट ऊँचा और लगभग सात फुट लम्बा होता है, लेकिन मादा कुछ छोटी होती है।

गाय-बैल बहुत शान्त स्वभाव के शाकाहारी पशु है, जिनका मुख्य भोजन घास-पात है। ये दाना और खली भी बडे स्वाद से खाते है।

गाय जहाँ अपने अमृत तुल्य दूध के कारण हमारी माता के समान मानी जाती है वही बैल भी अपने बल और पौरुष के कारण हमारे आदर का पात्र बना हुआ है। इतना ही नही, हमारे कृषि-कार्य मे भी हर तरह से सहायक होकर यह हमारा अन्नदाता बन गया है।

गाय अक्सर एक और कभी-कभी दो बच्चे भी देती है, जो जल्द ही माँ के साथ चलने-फिरने लगते है।

हमारे यहाँ गाय बैलो की निम्नलिखित जातियाँ प्रसिद्ध है—

१ साहीवाल

२ हरियाना

३ थारपारकर

४ कनकथा

५ गगातीरी

६ सिंघी

७ खैरीगढ

८ पवार

साहीवाल हमारे यहाँ की प्रसिद्ध दुधारू नस्ल है। इस जाति के पशु लम्बे और मासल होते है। इनका रग अधिकतर ललछौंह होता है। हमारे यहाँ की दुधारू गायो में साहीवाल का विशेप महत्त्व है, पर इस जाति के बैल अधिक मेहनत नही कर पाते।

हरियाना जाति के पशु पजाब के निवासी है। इस जाति की गाएँ दुधार होती ही है, बैल भी बहुत चुस्त और मेहनती होते हैं। ये सफेद या धूसर रग के होते है।

थारपारकर जाति के पशु जोधपुर, कच्छ तथा जैसलमेर के है। ये भी सफेद या धूसर रग के होते है। इस जाति की गाएँ तो बहुत दुधार होती है, लेकिन बैल मामूली मेहनत का ही काम कर पाते है।

अरना का शरीर बहुत भारी-भरकम होता है। इसके अलावा इसके बड़े सींग इसे और भी डरावना बना देते हैं। यह लगभग सात फुट चौड़ा और ग्यारह फुट लम्बा होता है जिसके माथे पर ढाई तीन फुट लम्बे चन्द्राकार सींग रहते हैं।
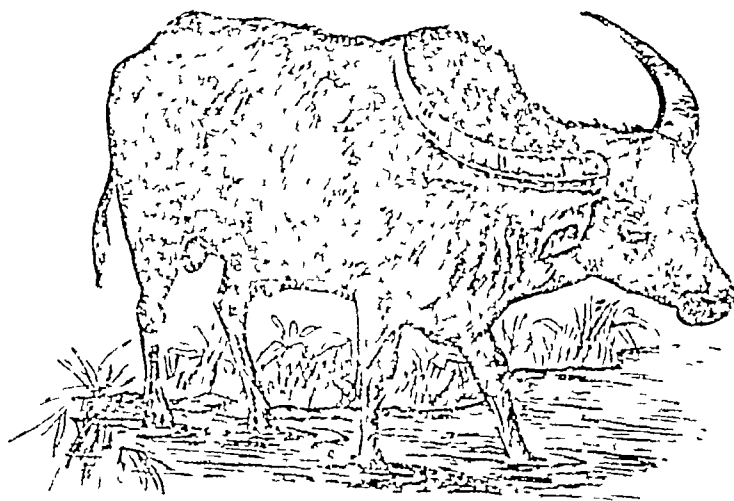
अरना भैंसा

इसका रंग गाढ़ा सिलेटी या काला रहता है, लेकिन इसके पैर कुछ दूर तक सफेद रहते हैं। इसके बदन पर बहुत छोटे और कम बाल होते हैं जो अधिक उम्र होने पर और भी कम हो जाते हैं।

अरना को न तो ज्यादा जंगल ही पसन्द है और न पहाड़ ही। यह घास के मैदानों में ही रहना अधिक पसन्द करता है। वहाँ यह ऐसे स्थानों में अपना अधिक समय बिताता है जो घास-फूस और नरकुलों से भरे हुए दलदलों के निकट होते हैं। इसका मुख्य भोजन घास-पात है।

अरना बहुत ढीठ और निडर जानवर है जो आदमियों से डरकर भाग नहीं खड़ा होता। यह वैसे तो सीधा जानवर है, लेकिन घायल हो जाने पर हाथी तक पर हमला कर बैठता है।

सुरागाय की तरह इसकी मादा भी लगभग दस महीने में एक या दो बच्चे जनती है।

याक वैसे तो सीधे और डरपोक जानवर है, लेकिन घायल होने पर ये वडा भयकर हमला करते हैं। इनका मुख्य भोजन घास-पात है। ये पानी बहुत पीते हैं और जाडो मे वर्फ खा-खाकर अपनी प्यास बुझाया करते हैं।

याक गहरे कत्थई, भूरे या कलछोह रग के होते हैं जिनके थूथन के पास का कुछ हिस्सा सफेद रहता है। लेकिन नरो के पुराने हो जाने पर उनकी पीठ का कुछ हिस्सा ललछौह हो जाता है।

सुरागाय

याक तिब्वत आदि देशो का बहुत उपयोगी जानवर है। वहाँ के लोग इनसे केवल दूध और मास ही नही पाते बल्कि इन पर वे वैल या भैसे की तरह सामान भी ढोते हैं।

वच्चे देने के मामले मे सुरागाय हमारी गायो से बहुत मिलती-जुलती होती है।

अरना भैंसा

(WILD BUFFALO)

अरना भैसे हमारे पालतू भैसो के भाई-बन्धु हैं जो अब भी जगली अवस्था मे हमारे यहाँ के घने जगलो मे पाये जाते है, लेकिन अव इन जगली भैसो से हमारे यहाँ के पालतू भैसो का नाता एकदम टूट गया है और वे उनसे जोडा नही बाँधते।

वैसे तो हमारे यहाँ सारे देश मे देशी बकरे और बकरियाँ पायी जाती है, लेकिन इनकी पहाडी, कश्मीरी, बरबरी और जमुनापारी जातियाँ बहुत प्रसिद्ध है।

बकरा

कश्मीरी बकरियाँ जहाँ अपने मुलायम बालो के लिए मशहूर है, वही पहाडी जाति अपने गठे शरीर और स्वादिष्ठ मास के लिए भी प्रसिद्ध है। बरबरी कद मे छोटी-छोटी होती है, लेकिन इनके दो-दो बच्चे होते है और इनकी सख्या बहुत जल्द बढ जाती है। इसके विपरीत जमुनापारी कद मे बडी होती है और दूध भी काफी देती है।
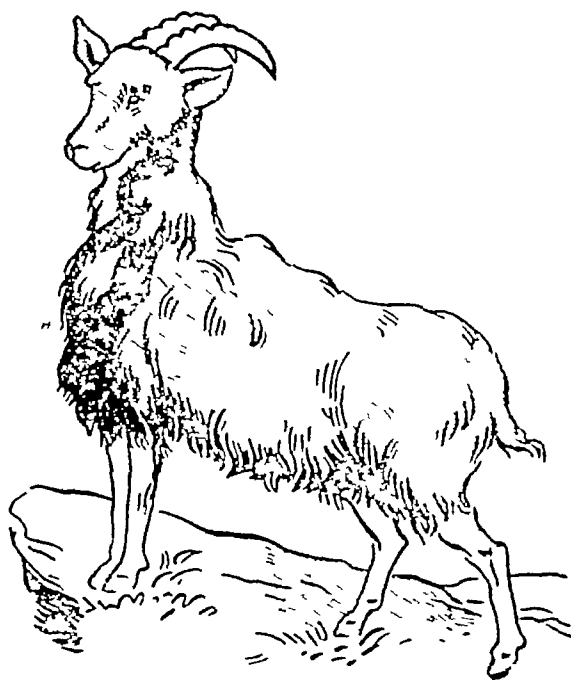
बकरियाँ हमारे यहाँ काफी सख्या मे पाली जाती है। इनका पालना भी कठिन नही होता और भेडो की तरह इनमे अक्सर बीमारी भी नही फैलती। ये इधर-उधर घासपात चरकर अपना पेट भर लेती है लेकिन शौकीन पालनेवाले इन्हे दाना भी देते है।

इनका रग अलग-अलग रहता है। कुछ काली होती है तो कुछ सफेद, और कुछ भूरी होती है तो कुछ गैरी लेकिन ज्यादा ऐसी ही है जिन्हे चितकबरी रग मिला है।

इनकी शकल-सूरत और सीगो की बनावट मे भी काफी भेद रहता है क्योकि ये अलग-अलग जगली जातियो के बकरो से पालतू बनायी गयी है। मारखोर नाम के जगली बकरे से निकली हुई बकरियो के सीग घुमावदार रहते है तो पासग नामक जगली बकरे से पालतू की गयी बकरियो के सीग पीछे की ओर झुके रहते है।

बकरो की वशवृद्धि बहुत तेजी से चलती है क्योकि साल मे बकरियाँ एक या दो तीन बच्चे जनती है जो छ-सात महीने मे ही जवान हो जाते है।

अज, गुरल, मृग, तथा रोझ उपपरिवार

(SUB FAMILIES CAPRINAE, RUPICHERINAE, ANTILOPEDAE AND TRAGELAPHINAE)

इन उपवर्गों में सब प्रकार के हिरन और भेंड-बकरे रखे गये है जिनके सीग बारह-सिंघो की तरह हर साल नही गिर जाते। ये सीग स्थायी रहते है जिनका भीतरी हिस्सा ठोस हड्डी का रहता है और ऊपर से खोल चढा रहता है। कुछ के सीग छोटे होते है तो कुछ के बडे और कुछ के ऐंठे और धरारेदार होते है तो कुछ के तिकोने। इन प्राणियो के नर और मादा दोनो सीगदार होते हैं, भले ही कुछ मादाओ के सीग छोटे क्यो न होते हो।

इन सब जीवो के कुकुरदन्त नही होते और इनकी मादाओ के प्राय दो ही थन होते है। ये सब शाकाहारी जीव है जिनमें से बहुतो को मनुष्यो ने पालतू कर रखा है।

ये सब जीव अपनी तेज चाल के लिए प्रसिद्ध है क्योकि इनको आक्रमणकारियो से भागकर अपनी जान बचानी पडती है, इसीलिए ये दुर्गम घाटियो और पहाडो पर चढने मे उस्ताद होते हैं।

इन उप-परिवारो में बहुत से जानवर है, लेकिन यहाँ अपने यहाँ पाये जानेवाले कुछ प्रसिद्ध जगली भेंड-बकरो तथा हरिनो का ही वर्णन दिया जा रहा है।

अज उपपरिवार

(SUB FAMILY CAPRINAE)

इस उपपरिवार में अपने यहाँ के पालतू भेड-बकरो के अलावा साकिन, मारखोर और थेर तीन जगली बकरे और उरियल, भरल और तीन जगली भेडो को रखा गया है। आगे उन्ही का वर्णन दिया जा रहा है।

बकरा

(GOAT)

बकरो से हम सभी परिचित है। हमारे यहाँ के पालतू जानवरो में इनका प्रमुख स्थान है। बकरी तो गरीब आदमियो की गाय कहलाती है और बकरे का मास हमारे देश में सबसे अधिक खाया जाता है।

मारखोर

(MARKHOR)

मारखोर भी हमारे यहाँ का प्रसिद्ध जगली बकरा है जो हमारे देश मे हिमालय के पश्चिमोत्तर प्रान्त का निवासी है। मारखोर साकिन से कुछ भारी जरूर होता है, लेकिन खड़े पहाड़ो और कठिन घाटियो में चढने मे इसका कोई मुकाबला नही कर पाता। इसके सीग साकिन के सीगो की तरह पीछे की ओर मुड़े नही रहते बल्कि वे सीधे, लम्बे, और ऐठे तथा घुमावदार होते है।

मारखोर लगभग पाँच फुट लबे होते है। इनकी ऊँचाई तीन सवा-तीन फुट तक रहती है, लेकिन इनके लम्बे सीग तीन फुट से कम नही होते। इनके नरो की लबी दाढी रहती है और इनके बदन मे एक प्रकार की तेज दुर्गंध निकलती रहती है।
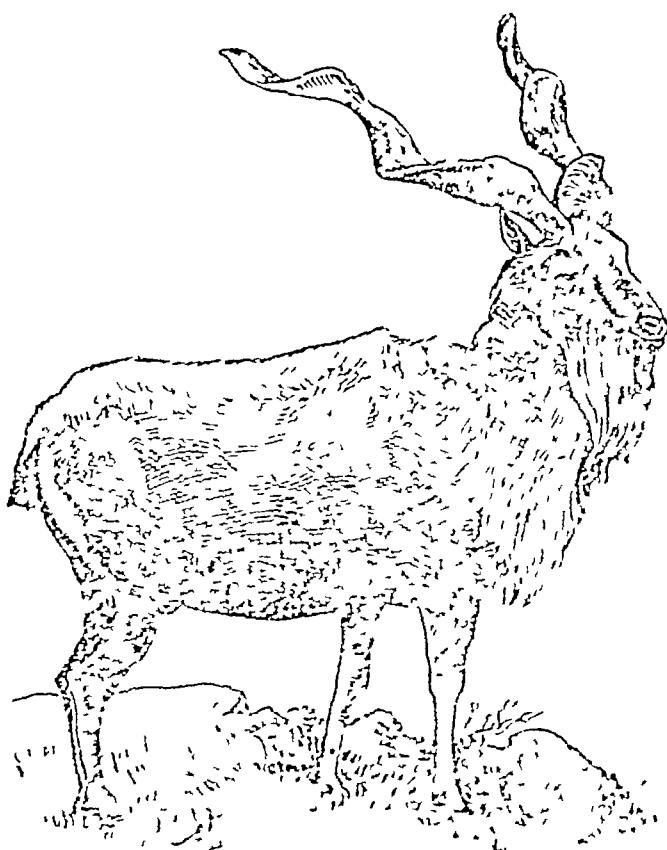
मारखोर

मारखोर का भी रग साकिन की तरह जाड़ो और गरमियो मे बदला करता है। गरमियो मे यह गाढा कत्थई रहता है, लेकिन जाड़ो में इनका रग बदल कर सिलेटी हो जाता है। इसके बदन पर लम्बे बाल होते है जिनकी जड़ें सफेद रहती है।

साकिन

(HIMALAYAN IBEX)

साकिन जगली बकरो मे से एक प्रसिद्ध बकरा है जो हमारे देश मे हिमालय के पश्चिमी भागो में पाया जाता है।

साकिन

इसका शरीर बहुत सुडौल और गठा हुआ रहता है। नर इस जाति के लम्बे सीगोवाले होते है और उनकी लबी दाढी रहती है। मादा कद मे नर से छोटी होती है और उनके सीग भी नरो से छोटे रहते है।

साकिन के शरीर का रग गरमियो और जाडो मे बदलता रहता है। गरमियो में यह गाढे भूरे या कत्थई रग का रहता है, लेकिन जाडो मे इसका शरीर पिलछौह सफेदी में बदल जाता है।

साकिन वर्फ के आस-पास रहनेवाला बकरा है जो अपना अधिक समय खडे और दुर्गम पहाडो और घाटियो में बिताता है। खडी पहाडी की कठिन चढाइयो पर यह बडी खूवी से चढ-उतर लेता है। इसका मुख्य भोजन घास-पात है।

ये जगली वकरे गरोह बांधकर रहते है और इनकी मादा मई, जून मे एक या दो वच्चे जनती है। इनका मास बहुत स्वादिष्ठ होता है।

इनकी और सब आदतें अन्य जंगली बकरों जैसी होती हैं और इनका भी मांस स्वादिष्ठ होता है।

भेड़

(SHEEP)

बकरों की तरह भेड़ें भी हमारे पालतू जानवरों में से एक हैं लेकिन इनका हमारे यहाँ से ज्यादा विदेशों में मान है। हमारे यहाँ भी इनकी कई जातियाँ पायी जाती हैं।

भेड़ें, बकरियों से वैसे भी कुछ भारी होती हैं। इसके अलावा शरीर पर के घने बालों के कारण उनका शरीर और भी भारी दीख पड़ता है। उनके सींग चौड़े, तिकोने और पीछे की ओर मुड़े रहते हैं और उनके बकरों की तरह दाढ़ी नहीं होती।

भेड़

भेड़ काली भी होती हैं और सफेद भी। कुछ चितकबरी भी होती हैं। उनके शरीर पर काफी बड़े बाल या ऊन रहते हैं जिन्हें साल में दो बार काटकर लोग उनसे ऊनी कपड़ा बनाते हैं। इसके अलावा इनका दूध और मांस तो हमारे लिए बहुत उपयोगी होता ही है। मादा गरमियों में एक या दो बच्चे जनती है।

न्यान

(GREAT TIBETAN SHEEP)

जिस प्रकार साकिन मारखोर और थेर जंगली बकरे हैं उसी प्रकार न्यान हमारे यहाँ की प्रसिद्ध जंगली भेड़ है। ये ऊँचे और दुर्गम पहाड़ों पर चढ़ने में जंगली बकरों की ही तरह उस्ताद होती हैं, लेकिन इन्हें अपने रहने के लिए पहाड़ के से खुले मैदान ज्यादा पसन्द हैं।

इनके सींग जड़ के पास काफी चौड़े होते हैं जो पीछे की ओर गोलाई से मुड़े रहते हैं। इनके नर को बकरों की तरह दाढ़ी तो होती नहीं, लेकिन उनके गले के नीचे जरूर लम्बे बाल लटकते रहते हैं।

अन्य जगली बकरो की तरह मारखोर भी झुड में रहनेवाला जानवर है। यह देखने में बहुत रोबीला जान पडता है और वजन में भी अन्य बकरो से भारी भरकम होता है।

इसकी मादा मई, जून में एक या दो बच्चे जनती है। इसका मास बहुत स्वादिप्ठ होता है।

थेर

(THAR)

थेर हिमालय का जगली बकरा है जिसे हिमालय के ऊँचे और घने जगलो के सिवा और कही नही देखा जा सकता।
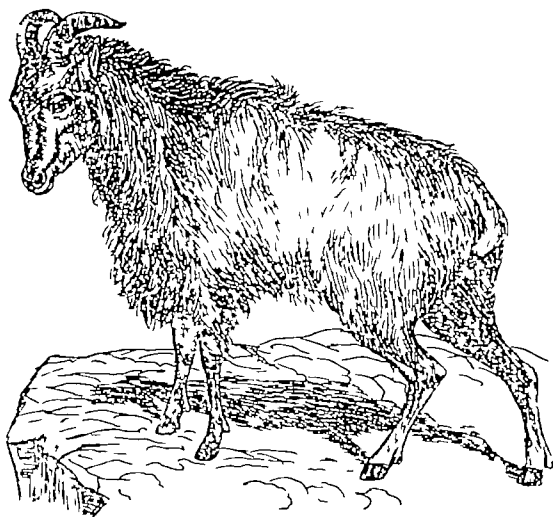
थेर

यह चार-पाँच फुट लम्बा और तीन सवातीन फुट ऊंचा बकरा है जो अपने बडे बालो के कारण भारी और रोबीला जान पडता है। इसके सीग ज्यादा बडे न होकर दस-बारह इच के होते है जो पीछे की ओर मुडे रहते हैं।

थेर का ऊपरी रग गाढा भूरा या कत्थई रहता है और नीचे का हलका। पैरो का अगला हिस्सा बहुत गाढे रग का होता है जो दूर से काला जान पडता है। इनके भी नर मादाओ से बडे होते हैं, लेकिन उनके दाढी नही रहती।

उरियल के शरीर का रग गरमी और जाडो मे वदलता रहता है। गरमियो मे यह गाढे खैरे सिलेटी रग का रहता है, लेकिन जाडो मे इसका रग वदलकर हलका सिलेटी हो जाता है। इसके नीचे का हिस्मा, पैर और पुट्ठे सफेद रहते है। इसके वदन पर के वाल छोटे, कडे और पर्याप्त घने होते है और इसके सीग चौडे और गोलाई से पीछे की ओर घूमे रहते है। नर मादाओ से कद मे वडे होते है और उनके सीग भी उनके सीगो से वडे रहते है।
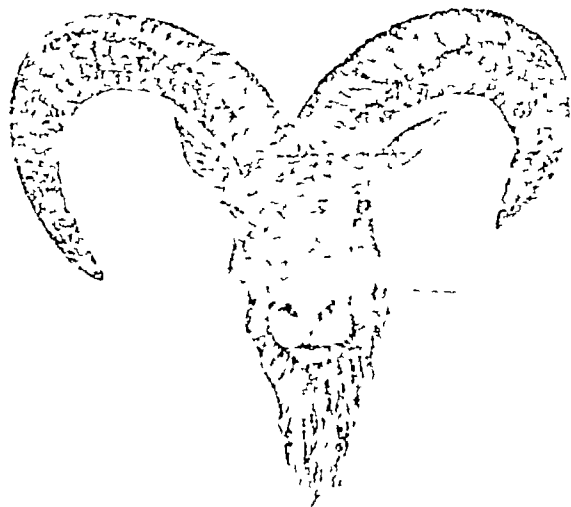
उरियल

उरियल खडे पहाडो पर चढने मे उस्ताद होते है, लेकिन वे ज्यादातर खुली घाटियो मे पन्द्रह-बीस का गरोह वनाकर चरते है। इनका मास वहुत स्वादिष्ठ होता है।

इनकी मादा मई, जून मे एक या दो वच्चे जनती है।

भरल

(BLUE WILD SHEEP)

भरल भी हमारे यहाँ की प्रसिद्ध जगली भेड है जो हमारे यहां तिव्वत मे भूटान और नेपाल के आसपास पायी जाती है। गरमियो मे यह पन्द्रह हजार फुट से भी अधिक ऊँचाई पर चली जाती है लेकिन जाडो मे हम इसे दस-वारह हजार फुट के आसपास देख सकते है।
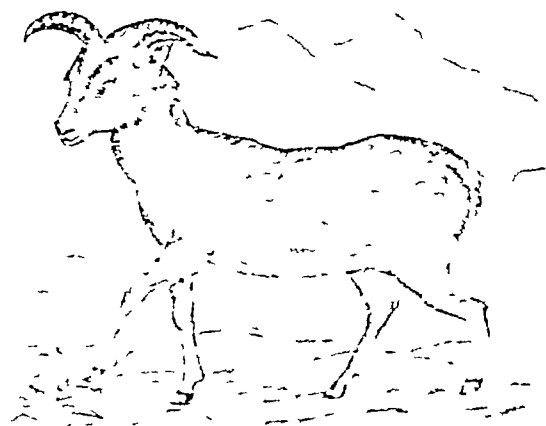
भरल

न्यान गरमियो मे पन्द्रह हजार फुट से नीचे नही उतरते, लेकिन जाडो मे काफी बर्फ जम जाने पर ये बारह हजार फुट तक चले आते है।

न्यान
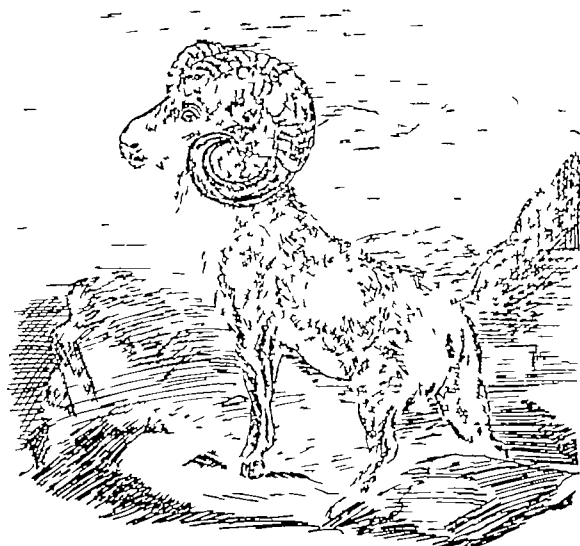
न्यान जगली बकरो से कुछ बडे होते है। ये छ से साढे छ फुट तक लम्बे और तीन-चार फुट ऊँचे होते है। मादाए नरो से कुछ छोटी होती है। ये गरोह बाँधकर रहते है।

न्यान के शरीर का ऊपरी रग भूरा होता हे लेकिन नीचे का सफेदी-मायल रहता है। जाडो मे इनका रग कुछ हलका हो जाता है। इनके शरीर के बाल छोटे, कडे और बहुत घने होते है।

न्यान का मास बहुत ही स्वादिष्ठ होता है। इसकी मादा गरमियो मे एक या दो बच्चे देती है।

उरियल

(URIAL)

उरियल भी पहाडी भेड है जो हिमालय के उत्तरी पश्चिमी ऊँचे प्रान्तो मे तथा जात्र की पहाडियो पर पायी जाती है। इसकी आदते बहुत कुछ न्यान से मिलती-जुलती होती है, लेकिन यह कद मे न्यान से कुछ छोटी होती है।

गुरल की बनावट बकरी-जैसी होती है। ये चार फुट लम्बे और दो ढाई फुट ऊँचे होते हैं। इनके नर और मादा के एक जैसे सीग होते हैं, लेकिन लम्बाई मे नर के सीग कुछ बडे होते हैं। ये प्राय चार-छ का छोटा गिरोह बनाकर रहते हैं और इन्हे जगलो के ऊँचे-नीचे और पथरीले मार्ग ही पसन्द आते हैं।

गुरल का रग खैरापन लिये हुए सिलेटीमायल भूरा रहता है जो नीचे जाते-जाते और भी हलका हो जाता है। पीठ पर काली पट्टी रहती है और गला सफेद रहता है। इनका मुख्य भोजन घास-पात है।

मादा अन्य भेड-बकरियो की तरह पाँच-छ महीने पर एक बच्चा जनती है। गुरल का मास बहुत स्वादिष्ट और कोमल होता है।

सेराव

(SEROW)

सेराव को बकरे और हिरन के बीच का जीव कहे तो ज्यादा ठीक होगा। यह हमारे यहाँ हिमालय के पश्चिमोत्तर प्रान्तो मे छ से बारह हजार फुट की ऊँचाई पर पाया जाता है।

सेराव बहुत सीधा-सादा जानवर है इसका सिर बडा और कद भारी होता है। इसके बाल कडे और पतले होते हैं, जो ज्यादा लम्बे नही रहते। गरदन के ऊपर बडे बालो की अयाल-सी रहती है।

सेराव

सेराव लगभग पाँच फुट लम्बा और तीन फुट ऊँचा जानवर है जिसका ऊपरी हिस्सा कलछौंह गाढा सिलेटी होता है। इसका सिर और गरदन काली, बगली हिस्से, सीना और राने कत्थई और नीचे का हिस्सा सफेद रहता है। नर और मादा दोनो सीगदार होते हैं लेकिन नर का सीग मादा से कुछ बडा लगभग १० इंच का रहता है। सेराव घने जगलो मे रहनेवाला शर्मीला जानवर है, जो ऊँची-नीची पहाडियो के आसपास रहता है। यह खडी पहाडियो पर चढने मे उस्ताद होता है।

भरल का कद उरियल से कुछ बडा और न्यान से कुछ छोटा होता है। इसके सीग उरियल और न्याय की तरह बहुत गोलाई से न घूम कर बाहर की ओर फैले-फैले-से रहते हैं। नर के सीग मादाओ से बडे होते है।

इनके बदन का ऊपरी भाग सिलेटी और निचला धुर सफेद रहता है, लेकिन जाडो में बदन के सिलेटीपन में कुछ भूरापन आ जाता है। नरो का चेहरा और दुम का आधे से ज्यादा भाग काला रहता है। इनके चारो पैरो के अगले भाग तथा पेट के दोनो बगल एक-एक काली पट्टी पडी रहती है।

यह भी गरोह में रहनेवाले जानवर हैं। इन गरोहो की तादाद कभी-कभी सौ-सौ तक की हो जाती है। इसका मास बहुत स्वादिष्ठ होता है।

भरल की मादा, अन्य भेड-बकरियो की तरह, पाँच-महीने पर गरमियो मे एक या दो बच्चे जनती है।

गुरल उपपरिवार

(SUB FAMILY RUPICAPRINAE)

इस उप-परिवार में गुरल के अलावा अपने यहाँ के प्रसिद्ध सेराव को रखा गया है। यहाँ इन्ही दोनो का वर्णन दिया जा रहा है।
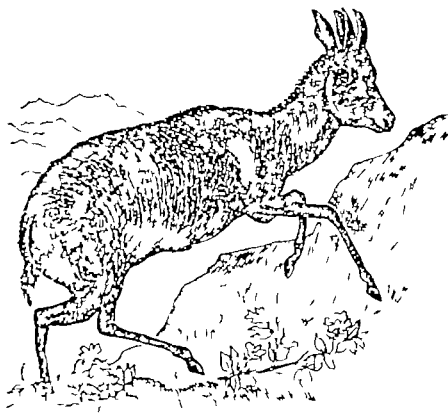
गुरल

गुरल

(GURAL)

गुरल को पहाडी हिरन कहना ठीक होगा। ये पहाडो पर की बडी आबादियो के आस-पास काफी तादाद मे पाये जाते है और प्रतिवर्ष इनका काफी सख्या में शिकार होता है। हिमालय में ये कश्मीर से भूटान तक पाये जाते है, जहाँ तीन हजार से आठ हजार फुट की ऊँचाई के जगलो में इन्हे बडी आसानी से देखा जा सकता है।

कोई निश्चित समय नही है और ये अपनी सुविधा के अनुसार दिन भर चरते रहते हैं। दिन मे ये जरूर थोडी देर के लिए विश्राम करते हैं और रोझो की तरह प्राय एक ही स्थान पर रोज विष्ठा करते हैं।

मृग

मादा प्राय अगस्त अथवा सितबर मे एक बच्चा जनती है। इनका मास कुछ रूखा जरूर होता है, लेकिन वह स्वादिष्ठ भी कम नही होता।

चिकारा

(INDIAN GAZELLE)

चिकारा को कही चिकारा या कलपुछ कहते हैं तो कही छिकारा या छिगार। ये मृगो से कद मे छोटे जरूर होते हैं लेकिन सुन्दरता मे उनसे कम नही कहे जा सकते। ये हमारे यहां के पूर्वी हिस्से को छोडकर सारे देश के जगलो मे पाये जाते हैं।

सेराव वैसे तो सीधा और डरपोक जानवर है, लेकिन घायल होने पर यह बडा भयकर हमला करता है। इनका मास सूखा और मामूली होता है।

जाडो में इसकी मादा एक बच्चा देती है।

मृग उपपरिवार

(SUB FAMILY ANTILOPEDAE)

मृग उप-परिवार में मृग और चिकारा आते है। ये दोनो ही अपने यहाँ के प्रसिद्ध जीव है। यहाँ इन दोनो का वर्णन दिया जा रहा है।

मृग

(BLACK BUCK)

मृग अपने यहाँ का सबसे प्रसिद्ध हिरन है। यह हमारे यहाँ हिरन के नाम से प्रसिद्ध है, वैसे तो इसके कालिया और कृष्णसार आदि कई नाम है।

मृग हमारे यहाँ सारे देश में फैले हुए है जो ऊँची-नीची पहाडियो से ज्यादा जगलों के आस-पास के खुले मैदानो को पसन्द करते है। कही-कही तो ये रोझ की तरह पहाडी और जगलो से दूर खुले मैदानो में रहने लगे है।

मृग चार फुट लम्बे और लगभग ढाई तीन फुट ऊँचे होते है। मादाएँ कुछ छोटी होती है और उनके सीग नही होते। नर के सिर पर पन्द्रह-बीस इच लम्बे सीग होते है जो घरारीदार और सीधे होते है। इन सीगो के कारण नर बहुत सुन्दर लगते है।

मृग के शरीर का ऊपरी और पैर का बाहरी हिस्सा भूरा या बादामी होता है, लेकिन नीचे का कुल हिस्सा धुर सफेद रहता है। नर ज्यो-ज्यो पुराने होते जाते है उनका ऊपरी भूरा हिस्सा कलछौंह होता जाता है।

मृग गरोह बाँधकर रहते है और अक्सर इनके पचीस-तीस के गरोह दिखाई पडते है जिनमें एक काला नर रहता है। ये बहुत तेज भागनेवाले जीव है जो भागते समय बहुत लम्बी छलाँगें मारते है जिसे हम चौकडी भरना कहते है।

मृग बहुत ढीठ जानवर है। जहाँ इनका शिकार नही होता वहाँ तो ये रोझो की तरह ढीठ हो जाते है और हमारी खेती का बहुत नुकसान करते है। इनकी चराई का

रोझ

(BLUE BULL)

रोझ हमारे यहाँ नीलगाय के नाम से प्रसिद्ध है। इनके नाम के साथ गाय शब्द जुट जाने से हमारे यहाँ कही-कही लोग इनको नही मारते। लेकिन ये वास्तव मे एक प्रकार के हिरन है जो हमारे खेतो के आसपास छोटे-छोटे गरोहो मे घूमते दिखाई पड़ते है। हमारे देश मे ये बगाल और आसाम को छोडकर करीब-करीब सारे देश मे पाये जाते है और अपनी ढिठाई के कारण जगलो के अलावा मैदानो और खेतो मे घूमते रहते है। इनसे हमारी खेती को बहुत नुकसान पहुँचता है।
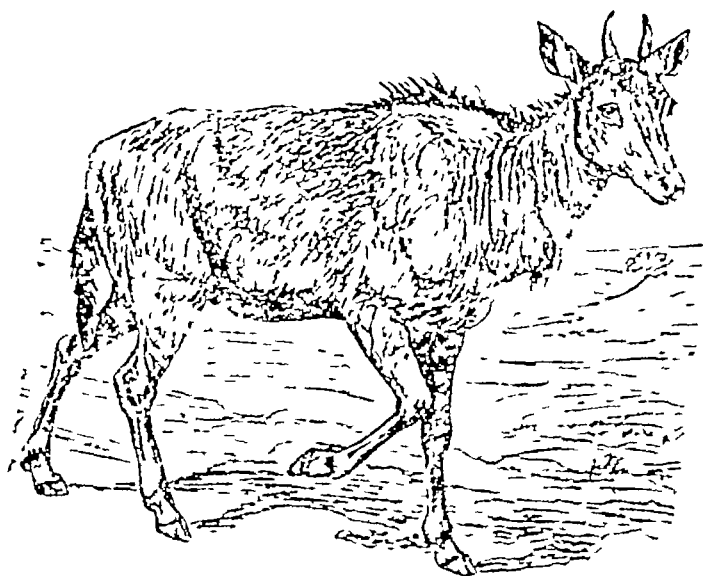
रोझ

रोझ काफी ऊँचे और भारी भरकम होते है जिनकी लम्बाई लगभग सात फुट और ऊँचाई पाँच फुट के करीब रहती है। नर के आठ-नौ इंच के छोटे सीग रहते है, लेकिन मादाएँ बिना सीग के ही होती है। नर जवान होने पर पिलछौंह या काले हो जाते है और उनके गले पर बालो का एक गुच्छा-सा निकल आता है।

रोझ के पिछले पैर अगले पैरो से कुछ छोटे होते है। इससे इनका अगला हिस्सा कुछ उठा-सा रहता है। इनका ऊपरी हिस्सा भूरा और नीचे का हिस्सा सफेद रहता है। इनका मुख्य भोजन घासपात है लेकिन मैदानो मे रहनेवाले रोझ ज्यादातर खेतो पर

इनके नर और मादा दोनो के सीग होते है। नर के सीग धारीदार रहते है, लेकिन मादा सादे और छोटे सीगोवाली होती है।

चिकारा

चिकारा के शरीर का ऊपरी समस्त हिस्सा और टाँगो का बाहरी हिस्सा हलके खैरे रग का होता है, लेकिन नीचे का सारा भाग सफेद ही रहता है।
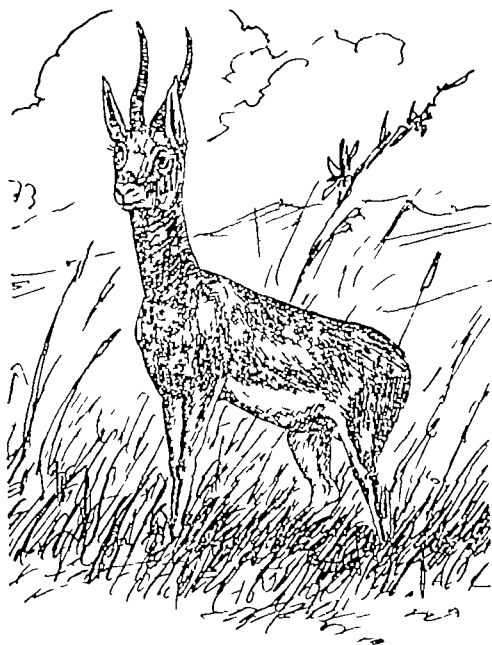
चिकारे मृगो की तरह बडे झुड बनाकर नही रहते। ये जोडे मे या चार-छ एक साथ रहते है। ये बहुत तेज भागनेवाले होकर भी मृगो की तरह चौकडी भरने के शौकीन नही है। इसी से इन्हे खुले मैदानो से ज्यादा ऊबड-खाबड जमीन और पहाडियां पसन्द है। ये खेतो के आस-पास कम दिखाई पडते है और हमारी खेती का ज्यादा नुकसान भी नही करते। खतरा निकट आने पर ये एक प्रकार की तेज सिसकारी भरते है और अपने अगले पैरो को जमीन पर पटकते है।

इनका मास बहुत स्वादिष्ठ होता है।

रोझ उपपरिवार

(SUB FAMILY TRAGELAPHINAE)

इस उपपरिवार में भी अपने यहाँ के दो प्रसिद्ध जानवर रोझ और चौसिगा रखे गये है। रोझ तो अब जगलो के अलावा हमारे खेतो और आबादियो के निकट रहने के आदी हो गये है, लेकिन चौसिगा जगलो में ही पाया जाता है।

यहाँ दोनो का वर्णन दिया जा रहा है।

चौसिंगा तितरे-बितरे जंगलों का निवासी है जिसे घने जंगल और ऊँचे पहाड़ पसन्द नहीं आते। यह अपनी शक्ल-सूरत में ही नहीं, अपनी आदतों में भी हमारे यहाँ के अन्य हिरनों से निराला होता है।

चौसिंगा बहुत शरमीला हिरन है जो प्रायः जोड़े में ही दिखाई पड़ता है। यह गरोह नहीं बनाता और प्रायः पानी के आस-पास ही रहता है।

इसका मांस रूखा होने पर भी स्वादिष्ठ होता है। मादा पाँच-छः महीने पर जनवरी-फरवरी के आस-पास एक या दो बच्चे देती है।

बारहसिंघा-परिवार

(FAMILY CERVIDAE)

बारहसिंघे अपने सुन्दर और शानदार बड़े सींगों के कारण अन्य हिरनों से अलग व्यक्तित्व रखते हैं। इनका परिवार काफी बड़ा है। इनकी कई जातियाँ हमारे देश में पायी जाती हैं।

इन जीवों के प्रायः सभी नरों के लम्बे सींग होते हैं जिनमें अनेक शाखें फूटी रहती हैं। ये सींग हर साल या कई साल पर एक बार गिर जाते हैं और इनके स्थान पर नये सींग निकल आते हैं। नये सींगों की बाढ़ इतनी तेजी से होती है कि तीन-चार महीने के भीतर ही ये पहले जैसे हो जाते हैं। शुरू में तो ये नये सींग मुलायम रहते हैं और इनकी सतह मखमल जैसी होती है, लेकिन बाढ़ पूरी हो जाने पर यह खाल सूखकर चमड़े जैसी कड़ी हो जाती है। इस समय इनमें बड़ी खुजलाहट उठती है और तब ये पेड़ की डालों से अपने सींग रगड़कर इस खाल को छुड़ा डालते हैं।

उत्तरी गोलार्द्ध के बर्फीले देश के रेनडियर नाम के बारहसिंघे को छोड़कर बाकी सब बारहसिंघों में केवल नर के ही बड़े सींग रहते हैं। मादाएँ कद में नर से कुछ छोटी होती हैं। ये जीव भारी भरकम होने पर भी बहुत तेज भागते हैं। इसी कारण इनका शरीर भी बहुत सुन्दर और गठा हुआ रहता है।

इसी परिवार में एक कस्तूरा नाम का जीव भी है जिसके सींग नहीं होते और जिसके नर की दुम के नीचे एक थैली या ग्रन्थि रहती है। इसी थैली से एक गाढ़ा पदार्थ निकलता है जिसे हम कस्तूरी या मुश्क कहते हैं।

यहाँ अपने देश के कुछ प्रसिद्ध बारहसिंघों का वर्णन दिया जा रहा है।

ही हमला करते हैं। ये दिन को किसी निरापद स्थान में बैठकर आराम करते हैं और प्राय एक ही जगह नित्य विष्ठा करते हैं।

इनकी मादा आठ-नौ महीने पर एक या दो बच्चे जनती हैं। इनका मास बहुत मामूली और रूखा होता है।

चौसिंगा

(FOUR HORNED ANTILOPE)

चौसिंगा चार सीगोवाला हिरन है जैसा इसके नाम से स्पष्ट है। हमारे देश में यह हिमालय की तराई, मध्य प्रदेश, राजपूताना, बबई और पजाब के जगली हिस्सो मे पाया जाता है।
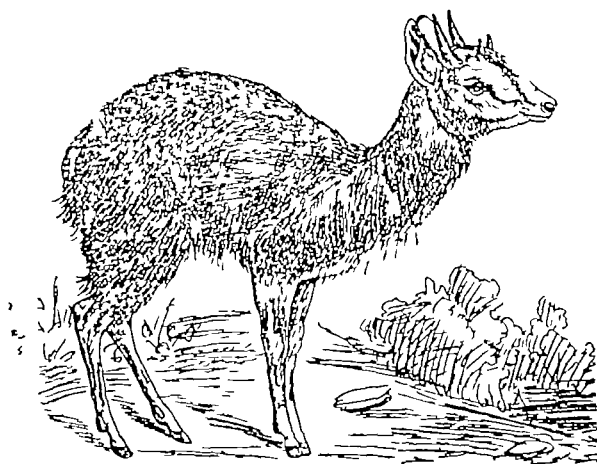
चौसिंगा

इसके नर-मादा एक ही रग के होते है, लेकिन सीग केवल नरो के ही रहते है। इसके शरीर का ऊपरी हिस्सा बादामी भूरे रग का और नीचे का सफेद रहता है। पीठ पर के भूरे रग में एक प्रकार की ललाई मिली रहती है। इसकी लम्बाई तीन साढे तीन फुट से ज्यादा नही होती और ऊँचाई में भी यह दो, सवा दो फुट का रहता है। मादा नर मे कुछ छोटी होती है।

बारहसिंघा चार फुट से कुछ कम ऊँचा और लगभग छ फुट लम्बा होता है। इसके सीग भी करीब तीन फुट के हो जाते है जिनमे शाखें फूटी रहती है। गरमी और जाडो में इनके शरीर का रग बदल जाता है। जाडो में इनका ऊपरी हिस्सा बादामी रहता है तो गरमियो में वह खैरा हो जाता है और उस पर अक्सर सफेद चित्तियाँ पड जाती है। पेट, गला और टाँगो का भीतरी हिस्सा सफेद या सफेदी मायल रहता है, दुम के नीचे का हिस्सा हमेशा सफेद रहता है। मादा का रग नर से हल्का रहता है, लेकिन बच्चे चित्तीदार रहते है।

बारहसिंघो के जोडा बाँधने का समय फरवरी से मार्च तक रहता है। इसी समय इनके गिरे हुए सीगो के स्थान पर नये और सुन्दर सीग निकल आते है।

इनका मुख्य भोजन घास-पात है। ये रात मे चराई करके दिन मे किसी निरापद स्थान पर बैठकर आराम करते है। इनका मास रूखा और स्वादिष्ठ होता है।

हगल

(KASHMIRE STAG)

हगल कश्मीरी बारहसिंघा है। यह कश्मीर के जगलो के सिवा और कही नही पाया जाता। वहाँ यह चीड के जगलो मे अधिक पाया जाता है और गरमियो मे बारह हजार फुट की ऊँचाई तक चढ जाता है।

हगल बारहसिंघो मे सबसे भारी होते है। इनके नर सीगदार होते है, जिनके प्रत्येक सीग मे प्राय पाँच शाखाएँ फूटी रहती है। कभी-कभी छ शाखाओवाले सीग के हगल भी पाये जाते है। ऊँचाई में ये चार, सवा चार फुट और लम्बाई मे सात, साढे सात फुट तक के हो जाते है। इनके सीग भी लगभग तीन फुट लम्बे होते है। नर की गरदन पर ऊपर तथा नीचे बडे-बडे बाल रहते है।

हगल के बदन का रग भूरापन लिये राखी होता है जिसमे दुम के चारो ओर का हिस्सा सफेद रहता है। बगल के हिस्से और पैर हल्के रग के होते है। गरमियो मे हगलो का रग चमकीला रहता है और इसमे ललाई अधिक रहती है। बच्चे चित्तीदार होते है जिनकी चित्तियाँ कई साल मे गायब हो जाती है।

हगल भी गरमियो मे अकेले या छोटे-छोटे गरोहो मे हो जाते है लेकिन जाडा आने पर ये अपना बडा गरोह बना लेते है। नर सात के लगभग अपने सीग गिराने

बारहसिंघा

(BARASINGHA)

हमारे यहाँ का प्रसिद्ध बारहसिंघा माहा कहलाता है। इसके प्रत्येक सींग में छ-छ शाखें फूटी रहती हैं। इसी लिए इसे बारहसिंघा का नाम मिला है जो ठीक ही है। इस देश में ये हिमालय की तराई तथा मध्यप्रान्त के जगलो में पाये जाते हैं।

बारहसिंघा

बारहसिंघा बहुत सुडौल होता है। इसके शरीर के बाल कडे और मोटे होते हैं जो गरदन के पास काफी बडे हो जाते हैं। इसकी दुम छोटी होती है। यह झुड में रहने-वाला जानवर है जो गरमियो में अकेले ही रहना पसन्द करता है लेकिन जाडो में इनके बडे-बडे गरोह बन जाते हैं। इन्हें घने जगलो से ज्यादा तितरे-बितरे जगल और ऐसे घास के मैदान पसन्द आते हैं जिनके बीच-बीच में पेड हो।

ऊँचाई पर पाये जाते है, लेकिन इनके रहने के मुख्य स्थान ऊँचे-नीचे पहाडी जगल है। इन्हे खुले हुए पहाड और मैदान पसन्द नही आते। पहाडी जगलो मे ये इतना भारी शरीर लेकर इस खूबी से भागते है कि देखकर बडा अचरज होता है।

साँभर हमारे यहाँ के बारहसिंघो मे सबसे बडे होते है। ये पाँच फुट ऊँचे और सात-आठ फुट लम्बे होते है, लेकिन मादा कद मे कुछ छोटी और बिना सीगो की होती है। नर के सीग तीन से चार फुट तक लम्बे होते है जिनमें तीन शाखाएँ फूटी रहती है।
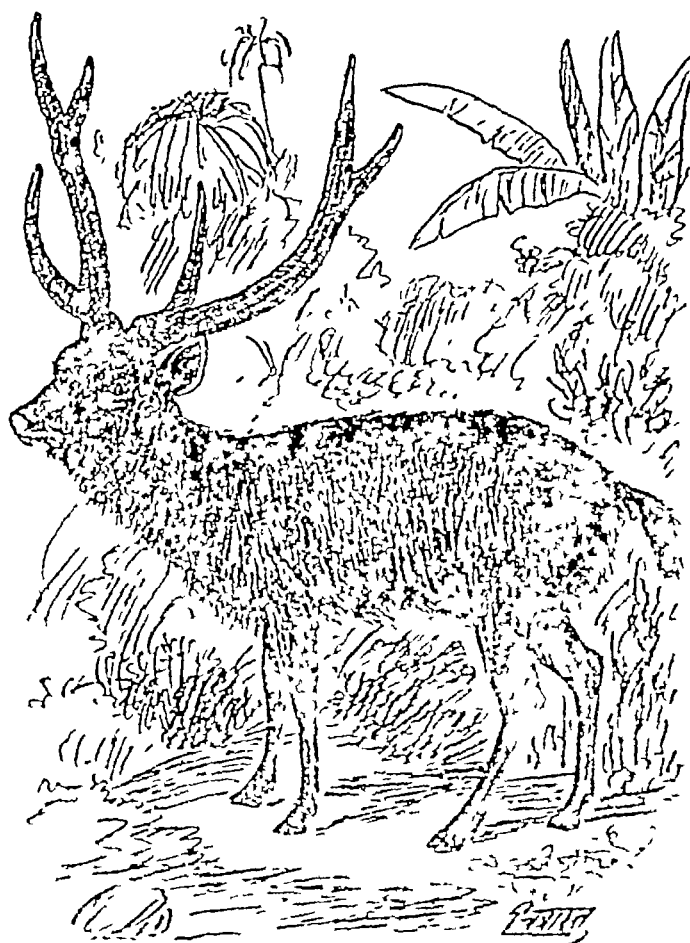
साँभर

साँभर अपना ज्यादा समय जगलो मे ही बिताते है। इनका इतना अधिक शिकार होता है कि ये रोजो की तरह ढीठ न होकर हमेशा बहुत चौकन्ने रहते है। ये जगल

हैं जो अक्टूबर तक फिर निकल आते है। जाडे के साथ ही साथ इनके जोडा बॉंधने का समय प्रारभ हो जाता है। उस समय ये अपने नये सीगो के कारण बहुत सुन्दर लगते है। इनकी बोली भी हमें इन्ही दिनो अधिक सुनाई पडती है जो बैलो की बोली से मिलती-जुलती रहती है।

हगल

हगल का मुख्य भोजन घास-पात है। इन्हें ऐसे घने जगल पसन्द हैं जिनके पास-पडोस में हरी घास के मैदान और पानी के चश्में हो। ये एक स्थान पर रहना पसन्द नही करते और इधर-उधर चक्कर लगाते रहते है। इनकी मादाओ को मिनियामार कहते है जो लगभग छ महीने पर अप्रैल के करीब बच्चे जनती हैं।

साँभर
(SAMBAR)

साँभर हमारे यहाँ के सबसे प्रसिद्ध बारहसिंघे है, लेकिन इनके प्रत्येक सीग में छ के बजाय तीन ही शाखाएँ रहती है। हमारे देश में ये प्राय सभी पहाडी जगलो में काफी बडी सख्या मे फैले हुए हैं। ये हिमालय की ओर आठ, दस हजार फुट तक की

चीतल भी गरोह बांधकर रहनेवाला जानवर है जिसके झुंड कभी-कभी सौ-सौ तक के हो जाते हैं। इसे जलाशय के आस-पास के झाड़ी और बांस से भरे हुए स्थान बहुत पसन्द आते हैं। वैसे तो यह सांभर की तरह रात में ही घास-पात चरता है लेकिन कुछ दिन चढ़ने पर भी इसकी चराई का क्रम चलता रहता है। यह दिन को आराम करके शाम को फिर चराई के लिए निकल पड़ता है।
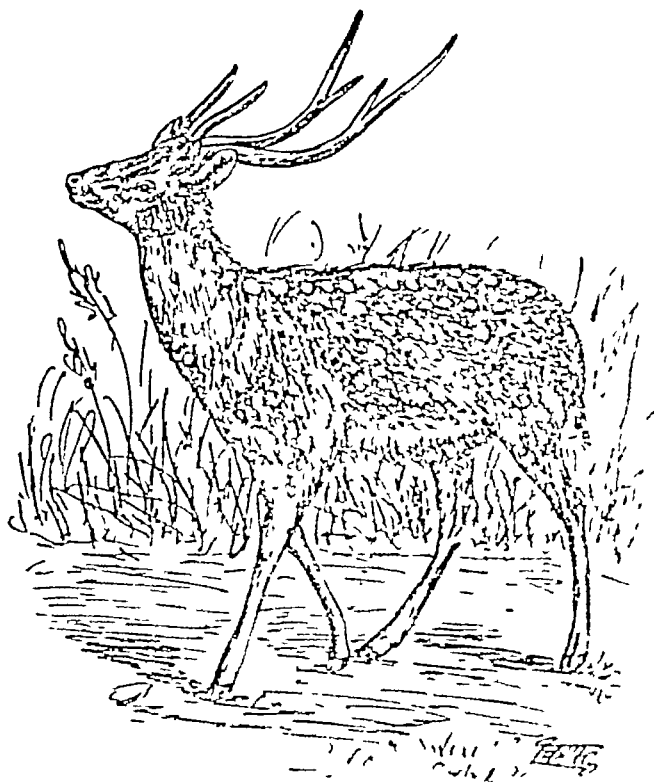
चीतल

इसके जोड़ा बांधने का समय वैसे तो सितम्बर है, लेकिन यह बीच में भी जोड़ा बांध लेता है। इसी तरह इसके सींग गिराने का भी कोई निश्चित समय नहीं है। इसकी बोली बड़ी तेज होती है। चितरी छ–आठ महीने पर एक या दो बच्चे जनती है।

इसका मांस नरम और स्वादिष्ट होता है।

के बीच के मैदानो मे अक्सर साँझ-सवेरे चरते हुए दिखाई पड जाते है, लेकिन इनकी चराई का असली समय रात ही है। ये जगल के पास-पडोस के खेतो का बहुत नुकसान करते है।

साँभर ज्यादा बडे झुड नही बनाते और अक्सर चार-छ से दस-बारह के गरोह में ही रहना पसन्द करते हैं। इनका मुख्य भोजन घास-पात है लेकिन इसके अलावा ये जगली फल-फूल और नरम कल्ले भी बडे मजे मे खाते है। इनके जोडा बाँधने का समय अक्टूबर-नवम्बर है जब ये अपना गरोह बडा कर लेते है। इन्ही दिनो नर बैलो की तरह बोलते है।

साँभर के सीग मार्च के करीब गिर जाते है और अक्टूबर तक फिर नये सीग निकल आते है। यही समय इनके जोडा बाँधने का है। कही-कही साँभर हर साल सीग नही गिराते और उनके सीग गिराने का समय हर दूसरे साल आता है।

साँभर के शरीर का रग कत्थई रहता है जो नीचे की ओर हलका हो जाता है। मादा कद में नर से कुछ छोटी और बिना सीगोवाली होती है। यह पाँच-छ महीने पर बच्चे देती है।

अन्य बारहसिघो की तरह इसका मास भी रूखा और स्वादिष्ठ होता है।

चीतल

(SPOTTED DEER)

चीतल, जैसा इसके नाम से ही स्पष्ट है, चित्तीदार बारहसिघा है। यह कद में छोटा होने पर भी सुन्दरता में सबसे आगे है। इसको चितरा और झाँक भी कहते है। हमारे देश में यह पजाब और राजपूताना को छोडकर प्राय सभी जगलो में पाया जाता है। इसे वैसे तो तराई के जगल ही पसन्द है, लेकिन यह हिमालय और दक्षिण के पहाडो पर भी तीन-चार हजार फुट तक की ऊँचाई पर देखा जा सकता है।

चीतल लगभग पाँच फुट लम्बा और तीन, सवा तीन फुट ऊँचा होता है। इनके नरो के करीब तीन फुट लबे सीग होते है जो तीन शाखाओवाले होते है। इनके शरीर का रग बादामी होता है जिस पर सफेद चित्तियाँ पडी रहती हैं। गरदन का ऊपरी हिस्सा, पेट तथा टाँगो का भीतरी भाग सफेद रहता है। सिर का रग भूरा रहता है जिस पर चित्तियाँ नही होती।

की चित्तियाँ पड जाती है जो दूर से धारी-सी जान पडती है। बच्चे पांच-छ महीने तक चित्तीदार रहते है।

पाढा झुड बनाकर नही रहता। ये अक्सर अकेले या दो-तीन एक साथ दिखाई पडते है। ये जाडो मे जोडा बांधते है और मादा सात-आठ महीने बाद बच्चा देती है।

इसका मास रूखा और स्वादिष्ठ होता है।

काकड
(BARKING DEER)

काकड बारहसिंघे का भाई-बन्धु है, लेकिन इसके सीगो मे थोडा फर्क रहता है। इसके सीग बारहसिंघे के सीगो की तरह हर साल या कई साल पर गिरते जरूर है लेकिन पूरे सीग न गिरकर सीगो का थोडा-सा ऊपरी हिस्सा ही गिरता है।
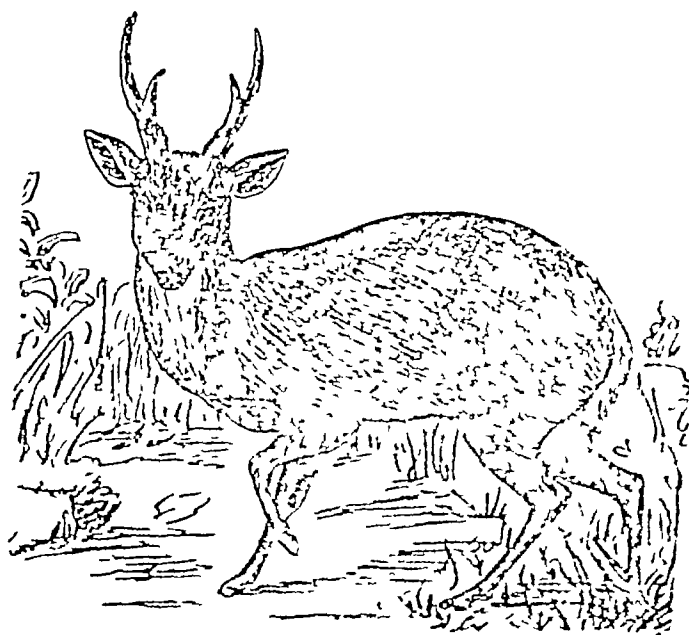
काकड

काकड हमारे देश का बहुत प्रसिद्ध जानवर है जो हमारे यहां की सभी जगलोवाली पहाडियो पर पाया जाता है। मध्यप्रान्त और पश्चिम की ओर इसकी सख्या जरूर बहुत

पाढा

(HOG DEER)

पाढे को छोटा बारहसिंघा कहना ठीक होगा। इसे कही-कही लगुना या खरलगुना भी कहते है। हमारे देश में ये हिमालय की तराई में काफी सख्या मे पाये जाते है। इसके अलावा दक्षिण की ओर मोन नदी तक के ऊँचे नीचे हलके जगलो, कछारो और घास के मैदानो मे भी कभी-कभी मिल जाते है।

पाढा

पाढा दो फुट से ज्यादा ऊँचा और साढे तीन फुट से ज्यादा लम्बा नही होता है। मादा इससे भी छोटी होती है। नरो के सीग होते है जो लगभग एक फुट लम्बे और तीन-तीन शाखाओवाले रहते है। ये अपने सीग मार्च-अप्रैल में गिराते है।

पाढा के बदन का ऊपरी हिस्सा भूरा, हलका कत्थई या बादामी होता है। नीचे का हिस्सा हलके रग का रहता है। दुम का निचला हिस्सा सफेद रहता है। गरमियो में पाढे का रग हलका हो जाता है और दोनो बगली हिस्से पर हलके भूरे या सफेद रग

कस्तूरी मृग हमारा वहुत ही परिचित मृग है जो अधिकतर हिमालय के जगलो मे पाया जाता है। यह आठ हजार फुट से ऊँचे जगलो मे ही रहता है। इस मृग की ऊँचाई दो फुट से कम ही रहती है और लम्बाई मे भी यह तीन फुट से ज्यादा नहीं होता। इसके वदन का रग गाढा भूरा रहता है जिस पर कही-कही सिलेटी चित्तियाँ पडी रहती हैं। नीचे का हिस्सा हलका रहता है और रानो का भीतरी हिस्सा सफेदी मायल रहता है। किसी-किसी के गाल के दोनो ओर एक-एक सफेद गोल चित्ता पडा रहता है। बच्चो के वदन पर सफेद या पिलछौंह चित्तियाँ पडी रहती हैं।
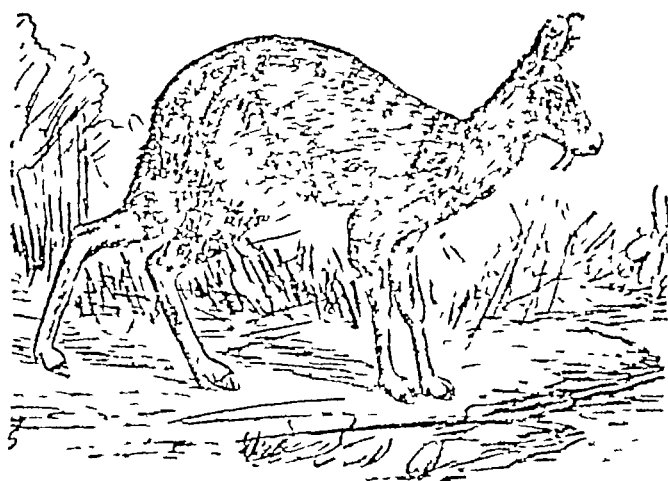
कस्तूरी-मृग

कस्तूरी-मृग के वदन के वाल अजीव वनावट के होते हैं। ये लम्बे और मोटे तो होते ही हैं, साथ-ही-साथ उनमे लहर-सी पडी रहती है और उनका निचला हिस्सा सफेद रहता है। इसकी टाँगे लम्बी होती हैं और अगली से पिछली टाँगे बडी रहती हैं। इसीलिए इसकी चाल खरगोश या कगारू की तरह लगती है।

कस्तूरी-मृग अकेला रहनेवाला जानवर है जो गरोह नही बाँधता। यह जोडे के साथ भी वहुत कम दिखाई पडता है। इसे घने, ऊँचे और ढलुवे जगल वहुत पसन्द हैं जिन पर यह बडी फुर्ती से चढ-उतर लेता है। इसकी चराई का समय सुबह-शाम है। दिन को यह जमीन मे आराम करने के लिए गड्ढा-सा खोद लेता है और उसी मे बैठकर सारा दिन काट देता है। इसका मुख्य भोजन घास-पात है। इसका मांस वहुत स्वादिष्ट होता है।

कम है। इसे मैदान पसन्द नही। इसीलिए यह हिमालय पर भी पॉच-छ हजार फुट तक चला जाता है।

काकड दो फुट से कुछ कम ही ऊँचा होता हे और उसकी लम्वाई भी तीन फुट से ज्यादा नही होती। नर के सीग सात-आठ इच के रहते है जिनमे दो शाखाएँ रहती है। मादा बिना सीगो की होती है। इसका रग गाढा कत्थई रहता हे जो ऊपर कलछाह और नीचे हलका हो जाता है। चेहरा ओर पैर हलके भूरे रग के रहते है और गले का ऊपरी हिस्सा, पेट और दुम का निचला हिस्सा मफेद रहता हे। वच्चे चित्तीदार होने है।

काकड इतनी तेज आवाज करता है कि सहसा यह विश्वास ही नही होता कि इतना छोटा जानवर ऐसी तेज आवाज करेगा। इसकी आवाज सवेरे-शाम तो सुनाई ही पडती है, लेकिन जोडा बॉधने के समय हम उसे अक्सर सुन सकते है। यह गरोह नही वनाता और अक्सर अकेला या जोडा वनाकर ही रहता हे। इसे मैदान से ज्यादा घने जगल पसन्द है, जहॉ से यह सिर्फ चराई के समय ही वाहर निकलता है। चरते समय यह जगल से दूर नही जाता और जरा-सी आहट पाते ही फिर जगल मे घुस जाता हे। भागते समय यह अपना सिर नीचा करके ओर पिछला हिस्सा उठाकर वडे वेढगे तरीके से चलता है।

काकड का मुख्य भोजन घास-पात है, लेकिन पालतू हो जाने पर यह पका हुआ गोश्त तक खा लेता है। इमके कुकुरदन्त बहुत तेज होते है जिनसे यह दवाव मे पडने पर कभी-कभी काट भी लेता हे। इसकी जवान वहुत लम्वी होती हे जिससे यह अपना चेहरा चाटता रहता है।

काकड के जोडा वॉधने का समय जनवरी, फरवरी है। इसकी मादा करीव पॉच महीने पर एक या दो वच्चे देती हे। इसका मास रूखा किन्तु स्वादिष्ठ होता है।

कस्तूरी-मृग

(MUSK DEER)

कस्तूरी-मृग वारहसिघा परिवार का होकर भी बिना सीग का ही हिरन हे। इमे इसके मुश्क या कस्तूरी के कारण ही कस्तूरी-मृग कहा जाता हे। इसे कश्मीर मे रोस और गढवाल मे वेना या मश्कनामा कहते है, लेकिन इसका कस्तूरी-मृग नाम सब से प्रसिद्ध हे।

है। नीचे का हिस्सा सफेद रहता है और गरदन के बगली हिस्से पर भी नीचे की ओर से तीन सफेद आडी पटरियाँ दोनो ओर चली जाती है।
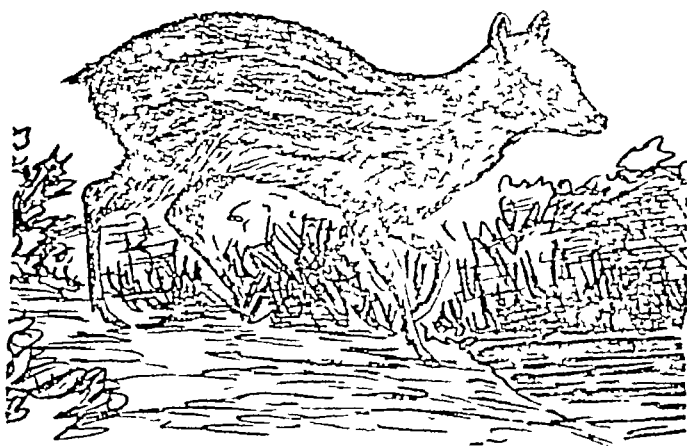
पिसूरी

पिसूरी प्राय अकेला ही रहता है और कभी खुले मैदानो की ओर नही जाता। यह हमेशा जगलो मे पत्थरो और चट्टानो के आस-पास ही रहना पसन्द करता है जिससे खतरा निकट आने पर इसे छिपने मे देर न लगे। दिन को यह किसी गुफा या चट्टान के नीचे घुसकर आराम करता है। इसका मुख्य भोजन घास-पात है।

पिसूरी बहुत सीधा और डरपोक जानवर है। यह जून, जुलाई मे जोडा बाँध लेता है लेकिन जाडे का प्रारभ होते ही नर-मादा दोनो अलग-अलग रहने लगते हैं। मादा इसी के आस-पास दो बच्चे जनती है। इसका मास बहुत स्वादिष्ट होता है।

उष्ट्र-समूह

(SECTION TYLOPODA)

इस समूह मे वे लम्बी गरदनवाले जीव है जो अपने लम्बे अगो के लिए प्रसिद्ध है। इसमे ऊँट और अलपका नाम के जीव रक्खे गये है जिनके सिर पर सीग नही होते। इनके पैर बीच से फटे रहते है जिनमे खुर की जगह नाखून रहते है।

इस समूह मे एक ही परिवार है जो ऊँट-परिवार कहलाता है।

कस्तूरी मृग के जोडा बाँधने का समय जाडा है, जब नर के पेट के पास की ग्रन्थि में एक प्रकार का गाढा कलछौंह सुगन्धित पदार्थ जमा हो जाता है। यही कस्तूरी या मुश्क है जो बहुत कीमती बिकता है। मादा करीब पाँच महीने बाद एक या दो बच्चे जनती हैं।

पिसूरी-समूह

(SECTION TRAGULINA)

इस छोटे समूह में केवल एक ही वर्ग हमारे यहाँ पाया जाता है। इसके जीव कद मे बहुत छोटे होते है और इनके सिर पर सीग नही होते। इनके उदर शफ वर्ग के अन्य जीवो के उदर की तरह चार खानेवाले न होकर तीन ही खानेवाले होते हैं और नर प्राणियो के कुकुरदन्त काफी बडे होते हैं।

इस समूह मे केवल एक ही परिवार है जो पिसूरी-परिवार (Family Tragulidae) कहलाता है।

पिसूरी-परिवार

(FAMILY TRAGULIDAE)

इस छोटे परिवार में केवल एक छोटा जानवर है जो हमारे देश मे कही-कही पाया जाता है। यह वने जगलो मे रहनेवाला प्राणी है जिसका वणन नीचे दिया जा रहा है।

पिसूरी

(INDIAN MOUSE DEER)

पिसूरी कद में सब हिरनो से छोटा होता है और इसी से यह जल्द हमारी निगाह तले नही पडता। यह हमारे यहाँ मध्यप्रान्त के पूर्वी भाग के जगलो में तथा दक्षिण भारत के वनों में पाया जाता है, लेकिन अपने छोटे कद, शरमीले स्वभाव तथा छिपने की आदत से यह हमें बहुत कम दिखाई पडता है। यही कारण है कि इसके स्वभाव के बारे में अभी तक ज्यादा जानकारी नही हो सकी है।

पिसूरी की ऊँचाई एक फुट से ज्यादा नही होती। लम्बाई में भी यह डेढ से दो फुट तक रहता है। इसके शरीर के बाल घने, पतले और मुलायम होते है। इसके बदन का ऊपरी हिस्सा भूरा रहता है जिस पर कई कतारो मे घनी पीली चित्तियाँ पडी रहती

घोड़े की तरह ऊँट का ऊपरी ओठ ही उसकी मुख्य स्पर्शेन्द्रिय है, जो दो हिस्सों में बँटी रहती है। इसके कूबड़ की बनावट भी कम आश्चर्यजनक नहीं होती। यह वास्तव में एक चरबी का पिण्ड है जिसमें चरबी जमा रहती है। ऊँट जब रेगिस्तान का लम्बा सफर करता है तो उसको कभी-कभी हफ्तों भोजन नहीं मिलता। उस समय उसके इसी कुहाने में जमी चरबी उसके शरीर का पोषण करती है। इसी लम्बे सफर के बाद ऊँट का कुहाना काफी छोटा हो जाता है। लम्बे सफर में इसके भोजन की समस्या को तो बहुत कुछ इसका कूबड़ सुलझा देता है, लेकिन प्यास के मामले में वह इसकी कुछ भी मदद नहीं करता। ऊँट ने इसीलिए अपने पेट में जल संग्रह करने के लिए करीब आठ सौ छोटी-छोटी थैलियों का विकास कर लिया है जिनमें वह अपने सफर के लिए काफी पानी भर लेता है।
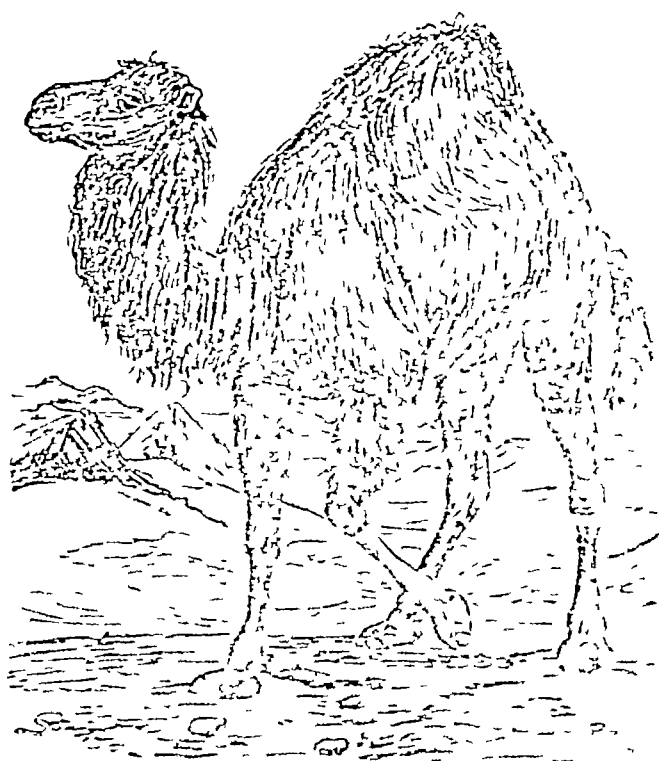
ऊँट

ऊँट की सूँघने की शक्ति बहुत तेज होती है और वह बहुत दूर से रेगिस्तान में पानी का पता लगा लेता है। इसकी चाल भी अन्य जीवों से भिन्न होती है। इसके

ऊँट-परिवार

(FAMILY CAMELIDAE)

ऊँट अपने परिवार का अकेला प्राणी है जो घोडो की तरह पालतू कर लिया गया है और अब इसकी जगली जाति ससार में कही भी नही पायी जाती। मनुष्यो के लिए यह बहुत उपयोगी जीव है जिसे रेगिस्तान मे सफर करने के लिए ही प्रकृति ने मानो खास तौर पर बनाया है।

ऊँट की एक जाति एशिया में और दूसरी अफ्रीका मे पायी जाती है। एशिया के ऊँट की एक किस्म और होती है जो बैक्ट्रिया के ऊँट कहलाते है। इनकी पीठ पर एक के बजाय दो कूबड या कुहाने होते हैं। ये हमारे यहाँ के ऊँटो मे, जो वास्तव में अरब के ऊँट है, कद में बडे होते है।

ऊँट

(CAMEL)

ऊँट हमारा बहुत ही परिचित पालतू जीव है। इसे रेगिस्तान का जहाज कहा जाता है जो वास्तव में सही ही है। अगर ऊँट हमारे अधीन न होते तो इन बडे-बडे रेगिस्तानो मे आना-जाना सभव न होता। मनुष्यो के लिए ये गाय-बैल और घोडो की तरह ही उपयोगी जानवर है।

ऊँट को हम सब ने देखा ही है। अत उसके विशेष परिचय की जरूरत नही है। यह लम्बा और ऊँचा जानवर है जो करीब आठ फुट ऊँचा और दस फुट लम्बा होता है। इसी में इसकी लम्बी गरदन भी शामिल है। इसकी टाँगे काफी लम्बी होती है जिन पर इसका भारी शरीर टँगा-सा रहता है। इसकी गरदन आगे की ओर काफी बढी रहती है और पीठ पर एक कुबक-सा उठा रहता है जिसे कुहाना कहते हैं। इसके बदन का रग हलका भूरा रहता है और इसके बाल बहुत मुलायम होते हैं। नर ऊँटो का रग कुछ गहरा रहता है और वे कद में भी मादा से बडे होते हैं।

हमारे यहाँ जो ऊँट पाये जाते है वे अरब जाति के हैं। इनकी पीठ पर एक ही कुहाना रहता है। बैक्ट्रिया के या दो कुहानेवाले ऊँट यहाँ नही पाये जाते। वे मध्य एशिया के निवासी है।

जाते है लेकिन नीचे के बडे और सीधे ही रहते है। जब ये अपने जबडो को बन्द कर लेते है तो इनके ऊपर और नीचे के कुकुरदन्त आपस मे रगड खाते है जिससे इनकी नोक हमेशा तेज बनी रहती है। इनके ये दांत इतने तेज होते है कि उनसे ये बडा भयकर हमला करते है और दुश्मनो का पेट तक फाड डालते है।

इनके पैर चार हिस्सो मे बँटे रहते है जिनमे के आगे के दोनो हिस्से बडे और पीछे के छोटे होते है। पीछेवाले छोटे खुर उनकी टांगो मे पीछे की ओर लटके रहते है और उनसे चलने मे इन्हें किसी प्रकार की सहायता नही मिलती।

इन जीवो की सूघने की शक्ति बडी तेज होती है जिससे ये जमीन के भीतर की स्वादिष्ठ जडो का पता लगा लेते है। जडे और फल-फूल को ही इनका मुख्य भोजन मानना चाहिए। वैसे तो ये आलू, गन्ना, शकरकद, नाज के अलावा कभी-कभी कीडे-मकोडे और गिरगिट वगैरह भी चट कर जाते है।

इस परिवार के तीन मुख्य जीवो का वर्णन यहां दिया जा रहा है।

बनैला सुअर

(WILD BOAR)

बनैले या जगली सुअर को बनैला, बदैल और बरहा भी कहते है। हमारे यहां ये सारे देश में फैले हुए है और इनकी काफी बडी सख्या हिमालय मे भी बारह हजार फुट तक पायी जाती है।

जगली सुअर शकल-सूरत मे हमारे देशी सुअरो जैसे होते है, लेकिन इनके नरो के बडे और नोकीले दांत रहते है। ये लगभग पांच फुट लम्बे और ढाई-तीन फुट ऊँचे होते है लेकिन इनका वजन तीन-चार मन से कम नही रहता। इनका मुंह लम्बा, थूथन चपटा और चकले-सा रहता है। नर मादा से बडे होते है और उनके निचले दांत पांच-छ इच बाहर की ओर निकले रहते है। इन्ही तेज दांतो से सुअर अपनी आत्मरक्षा के समय बडा भयकर हमला करते है और अपने से दूने-चौगुने कद के जानवरो का पेट फाड डालते है।

जगली सुअरो का रग देशी सुअरो की तरह कलछौंह होता है, लेकिन उनमे कभी-कभी सफेद या कत्थई रग की झलक रहती है। इनके ऊपरी हिस्से पर मुट्ठी से लेकर

समय भालू की तरह इसके एक ओर की दोनो टॉगे एक साथ ही उठती है जिसमे इसकी चाल अजीब-सी लगती है और इसके सवार का सारा शरीर झकझोर उठता है।

रेगिस्तानवाले प्रदेश के लिए ऊँट वहुत ही उपयोगी जीव है क्योंकि वहाँ के लोग इससे सवारी का ही काम नही लेते वल्कि इसका माम भी खाते है और दूध भी पीते है। यही नही, इसके चमडे से जूते आदि वनाये जाते है और इसके वाल से कम्वल तथा अन्य ऊनी कपडे भी तैयार किये जाते है।

शूकर-समूह

(SECTION SUINA)

शूकर-समूह मे थोडे ही जानवर है। सुअरो के अलावा इसमे अफ्रीका निवासी विशालकाय हिप्पापोटेमस भी है जिसे दरियाई-घोडा कहा जाता है।

इन जीवो की खाल वहुत मोटी होती है। इनमे कुछ के शरीर पर तो कडे वाल होते है, और कुछ का शरीर सादा ही रहता हे।

इस समूह को सुअर-परिवार तथा हिप्पो-परिवार मे वॉटा गया है, लेकिन चूंकि हमारे यहाँ केवल सुअर-परिवार के ही जीव पाये जाते है इससे यहॉ उसी परिवार का वर्णन दिया जा रहा है।

सुअर-परिवार

(FAMILY SUNIDAE)

सुअर-परिवार मे सुअर ही अकेला है जैसे कोई इसके साथ रहने को राजी ही न हुआ हो। इन जीवो की खाल वहुत मोटी होती है और इनके शरीर के बाल वहुत कडे होते है। इनका थूथन आगे की ओर चपटा रहता है जिसमे भीतर की ओर मुलायम हड्डी का एक चक्कर-सा रहता है जो थूथन को कडा वनाये रहता है। इसी गोल और चपटे थूथन के सहारे ये वडी आसानी से जमीन खोद डालते है और वडे-वडे पत्थरो को सहज ही मे उलट देते है।

इनके जवडे के कुकुरदन्त आगे की ओर वढे रहते है जिससे ये जडो को आसानी से काट लेते है। इनके ऊपर के कुकुरदन्त तो वाहर निकलकर ऊपर की ओर घूम

सानो बनैल
(PIGMY HOG)

सानो बनैल का निवास-स्थान नेपाल है। वहाँ यह तराई के जंगलों में काफी संख्या में पाया जाता है। इसके अलावा देश में यह और कहीं नहीं पाया जाता।

सानो बनैल कलछौंह भूरे रंग का सुअर है, जो कद में दो सवा दो फुट लम्बा और करीब एक फुट ऊँचा रहता है। इसका वजन आठ-नौ सेर से ज्यादा नहीं होता। बच्चों का रंग गाढ़ा भूरा रहता है, जिन पर खड़ी-खड़ी कत्थई पटरियाँ पड़ी रहती हैं। इसकी गरदन और पीठ पर कुछ दूर तक कड़े बाल होते हैं जो सारी पीठ पर नहीं फैले रहते। इसके बदन पर के बाल भी कड़े होते हैं। यह शाकाहारी और बहुत सीधे स्वभाव का सुअर है जो ऊँची घास के बीच गरोह बाँधकर रहता है। इसके गरोह में पाँच से बीस तक सुअर रहते हैं। इसका मांस बहुत स्वादिष्ठ होता है।

सानो बनैल
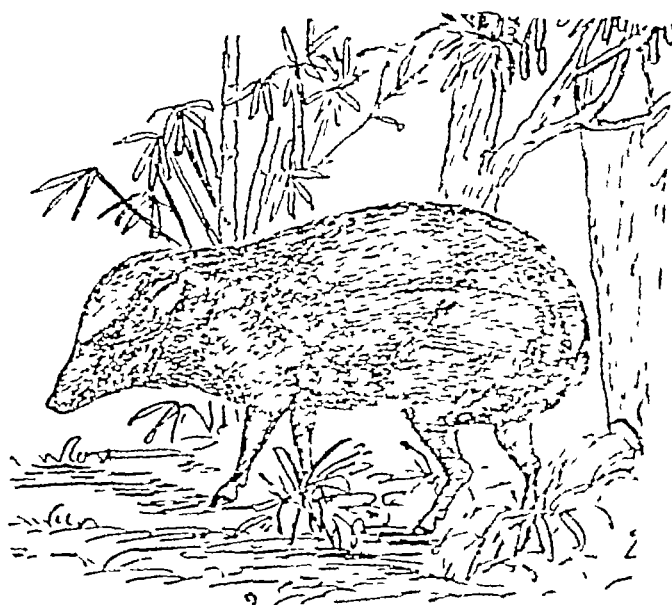
सानो बनैल प्रायः रात में ही बाहर निकलता है। इसी से हम इसके बारे में ज्यादा नहीं जान सके हैं। यह कद में भी छोटा होता है जिससे इसे छिपने में बहुत आसानी होती है। इसकी अन्य आदतें जंगली सुअरों से मिलती-जुलती हैं। नेपाली भाषा में सानो का अर्थ छोटा होता है। इसे इसी से सानो बनैल कहा जाता है।

सारी पीठ तक बहुत कडे वालो की एक पक्ति रहती है । वैसे इनके सारे वदन पर के तितरे-वितरे वाल कडे ही रहते हैं। इनके पट्ठो का रग भूरा रहता है, जो प्रौढ होने पर सिलेटी मायल हो जाता है। वच्चे हलके भूरे रग के होते है जिनकी पीठ पर खडो-खडी गाढी भूरी पटरियाँ पडी रहती है।
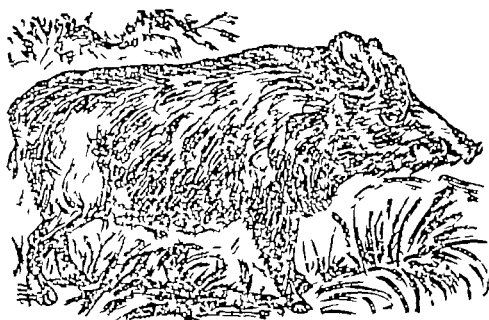
बनैला सुअर

जगली सुअर जगलो के अलावा घास के मैदानो, कछारो और झाडियो से भरे हुए नालो और ऊँची-नीची जगहो में भी रहते है। फसल तैयार होने पर इनके गरोह अक्सर गेहूँ और गन्ने आदि के खेतो में अपना अड्डा वना लेते हैं जहाँ से निकलकर ये जडोवाली फसल का वहुत नुकसान करते है।

इन सुअरोको भी हमारे पालतू सुअरो की तरह कीचड में लोटना बहुत पसन्द है। इनका मुख्य भोजन शाक-पात और जडें हैं। कन्दमूल के अलावा कभी-कभी ये मरे हुए जानवरो का मास भी खा लेते है। दिन में तो ये झाडियो मे घुसे रहते है लेकिन शाम और रात को इनका आठ-दस का गरोह चराई के लिए निकल पडता है और रात भर चरकर सुवह फिर अपने स्थान पर लौट आता है।

जगली सुअर वहुत तेज भागते है, लेकिन यह तेजी थोडी ही दूर तक रहती है। ये वैसे तो शान्त जीव है और आहट पाने पर अकारण हमला न करके भागना ही पसन्द करते है, लेकिन घायल हो जाने पर ये जान पर खेलकर ऐसा भयकर हमला करते है कि उसके आगे शेर के भी छक्के छूट जाते है । शेर ही क्यो, घायल होने पर ये हाथी पर भी हमला करने में नही चूकते।

इनकी मादा साल में दो वार वच्चे देती है, जो सख्या में चार से छ तक होते है। इनका मास वहुत स्वादिष्ठ होता है।

अश्व उपवर्ग

(SUB ORDER PERISSODACLYLA)

इस छोटे उपवर्ग मे थोड़े ही जीव है जो अपने खुर या सुम की बनावट मे भेद होने के कारण अन्य खुरदार जीवो से अलग कर दिये गये है।

इस वर्ग को तीन परिवारो मे इस प्रकार बाँटा गया है—

१. अश्व-परिवार—Family Equidae
२ टेपर-परिवार—Family Tapiridae
३ गैडा-परिवार—Family Rhinocerotidae

हमारे देश मे टेपर नही पाये जाते अत यहाँ केवल अश्व-परिवार और गैडा-परिवार का वर्णन दिया जा रहा है।

घोडा-परिवार

(FAMILY EQUIDAE)

घोडा-परिवार में घोड़े, गोरखर और गदहे के अलावा दूसरे देशो मे पाये जाने-वाले क्वागा और जेबरा आदि भी शामिल किये गये है जिनके खुर बीच मे फटे हुए नही होते। ये सब एक-शफ प्राणी कहे जाते है।

इस परिवार मे हमारे यहाँ का एक और प्रसिद्ध जीव आता है जिसे खच्चर कहते है। खच्चर, गदहे और घोडी के सयोग से पैदा होता है और अपनी मजबूती के लिए ससार मे प्रसिद्ध है। यह जहाँ घोडे की तरह लम्बा और बलवान होता है वही गदहे की तरह बोझ ढोने मे भी बेजोड होता है लेकिन इनमे सतान-वृद्धि की शक्ति नही होती। खच्चर और खच्चरी से बच्चे नही पैदा होते। नये खच्चर तो गदहे और घोडी के सयोग से ही पैदा हो सकते है।

ये सब जीव शाकाहारी है जिनके ओठ इनके लिए बहुत उपयोगी है। ये उन्ही स्पर्शेन्द्रियो मे से एक है जिनसे ये घास-फूस को पकड़कर अपने मुँह के भीतर खीच लेते है, जहाँ इनके तेज दाँत उन्हे बडी सफाई से कुतर लेते है।

इस परिवार के प्राणी अपनी तेज चाल और गठीले बदन के लिए प्रसिद्ध है। ये हाथी की तरह बुद्धिमान और कुत्ते की तरह स्वामिभक्त होते है। गदहा भी, जो

सुअर

(PIG)

पालतू सुअर ससार के प्राय सभी भागो में फैले हुए है। इनकी अनेक जातियाँ बन गयी है जो अपने रग में परिवर्तन करके सफेद या चितकबरी हो गयी है, लेकिन हमारे देश मे पालतू सुअरो की एक ही जाति पायी जाती है जो शकल-सूरत में ही नही रग-रूप में भी जगली सुअरो से मिलती-जुलती है।
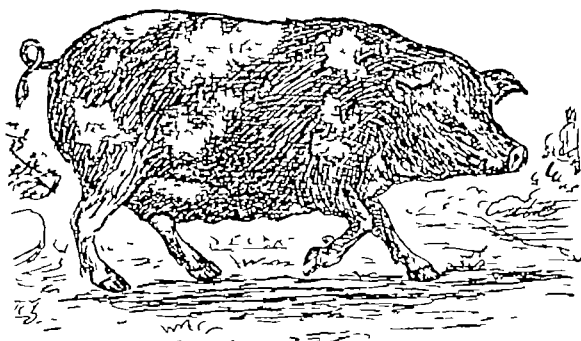
सुअर

हमारे यहाँ सुअर पालने का रिवाज बहुत कम है क्योकि मुसलमान तो इन्हे छूते ही नही और हिन्दू लोग भी इन्हें बहुत कम खाते है। यहाँ इनका पालन केवल परिगणित जातियो तक सीमित है। इसी कारण इनकी नस्ल मे उन्नति नही हो रही है। यहाँ के पालतू सुअर विदेशी सुअरो की तरह न तो सफेद ही होते है और न उनके बदन पर बाहरी सुअरो की तरह चर्बी ही लदी रहती है। ये जगली सुअरो की तरह कलछौंह ही होते है लेकिन इनके बनैलो की तरह तेज और बडे दाँत नही होते।

पालतू सुअर बनैलो की तरह बहुत हठी और बेवकूफ होते है, लेकिन उनकी तरह इनमे फुर्ती नही होती। इनका मुख्य भोजन शाक-पात और कन्दमूल है, लेकिन इनमे विष्ठा खाने की ऐसी गदी आदत है कि ये बडी घृणा की दृष्टि से देखे जाते है।

इनकी मादा साल मे दो बार बच्चे देती है, जिनकी सख्या चार से दस तक रहती है। इनका मास बहुत स्वादिष्ठ होता है।

बाघ

आम तौर पर वेवकूफ कहा जाता है, कम अक्लमद नही होता। इन मवमे गजव की स्मरण-शक्ति होती है।

यहाँ अपने यहाँ पाये जानेवाले घोडे, गदहे और गोरखर का वर्णन दिया जा रहा है।

घोडा

(HORSE)

घोडे से भला ऐसा कौन है जो परिचित न होगा ? मनुष्यो का यह शायद मवसे पुराना साथी है। यही नही, मानव मभ्यता मे इमका मवमे वडा हाथ रहा है और आज इस मशीन-युग में भी उसकी उपयोगिता कम नही हुई है।

घोडा
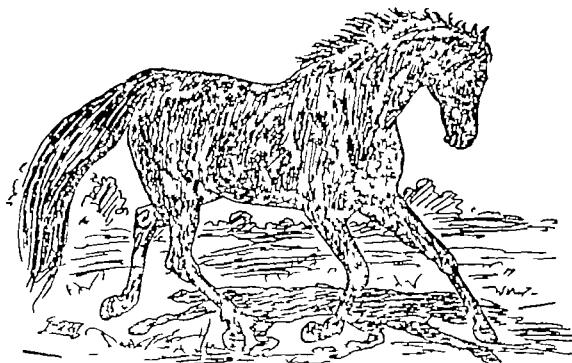
वैल की तरह घोडा भी वहुत सुन्दर और सुडौल जानवर है जिसके शरीर के गठन को कोई जानवर नही पा मकता। इसका एक-एक अग जैसे साँचे मे ढाला हुआ जान पडता है। इसे मनुष्यो ने कव मे पालतू किया, इसका तो कुछ ठीक-ठीक पता नही चलता, लेकिन जव से इतिहास मिलता है तव मे घोडे को हम मनुष्य के आज्ञाकारी सेवक की तरह उमके साथ मौजूद पाते हैं।

घोडो के विकास की कहानी वडी रोचक है। इन्हे अपने पूर्वजो से इस वर्तमान घोडे की शकल मे आने में लगभग चार करोड वर्प लग गये। इनके पूर्वज इयोहिप्पस (Eohippus) कद में लोमडी के वरावर होते थे और उनके पैरो मे चार-चार उंग-

लियाँ रहती थी। उसके बाद वे अपना विकास करके मिसोहिप्पस (Mesohippus) बने जब उनका कद भेड के बराबर हो गया। इस समय वे तीन उंगलियों के बल चलने लगे क्योंकि उनकी चौथी उँगली का लोप हो गया था। कुछ समय बीतने पर उनका फिर विकास हुआ और वे मेरिकहिप्पस (Merychippus) के रूप मे परिवर्तित हुए। इस समय उनका कद गदहे के बराबर हो गया था और उनकी पैरों की बीच की उँगली आगे बढकर सुम की शकल की हो गयी और वे एक ही उंगली पर चलने-फिरने लगे। कुछ काल बाद फिर परिवर्तन हुआ और बगल की दोनो बेकार उँगलियाँ गायब हो गयी। अब उनके पैर मे केवल एक सुम या टाप रह गया। उनका कद बढ गया और वे ही घोडे के रूप मे हमारे सामने है। अपने सुम के विकास मे इस प्रकार इन्हे एक दो नही करोडो वर्ष तक घोर संघर्ष करना पडा।

घोडो की वैसे तो अनेक नस्ले ससार मे है लेकिन अरब का घोडा सबसे प्रसिद्ध माना जाता है। हमारे देश मे काठियावाड के टाँघन प्रसिद्ध है जो कद मे छोटे और मजबूत होते हैं।

घोडा शाकाहारी जीव है, जो दाना-घास वगैरह बडे स्वाद से खाता है। इसके ओठो मे गजब का स्पर्शज्ञान रहता है। हमारे यहाँ इनकी कोई विशेष जाति नही है, लेकिन जो घोडे है उन्हे उनके रगो के नाम से पुकारा जाता है जैसे मुश्की, सब्जा, कुम्मैद, सुरग, नुकरा, समद आदि।

घोडी ग्यारह महीने पर एक बच्चा जनती है।

गदहा

(१८८)

गदहा भी घोडे की तरह हमारा बहुत परिचित पालतू जीव है जो घोडे का भाई-बन्धु होकर भी हमारे देश मे न जाने क्यो इतनी अनादर की दृष्टि से देखा जाता है। इसके बारेमे लोगो का ख्याल है कि यह बहुत बेवकूफ जानवर है और इसी कारण किसी को बेवकूफ कहने के लिए हम इसके नाम का उपयोग करते है, पर वास्तव मे ऐसी बात है नही। गदहा अपनी जाति के पशुओ मे करीब-करीब सबसे अधिक बुद्धि-मान होता है। यह सीधा, परिश्रमी और सहनशील तो होता ही है बोझ उठाने मे भी अपना सानी नही रखता। इसके और घोडी के मेल से पैदा हुआ खच्चर तो बो[illegible]

गोरखर

(WILD ASS)

गोरखर जगली गदहा है। यह वैसे तो मध्य एशिया का निवासी है लेकिन हमारे देश मे इसकी थोडी-बहुत सख्या बीकानेर, गुजरात और जैसलमेर के आस-पास पायी जाती है। यह जगली गदहा गोरखर कहलाता है और इसका कद हमारे गदहो से कुछ ऊँचा होता है। मादा नरो से कुछ छोटी होती है।
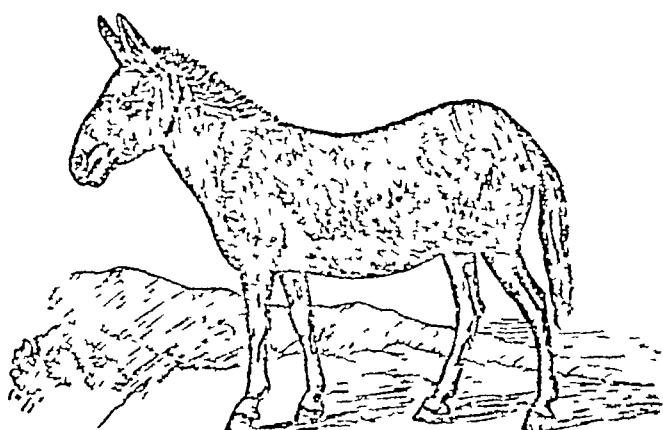
गोरखर

गोरखर का रग गदहो की तरह मिलेटी न होकर पिलछौंह रगी रहता है जिसमें थोडी ललाई भी रहती है। हल्का थूथन, पेट और टागो का भीतरी हिस्सा सफेद रहता है और अयाल की जड से दुम की जड तक एक गहरे रग की पट्टी चली जाती है जो कधे के पास कभी एक और कभी दो जगह इसी रग की धारी से कट जाती है। इसके पैर पर भी कभी-कभी इसी तरह की धारियाँ रहती है। इसके अयाल और दुम के बाल गाढे कत्थई या काले रहते है और खुरो या सुमो के ऊपर एक गाढे रग की धारी पट्टी रहती है। कान गदहो की तरह लम्बे और आगे की ओर झुके रहते है।

गोरखर झुड मे रहनेवाले प्राणी है जो ज्यादातर रेगिस्तानो या सूखे हुए ऊसर मैदानो मे फिरा करते है। इनका गरोह चार-पाँच से लेकर बीस-पचीस तक का होता है, लेकिन कभी-कभी इनके इससे भी बडे गरोह दिखाई पडते है। इनका एक और

उठाने मे इससे भी आगे रहता है। वडी-वडी फौजी तोपो को खीचना खच्चर का ही काम है।

हमारे देश में ज्यादातर धोवी ही इस निरीह जीव को पालते है लेकिन फारस, अरव और मिस्र आदि देशो में गदहे का वडा आदर है। वहाँ इस उपयोगी पशु का आदर करना लोग जानते है। इसी से वहाँ इसकी कई अच्छी नस्लें तैयार कर ली गयी है और हमारे यहाँ के छोट कद के गदहे से वहाँ के गदहे वडे और मजवूत हो गये हैं।

गदहा
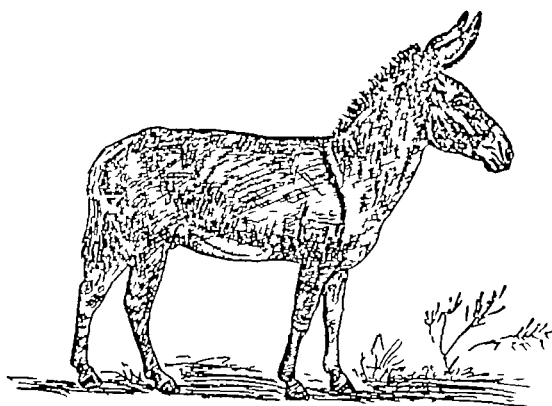
हमारे यहाँ का गदहा करीव तीन फुट ऊँचा और चार, साढे चार फुट लम्वा होता है। इसकी शकल-सूरत घोडे जैसी रहती है और इसके पैर मे भी उसी की तरह सुम रहता है। इसके कान काफी लम्वे होते हैं जो आगे की ओर झुके रहते हैं। इसके वदन का ऊपरी रग सिलेटी रहता है जो ऊपर गाढा और वगल मे हलका हो जाता है। नीचे का हिस्सा और थूथन सफेद रहता है। इसके गले पर एक काली धारी पडी रहती है, जैसे इसे किसी ने काले रग का हार पहना दिया हो। यह वडी भद्दी वोली वोलता है जो सीपो-सीपो-सी लगती है। इसकी समूची दुम घोडो की तरह वालो से ढकी न रह-कर कुछ दूर तक नगी ही रहती है जिसके सिरे पर वालो का एक गुच्छा रहता है।

इसका मुख्य भोजन घास-पात है। इसकी अन्य आदते घोडो से मिलती-जुलती होती है। इससे उन्हे फिर से दुहराना ठीक नही।

गदही लगभग ग्यारह महीने पर एक वच्चा जनती है।

किसी भाग मे नही देखा जा सकता। हम इन्हे अपने चिड़ियाघरो मे अवश्य देख सकते है लेकिन सब चिड़ियाघरो मे इनको पालना आसान काम नही।

गैंडे का कद लगभग साढे दस फुट लम्बा और पांच-छः फुट ऊंचा होता है। इसके थूथन पर करीब एक फुट लम्बा सीगनुमा खाग रहता है जो बहुत तेज होता है। यह खाग वास्तव मे इसका सीग नही है बल्कि यह तो इसके कड़े बालो के आपस में चिपक जाने से सींगनुमा बन जाता है और बहुत कड़ा हो जाता है। ये खाग नर और मादा दोनो के होते है और एक बार टूट जाने पर उसके स्थान पर दूसरा खाग निकल आता है।

गैंडा
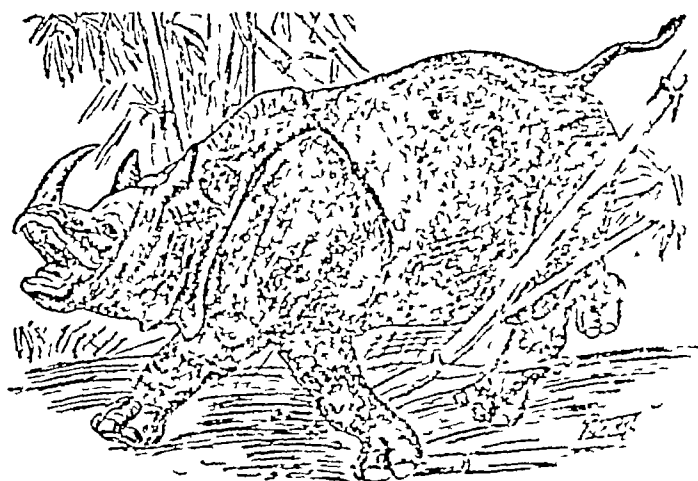
गैंडे के शरीर का रंग कलछौंह सिलेटी रहता है और इसकी मोटी खाल पर कान और दुम को छोड़कर कही भी बड़े बाल नही होते। इसकी खाल बहुत मोटी होती है जिसमे जगह-जगह शिकन-सी पड़ी रहती है। इसी से इसका बदन ऐसा जान पड़ता है जैसे किसी ने इसके सारे शरीर को ढालो से ढक दिया हो। इसके पैरो में तीन-तीन नाखून रहते है जो हाथी के नाखून से मिलते-जुलते होते है। इसके पैर छोटे और गठीले होते है और इसका सिर बड़ा और आंखे छोटी होती है।

गैंडे को ऊंचे पहाड़ ज्यादा पसन्द नही है। इसीलिए यह तराइयो मे [illegible] अकेला घूमा करता है। लेकिन कभी-कभी एक ही जगह कई गैंडे दिखाई पड़ जाते है। इसका मुख्य भोजन घास-पात है जिसके लिए यह सुबह-शाम इधर-उधर

निकट सम्बन्धी जानवर क्वागा (Quaga) है जो शकल-सूरत मे गोरखर ही जैसा होता है। उसकी गरदन पर जेवरे की तरह धारियाँ पडी रहती है, लेकिन ये हमारे देश मे नही पाये जाते।

गोरखर का मुख्य भोजन घास-पात है। ये भी गदहो की तरह रेकते है, लेकिन इनकी आवाज गदहो से भी तेज और कर्कश होती है। ये वैसे तो बहुत शरमीले जानवर है, लेकिन भागने मे इतने तेज होते है कि इनको पकडना आसान नही होता। पकडे जाने पर आधे से ज्यादा गोरखर मर जाते है और जो बचते भी है उनको पालतू करना बहुत कठिन होता है।

बलूचिस्तान की ओर लोग इनका मास भी खाते है जो काफी स्वादिष्ठ होता है। इनकी मादा घोडी की तरह ग्यारह महीने पर एक बच्चा देती है जिसका समय जून से अगस्त तक रहता है।

गेंडा-परिवार

(FAMILY RHINOCEROTIDAE)

गैंडा-परिवार मे गैंडा ही अकेला एक प्राणी है जो अपने यहाँ का बहुत प्रसिद्ध जीव है। इसकी वैसे तो तीन जातियाँ है लेकिन हमारे यहाँ केवल एक ही जाति के गैंडे पाये जाते है। बाकी दो जातियाँ अफ्रीका के जगलो मे मिलती है।

गैंडे का शरीर बहुत भारी और गठीला होता है। उसकी नाक के ऊपर एक खाग या सीग रहता है जो इसका अस्त्र है। यह खाग वास्तव मे उसकी नाक के ऊपर के बाल है जो आपस मे चिपककर इतने कडे हो गये है कि उसके आगे हड्डी कोई चीज नही। यह इसी से शेर और हाथी का पेट चीर डालता है।

इसके बदन की मोटी खाल इसके बदन से लटकती-सी रहती है, जिसमे स्थान-स्थान पर सिकुडन पडी रहती है। कुछ विदेशी गैंडो के एक की जगह आगे-पीछे दो सीग रहते है। यहाँ तो केवल अपने यहाँ के गैंडे का हाल दिया जा रहा है।

गैंडा

(RHINOCEROS)

गैंडे हमारे देश के प्रसिद्ध जानवर है। हमारे यहाँ ये अब बहुत कम सख्या मे रह गये है और इन्हे आसाम के जगलो और नेपाल की तराई के सिवा देश के अन्य

है, फिर भी इसमें आलस जैसे छू नहीं गया है। दौड़ने में असमर्थ होने पर भी यह सौ, दो सौ गज तक इतनी तेजी से झपटता है कि तेज भागनेवाला आदमी तेजी से भागकर भी इससे बच नहीं सकता।

इसकी दूसरी जाति, जो अफ्रीका में पायी जाती है शकल-सूरत में इससे कुछ भिन्न होती है। उस जाति के हाथियों के कान तो बड़े होते ही हैं, कद में भी वे भारतीय हाथियों से बड़े होते हैं। उन के नर-मादा दोनों के बड़े-बड़े दांत होते हैं, लेकिन हमारे यहाँ केवल नर हाथी दँतैले होते हैं।

हाथी

(ELEPHANT)

हाथी हमारे यहाँ का सबसे बड़ा और शानदार जानवर है जिसे हमारे यहां शायद ही कोई ऐसा होगा जिसने न देखा हो।

हाथी उन पालतू जानवरों में से है जिनकी जंगली जाति अब भी जंगलों में मौजूद है और जो वहाँ से आवश्यकतानुसार पकड़कर पालतू बना लिये जाते हैं। ये घोड़े, ऊँट और गाय-बैल की तरह सबके सब ऐसे पालतू नहीं कर लिये गये हैं कि उनकी जंगली जाति का लोप हो जाय।
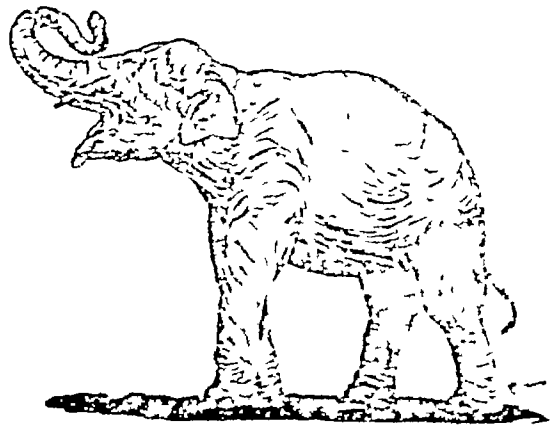
हाथी

हमारे देश में हाथी ज्यादातर तो हिमालय की तराई के घने जंगलों में पाये जाते हैं, लेकिन इसके अलावा इनकी कुछ संख्या मध्यप्रदेश और दक्षिण भारत के घने जंगलों में भी फैली हुई है। ये पहाड़ पर अधिक ऊँचाई पर नहीं जाते और इनका ज्यादा समय तराई के घने जंगलों में ही बिताते हैं।

हाथी लगभग आठ-दस फुट ऊँचे होते हैं, लेकिन हथिनियाँ करीब आठ फुट की

चक्कर लगाता रहता हे। दिन मे यह पडा मोता रहता हे और प्राय रोज एक ही जगह विष्ठा करता हे।

गैंडा वैसे तो बडा शान्त और सीधा जानवर हे, लेकिन घायल हो जाने पर यह वडा भयकर हमला करता हे। उस समय यदि हाथी भी इसके सामने पड जाय तो यह उसकी परवाह नही करता और अपने निचले दाँतो से सुअर की तरह वडी करारी चोट करता है। यह वैसे तो शरीर से भारी भरकम होता हे, लेकिन थोडी दूर तक वडी तेजी से सरपट भाग लेता हे।

गडे की उम्र काफी होती हे। यह सौ वर्ष तक जीते देखा गया हे। इसकी मादा सत्रह-अठारह महीने पर एक वच्चा जनती हे। इसका मास स्वादिष्ठ होता हे।

गज उपवर्ग

(SUB ORDER PROBOSCIDAE)

गज उपवर्ग मे केवल हाथी ही अकेला प्राणी हे जो अपनी लम्बी सूड के कारण अन्य स्तनपायी जीवो से अलग कर दिया गया हे।

इस उपवर्ग मे केवल एक ही परिवार है जो गज-परिवार कहलाता है। यहाँ उसी का वर्णन दिया जा रहा हे।

गज-परिवार

(FAMILY ELEPHANTIDAE)

इस परिवार मे हाथी ही अकेला प्राणी है जिसकी दो जातियाँ है—एक भारतीय हाथी और दूसरा अफ्रीकन हाथी। हमारे देश मे केवल भारतीय हाथी पाये जाते है। यहाँ उसी का वर्णन दिया जा रहा है।

इन जीवो की विशेपता इनकी लम्बी सूड और इनके लम्बे कृन्तक दन्त है जो काफी वढकर उनके मुख से कई फुट आगे निकले रहते है। सूँड ही हाथी का हाथ हे और वही उसकी स्पर्श और घ्राण इन्द्रिय भी। इमी सूँड के सहारे वह पेड की डालो को तोडता है और खाने के लिए उमकी छाल को वडी सफाई से उधेड लेता है।

ये जानवर जगलो मे रहनेवाले यूथचारी जीव है जिन्हे मनुष्य पकडकर पालतू कर लेते है। स्थल पर रहनेवाले स्तनपायी जीवो मे यह सवमे भारी भरकम होता

उनकी लपेट में आ गया तो वे उसे पैरों से रौंदकर उसकी जान ले लेती हैं। आज्ञापालन में तो हाथियों से आगे शायद ही कोई जानवर बढ़ पाया हो। एक छोटे अंकुश के सहारे इतने बड़े जानवर की गर्दन पर बैठकर महावत किस तरह उसे जिधर चाहता है ले जाता है यह सचमुच बड़े आश्चर्य की बात है।

हाथी की उम्र लगभग सौ वर्ष तक की मानी जाती है। जंगल में रहनेवाले हाथी तो और ज्यादा दिनों तक जीते हैं। पचीस वर्ष में तो ये जवान ही होते हैं।

हथिनियाँ अठारह से बीस महीने पर एक बच्चा जनती हैं लेकिन कभी-कभी वे दो बच्चे भी देती हैं। ये बच्चे ज्यादातर सितम्बर से नवम्बर के बीच में होते हैं जो पैदा होने के समय तीन फुट ऊँचे रहते हैं।

तीक्ष्णदन्त वर्ग

(ORDER RODENTIA)

इस वर्ग में वे सब छोटे कद के जीव एकत्र किये गये हैं जिनके दांतों को प्रकृति ने बहुत तेज और कड़ी चीजों तक को कुतर डालने के योग्य बनाया है। इनमें से अधिकांश जीव पृथ्वी पर रहनेवाले हैं, लेकिन कुछ ऐसे भी हैं जो पेड़ों पर अपना अधिक समय व्यतीत करते हैं और कुछ ऐसे भी हैं जिन्होंने पानी में ही रहना पसन्द किया है।

इनके बारे में और कुछ जानने से पहले इनके दांतों के बारे में कुछ जान लेना जरूरी है क्योंकि इनकी इसी विशेषता के कारण इनका अलग वर्ग बनाया गया है। इनके जबड़ों में चारों तरह के दांत न होकर केवल दो ही तरह के होते हैं, कुन्तक दन्त और दाढ़ें। कुन्तक लम्बे और काफी मजबूत होते हैं और उनके सामने हिस्से पर मजबूत पालिश चढ़ी रहती है जैसी तामचीनी के बर्तनों पर होती है। इस पालिश या चिकनी तह के कारण इनके दांत सामने की ओर से तो घिसने नहीं पाते लेकिन ऊपर और नीचे के दांतों की रगड़ से उनका भीतरी हिस्सा घिस जाता है। ऐसा होने से इनके दांत सदैव तेज और पैने बने रहते हैं। ये दांत निरन्तर बढ़ते रहते हैं जिससे रगड़ खाने से दांत का जितना हिस्सा घिसता है उतना फिर बढ़ आता है। बस दिक्कत तभी पड़ती है जब इनका कोई दांत टूट जाता है क्योंकि तब दूसरे जबड़े के सामनेवाला दांत बढ़ता चला जाता है जो बढ़ते-बढ़ते [illegible]

ही होती हैं। हाथी के दुम के सिरे से सूंड के सिरे की लम्बाई उसकी ऊँचाई से तिगुनी के करीब रहती है। उनका वजन लगभग अस्सी मन होता है।

हाथी के शरीर का रंग कलछौंह मिलेटी रहता है, लेकिन उसके माथे पर, कान पर और गर्दन के ऊपरी हिस्से पर कभी-कभी प्याजी, भूरी चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। हाथी के वदन पर बाल नहीं होते, सिर्फ दुम के सिरे पर बहुत कड़े वालों की दो कतारें रहती हैं। नर हाथी के दो बड़े-बड़े दाँत आगे की ओर निकले रहते हैं, लेकिन मादा के ये दांत बहुत छोटे ही रह जाते हैं। नर के दाँतों की लम्बाई वैसे तो अलग-अलग रहती है, लेकिन बड़ा से बड़ा दाँत आठ फुट तक लम्बा मिला है। इनके अगले पैरों में अक्सर पाँच चौड़े नाखून होते हैं। लेकिन पैरों में इनकी संख्या चार ही रहती है। उसकी आँखें छोटी और कान बड़े पंखे जैसे होते हैं जिसे ये मक्खियाँ उड़ाने के लिए बराबर हिलाते रहते हैं।

हाथी झुंड में रहनेवाले जीव हैं जो बड़े-बड़े गरोह बनाकर रहते हैं। इनका मुख्य भोजन घास-पात, पेड़ों की छाल तथा बाँस के नरम कल्ले हैं जिनकी तलाश में ये जंगलों में इधर-उधर छिटक जाते हैं और चराई के बाद फिर इकट्ठा होकर अपना बड़ा गरोह कायम कर लेते हैं। इस गरोह की सरदारी किसी दँतैले हाथी को न मिलकर सदा किसी हथिनी को ही मिलती है जो सबका नियंत्रण करती है।

हाथी की सूंड उसका सबसे उपयोगी अंग है जिसको हम उसका हाथ कह सकते हैं। इसी सूंड से वह पेड़ की छाल उधेड़कर खाता है और इसी में पानी भरकर अपने मुंह में उँडेल लेता है। यही नहीं, छोटी-छोटी चीजों को भी वह अपनी इसी सूंड से उठा लेता है।

हाथियों को पानी बहुत पसन्द है। इसीसे गर्मियों में वे घंटों पानी में पड़े रहते हैं। तेज धूप में जब उन्हें पानी नहीं मिलता तो वे अपनी सूंड को मुंह में डालकर उसमें थूक भर लेते हैं और उसी को अपने वदन पर छिड़कते हैं। वे तैरने में बहुत ही उस्ताद होते हैं और खुश्की पर रहनेवाला कोई भी जानवर तैरने में उनका मुकाबला नहीं कर सकता।

हाथी वैसे तो डरपोक और सीधे जानवर हैं, लेकिन कुछ नर और बच्चोंवाली मादाएँ अक्सर दूसरों पर हमला कर बैठती हैं। उस समय ये अपनी सूंड को लपेट लेती हैं और अपने पैरों तथा दाँतों से बड़ा भयंकर हमला करती हैं। यदि किसी तरह दुश्मन

गिलहरी-समूह

(SECTION SCIUROMORPHA)

गिलहरी समूह वैसे तो चार परिवारों मे विभक्त है, लेकिन हमारे यहाँ जिन दो परिवारों के जीव पाये जाते हैं वे इस प्रकार हैं—

१ गिलहरी-परिवार—Family Sciuridae

२ सूरज भगत-परिवार—Family Petauristidae

पहले परिवार मे हमारी परिचित गिलहरियों और दूसरे परिवार मे उडनेवाली गिलहरियाँ रखी गयी हैं।

गिलहरी-परिवार

(FAMILY SCIURIDAE)

गिलहरी-परिवार के जीवों से हम सब परिचित ही हैं। ये जीव अपना अधिक समय पेडो पर ही बिताते हैं। वैसे भोजन की तलाश मे हम इन्हे जमीन पर भी दौड-धूप करते देख सकते हैं।

ये जीव बडे फुरतीले और सफाई-पसन्द होते हैं और बिल्लियों की तरह अपना बदन चाटकर साफ करते रहते हैं। उनकी दुम लम्बी और झबरी रहती है और उनके शरीर पर के बाल भी घने, कोमल और चमकीले होते हैं।

ये अपने बच्चों के लिए सुन्दर और मुलायम घोंसला बनाते हैं और अपनी खूराक को पहले से इकट्ठा करते रहते हैं। इनका मुख्य भोजन फल-फूल अन्न और जड हैं। यहाँ अपने यहाँ की तीन प्रसिद्ध गिलहरियों का वर्णन दिया जा रहा है।

जगली गिलहरी

(LARGE INDIAN SQUIRREL)

गिलहरियों से हम सभी परिचित हैं। उनमे कुछ तो हमारे बाग-बगीचों मे रहती हैं, लेकिन ज्यादा संख्या उन्ही की है जो अपना सारा समय जगलो मे ही बिताती है।

हमारे यहाँ की बडी जगली गिलहरी को रगट या रास कहते हैं। यह हमारे बाग-बगीचो मे पायी जानेवाली छोटी धारीदार गिलहरी से शक्ल-सूरत मे ही नही

वढ जाता है कि दूमरे जवडे मे छेद कर देता है और कभी-कभी इसमे इन जानवरो की मौत तक हो जाती है।

इस वग के प्राणी सारे ससार मे फैले हुए है जो दौटने, तैरने, छलाँगे मारने के अलावा पेडो पर चढने मे भी उस्ताद होते है। इनमे के अधिकाश के शरीर पर वाल होते है लेकिन कुछ ऐसे भी है जिनके शरीर पर के वाल काँटो मे वदल गये है। इनमे प्राय मवके पैरो मे पाँच-पाँच उँगलियाँ रहती है जिनमें तेज नाखून होते है। इन जानवरो का मुख्य भोजन वैसे तो वृक्षो की छाल और जडे आदि है, लेकिन कुछ प्राणी ऐसे भी है जिन्हे सर्वभक्षी कहा जा सकता है। इनकी मादाएँ माल मे कई वार वच्चे देती है।

यह वर्ग दो उपवर्गो मे विभाजित किया गया है —

१ एक-दन्त उपवर्ग—Sub Order Simplicidentata

२ द्वि-दन्त उपवर्ग—Sub Order Duplicidentata

एकदन्त उपवर्ग मे माही, गिलहरियाँ और चूहे है तो द्विदन्त उपवर्ग मे सव प्रकार के खरगोश रखे गये है। आगे दोनो उपवर्गो का अलग-अलग वर्णन दिया जा रहा है।

एकदन्त उपवर्ग

(SUB ORDER SIMPLICIDENTATA

एकदन्त उपवर्ग के प्राणियो के मुख के ऊपरी जवडे में आगे की ओर दाँतो की एक ही जोडी रहती है। इमी एक विशेपता के कारण इन्हें एक अलग उपवर्ग में रखा गया है—

इम उपवर्ग को विद्वानो ने इस प्रकार फिर तीन समूहो मे विभक्त किया है —

१ गिलहरी-समूह—Section Sciuromorpha

२ चूहा-समूह—Section Myomorpha

३ माही-समूह—Section Hystricomorpha

इन तीनो समूहो में सव प्रकार की गिल्हरियाँ, चूहे और साहियाँ आ जाती हैं।

रुकिया

(BROWN SQUIRRLL)

रुकिया भी जंगली गिलहरी है जो हमारे देश के दक्षिणी भाग के जंगलों में पायी जाती है। इसका शरीर एक फुट से कुछ बड़ा होता है, और इसके लगभग उतनी ही बड़ी झबरी दुम रहती है।

रुकिया

इसके शरीर का ऊपरी हिस्सा कत्थई सिलेटी होता है और दोनों बगल के हिस्से तथा गुद्दी का कुछ हिस्सा बादामी रहता है। नीचे का रंग हलका बादामी या सादा सफेद रहता है।

रुकिया की और सब आदतें रगट से मिलती-जुलती होती हैं और यह भी उसी की तरह अपना ज्यादा समय पेड़ों पर ही बिताती है। यह भी पेड़ों पर किसी खोंते में अपना घोंसला बनाती है और इसका भी मुख्य भोजन फल-फूल, बीज तरह तरह के, कीड़े-मकोड़े और अण्डे आदि हैं।

इसकी मादा तीन-चार बच्चे जनती है।

रग और कद मे भी भिन्न होती है। यह अपना सारा समय घने जगलो मे बिताती है, इमीलिए इसको जगली गिलहरी कहा जाता है।

कराट हमारे देश में मध्य भाग के मारे घने जगलो मे पायी जाती है। पूरव की ओर भी यह जगली प्रान्तो में पायी जाती है। इम गिलहरी का कद लगभग डेढ फुट लम्बा होता है और इसके इतनी ही वडी दुम भी रहती है। इसका ऊपरी हिस्सा गाढा कत्थई या कलछौंह गाढा लाल रहता है। इसके कान के मामने से माथे के ऊपर तक एक हलके रग की पट्टी रहती है और एक कत्थई धारी गरदन के पास से वगल तक पडी रहती है। नीचे का हिस्सा हलका वादामी या पिलछौंह भूरा रहता है।

जगली गिलहरी

कराट जगलो में रहनेवाली गिलहरी है जो अपना मारा समय ऊँचे पेडो पर ही विताती है। यह जमीन पर वहुत कम उतरती है और एक डाल मे दूमरी डाल पर वीस-वीम फुट तक कूद जाती है।

कराट का मुख्य भोजन फल-फूल, वीज, नरम कल्ले और कलियाँ हैं। इसके अलावा यह कीडे मकोडे और चिडियो के अण्डे भी वडे मजे में खाती है।

कराट अपने लिए किमी ऊँची डाल पर टहनियो और पत्तियो का घोसला वनाती है जिसमे समय आने पर मादा तीन-चार वच्चे जनती है।

गिलहरी का मुख्य भोजन फल-फूल, गल्ला और बीज है, लेकिन यह कीड़े-मकोड़े और अण्डे भी खूब मजे से खाती है। अन्य गिलहरियों की तरह यह भी घोंसला बनाती है। इनका घोंसला घास-फूस, ऊन और गूदड़ आदि का बना होता है जो काफी बड़ा और सुन्दर होता है। यह किसी पेड़ के खोथे में रखा रहता है।

शिगशाम

(BLACK HILL SQUIRREL)

शिगशाम भी हमारे यहाँ की प्रसिद्ध जंगली गिलहरी है जिसे काली जंगली गिलहरी कहते हैं। यह हमारे देश में हिमालय के पूर्वी भागों में, नेपाल के आस-पास और उसके पूर्वी हिस्सों में पायी जाती है। वहाँ यह शिगशाम के नाम से प्रसिद्ध है।

शिगशाम

शिगशाम करांट से कुछ छोटी जरूर होती है लेकिन इसकी दुम करांट की दुम से लम्बी रहती है। इसके शरीर का ऊपरी भाग काला या कत्थई और चेहरे और दुम का रंग गंदा पिलछौंह रहता है। इन गिलहरियों के रंग में बहुत भेद रहता है और अलग-अलग स्थान की शिगशाम भिन्न-भिन्न रंग की होती है, लेकिन अपनी लम्बी दुम के कारण ये अन्य गिलहरियों से छिप नहीं पाती।

शिगशाम प्रायः जोड़े में रहती है। इनकी बोली बहुत तेज और कर्कश होती है। इनका मुख्य भोजन वैसे तो साग-पात है, लेकिन ये कीड़े-मकोड़े और अण्डे भी बड़े स्वाद से खाती है।

इनकी और आदतें दूसरी गिलहरियों की ही तरह होती है।

गिलहरी

(PALM SQUIRREL)

अपनी धारीदार गिलहरियो से हम सभी परिचित है। ये हमारे वाग-वगीचो के अलावा उनके आस-पास के मकानो में भी चूहो की तरह फिरा करती है।

इस गिलहरी को कही-कही गिल्ली या चिखुरा भी कहते है। देहातो में यह गुलकी के नाम से प्रसिद्ध है। हमारे देश मे यह प्राय सभी स्थानो मे पायी जाती है।

गिलहरी

गिलहरी वहुत ही चचल होती है जो दिन भर पेडो की एक डाल से दूसरी डाल पर या जमीन पर इधर-उधर फिरा करती है। पेडो की एक डाल से दूसरी डाल पर कूदने मे यह इतनी उस्ताद होती है कि इमे शायद ही कभी किसी ने गिरते देखा होगा।

यह गिलहरी कद मे छ इच के लगभग होती है और इसके इतनी ही लम्वी दुम भी रहती है। इसकी पीठ का रग भूरा कलछौह या सिलेटी-मायल भूरा रहता है, जिस पर तीन सफेद खडी धारियाँ पडी रहती है। वीच की सफेद धारी वढकर दुम की जड तक पहुँच जाती है। नीचे का रग सफेद रहता है। इसके बाल बहुत मुलायम होते है।

ऐसे ही स्थानों में रहना पसन्द करता है जहाँ ऊँचे-ऊँचे पेड़ हों और इसे एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर जाने में आसानी हो।

सूरज भगत

सूरज भगत का मुख्य भोजन फल-फूल और पेड़ों की छाल है। इसके अलावा यह कीड़े-मकोड़ों को भी खाता है लेकिन इसे गन्दे से परहेज है। इसकी मादा पेड़ के खोखों में बच्चे देती है।

सूरजभगत-परिवार

(FAMILY PETAURISTIDAE)

यह परिवार छोटा ही है जिसमें उडनेवाली गिलहरियाँ है और जिनके वगल की खाल कुवग की तरह दोनो ओर काफी वढ गयी है। ये इसी खाल या झिल्ली को फैलाकर एक पेड से हवा में कूद पडती हैं और दूसरे पेड तक हवा में तैरती चली जाती हैं।

ये रात्रिचर जीव है जिनकी सव आदतें अन्य गिलहरियो की तरह होती है। हमारे यहाँ सूरजभगत नाम की उडनेवाली गिलहरी वहुत प्रसिद्ध है। यहाँ उसी का वर्णन दिया जा रहा है।

सूरजभगत

(BROWN FLYING SQUIRREL)

सूरजभगत हमारे देश की उडनेवाली गिलहरियो में से एक है। इसे कही-कही उरल भी कहते है। यह हमारे देश में मध्यभारत से लेकर दक्षिण भारत तक के घने जगलो में पाया जाता है।

सूरजभगत का कद लगभग डेढ फुट होता है जिसके इतनी ही वडी दुम भी होती है। इसके वदन के वाल काले और सफेद होते हैं जिनके मेल से इसका रग सिलेटी जान पडता है। दुम काली या खैरी होती है और नीचे का हिस्सा सफेद रहता है। कभी-कभी इस सफेदी में कुछ राखीपन की भी मिलावट रहती है।

सूरजभगत के अगले पैर पिछले पैरो से एक प्रकार की झिल्ली से जुटे रहते है जिसके सहारे वह एक पेड से दूसरे पेड पर हवा में तैरकर चला जाता है। इसी से इसे कही कही 'उडन-मूस' भी कहा जाता है। यह जमीन पर वहुत कम उतरता है और उतरने पर जमीन पर उछल-उछलकर चलता है, लेकिन जव इसे एक पेड से दूसरे पेड पर जाना होता है तो यह पेड की किसी ऊँची डाल पर चढ जाता है और वहाँ से कूदकर हवा में तैरता हुआ दूसरे पेड पर पहुँच जाता है। इसकी यह उडान कभी-कभी साठ गज़ तक पहुँच जाती है।

सूरजभगत रात्रिचर जीव है जो दिन मे पेड के किसी सूराख या खोथे में घुसा रहता है और शाम होने पर अपने खाने की फिक्र में वाहर निकलता है। यह ज्यादातर

अनाज और तरकारियाँ आदि हैं, लेकिन किसी हद तक इन्हें सर्वभक्षी जीव कहा जा सकता है।
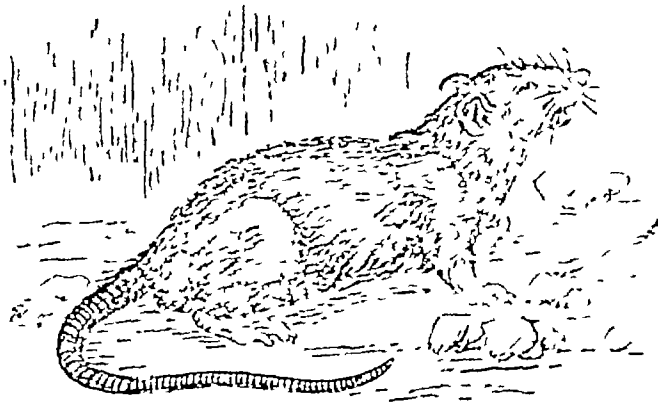
काला चूहा

मादा साल में कई बार बच्चे देती है जो संख्या में सात से नौ तक रहते हैं। बच्चों की आँखें पैदा होने के समय बन्द रहती हैं जो कई दिनों बाद खुलती हैं।

भूरा चूहा
(BROWN RAT)

भूरे चूहे भी काले चूहों की तरह सारे संसार में फैले हुए हैं और ये अब धीरे-धीरे काले चूहों से संख्या में बढ़ते जा रहे हैं। हमारे देश में भी शायद ही कोई आबादी

भूरा चूहा

ऐसी बाकी हो। ये हर जगह बिल बनाया करते हैं और हमारे घरों में बड़ी आसानी से इधर-उधर घूमा करते हैं।

मूस समूह

(2 SECTION MYOMORPHA)

इस दूसरी श्रेणी में सब प्रकार के चूहे एकत्र किये गये हैं जिनके ज्यादा परिचय की जरूरत नही है।

यह श्रेणी पाँच परिवारो मे बाँटी गयी है जिसमे से एक परिवार के जीव यहाँ अधिक पाये जाते है। यह मूस-परिवार कहलाता है।

मूस-परिवार

(FAMILY MURIDAE)

मूस परिवार काफी बडा है जो कई उप-परिवारो मे बाँटा गया है, लेकिन हमारे यहाँ केवल दो उप-परिवारो के जीव ही पाये जाते है।

१ मूस उपपरिवार—Sub Family Murinae

२ हिरनामूस उपपरिवार—Sub Family Gerbillinae

मूस उपपरिवार

(SUB FAMILY MURINAE)

मूस उपपरिवार में छोटे-बडे सब प्रकार के चूहे एकत्र किये गये है। इनकी एक नही, अनेक जातियाँ है। यहाँ अपने यहाँ पाये जानेवाले प्रसिद्ध चूहो का वर्णन दिया जा रहा है।

काला चूहा

(BLACK RAT)

काले चूहे सारे ससार में फैले हुए है। हमारे देश में भी शायद ही कोई ऐसा स्थान होगा जहाँ ये न पाये जाते हो। पहाडो पर ये आठ हजार फुट से ज्यादा ऊँची जगहो पर नही पाये जाते।

काले चूहे का ऊपरी रग कलछौह भूरा या गाढा खैरा रहता है, लेकिन इसके पेट का हिस्सा सफेद रहता है। ये पाँच से आठ इच लम्बे होते है और इनकी इतनी ही लम्बी दुम रहती है।

ये हमारे बहुत परिचित जीव है जो हमारे घरो में बिल बनाकर रहते है। कही-कही ये पेडो पर भी घोसला बनाकर रहते है। इनका मुख्य भोजन वैसे तो फल,

चुहिया के बदन का ऊपरी हिस्सा हलका या गाढ़ा भूरा होता है, लेकिन नीचे का हिस्सा हलका सिलेटी रहता है। कभी-कभी नीचे का हिस्सा सफेद भी रहता है।

चुहिया बहुत तेज और चालाक होती है। यह वैसे तो सर्वभक्षी जीव है, लेकिन यह अपना पेट ज्यादातर गल्ले आदि से भरती है। यह हमारी चीजों को कुतरकर हमारा बहुत नुकसान करती है।

इसकी मादा साल में चार-पांच बार बच्चे देती है जिनकी संख्या प्रत्येक बार छ से आठ तक रहती है।

मूस

(FIELD MOUSE)

मूस वैसे तो खेत का चूहा है और ज्यादातर खेतों और बाग-बगीचों में ही रहता है, लेकिन कभी-कभी यह खेत के पास के घरों में भी चला आता है। यह काले और भूरे चूहे से कद में कुछ छोटा होता है जिससे इसे पहचानने में ज्यादा दिक्कत नहीं होती।
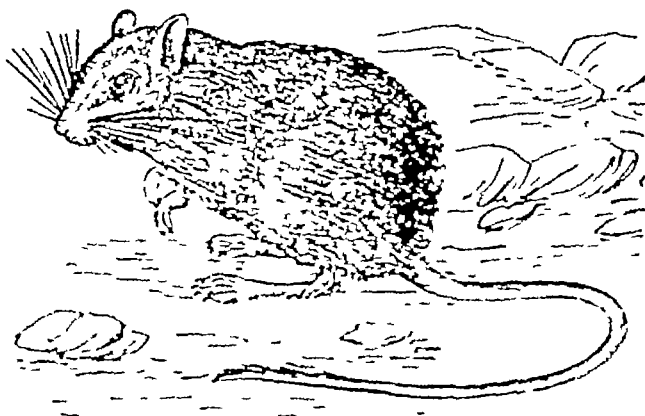
मूस

मूस वैसे तो हिन्द प्रायद्वीप का निवासी है, लेकिन थोड़ी बहुत संख्या में यह हमारे देश के अन्य स्थानों में भी पाया जाता है। हिमालय की ओर ऊपर यह नहीं दिखाई पड़ता।

भूरा चूहा काले चूहे से कद में कुछ वडा होता है और उसकी दुम काले चूहे से कुछ लम्बी रहती है। उसकी पीठ का रग भूरा होता है जो ऊपर गहरा और वाल में हलका रहता है। नीचे का रग सफेद, सफेदी मायल रहता है।

भूरा चूहा वहुत ढीठ जीव है जिसे आवादी के आस-पास ही रहना पसन्द है। यह घरो में और बाहर खेतो के आस-पास विल बनाकर रहता है और हमारे गल्ले और अन्य वस्तुओ का काफी नुकसान करता है।

यह सर्वभक्षी जीव है जिसकी मादा साल में कई वार वच्चे देती है और हर वार वच्चो की सख्या आठ से वारह तक हो जाती है।

चुहिया

(HOUSE MOUSE)

चुहिया हमारे देश मे पजाव, राजपूताना तथा उत्तर प्रदेश के कुछ पश्चिमी हिस्सों को छोडकर सारे देश में फैली हुई है।

चुहिया
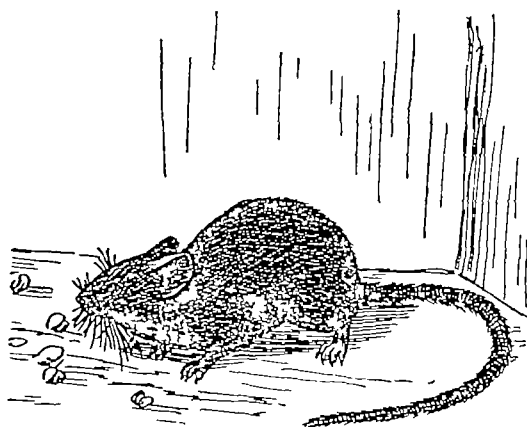
हमारे यहाँ शायद ही कोई ऐसा घर होगा जहाँ चुहियाँ न दिखाई पडती हो। घरो के अलावा ये घर के आस-पास के खेतो और बाग-बगीचो में भी चली जाती हैं, लेकिन इनके रहने की मुख्य जगह हमारे घर ही है।

चुहिया कद में चूहों से छोटी होती है। ये ढाई तीन इच लम्वी होती हैं जिनके इतनी ही लम्बी दुम रहती है। इनके शरीर पर के वाल छोटे और मुलायम होते है और इनके कान वडे और गोलाकार रहते हैं।

हानि-कारक माना जाता है। यह गल्ला और नाज के अलावा फल-फूल, मास आदि भी खाता है। इसकी मादा साल में कई बार आठ से दस बच्चे देती है।

हिरना मूसा उपपरिवार

(SUB FAMILY GERBILLINAE)

हिरनामूसा उपपरिवार में कई प्रकार के हिरनामूसा हैं, लेकिन हमारे देश में केवल एक प्रकार का ही हिरनामूसा पाया जाता है, जिसका वर्णन नीचे दिया जा रहा है।

हिरनामूसा

(INDIAN GERBILLE)

हिरनामूसा को यह नाम इसलिए मिला है कि यह अपनी अगली छोटी और पिछली बड़ी टाँगों के कारण हिरन की तरह छलाँगें मारता हुआ चलता है। इसकी पिछली टाँगें तो लगभग छ इंच की रहती हैं, लेकिन अगली एक इंच से बड़ी नहीं होतीं। यह देखने में कगारू जैसा लगता है और उसी की तरह जब अपनी पिछली टाँगों पर खड़ा होता है तो अपनी दुम का सहारा लेता है। इसकी एक-एक छलाँग चार-पाँच गज की होती है और छलाँगें भरते समय ऐसा जान पड़ता है कि जैसे यह हवा में उड़ा जा रहा हो।
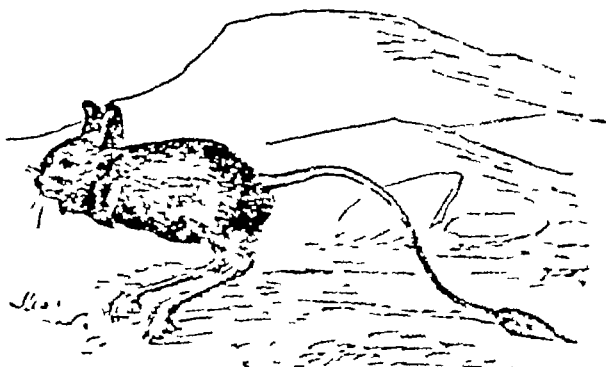
हिरनामूसा

हिरनामूसा हमारे देश में प्रायः सभी स्थानों में पाया जाता है, लेकिन एक तो संख्या में कम दूसरे रात्रिचर होने के कारण इसे हम कम देख पाते हैं। यह छ इंच का होता है जिसके लग भग सात, साढ़े सात इंच की लम्बी दुम होती है।

हिरनामूसा के बदन का रंग हल्का ललछौंह भूरा होता है जिसमें कुछ नारंगीपन

मूस का रग कभी पिलछौंह राखी और कभी सिलेटी भूरा रहता है, लेकिन नीचे का हिस्सा हमेशा सफेद रहता है। इसके शरीर के बाल छोटे और घने होते हैं।

मूस का कद चूहो से कुछ छोटा और चुहियो से थोडा बडा होता है। इनकी और बाकी आदतें काले और भूरे चूहो से मिलती-जुलती रहती हैं।

इनकी मादा भी साल में कई बार बच्चे देती है, लेकिन इन बच्चो की सख्या प्र येक बार तीन-चार से ज्यादा नही होती।

घूंस

(BANDICOOT RAT)

घूंस हमारे यहाँ का सबसे प्रसिद्ध खेत का चूहा है जो खेतो मे ही बिल बनाकर रहता है। यह आबादी के पास के खेतो मे रहना पसन्द करता है, जहाँ से इसे खेतो और घरो में हमला करने की सुविधा रहती है।

घूंस
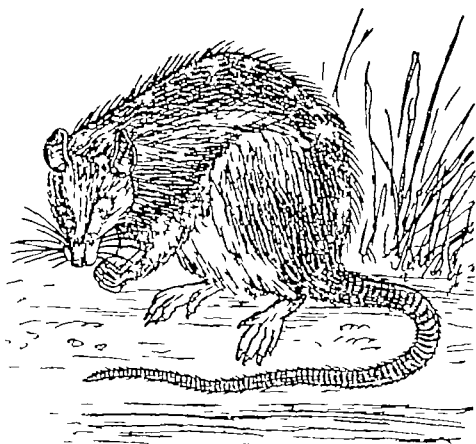
हमारे यहाँ यह दक्षिण बगाल और पजाब को छोड-कर सारे देश में फैला हुआ है। इसका कद एक फुट से कुछ ज्यादा ही होता है, जिसके लगभग एक फुट लम्बी दुम होती है। इसका वजन भी सेर, सवा सेर से कम नही होता।

घूंस के शरीर का ऊपरी हिस्सा कलछौंह भूरा रहता है जिसमें कभी-कभी सिलेटी झलक रहती है। नीचे का हिस्सा भूरापन लिये राखी मायल रहता है। इसके बाल कुछ बडे और कडे होते हैं जो कही-कही दो तीन इच लम्बे हो जाते हैं।

घूंस वैसे तो बडा आलसी चूहा है लेकिन मनुष्यो के लिए यही सबसे अधिक

हमारे देश में साही ऊँचे पहाड़ों को छोड़कर प्रायः सभी स्थानों में पायी जाती है। यह ज्यादातर ऊँचे-नीचे भीटों में बिल खोदकर रहती है और इनके बिल काफी लम्बे और कई शाखाओंवाले होते हैं।

साही का कद करीब तीस इंच लम्बा होता है जो एक प्रकार के कड़े काँटों से ढँका रहता है। इसकी दुम वैसे तो चार-पाँच इंच लम्बी होती है लेकिन काँटों के साथ उसकी लम्बाई भी सात-आठ इंच तक पहुँच जाती है।
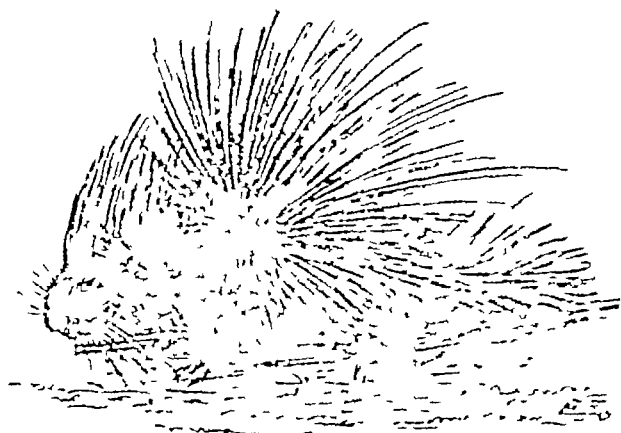
साही

साही का शरीर कलछौंह भूरे रंग का होता है जो काले और सफेद काँटों से भरा रहता है। इसके सिर पर कड़े बालों का गुच्छा सा रहता है और थूथन पर भी कड़े बाल रहते हैं। पीठ पर बड़े-बड़े काँटे रहते हैं जो पतले और लचीले होते हैं।

साही के शरीर के पिछले हिस्से में काँटों के नीचे कुछ छोटे काँटे भी रहते हैं जो मोटे, कड़े और बहुत नोकीले होते हैं। उन्हें उसी समय देखा जा सकता है जब साही अपनी रक्षा के लिए उन्हें खड़ा कर लेती है। ये काँटे काले रंग के होते हैं जिनमें कई जगह सफेद धारी पड़ी रहती है। साही की दुम के पास से कुछ काँटे छोटे, चौड़े और खोखले होते हैं जो आत्मरक्षा के समय एक तरह की आवाज करने लगते हैं।

साही बहुत सीधी और शान्त जानवर है जो किसी पर अकारण आक्रमण नहीं करती, लेकिन जब उस पर कोई हमला करता है तो वह फौरन अपने काँटे खड़े करके अपनी दुम उसकी ओर कर देती है। यह शाकाहारी जीव है जिसे कन्द-मूल चीजें बहुत पसन्द हैं। हमारे खेतों और बागों का यह बहुत नुकसान करती है और इससे आलू, शकरकंद आदि जड़वाली फसलों को बचाना मुश्किल हो जाता है।

साही का मांस मामूली होता है जिसमें एक प्रकार की मिट्टी जैसी [illegible]

की झलक रहती है। नीचे का हिस्सा सफेद रहता है और पीठ के निचले हिस्से के बाल कलछौंह होते हैं।

हिरनामूसा सारा दिन बिल में बिताकर रात को भोजन की तलाश मे बाहर निकलता है। इसका मुख्य भोजन घास, जड़े, बीज और अनाज है। इसकी मादा साल मे कई बार आठ-दस या उससे भी अधिक बच्चे जनती है।

साही-समूह

(SECTION HYSTRICOMORPHA)

इस अन्तिम श्रेणी में सभी प्रकार की साहियाँ रखी गयी हैं जो सारे ससार में फैली हुई हैं। इस श्रेणी के जीवो की विशेषता उनके शरीर पर के काँटे हैं जो बहुत तेज और नोकीले होते हैं और जिनसे वे अपनी आत्मरक्षा का काम भी लेती हैं।

यह श्रेणी वैसे तो कई परिवारो मे विभक्त है, लेकिन हमारे यहाँ केवल एक ही परिवार के जीव पाये जाते हैं जो साही-परिवार कहलाता है।

साही-परिवार

(FAMILY HYSTRICIDAE)

साही-परिवार के जीव अपने ढग के निराले हैं। अपने शरीर पर के कड़े काँटो के कारण इन्हें पहचानना कठिन नही होता। इनका मुख्य भोजन फल-फूल और जड़ें हैं।

हमारे देश में एक ही जाति की साही पायी जाती है जिसका वर्णन नीचे दिया जा रहा है।

साही

(PORCUPINE)

साही हमारे देश का बहुत प्रसिद्ध जीव है जो अपने शरीर के काँटेदार कवच के कारण अन्य जीवो से सर्वथा भिन्न रहता है। यह रात्रिचर जीव है। इसी कारण इसे हम आसानी से नही देख पाते, लेकिन देहात में, जहाँ ये काफी सख्या में रहती हैं रात के समय लोगो की आँखो तले पड ही जाती हैं।

हमारे यहाँ खरगोश के कई नाम प्रचलित हैं। इन्हे कही खरहा कहते है तो कही चौगडा। विन्ध्य प्रदेश की ओर ये लमहा के नाम से प्रसिद्ध है। कहीं-कहीं ये ससा भी कहलाते हैं। ये अठारह-बीस इंच लम्बे जीव है जिनके तीन-चार इंच लम्बी दुम भी रहती है। इनका वजन दो ढाई सेर के लगभग होता है। मादा कुछ नर से कद मे बडी होती है।
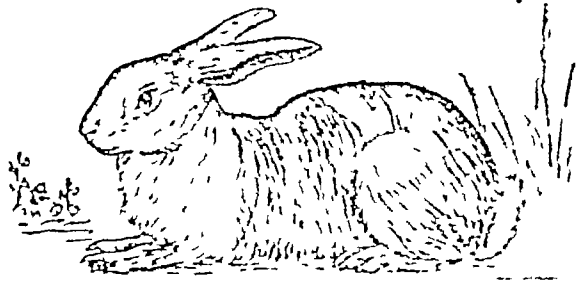
खरगोश

खरगोश के बदन का ऊपरी हिस्सा हलका भैरा रहता है जिसमे पीठ के पास का हिस्सा स्याही मायल हो जाता है। इसका मुंह कलछौंह होता है, लेकिन सीने और टांगो पर एक प्रकार की ललाई रहती है। इनके गले का कुछ हिस्सा और अगले पैर से नीचे का सारा भाग सफेद रहता है।

खरगोश तितरे-बितरे जगलो, झाडियो, घास के मैदानो, नदियो के पास के नालो या कछारो मे रहना ज्यादा पसन्द करते है। ये बिल खोदकर नही रहते बल्कि किसी झाडी या गढे में खतरा आने पर छिप जाते है।

खरगोश का मुख्य भोजन घास या नरम पौधे है इसीसे ये खेतो का बहुत नुकसान करते हैं। ये बैसे बहुत निरीह और सीधे जानवर है जो भागने मे बहुत तेज होते हैं। भागते समय ये लम्बी-लम्बी छलागे भरते है क्योकि इनकी पिछली टांगें अगली टांगो से बडी होती है।

इनकी मादा हर महीने एक से दो तक बच्चे देती है जिनकी आंखे पैदा होते समय खुली रहती है। इनके बच्चे भी छ महीने बाद बच्चे देने लगते है।

रगडुनी-परिवार

(FAMILY OCHOTANIDAE)

इस छोटे परिवार मे थोडे ही जीव हैं जो कद मे खरगोश से छोटे होते है। ये बहुत डरपोक सीधे और कहुतसानी जीव है जो खरगोशो की तरह झाडियो मे न रहकर जमीन मे बिल खोदकर रहते है। इनका मुख्य भोजन घास-पात है।

जान पड़ती है, लेकिन इसके पिछले हिस्से का मोटा चमड़ा जिसके साथ चर्बी की मोटी तह रहती है खाने में बहुत स्वादिष्ठ होता है।

इसकी मादा एक बार में दो से चार तक बच्चे देती है जिनके बदन पर छोटे-छोटे मुलायम काँटे रहते हैं। ये काँटे कुछ दिनो के बाद कडे और बडे होते हैं।

द्विदन्त उपवर्ग

(SUB ORDER DUPLICIDENTATA)

इस उपवर्ग के जीवो के ऊपरी जबडे में आगे की ओर दुहरे दाँतो की जोडी रहती है, जिसके कारण ये चूहो और गिलहरियो से अलग कर दिये गये हैं।

इनके वैसे तो कई परिवार और अनेक जातियाँ हैं जो सारे ससार मे फैली हुई हैं लेकिन हमारे यहाँ इनके दो ही परिवारो के जीव पाये जाते हैं जो इस प्रकार हैं।

१ खरगोश-परिवार—Family Leporidae

२ रगदुनी-परिवार—Family Ochotanidae

खरगोश-परिवार

(FAMILY LEPORIDAE)

खरगोश परिवार काफी बडा है जिसमें सारे ससार के खरगोशो को एकत्र किया गया है। इनकी एक नही, अनेक जातियाँ हैं जो सारे ससार में फैली हुई हैं। यूरोप ही मे इनकी बीसियो जातियाँ हैं। इनका शरीर मुलायम रोयो से ढँका रहता है और इनके कान बडे होते हैं।

यहाँ अपने यहाँ के प्रसिद्ध खरगोश का वर्णन दिया जा रहा है जो हमारे यहाँ सारे देश में फैला हुआ है।

खरगोश

(HARE)

खरगोश हमारे देश में प्राय सभी स्थानो मे पाये जाते हैं, लेकिन अलग-अलग स्थानो पर रहने के कारण इनकी यहाँ कई जातियाँ हो गयी हैं, फिर भी इनकी रहन-सहन, स्वभाव तथा शकल-सूरत एक-जैसी ही होती है।

मांसभक्षी वर्ग

(ORDER CARNIVORA)

मांसभक्षी-वर्ग में, जैसा कि उसके नाम से ही स्पष्ट है, सब प्रकार के मांसभक्षी जीवों को एकत्र किया गया है जिसमें बाघ, तेंदुआ, भेड़िया, सियार, लकड़बग्घे तथा कुत्ते और बिल्लियाँ हैं।

यह वर्ग शफ-वर्ग को छोड़ कर स्तनपायी-जीवों का सब से बड़ा वर्ग है जिसमें के प्राणी बहुत तेज, खूखार आक्रमणकारी और फुरतीले होते हैं। यही नहीं, ये सब बहुत चालाक होते हैं और बुद्धिमत्ता में बंदरों के बाद फिर इन्हीं का नम्बर आता है।

मांसाहारी होने पर भी तिमि या ह्वेल को इस वर्ग से इसलिए अलग कर दिया गया है क्योंकि उसका केवल निवास ही नहीं बल्कि उसकी और बहुत-सी आदतें भी इन मांसभक्षी जीवों से भिन्न हैं। इसी प्रकार भालू आदि कुछ जीव इस वर्ग में ले लिये गये हैं जो मांस के अलावा फल-फूल और शहद आदि से भी अपना पेट भर लेते हैं।

इस वर्ग के सभी प्राणियों की उँगलियों में तेज नाखून होते हैं। इन उँगलियों की संख्या चार से कम नहीं होती। इनके पंजों की बनावट ऐसी होती है कि ये जब चाहें अपने तेज नाखून को भीतर छिपा सकते हैं। इनके पैर के तलवे गद्देदार होते हैं जिनके कारण इनके चलने में जरा भी आहट नहीं होती और ये आसानी से अपने शिकार के पास तक पहुँच जाते हैं।

इनके दांत खास तौर पर शिकार पकड़ने के लिए ही बनाये गये हैं जो आसानी से उसे चीड़फाड़ डालते हैं। इनके आगे के दांत तो छोटे होते हैं, लेकिन दोनों बगल के कुकुरदन्त बड़े और मजबूत होते हैं।

इन जानवरों के सूंघने और सुनने की शक्ति बहुत तेज होती है जिससे इन्हें अपने शिकार में काफी मदद मिलती है। इनमें से अधिकांश का बदन छरहरा होता है जिससे ये बहुत तेज दौड़ लेते हैं। इनकी जबान बहुत खुरदुरी होती है जिससे हड्डी पर के गोश्त हटाने में उन्हें काफी सहूलियत हो जाती है।

इस वर्ग के जीव आस्ट्रेलिया और न्यूगिनी को छोड़कर सारे संसार में फैले हुए हैं। यह वर्ग दो उपवर्गों में इस प्रकार विभाजित किया गया है —

१ बिल्ली उपवर्ग—Sub Order Vera
२ सील उपवर्ग—Sub Order Pinnipedia

हमारे यहाँ इनकी जो एक प्रसिद्ध जाति पायी जाती है, यहाँ उमी का वर्णन दिया जा रहा है।

रगदुनी

(PIKA OR MOUSE HARE)

रगदुनी को पहाडी खरगोश कहा जाय तो अनुचित न होगा। हमारे यहाँ ये हिमालय प्रान्त में कश्मीर से लेकर घुर पूरब तक फैले हुए हैं। हिमालय को छोडकर इन्हे देश में और कही नही देखा जा सकता। और वहाँ भी ये १२ से १५ हजार फुट तक पाये जाते है।

रगदुनी
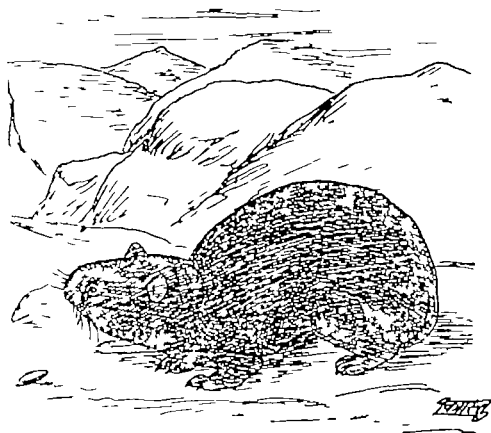
रगदुनी खरगोश के भाई-बन्धु है, लेकिन इनके कान खरगोश की तरह लवे नही होते। दुम तो इनके होती ही नही। रगदुनी को कही-कही रगसूर भी कहते है। यह लगभग छ इच लवा होता है। इमका ऊपरी हिस्सा कत्थई भूरे रग का होता है जिसमे कभी-कभी सिलेटी या कल-छौंह मिलावट रहती है। नीचे का हिस्सा मफेदी मायल रहता है और पैर तथा दोनो बगली हिस्से भूरे रहने है।

रगदुनी गरोह बाँधकर रहनेवाले जीव है जो अक्सर ऐसे पथरीले मैदानो में रहते है जहाँ वे आसानी से विल वना सकें या पत्थरो के बीच छिप सकें। ये ज्यादातर चीड के ढलुए जगलो मे रहते है और आहट पाते ही फौरन अपने बिल में घुस जाते है। इनका मुख्य भोजन घास-पात है।

रगदुनी की मादा एक वार में तीन-चार बच्चे देती है।

ये मांसभक्षी पशु वैसे तो रात्रिचारी होते हैं, लेकिन इनमें से कुछ को दिन में भी घूमते-फिरते देखा जा सकता है। इनकी आँखों की पुतलियों में फैल कर बड़ी हो जाने की शक्ति होती है जिससे वे थोड़ी रोशनी में भी बहुत कुछ देख सकते हैं। अंधेरे में चलते समय इनको आँखों से ज्यादा अपनी मूछों से सहायता मिलती है जिन्हें ये अँधेरे में फैलाकर चलते हैं। ये मूछें भी इनकी स्पर्शेन्द्रिया हैं। ये जीव संसार के प्राय सभी भागों में पाये जाते हैं। यहाँ इस परिवार के मुख्य-मुख्य जीवों का वर्णन दिया जा रहा है।

सिंह

(LION)

सिंह हमारे यहाँ का प्रसिद्ध राजसी पशु है जिसे हमारे देश में सदा से राज्यचिह्नों में स्थान पाने का गौरव प्राप्त है। इस समय भी हमारे स्वतन्त्र भारत के राज्यचिह्न में इसी की मूर्ति रखी गयी है। इसे जंगल का राजा कहना कोई अत्युक्ति नहीं।

सिंह
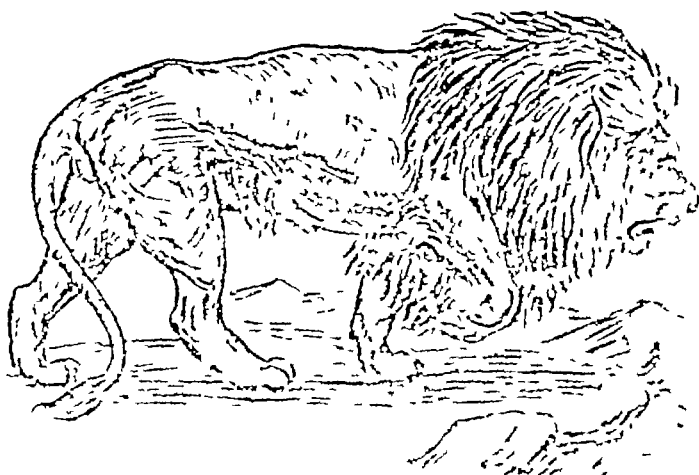
सिंह को उसके कंधे पर के बड़े-बड़े बालों या केसर के कारण केसरी भी कहते हैं। कहीं-कहीं यह शेर-बबर भी कहलाता है। हमारे देश में सिंह अब बहुत थोड़ी संख्या में रह गये हैं। लेकिन अफ्रीका के जंगलों में ये अब भी काफी संख्या में हैं। हमारे देश में तो ये सिर्फ काठियावाड़ के पहाड़ी गिर जंगल में ही रह गये हैं जहाँ इनकी संख्या सौ के

सील-उपवर्ग के जीव हमारे देश में नही पाये जाते, इसमे हम बिल्ली-उपवर्ग को ही ले रहे हैं।

बिल्ली उपवर्ग

(SUB ORDER VERA)

बिल्ली उपवर्ग काफी विस्तृत है, इसीलिए विद्वानो ने इसे तीन समूहो मे इस प्रकार बाँटा है।

१ बिल्ली-समूह--Section Acluroidea

२ कुत्ता-समूह—Section Sytnoidea

३ भालू-समूह—Section Arctoidea

यहाँ इन तीनो समूहो का अलग-अलग वर्णन दिया गया है और प्रत्येक के साथ उनके प्रसिद्ध जीवो को रखा गया है।

बिल्ली-समूह

(SECTION ACLUROIDEA)

बिल्ली-समूह अन्य दोनो समूहो से बडा है। इसीलिए उसका विभाजन चार परिवारो मे, उनकी विशेषता के अनुसार, किया गया है, लेकिन यहाँ उनमे से केवल तीन परिवारो का वर्णन दिया जा रहा है क्योकि हमारे देश मे इन्ही तीनो परिवारो के जीव पाये जाते हैं। ये तीनो इस प्रकार हैं—

१ बिल्ली-परिवार—Family Felidae

२ कस्तूरी-परिवार—Family Viverridae

३ लकडबग्घा-परिवार—Family Hyaenidae

बिल्ली-परिवार

(FAMILY FELIDAE)

इस बडे परिवार के सभी जीव पूर्णरूप से मासभक्षी है जिसमें सिंह से लेकर बिल्ली तक शामिल हैं। इन जीवों के कुकुरदन्त अन्य जानवरो से बडे और नोकीले होते हैं जैसे वे मास-भक्षण के लिए ही बनाय गये हो। उनमें काफी तेज धार होती है जिससे वे आसानी से मास काट सकते हैं।

तेंदुआ
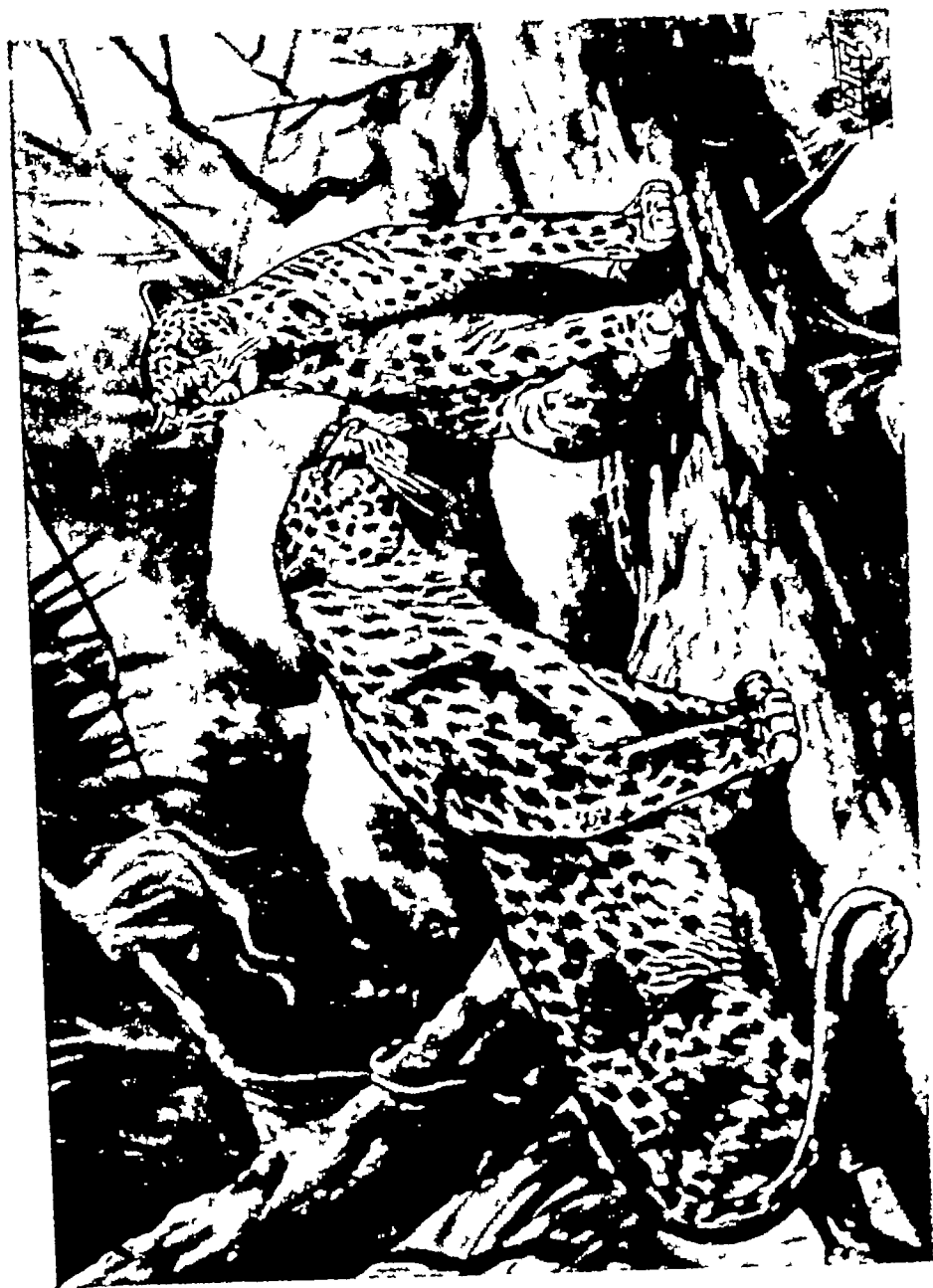
सौ से अधिक नही आँकी जाती। कभी-कभी ये उदयपुर और जोधपुर के आस पास तथा आबू पहाड में भी मिल जाते है। लेकिन यदि सरकार द्वारा इनकी रक्षा का प्रबन्ध न किया गया तो वह दिन दूर नही जब ये हमारे देश से एक दम लुप्त हो जायँगे।

सिंह बाघ की तरह घने जगलो में रहना उतना पसन्द नही करते जितना घास के खुले मैदानो मे। इसीलिए इनको प्रकृति ने धारीदार पोशाक न देकर भूरी पोशाक दी है जो घास के मैदानो के लिए बहुत उपयुक्त है। इनका सिर चपटा और बडा होता है और इनकी शकल बिल्ली से मिलती जुलती न होकर कुत्तो से मिलती जुलती है। नर के कधे पर लगभग एक फुट लम्बे बाल या अयाल होते है जिससे इनका चेहरा बहुत रोबीला और भयानक लगने लगता है। इनकी दुम के सिरे पर गाय-बैल की तरह काले बालो का गुच्छा-सा रहता है। इनका सारा शरीर सुनहला या पिलछौंह भूरा रहता है, कान के बाहरी हिस्से की जड के पास कुछ स्याही रहती है और बचपन मे अयाल के बालो के सिरे भी काले रहते है। बच्चो के बदन पर धारियाँ-सी पटी रहती है जो उनके बडे होने पर गायब हो जाती है।

सिंह करीब छ, साढे छ फुट लम्बे होते है जिनके ढाई-तीन फुट लम्बी दुम रहती है। ऊँचाई मे भी ये तीन, साढे तीन फुट तक के पाये गये है। सिंहनी सिंह से जरूर कुछ छोटी होती है। सिंह बाघ से ऊँचे होकर भी उतने भारी, कद्दावर और मजबूत नही होते और न ये बाघ की तरह खूँखार और चालाक ही होते है। लेकिन इनमें साहस की कमी नही रहती। बाघ जहाँ शिकार के समय छिपने की कोशिश करता है वही सिंह बहादुरी से सामने आकर आक्रमण करता है।

सिंह बडा बहादुर जानवर है जो अपने से बडे जानवरो को बडी आसानी से मार गिराता है। इसकी गरज बाघ से कही तेज होती है जिसे हम शाम को और रात मे अक्सर सुन सकते है। इनके दहाडने से इनके रहने का पता आसानी से लग जाता है क्योकि ये प्राय एक नियत समय पर नित्य दहाडा करते है।

सिंह वैसे अलग-अलग भी रहते है, लेकिन जोडा बाँध लेने पर ये मादा के साथ ही दिखाई पडते है। अफ्रीका आदि में, जहाँ इनकी अधिक सख्या है, ये गरोह बाँधकर शिकार करते है। इनका मुख्य भोजन मास है, लेकिन ये मुर्दाखोर नही होते और सदैव अपना ही मारा शिकार खाते है।

सिहनी आठ महीने पर दो-तीन बच्चे जनती है जिनकी आँखे शुरू मे ही खुली रहती है। ये बच्चे पाच-छ महीने तक अपनी माँ के साथ रहकर अपना अलग जीवन बिताने के लिए उनसे अलग हो जाते है।

बाघ

(TIGER)

बाघ या शेर हमारे यहाँ का सबसे प्रसिद्ध जानवर है जिसे सिहो की कमी के कारण अब जगलो का राजा कहना ठीक ही है। इसको हमने जगल मे भले ही न देखा हो, लेकिन हममे से शायद ही कोई ऐसा होगा जिसने इसकी तस्वीर भी न देखी हो। बहुतो को तो चिडियाखानो मे इसके दर्शन भी हो गये होगे।
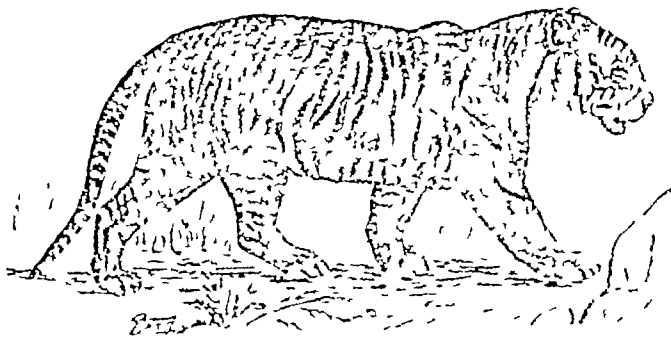
बाघ

हमारे देश के घने जगलो मे आज बाघ का ही एकछत्र राज्य है। काफी शिकार होने के कारण अब इनकी सख्या धीरे-धीरे कम जरूर होती जा रही है लेकिन सिहो की तरह इनके एकदम लोप हो जाने का खतरा अभी निकट भविष्य मे नही है। बगाल, मध्यप्रदेश और बम्बई के जगलो मे इनका काफी शिकार हुआ है और वहाँ ये कम भी हो गये है, लेकिन हिमालय की तराई के घने जगलो मे ये आज भी काफी सख्या मे फैले हुए है। हिमालय पर ये छ-सात हजार फुट से ज्यादा ऊँचाई पर जाना नही पसन्द करते, लेकिन इतनी ऊँचाई तक तो इनका आतक रहता ही है।

बाघ की औसत लम्बाई साढे पाच फुट से छ फुट तक रहती है। इसके अलावा इनकी दुम भी ढाई-तीन फुट की होती है। ऊँचाई मे ये सिह से कुछ छोटे तीन, सवा तीन फुट तक होते है। इनकी दुम बिल्लियो की तरह सादी ही रहती है। इनके बदन पर

इनके अलावा तराई की ओर जहां घास के बड़े-बड़े मैदान हैं बाघ का शिकार हाथियों से घेरकर किया जाता है और अब तो इनका शिकार रात में मोटर पर बैठ-कर भी काफी होने लगा है। रात में मोटर की तेज लाइट या सर्च लाइट के सामने शेर चौंधिया कर खड़ा हो जाता है और तब उसे मोटर पर बैठे-बैठे मार लेने में ज्यादा कठिनाई नहीं रह जाती।

बाघिन लगभग चार महीने बाद दो से छः तक बच्चे देती है। इनके बच्चे देने का साल में कोई निश्चित समय नहीं है। इसी से इनके बच्चे हमको प्रायः हर समय दिखाई पड़ते हैं। बच्चे काफी बड़े होने तक अपनी मा के साथ रहते हैं जो उन्हें शिकार खेलना सिखाती है।

तेंदुआ

(LEOPARD)

तेंदुए को शेर का भाई-बन्धु कहना ठीक होगा। कद में शेर से छोटे होते हुए भी ये चालाकी और फुर्ती में उससे आगे ही रहते हैं। हमारे देश में ये पंजाब को छोड़-कर सभी घने जंगलों में पाये जाते हैं। यही नहीं, ये कभी-कभी झाड़ और ऐसे तितर-बितरे जंगलों में भी चले आते हैं जहां शेर कभी नहीं जाता।

तेंदुआ

तेंदुआ हमारा बहुत ही परिचित जीव है जो चार-पांच फुट लम्बा और करीब दो

रग बादामी रहता है जिसपर आडी-आडी धारियाँ पटी रहती हैं। दुम भी बादामी होती है जो काली गडारियो से भरी रहती हैं। इसके कान का बाहरी हिस्सा काला रहता है जिसपर एक सफेद चित्ता रहता है। नीचे के कुल हिस्से की जमीन सफेद रहती है।

बाघ एक मादा से जोडा बाँधकर रहनेवाले जीव हैं जो कभी अकेले और कभी जोडे मे दिखाई पडते हैं। ये अपना दिन का सारा समय किसी घनी और मायेदार जगह मे बिताकर रात मे अपने शिकार के लिए बाहर निकलते हैं और सारी रात शिकार की तलाश मे चक्कर लगाते रहते हैं। गरमियो मे ये पानी के आस-पास ही रहते हैं, लेकिन जाडे और बरसात मे सारे जगल मे फैल जाते हैं।

बाघ का मुख्य भोजन मास है जिसके लिए ये साही, सुअर, हिरन, साँभर और गाय-बैल आदि का शिकार करते हैं। भूखे रहने पर ये बन्दर और मोर आदि को भी नही छोडते। ये शिकार करते समय अपने से ऊँचे जानवरो की गरदन नीचे से पकड-कर बडी फुरती से उसकी पीठ की दूसरी ओर कूद जाते हैं जिससे शिकार की गरदन ऐंठकर टूट जाती है। यह सब इतने आनन-फानन होता है कि देखते ही बनता है। छोटे-मोटे जानवरो को तो ये एक थपेडे मे ही खतम कर देते हैं। बूढे बाघ जब जगली जानवरो को नही मार पाते तो वे आदमखोर हो जाते हैं। शेरनियाँ भी अक्सर आदम-खोर देखी गयी हैं। एक बार आदमी का खून जबान पर लगने पर ये फिर आदमियो को पकडने लगते हैं क्योकि आदमी से अधिक आसानी उन्हे किसी शिकार मे नही होती।

हमारे यहाँ इनके शिकार के दो प्रसिद्ध तरीके हैं, एक तो हाके द्वारा और दूसरा मरी पर बैठकर। हाँके का शिकार मचान पर बैठकर होता है। इसमे एक ओर ऊँचे पेडो पर मचान बाँध दिये जाते हैं और दूसरी ओर से सैकडो आदमी ढोल, ताशा आदि लेकर शोर मचाते हुए मचानो की ओर आते हैं। वे बीच-बीच मे पेडो को ठोकते और पटाखे आदि दागते आते हैं जिससे शेर आगे-आगे चलकर मचान की ओर चला जाय। जब शेर मचान के करीब पहुँच जाता है तो उस पर शिकारी लोग गोली चलाकर उसे मार लेते हैं।

मरी (Kill) के शिकार के लिए शिकारी जगलो मे कटरे या भैंसे बाँध देते हैं। जब शेर उसे मार लेता है तो दूसरे दिन उसी के पास किसी पेड पर मचान बाँध दिया जाता है। दूसरे दिन रात को जब शेर बचे हुए मास को खाने के लिए उस जगह आता है तो उसे मचान पर से गोलियो का शिकार बना लिया जाता है।

सफेदी मायल राख-जैसा होता है जिसमें कभी-कभी पीलेपन की कुछ झलक रहती है। इसके बदन पर बड़े और काले छल्लेनुमा गुल पड़े रहते हैं, जो देखने में बहुत सुन्दर लगते हैं। इसके बदन के बाल काफी बड़े होते हैं और दुम के सिरे के पास बालों का एक गुच्छा-सा रहता है, नीचे का भाग हिस्सा सदा सफेदी मायल रहता है जिस पर पेट के भाग कुछ गहरे रंग की चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। इसके कान का बाहरी हिस्सा काला रहता है।

साह
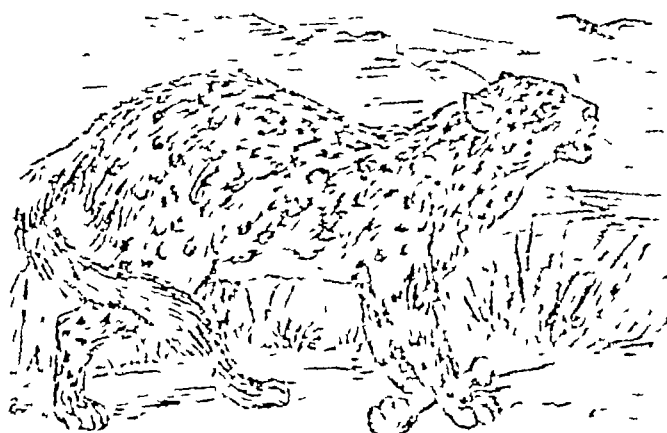
साह वैसे तो मांसाहारी और हिंसक जीव है लेकिन यह आदमियों पर हमला नहीं करता। यह बर्फ के निकट रहनेवाली जंगली भेड़-बकरियों को मारकर अपना पेट भरता है।

इसकी और सब आदतें तेंदुओं से मिलती-जुलती होती हैं। इससे उन्हें फिर से दुहराने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती।

लमचित्ता

(CLOUDED LEOPARD)

लमचित्ता भी हिमालय का निवासी है जो हिमालय के पूर्वी हिस्सों में लगभग सात हजार फुट के ऊँचे जंगलों में पाया जाता है। इसके पैर कुछ छोटे होने के कारण देखने में यह लम्बा जान पड़ता है। इसीसे शायद इसे लमचित्ता कहा जाता है। कुछ लोग इसके बदन पर के लम्बे चित्तों के कारण इसको लमछिट्टा भी कहते हैं।

फुट ऊँचा होता है। इसके तीन फुट लम्बी दुम होती है। इसका वदन वहुत गठीला और सुडौल होता है और इसकी शकल विल्लियो-जैसी रहती है।

तेंदुए का बदन हलका वादामी या हलका भूरा रहता है जिसमे सुर्खी मायल सफेदी मिली रहती है। नीचे का रग एकदम सफेद रहता है। इसका सारा बदन गोल चित्तियो या गुलो से भरा रहता है जिसमे सिर, पेट और पैर के निचले हिस्से की चित्तियाँ तो धुर काली होती है, लेकिन पीठ, दुम और दोनो वगल के गुल छल्लेनुमा रहते है और उनके बीच का रग पीला रहता है। इन्ही गुलो के कारण इन्हे कही-कही गुलदार भी कहा जाता है। बच्चे भूरे रग के होते है और उनके वदन पर के गुल शुरु मे हलके रग के रहते है।

तेंदुआ दिन मे किसी घने जगल की खोह या सायेदार स्थान मे छिपा रहता है और रात होते ही शिकार के लिए वाहर निकलता है। यह वहुत ही ताकतवर और खतरनाक जानवर है जिसमे गजव की चालाकी होती है। इसमे इतना साहस नही होता और यह खतरा निकट देख कर भागने या छिपने की कोशिश करता है। यह गाँव के भीतर आकर आदमियो पर हमला नही करता, लेकिन चोरी से मुरगियो, वत्तखो और अकेले जानवरो को उठा ले जाता है। यह वैसे तो वदर, सुअर और हिरन आदि का शिकार करता है, लेकिन भूखा रहने पर गाँव के कुत्तो और अन्य पालतू पशु-पक्षियो को भी मारकर अपना पेट भरता है।

तेंदुआ बहुत फुरतीला जानवर है जो काफी लम्बी छलाँगें मारता है और पेडो पर भी आसानी से चढ जाता है। यही नही, यह पानी मे तैरने मे भी शेर की तरह उस्ताद होता है। कभी-कभी यह अपने शिकार को पेड पर ले जाकर रख देता है और वही कई दिनो मे उसे खाता है।

इसकी मादा एक वार में दो से चार तक बच्चे देती है।

साह

(SNOW LEOPARD)

साह को हिमालय का या वर्फ का तेंदुआ कहे तो अनुचित न होगा क्योकि यह केवल हिमालय मे छ-सात हजार फुट ऊँचे जगलो मे पाया जाता है।

यह लगभग चार फुट लम्बा जानवर है जो बहुत गठीला और सुन्दर होता है। यह दो फुट ऊँचा होता है जिसकी दुम करीव तीन फुट लम्बी रहती है। इसका रग

लमचित्ता करीब तीन फुट लम्वा जानवर है, जो ऊँचाई मे एक या मवा फुट मे ज्यादा नही होता। इसकी दुम भी करीव ढाई, तीन फुट मे ज्यादा लम्वी नहीं होती, जो बिल्लियो की तरह सादी ही रहती है। यह बहुत सुन्दर जानवर है जिसके रग का वर्णन करना बहुत कठिन है। इसके वदन का रग पिलछौह भूरा या हलका वादामी रहता है, जिसके ऊपर बहुत वडे-बडे काले चित्ते रहते है जो देखने मे बहुत ही भले मालूम होते है, जैसे पीली जमीन पर काले वादल से उठ रहे हो। इसके पैरो का भीतरी हिस्सा सफेद रहता है और बदन का निचला हिस्सा हलका हो जाता है। गरदन और दोनो गालो पर काली धारियाँ रहती है और गले पर एक काली पट्टी माफ चमकती रहती है। इसकी दुम काफी लम्बी और झबरी होती है, जिस पर गहरे रग के छल्ले पडे रहते है। इसका बदन भारी, गठीला और सुडौल होता है और इसके शरीर पर के रोये बडे न होकर छोटे ही रहते है।

लमचित्ता अपना अधिक समय पेडो पर ही बिताता है, जहाँ वह किमी दुफकी डाल पर बैठा रहता है। रात को भी यह पेडो पर ही सोता है और पेडो पर ही घूम-कर चिडियो को पकडता है। चिडियो के अलावा यह छोटे-मोटे जानवर का भी शिकार करता है, लेकिन वडे जानवरो और आदमियो पर हमला करने की हिम्मत इसे नही पडती।

इसकी अन्य आदते तेंदुए तया साह से मिलती-जुलती होती है।

सिकमार

(MARBLED CAT)

सिकमार बिल्ली के कद का छोटा-सा जानवर है। इसलिए इसे शेर और तेंदुए की श्रेणी में न रखकर विल्लियो की श्रेणी मे ही रखना अधिक उपयुक्त होगा। यह डेढ-दो फुट से अधिक लम्बा नही होता और इसके करीब सवा फुट लम्बी झबरी दुम होती है। इसके अग घरेलू विल्लियो से कही ज्यादा मजबूत होते है और यह ताकत और फुरती में भी उनसे आगे रहता है।

सिकमार का रग लमचित्ते से मिलता-जुलता रहता है और दूर से देखने पर यह उसका वच्चा जान पडता है। इसके वदन का रग गदा ललछौंह रहता है जिसमे भूरे रग की मिलावट रहती है। सारे वदन पर बहुत से लम्वे लम्वे काले धव्बे रहते हैं जो देखने

है और यह अपना अधिक समय घने जगलो मे ही बिताती है। वहाँ यह ज्यादातर पेडो पर ही रहती है।

इसके बदन का रग हल्का भूरा होता है जिस पर काली या गाढी भूरी चित्तियाँ पडी रहती है। नीचे का हिस्सा सफेद रहता है। इसकी गरदन और गुद्दी पर काली धारियाँ पडी रहती है, लेकिन दुम और पैरो पर धारियो का स्थान काली चित्तियाँ ले लेती है।

तेंदुआबिल्ली

तेंदुआबिल्ली दिन मे किसी खोखे या सूराख मे छिपी रहती है, लेकिन रात को यह शिकार के लिए बाहर निकलती है और तब यह जगलो के अलावा आस-पास की आबादियो मे भी पहुँच जाती है। वहा पर यह पालतू मुर्गियो, बत्तखो और खरगोशो के लिए बहुत ही घातक सिद्ध होती है। जगल मे भी यह छोटी-मोटी चिडियो और जानवरो को मारकर अपना पेट भरती है।

इसकी मादा एक बार मे तीन-चार बच्चे देती है जो बचपन मे भूरे रग के रहते है।

वनबिलार

(JUNGLE CAT)

वनबिलार यहाँ की सबसे प्रसिद्ध जगली बिल्ली है जो हमारे देश के प्राय सभी घने और छितरे-बिछरे जंगलो मे पायी जाती है। हिमालय मे भी यह सात-आठ हजार

शकल गोल हो जाती है। वहाँ ये वेतरतीवी से इधर-उधर फैली रहती हैं। इसके गाल का रग सफेद रहता है जिस पर काली धारियाँ पडी रहती हैं। पेट का रग मटमैला सफेद होता है जिस पर सीने के पास पाँच-छ गहरे रग की पट्टियाँ और वाकी हिस्से मे चित्तियाँ पडी रहती हैं। दुम पर कई छल्ले पडे रहते हैं, लेकिन उसका सिरा काला ही रहता है।

वाघदशा

वाघदशा हमारे यहाँ की जगली बिल्लियो मे सवसे वडा, खूंखार और तेज होता है। यह प्राय पानी और दलदलो के आसपास ही रहना पसन्द करता है क्योकि इसका मुख्य भोजन घोघे, कटुए और मछलियाँ आदि हैं। इसके अलावा यह चिडियो और छोटे-छोटे जानवरो का भी शिकार करता है और कभी-कभी ढीठ हो जाने पर यह आदमियो के एक-दो महीने के वच्चो को भी उठा ले जाता है। भूखा रहने पर यह भेड-वकरियो और कुत्तो पर भी हमला कर बैठता है।

इसकी मादा अन्य विल्लियो की तरह दो-चार वच्चे जनती है।

तेदुआविल्ली

(LEOPARD CAT)

तेदुआविल्ली तेदुए के वरावर नही होती, वल्कि इसका कद वाघदशा से छोटा और हमारी घरेलू विल्लियो के ही वरावर रहता है। इसे पहाडी स्थान बहुत पसन्द

बिल्ली

(CAT)

बिल्ली से भला ऐसा कौन है जो परिचित न होगा। हमारे घरों में दूध दही के लिए इसका फेरा लगता रहता है। कुछ शौकीन लोग इसे कुत्ते की तरह शौक के लिए भी पालते हैं और इसी कारण इसकी अनेक जातियाँ बन गयी हैं जिनमें ईरानी (Persian) और स्यामी मुख्य हैं।

हमारे देश में बिल्लियों की किसी खास जाति का विकास नहीं हुआ है लेकिन इन्हीं ईरानी और स्यामी की दोगली जातियाँ यहाँ फैली हुई हैं जो सफेद, भूरी, कलछौंह या चितकबरी रहती हैं। इनमें से कुछ के बाल ईरानी बिल्लियों की तरह बड़े भी रहते हैं, लेकिन ज्यादा संख्या उन्हीं की है जो छोटे बालोंवाली होती हैं।

इन दोगली पालतू बिल्लियों के अलावा एक देशी बिल्ली हमारे यहाँ प्रायः सभी जगह पायी जाती है जो हमारे घरों में अक्सर दिखाई पड़ती है। इसी को हम यहाँ की घरेलू बिल्ली कह सकते हैं, यद्यपि यह हमारे घरों में रहकर भी इतनी पालतू नहीं हुई है कि हम इसे पकड़ सकें। यह हमारे घरों में जरूर रहती है और वहाँ बच्चे भी देती है, लेकिन हमारा नुकसान करने के कारण हम इसे मारने की ही घात में रहते हैं और यह भी हमें देखकर दूर भागने की घात में तैयार ही रहती है।

बिल्ली

हमारे यहाँ की इस देशी बिल्ली [illegible] जाता है जिसके सारे शरीर पर काली-काली चित्तियाँ, धारियाँ और [illegible] रहती हैं। [illegible]

फुट की ऊँचाई तक पहुँच जाती हे और जगल के आस-पास की आवादियो मे भी रात में इसका हमला होता रहता हे। देश के प्राय सभी जगली स्थानो मे पायी जाने के कारण लोग इसको बन-विलार या जगली विल्ली कहते हैं जो ठीक भी ह।

वनबिलार

वनबिलार हमारी पालतू बिल्लियो के बराबर लगभग दो फुट लम्बा और एक फुट से कुछ ऊँचा होता है। इसकी दुम भी लगभग दस इच की रहती है। इसके शरीर का रग ललछौह सिलेटी रहता है जिसमे कुछ भूरापन मिला रहता है। पीठ पर से दोनो वगल धुमैली खडी धारियाँ पडी रहती है, जो कही-कही टूटकर चित्तियो की शकल की हो जाती है। ज्यादा उम्र हो जाने पर इसके बदन की चित्तियाँ धुमैली और अस्पष्ट हो जाती है। इसके शरीर का निचला हिस्सा सफेद रहता है। लेकिन सीने पर कभी-कभी एक काली धारी पडी रहती है। कभी-कभी पेट पर भी हलके रग की चित्तियाँ पडी रहती है। इसके पैर के तलवे ललछौह होते है और दुम के निचले आधे भाग मे छल्ले पडे रहते है। दुम का सिरा हमेशा काला रहता है।

बनविलार बहुत दुष्ट और ढीठ जानवर है जो रात मे वस्तियो मे घुसकर हमारा वहुत नुकसान करता है। इससे पालतू पक्षी और छोटे जानवरो को बचाना कठिन हो जाता है। यदि कोई पालतू जीव खुला रह गया तो इसके पहुँचने मे देर नही लगती। दिन मे यह किसी सुनसान खँडहर, घास के मैदान या जगल के किसी बिल या खोह मे छिपा रहता हे, लेकिन रात होते ही इसका शिकार शुरू हो जाता है।

इसकी मादा साल मे दो वार तीन-चार वच्चे देती है।

की ओर भी ये मालाबार तट को छोडकर वहाँ के प्राय सभी जगलो मे देखे जाते है। हमारे देश के इतने विस्तृत भाग मे फैले रहने पर भी स्याहगोश इतनी कम सख्या में है कि इन्हे हम बहुत कम देख पाते है। इनके अलावा ये अपने रहने का स्थान भी ऐसे घने जगलो के बीच मे चुनते है कि वहाँ तक लोगो का पहुँचना कठिन होता है।

स्याहगोश करीब ढाई फुट लम्बा और डेढ फुट ऊँचा जानवर है जिसकी दुम एक फुट से कुछ कम ही रहती है। कुछ स्याहगोश हल्के भूरे या बादामी रग के होते है और कुछ के रग मे पीलेपन की झलक रहती है। इनके पेट का रग पिलछौह रहता है, लेकिन कुछ सफेद पेटवाले स्याहगोश भी पाये गये है। इनके पेट पर हलकी ललछौह चित्तियाँ रहती है जो लिपीपुती-सी जान पडती है। टाँगो का भीतरी हिस्सा भी ऐसी चित्तियो से भरा रहता है। दुम का सिरा काला रहता है।

स्याहगोश और स्यानो की अपेक्षा मध्य भारत के जगलो मे अधिक सख्या मे पाये जाते है। इनका मुख्य भोजन छोटे जानवर और मोर आदि पक्षी है। यही नही, ये कभी-कभी छोटे हिरनो को भी मार लेते है। चिडियो को पकडने मे तो ये उस्ताद होते है। ये पेडो पर घूम-घूमकर चिडियो को तो पकडते ही है, जमीन पर भी इन्हे चिडियो के पकडने मे ज्यादा दिक्कत नही पडती क्योकि ये जमीन से पाँच-छ फुट तक कूदकर उन्हे पकड लेते है। इनकी इसी फुर्ती के कारण कुछ लोग इन्हे शिकार के लिए पालते है और इनसे खरगोश, लोमडियो के अलावा मोर, कबूतर और तीतर आदि चिडियो का शिकार कराते है।

इनकी मादा एक बार मे तीन-चार बच्चे देती है।

चीता

(CHEETA)

चीता हमारे देश का ही क्यो, सारे ससार का सबसे तेज दौडनेवाला स्तनप्राणी है, लेकिन सिह की तरह यह भी हमारे देश से अब धीरे-धीरे लुप्त होता जा रहा है। अफ्रीका मे सिहो की तरह चीते भी काफी सख्या में पाये जाते है, वहाँ से शौकीन लोग इन्हे पालने के लिए मँगाते है और इनके द्वारा हिरन आदि का शिकार करते है। ये वैसे तो तेंदुए के निकट सम्बन्धी है और इनका स्वभाव भी उनसे मिलता जुलता रहता है लेकिन ये अपने पतले पैर, छोटे सिर और इकहरे बदन के कारण शरीर की बनावट में तेंदुए से एकदम अलग रहते है।

काली, गडारियो से भरी रहती है और आँख के पास से गाल तक दोनो ओर एक-एक काली रेखा रहती है। यह रग-रूप में जगली बिल्लियो से बहुत कुछ मिलती-जुल्ती होती है और इसका उत्पात भी उनमे कम नही होता।

इसे हमारे घर के दूध-दही की आदत जरूर पड गयी है, लेकिन यह वास्तव मे मास-भक्षी जीव है जो हमारे घर के छोटे पाल्तू जीवो और मुर्गी, कबूतर, बत्तख तथा अन्य छोटी चिडियो पर हमला करती है। यह बडी चालाक होती है और चिडियो के पिंजडो तक में हाथ डालकर उन्हे पकड लेती है। इससे हमारा इतना लाभ जरूर होता है कि यह हमारे घर के चूहो की भी सफाई करती रहती है।

यह एक बार में कई बच्चे देती है जिन्हें यह थोडे-थोडे दिन पर एक स्थान से उठाकर दूसरे स्थान पर ले जाकर रखती है।

स्याहगोश

(CARACAL)

स्याहगोश को उसके काले कानो के कारण यह नाम मिला है। यह बिल्ली की शकल-सूरत का छोटा-सा जानवर है जो अपने ऐंठे हुए काले कानो के कारण बडी आसानी से पहचाना जा सकता है।

स्याहगोश

स्याहगोश हमारे यहाँ पजाब और मध्यप्रदेश के जगलो में पाये जाते है। दक्षिण

चीते को अब भी लोग शिकार के लिए पालते हैं और इससे हिरन आदि का शिकार खेलते हैं। इसकी आँख पर पट्टी बाँधकर किसी बैलगाड़ी द्वारा उस स्थान पर ले जाया जाता है, जहाँ हिरनों के मिलने की आशा रहती है। वहाँ हिरनों का गरोह दिखाई पड़ने पर इसकी आँख की पट्टी खोल दी जाती है और यह उन्हें देखते ही उनके पीछे दौड़ पड़ता है। यह उनके पास पहुँचकर किसी एक को पंजा मारकर गिरा देता है और तब तक वहीं खड़ा रहता है जब तक इसका मालिक वहाँ नहीं पहुँच जाता। शिकारी हिरन के पास पहुँचकर उसकी गर्दन काट देता है और चीते को उसका खून किसी बरतन में भरकर दे देता है। चीता जब खून पीने लगता है तो उसकी आँखों पर फिर पट्टी चढ़ा दी जाती है और उसको जंजीरों में बाँध लिया जाता है।

इसकी मादा तेंदुए की तरह कई बच्चे देती है। इसकी और आदतें तेंदुए से मिलती-जुलती रहती हैं।

कस्तूरी-परिवार

(FAMILY VIVERRIDAE)

इस परिवार में पहले से कम जीव हैं जो मझोले कद के और कुछ उनसे भी छोटे होते हैं। इन जीवों का मुँह बिल्ली परिवार के जीवों की तरह गोल न होकर कुत्तों की तरह लम्बा होता है। इनके पैर भी छोटे होते हैं।

ये सब जीव मांसाहारी होते हैं और पेड़ों पर बड़ी आसानी से चढ़ लेते हैं।

इस परिवार के जीवों में आपस में काफी भेद होने के कारण उन्हें तीन उपपरिवारों में बाँटा गया है—

१ कस्तूरी उपपरिवार—Sub Family Viverrinae

२ मुसंग उपपरिवार—Sub Family Paradoxurinae

३ न्योला उपपरिवार—Sub Family Mungotinae

कस्तूरी उपपरिवार के प्राणियों का कद लगभग बिल्लियों के बराबर होता है। इनके शरीर पर गाढ़े चित्ते रहते हैं और दुम के नीचे एक ग्रंथि रहती है जिससे एक प्रकार का गन्धपूर्ण गाढ़ा पदार्थ निकलता है।

इन प्राणियों की जीभ खुरदरी होती है और इनके कुछ नाखून बिल्लियों की तरह भीतर की ओर मुड़े रहते हैं। इनमें से कस्तूरी हमारे यहाँ का प्रसिद्ध जीव है।

हमारे देश मे चीता मध्य प्रदेश, दक्षिण भारत, राजपूताना और पजाव के जगलो मे ही पाया जाता है, लेकिन अब इसकी सख्या इतनी कम हो गयी है कि यह बहुत मुश्किल से हमारी निगाह तले पडता है। जिस प्रकार सिंहो के कम हो जाने से उनका स्थान बाघो ने ले लिया है उसी प्रकार चीतो की कमी से हमारे जगलो में तेंदुओ की सख्या काफी हो गयी है।
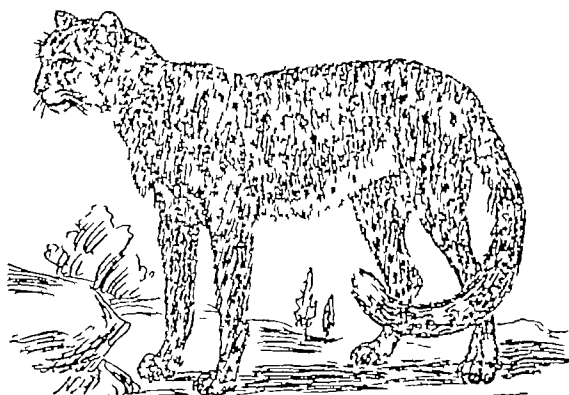
चीता

चीता लगभग साढे चार फुट लम्बा और ढाई फुट ऊँचा छरहरे बदन का जानवर है, जिसके करीब ढाई फुट की लम्बी दुम होती है। इसकी टाँगें लम्बी, सिर छोटा और दुम सिरे के पास कुछ घूमी-सी रहती है। इसके शरीर का रग कभी ललछौंह बादामी और कभी भूरापन लिये पिलछौंह रहता है जिसपर काली चित्तियाँ पडी रहती है। नीचे का रग ऊपर से बहुत हलका होता है, लेकिन काली चित्तियाँ उस पर भी उसी प्रकार रहती है। ठुड्डी और गले का रग सफेदी-मायल रहता है और वहाँ चित्तियाँ नही होती। दुम पर भी काले चित्ते रहते है जो जड के पास छल्लो की शकल के हो जाते है। दुम का सिरा हमेशा सफेद रहता है।

चीते के बदन की चित्तियाँ गुलदार के बदन के गुलो की तरह बीच में खाली नही रहती, बल्कि वे काली और गोल बिदियो की शकल की होती है। इन्ही काले चित्तो के कारण इसे चित्ता या चीता कहा जाता है। इसके बदन पर के बाल वैसे तो छोटे और कडे होते है, लेकिन गरदन पर के बाल लम्बे और बिखरे-बिखरे-से रहते है। बच्चो के शरीर के बाल बडे होते है जिनसे उनके बदन की चित्तियाँ ढक-सी जाती है।

मुसग उपपरिवार में कस्तूरी से मिलते-जुलते जीव है जो पेड पर वडी आसानी से चढ लेते है। यहाँ तक कि ताड और खजूर के पेडो पर चढना भी इनके लिए मामूली बात है। इनके पैरो की उँगलियाँ आपस में एक प्रकार की झिल्ली से जुटी रहती है और इनके नाखून पजे के भीतर थोडा ही घुस सकते है। इनमें मुसग या ताड की विल्ली हमारे यहाँ का प्रसिद्ध जीव है।

तीसरा उपपरिवार न्योले का है जिसमें न्योला अकेला ही जीव है। यह इस वर्ग का सबसे छोटा प्राणी है, लेकिन साहस में शायद यह सबसे आगे है। अपनी रक्त पीने की आदत के लिए यह बहुत प्रसिद्ध है। यह अपने शिकार का गला काटकर खून तो पी ही लेता है, साथ ही साथ उसका भेजा भी खा लेता है। गोश्तखोर होते हुए यह फल वगैरह भी वडे मजे में खा लेता है।

नीचे इस परिवार के प्रसिद्ध जीवो का सक्षेप मे वर्णन दिया जा रहा है।

कटास

(LARGE INDIAN CIVET)

कटास कस्तूरी का ही भाई-विरादरी है जो हमारे देश में केवल पूर्वी हिस्सो मे पाया जाता है। यह नेपाल से उडीसा तक और उसके पूर्व के जगलो में पाया जाता है और रात्रिचर होने के कारण हमारी निगाह-तले वहुत कम पडता है।

कटास

इसका कद ढाई फुट से कुछ वडा ही होता है जिसके लगभग डेढ फुट लम्बी मोटी दुम रहती है। इसका रग गाढा सिलेटी होता है और पीठ पर के वाल काले रहते है। वदन के दोनो ओर धारियाँ और चित्तियाँ पडी रहती है लेकिन आधी से ज्यादा दुम काली ही रहती है। इसकी टाँगो की जड के पास का हिस्सा सिलेटी अथवा काली पटरियो से भरा रहता है। इसके सीने पर भी चौडी काली पटरियाँ पडी रहती है।

कटास दिन भर जगल में किसी घनी झाडी में छिपा रहता है और रात होने पर

चित्तियाँ और धारियाँ पड़ी रहती हैं। इसके पैर गहरे रंग के होते हैं और सिर के ऊपरी हिस्से से नाक के बीच तक एक गहरी धारी पड़ी रहती है।

मुसंग
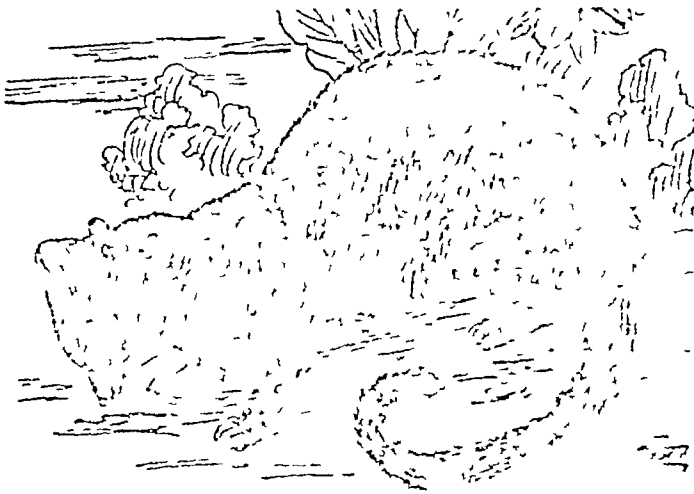
मुसंग से हम सभी बहुत परिचित हैं। ये प्रायः बस्तियों के आसपास की झाड़ियों और खाली मकानों में रहती हैं। ये भी रात्रिचर हैं जो दिन भर वीरान जगहों में रहकर शाम होते ही बाहर निकलती हैं। ये पेड़ों पर चढ़ने में उस्ताद होती हैं और इनसे भी बस्तियों की पालतू चिड़ियों और छोटे जानवरों को बहुत खतरा रहता है। ये छोटे जानवरों और चिड़ियों के अलावा कीड़े-मकोड़े और फल-फूल भी खाती हैं और ताड़ और खजूर के पेड़ों पर चढ़कर ताड़ी का बहुत नुकसान करती हैं।

कस्तूरी की तरह यह भी आसानी से पालतू हो जाती है और इसके भी दुम के नीचे गन्ध की थैली रहती है। इसकी आदतें बहुत कुछ कस्तूरी से मिलती-जुलती होती हैं। मुसंग की मादा एक बार में चार-पाँच बच्चे देती है।

नेवला

(MANGOOSE)

नेवला हमारा इतना परिचित जीव है कि इसे हम सबने अपने घर के आस-पास घूमते देखा होगा।

है वह इनके उपद्रव को भली-भाँति जानता है। यह पालतू जीवो के लिए बिल्ली और लोमडियो से भी ज्यादा खतरनाक साबित हुई है।

कस्तूरी का कद लगभग दो फुट लम्बा होता है जिसके करीब डेढ फुट लम्बी दुम रहती है। इसके वदन का रग भूरापन लिये सिलेटी रहता है जिसपर काली-काली चित्तियाँ पडी रहती है। पीठ की चित्तियाँ लम्बी होकर पक्तियो का रूप धारण कर लेती है लेकिन शरीर की अन्य चित्तियाँ वे-सिलसिले रहती है। सारी दुम काली गडारियो से भरी रहती है लेकिन इसके पेट पर किसी किस्म की चित्तियाँ नही रहती। इसके दोनो कानो के पास से कधे तक दोनो ओर एक-एक काली लकीर रहती है और गरदन के ऊपर भी कुछ खडी धारियाँ पडी रहती है।

ये दिन भर किसी घनी झाडी या ऐसे विलो मे घुसी रहती है जो प्राय जलाशयो के आस-पास रहते है। इसके अलावा ये खँडहरो और वीरान मकानो मे भी दिन मे घुसी रहती है और सारा दिन ऐसे ही सुनसान स्थानो मे बिताकर रात को शिकार के लिए वाहर निकलती है। इनका मुख्य भोजन छोटे-छोटे जानवर, चिडियाँ, अण्डे, मेढक, साँप और कीडे-मकोडे है। इसके अलावा ये फल-फूल भी वडे स्वाद से खाती है और पालतू पशु-पक्षियो की तो ये जानी दुश्मन है।

कस्तूरी वडी आसानी से पालतू हो जाती है और अक्सर शिकारी लोग इसे स्याहगोश की तरह शिकार कराने के लिए पालते है। इसकी मादा एक वार मे चार-पाँच वच्चे देती है।

मुसग

(INDIAN PALM CIVET)

मुसग को कही-कही ताड की विल्ली भी कहते है। ये कस्तूरी की शकल-सूरत की होती है, लेकिन इनके वदन का रग उससे कुछ भिन्न रहता है। कस्तूरी की तरह ये भी हमारे देश मे प्राय सभी स्थानो मे फैली हुई है जो अपना ज्यादा समय पेडो पर ही विताती है। पेडो मे भी ये ताड, खजूर और नारियल ज्यादा पसन्द करती है, जहाँ इन्हे अक्सर शाम को देखा जा सकता है।

मुसग लगभग डेढ-दो फुट लम्बी होती है जिसकी दुम भी करीव-करीब इतनी ही लम्बी हो जाती है। इसके वदन का रग भूरापन लिये सिलेटी रहता है जिस पर काली

प्राणियों में मिलता है और न कस्तूरी-परिवार के प्राणियों में। इसकी खोपड़ी बड़ी और इसके दाँत लम्बे और बहुत मजबूत होते हैं।

इन जीवों के पंजों में पाँच की जगह चार ही उँगलियाँ रहती हैं और उनमें के नाखून छोटे और भोथरे होते हैं, लेकिन उनकी मजबूती में कोई कसर नहीं रहती। उनको देखकर ऐसा लगता है कि वे मिट्टी खोदने के लिए ही बनाये गये हों। ये नाखून बिल्लियों की तरह पंजे के भीतर नहीं समा सकते। इनकी भी जबान काफी खुरदुरी होती है। ये मुर्दाखोर जीव हैं।

नीचे अपने यहाँ के प्रसिद्ध लकड़बघे का वर्णन दिया जा रहा है।

लकड़बघा

(STRIPED HYAENA)

लकड़बघा हमारे यहाँ का बहुत प्रसिद्ध और परिचित जीव है जो हमारे देश के प्रायः सभी जंगलों में पाया जाता है। जंगलों के अलावा यह हमारे यहाँ के ऊबड़-खाबड़ भीटों, नालों और कछारों के आस-पास भी बिलों में रहता है। यह मुर्दाखोर जानवर है जो प्रायः मरे हुए ढोरों और शेर आदि शिकारी जानवरों के मारे हुए शिकार से अपना पेट भरता है। इसकी हाड़ चबाने की आदत से इसे हड़हा भी कहते हैं।

लकड़बघा बहुत ही बेडौल और बदसूरत जानवर है जिसके आगे का हिस्सा तगड़ा और पीछे का कमजोर और दुबला होता है। इसके पंजों में अन्य मांसभक्षी जीवों की तरह पाँच उँगलियाँ न होकर केवल चार ही उँगलियाँ रहती हैं।

लकड़बघा करीब साढ़े तीन फुट लम्बा जानवर है जिसकी शकल-सूरत बिल्ली की तरह न होकर कुत्ते-जैसी होती है। इसकी दुम की लम्बाई भी लगभग डेढ़ फुट रहती है जिस पर काफी बाल रहते हैं। आगे का हिस्सा भारी और ऊँचा-ऊँचा-सा रहता है और अगले पैर भी पिछले पैरों से बड़े रहते हैं। इससे यह सामने से बड़ा रोबीला जान पड़ता है। इसकी पीठ और गरदन पर काफी बड़े बाल होते हैं और रङ्ग भी काफी भद्दी होती है।

यह हमारे देश के प्राय सभी स्थानो में पाया जाता है। नेवला करीब फुट, सवा फुट लम्बा होता है जिसके इतनी ही लम्बी दुम रहती है। इसका रग भूरा होता है जिसमें कुछ पिलछौंह और स्याहीपन की झलक रहती है। कुछ के शरीर मे एक प्रकार की ललाई भी रहती है। इसके वदन पर छोटे और खुरखुरे वाल रहते है जिन्हे यह हमला करते समय फुलाकर साही के कॉटो की तरह खडे कर लेता है और तव इसकी आकृति दूनी दिखाई पडने लगती है। इसके पजे वहुत मज-वूत होते है।

नेवला

नेवले दिन और रात दोनो समय वाहर दिखाई पडते है। वैसे तो ये विल वना कर रहते है। लेकिन पेडो पर चढने मे भी ये किसी से पीछे नही रहते। ये वहुत अक्लमन्द और चालाक जानवर है जो साहस मे किसी से कम नही होते। ये अपने से चौगुने जानवर पर हमला कर बैठते है और उसकी गरदन काटकर उसका खून चूस लेते हैं। इनका मुख्य भोजन वैसे तो मास है, लेकिन ये फल भी खूब मजे में खाते है। इनसे कीडे-मकोडे, छोटे-छोटे जानवर, चिडियाँ और सरीसृप और उनके अण्डे वचने नही पाते। सॉप के तो ये जानी दुश्मन है और उन्हे इस फुर्ती से मारते है कि देखकर ताज्जुव होता है। जहरीले से जहरीले सॉपो की गरदन पर ये पीछे से वडी तेजी से झपटते है और उनकी गरदन काट डालते है। इनसे पालतू चिडियो को वहुत खतरा रहता है, लेकिन एक तरह से ये हमारे लिए बहुत उपयोगी भी है क्योकि ये चूहो और साँपो को मारकर हमारा उपकार ही करते हैं।

लकडवघा-परिवार

(FAMILY HYAENIDAE)

लकडवघा अपने परिवार का अकेला प्राणी है जिसका अगला हिस्सा तो वडा और रोवीला होता है, लेकिन पीछे का हिस्सा पतला और कमजोर रहता है। इसके लिए एक अलग परिवार इसी कारण वनाना पडा है कि यह न तो विल्ली-परिवार के

कुत्ता-परिवार

(FAMILY CANIDAE)

इस परिवार मे, जैसा ऊपर बताया जा चुका है, कुत्ते, भेडिये और उनके निकट सम्बन्धी जीव रखे गये है जिनकी टागे, दुम और थूथन प्राय लम्बे होते है।

बिल्ली-परिवार के प्राणियो की तरह ये हमेशा शिकार करके ही अपना पेट नही भरते बल्कि दूसरे के मारे हुए शिकार से भी अपना पेट भर लिया करते है। ये मास के अलावा और चीजे भी खाते है। स्यार जहा फूट और ककडी तक मजे से खाता है वही कुत्ते से कुछ भी खाने से नही छूटता।

इन जानवरो के कुकुरदन्त बडे और तेज होते है, लेकिन इनके नाखून बिल्लियो के नाखूनो की तरह भीतर नही समा सकते। इसी कारण ये उतने तेज न रहकर भोथरे हो जाते है। इनकी जीभ बिल्ली-परिवार के जानवरो के बराबर खुरदुरी नही होती।

ये सब यूथचारी जीव है जो प्राय गोल बनाकर रहते है। इनकी सूंघने की शक्ति काफी तेज होती है और इनके तलवे बिल्लियो की तरह मुलायम रहते है।

ये सब अपनी चालाकी और अक्लमदी के लिए बहुत प्रसिद्ध है। लोमडी की मक्कारी, स्यार की चालाकी, भेडिये का छल-कपट और कुत्ते की अक्लमदी के बारे मे हम सब जानते ही है।

यहाँ इस परिवार के कुछ प्रसिद्ध जीवो का वर्णन किया जा रहा है।

कुत्ता

(DOG)

घोडे की तरह कुत्ते भी मनुष्यो के पुराने साथी है जिनका मनुष्य की सभ्यता मे बहुत बडा हाथ है। आज ससार मे पालतू कुत्तो की करीब दो सौ जातिया पायी जाती है। लेकिन हमारे देश मे अभी तक कोई ऐसी जाति नही जिसे हम अपने देश की जाति कह सके। विदेशो मे तो अल्सेशियन (Alsatian) स्पैनियल (Spaniel), बुलटेरियर (Bull-terrier), सेटर (Setter), फाक्सटेरियर (Fox-terrier) गोल्डेन रिट्रीवर (Golden-Retriever), ब्लडहाउड (Blood-Hound) ग्रेहाउड (Grey-hound), डालमेशियन (Dalmatian), डाक्सहड (Dachshund) [illegible]

लकड़बघा देखने मे डरावना जरूर लगता है, लेकिन यह बहुत डरपोक जानवर है। इसमें न तो तेंदुए की-सी तेजी रहती है और न शेर-सा साहस। यह प्राय मुर्दा जानवरो के मास से अपना पेट भरता है, लेकिन कभी-कभी बस्तियो मे जाकर कुत्तो, पालतू मुरगियो और बत्तखो को भी पकडता है। यही नही, यह आदमियो के छोटे बच्चो को भी मौका पाकर उठा ले जाता है।
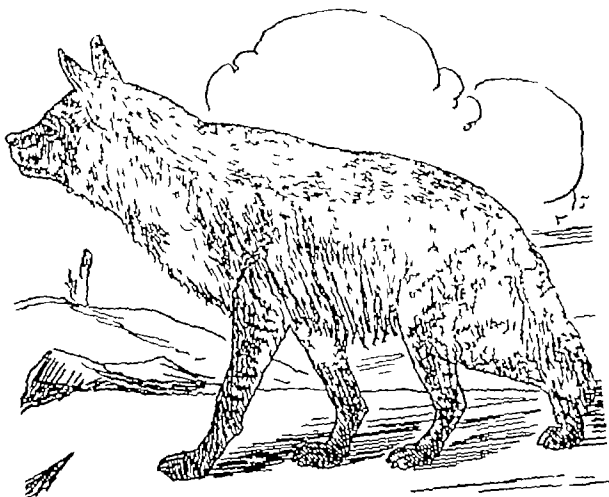
लकडबघा

गिद्ध का जो स्थान चिडियो में है वही स्थान इसे स्तनप्राणियो के समाज में मिला है। इसी से इसे लोग जानवरो का मेहतर कहते है और इस प्रकार यह जगल की सफाई का आवश्यक काम करता रहता है।

इसकी मादा एक बार में चार-पांच बच्चे देती है।

लकड़बघे की एक और जाति होती है जिसका बदन चित्तीदार रहता है। इस जाति के चित्तीदार लकडबघे (Spotted Hyaena) अफ्रीका के जगलो में पाये जाते है।

कुत्ता-समूह

(SECTION CYNOIDEA)

कुत्ता-समूह मे केवल एक ही परिवार है जिसे कुत्ता-परिवार कहते है। इसमें सभी प्रकार के पालतू और जगली कुत्ते, भेडिये और लोमडियो आदि को एकत्र किया गया है।

दारी मे ये अपनी जान भले ही गवा दे, लेकिन कभी भागने का नाम नही लेते । प्रेम और मुहब्बत तो इनमे इस कदर होती है कि मालिक के मरने पर अक्सर देखा गया है कि पालतू कुत्तो ने खाना-पीना छोड दिया और मर गये ।

कुत्ते सगीत के बडे प्रेमी होते है । हम लोगो ने देखा होगा कि जब मन्दिरो मे घण्टा घडियाल बजने लगते है तो पास-पडोस के कुत्ते भी एक स्वर मे बोलने लगते है । उनकी इस बोली को हम उनका रोना कहते है क्योकि वह भूकने से एकदम जुदा होती है, पर वास्तव मे यह कुत्तो का रोना नही है । पशुशास्त्र के विद्वानो ने बडी खोज और अनुसधान के बाद यह पता लगाया है कि कुत्तो मे सगीत-प्रेम की एक अद्भुत प्रेरणा होती है और कुछ कुत्ते इसीलिए सगीत या वाद्य के अवसर पर इस स्वर मे अपना स्वर मिलाने का उद्योग करते है । विदेशो मे तो कुत्तो के बाका-यदा स्कूल है जहा उन्हे शिक्षा दी जाती है । पुलिस-विभाग मे इनसे काफी काम लिया जाता है और लडाई के मैदानो मे भी ये जासूस का काम बडी सफलता से करते है । घर की रखवाली और चौकीदारी करना तो इनका स्वाभाविक काम है और इसी के लिए मनुष्यो ने इनको अपना साथी बनाया है ।

इनका मुख्य भोजन मास है लेकिन मनुष्यो के साथ रहते-रहते इन्होने पका हुआ भोजन करना भी सीख लिया है । इनकी मादा एक बार मे कई बच्चे जनती है जिनकी आखे पैदा होने पर बन्द रहती है और उनके खुलने मे दस-बारह दिन लग जाते है ।

भेडिया

(WOLF)

भेडिया हमारे यहा का बहुत मशहूर शिकारी जानवर है जो शक्ल-सूरत मे कुत्ते से मिलता-जुलता होता है । जर्मनी के अल्सेशियन (Alsatian) जाति के कुत्ते तो शक्ल-सूरत मे भेडिये जैसे ही होते है । भेडिये खुले मैदान मे रहनेवाले जानवर है जिन्हे घने जगल पसन्द नही । हमारे यहा ये हिमालय की तराई से लेकर दक्षिण भारत तक फैले हुए है । विन्ध्य प्रदेश के पहाडो पर भी ये काफी तादाद मे पाये जाते है, लेकिन हिमालय की ओर इन्हे नही देखा जा सकता ।

भेडिये तो कही-कही शेर या चिता भी करते है और कही-कही [illegible]

(Pekinese) आदि प्रसिद्ध जातियाँ है, लेकिन हमारे देश में उन्ही कुत्तो की सख्या अधिक है जो देश भर में गाँव और वस्तियों मे अवारा घूमा करते है। इनकी शकल-सूरत और रग अलग-अलग होते है और ये अक्सर इन्ही विदेशी कुत्तो के दोगले बच्चे होते है जिन्हें शौकीन लोग पाले हुए है।

कुत्ता
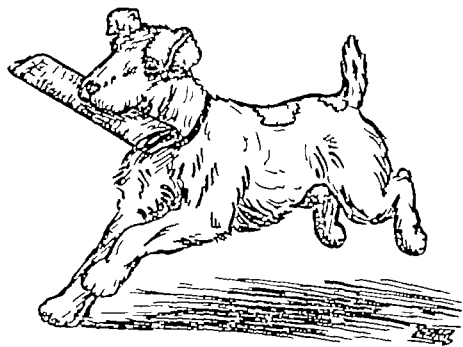
ये देशी कुत्ते किस जगली जाति से पालतू किये गये, इसका अभी ठीक-ठीक पता नही चला है। लेकिन ऐसा ख्याल किया जाता है कि हमारे यहाँ के देशी कुत्ते सोनहा नामके जगली कुत्ते से पालतू किये गये है। इन कुत्तो के कद और रग में तो फर्क रहता ही है, इनकी शकल-सूरत भी मुख्तलिफ होती है। इनका कद स्यारो के बराबर होता है और बदन के वाल बहुत छोटे होते है। इनमे कुछ सफेद होते है तो कुछ ललछौह, भूरे या बादामी। कुछ का रग काला होता है तो कुछ चितकबरे रहते है। ये स्यार के निकटसम्बन्धी है और एक प्रकार से उसी नस्ल के माने जाते है। इन्हे पालतू अवस्था मे भी स्यारो से जोडा वाँधते देखा गया है। और आज भी सैकडो कुत्ते ऐसे मिल जायँगे जिनकी शकल-सूरत स्यारो से मिलती-जुलती होती है।

पहले तो सभी कुत्ते जगली अवस्था मे थे, लेकिन आज उनकी बहुत वडी सख्या पालतू होकर हमारे साथ रहने लगी है। इनका सम्बन्ध अपने पूर्वजो से लाखो वर्ष से छूट गया है, लेकिन यह वात वडे आश्चर्य की है कि यदि कुत्ते मनुष्यो से कुछ दिन के लिए अलग हो जाते है तो वे फिर जगली हो जाते है। तव उनमें और परिवर्तनो के अलावा एक परिवतन यह भी हो जाता है कि वे कुत्तो की तरह भूँकना भूलकर स्यार तथा भेडियो की तरह चिल्लाना शुरु कर देते है।

कुत्तो की स्वामिभक्ति, उनका प्रेम और उनकी बुद्धिमत्ता की अनेक कथाएँ है। मनुष्यो के साथ एक युग मे रहते-रहते इन्होने अपना इतना विकास कर लिया है कि कभी-कभी इनके कार्यो को देखकर बहुत आश्चर्य होता है। अपने मालिक की वफा-

भेड़ियों के बारे में यह प्रसिद्ध है कि ये कभी-कभी आदमियों के बच्चों को पालने के लिए ले जाते हैं और कुछ ऐसे बच्चे इनकी माद में पाये भी गये हैं। लेकिन अभी इसका कुछ ठीक पता नहीं चल सका है और जो बच्चे इनकी माद में मिले भी वे ज्यादा दिन जिन्दा नहीं रह सके और जो जिन्दा बचे भी वे आधे हैवान से हो गये और बोलना नहीं जानते। इनसे यह विषय अभी तक रहस्यपूर्ण बना हुआ है।

भेड़िया मांसाहारी जीव है जिसकी खुराक में हर किस्म के जानवरों को शामिल किया जा सकता है। वैसे ये खरगोश, लोमड़ी और भेड़-बकरी का शिकार करते हैं, लेकिन भूखे रहने पर चार-पाँच भेड़िये मिलकर गाय-बैल पर भी हमला कर बैठते हैं। कभी-कभी ये आदमियों पर भी आक्रमण करते हैं और एक बार आदमखोर हो जानेपर ये शेर और चीते से भी ज्यादा खतरनाक हो जाते हैं। जिस गाँव या बस्ती के आस-पास के भेड़िये आदमखोर हो जाते हैं वहां के बच्चों को इनसे बहुत डर रहता है क्योंकि ये अक्सर सात-आठ फुट ऊँची दीवाल फाँदकर घर के भीतर से बच्चों को उठा ले जाते हैं।

इनकी मादा जाड़े में पाँच-सात बच्चे जनती है जिनकी आँखें कुत्ते के पिल्लों की तरह शुरू में बंद रहती हैं।

स्यार

(JACKAL)

स्यार को गीदड़ भी कहा जाता है। ये हमारे देश में प्रायः सभी स्थानों में पाये जाते हैं। क्या जंगल, क्या मैदान कोई भी ऐसी जगह नहीं है जहां इनकी पहुँच न हो। देहात में इन्हें देखना मामूली बात है। ये पहाड़ी स्थानों और रेगिस्तानों में तो मिलते ही हैं, लेकिन अपनी ढिठाई से शहरों में आबादी के आस-पास भी अक्सर दिखाई पड़ते हैं। हिमालय पर ये तीन-चार हजार फुट से ज्यादा ऊंचाई पर नहीं जाते।

स्यार की धूर्तता की एक नहीं अनेक कहानियां हमारे यहां प्रचलित हैं। ये प्रायः जोड़े में दिखाई पड़ते हैं और इतने ढीठ हो गये हैं कि हम इन्हें बाग-बगीचों में देख सकते हैं। ये वैसे तो अकेले या जोड़े में रहते हैं, लेकिन कभी कभी इन्हें गरोह में भी देखा जा सकता है। जाड़े में शाम होते ही इनकी बोली शुरू [illegible]

से भी पुकारे जाते है। ये अपनी चालाकी और गोलबन्दी के लिए बहुत ही प्रसिद्ध है। ये छल और चोरी मे बहुत ही माहिर होते है, और हमेशा अपने शिकार को धोखा देकर मारते है। इनमे बहादुरी नही होती लेकिन चालाकी की तरकीबे इन्हे खूब आती है। अगर किसी बडे शिकार को यह अकेले या दो-चार मिलकर नही मार पाते तो उसे घेरकर ऐसी जगह फँसा देते है जहाँ पहले से कुछ भेडिये छिपे रहते है। इसी तरह जब ये भेड या बकरियो के झुड पर हमला करते है तो उनमे से कुछ तो रखवाली के कुत्तो से लडकर उन्हे उलझाये रहते है और कुछ भेडो को उठा ले जाते है।
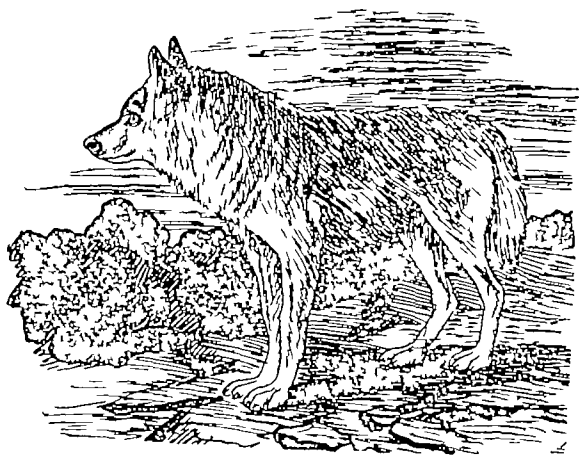
भेडिया

भेडिये लम्बाई मे लगभग तीन फुट के और ऊँचाई मे दो-ढाई फुट के होते है। इनकी दुम भी डेढ फुट की होती है जिसका रग राखी भूरा रहता है। इनकी पीठ का रग स्याही मायल और पेट का हिस्सा मटमैला सफेद होता हे।

इनके बच्चे कलछौह भूरे रग के होते है, जिनके सीने पर एक सफेद चित्ता पडा रहता है जो महीने-डेढ महीने मे गायब हो जाता है।

भेडिये वैसे तो जोडे मे रहनेवाले जीव है, लेकिन कभी-कभी ये सात-आठ का गोल बनाकर चलते है। ये बहुत चालाक जानवर है जो भूखे रहने पर बहुत खूँखार हो जाते है। हमारे देश मे ये अक्सर आदमियो के बच्चो को भी उठा ले जाते है।

है। पहले एक स्यार बोलता है, फिर उसके बाद उसके साथी 'हुक्का हुआँ ! हुक्का हुआँ !' जैसी बोली बोलकर इतना शोर मचाते है कि जी ऊब जाता है।

स्यार

स्यार ढाई फुट से कुछ ज्यादा लम्बा होता है जिसमें इसकी एक फुट की झबरी दुम शामिल नही। इसका रग भूरापन लिये ललछौंह या कत्थई रहता है जिसमें पीठ पर कुछ स्याही रहती है । नीचे का हिस्सा बहुत हलका या सफेदी मायल रहता है। दुम के ऊपर के बाल खैरे और सिर के काले रहते है।

स्यार रात्रिचर जीव है जो रात को अपने भोजन की तलाश मे बाहर निकलता है, लेकिन जाडो मे हम इसे दिन में भी देख सकते है। इसका मुख्य भोजन वैसे तो मास-मछली है, लेकिन यह फल वगैरह भी बडे स्वाद से खाता है। तरबूज और खरबूजे के खेतो को इससे बचाना मुश्किल हो जाता है और गाँव-बस्ती की पालतू चिडियो और छोटे जानवरो को भी इससे कम खतरा नही रहता है। लकडबग्घे की तरह यह भी मुर्दाखोर जानवर है जो मुर्दा जानवरो के अलावा बीमार और रोगी जीवो पर हमला करता है।

इसकी मादा एक बार में कुत्तो की तरह कई बच्चे देती है।

सोनहा

(WILD DOG)

सोनहा हमारे यहाँ के जगली कुत्ते है जिन्हें कही ढोल और कही सोनाकुत्ता कहा जाता है। ये हमारे देश में तराई से दक्षिण की ओर प्राय सभी जगलो में

पाये जाते हैं, लेकिन संख्या में कम होने के कारण ये हमें बहुत कम दिखाई पड़ते हैं।

सोनहा तीन फुट से कुछ ज्यादा ही लम्बे होते हैं जिनकी एक फुट के लगभग झबरी पूंछ होती है। इनके शरीर का ऊपरी हिस्सा ललछौंह बादामी होता है जिसमें कुछ मिटैलेपन की मिलावट रहती है। इनके नीचे का हिस्सा हल्के रंग का और दुम का सिरा काला रहता है।

सोनहा
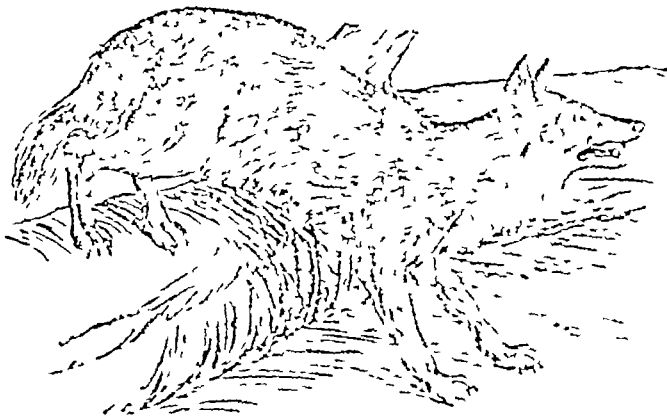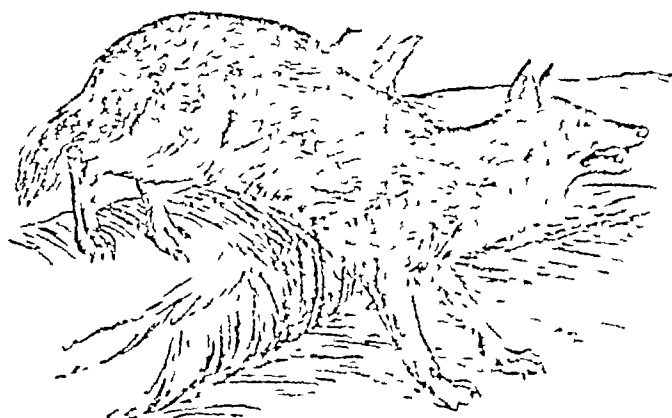
सोनहा झुंड में रहनेवाले जानवर हैं जिन्हें दिन, रात दोनों समय जंगलों में देखा जा सकता है। इनके गोल में बीस-पचीस सोनहे रहते हैं जो चालाकी में भेड़ियों और मक्कारी में स्यारों के कान काटते हैं। शिकार करते समय इनमें गज़ब का [illegible] रहता है जिससे ये साभर और [illegible] जैसे जानवरों को [illegible] मार डालते हैं। जिस जंगल में इनका गरोह पहुंच जाता है वहां से हिरन वगैरह तो भाग ही जाते हैं, [illegible] और तेंदुओं का भी वहां पता नहीं चलता। इनके बारे में यह [illegible] है कि ये अपनी दुम पर पेशाब करके [illegible] को अंधा कर देते हैं लेकिन इसमें सच्चाई बहुत थोड़ी है। होता यह है कि [illegible] शिकार को घेरते समय ये [illegible] की झाड़ियों पर पेशाब कर देते हैं जो झाड़ियों से [illegible] भागते [illegible], शिकार की आंखों में पड़ जाता है और वह थोड़ी देर के लिए अंधा हो जाता है। [illegible] उठाकर सोनहों का गरोह उसे घेरकर मार डालता है।

इनका मुख्य भोजन मांस है लेकिन ये [illegible]

है। पहले एक स्यार बोलता है, फिर उसके बाद उसके साथी 'हुक्का हुआँ ! हुक्का हुआँ !' जैसी बोली बोलकर इतना शोर मचाते हैं कि जी ऊब जाता है।

स्यार

स्यार ढाई फुट से कुछ ज्यादा लम्बा होता है जिसमे इसकी एक फुट की झबरी दुम शामिल नही। इसका रग भूरापन लिये ललछौंह या कत्थई रहता है जिसमे पीठ पर कुछ स्याही रहती है । नीचे का हिस्सा बहुत हलका या सफेदी मायल रहता है। दुम के ऊपर के बाल खैरे और सिर के काले रहते हैं।

स्यार रात्रिचर जीव है जो रात को अपने भोजन की तलाश मे बाहर निकलता है, लेकिन जाडो मे हम इसे दिन मे भी देख सकते हैं। इसका मुख्य भोजन वैसे तो मास-मछली है, लेकिन यह फल वगैरह भी बडे स्वाद से खाता है। तरबूज और खरबूजे के खेतो को इससे बचाना मुश्किल हो जाता है और गाँव-बस्ती की पालतू चिडियो और छोटे जानवरो को भी इससे कम खतरा नही रहता है। लकडबग्घे की तरह यह भी मुर्दाखोर जानवर है जो मुर्दा जानवरो के अलावा बीमार और रोगी जीवो पर हमला करता है।

इसकी मादा एक बार मे कुत्तो की तरह कई बच्चे देती है।

सोनहा

(WILD DOG)

सोनहा हमारे यहाँ के जगली कुत्ते हैं जिन्हे कही ढोल और कही सोनाकुत्ता कहा जाता है। ये हमारे देश मे तराई से दक्षिण की ओर प्राय सभी जगलो मे

बोली सुनाई पड़ती है जैसे कोई आदमी जोर से हंस रहा है। यह बिल में रहना तो पसन्द करती है लेकिन बिल खोदने का कष्ट उठाना नहीं चाहती। इसीलिए यह [illegible] बिज्जू आदि जानवरों के बिल पर जबर्दस्ती कब्जा कर लेती है और उसको कई मुँहवाला बनाकर उसी में रहने लगती है। यह इतनी चालाक होती है कि बिल के मुंह पर किसी के पैर के निशान देखकर फिर वहां नहीं रहती और फौरन ही दूसरी जगह बिल की तलाश करती है। कभी-कभी यह दुश्मनों को निकट देखकर इस प्रकार दम साधकर जमीन पर पड़ जाती है कि ठोकर मारने और इधर-उधर घसीटी जाने पर भी ऐसी बनी रहती है जैसे मर गयी हो लेकिन दुश्मनों के चले जाने पर यह उठकर चम्पत हो जाती है।

इसका मुख्य भोजन वैसे तो मांस है लेकिन यह फल-फूल और कन्दमूल भी बड़े स्वाद से खाती है। इससे चिड़िया छोटे-मोटे जानवर और सरीसृप तथा कीड़े-मकोड़े कुछ भी नहीं बचने पाते।

इसकी मादा अप्रैल के आस-पास तीन-चार बच्चे देती है।

भालू-समूह

(SECTION ARCTOIDEA)

मांसभक्षी वर्ग के इस तीसरे समूह में कई परिवारों को एकत्र किया गया है जिनमें के सभी प्राणियों के पैरों में पांच-पांच नाखून रहते हैं।

भालू-समूह को भालू-परिवार, बाह-परिवार तथा ऊद-परिवार में बांटा गया है जिसके जीव हमारे देश में पाये जाते हैं।

भालू-परिवार

(FAMILY URSIDAE)

इस परिवार में सब प्रकार के भालू रखे गये हैं जो मांसभक्षी होने के साथ ही साथ फल और शहद भी मजे से खा लेते हैं। इन प्राणियों का [illegible] और बदन लम्बा होता है। इनके पैर काफी मजबूत और [illegible] होते हैं लेकिन आगे छोटी ही रहती है। चलते समय ये अपने पूरे तलवे जमीन पर रखते हैं [illegible] इनकी चाल बड़ी बेढंगी होती है जैसे कोई [illegible]। [illegible] है कि चलते समय ये [illegible] उठाकर आगे रखते हैं। इनकी दुम छोटी होती है।

चाव से खाते है। ये ज्यादातर शिकार मारकर ही अपना पेट भरते है और सियारो की तरह मुर्दाखोर नही होते।

इनकी मादा जनवरी से मार्च के बीच मे पाँच-छ बच्चे देती है।

लोमडी

(FOX)

लोमडी हमारे यहाँ के प्रसिद्ध जीवो मे से है जो सारे पशु-समाजमे सबसे चालाक मानी जाती है। इसकी चालाकी की सैकडो कहानियाँ प्रचलित है। शिकारी कुत्तो को भागते-भागते कतरी काटकर चकमा देना इसके बाये हाथ का खेल है। स्यार की तरह इसको भी हम अक्सर गाँव के आस-पास देखते है और इसके उत्पात मे भी गाँववालो को परेशान हो जाना पडता है। पालतू पशु-पक्षियो की यह जानी दुश्मन है जिन्हे यह ऐसी चालाकी मे चुरा ले जाती है कि हमे पता भी नही लगने पाता। इसको देहात में लोखरी कहते है।
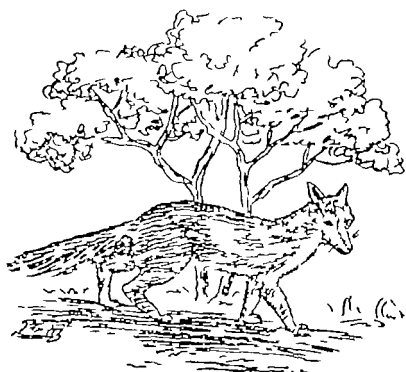
लोमडी

लोमडी की कई जातियाँ यहाँ पायी जाती है, लेकिन इन सबमे वही प्रसिद्ध है जिसका यहाँ वर्णन दिया जा रहा है। हमारे यहाँ यह लोमडी हिमालय की तराई से धुर दक्षिण तक फैली हुई है। इसे घने जगल पसन्द नही है, इसीलिए यह ज्यादातर खुले मैदानो, तितरे-बितरे जगलो और खेतो मे घूमती रहती है।

यह लगभग डेढ फुट लम्बी होती है जिसके करीब-करीब इतनी ही बडी, मोटी और झबरी दुम रहती है। इसका शरीर ललछौह सिलेटी रग का रहता है जो नीचे सफेदी मायल हो जाता है। दुम भी सिलेटी रग की होती है, लेकिन उसका सिरा काला रहता है।

लोमडी को बस्ती के आस-पास रहना ज्यादा पसन्द है। जाडो मे हमे इसकी

हमारे यहाँ तीन प्रकार के भालू पाये जाते है जिनका अलग-अलग वर्णन यहाँ दिया जा रहा है।

भूरा भालू

(BROWN BEAR)

भूरे भालू को इसके कत्थई रग के कारण कही-कही लाल भालू भी कहते है और बर्फ के निकट रहने के कारण यह बर्फ का भालू भी कहलाता है। हमारे देश मे यह भालू हिमालय के उन बर्फीले स्थानो मे पाया जाता है जो कश्मीर से नेपाल तक फैले हुए है।
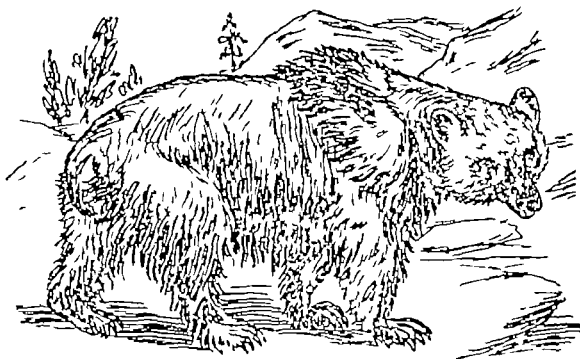
भूरा भालू

यह लगभग पाँच फुट लम्बा होता है लेकिन कोई-कोई भालू इससे भी बडे पाये गये है। इनके शरीर का रग भूरा रहता है जिसमे एक प्रकार की पीलेपन की मिलावट रहती है। कुछ के रग मे खैरेपन की भी झलक होती है। इनके इन मुख्तलिफ रगो का कारण यह है कि मौसम के साथ उनमे भी तबदीली होती रहती है। जाडो मे जहाँ इनके बालो मे ज्यादा सफेदी आ जाती है और वे काफी लम्बे हो जाते है वही गर्मियो मे वे छोटे होकर गहरे रग के हो जाते है। इनके बाल मोटे और मुलायम होते है जिनके नीचे मोटे और घने बालो की एक तह रहती है। जाडो में ऊपर के बाल करीब आठ इच लम्बे हो जाते है, लेकिन गरमियो में इनकी लम्बाई कम हो जाती है। इनके सीने पर वी (v) की शकल का एक सफेद निशान रहता है जो

बच्चों मे बहुत स्पष्ट दिखाई पडता है। मादा के बदन का रंग नर से कुछ [illegible] होता है।

भूरा भालू अन्य भालुओं की अपेक्षा सीधा होता है और मनुष्यों पर कभी हमला नही करता। घायल हो जाने पर भी यह अक्सर आक्रमण करने की जगह भागना ही अधिक पसन्द करता है। इसके पंजे बहुत बडे नही होते क्योंकि यह पेड़ पर चढ़ने मे भी अन्य भालुओं की तरह उस्ताद नही होता।

भूरा भालू गरमियों मे काफी ऊंचाई पर चला जाता है और प्राय उन्हीं स्थानों पर रहता है जहा बर्फ जमी रहती है। पतझड़ के मौसम मे यह कुछ नीचे उतर आता है और गाँव के आस-पास के बाग-बगीचों मे बड़ा उत्पात मचाता है। जाड़ा शुरू होने पर यह किसी गुफा मे जाकर शीतशायी हो जाता है और वसन्त के आने तक वही पड़ा रहता है। वसन्त के आरम्भ मे जब गुफा के मुँह पर की बर्फ पिघल जाती है तो यह बाहर निकल कर अपनी खुराक की तलाश मे इधर-उधर घूमने लगता है। इसका मुख्य भोजन वैसे तो घास-पात, जड़ और फल-फूल है लेकिन इसे कीड़े-मकोड़े खाने मे भी हिचक नही होती। कभी-कभी यह भेड़-बकरियों को भी मार डालता है और कुछ लोगों ने इसको दूसरों के मारे हुए शिकार को भी खाते देखा है।

यह भालू जाड़ा शुरू होने के कुछ पहले जोड़ा बाँध लेता है। लेकिन शीतशायी होने के समय दोनों अलग हो जाते हैं। इसकी मादा अप्रैल मई के महीने मे दो बच्चे देती है जो शुरू मे चूहे से कुछ ही बड़े होते हैं। उस समय उनके बदन पर न तो बाल ही रहते हैं और न उनकी आंख ही खुली रहती है। ये बच्चे तीन साल तक अपनी मा के साथ रहकर तब उससे अलग होते हैं। मादा हर साल [illegible] बच्चे देती है और हर साल तीन सालवाले पुराने बच्चे उससे अलग हो जाते हैं।

काला भालू

भर घूम-फिरकर सवेरा होते-होते फिर अपनी माद मे पहुँच जाते है। ये वैसे तो अकेले ही रहते है लेकिन जोडा बाँध लेने पर नर-मादा साथ-साथ फिरा करते है।

इनका मुख्य भोजन फल, फूल, शहद और जडे है लेकिन ये मास भी बडे स्वाद से खाते है। अन्य भालुओ की तरह इनको भी दीमक बहुत पसन्द है। ये भी भूरे भालू की तरह भेड-बकरियो का शिकार करते है और उसी की तरह दूसरे के मारे हुए शिकार को नही छोडते।

इसकी मादा मार्च के करीब दो बच्चे देती है जो बहुत ही छोटे रहते है। उनकी आँखे कुछ दिनो बाद खुलती है और वे कई साल तक अपनी मा के साथ रहकर फिर उसका साथ छोडते है।

रीछ

(SLOTH BEAR)

रीछ हमारे यहा के भालुओ मे सबसे प्रसिद्ध है। यह हमारे देश मे प्राय सभी घने जगलो मे पाया जाता है। इसे हम सबने अक्सर मदारियो को नचाते देखा होगा। यह धुर काले रग का जानवर है जिसके शरीर पर बडे-बडे बाल होते है। इसके भी सीने पर बडा-सा वी शकल का सफेद चिह्न पडा रहता है।

रीछ की लम्बाई लगभग पाँच-छ फुट की होती है। इसकी ऊँचाई भी करीब ढाई फुट तक पहुँच जाती है। इसका थूथन नोकीला और पतला होता है जो सिलेटी रग का रहता है। मादा

यह काला भालू भी हिमालय का निवासी है, लेकिन भूरे भालू की तरह यह बरफ के आस-पास न रहकर घने जगलो मे रहता है। हिमालय के सारे जगलो मे ज्यादातर ये ही भालू पाये जाते है। जाडो मे तो काला भालू ५,००० फुट की ऊँचाई के आस-पास रहता है, लेकिन गरमियो मे यह नौ से बारह हजार फुट की ऊँचाई तक चला जाता है।

यह भालू लगभग पाँच फुट लम्बा होता है और इसके बदन के बाल मुलायम रहते है। यह भूरे भालू की तरह न तो लम्बा होता है और न इसके नीचे मोटे बालो की तह ही रहती है। इसके पजे छोटे, मजबूत और टेढे होते है और कान भी भूरे भालू से कुछ बडे रहते है। काला भालू धुर काले रग का होता है। इसके सीने पर सफेद रग का वी (v) शकल का चिह्न रहता है जिसके दोनो सिरे इसके कधे तक चले जाते है। इसकी ठुड्ढी भी सफेद रहती है। इसकी गरदन मोटी और सिर चपटा रहता है, लेकिन इसका बदन दूसरे भालुओ से कुछ पतला और छरहरा रहता है।
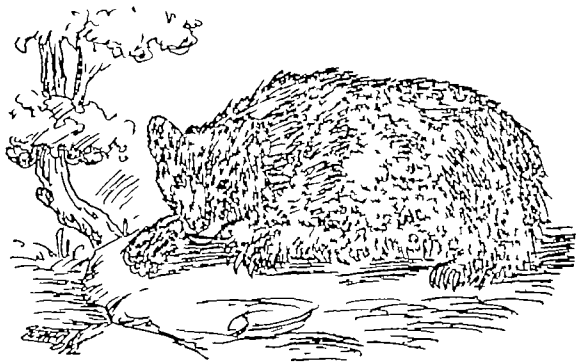
काला भालू

काला भालू वैसे तो जगलो का निवासी है, लेकिन यह आबादी के आस-पास के जगलो मे रहना ज्यादा पसन्द करता है। यह भूरे भालू की तरह सीधा नही होता बल्कि इसमे जगलीपन और बदमाशी की कमी नही रहती। यह अक्सर आदमियो पर हमला करके उन्हे अपने तेज पजो से मार डालता है। इसकी आँख कमजोर होती है, लेकिन सूघने की शक्ति बहुत तेज होती है। यह भागने, पेड पर चढने और तैरने मे भूरे भालू से ज्यादा उस्ताद होता है।

काले भालू दिन मे घने जगल मे अपनी माँद या किसी झाडी या खोह मे पडे रहते है, लेकिन रात होते ही ये अपनी खुराक के लिए बाहर निकल पडते है। ये रात

इन जीवों को पेड़ पर चढ़ने की अद्भुत शक्ति प्राप्त है और इनका अधिक समय पेड़ों पर ही बीतता है। इनकी दुम काफी लम्बी होती है।

नीचे वाह का वर्णन दिया जा रहा है।

वाह

(RED CAT BEAR OR HIMALAYAN RACOON)

वाह अपने किस्म का अकेला ही जानवर है जो हमारे यहां हिमालय में नेपाल से आसाम तक दस बारह हजार फुट की ऊंचाई तक पाया जाता है। इस जाति के और जीव हमारे देश में नहीं हैं, लेकिन इनके भाई-बन्द अमेरिका में अवश्य पाये जाते हैं।

वाह वैसे तो भालुओं का निकटसम्बन्धी है लेकिन शक्ल-सूरत में यह भालुओं से ज्यादा बिल्लियों से मिलता है। इसकी आंखें भी बिल्ली की आंखों की तरह बड़ी-बड़ी होती हैं और कद में भी यह बिल्ली के बराबर ही होता है। इसकी लम्बाई दो फुट से ज्यादा नहीं होती और इतनी ही बड़ी इसकी दुम भी रहती है। इसके बदन का ऊपरी हिस्सा गहरा बादामी या काले रंग का होता है, लेकिन नीचे का हिस्सा काला होता है। इसके चारों पैर और दुम का सिरा भी काला रहता है और दोनों आंखों के बीच
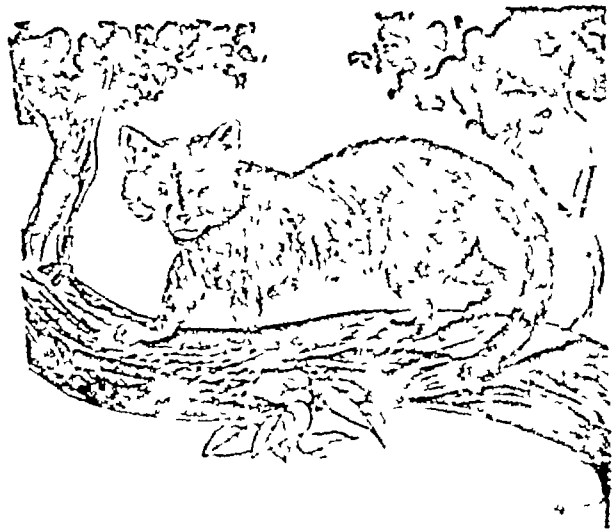
वाह

में होती हुई [illegible] नहीं जाती है। दुम पर [illegible] नियाँ पड़ी रहती हैं और चेहरे [illegible] के बाल [illegible] होते हैं जिनसे [illegible] रहती है।

आगे रहता है। घायल हो जाने पर यह इतने जोर मे चिल्लाता है कि मारा जगल गूँज उठता है। यही नही, यह उस समय अपने पिछले पैरो पर खडा होकर वडा भयकर हमला करता है और अगर कोई आदमी इसकी पकड मे आ गया तो यह अपने पजो और दाँतो से उसका मुँह और खोपडी नोच डालता है। वच्चोवाली रीछनी तो अकारण ही मनुष्यो पर हमला कर वैठती है। रीछ पेड पर चढने मे वहुत उस्ताद होता है। इसकी सुनने की शक्ति कम होती है और यह देख भी कम पाता है, लेकिन सूँघने की ऐसी तेज शक्ति इसे मिली है कि यह पत्तो मे छिपे हुए शहद के छत्तो का वडी आसानी से पता लगा लेता है और ऊँचे पेडो पर चढकर भी उन्हे चट कर जाता है।

हिमालय के भालुओ की तरह रीछ शीतशायी नही होता। वह वारहो महीने जगलो और पहाडो मे फिरा करता है। दिन मे यह किसी खोह मे या गुफा मे घुसा रहता है, लेकिन रात होते ही अपने भोजन की तलाश मे चक्कर लगाने लगता है। इसका मुख्य भोजन फल, फूल, शहद, दीमक और कन्दमूल है। यह महुआ, आम, कटहल और गन्ना भी वडे स्वाद से खाता है। दक्षिण भारत की ओर यह ताडी पीने के लिए ऊँचे-ऊँचे ताड और खजूर के पेडो तक पर चढ जाता है। दीमको के लिए तो यह दिमौरो को अपने तेज पजो से खोद डालता है और अपने लम्बे थूथन को छेद मे डालकर इतनी तेजी से सुडकता है कि विल के सारे दीमक इसके पेट मे पहुँच जाते है। यह वैसे तो कीडे-मकोडो के सिवा अन्य प्रकार का मास नही खाता, लेकिन भूखा रहने पर कभी-कभी उसे भी खाते देखा गया है।

रीछ वैसे तो अकेले ही रहता है, लेकिन जून के आस-पास जोडा वाँध लेने पर यह अक्सर जोडे मे दिखाई पडता है। इसकी मादा जाडो मे दो वच्चे जनती है जो कुत्ते के पिल्लो के वरावर होते है। शुरू मे इनकी आँखे वन्द रहती है और इनके शरीर के वाल छोटे और मुलायम रहते है। ये वच्चे कई साल तक अपनी माँ के साथ रहते है।

वाह-परिवार

(FAMILY PROCYONIDAE)

इस छोटे परिवार मे वाह और रेकून (Racoon) आदि जीवो को एकत्र किया गया है जिनमे के अधिक जीव हमारे देश मे नही पाये जाते। हमारे यहाँ केवल वाह पाया जाता है।

रहता है। ये रात्रिचारी जीव हैं जिनके तलवे का थोड़ा ही हिस्सा जमीन पर पड़ता है। ये वैसे तो मांसाहारी जीव हैं लेकिन इन्हें मांस से ज्यादा अन्न ही पसन्द है।

इस उपपरिवार के दो प्राणी हमारे यहां काफी प्रसिद्ध हैं। उन्हीं का यहां वर्णन दिया जा रहा है।

चितराला

(MARTEN)

चितराला हमारे पहाड़ी प्रदेश के बहुत परिचित जीव हैं जो वहां [illegible] की तरह सारे हिमालय प्रान्त में पाये जाते हैं। हिमालय में ये आठ हजार फुट तक काफी संख्या में फैले हुए हैं और उनके उपद्रव से वहां के गांववाले बहुत परेशान रहते हैं।

यह कस्तूरी की शकल का दो फुट लम्बा जानवर है। इसके इतनी ही लम्बी झबरी दुम होती है। इसकी पीठ का रंग सफेदी मायल हल्का भूरा होता है और गले का ऊपरी हिस्सा एकदम सफेद रहता है। सिर से कान के नीचे तक का हिस्सा चमकीला काला या गाढ़ा रहता है। चेहरा, दुम और चारों पैर भी इसी रंग के रहते हैं। सीने का रंग पीला या नारंगी होता है और इसके बाद नीचे का कुछ हिस्सा हल्का भूरे रंग का रहता है। इसके बदन के बाल काफी बड़े और मुलायम होते हैं।

चितराला

चितराला रात्रिचर जीव है लेकिन यह अक्सर दिन में भी शिकार करता दिखाई पड़ता है। कभी-कभी जाड़ों में ये पास पास के [illegible] बनाकर [illegible] और [illegible] का शिकार [illegible] हैं और [illegible] पाने की [illegible] करते हैं। [illegible] [illegible] का पता [illegible] से [illegible] है [illegible]

वाह् वैसे तो रात्रिचर जीव है, लेकिन यह कभी-कभी सुवह और शाम को भी दिखाई पड जाता है। यह अपना अधिक समय पेडो पर ही विताता है और नीचे कम उतरता है। मासभक्षी वर्ग का होते हुए भी भालुओ की तरह इसे मास वहुत कम पसन्द हे और यह अपना पेट ज्यादातर फल-फूलो से भरता है। इसे वॉस के कल्ले भी वहुत पसन्द है। इसके अलावा यह चिडियो के अण्डो और वच्चो को भी वडे मजे से खाता है।

वाह् अक्सर जोडे मे दिखाई पडते है। जोडा वॉधने का समय आने पर इनकी विल्लियो-जैसी वोली वहुत तेज और कर्कश हो जाती हे। उस समय नर के वदन से एक तेज वू निकला करती है। वाह् की देखने और सुनने की शक्ति तेज नही होती। इन्हे पकडना ज्यादा कठिन नही होता और पकडे जाने पर ये वडी आसानी से पालतू हो जाते है और मैदानो मे भी रह लेते है। ये दोपहर को किसी पेड या खोत मे घुसे रहते है और कभी-कभी किसी पेड की डाल पर ही अपना वदन समेटकर सोते रहते है। इनकी मादा वसन्त ऋतु मे दो वच्चे देती है जो अपनी मॉ के साथ तव तक रहते है जब तक उसके दूसरे वच्चे नही हो जाते।

चितराला-परिवार

(FAMILY MUSTELIDAE)

चितराला-परिवार काफी वडा है जिसमे कई प्रकार के जीव एकत्र किये गये है। ये जीव छोटे कद के होते है जिनका शरीर लम्वा और पैर छोटे होते है।

इन जीवो मे आपस मे इतना भेद है कि इनको तीन उप-परिवारो मे वॉट दिया गया हे—

१ चितराला उपपरिवार—Sub Family Mustelinae
२ विज्जू उपपरिवार—Sub Family Melinae
३ ऊद उपपरिवार—Sub Family Lutrinae

चितराला उपपरिवार

(SUB FAMILY MUSTELINAE)

चितराला उपपरिवार के जीव कद मे लम्वे और ऊँचाई मे कम होते है। इनके नाखून काफी तेज होते है और इनका सारा शरीर कोमल और घने वालो से ढका

गीला और गाढ़ा तरल पदार्थ निकलता है जिसकी तेज बू से चूहों को इनकी मौजूदगी का पता चल जाता है और वे घर छोड़कर भाग जाते हैं।

इनका मुख्य भोजन वैसे तो चूहे और चिड़िया आदि हैं लेकिन ये अण्डे भी बड़े मजे से खाते हैं। नेवले की तरह ये अपने से चौगुने कदवाले शिकार पर टूट पड़ते हैं और उसकी गरदन में अपने तेज नाखून गड़ाकर तब तक उसे नहीं छोड़ते जब तक वह मर नहीं जाता।

विज्जू उपपरिवार

(SUBFAMILY MELLINAE)

विज्जू उपपरिवार के प्राणी पेड़ों पर न रहकर ज्यादातर जमीन पर ही रहते हैं। इनकी चाल बहुत भद्दी होती है। इनके शरीर की बनावट गठीली होती है और सिर चौड़ा और लम्बा रहता है। इनमें कुछ की दुम लम्बी और कुछ की छोटी होती है। इनके बाल रूखे और कड़े होते हैं और इनकी मोटी टांगों के नख जमीन खोदने के लिए बहुत उपयुक्त होते हैं।

ये सब मांसाहारी जीव हैं जिनमें विज्जू और भालू-सुअर हमारे यहां काफी प्रसिद्ध हैं। यहां इन्हीं दोनों का वर्णन दिया जा रहा है।

विज्जू

चख-चख की आवाज किया करता है। पकडे जाने पर यह बहुत आसानी मे पालतू हो जाता है। इसका मुख्य भोजन छोटे-मोटे जानवर, चिडियाँ और अण्डे है। इसके अलावा यह कीडे-मकोडे भी मजे मे खाता है। पालतू चिडियो और छोटे जानवरो का यह उसी तरह नुकसान करता है जैसे मैदानो मे चोधियारी करती है।

इसकी मादा एक बार मे कई बच्चे देती है।

कथियान्याल

(YELLOW BELLIED WEASEL)

कथियान्याल भी हिमालय का निवासी है, लेकिन यह सिर्फ नेपाल और भूटान के जगलो में तीन हजार से आठ हजार फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है और वहाँ भी रात्रिचर जीव होने के कारण हम इसे बहुत कम देख पाते है।

यह दस इच लम्बा जानवर है जिसकी दुम चार-पाँच इच से ज्यादा नही होती। इसकी शकल-सूरत चितराले से मिलती-जुलती है, लेकिन यह कद मे उसके आधे के बराबर ही होता है। कथियान्याल कत्थई रग का जानवर है जिसकी पीठ, चेहरा और सिर पर का ऊपरी हिस्सा तो गाढे कत्थई रग का रहता है, लेकिन नीचे का कुल हिस्सा और टाँगो का भीतरी हिस्सा चटक पीले रग का होता है। इसकी ठुड्ढी और ऊपरी होठ सफेदी मायल रहते है, लेकिन दुम, जो इसके कद को देखते हुए छोटी ही कही जायगी, गाढे कत्थई रग की रहती है।

कथियान्याल

कथियान्याल को नेपाल मे शौकीन लोग अच्छे दामो पर खरीदकर पालते है क्योकि इनसे चूहे बिल्लियो से भी ज्यादा डरते है। इनकी ग्रन्थियो से एक प्रकार का

भालू-सुअर करीब ढाई फुट लम्बा और एक फुट ऊंचा जानवर है जिसके चार-आठ इंच लम्बी दुम रहती है। इसके बदन का रंग गहरा सिलेटी होता है, लेकिन पीठ का कुछ हिस्सा कत्थई रहता है। इसके बदन के बाल छोटे और घने होते हैं जिनमें एक प्रकार की सफेद झलक रहती है। बगल और पीठ पर से कुछ बाल बड़े होते हैं जिनका रंग धूर काला रहता है। इसका सिर सफेद रहता है लेकिन ऊपरी होंठ के दोनों किनारों से एक-एक गाढ़ी भूरी या काली पट्टी शुरू होती है जो आंखों के ऊपर से होकर कान तक चली आती है। इसी तरह की दो धूमैली पट्टियां उसकी ठुड्डी से शुरू होकर इसकी आंखों के ऊपर होती हुई कान तक फैल जाती हैं। इस प्रकार इसका सिर इन पट्टियों के कारण पट्टीदार-सा जान पड़ता है। इसका सिर, गला, दुम और दोनों बगली हिस्से सफेद मायल रहते हैं। नीचे का सारा हिस्सा और चारों पैर धूमैले रहते हैं।

भालू-सुअर दिन भर पहाड़ की खोहों में या भीटों के बिलों में पड़ा रहकर वहीं आराम करता रहता है और रात में अपने भोजन की तलाश में [illegible] में चक्कर लगाता रहता है। इसका मुख्य भोजन फल-फूल, कीड़े-मकोड़े और जड़ें हैं। इसके अलावा यह केंचुए और मछली भी बड़े मजे से खाता है।

भालू-सुअर की कुछ आदतें सुअर से और कुछ भालू से मिलती-जुलती रहती हैं। भालू की तरह इसकी सूंघने की शक्ति बहुत तेज होती है और उसी की तरह यह डगमगाता हुआ चलता है। छेड़े जाने पर यह सुअर की तरह घुरघुराता है और किसी की आहट पाने पर उन्हीं की तरह अपना थूथन ऊपर की ओर उठाकर हवा सूंघता है।

इनकी मादा एक बार में प्रायः दो बच्चे देती है।

ऊद उपपरिवार

(SUB FAMILY LUTRINAE)

तीसरा उपपरिवार ऊद का है जिसमें यह [illegible] जानवर आता है। [illegible] और स्थल दोनों पर बड़ी आसानी से [illegible] लेता है। [illegible] उपपरिवार में रक्खा था।

ऊद पानी में मछलियां [illegible]

बिज्जू के बारे मे लोगो का यह ख्याल है कि यह कब्रो को अपने मजबूत पजो से खोद डालता है। इसका मुख्य भोजन कीडे-मकोडे, चिडिया और छोटे जानवर हैं। इसके अलावा यह शहद और फल-फूल भी बडे स्वाद से खाता है।

बिज्जू की लम्बाई करीब ढाई फुट होती है जिसमे उसकी पाँच-छ इच लम्बी दुम शामिल नही हैं।

इसकी मादा एक बार मे कई बच्चे देती है।

भालू-सुअर

(HOG BADGER)

भालू-सुअर को कही-कही बालू-सुअर भी कहते हैं। इनका भालू-सुअर नाम इस कारण पडा है कि इनकी शकल भालू और सुअर से मिलती-जुलती होती है और इन्हे बालू-सुअर इस कारण कहा जाता है कि ये ज्यादातर नदी के किनारे के बालू के टीलो मे रहते हैं।
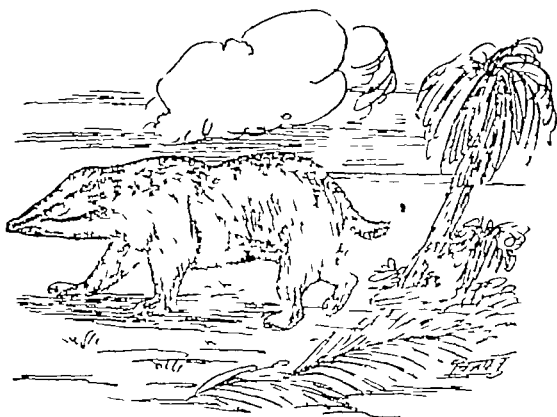
भालू-सुअर

भालू-सुअर हमारे यहाँ हिमालय मे तो पाया ही जाता है, लेकिन इसके अलावा यह मध्य-प्रदेश के जगलो मे भी कभी-कभी दिखाई पड जाता है। वहाँ इसे चिरिक-भालू कहा जाता है।

नदियो मे गरोह बाधकर शिकार करते देखा जा सकता है। ये सुनसान जगहो मे रेत पर धूप सेकने के लिए लेटे रहते हैं और शिकार करते समय पाच-सात का गरोह बना लेते हैं। ये मछलियो को किनारे के पास अर्द्ध चन्द्राकार घेर लेते हैं और उन्हे इस प्रकार घेरे मे करके उनसे अपना पेट भरते हैं। इनके पैरों की उंगलियां जालपाद होती हैं जो बत्तखो की तरह आपस मे एक मजबूत झिल्ली से जुडी रहती हैं। ये इसीसे पानी के भीतर बडी खूबी से तैर लेते हैं। सूखे पर भी ये बडी तेजी से चल-फिर लेते हैं।

ऊद बहुत ही चालाक जानवर है जो आसानी से नही पकडे जाते, लेकिन बचपन मे पकडे जाने पर ये बडी आसानी से पालतू हो जाते हैं और अपने मालिक के पीछे-पीछे कुत्तो की तरह चलते हैं। यही नही ये अपने मालिक के लिए पानी से मछलियाँ भी पकड लाते हैं।

ऊद मासाहारी जीव हैं जिनका मुख्य भोजन मछली है। ये सब प्रकार का मांस मेढक और केकडे खाते है और पानी मे रहनेवाली मछलियो को डुबकी लगाकर पकड लेते हैं। इनसे किसी प्रकार के अण्डे नही बचते।

ऊद गुप्त जाडो मे जोडा बाधते हैं और उनकी मादा समय आने पर दो से चार बच्चे देती है। इन बच्चो की आखे कुत्ते के बच्चो की तरह कुछ दिनो बाद खुलती हैं।

कीटभक्षी वर्ग

(ORDER INSECTIVORA)

इस वर्ग मे वे सभी कीटभक्षी जीव शामिल किये गये हैं जिनका सिर छोटा और थूथन लम्बा होता है और जिनके मुँह मे बहुत तेज और नुकीले दांत रहते हैं। इन जीवो के शरीर पर नरम बाल रहते हैं लेकिन कुछ के शरीर के बाल [illegible] रूप लेकर उनकी रक्षा के साधन बन गये हैं।

इनके पैर के नाखून या पंजे बहुत तेज होते हैं जिनसे ये धरती [illegible] मे बिल खोद लेते हैं। इनमे से अधिकतर निशाचर होते हैं जिनका भोजन कीडे-मकोडे हैं।

यह वर्ग निम्नलिखित दो उपवर्गों मे विभाजित किया गया है।

१ उड़न उपवर्ग—Sub Order Dermopte[illegible]

रहता है। इसका कद छोटा और लम्बा होता है और इसका सिर चौडा और चपटा रहता है।

इसके पैर के पजे वत्तखो की तरह आपस मे जुटे रहते है जिससे इसे पानी में तैरने में वडी सहूलियत हो जाती है। इसका मुख्य भोजन मछली है।

ऊद

(OTTER)

ऊद हमारे यहाँ का वहुत मशहूर जानवर है जो खुश्की के अलावा पानी के भीतर मछलियो की तरह तैर लेता है।

ऊद को ऊद-विलाव भी कहते है। इसका यह नाम इसकी विल्ली जैसी शकल के कारण ही पडा है यद्यपि इसका और विल्लियो का कोई सम्बन्ध नही है।

ऊद हमारे यहाँ सारे देश मे फैला हुआ है। यह लगभग दो फुट लम्वा जानवर है जिसके करीव डेढ फुट लम्वी दुम रहती है। इसके वदन का ऊपरी हिस्सा भूरे रग का होता है जिसमे कुछ कत्थई या ललछौह झलक रहती है। इसके वडे वालो के नीचे घने वालो की एक तह रहती है जिसका रग सफेदी मा-यल रहता है। इसके शरीर के नीचे का हिस्सा दुम, गला और टाँगो का भीतरी हिस्सा सफेद रहता है।
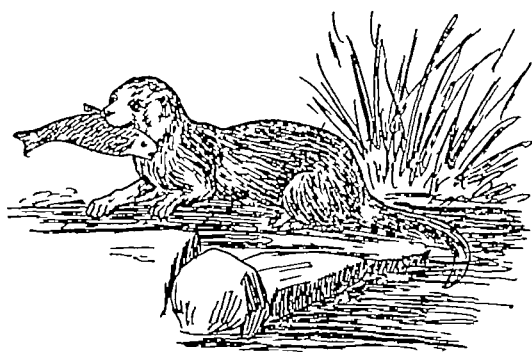
ऊद

ऊद वैसे तो हमारी वडी नदियो मे पाये जाते है, लेकिन ये हमारे यहाँ वडी झीलो और तालावो में भी रह लेते है। ये अपने विल पानी के निकट ही वनाते है जिनमें कई द्वार होते है। ऊद वैसे तो रात्रिचर जीव है, लेकिन इनको अक्सर दिन में भी

२ छछूंदर उपवर्ग—Sub Order Insectivora vera

कुवग उपवर्ग मे केवल कुवग नाम का एक जीव हमारे यहाँ पाया जाता है, लेकिन दूसरे छछूंदर उपवर्ग मे सब तरह की छछूंदर और काँटा चूहा आदि कीटभक्षी जीव है। कुवग, कीटभक्षी-वर्ग का होते हुए भी शकल-सूरत मे अपने वर्ग के अन्य जीवो से इतना भिन्न है कि इसके लिए अलग कुवग उपवर्ग ही बनाना पडा।

कुवग उपवर्ग

(SUB ORDER DERMOPTERA)

यह उपवर्ग बहुत छोटा है और इसमे केवल एक ही परिवार है जो कुवग-परिवार कहलाता है।

इस उपवर्ग के प्राणियो की विशेषता यह है कि ये पेडो पर रहते है और अपने बगल की बढी हुई झिल्ली के सहारे एक पेड से दूसरे पेड पर हवा मे तैरते चले जाते है।

ये जीव कद मे बिल्लियो से कुछ छोटे होते है और इनके पैर भी पतले और नाजुक रहते है। इनका सिर लमछोह और दुम पतली और लम्बी रहती है।

इन प्राणियो के गले से दोनो बगल की खाल बाहर की ओर काफी बढी रहती है जिससे इनके चारो पैर और दुम तक का हिस्सा एक प्रकार की पतली खाल से घिरा रहता है। इसी झिल्ली या खाल को फैलाकर ये हवा मे कूद जाते है और उडनेवाली गिलहरियो की तरह हवा मे तैरते हुए साठ-सत्तर गज दूर के पेडो तक पहुँच जाते है।

इनके कान गोल और औसत कद के होते है। पैरो के तलुवे चपटे और बिना बाल के होते है और पजो के नाखून टेढे, नुकीले और दोनो ओर से दबे-से रहते है। इस उपवर्ग का एक ही प्राणी कुवग हमारे देश मे पाया जाता है जो इस उपवर्ग के अकेले कुवग-परिवार का जीव है।

कुवग-परिवार

(FAMILY GALESPIBHECIDAE)

इस छोटे परिवार मे कुवग जाति के कुछ जीव है जो अपने बगल की बढी हुई खाल के सहारे एक पेड से दूसरे पेड पर बडी आसानी से हवा मे तैरते हुए चले जाते है।

इनकी चाल अलसायी-अलसायी-सी रहती है। इनका मुख्य भोजन कीड़े-मकोड़े हैं। ये स्वभाव से ही बहुत डरपोक होते हैं।

ये जीव हमारा कोई नुकसान नहीं करते बल्कि कीड़े-मकोड़ों को नष्ट करने में हमारी सहायता ही पहुँचाते हैं। इनमें से कुछ के शरीर से एक प्रकार की तेज बू निकलती रहती है जो शत्रुओं के आक्रमण से उनकी रक्षा करती है।

यह उपवर्ग वैसे तो नौ परिवारों में विभक्त किया गया है लेकिन यहाँ केवल दो परिवारों का वर्णन दिया जा रहा है जिनमें के जीव हमारे परिचित हैं। ये परिवार हैं छछूँदर-परिवार और काँटाचूहा-परिवार।

छछूँदर-परिवार

(FAMILY SORICIDAL)

यह परिवार बहुत बड़ा है जिसमें संसार की सभी जातियों की छछूँदरें एकत्र की गयी हैं। इनका सिर चपटा और थूथन चूहों से लम्बा रहता है। इनकी आँखें बहुत छोटी होती हैं और इनकी दृष्टि इतनी कमजोर होती है कि ये सूरज की तेज रोशनी में आँखें नहीं खोल पाती और अँधेरे में ही रहना पसन्द करती हैं। इनका बदन मुलायम रोओं से ढका रहता है और इनके दोनों बगल एक-एक गाँठ-गन्थियाँ रहती हैं जिनमें से तेज बू निकला करती है। इस बू से इनकी मौजूदगी का पता फौरन चल जाता है और इसी से दुश्मनों से इनकी रक्षा हो जाती है।

इन जीवों के पैरों में पाँच-पाँच उँगलियाँ रहती हैं जिनमें तेज नाखून रहते हैं। इन मजबूत नाखूनों से ये आनन-फानन मिट्टी खोद डालते हैं।

ये सब रात्रिचारी जीव हैं जो दिन में अपने बिलों में या घास-पात के ढेरों में छिपे रहते हैं और रात को भोजन की तलाश में बाहर निकलते हैं।

यहाँ इस परिवार की प्रसिद्ध छछूँदर का वर्णन दिया जा रहा है जो हमारे सारे देश में फैली हुई है।

छछूँदर

(GREY MUSK SHREW)

छछूँदर की कई जातियाँ अपने यहाँ पायी जाती हैं जिनमें से कुछ पानी के पास रहती हैं तो कुछ सूखी पर, लेकिन इन सबमें हमारे घरों में रहनेवाली छछूँदर सबसे मशहूर है। यहाँ उसी का वर्णन दिया जा रहा है।

इसके पेट का रग भूरा होता है। बच्चो के बदन पर काफी सख्या मे सफेद चित्तियो पडी रहती है जिससे वे चितकबरे से जान पडते है।

उडनेवाली गिलहरियो की तरह कुबग के शरीर के दोनो ओर अगले पजो से पिछले पजो तक तो खाल फैली ही रहती है, साथ ही साथ उसकी गर्दन के पास की बढी हुई खाल भी दोनो अगले पजो तक जुटी रहती है। इसी तरह पिछले पजो के पीछे भी खाल बढकर इसकी दुम तक फैली रहती है जिससे चारो पैरो को फैला लेने पर यह पतग की शकल का दिखाई पडने लगता है।

कुबग के बदन पर के बाल छोटे और बहुत नरम होते है। इसका सिर छोटा, थूथन नोकीला और पजे बहुत मजबूत होते है। यह दिन भर या तो किसी डाल पर अपने चारो पैरो के सहारे लटका रहता है या पेड की डालो पर काहिली से इधर-उधर घूमता रहता है, लेकिन रात आते ही इसमे गजब की तेजी आ जाती है। रात को यह अपनी खूराक के लिए एक पेड से कूदकर दूसरे पेड तक हवा मे तैरता चला जाता है। हवा मे तैरते समय यह चमगादडो की तरह अपने पैर नही हिलाता बल्कि उडनेवाली गिलहरियो की तरह बगल की झिल्ली के सहारे साठ-सत्तर गज तक हवा मे तैर जाता है। यह अपना पैर उस समय हिलाता है, जब इसे हवा मे तैरते समय अपना रुख बदलना होता है। इसकी लम्बी दुम भी इसकी उडान मे बहुत सहायक होती है और वह बहुत कुछ पतवार का काम करती है। वैसे यह अपनी दुम से डालियो को बहुत मजबूती से पकड लेता है जिससे उसे पेड मे लटकते समय बहुत सहूलियत हो जाती है।

कुबग शाकाहारी जीव है जिसका मुख्य भोजन फल-फूल है लेकिन यह कीडे-मकोडे भी खाता है। इसकी मादा एक बार मे एक ही बच्चा देती है।

छछूदर उपवर्ग

(SUB ORDER INSECTIVORA VERA)

छछूंदर उपवर्ग काफी बडा उपवर्ग है जिसमे काँटे, चूहे के अलावा सभी प्रकार की छछूंदरे एकत्र की गयी है। इनमें से अधिकाश जीव रात्रिचारी है, जिनका सिर छोटा होता है। इनकी आँखे और कान भी छोटे होते है, लेकिन इनका थूथन पतला और नोकीला रहता है। ये अपने तेज नाखूनो से बिल खोदकर ज़मीन में रहते है।

छछूंदर की मादा एक बार में कई बच्चे जनती है जो पैदा होने के कुछ दिनों बाद आँखें खोलते हैं।

काँटाचूहा-परिवार

(FAMILY ERINACEIDAE)

यह परिवार छछूंदर-परिवार से छोटा है और इसमें के विचित्र प्राणी अपनी शकल-सूरत में अन्य जीवों से भिन्न ही रहते हैं। इनके शरीर पर मुलायम बालों की जगह छोटे-छोटे काँटे रहते हैं जिसके कारण इनका नाम काँटाचूहा पड़ा है।

इनका थूथन छछूंदर की तरह लम्बा नहीं होता और न इनके नाखून ही छछूंदरों की तरह जमीन खोदने के लिए बनाये गये हैं। हाँ, इनकी दृष्टि जरूर छछूंदरों की तरह कमजोर होती है और ये उन्हीं की तरह आलसी भी होते हैं।

इन प्राणियों की टाँगें और दुम छोटी होती है, लेकिन इनकी सूँघने की शक्ति बहुत तेज रहती है। ये वैसे तो काहिल से लगते हैं, लेकिन चूहे पकड़ने में बिल्लियों से भी तेज होते हैं। चूहे ही क्यों, ये साँप तक को बड़ी आसानी से काट डालते हैं।

इनकी वैसे तो कई जातियाँ हैं, लेकिन यहाँ हम अपने देश में पाये जानेवाले प्रसिद्ध काँटाचूहा का ही वर्णन दे रहे हैं।

काँटाचूहा

(HEDGE HOG)

काँटाचूहा चूहों का सम्बन्धी नहीं है, फिर भी चूहों की-सी शकल-सूरत के कारण इसे लोग चूहे की जाति का जीव समझने लगे और इसके बदन पर के काँटों के कारण इसे काँटाचूहा कहने लगे। इसके अलावा इसके और भी कई नाम हैं। कहीं इसे [illegible] कहते हैं तो कहीं [illegible] और सिंध की ओर यह [illegible] के नाम से प्रसिद्ध है।

हमारे देश में काँटाचूहे की कई जातियाँ हैं जिनमें [illegible] भेद रहता है। [illegible] की प्रसिद्ध जाति, जिसका यहाँ वर्णन दिया जा रहा है, [illegible] प्रदेश से पश्चिमी हिन्द तक फैली हुई है [illegible]।

यह छछूंदर हमारे यहाँ सारे देश मे फैली हुई है और इसे हम अक्सर अपने घरों मे देखते हैं। रात्रिचर होने के कारण यह हमारी निगाह तले कम पडती है, लेकिन इसकी चिक्-चिक् की आवाज और बू से हम इसकी मौजूदगी का पता पा जाते हैं।

छछूंदर शकल-सूरत और शरीर की बनावट मे बहुत-कुछ चूहे की तरह होती है और दूर से देखने पर हम इसे चूहा ही समझते हैं, लेकिन इसकी तेज बू से इसे पहचानना सरल हो जाता है। इसका कद छ-सात इच मे बडा नही होता। इसके अलावा इसके तीन-चार इच की दुम भी रहती है। इसका सिर लम्बा, थूथन नोकीला और नथुने के दोनो बगल के हिस्से सूजे-सूजे से रहते हैं।
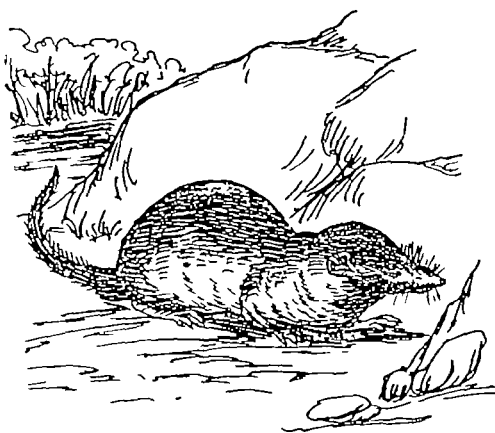
छछूंदर

छछूंदर का शरीर हलके मिलेटी रग का रहता है जिसमें एक प्रकार की नीली झलक रहती है। इसके बदन पर बहुत छोटे-छोटे बाल रहते है, लेकिन जिस हिस्से पर बाल नही होते वे प्याजी या हलके गुलाबी रग के रहते है। बच्चो का रग अधिक गाढा रहता है।

छछूंदर वास्तव में बहुत शरमीली होती है और ज्यादातर रात में ही बाहर निकलती है। इसे आबादी के आस-पास रहना बहुत भाता है और शायद ही कोई ऐसा गाँव बचा होगा जहाँ यह न पहुँच गयी हो। इसका मुख्य भोजन कीडे-मकोडे हैं।

छछूंदर के दोनो बगल की गन्ध-ग्रन्थियो से एक प्रकार का बदबूदार पदार्थ निकला करता है। जोडा बाँधने के समय यह द्रव पदार्थ और भी अधिक मात्रा में निकलने लगता है। तब छछूंदरो की बू ज्यादा तेज हो जाती है। यह गाढा पदार्थ इनके डर जाने पर ही इनकी गन्ध-ग्रथियो से निकलता है और उसका उपयोग ये शत्रुओ मे बचाव के लिए करती हैं। इसी तेज बू की वजह से इन्हें इनके शत्रु नही पकडते और ये इसी तेज बू से कीडे-मकोडो को आसानी से अपने काबू में कर लेती हैं।

बाद इनका सारा शरीर कांटों से भर जाता है। तब ये पूर्णरूप से कांटाचूहा बन जाते हैं।

करपक्ष-वर्ग

(ORDER CHIROPTERA)

इस वर्ग में सब प्रकार के छोटे और बड़े चमगादड़ एकत्र किये गये हैं जो पक्षियों की तरह हवा में उड़ लेते हैं। इनके चिड़ियों की तरह पर और डैने नहीं होते, लेकिन इनके हाथ की चारों उँगलियाँ जो बढ़कर काफी लम्बी हो गयी हैं एक प्रकार की मजबूत झिल्ली से जुड़ी रहती हैं। यह झिल्ली फैलकर इनकी टाँगों के पास जाकर मिलती है और जब ये अपना हाथ फैलाते हैं तो वह छाते की तरह तन जाती है। इसी के सहारे ये आकाश में पक्षियों से भी तेज उड़ लेते हैं।

इनके हाथ का अँगूठा झिल्ली से मुक्त रहता है जिसके सहारे ये दिन में पेड़ की डालियों को पकड़कर उल्टे लटके रहते हैं।

इस वर्ग के प्राणियों की शकल-सूरत और कद में भले ही कुछ भेद हो, लेकिन हवा में उड़ने के गुण और शरीर-रचना के दृष्टिकोण से ये सब एक ही प्रकार के प्राणी हैं।

इनके वर्गीकरण में प्राणिशास्त्र-विशारदों को बहुत कठिनाई हुई। उन्होंने पहले इन्हें वानर वर्ग में रखा लेकिन बाद में ये मांसाहारी वर्ग में रखे गये। इसके बाद वहाँ से हटाकर इन्हें कीटभक्षी-वर्ग में रखा गया, लेकिन अन्त में विद्वानों ने इनका यह अलग ही वर्ग बनाया जो करपक्ष-वर्ग कहलाता है।

वानर-वर्ग की तरह यह वर्ग भी दो उपवर्गों में बाँट दिया गया है—

१ गादुर उपवर्ग—Sub Order Megachiroptera

२ चमगादड़ उपवर्ग—Sub Order Microchiroptera

पहले उपवर्ग में फलाहारी और दूसरे में मांसाहारी चमगादड़ हैं। फलाहारी गादुर और मांसभक्षी चमगादड़ कहलाते हैं जिनके कई परिवार और अनेक जातियाँ सारे संसार में फैली हुई हैं।

आगे [illegible] दोनों के [illegible] चमगादड़ और गादुर [illegible] चिड़ियों की तरह उड़ लेते हों, लेकिन इनके शरीर पर [illegible]

काँटाचूहा छ इच का छोटा-सा जानवर है जिसके वदन की ऊपरी कलछौंह खाल छोटे-छोटे काँटो से भरी रहती है। इसके पेट और पैर का रग कलछौंह भूरा या कत्थई और मुंह का हिस्सा सिलेटी भूरा रहता है। इसकी ठुड्डी सफेद रहती है और वहाँ की सफेदी कभी-कभी गरदन तक फैल जाती है।

काँटाचूहे हमारे यहाँ इतनी कम सख्या मे है कि इन्हे हम वहुत कम देख पाते हैं और यही कारण है कि इनके वारे में अभी तक ज्यादा नही जाना जा सका है। इनके वदन पर साही-जैसे छोटे-छोटे काँटे रहते है जिनका ज्यादा हिस्सा सफेद रहता है, लेकिन उनके सिरे की ओर का हिस्सा काला रहता है। इस काले हिस्से में भी एक सफेद छल्ला पडा रहता है, लेकिन कुछ काँटो की नोक काली ही रहती है।
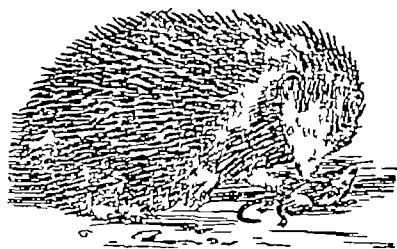
काँटाचूहा

काँटाचूहो के लिए उनके ये काँटे वडे काम के है क्योकि दुश्मनो द्वारा आक्रमण किये जाने पर ये अपना वदन लपेटकर गेंद की तरह गोल हो जाते है और अपना सिर और पैर भीतर की ओर कर लेते है। उस समय इनके बदन के काँटे खडे हो जाते है और तब उन पर हमला करने की सहसा किसी की हिम्मत नही पडती, लेकिन इसकी भी तरकीब इनके दुश्मनों ने ढूंढ निकाली है। लोमडी और स्यार जब इन्हें गेंदनुमा लिपटे हुए पाते है तो वे इन्हें गेंद की तरह लुढकाकर किसी जलाशय के पास ले जाते और वहाँ इन्हे पानी मे डाल देते है। पानी मे डाले जाने पर ये वेवस होकर अपना शरीर सीधा कर लेते हैं और तव इन्हें मारने में देर नही लगती।

काँटाचूहा कीडे-मकोडे खानेवाला जीव है जो हर तरह के कीडे-मकोडो के सिवा साँपो को भी मारकर खा जाता है। इसे अण्डे भी वहुत पसन्द है और जमीन पर अण्डे देनेवाली चिडियो के अण्डो को इससे वहुत खतरा रहता है।

इसकी मादा एक वार में तीन-चार वच्चे देती है जो पैदा होने पर विना काँटो के रहते है, लेकिन धीरे-धीरे इनके वदन पर काँटे निकल आते है और आठ-नौ महीने के

गादुर

(FRUIT BAT)

गादुर फल खानेवाले बड़े कद के चमगादड़ है जो हमारे देश मे प्राय सभी स्थानो मे पाये जाते हैं। कही इनकी संख्या कम रहती है तो कही ज्यादा, लेकिन ऐसा शायद ही कोई स्थान होगा जहाँ ये कभी न दिखाई पड़ते हो। हमारे देश मे ये पजाब मे बहुत ही कम दिखाई पड़ते हैं। राजपूताने की ओर भी इनकी संख्या बहुत कम है और हिमालय की ओर तो ये तराइयो को छोड ऊपर की ओर जाना पसन्द ही नही करते।

गादुर

गादुर वैसे तो देखने मे कलछौंह या कत्थई जान पडते है, लेकिन इनका शरीर अनेक रगो मे बँटा रहता है। इनके सिर और गुद्दी का रग ललछौंह भूरा रहता है और नथुने गाढे रग के होते है जो कभी-कभी काले से दिखाई पडते हैं। गरदन का ऊपरी हिस्सा और कधा सुनहलापन लिये पिलछौंह रहता है। इनका गला ठुड्डी और नीचे का सारा हिस्सा पिलछौंह भूरे रग का होता है और शरीर के दोनो ओर की झिल्ली भूरापन लिये काले रग की रहती है। इनका शरीर वैसे तो एक फुट से ज्यादा नही होता, लेकिन इनकी लम्बी उगलियो मे मढी हुई दोनो बगल की उडनेवाली झिल्ली का फैलाव चार फुट तक पहुँच जाता है।
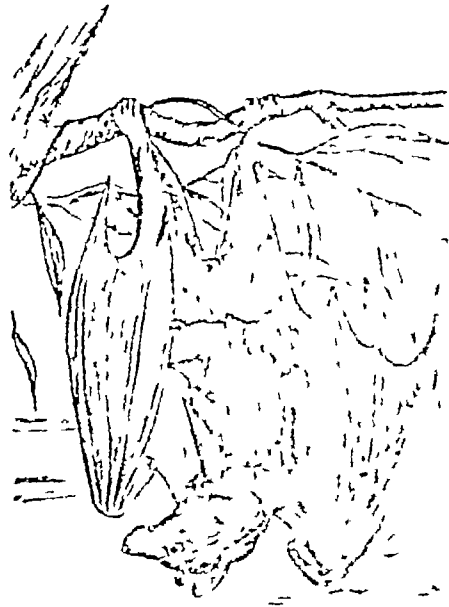
गादुर फलाहारी जीव है जो झुण्ड के झुण्ड दिन भर किसी पेड पर उल्टे टँगे रहने के बाद शाम होते ही [illegible] इतना [illegible] कर देते हैं और धीरे-धीरे सारा पेड खाली हो जाता है। रात भर [illegible] के बागो पर [illegible] है और सवेरा होते-होते ये फिर अपने उसी पुराने पेड पर [illegible] मे आकर लटक जाते है। पत्तो की [illegible] मे ये [illegible]

होती है और ये बडी मुश्किल से घसिट-घसिटकर जमीन पर चल पाते है। इतना ही नही, इसी झिल्ली के कारण एक वार जमीन पर उतर पडने पर वे फिर जल्द हवा में नही उठ पाते और उडने से पहले उन्हे कुछ दूर तक जमीन पर घसिट-घसिटकर चलना पडता है। इसी कारण ये या तो किसी पेड पर लटके रहते है या किसी ऊँची जगह पर विलो या सूराखो में घुसे रहते है जहाँ से कूदकर उन्हे हवा मे उडने मे आसानी हो जाती है।

चमगादड रात्रिचारी जीव है जो रात होने पर अपने भोजन की तलाश मे वाहर निकलते है। इनकी आँखें वहुत छोटी होती है जिनसे वे शायद काम भी नही लेते क्योकि उनका ज्यादा काम उनकी झिल्ली से चलता है। उनकी झिल्ली मे गजव का स्पर्शज्ञान रहता है जिसके द्वारा उन्हे उडते समय आस-पास की चीजो का पता चल जाता है और वे अँधेरे में विना किसी चीज से टकराये हवा मे उडते रहते है।

चमगादडो की सूंघने और सुनने की शक्ति भी कम नही होती। इनकी मादा प्रतिवर्ष एक ही बच्चा देती है जो काफी समय तक अपनी पिछली टाँगो से माँ के पेट की खाल पकडकर लटका रहता है।

गादुर उपवर्ग

(SUB ORDER MEGACHIROPTERA)

गादुर उपवर्ग में वडे कद के फलाहारी जीव हैं जिनका मुंह लोमडी की तरह लम्बा होता है। इनके दुम नही रहती और रहती भी है तो वहुत छोटी। इनके कान भी छोटे होते हैं।

ये जीव गादुर कहलाते है और इनका एक ही परिवार गादुर-परिवार है।

गादुर-परिवार

(FAMILY PLEROPODIDAE)

गादुर-परिवार में वडे कद के फलाहारी गादुर है जो झुड में रहते है। इनमे कुछ का थूथन लम्वा और कुछ का छोटा रहता है। दिन में ये किसी एक पेड पर उलटे लटके रहते है और रात में इनका फलो के वाग पर भयकर हमला होता है। इनकी उडान वहुत लम्वी होती है। इस परिवार में अनेक जातियो के गादुर है जिनमें से एक प्रसिद्ध गादुर का वर्णन यहाँ दिया जा रहा है।

चमगादड़

(VAMPIRE BAT)

चमगादड़ों की हमारे यहाँ अनेक जातियाँ हैं, लेकिन यहाँ अपने यहाँ के प्रसिद्ध लम्बकर्ण चमगादड़ का वर्णन दिया जा रहा है क्योंकि रंग-रूप में कुछ भेद होने पर भी इन सबकी आदतों में ज्यादा भेद नहीं रहता।

हमारे यहाँ यह लम्बे कानवाला चमगादड़ सारे देश में फैला हुआ है। उत्तर की ओर यह जरूर हिमालय के पहाड़ों पर नहीं जाता और इसके रहने के मुख्य स्थान तराइयों तक ही सीमित रहते हैं।

चमगादड़

यह चमगादड़ कद में तीन-चार इंच से ज्यादा बड़ा नहीं होता और इसके डैनों की झिल्ली का फैलाव भी एक से डेढ़ फुट तक रहता है। इसके शरीर का ऊपरी हिस्सा गाढ़ा खाकी या सिलेटी रहता है लेकिन नीचे का रंग हलका रहता है। नीचे के हलके रंग में कभी-कभी सफेदी या पीलापन भी [illegible] और इसके [illegible] की झिल्ली गाढ़े भूरे रंग की रहती है।

लम्बकर्ण चमगादड़ के बदन के बाल [illegible] होते हैं। इसका [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

लगा डालते हैं और जिस बाग पर इनका ठीक मे हमला हो जाता है उसे साफ ही समझना चाहिए।

गादुर नीबू, नारगी और कडे छिलकेवाले फलो को छोडकर सभी प्रकार के फल खाते हैं। केला, अमरूद आदि मीठे और गूदेदार फल के तो ये जानी दुश्मन हैं। इसके अलावा गूलर, पीपल और पाकड आदि जगली फल भी इनसे नही बचते। कभी-कभी तो ये खजूर और ताड में लटकते हुए घडो से ताडी भी पी लेते हैं।

गादुर की मादा एक बार में एक ही बच्चा जनती है। बच्चा जब तक काफी बडा नही हो जाता तब तक वह अपनी माँ के पेट पर पिछली टाँगो के सहारे उलटा लटका रहता है।

चमगादड उपवर्ग

(SUB ORDER MICROCHIROPTERA)

चमगादड उपपरिवार गादुर उपपरिवार से कही बडा है जिसमे अनेक परिवार और जातियाँ हैं, लेकिन इसमें के सभी चमगादड कीटभक्षी जीव हैं जो कद मे भी गादुरो से छोटे होते हैं। इनमें से कुछ लम्बी पूँछवाले होते हैं तो कुछ लम्बे कानवाले। कीडे-मकोडो के अलावा इनमें से कुछ दूसरे जानवरो का खून चूसने में भी उस्ताद होते हैं।

इनके वैसे तो अनेक परिवार हैं, लेकिन यहाँ केवल (१) चमगादड-परिवार, (२) छोटा चमगादड परिवार और (३) चमगिदडी परिवार का वर्णन दिया जा रहा है।

चमगादड-परिवार

(FAMILY MIGADERMIDAE)

इस परिवार मे कई प्रकार के चमगादड हैं जिनकी विशेषता उनके लम्बे कान हैं। ये कद में बहुत बडे नही होते और इनकी दुम बहुत छोटी होती है। ये वैसे तो मिलेटी भूरे रग के होते हैं, लेकिन कभी-कभी इनके रग में पिलछौंह झलक भी आ जाती है। यहाँ इसी परिवार के एक प्रसिद्ध चमगादड का वर्णन दिया जा रहा है।

यह हमारे यहा का छोटा दुमदार चमगादड है जिसकी लम्बाई करीब तीन इच के होती है। इसकी झिल्ली का फैलाव लगभग एक फुट रहता है और इसकी दुम भी करीब दो इच लम्बी रहती है। इसके शरीर का ऊपरी हिस्सा कभी कत्थई रहता है तो कभी भूरा और कभी-कभी इसी भूरेपन मे पीले या सिलेटीपन की झलक भी रहती है। पेट का रग अक्सर गदा पीला या गदा सफेद रहता है।
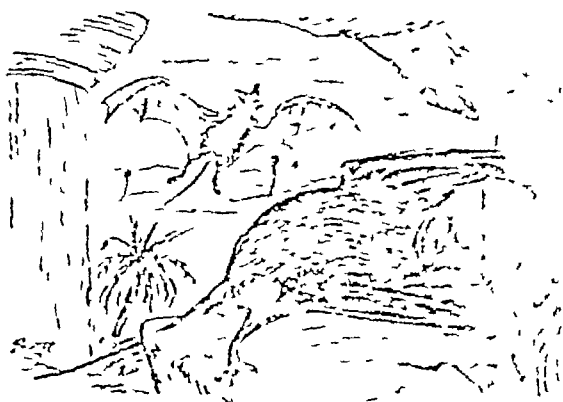
छोटा चमगादड

इस चमगादड के कान बडे नही होते। इसका नथना मोटा पत्तीनुमा सिर चौडा और चेहरा चपटा रहता है। इसके शरीर के बाल छोटे और मुलायम रहते हैं।

इसको जैसे जगल पसन्द नही आते और यह अपना ज्यादा समय बस्तियो के आस-पास ही बिताता है। दिन मे यह किसी पुरानी वीरान इमारत मे या अंधेरी कोठरियो और दराजो मे छिपा रहता है, लेकिन शाम होते ही यह सब चमगादडो से पहले बाहर निकलकर हवा मे उडने लगता है।

इसका मुख्य भोजन वैसे तो कीडे-मकोडे है लेकिन दीमक इसे सबसे अधिक पसन्द आता है। इसकी मादा एक बार मे एक ही बच्चा देती है जो अन्य चमगादडो के बच्चो की तरह माँ के पेट पर उलटा लटका रहता है।

चमगिदडी परिवार

(FAMILY VESPERTILIONIDAE)

इस परिवार मे और भी छोटे कद के चमगादड है जो चमगिदडी कहलाते है, इनकी पाँच-छ जातियाँ है, लेकिन इनमे [illegible] इच से बडी नही होती। इनकी [illegible] दुम भी [illegible]

ये चमगादड अपना दिन का समय पुरानी इमारतो, अँधरी कोठरियो, दीवार के सूराखो और दराजो मे विताते है जहाँ ये हजारो की सख्या मे छिपे रहते है, लेकिन शाम होते ही ये बाहर निकलकर अपने भोजन की तलाश मे आकाश में उडने लगते है। पुरानी वीरान इमारतो में, जहाँ ये रहते है, काफी वदवू रहती है और इनके रहने का पता लगाने मे कोई कठिनाई नही होती।

ये चमगादड मासाहारी जीव है जिनका मुख्य भोजन वैसे तो रक्त है, लेकिन इसके अलावा ये कीडे-मकोडे, मेढक और छोटी-छोटी चिडियाँ भी वडे मजे मे खाते है। यही नही, ये कभी-कभी छोटे-छोटे जानवरो और चमगादडो को भी खा जाते है, अन्य मासभक्षी जीवो की तरह ये अपने शिकार को समूचा या टुकडे-टुकडे करके नही खाते वल्कि उसे पकडकर अपने लम्बे कानो के वीच मे दवा लेते है और उडते ही उडते उसका खून चूसकर उसे छोड देते है।

इनकी मादा एक वार मे एक ही वच्चा देती है जो वडा होने तक अपनी माँ के पेट पर उलटा लटका रहता है।

छोटा चमगादड-परिवार

(FAMILY RHINOLOPHIDAE)

इस परिवार मे छोटे चमगादडो को एकत्र किया गया है जिनकी विशेपता उनकी लम्बी वुहिया जैसी दुम है। इनकी यह दुम इनकी झिल्ली से बाहर की ओर निकली रहती है। नाक के ऊपर पत्ती के शकल का मास भी उभरा रहता है। ये प्राय वडे-वडे झुड में पुरानी इमारतो और वीरान खॅडहरो में घुसे रहते है। इनकी वैसे तो कई जातियाँ है लेकिन यहाँ अपने यहाँ के एक प्रसिद्ध छोटे चमगादड का वर्णन दिया जा रहा है जो अपनी चुहिया-जैसी दुम के लिए ससार में मशहूर है।

छोटा चमगादड

(MOUSE TAILED BAT)

छोटे चमगादड हमारे यहाँ काफी सख्या में पाये जाते है और इन्हें हम अपने देश मे प्राय सभी स्थानो पर देख सकते है। हिमालय पर जरूर ये ज्यादा ऊँचाई पर नही पाये जाते।

उडान तेज रहती है। इसे बस्तियों से ज्यादा जंगल पसन्द है, जहाँ यह रात भर अपने भोजन की तलाश में उडती रहती है। इसका मुख्य भोजन कीडे-मकोडे हैं।

जाडा प्रारम्भ होते ही चमगिदडी शीतशायी हो जाती है और जाडे भर किसी निरापद स्थान में सोती रहती है। जाडा खतम होने पर इसकी कुम्भकर्णी नींद खतम होती है और तब यह फिर केवल दिन में ही सोना पसन्द करती है।

इसकी मादा एक बार में एक ही बच्चा देती है।

वानर वर्ग

(ORDER PRIMATES)

इस वर्ग के अन्तर्गत सभी प्रकार के वनमानुष, बन्दर, लंगूर और लजीले वानर आते हैं, लेकिन सुविधा के लिए इस वर्ग को दो उपवर्गों में विभाजित कर दिया गया है।

१ लजीला वानर उपवर्ग—Sub Order Lemuroidea
२ वानर उपवर्ग—Sub Order Anthropoidea

इनके विषय में खास-खास बातें आगे दी जायेंगी। यहाँ तो पूरे वर्ग को ध्यान में रखकर ही कुछ बातें दी जा रही हैं।

वानर वर्ग के अधिकांश जीवों के शरीर पर बाल रहते हैं और इनमें छोटी या बडी दुम होती है, लेकिन वनमानुषों के दुम नहीं रहती। इनके मुख में चारों किस्म के दांत, कृन्तक, कुकुरदन्त, दूध की दाढें और दाढें (Incisors, Canines, Premolers & Molers) रहती हैं जो पहले दूध के दांत गिर जाने पर निकलती हैं। इनकी आंख, हड्डी की परिधि के भीतर रहती है जिससे वह सुरक्षित रह सके।

इनके पेट की भीतरी बनावट सादी रहती है। इनकी हंसुली स्पष्ट रहती है और हाथ की दोनों बडी हड्डियां रेडियस (Radius) और अल्ना (Ulna) [illegible] एक में जुटी नहीं रहती। इनके हाथ और पैर में पांच पांच-पांच उंगलियां रहती हैं जिनमें नाखून रहते हैं, अंगूठा अन्य उंगलियों से अलग रहता है।

इन जीवों की खोपडी तो बडी होती है। [illegible] इनका मस्तिष्क [illegible] विकसित रहता है। प्रायः सभी की मादा की छाती पर दो स्तन रहते हैं। [illegible]

भीतर ही रह जाती है। इसके कान उतने बडे न होकर आगे की ओर मुडे रहते है। नीचे उसी का वर्णन दिया जा रहा है।

चमगिदडी

(NOCTULE BAT)

इस छोटे चमगादड को इसके छोटे कद के कारण लोग चमगिदडी कहने लगे है। हमारे देश में यह नेपाल के आस-पास दिखाई पडती है। इसकी और भी कई जातियाँ है जो देश के अन्य स्थानो मे फैली हुई है।

चमगिदडी तीन इच से ज्यादा बडी नही होती, जिसके लगभग दो इच लम्बी दुम रहती है जो इसके बदन को झिल्ली से बाहर नही निकलती। इसकी झिल्ली का फैलाव लगभग एक फुट का रहता है। इसके शरीर का ऊपरी हिस्सा हलका पिलछौह भूरा रहता है और नीचे का हिस्सा हलके रग का रहता है जिसमें हलकी पीली झलक रहती है। इसका सिर चौडा और चपटा रहता है। कान छोटे, चौडे और गोलाई लिये रहते है जो बहुत छोटे और मोटे होते है। इसके पैर मोटे और छोटे होते है और उडनेवाली झिल्ली पैर का कुछ हिस्सा छोडकर शुरू होती है।
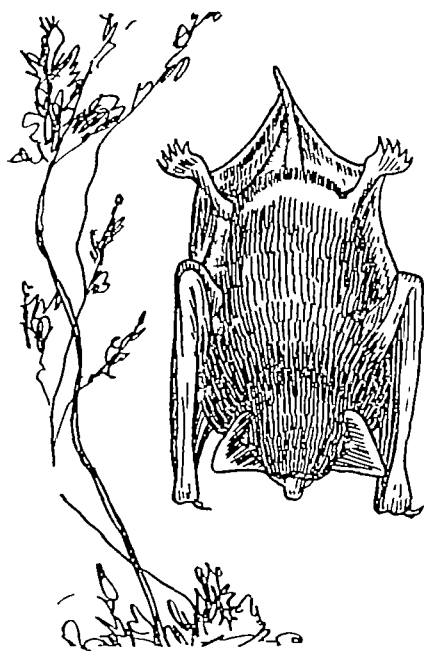
चमगिदडी

चमगिदडी दिन में अन्य चमगादडो की तरह किसी पुराने मकान के अँधेरे हिस्से में या किसी पेड के खोथे में छिपी रहती है जो शाम होते ही अपने छिपने की जगह से निकलकर हवा में काफी ऊँचाई पर उडने लगती है। इसकी

लजीला वानर

(SLOW LORIS)

लजीला वानर वैसे तो वानरो का भाई-बन्धु है लेकिन इसकी शक्ल-सूरत में बन्दरो से इतना फर्क रहता है कि कुछ लोग इसे दूसरी जाति का प्राणी समझते हैं। यही कारण है कि कहीं-कहीं इसे शरमीली-बिल्ली भी कहा जाता है।

लजीला वानर हमारे देश में केवल आसाम में पाया जाता है। इसके सिवा यह इस देश में और कहीं नहीं मिलता। पूर्वी पाकिस्तान में जरूर यह काफी संख्या में पाया जाता है, जहाँ से यह बोर्नियो तक देख पड़ता है।

लजीला वानर

लजीला वानर बिल्ली से भी छोटा परन्तु उससे अधिक गठीले बदन का जानवर है जो आकार में चौदह-पन्द्रह इंच से बड़ा नहीं होता। उसका थूथन लोमड़ी की तरह और आँखें बिल्लियों की तरह होती हैं। इसके कान तो छोटे होते ही हैं, लेकिन दुम भी इतनी छोटी होती है कि वह बालों में ही छिपी रहती है। इसके शरीर का रंग सिलेटी रहता है जिसमें कुछ [illegible] लिये रहती है। [illegible] रंग का रहता है। इसकी गर्दन से लेकर पीठ तक [illegible] और आँखों के चारों ओर इसी रंग का घेरा रहता [illegible] में एक सफेद धारी चली रहती है।

लजीला वानर [illegible] में [illegible] है। [illegible] जमीन पर इसका बिल्कुल [illegible]

अपने शिशुओ को दूध पिलाती है। इसी विशेपता के कारण इन जीवो को स्तनप्राणी अथवा स्तनपायी जीव कहा जाता है। इनके शिशु पैदा होने के बाद कुछ दिनो तक बडी असहाय अवस्था मे रहते है और तब उन्हे अपनी माता पर ही आश्रित रहना पडता है।

इस वर्ग के प्राणी सारे ससार मे फैले हुए है।

लजीला वानर उपवर्ग

(SUB ORDER LEMUROIDEA)

इस उपवर्ग में लेमूर तथा लजीले वानर की जाति के जीव है जो विकास क्रम में वानरो से पिछडे जीव माने जाते है।

इनका मुख वानरो की तरह गोल न होकर कुत्तो की तरह लम्बा रहता है और कान भी बहुधा लम्बे होते हैं। किसी की दुम बडी और किसी की छोटी होती है और कुछ ऐसे भी है जो बिना दुम के ही होते है। कुछ की छातियो पर स्तन होते है तो कुछ के पेट पर और कुछ ऐसे हैं जिनकी छाती और पेट दोनो स्थानो पर स्तन रहते है। इनकी आँखें आगे की ओर उभरी रहती है जो काफी तेज होती है।

इन जीवो के पैर की उँगलियो में से दूसरी में तेज नख रहता है और इनके हाथ की अगली दोनो हड्डियाँ एक ही में जुटी रहती है।

इस उपवर्ग के प्राणी अफ्रीका, भारत, स्याम, मेडागास्कर, लका, मलाया, आसाम तथा फिलीपाइन आदि देशो में पाये जाते है जो तीन परिवारो में विभक्त किये गये हैं, लेकिन यहाँ केवल एक लजीला वानर-परिवार का ही वर्णन दिया जा रहा है।

लजीला वानर परिवार

(FAMILY LORISINAE)

इस परिवार मे कई जातियो के जीव है जिनकी विशेपता उनके शरीर के मुलायम बालो की तह है। इनकी आँखें बडी होती है। कुछ की दुम छोटी होती है तो कुछ बेदुम के होते हैं। ये पेडो पर चढने मे उस्ताद होते हैं। यहाँ अपने यहाँ के प्रसिद्ध लजीला वानर तथा तवागु का वर्णन दिया जा रहा है।

तवागु भी लजीला वानर की तरह दिन भर सोने के बाद रात में पेड़ों पर अपने भोजन के लिए चक्कर लगाने लगता है। सोते समय यह भी अपना सिर अपने पेट में घुसेड़कर सोता है। यह जमीन पर शायद ही कभी उतरता हो क्योंकि जमीन पर ठीक से यह भी नहीं चल पाता।

इसका भोजन फल-फूल, नरम कल्ले, कीड़े-मकोड़े, अण्डे और छोटे-मोटे पशु-पक्षी हैं।

वानर उपवर्ग

(SUB ORDER ANTHROPODEA)

इस उपवर्ग में लजीले वानरों को छोड़कर सब तरह के वनमानुष, लंगूर और बंदर रखे गये हैं जिनके मुख्य-मुख्य गुणों के बारे में ऊपर लिखा ही जा चुका है।

इस उपवर्ग को कई मुख्य परिवारों में बांटा गया है जिनमें से वानर-परिवार (Family Cercopithecidae) तथा ऊलक-परिवार (Family Simiidae) से कुछ जीवों का वर्णन यहाँ दिया जा रहा है।

वानर-परिवार

(FAMILY CERCOPITHECIDAE)

वानर-परिवार काफी बड़ा परिवार है जिसमें सब तरह के बन्दर और लंगूर रखे गये हैं। इनकी अनेक जातियाँ सारे संसार में फैली हुई हैं जिनसे हम इतने परिचित हैं कि इनके विशेष वर्णन की आवश्यकता नहीं है।

हमारे देश में भी इनकी बहुत-सी जातियाँ हैं, लेकिन यहाँ केवल अपने यहाँ प्रसिद्ध बंदर और लंगूर का ही वर्णन दिया जा रहा है।

इन दोनों से हम सभी परिचित हैं। बंदरों के गाल में एक थैली होती है जिसमें वे फल और अनाज भर लेते हैं लेकिन लंगूरों में इस थैली का अभाव रहता है। वैसे इन दोनों की आदतें बहुत कुछ मिलती-जुलती होती हैं।

बंदर

(MONKEY)

बंदर हमारे इतने परिचित जीव हैं कि इनके बारे में ज्यादा लिखने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती। फिर भी [illegible] स्वभाव आदि के बारे में कुछ जानकारी [illegible]।

तो यह अजीब तरह मे लहराता हुआ चलता है। यह वैसे तो सुस्त जानवर है, लेकिन पेडो पर चढने के ममय इसमे वहुत फुर्ती आ जाती है। दिन में यह किमी पेड की डाल पकडकर अपना सिर भीतर की ओर कर लेता है और गोल गेंद-सा होकर सारा वक्त सोने मे विता देता है। शाम होते ही इसकी निद्रा टूटती है, तव यह इस पेड से उस पेड पर अपने भोजन के लिए चक्कर लगाने लगता है। इसका मुख्य भोजन कीडे-मकोडो छोटे जानवरो और चिडियो के अलावा फल-फूल भी है। केला इसे वहुत ही पसन्द है।

इसकी मादा एक वार में एक ही वच्चा देती है।

तवागु

(SLENDER LORIS)

तवागु लजीला वानर का भाई-वन्धु है जो कद मे उससे छोटा होता है। हमारे देश में यह केवल दक्षिण भारत के जगलो में पाया जाता है। इसके अलावा यह देश भर में और कही नही देखा जा सकता। इसे वहाँ तामिल में तो तवागु कहते है लेकिन तेलगू में देवाग-पिल्ली कहते है।

तवागु

तवागु का कद आठ इच से वडा नही होता। इसकी वाहें पाँच इच की और पैर साढे पाँच के रहते है। इसके शरीर का ऊपरी हिस्सा सिलेटी रग का रहता है जिसमें खैरेपन की मिलावट रहती है। नीचे का हिस्सा हलका हो जाता है। इसके माथे पर एक सफेद तिकोना-सा चिह्न रहता है जिसका नीचे का कोना नाक तक चला आता है। इसके वाल छोटे, घने और मुलायम रहते हैं। कान पतले और गोलाई लिये रहते है।

लंगूर

(LANGUR)

बंदरों की तरह लंगूर भी हमारे बहुत परिचित जानवर हैं, लेकिन ये आबादियों में उतनी अधिक संख्या में नहीं रहते जितने बंदर रहते हैं। इन्हें जंगल ज्यादा पसन्द हैं जहाँ इनके बड़े-बड़े गोल देखे जा सकते हैं।

लंगूर बंदर से कद में कुछ बड़े होते हैं और इनकी दुम भी उनसे बड़ी होती है। हमारे देश में ये पूरब की ओर बंगाल की पश्चिमी सीमा तक और उत्तर की ओर हिमालय की तराई तक पाये जाते हैं। दक्षिण की ओर ये गुजरात तक फैले हुए हैं। पंजाब में ये बहुत कम या बिल्कुल नहीं पाये जाते।

लंगूर

लंगूर करीब दो फुट के होते हैं जिनके तीन, साढ़े तीन फुट लम्बी दुम रहती है। मादा नर से कुछ छोटी होती है। उनके बदन का रंग मटमैला [illegible] या भूरा रहता है जिसमें ऊपर का रंग गहरा और नीचे का हल्का होता है। इनका चेहरा, कान, तलवे और [illegible] का [illegible] हिस्सा काला रहता है। बच्चों का चेहरा शुरू में काला नहीं रहता लेकिन ज्यों-ज्यों उनकी उम्र बढ़ने लगती है उनका चेहरा काला होने लगता है।

लंगूर कहीं-कहीं बस्तियों में भी रहने लगे हैं लेकिन [illegible] में तो [illegible] है। बस्तियों में भी [illegible] हैं जहाँ धार्मिक व्यक्तियों के कारण ये मारे नहीं जाते। [illegible] होते, लेकिन जब इनकी संख्या ज्यादा हो जाती है तब [illegible] जाते हैं।

लंगूर का मुख्य भोजन [illegible]

लगूर और वदरो की शकल-सूरत मे ही नही, रग मे भी काफी भेद रहता है। न तो वदरो की दुम ही लगूरो की तरह लम्बी होती है और न इनका चेहरा ही उनकी तरह काला होता है। ये तो सुनहले भूरे रग के होते है जिनका ऊपरी हिस्सा गहरा और नीचे का हलका रहता है। इनके चेहरे पर और वैठक की जगह पर वाल नही होते और ये दोनो हिस्से लाल रहते है जो उनकी उम्र के साथ ही साथ चटक होते जाते है। वुड्ढे होने पर यह ललाई सारे चेहरे पर फैल जाती है।

वदर हमारे देश के उत्तरी भाग में काफी सख्या में फैले हुए है। ये वैसे तो दक्षिण भारत को छोडकर सारे देश मे पाये जाते ह, लेकिन तीर्थस्थानो मे इनकी काफी वडी सख्या देखी जा सकती है। हिमालय मे ये पाँच-छ हजार फुट से ज्यादा ऊँचाई पर वहुत कम जाते है। इनका कद लगभग वीस इच का होता है जिसमें इनकी दस-ग्यारह इच की दुम शामिल नही है।
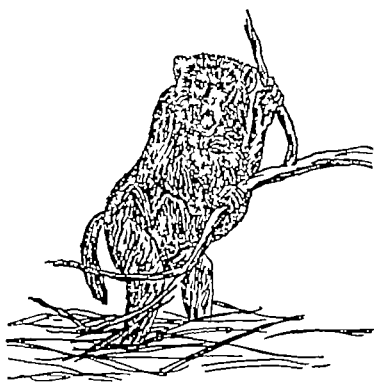
वदर

वदर कद मे लगूरो से छोटे होते हैं। इनका मुख्य भोजन वैसे तो फल है, लेकिन ये रोटी, मिठाई, गल्ला और हर किस्म का पका हुआ खाना खा लेते हैं। यही नही, ये कीडे-मकोडे और अण्डे भी वडे मजे में खाते है।

वदर वहुत गुस्सैल होते है और दवाव में पडने पर वडे जोर से काट लेते है। ये वडे उत्पाती होते है। इनके ऊधम से तो कभी-कभी जी ऊव जाता है। ये हमारे खेतो और वागो का वहुत ज्यादा नुकसान करते है।

इनके वारे मे हम लोग स्वय इतना जानते है कि उसे दुहराने की आवश्यकता नही जान पडती।

इनकी मादा या वँदरिया एक वार मे एक ही वच्चा देती है जो माँ के पेट से तव तक चिपका रहता है जव तक वडा नही हो जाता।

भी बहुत सीधा और शरमीला जानवर है जो मनुष्यों की आहट पाकर छिपना ही ज्यादा पसन्द करता है। पकड़े जाने पर यह जरूर गुस्सा दिखाता है और इसी से इसे पालतू करना आसान काम नहीं।

इसके नर की बोली मनुष्यों से मिलती-जुलती होती है जो अक्सर जंगलों में दूर से सुनाई पड़ती है। इसका भोजन भी अन्य बंदरों की तरह फल-फूल, गल्ला, अण्डे और कीड़े मकोड़े हैं।

इसकी मादा एक बार में एक बच्चा देती है।

ऊलक-परिवार

(FAMILY SIMIIDAE)

ऊलक-परिवार में हमारे यहां के केवल दो गिबन (Gibbon) जाति के वन-मानुष रखे गये हैं जिनमें पहला ऊलक (White browed Gibbon) तो हमारे देश का प्राणी है, लेकिन दूसरा उकाइटस (Whitehanded Gibbon) हमारे देश की पूर्वी सीमा पर कभी-कभी आ जाता है। इन दोनों में बहुत समता रहती है और दोनों का रंग-रूप और स्वभाव भी बहुत कुछ मिलता-जुलता रहता है।

ये वैसे तो पेड़ों पर रहनेवाले जीव हैं, लेकिन ये पृथ्वी पर भी अक्सर चल लेते हैं। बंदरों की तरह न तो इनके गाल में थैली होती है और न इनके दुम ही रहती है।

इनका मस्तिष्क मनुष्यों को छोड़कर अन्य जीवों से अधिक विकसित रहता है और इनकी खोपड़ी मनुष्यों से बहुत कुछ मिलती-जुलती होती है। नर वनमानुषों के कुकुन्दन्त बड़े और तेज होते हैं।

हमारे देश में बड़े वनमानुष नहीं पाये जाते। यहां तो सिर्फ ऊलक जाति के छोटे वनमानुष पाये जाते हैं जिनका वर्णन नीचे किया जा रहा है।

ऊलक वनमानुष

(WHITE BROWED GIBBON)

हमारे देश में गोरिल्ला, चिम्पैंजी और ओरांग उटान आदि बड़े वनमानुष नहीं पाये जाते, लेकिन यहां गिबन (Gibbon) जाति के दो वनमानुष [illegible] मिलते हैं जो छोटे वनमानुषों की श्रेणी में आते हैं। इन दोनों वनमानुषों में [illegible]

गल्ला, कीडे-मकोडे और अण्डे भी खाते है। वस्तियो में रहनेवाले लगूर तो पका हुआ खाना और मिठाई आदि भी वडे स्वाद मे खाने लगे है।

इनकी मादा एक बार मे एक वच्चा देती है जो वदर के वच्चे की तरह माँ के पेट पर कुछ समय तक चिपका रहता है।

नील वानर

(LION-TAILED MONKEY)

नील वानर दक्षिण भारत का निवासी है। इसके अलावा यह और कही नही पाया जाता। कही-कही इसे स्याह वदर भी कहते है। यह कद में लगभग दो फुट का होता है और इसके करीब दस इच लम्बी दुम रहती है। मादा नर से कद में कुछ छोटी होती है।

नील वानर के कधे पर और चेहरे के चारो ओर ववर शेर की तरह घने वाल रहते है जिससे इसका चेहरा वहुत रोबीला जान पडता है। इसकी दुम के सिरे पर भी सिह की दुम की तरह वालो का गुच्छा-सा रहता है।

नील वानर

नील वानर काले रग का वदर है जिसके चेहरे के चारो ओर सिलेटी रग के घने वाल होते है। इसके सीने का रग हलका होता है जो वचपन में भूरा रहता है। इसके सिर पर वालो का एक गुच्छा-सा रहता है जो सफेदी मायल रहता है।

स्याह वदर गोल वनाकर रहता है जिसमे प्राय पन्द्रह से वीस वदर होते है। इसे घने और ऊँचे पहाड़ के जगल ज्यादा पसन्द है। यह शकल-सूरत में भयानक होते हुए

भी बहुत सीधा और शर्मीला जानवर है जो मनुष्यो की आहट पाकर छिपना ही ज्यादा पसन्द करता है। पकडे जाने पर यह जरूर गुस्सा दिखाता है और इसी से इसे पालन् करना आसान काम नही।

इसके नर की बोली मनुष्यो से मिलती-जुलती होती है जो अक्सर जगलो मे दूर से सुनाई पडती है। इसका भोजन भी अन्य बदरो की तरह फल-फूल, पत्ते, अण्डे और कीडे मकोडे हैं।

इसकी मादा एक बार में एक बच्चा देती है।

ऊलक-परिवार

(FAMILY SIMIIDAE)

ऊलक-परिवार मे हमारे यहा के केवल दो गिबन (Gibbon) जाति के वनमानुष रखे गये हैं जिनमे पहला ऊलक (White browed Gibbon) तो हमारे देश का प्राणी है, लेकिन दूसरा उकाल्टम (Whitehanded Gibbon) हमारे देश की पूर्वी सीमा पर कभी-कभी आ जाता है। इन दोनो मे बहुत समता रहती है और दोनो का रग-रूप और स्वभाव भी बहुत कुछ मिलता-जुलता रहता है।

ये वैसे तो पेडो पर रहनेवाले जीव हैं, लेकिन ये पृथ्वी पर भी [illegible] चल लेते हैं। बदरो की तरह न तो इनके गाल मे थैली होती है और न इनके दुम ही रहती है।

इनका मस्तिष्क मनुष्यो को छोडकर अन्य जीवो से अधिक विकसित रहता है और इनकी खोपडी मनुष्यो से बहुत कुछ मिलती-जुलती होती है। नर वनमानुषो के कुकुरदन्त बडे और तेज होते हैं।

हमारे देश मे बडे वनमानुष नही पाये जाते। यहा तो सिर्फ ऊलक जाति के छोटे वनमानुष पाये जाते हैं जिनका वर्णन नीचे किया जा रहा है।

ऊलक वनमानुष

(WHITE BROWED GIBBON)

हमारे देश मे गारिला, चिम्पैंजी [illegible] [illegible] आदि [illegible] [illegible] [illegible] पाये जाते लेकिन यहा गिबन (Gibbon) जाति के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] जो छोटे वनमानुषो की श्रेणी मे आते हैं। इन [illegible] वनमानुषो मे [illegible] [illegible] [illegible]

गल्ला, कीडे-मकोडे और अण्डे भी खाते है। बस्तियो मे रहनेवाले लगूर तो पका हुआ खाना और मिठाई आदि भी बडे स्वाद से खाने लगे है।

इनकी मादा एक बार में एक बच्चा देती है जो बदर के बच्चे की तरह माँ के पेट पर कुछ समय तक चिपका रहता है।

नील वानर

(LION-TAILED MONKEY)

नील वानर दक्षिण भारत का निवासी है। इसके अलावा यह और कही नही पाया जाता। कही-कही इसे स्याह बदर भी कहते है। यह कद में लगभग दो फुट का होता है और इसके करीब दस इच लम्बी दुम रहती है। मादा नर से कद में कुछ छोटी होती है।

नील वानर के कधे पर और चेहरे के चारो ओर बबर शेर की तरह घने बाल रहते है जिससे इसका चेहरा बहुत रोबीला जान पडता है। इसकी दुम के सिरे पर भी सिंह की दुम की तरह बालो का गुच्छा-सा रहता है।

नील वानर

नील वानर काले रग का बदर है जिसके चेहरे के चारो ओर सिलेटी रग के घने बाल होते है। इसके सीने का रग हलका होता है जो बचपन में भूरा रहता है। इसके सिर पर बालो का एक गुच्छा-सा रहता है जो सफेदी मायल रहता है।

स्याह बदर गोल बनाकर रहता है जिसमें प्राय पन्द्रह से बीस बदर होते हैं। इसे घने और ऊँचे पहाड के जगल ज्यादा पसन्द है। यह शकल-सूरत में भयानक होते हुए

ऊल्कों का ज्यादा समय पेड़ों पर ही बीतता है, लेकिन खाने-पीने के लिए ये जमीन पर भी उतरते हैं। जमीन पर ये बन्दरों की तरह चारों पैरों से न चलकर आदमियों की तरह दोनों पैरों पर सीधे होकर चलते हैं। इस प्रकार चलते समय ये अपने चौड़े पंजे की उँगलियाँ फैलाकर अपने शरीर को साध कर चलते हैं, लेकिन इनकी यह चाल ज्यादा तेज नहीं होती और इन्हें आदमी आसानी से दौड़कर पकड़ सकता है।

ऊलक बहुत जल्द पालतू हो जाता है, लेकिन इसकी सुबह-शाम शोर मचाने की आदत के कारण इसे पालना लोग पसन्द नहीं करते। चिड़ियाखानों में भी जहाँ ऊलक पले रहते हैं वहाँ मीलों तक के लोग इनकी आवाज से इनकी मौजूदगी का पता पा जाते हैं।

इनका मुख्य भोजन एकदम शाकाहार नहीं है। अपनी फल-फूल की खुराक के अलावा ये छोटी-मोटी चिड़ियाँ, अण्डे और कीड़े-मकोड़े भी खाते हैं। मकड़ियाँ तो इन्हें खास तौर से पसन्द हैं। ये आदमियों की तरह चुल्लू से पानी न पीकर बंदरों की तरह झुककर पानी पीते हैं।

इनकी मादा एक बार में एक ही बच्चा देती है।

हुक्कू हमारे यहाँ केवल असम के जगलो मे पाया जाता है, लेकिन दूसरा उकाइटम (White handed Gibbon) मलाया का निवासी है, जो कभी-कभी हमारे देश मे असम प्रदेश के जगलो मे आ जाता है । इन दोनो का कद और स्वभाव बहुत कुछ एक-जैसा होता है। इसमे यहाँ केवल ऊलक का वर्णन दिया जा रहा है जो हमारे देश का निवामी है। यह वनमानुप धुर काले रग का होता है जिसकी दोनो भौहो पर एक-एक आडी सफेद धारी पडी रहती है, लेकिन मलायावाले वनमानुप के दोनो हाथ थोडी दूर तक सफेद रहते है ।

ऊलक

ऊलक असम के जगलो का निवासी है जो घने पहाडी जगलो मे ही रहना पसन्द करता है और पेड की एक डाली से झूलकर दूसरी पर आता जाता रहता है । ऊलक गरोह मे रहनेवाला जानवर है, लेकिन कभी-कभी इसके नर अकेले भी दिखाई पडते है । इसके झुड कभी-कभी सौ-सौ तक के हो जाते है जो सुवह शाम इतना शोर मचाते है कि दूर से ही इनके रहने की जगह का पता चल जाता है। सुवह होते ही इनका वोलना शुरू हो जाता है, जो नौ-दस वजे तक जारी रहता है। इसके वाद ये अपने भोजन की तलाश मे लग जाते है और खा-पीकर शाम तक आराम करते है। शाम को फिर इनकी कर्कश वोली से एक वार सारा जगल गूंज उठता है ।

ऊल्को का ज्यादा समय पेडो पर ही बीतता है, लेकिन खाने-पीने के लिए ये जमीन पर भी उतरते है। जमीन पर ये बन्दरो की तरह चारो पैरो से न चलकर आदमियो की तरह दोनो पैरो पर सीधे होकर चलते है। इस प्रकार चलते समय ये अपने चौडे पजे की उँगलियाँ फैलाकर अपने शरीर को साध कर चलते है, लेकिन इनकी यह चाल ज्यादा तेज नही होती और इन्हे आदमी आसानी से दौडकर पा सकता है।

ऊलक बहुत जल्द पालतू हो जाता है, लेकिन इसकी सुबह-शाम शोर मचाने की आदत के कारण इसे पालना लोग पसन्द नही करते। चिडियाखानो मे भी जहा ऊलक पले रहते है वहाँ मीलो तक के लोग इनकी आवाज से इनकी मौजूदगी का पता पा जाते है।

इनका मुख्य भोजन एकदम शाकाहार नही है। अपनी फल-फूल की खुराक के अलावा ये छोटी-मोटी चिडियाँ, अण्डे और कीडे-मकोडे भी खाते है। मकडिया तो इन्हें खास तौर से पसन्द है। ये आदमियो की तरह चुल्लू से पानी न पीकर बन्दर की तरह झुककर पानी पीते है।

इनकी मादा एक बार मे एक ही बच्चा देती है।